

**भारतीय प्रशासन**  
**(Indian Administration)**

**एम.ए. लोक प्रशासन (पूर्वाद्ध)**  
**M.A. Public Administration (Previous)**  
**प्रश्न पत्र-2**  
**Paper 2**  
**Option (I)**

**दूरस्थ शिक्षा निदेशालय**  
**महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय**  
**रोहतक—124 001**

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK  
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system  
or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or  
otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University  
ROHTAK - 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

# विषय-सूची

	<b>UNIT-I</b>	
<b>अध्याय-1</b>	भारतीय प्रशासन का विकास	5
<b>अध्याय-2</b>	भारतीय प्रशासन पर मुगलों एवं अंग्रेजों का प्रभाव	14
<b>अध्याय-3</b>	भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ	24
<b>अध्याय-4</b>	भारतीय प्रशासन के संघात्मक एवं एकात्मक पहलू	32
<b>अध्याय-5</b>	भारतीय प्रशासन की सामाजिक एवं आर्थिक विकास में भूमिका	42
	<b>UNIT-II</b>	
<b>अध्याय-6</b>	संघीय कार्यपालिका : राष्ट्रपति	50
<b>अध्याय-7</b>	प्रधानमंत्री	63
<b>अध्याय-8</b>	मंत्रीमण्डल सचिवालय, मंत्रीमण्डल सचिव	77
<b>अध्याय-9</b>	केन्द्रीय सचिवालय	85
<b>अध्याय-10</b>	प्रधानमंत्री कार्यालय	96
<b>अध्याय-11</b>	वित्त मन्त्रालय : संगठन और कार्य	102
<b>अध्याय-12</b>	ग ह मन्त्रालय	110
<b>अध्याय-13</b>	विदेश मन्त्रालय	119
<b>अध्याय-14</b>	रक्षा मन्त्रालय : संगठन एवं कार्य	124
	<b>UNIT-III</b>	
<b>अध्याय-15</b>	राज्यपाल	131
<b>अध्याय-16</b>	मुख्यमंत्री	141
<b>अध्याय-17</b>	राज्य सचिवालय	146
<b>अध्याय-18</b>	शिक्षा विभाग	157
<b>अध्याय-19</b>	मुख्य सचिव	167
<b>अध्याय-20</b>	केन्द्र-राज्य संबंध	175
<b>अध्याय-21</b>	कृषि विभाग (सचिवालय स्तर)	186
<b>अध्याय-22</b>	ग ह विभाग	192
<b>अध्याय-23</b>	श्रम एवं कल्याण विभाग, हरियाणा	200
	<b>UNIT-IV</b>	
<b>अध्याय-24</b>	डिजिजनल कमिश्नर	204
<b>अध्याय-25</b>	जिलाधीश या कलेक्टर	208
<b>अध्याय-26</b>	जिला पुलिस प्रशासन	218
<b>अध्याय-27</b>	लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण	226
<b>अध्याय-28</b>	गांधी दर्शन और पंचायती राज	233
<b>अध्याय-29</b>	नगरीय स्थानीय सरकार	241
<b>अध्याय-30</b>	पंचायती राज	265
<b>अध्याय-31</b>	नगर एवं ग्रामीण नियोजन	286
<b>अध्याय-32</b>	हरियाणा नगर विकास	296
<b>अध्याय-33</b>	जिला ग्रामीण विकास अभिकरण	299
<b>अध्याय-34</b>	खाद्य एवं आपूर्ति प्रशासन	304
	<b>UNIT-V</b>	
<b>अध्याय-35</b>	भारत में प्रशासनिक सुधार	306
<b>अध्याय-36</b>	सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ	322
<b>अध्याय-37</b>	प्रशासन में नैतिकता	329
<b>अध्याय-38</b>	लोक शिकायतों का निवाकरण	345
<b>अध्याय-39</b>	जिला उपभोक्ता फोरम	349
<b>अध्याय-40</b>	लोक अदालत	354

**M.A. (Previous)**  
**Indian Administration**

**Paper-2**  
**Option (I)**

**Max. Marks : 100**  
**Time : 3 Hours**

- Unit-I** Evolution of Indian Administration, Features of Indian Administration; Federal and unitary aspects of Indian administration; Role of Administration in Socio-Economic development.
- Unit-II** Administration at Central Level.
- i. Political Executive: Role of President and Prime Minister in the emerging Scenario.
  - ii. Administrative machinery Role of Cabinet Secretariat and Cabinet, Secretary-A Critical analysis; Central Secretariat, P.M. Office, Ministries of Finance, Home, External Affairs and Defence.
- Unit-III** Administration at State Level
- i. Political Executive-Governor and Chief Minister-their roles.
  - ii. Administrative Machinery State Secretariat and Role of Chief Secretary.
  - iii. Dept. of Education, Agriculture, Home, Labour and Employment.
  - iv. Central-State Relations Problems and Prospects.
- Unit-IV** Divisional Commissioner, Deputy Commissioner, D.D. P.O; District Police Administration, Administration of Food and Supply D.R.D.A. Democratic decentralization; Gandhain Concept of Panchayati Raj, Panchayati Raj Institutions and their Role in Development, working of Urban Local Government, Town and Country Planning, HUDA.
- Unit-V** Issues in Indian Administration-
- i. Administration Reforms in India.
  - ii. Generalists specialists controversy in Administration.
  - iii. Ethics Administration.
  - iv. Redressal of Citizens Grievance-Lokpal and Lok Ayukta, Lok Adalat, District Consumer Forums.

## Unit I

### अध्याय-1

## भारतीय प्रशासन का विकास

### (Evolution of Indian Administration)

यद्यपि स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में लोक-प्रशासन का विकास सौ से कुछ अधिक वर्षों का है, परन्तु वास्तव में यह विषय उतना ही प्राचीन है जितनी मानव सभ्यता। प्राचीन काल में राजनीतिक व्यवस्थाएँ भी लोक प्रशासन के माध्यम से ही शासन कार्य संचालित करती थी। भारतीय लोक प्रशासन अपने वर्तमान स्वरूप में विरासत एवं निरंतरता का परिणाम है। अतः परम्परागत लोक प्रशासन की नींव पर आज के लोक प्रशासन का भवन खड़ा हुआ है। ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन की सुविधानुसार प्राचीन काल, गुप्त काल, राजपूत काल, सल्तनत काल, मुगल काल, ब्रिटिश काल और स्वातन्त्र्योत्तर काल में बांटा जा सकता है। अतः भारतीय लोक प्रशासन का विकास अनेक शताब्दियों के विकास का परिणाम है यद्यपि इस विकास के सुव्यवस्थित एवं सुस्पष्ट विवरण का अभाव है।

#### प्राचीनकालीन प्रशासन

#### (Ancient Period Administration)

प्राचीन काल में विभिन्न प्रकार के प्रशासन प्रचलित रहे हैं। भारतीय प्रशासन का प्रारम्भ सिन्धु घाटी से भी अधिक प्राचीन है तथा हमारी सिन्धु-घाटी सभ्यता काल के प्रशासन के विषय में हमारा ज्ञान अधिकतर अनुमानों और कल्पनाओं पर आधारित है। खुदाई में प्राप्त अवशेषों से विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के साम्राज्य व्यवस्थित थे। पुरोहित लोग शासन करते थे जो सुमेर और अकात के पुरोहित राजाओं के समान थे। राज्य का स्वरूप केन्द्रीकृत था और नगरपालिका शासन से लोग अपरिचित थे। हण्टर नामक विद्वान के अनुसार काल की शासन व्यवस्था लोकतांत्रात्मक थी।

#### ऋग्वैदिक काल

इस काल में भारतीय प्रशासन का स्वरूप राजतन्त्रात्मक था। राज्य और राजा को जन-कल्याण-साधक माना जाता था। प्रजा-धर्म के विरुद्ध कार्य करने वाले राजा और पदाधिकारी पदच्युत किए जा सकते थे। राजा अपने विभिन्न मंत्रियों के परामर्श से शासन चलाता था। मंत्रियों में सबसे प्रमुख स्थान पुरोहित का था। राजदरबार में गाँव और निवासियों का प्रतिनिधित्व 'ग्रामीण' नामक पदाधिकारी द्वारा किया जाता था। सभा और समिति नामक जन-संस्थाएँ भी विद्यमान थीं। समिति सम्पूर्ण प्रजा की संस्था थी जो राजा का निर्वाचन करती थी। सभा समिति से छोटी संस्था थी जिसकी सहायता से राजा दैनिक राज्य-कार्य करता था। इस संस्था के माध्यम से ही वह अभियोगों का नियंत्रण करता था। इन दोनों संस्थाओं का राजा के ऊपर नियंत्रण था जो आगे चलकर शिथिल हो गया।

#### उत्तर-वैदिक काल

इस काल में राजा का पद पैतृक अथवा वंशानुगत हो गया। इस काल में राजा बहुत कुछ स्वच्छद होते हुए भी निरंकुश नहीं था। इस काल में राजा के निर्वाचन का सिद्धान्त समाप्त नहीं हुआ था और उसके उत्तराधिकारी पर राष्ट्र के प्रमुख व्यक्तियों का प्रभाव और नियंत्रण रहता था। शासन के संचालन में राजा प्रतिष्ठित मंत्रियों की एक परिषद् की सहायता लेता था प्रधानमंत्री को मुख्यामात्य कहा जाता था। सभा, समिति और मन्त्रि-परिषद् का राजा पर प्रभाव था। राज्य की शासन व्यवस्था

को सुविधाजनक बनाने के लिए अनेक विभागों की रचना की गई थी, जैसे- वित्त विभाग, निरीक्षण विभाग, संरक्षण विभाग और सेना विभाग। स्थानीय शासन का कार्यभार एक विशेष मन्त्री द्वारा वाहन किया जाता था। उसका मुख्य कार्य ग्राम और विषय के अधिकारियों पर नियंत्रण रखना और उनके पारस्परिक झगड़ों का निपटारा करना था। न्याय व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था तथा उसकी सहायता के लिए अन्य अधिकारी भी होते थे।

### महाकाव्य काल

रामायण और महाभारत हमारे देश के अति प्राचीन महाकाव्य हैं। रामायणकालीन शासन का रूप राजतन्त्रीय था तथा प्रजा सुखी एवं समृद्ध थी। प्रशासन का अध्यक्ष राजा होता था जिसे परामर्श और राज्य-कार्यों के संचालन में सहायता देने के लिए मन्त्री, सभासद आदि होते थे। राज्य का वास्तविक उद्देश्य धर्मपालन और सदाचार को प्रोत्साहन देना, प्रजा की सुख-समृद्धि को बढ़ाना तथा ज्ञान को संरक्षण प्रदान करना था। तदनुसार राजा का कर्तव्य था कि वह धर्म का पालन करे, सत्य की रक्षा करे, अधर्म का नाश करे, विनम्र रहे, देश की रक्षा करे, जनता की सुख-समृद्धि को बढ़ाये, आदि। रामायण से यह स्पष्ट होता है कि प्रशासन कार्य में 'मन्त्रणा' का विशेष महत्व और प्रचलन था। सभा या परिषद् महत्वपूर्ण संस्था थी और महत्वपूर्ण अवसरों पर नियन्त्रण के लिए आमन्त्रित की जाती थी। सभा में अमात्य तथा चारों वर्णों के प्रतिनिधि सदस्य होते थे। रामायण से पता चलता है कि अमात्यों के अतिरिक्त और भी अनेक राज्याधिकारी होते थे। प्रशासन अनेक विभागों में विभाजित था। न्याय निष्पक्ष था।

महाभारत में राज्य को 'सप्तांगी' कहा गया है। इस युग में राजतन्त्र को ही प्रमुख शासनतन्त्र माना गया है। राजा उच्च आदर्शों एवं कर्तव्यों का प्रतीक था। राजा का धर्म था कि वह मन, वचन और कर्म से न्याय करे, गरीबों पर अत्याचार न करे, अपराधी को दण्ड दे, प्रजा के कष्टों का निवारण करे, आदि। सामान्यतः राज्याधिकारी वंशानुगत होता था। महाभारत में शासन की अनिवार्यता को स्पष्टतः घोषित किया गया है। शासन ही राजा को सुरक्षित रखता है और राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करता है। शासन के संगठन की दृष्टि से महाभारत में दो बातों का मुख्य रूप से विवेचन है- शासन के अधिकारियों और कर्मचारियों का तथा उनकी योग्यताओं का। शासन का अध्यक्ष राजा होता था। उसके परामर्श के लिए अन्य मन्त्रिगत थे। मन्त्रियों के अतिरिक्त उच्चाधिकारी भी होते थे। महाभारत-काल में विधि, दण्ड और न्याय का पर्याप्त महत्व था। संक्षेप में, रामायण तथा महाभारत-काल में प्रशासन का विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है।

महाकाव्य-काल में कुछ गणतन्त्रों का अस्तित्व था परन्तु प्रमुखतः राजतन्त्र ही विद्यमान थे। राजा सर्वोच्च अधिकारी होता था तथा लोक-कल्याण के कार्य व प्रजा की रक्षा करना उसके प्रमुख कर्तव्य थे। सम्राट को प्रशासन में सहायता देने के लिए दो संस्थाएँ मन्त्रिपरिषद् व सभा होती थीं। प्रशासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण साम्राज्य को विभिन्न इकाइयों में विभाजित किया गया था। सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' थी।

बौद्ध-साहित्य में महात्मा बुद्ध के आविर्भाव से पूर्व एवं उनके समय में 'महाजन' पदों के अस्तित्व का पता चलता है। महात्मा बुद्ध के समय अनेक गणतन्त्रात्मक राज्य थे किन्तु चार राजतन्त्र भी थे- मगध, अवन्ति, वत्स और कौशल। बौद्ध-साहित्य में बौद्धकालीन गणतन्त्रों का वर्णन है। बौद्धकालीन गणराज्यों में प्रशासन की वास्तविक शक्ति 'सभा' में निहित थी जो 'सभागार' में होती थी तथा छोटे-बड़े समान रूप से उसके सदस्य होते थे। राज्य का एक अध्यक्ष होता था जिसे राजा कहते थे जिसे चुनाव के द्वारा एक निश्चित समय के लिए नियुक्त किया जाता था। इस प्रकार बुद्ध के युग में राज्यों पर वंशानुगत राजा बल्कि गणसभाओं के प्रति उत्तरदायी व्यक्ति शासन करते थे।

### मौर्य प्रशासन

मौर्य प्रशासन में राजा ही साम्राज्य का प्रमुख होता था और कार्यकारी, न्यायिक एवं विधायी शक्तियाँ सब उसी में निहित थीं। इस काल में चन्द्रगुप्त मौर्य (322 ईसा पूर्व - 298 ईसा पूर्व) एक कुशल सेनानायक और विजेता होने के साथ ही एक उच्चकोटि का शासक भी था। चन्द्रगुप्त के शासन का स्वरूप प्रबुद्ध राजतंत्र था। पूरी सत्ता राजा के अधीन थी, किन्तु राजा का लक्ष्य प्रजा का अधिक से अधिक जनकल्याण करना था। प्रजा के कल्याण में राजा अपना हित समझा था। राजा की आज्ञा अथवा आदेशों को सर्वोच्च माना जाता था। राजा अकेला राज्य नहीं सम्भाल सकता था। अतः उसकी सहायता के लिए मन्त्रि-परिषद् तथा सुनियोजित अधिकारी वर्ग होता था। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने राजा के परामर्शदाताओं में- (i) मन्त्रिगण, (ii)

न्यायाधीश, (iii) सेनापति एवं (iv) कोषाध्यक्ष का उल्लेख किया है। कौटिल्य (चाणक्य) ने राज्याधिकारियों का विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। उसके अर्थशास्त्र में 18 तीर्थो (उच्चअधिकारियों) का उल्लेख है- (1) मंत्री-राजा का सर्वोच्च परामर्शदाता; (2) पुरोहित-यह भी राजा के राज्य-कार्यो तथा धार्मिक कार्यो में परामर्श देता था; (3) सेनापति-सेना का अध्यक्ष; (4) युवराज-राजा का उत्तराधिकारी तथा परामर्शदाता; (5) दौवारिक-मुख्य स्वागत अधिकारी तथा द्वार-रक्षक; (6) अन्तर्वेशिक-अन्तपुरः का रक्षक; (7) प्रशस्ति (राष्ट्रपाल)- पुलिस का सर्वोच्च अधिकारी; (8) समाहर्ता-आय संग्राहक; (9) सन्निधाता-कोषाध्यक्ष; (10) प्रदेश-क्षेत्रीय अधिकारी अथवा दण्डनायक; (11) नायक-पैदल सेना का मुख्य अधिकारी अथवा नगरी कोतवाल; (12) व्यावहारिक-न्यायाधीश; (13) नगर निरीक्षक-स्थानीय निकायों का अधिकारी; (14) व्यापाराध्यक्ष-उद्योग तथा व्यापार का अधीक्षक; (15) अन्तपाल-सीमा सुरक्षा सम्बन्धी अधिकारी; (16) कर्मान्तक-खानों का अध्यक्ष; (17) महापौर-नगर का सर्वोच्च अधिकारी और (18) आटविक-वन विभाग का अध्यक्ष।

इनमें से उपर्युक्त प्रथम चार अधिकारी मंत्रिमण्डल के अन्तरंग सदस्य थे जिनसे राजा महत्वपूर्ण विषयों पर परामर्श लेता था और अन्य 14 विभागाध्यक्ष थे, इनसे भी राजा समय-समय पर परामर्श लेता था। इन सभी को उच्च वेतन दिये जाते थे। सम्पूर्ण राज्य प्रान्तों में विभक्त था। क्षेत्र का मुख्य अधिकारी प्रवेष्टा कहलाता था। वह सामान्य प्रशासन, कर-वसूली तथा शान्ति एवं सुरक्षा की देखभाल करता था। उसको दण्डनायक के अधिकार भी प्राप्त थे। क्षेत्र ग्रामों में विभक्त थे। ग्राम का अधिकारी 'गोप' होता था। 10 ग्रामों का संग्राहक तथा 200 ग्रामों का एक 'खार्वटिक' होता था, 400 ग्रामों का अधिकारी 'द्रोणमुख' कहलाता था तथा 800 ग्रामों पर एक 'स्थानीय' होता था। ग्राम प्रशासन की इकाई थी तथा गोप प्रशासन की रीढ़ था। गोप ग्राम की जनगणना करता था जिसमें जाति तथा आय-व्यय के साधनों का उल्लेख होता था। वह अधिकारी वर्तमान पटवारी के समकक्ष था।

मौर्यकालीन नगर-व्यवस्था की विदेशियों तक ने प्रशंसा की है। पाटलिपुत्र की नगर-पालिका का प्रशासन 30 सदस्यों की 'एक परिषद्' के हाथ में था जो छः समितियों में विभक्त थी। प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे। पहली समिति उद्योग और शिल्प की तथा दूसरी विदेशियों की देखभाल करती थी, तीसरी समिति सम्पत्ति का लेखा-जोखा और जनगणना की व्यवस्था करती थी। चौथी समिति व्यापार पर नियंत्रण रखने, माप-तौल का नियमन करने और बिक्री की वस्तुओं पर राज्य की मोहर लगती थी। यह एक प्रकार से बिक्री का लाइसेंस था। पाँचवीं समिति व्यापारियों द्वारा तैयार माल का निरीक्षण करती थी तथा छठी विक्रय-कर वसूल करती थी। सब समितियाँ अपना-अपना कार्य पथक-पथक रूप से करती थीं, किन्तु कुछ कार्य विभिन्न समितियों के सहयोग तथा परामर्श से भी होते थे, जैसे सार्वजनिक भवनों की देखभाल; बाजार, बन्दरगाहों तथा धर्म स्थानों की रक्षा का कार्य आदि। इस काल में प्रशासन की सुविधा के लिए नगर को वार्डों में विभक्त किया जाता था।

राज्य की सारी आय नियमित अनुमान-पत्र (बजट) के अनुसार खर्च की जाती थी। व्यय की मुख्य मदें थीं- राज-परिवार, धार्मिक कृत्य, सेना, दौत्य, रक्षा, वेतन, भत्ता, शिक्षा, वृत्ति, दान, यातायात, सिचाई, भवन-निर्माण और अन्य लोकोपकारी कार्य। राजस्व विभाग का संचालन समाहर्ता करता था और उसकी अधीनता में कई अध्यक्ष थे, जैसे-शुल्काध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष (सूत और कपड़े के निरीक्षक), सीताध्यक्ष (सरकारी खेती के निरीक्षक), सुराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष (बूचड़खाने के अध्यक्ष), गणिकाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, आकाराध्यक्ष (खान के निरीक्षक), पण्याध्यक्ष (दुकान के निरीक्षक) आदि। एक विशय (जिला) के राजस्व अधिकारी को युक्त कहते थे। इस तरह से मौर्यकालीन समय में भारतीय प्रशासन का अत्यन्त सुव्यवस्थिति और कल्याणकारी स्वरूप पाया जाता था। शासन व्यवस्था सुदृढ़ और केन्द्रीकृत स्वरूप लिये हुए थी। इस काल में प्रशासन का स्वरूप राज-तन्त्रात्मक था।

### गुप्तकालीन प्रशासन

गुप्त-राजाओं ने अपने पूर्व-प्रशासकों के शासन-प्रबन्ध को अपनाते हुए उसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन कर समय के अनुकूल बनाया। इस अवधि में राजतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली प्रचलित थी। राजा को प्रशासनिक कार्यो में सहायता देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होती थी। सम्पूर्ण केन्द्रीय शासन अनेक विभागों में संगठित था जिसका प्रबन्ध मन्त्री, अमात्य कुमारामात्य, आदि अधिकारी करते थे। देश में आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा के लिए पुलिस-विभाग था। इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी 'दण्डपाशिक' होता था। शासन की सुविधा के लिए गुप्त-साम्राज्य अनेक इकाइयों में बँटा हुआ था। सबसे बड़ा विभाग प्रान्त था, जिसको देश या 'भक्ति' कहते थे। प्रान्तीय शासक 'भोगपति' कहलाते थे। प्रान्तों के बाद 'क्षेत्र प्रदेश' आता था जो आज

की कमिशनरी के बराबर होता था और इससे छोटा विभाग 'विषय' कहलाता था जो जिले के समकक्ष होता था। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' था जिसका अधिकारी 'ग्रामिक' होता था। ग्रामिक की सहायता के लिए एक समिति होती थी जिसे 'ग्रामसभा' कहते थे।

संक्षेप में, गुप्त-शासकों की प्रशासनिक व्यवस्था उच्चकोटि की थी और उन्होंने अपने विशाल साम्राज्य का सुचारु रूप से शासन किया। डॉ. अल्तेकर ने गुप्त-प्रशासन की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "गुप्तकालीन शासन-प्रणाली तथा उसकी उपलब्धियों के विषय में हमारे पास विस्तृत सामग्री है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह केन्द्र व प्रान्त दोनों में अत्यन्त सुव्यवस्थित थी।"

### राजपूतकालीन प्रशासन

राजपूत काल में गणतन्त्रों के समाप्त होने से राजतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था का बोलबाला था। राजपद वंशानुगत होता था। राजा को परामर्श देने के लिए मंत्रिमण्डल की व्यवस्था थी। मन्त्री अपने-अपने विभागों का प्रबन्ध करते थे। मन्त्री पद भी वंशानुगत हो चले थे। केन्द्रीय शासन सुगठित नहीं था क्योंकि प्रान्तीय शासन पर उन सामन्तों का ही अधिकार होता था जो प्रायः स्वतंत्र रूप से शासन करते थे। जागीर-प्रथा के प्रचलन से सामन्तों के अधिकारों में भारी वृद्धि हुई। प्रायः युवराज और राजकुल के व्यक्तियों को ही प्रान्तीय शासक बनाया जाता था। प्रान्तीय शासन अनेक विभागों में विभक्त होता था। प्रत्येक विभाग का एक अधिकारी होता था जिसके अधीन बहुत से कर्मचारी होते थे। ग्राम पंचायतों पर सामन्तों का अधिकारी होने से उनका महत्व कम हो गया था। साम्राज्य प्रान्तों, जिलों, अधिष्ठानों और ग्रामों में विभक्त था। इस प्रकार ये शासन-पद्धति गुप्तकालीन शासन पद्धति के आधार पर विकसित हुई थी। शासन के मुख्य विभागों का ढाँचा मुख्यतः गुप्तकालीन था, किन्तु उनमें कहीं-कहीं अव्यवस्था और विश्रंखला आ गई थी। शासन की सुविधा हेतु समितियों का निर्माण किया जाता था। उन्हें विविध कार्य सौंपे जाते थे। नगर-प्रबन्ध के लिए पट्टनाधिकारी होता था जिसे उन सभी कर्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता था जो आधुनिक नगरपालिका के प्रशासक करते हैं। इस काल में केन्द्रीय, प्रांतीय जिला तथा ग्रामीण प्रशासन का विकास हुआ।

### सल्तनतकालीन प्रशासन

सल्तनतकालीन प्रशासन (1206-1526 ई०) मूलतः सैनिक था और सुल्तान निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी थे। फिर भी शासन का सम्पूर्ण कार्य कोई शासन अकेला नहीं कर सकता था। उसे दूसरों की सहायता तथा परामर्श की आवश्यकता पड़ती थी। इसलिए सुल्तानों को अपने शासन के प्रारम्भ से ही अधिकारियों के एक व्यवस्थित शासनतन्त्र की व्यवस्था करनी पड़ी। सल्तनत-काल में सुल्तान का पद सर्वोच्च था और उसे राजनीतिक, कानूनी तथा सैनिक अधिकारी प्राप्त थे। वह शासन तथा न्याय-व्यवस्था के प्रति उत्तरदायी था। सुल्तान अपने पदाधिकारियों से परामर्श करता था किन्तु उनकी सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं था।

### मुगल प्रशासन

बाबर की विजय से साथ सल्तनत-काल के स्थान पर मुगल-शासन प्रारम्भ हुआ। बाबर का शासन केवल चार वर्ष तक रहा। उसके पुत्र हुमायूँ को उत्तराधिकार तो मिला परन्तु उसे अफगानों के विरुद्ध बड़े युद्ध का सामना करना पड़ा। हुमायूँ की मृत्यु 1556 में हो गयी। उसका अवयस्क पुत्र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर मुगल बादशाहत की गद्दी पर बैठा। मुगल-काल का वास्तविक संस्थापक यही बालक था जो बाद में भारत के बड़े हिस्से का बादशाह बना। मुगलों में अकबर के बाद जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब प्रसिद्ध बादशाह रहे। औरंगजेब के बाद जो मुगल बादशाह बने, वे निर्बल व असहाय सिद्ध हुए। सन् 1707 के बाद से ही विशाल मुगल-साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने पैर पसारना शुरू कर दिया था। अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर थे जिन्हें 1858 में गद्दी से उतार कर कारावास में डाल दिया गया जहाँ उनकी मृत्यु हो गयी। यहाँ हम संक्षेप में मुगल-शासन की प्रमुख विशेषताओं का निम्नलिखित शीर्षकों में अध्ययन करेंगे:

#### मुगल प्रशासन की विशेषताएं

मुगलों ने प्राचीन राजनीतिक तथा प्रशासनिक परम्पराओं को बनाए रखा। मुगल बादशाह एक सर्वथा स्वेच्छाचारी शासक था



और प्रशासन, "केन्द्रीयकृत स्वेच्छाचारी राजतंत्र" था। राजा राज्य का प्रतीक तथा सभी प्रकार की शक्ति और प्रभुत्व का केन्द्र था। प्रांतीय सरकारें प्रशासनिक माध्यम मात्र थी। मुगल अविभाजित तथा सर्वसत्ता सम्पन्न, निरंकुश स्थापित करने में सफल रहे।

यदि मौर्यों से तुलना करें तो मुगल अधिकाधिक केन्द्रीकरण की ओर बढ़ रहे थे। मौर्यों ने नैतिकता, स्वास्थ्य और कल्याण कार्यों पर विशेष ध्यान दिया था पर मुगलों ने स्वास्थ्य तथा कल्याण जैसी सामाजिक संस्थाओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया परन्तु मुगलों की नागरिक सेवा बहुत कुशल थी। उन्होंने गुण ग्राहकता का परिचय दिया तथा हिंदू बुद्धिजीवियों को उच्च सिविल पदों पर लगाया। उसकी यही एक कमजोरी थी कि वह भूमि-आधारित था अर्थात् राजस्व संबंधी कार्यों को ही प्रधानता दी जाती थी तथा यह एक "अत्यधिक शहरीकृत संस्था" थी।

### मुख्य कार्यपालिका

मुख्य कार्यपालिका शक्तियां राजा में निहित थी। प्रशासन वैयक्तिक था। इसे पैतृक कहना उचित ही है। समस्त प्रशासकीय तंत्र राजा के इर्द-गिर्द घूमता था। वह प्रजा द्वारा "पितातुल्य या स्वेच्छाचारी" समझा जाता था। अधिकतः बादशाह प्रजा की भलाई करने वाले हितैषी स्वेच्छाचारी शासक के रूप में माना जाता था। उस समय जो सिद्धांत माना जाता था, यह था, कि निरंकुश राजतंत्र देवी अधिकारी पर आधारित है। जनता के लिए बादशाहही सब कुछ था। वह सर्व-शक्तिमान और सर्वोपरि था। सभी अधिकार उसके हाथ में होते थे तथा वही न्याय का स्रोत था। प्रशासन पद्धति अत्यधिक केन्द्रीयकृत तथा वैयक्तिक थी। इस प्रकार सभी कुछ राजा के चरित्र तथा उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं पर निर्भर था।

### नौकरशाही (Bureaucracy)

प्रशासनिक तंत्र अस्थिर था। वह राजा की इच्छा पर निर्भर था। भर्ती का आधार जाति, रिश्तेदारी, आनुवांशिकता तथा राजा के प्रति-व्यक्तिगत वफादारी था। प्रशासन का आधार शक्ति का डर था। अधिकारी, राजा के नाम पर लोगों के मनो में दहशत फैलाते थे। प्रजा के बीच उनका बड़ा आदर तथा आतंक था।

अफसर मुख्यतया शांति और सुव्यवस्था बनाए रखने, आंतरिक बगावत और विद्रोहों से राजा के हितों की रक्षा करने, साम्राज्य की सीमा (सरहद्द) बढ़ाने और उसकी रक्षा करने तथा अन्य कर तथा राजस्व वसूल करने में लगे रहते थे।

राजा के प्रत्येक कर्मचारी की नियुक्ति किसी मनसब या ओहदे और मुनाफे के लिए होती थी और उसे राज्य की सैनिक सेवा के लिए एक निश्चित संख्या में सैनिकों की व्यवस्था करनी पड़ती थी। इस प्रकार नौकरशाही अपनी प्रकृति में मुख्यतया सैनिक थी। अधिकारी या मनसबदार तैंतीस (33) श्रेणियों में विभक्त थे जो 10 से लेकर 10,000 सैनिकों तक के कमांडर होते थे। प्रत्येक श्रेणी को एक निश्चित दर से वेतन मिलता था जिसमें से उसे एक निश्चित संख्या में हाथी तथा घोड़े जुटाने पड़ते थे। राज्य सेवाएं आनुवांशिक उत्तराधिकार नहीं थीं न ही उनमें वे कोई अन्य विशिष्टता थीं।

अफसरों को वेतन, धन या अस्थायी समय के लिए जागीर के रूप में दिया जाता था।

### सैनिक प्रशासन

मनसबदारी प्रथा का संबंध मुख्यतः सेना व्यवस्था से था। इसके अतिरिक्त कुछ अतिरिक्त सैनिक तथा एक विशिष्ट श्रेणी के कुलीन सैनिक (gentlemen troopers) भी होते थे जो घुड़सवार होते थे और जो राजा के प्रति अनन्य निष्ठा रखते थे। सेना में घुड़सवार भी थे जो सेना की सबसे अधिक महत्वपूर्ण टुकड़ी थी, पैदल सवार थे जिनमें किसान तथा नागरिक होते थे तथा तोपखाना था जिसमें तोपें तथा नौ सेना शामिल थीं।

मुगल सेना राष्ट्रीय न होकर विभिन्न तत्वों का मिश्रण थी। जैसे-जैसे यह संख्या में बढ़ती गई, यह इतनी विषम जातीय हो गई कि इसे संभालना दूभर हो गया। सैनिक सीधे सम्राट के प्रति निष्ठावान न होकर अपने भर्तीकर्ता अफसरों से अधिक जुड़े हुए थे। शीघ्र ही अनुशासनहीनता व्याप्त हो गई और सेना के स्तर में गिरावट आ गई जो कि जहांगीर के समय में स्पष्ट दिखाई देता है। मुकाबला करने में मुगल समर्थ नहीं रह पाए और शिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने युद्ध क्षेत्र में मुगलों के छक्के छुड़ा दिए।

## पुलिस

ग्रामीण क्षेत्रों में गांव के मुखिया तथा उसके अधीनस्थ चौकीदारों द्वारा पुलिस की तरह नियंत्रण रखा जाता था। यह व्यवस्था उन्नीसवीं शताब्दी तक चलती रही। शहरों तथा कस्बों में यह काम कोतवाल करते थे। कोतवाल के अनेक कर्तव्यों में चोरों को पकड़ना, जान-माल की रक्षा करना, मूल्यों तथा नाप जोख पर भी नियंत्रण रखना था। उन्हें गुप्तचर नियुक्त कर उनके कार्यों का निरीक्षण करना पड़ता था तथा गुमशुदा लोगों या म तर्कों की संपत्ति की सूची बनानी पड़ती थी। कोतवाल का मुख्य काम शहरी क्षेत्रों में शांति और सुव्यवस्था बनाए रखना था। जिलों में फौजदार शांति और सुव्यवस्था बनाए रखने का काम करते थे।

## केन्द्रीय प्रशासन

सामान्य प्रशासन की ही भांति केन्द्रीय प्रशासन भी व्यक्तिगत तथा पितृ वत् था। जब तक राजा का नियंत्रण रहता था, व्यवस्था-सुचारु रूप से चलती रहती थी। जहाँ उसका नियंत्रण कमजोर पड़ा कि पूरी व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त हो जाती थी जैसा कि शाहजहाँ और औरंगजेब के शासनकाल में दिखाई देता है।

“वकील” और “वजीर” दो सर्वोच्च अधिकारी होते थे जिनमें से “वकील” का पद ऊंचा था। वह राज्य के प्रति संरक्षक (Regent) के रूप में काम करता था और उस पर राज्य की देखभाल का पूरा भार था। “वजीर” या उच्च दीवान राजस्व विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता था। उसे “वजीर” तो वास्तव में उस समय कहते थे जब वह प्रधान मंत्री का काम करता था।

राजस्व की वसूली और खर्च की देखभाल मुख्य दीवान करता था। वह सरकार के प्रशासन का मुख्य होता था तथा सभी उच्च अधिकारियों के काम पर नजर रखता था। वह प्रांतीय दीवानों पर नियंत्रण रखता तथा उन्हें निर्देश देता रहता था और वे अपने मातहतों सहित उससे संपर्क बनाए रखते थे। सभी प्रकार के दस्तावेजों को प्रमाणीकरण करने के लिए वह उन पर अपने हस्ताक्षर करके अपनी मुहर लगा देता था।

मुगल के कई दीवाने होते थे। उच्च दीवान “दीवाने आला” के नीचे “दीवाने तान” था जो वेतनादि का कार्यभार संभालना था तथा “दीवाने खालसा” था जो राज्य की भूमि का प्रबंध करता था। मुस्तौफी आय-व्यय का लेखा-जोखा रहते थे तथा “वाक़िया नवीस” सभी प्रमुख किसानों का अभिलेख रखते थे।

अन्य कर्मचारी “खानसामा” या उच्च खाद्य प्रबंधक जो राजकीय व्यय की देखभाल करता था, मीर बख्शी जो साम्राज्य का वेतनाधिकारी होता था तथा “सद्रे-सुदूर” धार्मिक विभाग का प्रमुख होता था। केन्द्रीय सरकार के मुख्य अधिकारियों के अलावा अन्य छोटे-मोटे बहुत से कर्मचारी थे जो व्यवस्था चलाने में सहायक थे। शासन पद्धति नियमों, परंपराओं तथा परिपाटियों पर आधारित थी।

## प्रांतीय प्रशासन

मुगल प्रशासन की प्रवृत्ति केन्द्रीकरण तथा वैयक्तीकरण की होने के कारण प्रांतीय अधिकारी केन्द्र के मात्र प्रशासनिक एजेंट थे।

साम्राज्य सूबों या प्रांतों में विभाजित था। प्रांत का मुखिया सुबेदार होता था। उसकी नियुक्ति शाही फर्मान द्वारा होती थी तथा उसे पद का अधिचिह्न तथा अनुदेश-पत्र दिया जाता था जिसमें उसकी शक्ति कार्य तथा उसकी जिम्मेदारियाँ दर्ज होती थी। प्रांतके प्रशासनिक कर्मचारियों का प्रमुख होने के नाते वह प्रांत में शांति और व्यवस्था बनाए रखता था। स्थानीय सिविल तथा आसूचना कर्मचारियों के साथ सख्ती का व्यवहार करता था तथा अपने मातहत स्थानीय मुखियों से प्रशंसा भी पाता था। वह स्थानीय जमींदारों पर भी नियंत्रण रखता था और राजनीतिक प्रभाव भी प्राप्त था।

शाही जीवन प्रांतीय दीवान का चयन करता था। यद्यपि वह सुबेदार से नीचे होता था फिर भी स्वतंत्र रूप से काम करता था तथा शाही दीवान का अधीनस्थ होता था। वह प्रांत का राजस्व संभालना था तथा क्रोरी तथा तहसीलदार नियुक्त कर रैयत

को सरकार को समय पर बकाया अदा करने के लिए प्रेरित करता था। दीवान लेखापरीक्षक का भी काम करता था तथा जनता के व्यय पर पूरा नियंत्रण रखता था। उसके कार्यालय में सुपरिटेण्डेंट, मुख्य लेखापाल, खजांची तथा क्लर्क होते थे।

प्रांतीय बख्शी, केन्द्रीय बख्शी के समान ही भूमिका अदा करता था वह सेना के रख-रखाव तथा नियंत्रण के लिए जिम्मेदार होता था तथा सभी अफसरों के वेतन और परिलब्धियों का उनके "मनसब" के अनुसार लेखा-जोखा रखता था।

प्रांतीय स्तर पर "सद्र" या काजी अफसर होते थे। यद्यपि इन दोनों के अधिकार क्षेत्र अलग-अलग होते थे फिर भी कभी-कभी एक ही व्यक्ति दोनों हो सकता था। "सद्र" एक सिविल जज होता था पर वह सारे सिविल मामले नहीं संभालता था। साधारण था। साधारण रूप से काजी सभी दिवानी मामले तथा फौजदारी मामलों को भी संभालना था।

### जिला तथा स्थानीय प्रशासन

सूबा या प्रांत सरकारों में विभाजित था जो दो प्रकार के थे- कुछ तो बादशाह द्वारा नियुक्त अफसरों द्वारा शासित होते थे और कुछ करदाता राजाओं के मातहतों द्वारा। प्रत्येक सरकार का मुख्य प्रशासक "फौजदार" होता था। प्रांतीय गर्वनरों के मातहत होने पर भी वे शाही सरकार से सीधे संपर्क रख सकते थे। नियुक्ति के समय फौजदार को निति तथा आचरण संबंधी हिदायतें दी जाती थीं। वह सैनिक बल का भी प्रभारी होता था और विद्रोहों के दमन तथा अपराधों की छानबीन करता था।

'फौजदार' के अतिरिक्त सरकार का दूसरा अध्यक्ष "अमलगुजार" होता था। वह राजस्व का प्रबंध करता था। इन दोनों के अपने-अपने अलग अधीनस्थ कर्मचारी होते थे।

"कोतवाल" नगर तथा उसके आस-पास के इलाकों पर पुलिस की भांति नियंत्रण रखता

"सरकार" परगनों में विभक्त थी। प्रत्येक "परगने" में एक "शिकदार" एक "आमिल" और एक "काजी" होता था। "शिकदार" मुख्य प्रशासक होता था तथा "फौजदार", "कोतवाल" तथा "सरकार" सभी के काम करता था। शांति, व्यवस्था, दंड, न्याय तथा सामान्य प्रशासन उसके सुपुर्द था। "आमिल" के कर्तव्य "अमलगुजार" जैसे तथा "काजी" के अदालती होते थे।

"परगने" चकलों में विभाजित थे। राजस्व इकट्ठा करने तथा उनकी वसूली आसानी से करने के लिए चकलों का निर्माण हुआ था तथा चकलादार की भांति उनके अपने स्थानीय अफसर होते थे। प्रत्येक कर्मचारी अपने ऊपर के अफसर के प्रति उत्तरदायी होता था।

## राजस्व प्रशासन

### भू-राजस्व: आय का प्रमुख स्रोत

भूराजस्व, परंपरागत रूप से राज्य की आय का प्रमुख स्रोत होने के कारण इसका सूक्ष्म अध्ययन करने की आवश्यकता है। राज्य तथा किसान इस समझौते के दो पक्षकार थे। राज्य को भूमि से प्राप्त पैदावार का एक निश्चित भाग लेने का अधिकार, अति प्राचीन काल से, अर्थव्यवस्था का एक सिद्धांत माना जाता रहा है। प्रत्येक का यह भाग कितना-कितना हो, यह समय-समय पर विवादास्पद रहा है और इसका निर्णय समय-समय पर किया जाता रहा। प्राचीन काल में कानून के दावेदारों ने राज्य का अंश बारहवां, आठवां या चौथाई भी माना था पर लिया छठा भाग जाता था। चौदहवीं शताब्दी में राज्य आधा भाग ले लेता था, अकबर ने इसे घटाकर तिहाई कर दिया था।

### भूमि पट्टेदारी के प्रकार

भारत में तीन प्रकार की पट्टेदारी प्रथा थी। जमींदार प्रथा, सयुंक्त स्वामित्व एवं रैयतवाड़ी। बंगाल में जमींदार प्रथा प्रचलित थी जो अंग्रेजों के समय में मद्रास के कुछ भागों तक फैल गई थी। बिचौलियों के रूप में जमींदार एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे।

## भूमि पट्टेदारी के प्रकार

भूमि पट्टेदारी प्रत्येक स्थान पर भिन्न तथा काफी उलझी हुई थी। इन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता था।

1. स्वामित्वहीन पट्टेदारी में भूमि जोतने वाले किसान पट्टेदार तथा किरायेदारों की हैसियत से काम करते थे। वे विभिन्न शर्तों पर जमीन जोतते थे तथा धन या अनाज के रूप में उन्हें उत्पादन का कुछ भाग मिलता था। यद्यपि सिद्धांतः वे स्वामी द्वारा बदेखल भी किए जा सकते थे परन्तु जब तक वे किराया अदा करते थे। रिवाज के अनुसार उनके किरायेदार होने का अधिकार माना जाता था।
2. एक मिश्रित वर्ग द्वारा श्रेष्ठ स्वामित्व पट्टेदारी धारण की जाती थी। ये लोग पुराने मुखियों, अभिजात वर्ग, मुख्य सेनापति, मध्यस्थों या अधिन्यासियों के प्रतिनिधि या वंशज होते थे। इनमें वंशानुगत अफसर तथा महत्वपूर्ण स्थानीय लोग भी शामिल थे जो राज्य को एक निश्चित भेंट या राजस्व अदा करने के पश्चात् उत्पादन के सरकारी हिस्से के अस्थायी या स्थायी मालिक समझे जाते थे। ये लोग साधारणतया सरकारी भाग का दसवां भाग लेते थे तथा भूमि-सुधार, शांति व्यवस्था तथा न्याय प्रशासन के लिए भी जिम्मेदार होते थे। इन्हीं विभिन्न प्रकार के अधिन्यासियों द्वारा समाज के सामंतवादी ढांचे का गठन होता था। अकसर वे अपनी भूमि दूसरों से भी जुतवाते थे और भूराजस्व कृषि की यह व्यवस्था किसानों के लिए बड़ी उत्पीड़नकारी थी।
3. पहली दोनों पट्टेदारियों के बीच अधीनस्था स्वामित्व पट्टेदारी आती है। सर चार्ल्स मेटकॉफ तथा होल्ट मेकेंजी की छानबीन के पश्चात् ये तथ्य सामने आए थे स्वामित्व वाले समुदाय उत्तर-पश्चिम भागों में अधिक थे और उनके प्रतिरूप पंजाब, बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में भी फैले थे।

चूंकि राज्य की अधिकांश आय भू-राजस्व से प्राप्त होती थी। इसलिए राजस्व के प्रशासन का बहुत महत्व था। उसे वसूल करने की मशीनरी बहुत फैली हुई थी और उसमें छोटे-बड़े कर्मचारियों की अनेक श्रेणियां थी। राजस्व वसूली करने के लिए नौकरशाह अधिकारियों के अतिरिक्त अनेकानेक बिचौलिये होते थे। फलस्वरूप किसान वर्ग का शोषण किया जाता था और उन्हें सताया जाता था। वे नोचखसोट किए जाने के कारण बुरी तरह त्रस्त थे पर उन्हें केवल यह लाभ था कि उन्हें एक हद तक इस बात की सुरक्षा थी कि भुगतान न करने पर भी उन्हें जमीन से बेदखल नहीं किया जा सकता था।

## प्रमुख राजस्व सुधार

अकबर के शासन काल में जब टोडरमल को दीवाने-अशरफ नियुक्त किया गया तब कुछ प्रमुख सुधार हुए। टोडरमल ने राजस्व वसूल करने की एक मानक प्रणाली स्थापित की जिसकी मुख्य विशेषता भूमि की पैमाइश तथा सर्वेक्षण, भूमि का वर्गीकरण तथा दरों का निर्धारण करना था। इसलिए राजस्व व्यवस्था की कुल, मिलाकर सफलता या विफलता, राजा और केंद्रीय प्रशासन के स्तर और स्वरूप पर निर्भर होती थी। अकबर को यह श्रेय प्राप्त है कि उसने अपनी भू-राजस्व व्यवस्था को वैज्ञानिक ढंग से संगठित किया था। वह अठारहवीं शताब्दी तक चलता रहा किन्तु धीरे-धीरे इसका जोर कम होता गया और यह किसानों के हितों के लिए हानिकर बन गया।

## भू-राजस्व की वसूली की पद्धति

साम्राज्य सूबों में, सूबे सरकारों में, तथा सरकारों परगना में विभाजित थी। "अमालगुजार जिले का मुख्य राजस्व समाहर्ता होता था। उसकी सहायता के लिए अनेक अधीनस्थ कर्मचारी होते थे। अन्य अफसर "कानूनगों" राजस्व का लेखा-जोखा रखता था, लेखपाल तथा जिला खजांची थे।

## न्याय प्रशासन

### दीवानी (सिविल) न्याय प्रशासन

मुगल राज्य, मुसलमान राज्य होने के कारण कुरान के नियमों पर आधारित था। मुन्सिफ कुरान के आदेशों, प्रतिष्ठित विधिवेत्ताओं द्वारा दिए गए पहले के फतवों या धार्मिक नियमों/निर्वचनों का अनुपालन करते थे। वे प्रथागत कानून की अवहेलना नहीं करते थे तथा समानता के नियमों का पालन करते थे। बादशाह का निर्वचन तभी माना जाता था कि जबकि यह धार्मिक कानून के खिलाफ न हो।

न्याय प्रधान करने के लिए दो प्रकार के दण्ड थे। मुख्य काजी तथा अधीनस्थ काजी होते थे जो दिवानी तथा फौजीदारी दोनों के लिए इस्लाम के कानून को मानते थे। दूसरा धर्मनिरपेक्ष अफसर "मीर अदल" था, जो दोनों संप्रदायों के उन मामलों का फैसला करता था जिसके लिए दोनों संप्रदायों के कानूनों में कोई विशेष व्यवस्था की गई है बादशाह मूल तथा अपील अधिकार क्षेत्र का सर्वोच्च न्यायालय था।

"मीर अदल" का कार्यालय बड़े शहरों तथा नगरों तक ही सीमित था जहां मिश्रित जनसंख्या तथा उन्नत वाणिज्य के कारण ऐसे मामलों की संख्या बढ़ गई थी जो कुरान के नियमों के अंतर्गत नहीं आते थे। यहां भी बेईमानी तथा सत्ता के दुरुपयोग के अनेक अवसर थे। जहां "मीर अदल" और "काजी" दोनों मौजूद होते थे, वहाँ "मीर अदल" "काजी" पर, जो उसके मातहत कानून अधिकारी (Law Officer) के रूप में काम करता था, सामान्य नियंत्रण अधिकारी माना जाता था।

### **फौजदारी न्याय प्रशासन**

फौजदारी न्याय के लिए मुसलमान तथा गैर-मुसलमान दोनों के लिए कुरान मार्ग दर्शन करता था। मुस्लिम कानून के अनुसार जुर्म तीन प्रकार के होते थे- 1) ईश्वर के प्रति किया गया जुर्म, 2) राजा के प्रति किया गया जुर्म, तथा 3) किसी सामान्य व्यक्ति के प्रति किया गया व्यक्तिगत अपराध। नियम जिनके अंतर्गत जुर्मों की सजा दी जाती थी। वह भी तीन प्रकार के थे- 1) हूदा अथवा कुरान द्वारा निर्धारित की गई सजायें, जिनमें कोड़े मारने तथा मौत की सजा आदि आती थी। 2) "किसास" या प्रतिकार जो मनुष्य के अधिकार के रूप में होती थी, 3) "ताजीर" या जज के द्वारा दी गई सजा, जिसकी कानून के अंतर्गत परिभाषा नहीं दी गई हो। इसके अंतर्गत तिरस्कार, जनसमुदाय के सामने बेईज्जती, देश निकाला, कोड़े मारना आदि आता था।

न्याय के आधुनिक दृष्टिकोण से सजाएँ बड़ी ही सख्त तथा बर्बर थी। कोड़े मारकर जान लेना बहुत आम था।

ध्यान देने योग्य बात है कि पूरी अदालती व्यवस्था कार्यपालक सत्ता (executive authority) के अधीन काम करती थी तथा न्यायालयों का कोई विशेष उल्लेखनीय कार्य क्षेत्र अथवा श्रेणी विभाजन नहीं था। मुगल सत्ता के विघटन तथा साम्राज्य का पतन होने पर न्यायिक संस्थाएं बहुत बुरी तरह प्रभावित हुईं और नियमित कचहरियों के काम मुख्य नगरों तक ही सीमित रह गए यहाँ प्रांतीय गर्वनरों को कुछ हद तक स्वायत्तता प्राप्त रही।



- 11 **धर्म निरपेक्ष-प्रशासन:-** सुल्तान अकबर के समय ही दीन-ए-इलाही धर्म स्थापित किया गया। जिसके सब धर्म की अच्छी बात शामिल की गई। इसके साथ ही राजा टोडरमल, बीरबल आदि हिन्दू विद्वान मुगल-प्रशासन को महत्वपूर्ण पदाधिकारियों में विशेष स्थान व सम्मान रखते थे।

इस प्रकार मुगल प्रशासन का भारतीय प्रशासन पर संरचनात्मक एवं व्यवहारात्मक दोनों प्रकार के अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं विविधता पूर्ण प्रभाव है।

## ब्रिटिश प्रशासन

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था का निष्पक्ष अध्ययन किया जाए तो प्रतीत होगा कि यह अधिकांशतः भारत में ब्रिटिश शासन की विरासत है। भारत में सन् 1858 तक ब्रिटिश प्रशासन मुख्य रूप से ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन रहा। यद्यपि ब्रिटिश सरकार समय-समय पर अधिनियम पास करके हस्तक्षेप करती तथा कम्पनी के शासन पर नियंत्रण रखती थी। सम्राट ने 1858 में कम्पनी को पूर्णतः अपने अधिकार में ले लिया। यद्यपि प्रारंभ में कम्पनी का कार्य विशुद्धतः व्यावसायिक था लेकिन इसने धीरे-धीरे सरकार या शासक निकाय का दर्जा प्राप्त कर लिया।

जब अंग्रेजों ने सन् 1600 से व्यापारिक कार्य शुरू किए, पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसी जैसी विदेशी शक्तियां पहले से ही व्यापार में लगी हुई थी।

इस प्रकार पूर्व के व्यापार पर अधिकार पाने के लिए अंग्रेजों को दूसरी यूरोपीय शक्तियों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी। इसके बाद ही उन्होंने प्रादेशिक आधिपत्य प्राप्त करने की भी चेष्टा की। मुगल साम्राज्य के समाप्त होने और राजाओं और नवाबों के बीच विध्वंसात्मक लड़ाइयों के कारण ऐसा सम्भव हो सका। उदाहरण के लिए कर्नाटक युद्ध के बाद अंग्रेजों ने उत्तरी सरकारों पर कब्जा कर लिया जो इससे पहले फ्रांस के अधिकार में थी। सन् 1757 में प्लासी युद्ध जीतने के बाद और इलाहाबाद की संधि के द्वारा उन्होंने सन् 1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर ली। साथ ही उन्हें इन प्रांतों पर प्रशासन और राजस्व की वसूली का अधिकार भी मिल गया। वस्तुतः सन् 1757 के प्लासी युद्ध और सन् 1857 के सैनिक विद्रोह के बीच, इन सौ वर्षों में अंग्रेजों ने पूरे भारत पर अधिकार कर लिया था और इस प्रकार शीघ्र ही भारत ब्रिटिश राजमुकुट में एक बहुमूल्य हीरे के रूप में सुशोभित हो गया।

सुविधानुसार ब्रिटिश कालीन भारतीय प्रशासन के विकास को निम्नलिखित कालों में आबंटित किया जा सकता है।

### ब्रिटिशकालीन प्रशासन

1. **1600 से 1765 तक - भारत में अंग्रेजों का आगमन:-** भारत में ब्रिटिश शासन का इतिहास काल 1600 ई. से प्रारम्भ होता है। उन दिनों इंग्लैण्ड में भारत की अपार धन सम्पत्ति की चर्चाएँ होती थी। धन प्राप्त करने और समुद्री यात्राओं की उमंग ने अंग्रेजों को भारत की ओर आकृष्ट किया। सन् 1600 में एक राजलेख (चार्टर) द्वारा महारानी एलिजाबेथ ने एक कम्पनी की स्थापना की जो 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' कहलाई। इस राजलेख द्वारा कम्पनी को विदेशों में व्यापार करने की स्वीकृति प्रदान की गई। भारत में मुगल बादशाह जहाँगीर से अनुमति प्राप्त करके ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सूरत में अपना प्रथम व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। शनैः शनैः कम्पनी ने भारत में अन्य व्यापारिक स्थानों पर अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित किये। भारत में अंग्रेज एक व्यापारी के रूप में आए थे। कालान्तर में वे साम्राज्य स्थापित करने की सोचने लगे।

सन् 1725 के राजलेख द्वारा कलकत्ता-बम्बई-मद्रास प्रेसीडेन्सियों के राज्यपाल एवं उनकी परिषद् को कानून बनाने या अधिकार प्रदान किया गया। साथ ही इस राजलेख ने भारत स्थित कम्पनी की सरकार सपरिषद् गवर्नर जनरल को नियम, उपनियम और उध्यादेश पारित करने का अधिकार प्रदान किया। इस समय भारत में मुगल साम्राज्य का द्रुत गति से पतन हो रहा था। उसकी क्षीण होती शक्ति का अंग्रेजों ने फायदा उठाया और 1757 में वे मुगल वंशज के अन्तिम नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हराकर बंगाल प्रान्त के वास्तविक शासक बन गये। प्लासी की जीत से ही वास्तविकता में भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की नींव पड़ी। सन् 1765 में मुगल बादशाह आजम ने कम्पनी

अधिकार दिया गया तथा प्रान्तीय स्वायत्तता की नींव डाली गई। गवर्नर जनरल को विधानसभा में भारतीयों को नामांकित करने की शक्ति प्रदान की गई तथा गवर्नर जनरल की परिषद् में सदस्य संख्या बढ़ाई गई। कुछ सुधारों के बावजूद अधिनियम में अनेक कमियाँ थीं। इस अधिनियम में जहाँ गवर्नर जनरल को असीमित अधिकार प्राप्त हुए थे वहीं दूसरी ओर परिषद् के सदस्यों को कोई विशेष अधिकार नहीं मिले। वे विधेयकों पर प्रश्न तक नहीं पूछ सकते थे। सन् 1885 में सर ए. ओ. ह्यूम द्वारा 'अखिल भारतीय कांग्रेस' का गठन किया गया। जिसका उद्देश्य भारतीयों को प्रशासन तथा विधि-निर्माण में अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाए। स्थिति में सुधार के लिए सन् 1892 में भारतीय अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम द्वारा भारतीय विधान परिषद् में शासकीय सदस्यों का बहुमत रखा गया, लेकिन गैर-सरकारी सदस्य बंगाल चैम्बर ऑफ कामर्स और प्रान्तीय परिषद् द्वारा नाम निर्देशित होने लगे। प्रान्तीय परिषदों के गैर-सरकारी सदस्य, विश्वविद्यालय, जिला बोर्ड, नगरपालिका आदि द्वारा नाम निर्दिष्ट किए जाने लगे। परिषदों को राजस्व और व्यय के वार्षिक बजट पर विचार-विमर्श करने और कार्यपालिका से प्रश्न पूछने पर भी शक्ति प्रदान की गई। इस अधिनियम ने भारत में प्रतिनिधि सरकार की नींव डाली, फिर भी इसमें अनेक कमियाँ थीं। निर्वाचन की पद्धति अन्यायपूर्ण थी तथा निर्वाचित व्यक्ति वास्तव में जनता की प्रतिनिधित्व नहीं करते थे।

नवम्बर 1906 में लॉर्ड कर्जन के स्थान पर लॉर्ड मिंटो को भारत का वायसराय बनाया गया और जॉन मार्ले को भरत का राज्य सचिव नियुक्त किया गया। मार्ले उदारवादी विचारों के थे और भारतीय प्रशासन में सुधारों के समर्थक थे। मिंटो मार्ले के विचारों से सहमत थे। इनके द्वारा किये गए सुधारों को मार्ले-मिंटो सुधार के नाम से जाना जाता है। मार्ले-मिंटो सुधार भारतीय परिषद् अधिनियम, 1909 में लागू किए गये। केन्द्र की विधान परिषदों के आकार में वृद्धि की गई और उसमें कुछ गैर-सरकारी सदस्यों को सम्मिलित किया गया जिससे शासकीय बहुमत समाप्त हो गया। इस अधिनियम द्वारा विधान परिषद् के विचार-विमर्श सम्बन्धी कार्यों में वृद्धि की गई। पहली बार मुस्लिम समुदाय के लिए पथक प्रतिनिधित्व का उपबन्ध किया गया। इसी से भारत में पथकतावाद का बीजारोपण हुआ। मार्ले-मिंटो सुधार उपयोगी था, लेकिन यह भारतीयों की आकाँक्षा को पूर्ण न कर सका।

4. **1919 से 1947 तक - स्वशासन का विकास:-** 1917 में भारत के नये सचिव मॉटेग्यू ने भारत में और अधिक सुधारों का समर्थन किया। इसके लिए मॉटेग्यू ने ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि लॉर्ड चेम्सफोर्ड के साथ भारत का भ्रमण किया और भारत की प्रशासनिक तथा राजनैतिक समस्याओं का अध्ययन किया। 1918 में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जो मॉटफोर्ड योजना के नाम से जानी जाती है। इसमें भावी सुधारों की योजना थी। इस प्रतिवेदन पर आधारित पर आधारित 'गवर्नमेंट ऑफ एक्ट, 1919' पारित किया गया। जो भारत सरकार अधिनियम-1919 के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार थीं-

- (i) प्रान्त में दोहरे शासन को स्थापित करके एक आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गई। प्रशासन के विषयों को दो भागों में बाँटा गया-केन्द्रीय विषय और प्रान्तीय विषय। केन्द्रीय विषयों पर केन्द्र तथा प्रान्तीय विषयों पर प्रान्तीय सरकार कानून बनाती थी। प्रान्तीय विषयों को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया-रक्षित विषय और हस्तान्तरित विषय।
- (ii) केन्द्रीय विधान मण्डल को पहली बार द्वि-सदनीय बनाया गया। उच्च सदन को 'राज्य परिषद्' तथा निम्न सदन को 'विधानसभा' नाम दिया गया। उच्च सदन में 60 सदस्य (उपनिर्वाचित) तथा निम्न सदन में 144 (104 निर्वाचित) थे। स्त्रियों को न तो मताधिकार प्रदान किया गया और न ही परिषद् की सदस्य बनने का अधिकार दिया गया।
- (iii) केन्द्रीय विधान मण्डल की अपेक्षा गवर्नर जनरल का वर्चस्व बनाए रखा गया।
- (iv) केन्द्रीय सरकार ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी थी न कि केन्द्रीय विधान परिषद् के प्रति, लेकिन कुछ सीमा तक प्रान्तीय सरकारों को प्रान्तीय विधान मण्डलों के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। गवर्नर जनरल की परिषद् की सदस्य सीमा समाप्त कर दी गई तथा भारतीय सदस्यों की संख्या 3 कर दी गई। यह कार्यपालिका शक्तियाँ गवर्नर जनरल में निहित थीं।



6. भारत राज्य सचिव का पद समाप्त करके उसके स्थान पर राष्ट्रमण्डल सचिव की नियुक्ति की जायेगी।
7. भारतीय प्रान्तों पर ब्रिटिश प्रभुसत्ता का नियंत्रण समाप्त हो जायेगा।

15 अगस्त, 1947 को इस अधिनियम के प्रभावी होने से भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र बना तथा 26 जनवरी, 1950 को भारत में नया एवं स्वतंत्र संविधान लागू हुआ जिसमें भारत को लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया गया।

### ब्रिटिश काल की भारतीय प्रशासन को विरासत

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था ब्रिटिश शासन की विरासत मानी जाती है क्योंकि सन् 1947 में सत्ता हस्तान्तरण के समय हमने ब्रिटिश प्रशासनिक ढाँचे को यथावत स्वीकार किया था जिसमें बहुत कम संशोधन या परिवर्तन किए गए हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा ब्रिटिश कानूनों से नियंत्रित भारतीय प्रशासन लगभग 200 वर्ष तक निरन्तर विकसित तथा परिवर्तित किया जाता रहा। इस दौरान जो प्रक्रियाएँ या परम्पराएँ विकसित हुईं उनका प्रभाव आज भी भारतीय प्रशासनिक तंत्र पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जो निम्नानुसार है-

1. **भारतीय लोक सेवाएँ:-** ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में प्रशासन संचालित करने के लिए 'इण्डियन सिविल सर्विस', 'इण्डिया पुलिस' तथा अन्य अखिल भारतीय लोक सेवाओं की शुरुआत की गई थी। इन सेवाओं के अधिकारी भारत में कहीं भी नियुक्त किए जा सकते हैं। प्राधिकार की दृष्टि से भी ये अधिकारी अधिक सुदृढ़ हैं। विशेषज्ञ सेवाओं तथा राज्य सेवाओं के अधिकारी इनके अधीन कार्य करते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् भी अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था जारी रखी गई तथा वर्तमान में तीन अखिल भारतीय सेवाएँ, यथा-भारतीय प्रशासनिक सेवा (I.A.S), भारतीय पुलिस सेवा (I.P.S) तथा भारतीय वन सेवा (I.F.S) कार्यरत हैं।

स्टील फ्रेम अर्थात् इस्पात के समान मजबूत कवच के नाम से प्रसिद्ध आई. ए. एस. के अतिरिक्त अन्य लोक सेवाओं का विकास भी ब्रिटिश शासन की देन है। लोक सेवाओं में राजपत्रित (Gazetted) तथा अराजपत्रित का भेद, योग्यता आधारित भर्ती, चार वर्गों में कार्मिकों का वर्गीकरण, वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट, उच्च अधिकारी को अधिक वेतन तथा सुविधाएँ एवं उच्च लोक सेवाओं में शहरी तथा उच्च जातियों को प्रमुखता इत्यादि ब्रिटिश परम्पराओं का परिणाम है। उच्च अधिकारियों की आवासीय कॉलोनी आम जनता के आवासों से दूर 'सिविल लाईन्स' के रूप में बसाने की परम्परा अंग्रेजों द्वारा विकसित की हुई है।

2. **सचिवालय व्यवस्था:-** सचिवालय वह उच्च प्रशासनिक संगठन है जिसमें राजनीतिक मंत्री या सचिव (विभाग का प्रशासनिक अधिकारी) तथा उसके अन्य कार्मिक पदस्थापित रहते हैं। सचिव+आलय अर्थात् सचिवों का घर, नामक यह व्यवस्था संघीय स्तर पर केन्द्रीय सचिवालय तथा राज्यों में राज्य सचिवालय के रूप में प्रवर्तित है। अंग्रेजी शासन काल में विकसित सचिवालय आज भी नीति, कानून तथा कार्यक्रम निर्माण एवं नियंत्रण का महत्वपूर्ण अंग है जो मुख्यतः मंत्रियों को उनके कार्यों में परामर्श देने के लिए बनाया गया है। सचिवालय द्वारा निर्मित निति एवं कानूनों को व्यावहारिक स्तर पर क्रियान्वित करने हेतु अन्य कई प्रकार के कार्यकारी संगठन जैसे- निदेशालय, बोर्ड, आयोग तथा निगम इत्यादि संगठित किए गए हैं।

3. **कठोर नौकरशाही:-** प्रशासनिक कृत्यों की पूर्ति हेतु कानूनों, नियमों तथा प्रक्रियाओं की कठोर कार्यप्रणाली और 'फाईल व्यवस्था' की शुरुआत ब्रिटिशकाल में हुई। चूँकि अंग्रेज अधिकारी आम भारतीय को झूठा, गँवार तथा जटिल व्यक्ति कहकर प्रताड़ित करते थे अतः प्रत्येक प्रशासनिक कार्य में लम्बे चौड़े फार्म, शपथपत्र, चरित्र प्रमाणपत्र, राजपत्रित अधिकारी (Gazetted Officer) से प्रमाण पत्र लेने इत्यादि की प्रक्रियाएँ निर्धारित की गई थी जो आज भी भारतीय लोक प्रशासन में यथावत जारी हैं।

लोक सेवकों में जनता से श्रेष्ठ, पथक् तथा स्वामी समझने की प्रवृत्ति अंग्रेजी प्रशासन का परिणाम कही जाती है। स्वतंत्र भारत में इस गुलाम मानसिकता के अतिरिक्त नौकरशाही में अन्य कई दोष विद्यमान हैं। 'साहब संस्कृति' तथा 'बाबूराज' की शुरुआत भी ब्रिटिश प्रशासन की ही देन है जो आज सम्पूर्ण भारतीय प्रशासन की विशिष्ट पहचान बन चुकी है।

9. **पुलिस प्रशासन:-** अंग्रेजों द्वारा भारत पर शासन के दो मुख्य उद्देश्य थे। प्रथमतः भारत में राजस्व एवं कच्चा माल संग्रहित कर इंग्लैण्ड भेजना तथा दूसरा भारत पर शासन करने के लिए शांति-व्यवस्था बनाए रखना। अतः 1808 में पुलिस अधीक्षक का पद सजित किया गया। सन् 1860 के पुलिस आयोग की अनुशंसा पर 'पुलिस अधिनियम 1861' पारित हुआ। सेना एवं पुलिस के कार्यों को पथक् करते हुए पुलिस अधीक्षक को जिला कलक्टर के अधीन पदस्थापित कर पुलिस महानिरीक्षक (I.G.P) का उच्च पद सजित किया गया। वर्तमान भारतीय पुलिस तंत्र, कार्यप्रणाली तथा संगठनात्मक व्यवस्था इसी अधिनियम पर आधारित है जो न्याय प्रशासन से भी जुड़ा हुआ है।
10. **वित्त प्रशासन:-** आय तथा व्यय के वार्षिक लेखे जोखे को बजट कहा जाता है। भारत में बजट या वित्तीय वर्ष की अवधि 1 अप्रैल से 31 मार्च तक निश्चित की जाती है। बजट निर्माण की प्रक्रिया, सरकारी लेखों का संधारण, बजट की स्वीकृति तथा निष्पादन एवं अंकेक्षण की प्रक्रियाएँ ब्रिटिश परम्पराओं पर आधारित है। सन् 1833 के अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को प्रान्तों की लोक सेवाओं के पदों, वेतन, भत्तों इत्यादि की स्वीकृति के लिए अधिकृत किया गया था, साथ ही प्रान्तों द्वारा एकत्र राजस्व भी संघ सरकार की निधि होता था। लॉर्ड मेयो द्वारा सन् 1870 में जेल, पुलिस, चिकित्सा, मुद्रण तथा पंजीकरण इत्यादि कार्यों हेतु प्रान्तों को उनके द्वारा एकत्रित राजस्व को उपभोग में लाने तथा केन्द्रीय अनुदान देने की व्यवस्था शुरू की गई। इसी प्रकार सन् 1877 में स्ट्रेचे योजना के अन्तर्गत भूमिकर, चुंगी, स्टाम्प एवं स्टेशनरी इत्यादि प्रान्तों के पूर्ण अधिकार में हो गई। सन् 1882 में समस्त राजस्व का केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा विभाजित तीन भागों में विभक्त किया गया। कालान्तर में सन् 1935 के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों को स्वयत्तता प्राप्त हुई। सन् 1919 में राष्ट्रीय स्तर पर ऑडीटर जनरल तथा प्रान्तों में महालेखाकार पद सजित किए ताकि वित्तीय लेखों पर नियंत्रण रखा जा सके।
11. **स्वशासन:-** भारत में संघीय तथा प्रान्तीय शासन व्यवस्था के अतिरिक्त स्थानीय स्वशासन अर्थात् नगरपालिकाओं तथा ग्राम पंचायतों द्वारा शासन संचालित करने का भी प्रावधान है। स्थानीय शासन की महत्ता को समझते हुए ब्रिटिश शासकों ने सन् 1864 में बम्बई तथा मद्रास प्रेसीडेन्सियों में पंचायतों को न्याय पंचायत का वैधानिक अधिकार प्रदान किया। 12 मई, 1882 को लॉर्ड रिपन जो भारत में स्थानीय स्वशासन के जनक मान जाते हैं, ने ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं में निर्वाचित प्रतिनिधियों की व्यवस्था की। सन् 1909 के 'विकेन्द्रीयकरण आयोग' ने ग्राम, तहसील तथा जिला स्तर पर त्रिस्तरीय स्थानीय शासन की अनुशंसा की थी। सन् 1919 के अधिनियम के द्वारा स्थानीय शासन प्रान्तीय सरकारों का कार्यक्षेत्र कर दिया गया। यद्यपि प्रथम नगर निगम सन् 1687 में मद्रास में तथा इसके पश्चात् सन् 1726 में कलकत्ता एवं बम्बई में स्थापित हो गए थे तथापि अन्य नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना लॉर्ड रिपन की नीति के पश्चात् शुरू हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् 2 अक्टूबर, 1959 से भारत में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन के त्रिस्तरीय ढाँचे की शुरुआत हुई जिसे 1992-93 में संवैधानिक स्तर प्रदान कर दिया गया है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण की पर्याय ये संस्थाएँ आधुनिक भारत के विकास के महत्वपूर्ण अंग हैं।

इसके अतिरिक्त न्याय प्रशासन में दीवानी एवं फौजदारी मामलों का पथक्करण, सर्वोच्च, उच्च, जिला तथा अधीनस्थ न्यायालयों की व्यवस्था पर भी ब्रिटिश शासन की छाप है जो भारत में आज भी विद्यमान है।

इस संदर्भ में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि भारतीय प्रशासन के विकास का इतिहास उसकी वर्तमान संरचना एवं प्रशासनिक कार्यविधि पर एक निर्णायक प्रभाव छोड़ सका है। ये प्रशासनिक विरासतें भारतीय प्रशासनिक यथार्थ से इस प्रकार जुड़ी हैं कि उन्हें वर्तमान भारतीय प्रशासन से पथक् नहीं किया जा सकता। शताब्दियों के अन्तराल में भारतीय प्रशासकों की आदत का अन्तर बन जाने के कारण ये विरासतें प्रभावी हैं और प्रशासन को निरन्तरता देती हैं। आज भी ब्रिटिश प्रशासनिक प्रभाव को भारतीय प्रशासन के विविध आयामों में देखा जा सकता है। भारतीय प्रशासन के जिन क्षेत्रों में यह प्रभाव देखने को मिलता है उनमें से प्रमुख हैं- सचिवालय-व्यवस्था, जिला एवं क्षेत्रीय प्रशासन, लोक-सेवाएँ, कार्य-प्रक्रिया, संसदीय प्रणाली, न्याय-प्रणाली, स्थानीय स्वशासन आदि।

निश्चय ही भारतीय प्रशासन पर ब्रिटिश काल की छाप घटित है जो समय के साथ धुंधली तो हो सकती है लेकिन पूर्ण रूपेण समाप्त होने की संभावना न के बराबर हैं

भारतीय प्रशासन पर मुगलों एवं अंग्रेजों का प्रभाव

राष्ट्रीय न्यायिक आयोग का गठन।

केन्द्र-राज्य सम्बन्ध सुधारने हेतु प्रयास।

लोकपाल विधेयक पारित करना।

दिल्ली को राज्य का दर्जा देना।

उत्तरांचल, वनांचल व छत्तीसगढ़ नये राज्य बनाये जायेंगे।

राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद का गठन किया जायेगा।

परमाणु नीति की पुनर्समीक्षा।

विश्व व्यापार में देश के हितों की सुरक्षा।

## भारतीय प्रशासन में सुधार

महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण।

महिलाओं को महाविद्यालय स्तर तक निःशुल्क शिक्षा।

महिलाओं और पुरुषों को समान कार्य के लिए समान वेतन।

नवीन राष्ट्रीय पर्यावरण नीति की घोषणा।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार।

पाँच वर्ष में हर गाँव में पेयजल की व्यवस्था।

महँगाई पर नियन्त्रण के लिए जरूरी कानून।

शिक्षा में गुणात्मक विकास करना।

राष्ट्रीय आवास नीति: हर वर्ष 20 लाख घर।

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण सेना निर्माण बनाने का प्रयास।

बच्चों के विषय में राष्ट्रीय घोषणा पत्र।

बाल श्रमिक प्रथा समाप्त करने के उपाय।

मूल प्रसार भारतीय विधेयक में सुधार होगा।

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं का आधुनिकीकरण तेज होगा।

उपरोक्त प्राथमिकताओं को यदि वास्तव अनिवार्यताओं में बदला जाए तो भारतीय प्रशासन भारतीय समाज की अधिकांश समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हो सकता है।

## अध्याय-3

# भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ

## (Features of Indian Administration)

विकास के संदर्भ में विश्व के देशों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं, विकसित एवं विकासशील। निःसंदेह भारत विकास की प्रक्रिया में अग्रसर हैं परन्तु विकसित देशों की श्रेणी में शामिल होने के लिए सतत् एवं गहन प्रयास की आवश्यकता है और इस प्रयास में प्रशासन की भूमिका सर्वोपरि है। अतः भारतीय प्रशासन के अध्ययन में प्रशासनिक विशेषताओं का अध्ययन अहं है क्योंकि किसी प्रशासनिक व्यवस्था की विशेषताएं उसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू है, इसी के माध्यम से हम उस समाज के प्रशासन प्रकृति, शासन-व्यवस्था, सामाजिक-परिवेश, साहित्य, कला संस्कृति, नैतिकता के नियम, जन-कल्याण के साथ-साथ प्रशासन की कार्य-पद्धति एवं मुख्य उद्देश्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान भारतीय प्रशासन का निर्माण भूतकाल के अवशेषों पर हुआ हो जो कि सिंधु घाटी की सभ्यता से लेकर मौर्य, गुप्त, राजपूत, सल्तनत, मुगल प्रशासन से होते हुए ब्रिटिश काल तक फैला हुआ है। जिस प्रकार प्राणी शरीर से कुछ विशेषताएं जन्म में विरासत रूप में मिलती हैं तथा कुछ बाद में अर्जित की जाती है उसी प्रकार भारतीय प्रशासन में भी कुछ विशेषताएं विरासत की देन हैं और कुछ समय के साथ अर्जित की गई हैं। स्वतन्त्रता के समय भारतीय प्रशासन के समझ अनेक चुनौतियां थी जैसे कमजोर अर्थव्यवस्था, सामाजिक अव्यवस्था और एक तरह से प्रशासनिक कार्य-अक्षमता, इत्यादि प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था एक विशेष राजनीतिक ढांचे में कार्य करती है और प्रत्येक राजनीतिक ढांचा दूसरे से भिन्न होता है। जैसे संसदीय एवं अध्यक्षीय। भारत में स्वतन्त्रता के समय इसके राजनीतिक ढांचे एवं प्रशासनिक व्यवस्था में सही संतुलन का अभाव था। अतः उपरोक्त समस्याओं के समाधान के लिए और भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था एवं राजनीतिक ढांचे में संतुलन के लिए भारतीय प्रशासन को लोकतंत्रीय विकासशील एवं उत्तरदायी बताया गया।

जैसा कि एस. आर. माहेश्वरी का विचार है कि भारतीय प्रशासनिक विशेषताओं की सही संख्या की गणना सरल नहीं है क्योंकि यह अभी पूर्ण रूप से विकसित न होकर विकास की प्रक्रिया में है (भारत को स्वतंत्र हुए केवल 56 वर्ष हुए हैं) परन्तु कुछ विशेषताएं जो स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं :-

- केन्द्रीय प्रशासन की प्रांतों के साथ कार्य क्षेत्र में हिस्सेदारी में अरुचि, विचारधारा एवं योजना निर्माण एवं क्रियान्वन में असंतुलन एवं मूल्यांकन का अभाव,
- पदसोपान, पदस्थिति एवं वेतन की प्रधानता,
- विदेशी विशेषज्ञों में विश्वास,
- करनी की अपेक्षा कथनी में विश्वास,
- समर्पित नौकरशाही का अभाव,
- व हद प्रशासन तंग,
- प्रशासनिक सुधारों का दिखावा,
- प्रशासन के भ्रष्टाचार।

फैरल हँडी ने विकासशील देशों के प्रशासक की कुछ विशेषताएं बताई हैं। जो निःसंदेह भारतीय प्रशासन में भी विद्यमान हैं जैसे

- 1, विकासोन्मुख उद्देश्यों को प्रमुखता
- 2, सामाजिक विखण्डन, आर्थिक पिछड़ापन एवं राजनीतिक अस्थिरता
- 3, निर्वाचित प्रतिनिधियों के विचारों में भारी अन्तर (आधुनिक एवं परम्परागत के आधार पर)
- 4, अप्रशिक्षिता एवं अकुशल नौकरशाही
- 5, पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों की प्राप्ति के अनुमानों तथा कार्य निष्पादन में भारी अन्तराल

पॉल एच. एप्पलबी ने भारतीय प्रशासन में एकता एवं विघटन के तत्त्वों पर प्रकाश डाला है। जैसे संवैधानिक लचीलापन, केन्द्र एवं राज्यों से संबंधित विवादों में केन्द्र की प्रमुखता, राज विधान पालिका कानून का केन्द्रीय कानून से विवाद की स्थिति में केन्द्र की निषेधाधिकार, आपातकाल में केन्द्र की प्रधानता आयकर व कष्टम ड्यूटी में केन्द्र की प्रधानता, ग्रांट एवं ऋण पर केन्द्र की प्रधानता, केन्द्र व राज्यों की सांझी लोकसेवा, केन्द्र द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति, प्रधानमंत्री में निहित राष्ट्रीय नेतृत्व।

इसके अतिरिक्त भी अनेक विद्वानों भारतीय विशेषताओं का अध्ययन किया है जैसे के. अरोरा, सुरेन्द्र कटारिया, हरिश्चन्द्र शर्मा, पी. डी. शर्मा आदि। जिसके अनुसार भारतीय प्रशासन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

**भूतकाल की विरासत-** भारतीय प्रशासन का आधुनिक रूप चाहे मुख्यतः ब्रिटिश उपनिवेशीय शासन (Colonial Rule) की देन है, परन्तु वास्तव में यह एक लम्बे ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। वर्तमान भारतीय शासन काफी सीमा तक अपने प्राचीन तथा मध्यकालीन रूप से प्रभावित तथा एक क्रमिक विकास का परिणाम है। चूँकि भारत में सत्ता का हस्तान्तरण ब्रिटिश हाथों से भारत एवं पाकिस्तान नामक दो राष्ट्रों को किया गया था अतः स्वाभाविक रूप से पूर्ववर्ती विशेषताएँ आज भी दृश्य हैं। जिस प्रकार मुगलकालीन फारसी भाषा का आज भी राजस्व तथा न्याय प्रशासन में प्रभाव दिखाई पड़ता है उसी प्रकार अंग्रेजों द्वारा विकसित कानून, नियम, प्रक्रियाएँ भारतीय लोक प्रशासन में परिलक्षित होती हैं। अखिल भारतीय एवं अन्य लोक सेवाएँ, सचिवालयी व्यवस्थाएँ, नौकरशाही की कठोर कार्यप्रणाली, संघीय व्यवस्था एवं राष्ट्रीय एकता, प्रशासनिक अनामता तथा गोपनीयता, कमेटी प्रणाली, जिला प्रशासन, राजस्व प्रशासन, पुलिस प्रशासन, वित्तीय प्रशासन तथा स्थानीय प्रशासन इत्यादि ब्रिटिश शासन के मुख्य प्रभाव हैं जो आज भी भारतीय प्रशासन में दिखाई देते हैं।

### प्रशासन में सघात्मक एवं एकात्मक तत्त्वों का मिश्रण एवं केन्द्रीय करण की प्रवृत्ति

भारत के संविधान के अनुच्छेद-1 के अनुसार 'भारत, राज्यों का एक संघ है।' अतः संघीय स्तर पर केन्द्र (भारत) सरकार तथा राज्यों में प्रान्तीय सरकारें कार्य करती हैं। संविधान की सातवीं अनुसूची (अनुच्छेद-246) में शासन के कार्यों को संघीय, प्रान्तीय तथा समवर्ती सूचियों में विभक्त किया गया है। अतः आवंटित कार्यों के अनुसार लोक प्रशासन का संगठन तथा कार्यकरण निर्धारित किया हुआ है। रेलवे डाक-तार, दूरसंचार तथा विदेश नीति इत्यादि केन्द्र सरकार के कार्यक्षेत्र में हैं जबकि पुलिस, सिंचाई, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन इत्यादि राज्य सरकारों के अधीन हैं। यही कारण है कि भारत के प्रत्येक प्रांत में राज्य प्रशासन पूर्णतया एक समान नहीं है। राज्यों में अपनी लोक सेवाएँ तथा प्रशासनिक संस्थाएँ कार्यरत हैं जो राज्य विधानमंडलों द्वारा पारित अधिनियमों के अनुसार कार्य करती हैं।

परन्तु सघात्मक विशेषताओं के साथ केन्द्रीयकरण भी विद्यमान है। जैसे राज्यपालों की राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति, पदमुक्ति, केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों का दिशा-निर्देश, अनुच्छेद 352, 356, 360 के आदि ने राष्ट्रपति भी संकटकालीन शक्तियाँ, केन्द्र द्वारा राज्यों के विवादों का निपटारा, अखिल भारतीय सेवाओं पर केन्द्र का नियंत्रण, राष्ट्रपति द्वारा विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियाँ आदि, भारत में केन्द्र चूँकि बहुत शक्तिशाली है, इसलिए अधिकांश महत्वपूर्ण निर्णय दिल्ली में किए जाते हैं। निचले स्तर पर बैठे अधिकारी भी फ़ैसले स्वयं न करके मामला उच्चस्तरीय अधिकारियों के पास भेज देते हैं। वहां से ये मामले और ऊंचे अधिकारियों और अन्त में केन्द्र तक पहुंच जाते हैं। इस प्रक्रिया में इतना समय लग जाता है कि कभी-कभी तो निर्णय तब लिए जाते हैं जब बाढ़ का पानी सूख जाए या फसल चौपट हो जाए या जिसे राहत दी जानी है वह स्वर्ग सिंघार जाए।

**उदार एवं धर्म निरपेक्ष प्रशासन-** भारतीय प्रशासन धर्म-निरपेक्ष तथा उदारता के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसका मुख्य कारण यह है कि धर्म-निरपेक्षता के सिद्धान्तों को भारतीय संविधान द्वारा स्वीकार किया गया है जिससे अभिप्राय यह है कि

भारतीय सरकार का अपना कोई भी धर्म नहीं है, और न ही शासन का संचालन करते समय धर्म, जाति आदि के आधार पर किसी प्रकार का मतभेद ही किया जा सकता है। प्रशासन की दृष्टि में सभी धर्म समान हैं और सभी धर्मों की रक्षा करने की जिम्मेदारी प्रशासन पर है। प्रशासकीय दृष्टि से देश के सभी धर्म समान हैं और शासन का संचालन करते समय, सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति करते समय या समाज कल्याण सम्बन्धी योजनाओं को लागू करते समय किसी धर्म के लोगों को प्राथमिकता नहीं दी जाती। यद्यपि संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलों को सरकारी सेवाओं तथा विधानमण्डलों में विशेष प्रतिनिधित्व तथा दूसरी सुविधाएं दिए जाने की व्यवस्था की गई है तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि यह धर्म-निरपेक्षता के सिद्धान्तों के विपरीत है। ये सुविधाएं केवल अल्पकाल के लिए दी गई हैं तथा इनका उद्देश्य उन लोगों को दूसरे वर्गों के लोगों के समान करना है।

### लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी प्रशासन

आधुनिक विश्व में लोकतंत्र तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणाएँ सर्वत्र न्यूनाधिक मात्रा में व्याप्त हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में जनता जनार्दन के हाथों में सत्ताधीशों का चयन तथा नियंत्रण की प्रणाली विकसित की गई है। भारत में संसदीय लोकतंत्र की अवधारणा को अपनाया गया है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि न केवल विधायिका में कानून निर्मित करते हैं बल्कि कार्यपालिका में मंत्री के रूप में लोक प्रशासन का नेतृत्व भी करते हैं। प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए नगरों में नगरपालिकाएँ इत्यादि तथा गाँवों में पंचायती राज संस्थाओं का प्रवर्तन है। प्रजातांत्रिक समाजवाद के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शांतिपूर्ण न्यायपूर्ण तथा राज्यप्रभावी कदमों को प्रश्रय प्रदान किया गया है। वर्तमान प्रशासन को यह दायित्व दिया गया है कि वह देश में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार तथा संरक्षण में अपना योगदान प्रदान करे। आज के युग में राज्य को एक बुराई के रूप में नहीं बल्कि अनिवार्यता के रूप में देखा जाता है। यही कारण है कि आम व्यक्ति की समस्त मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रशासनिक संगठन कार्यरत हैं। कहा जाता है कि आज का लोक प्रशासन जन्म से पूर्व (गर्भवती माता का टीकाकरण) से लेकर मृत्यु के उपरांत (बीमा, सम्पत्ति निपटारा) तक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास एवं कल्याण हेतु कार्य करता है। भारतीय लोक प्रशासन भी भोजन, वस्त्र तथा आवास जैसी मूलभूत (न्यूनतम) आवश्यकताओं सहित शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, परिवहन, संचार, पेयजल, रोजगार तथा न्याय इत्यादि सेवाओं की व्यवस्था एवं संचालन करता है। राज्य के कल्याणकारी दायित्वों में हो रही आशातीत वृद्धि के कारण ही प्रशासनिक संगठनों एवं कार्यों का विस्तार हुआ है। संवैधानिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पिछड़े वर्गों को लोक सेवाओं में आरक्षण प्रदान किया गया है।

### पद सोपानीय प्रशासन

भारतीय प्रशासन पदसोपान के सिद्धान्त पर संगठित है। जैसे - संघीय, राज्य, जिला तथा स्थानीय प्रशासन-जिनका आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्थानीय प्रशासन पर जिला प्रशासन, जिला प्रशासन पर राज्य सरकार तथा राज्य सरकार पर संघीय सरकार का नियन्त्रण होता है। इसके साथ सभी स्तरों पर विभागीय प्रशासन भी पदसोपान के नियमों के अनुसार चलाया जाता है। प्रत्येक विभाग, को डिवीजनों में, और प्रत्येक डिवीजन को शाखाओं में, तथा प्रत्येक शाखा को सैक्शनों में एवं प्रत्येक सैक्शन को उप-सैक्शनों (Sub-Sections) में विभाजित किया गया है। उच्च पद के अधिकारियों के कर्मचारियों को पथक्-पथक् पद प्रदान किए गए हैं। उच्च पद के अधिकारियों को नियमानुकूल आज्ञाएं एवं आदेश प्रदान करने की सत्ता प्राप्त है और निम्न श्रेणियों के कर्मचारी अथवा अधीनस्थ कर्मचारी उच्च पद पर आसीन पदाधिकारियों की आज्ञाओं का पालन करते हैं। देश का समस्त प्रशासन ऊपर से नीचे की ओर चलता है और इसी प्रकार शक्ति का वितरण भी किया गया है।

### सिद्धान्त एवं व्यवहार में अन्तर

भारतीय प्रशासन सैद्धान्तिक एवं व्यवहारात्मक रूप में अन्तर जाया जाता है। संविधान अनुसार राष्ट्रपति देश का मुख्य कार्यपालक है, देश का शासन उसके नाम पर चलाया जाता है। उच्च पदाधिकारियों को नियुक्त करता है, राष्ट्रीय नीति को निर्माण करती है तथा इसे लागू करता है, परन्तु व्यवहार में संसदीय प्रणाली को अपनाए जाने के कारण राष्ट्रपति की स्थिति भिन्न है। वह केवल एक संवैधानिक मुखिया है तथा अपनी शक्ति का प्रयोग स्वयं नहीं करता। संविधान की धारा 74 (1) के अनुसार उसकी सहायता तथा परामर्श के लिए मन्त्रिपरिषद् की व्यवस्था की गई है जो देश की वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करती है। मन्त्रिपरिषद् द्वारा दिए गए परामर्श को राष्ट्रपति अस्वीकार नहीं कर सकता। सभी उच्च पदाधिकारियों

की नियुक्ति मन्त्रिमंडल द्वारा की जाती है तथा राष्ट्रपति की केवल औपचारिक अनुमति ही ली जाती है। मन्त्रिपरिषद् ही राष्ट्रीय नीति का निर्माण करती है, संसद् द्वारा स्वीकृत किए जाने के पश्चात् इसे कार्यान्वित करती है तथा संसद् के प्रति उत्तरदायी होती है। उत्तरदायी प्रशासन:- प्रशासकीय कुशलता उत्तरदायी प्रशासन बिना असंभव है।

भारत में प्रशासनिक कृत्यों को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने के लिए कार्मिकों को पर्याप्त प्राधिकार या शक्तियाँ प्रदान की गई हैं किन्तु ये प्राधिकार अनन्य नहीं हैं बल्कि उत्तरदायित्व भी निश्चित किए गए हैं। लोक प्रशासन में निम्नतम स्तर पर कार्यरत कार्मिक से लेकर मंत्री महोदय तक सभी को संविधान, जनता, कानून तथा व्यवस्था के प्रति जवाबदेह (Accountable) बनाया गया है क्योंकि विधि का शासन व्यक्ति के बजाए कानून को सर्वोच्चता प्रदान करता है। लोक प्रशासन का उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने के लिए संसदीय, कार्यपालिका तथा न्यायिक नियंत्रण की अनेक प्रणालियाँ प्रभावी हैं। स्वतंत्र न्यायपालिका के द्वारा प्रशासनिक उत्तरदायित्व नियंत्रण को अधिक प्रभावी बनाया गया है।

### विशिष्टीकरण

हमारे प्रशासन की एक और नवीनता यह है कि केन्द्र तथा राज्य स्तर पर प्रशासन का बहुत सा भाग विशिष्टीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है और दिन-प्रतिदिन इसी आधार पर मन्त्रालयों अथवा विभागों का निर्माण किया जा रहा है और सरकारी सेवाओं में तकनीकी कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि हो रही है। जैसे केन्द्रीय सरकार में 1947 की तुलना में जब केवल 17 मन्त्रालय थे अब लगभग 40 मन्त्रालय और विभाग हैं। इनके अतिरिक्त सरकार के संगठन के अन्तर्गत अनेकों विशिष्ट तकनीकी, औद्योगिक एवं व्यावसायिक संस्थाओं की स्थापना की गई है जो स्टाफ इकाईयों की भान्ति सामान्य प्रशासन की इकाईयों की सहायता करती है।

### राजनीतिक तटस्थता

भारत में लोक प्रशासन राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ है। प्रशासन-तन्त्र के सदस्य सरकार की नीतियों को बिना किसी दलील आसक्ति या स्वयं के आग्रह के, पूर्ण निष्ठा से क्रियान्वित करते हैं तथा सरकार की नीतियों के पालन में उनकी निष्ठा पर सरकार के परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रशासन की यह राजनीतिक तटस्थता वस्तुतः भारत की संवैधानिक व्यवस्था द्वारा ही निर्धारित की गई है।

### सैनिक एवं असैनिक सेवाओं के लिए पथक प्रशासनिक व्यवस्थाएं

कार्य सकुशल शासन संचालन के लिए भारत में सैनिक एवं असैनिक प्रशासन की अलग-अलग व्यवस्था की गई है। सैनिक प्रशासन का उद्देश्य युद्ध बाहरी आक्रमण तथा आंतरिक गड़बड़ी से है, इसमें जल, थल, वायु सेना के नीति निर्णयों और प्रशासनिक पहलू जैसे भर्ती पदोन्नति नियुक्ति स्थानांतरण, आचार संहिता तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही शामिल है जो असैनिक प्रशासन से भिन्न है जिसका मुख्य उद्देश्य जन-सेवा, कानून व व्यवस्था, दैनिक कार्य संचालन तथा सरकार की सहायता करना आदि है। इन सेवाओं की आचार संहिता एवं अनुशासनात्मक कार्यवाही के साथ-साथ भर्ती पदोन्नति स्थानांतरण एवं सेवा निवृत्ति नियम भी अलग हैं।

### प्रशासकीय एकरूपता

भारतीय प्रशासन में सभी स्तरों पर एकरूपता पाई जाती है। केन्द्र तथा राज्य के स्तरों पर संसदीय सरकार का निर्माण किया गया है। जिस प्रकार केन्द्रीय स्तर पर कार्यपालिका की शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित हैं उसी प्रकार राज्य के स्तर पर राज्यपाल कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है। राष्ट्रपति और राज्यपाल दोनों ही संवैधानिक मुखिया के रूप में कार्य करते हैं और उनके परामर्श के लिए मन्त्रिपरिषदों की व्यवस्था की गई है। संसद की भांति राज्य विधानमण्डल और सर्वोच्च न्यायालय की भांति उच्च न्यायालय की स्थापना की गई है। सभी राज्यों का प्रशासकीय ढांचा समान है और उनके उच्च पदों पर अखिल भारतीय सेवाओं के पदाधिकारी काम करते हैं। राज्य असैनिक सेवाओं की नियुक्ति के लिए प्रत्येक राज्य में केन्द्र की भांति लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई है। सभी राज्यों का जिलों में विभाजन किया गया है तथा समस्त देश में जिला के स्तर पर लगभग एक जैसा प्रशासकीय संगठन है। जिले का मुख्य अधिकारी जिलाधीश होता है चाहे उसे भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। स्थानीय स्वशासन के स्तर पर नगरीय क्षेत्र में म्युनिसिपल प्रशासन तथा ग्रामीण क्षेत्र

में पंचायती राज की स्थापना की गई है। सारे देश में समान कानूनी व्यवस्था की गई है जिसके अनुसार शासन संचालित होता है।

### विधि पर आधारित प्रशासन

वर्तमान भारतीय लोक प्रशासन राजशाही, तानाशाही या चमत्कारिक सत्ताओं पर आधारित नहीं है बल्कि संविधान के प्रावधानों के अनुसार संचालित है। राष्ट्र के समस्त नागरिकों की भावनाओं तथा इच्छाओं का पर्याय संविधान, प्रशासन तंत्र को वैध तार्किक सत्ता प्रदान करता है। संविधान के अनुसार भारत में 'विधि का शासन' है अर्थात् कानून से बढ़कर कोई नहीं है। पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के अनुसार-"कानून, राजाओं का राजा है।" अतः भारतीय लोक प्रशासन के प्रत्येक कृत्य या गतिविधि का मुख्य आधार वे कानून होते हैं जो जनकल्याण, विकास, सुरक्षा, समानता तथा न्याय के मूलभूत सिद्धान्तों एवं लक्ष्यों की पूर्ति हेतु बनाए जाते हैं। राज्य के समस्त कार्यों की पूर्ति का दायित्व आज के प्रशासन के कंधों पर है अतः भारत को प्रशासकीय राज्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

### गतिशील एवं परिवर्तनशील प्रशासन

भारत का प्रशासन प्रगतिशील, गतिशील (dynamic) एवं परिवर्तनशील गुणों से युक्त है। मौर्य काल और गुप्त काल में जो प्रशासन था उसमें मुगल शासकों ने समयानुकूल परिवर्तन किए। ब्रिटिश काल का प्रशासन मन, अनुशासन, दक्षता और शोषण की विशेषताओं से युक्त था। स्वतन्त्रता के बाद संसदीय प्रजातन्त्र की परम्पराओं के अनुरूप प्रशासन के संगठन और मूल्यों से व्यपक परिवर्तन आए। अब लोक प्रशासन से जनता के स्वामी के बजाय जनसेवक की भूमिका की आशा की जाती है। संसद, न्यायपालिका, समाचार-पत्र और यहां तक कि राजनीतिक दलों के माध्यम से भारतीय प्रशासन जनता के सीधे नियन्त्रण का विषय बन गया है।

### स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष चयन प्रणाली

भारत में प्रशासनिक अधिकारियों के चयन का आधार केवल योग्यता को ही माना गया है तथा इस योग्यता के समुचित मूल्यांकन व परीक्षण हेतु निश्चित प्रणाली की व्यवस्था की जाती है। प्रशासनिक सेवा में भर्ती हेतु भारत में योग्यता व उपयुक्तता के अतिरिक्त अन्य कोई आधार (Consideration) विधिवत मान्य नहीं है, इसके अतिरिक्त प्रशासनिक सेवाओं में भर्ती हेतु सर्वसाधारण के लिए खुली चयन व्यवस्था को अपनाया गया है। फलतः प्रशासन पर विशिष्ट वर्गों का एकाधिकार समाप्त हो गया है और इसमें जन-साधारण का प्रतिनिधित्व बढ़ता जा रहा है। प्रशासन के प्रजातान्त्रिक स्वरूप व चयन में योग्यता के निष्पक्ष आकलन की इन विशेषताओं को संविधान ने स्पष्टतः निर्धारित किया है। अब सरकारी सेवाओं में भर्ती के लिए लिंग, धर्म, जाति और नस्ल के भेदभाव को समाप्त कर दिया गया है।

### विकासोन्मुख प्रशासन

जहाँ ब्रिटिशकालीन प्रशासन नियामकीय प्रकृति का था, वहीं आज का भारतीय प्रशासन विकासोन्मुख (Development Oriented) है। कल्याणकारी राज्य के दायित्वों तथा लक्ष्यों की पूर्ति हेतु अनेक प्रकार के विकास कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं। भारत में सामाजिक-आर्थिक विकास को द्रुत गति प्रदान करने के लिए आर्थिक नियोजन की प्रणाली अपनाई गई है जिसके अन्तर्गत संघीय स्तर पर कार्यरत योजना आयोग, पंचवर्षीय विकास योजनाएँ निरूपित करता है जिन्हें राज्य स्तरीय प्रशासनिक संस्थाएँ व्यावहारिक रूप में क्रियान्वित करती हैं। प्रशासन द्वारा एकत्र करों का उपयोग मुख्यतः विकास कार्यों में ही होता है।

### समन्वित प्रशासनिक व्यवस्था

भारतीय संघात्मक व्यवस्था में एकात्मक तत्वों के समावेश ने भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था के समन्वित स्वरूप को निर्धारित किया है। संघीय सिद्धान्त के प्रतिकूल भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच सम्मिलित सेवाओं की व्यवस्था है जिसे "अखिल भारतीय सेवाएँ" कहते हैं। संविधान में व्यवस्था है कि भारतीय प्रशासन सेवा और भारतीय पुलिस सेवा राज्यों और संघ दोनों में समान रूप से कार्य करेगी। इन सेवाओं के स जन का मुख्य उद्देश्य यही है कि अधिकतम अन्तर्राज्यीय सहयोग और समन्वय प्राप्त किया जाय तथा पदाधिकारियों द्वारा केन्द्रीय नीतियों को समुचित रूप से लागू किया जाय। समन्वित प्रशासनिक व्यवस्था का अस्तित्व नहीं स्वीकारा है अपितु यह कार्य राज्यों के प्रशासनिक तन्त्र द्वारा किया जाता है।



## आरक्षण व्यवस्था

समाज के कमजोर व पिछड़े वर्ग प्रशासनिक सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व से वंचित न रहें, इस हेतु भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति के लिए अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों व पिछड़े वर्गों हेतु आरक्षण का प्रावधान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की विशेषता है। मण्डल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद प्रशासन में पिछड़े वर्गों के लिए भी स्थान आरक्षित किये गये हैं। संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि राजकीय सेवाओं में व पदों पर नियुक्ति हेतु इन वर्गों के सदस्यों के दावों पर समुचित ध्यान दिया जाएगा। संविधान में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि इन वर्गों के दावों पर समुचित ध्यान देने तथा सेवाओं में इन वर्गों के सदस्यों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के क्रम में यदि सरकार उनके लिए सेवाओं में आरक्षण का ऐसा कोई विशेष उपबन्ध करती है तो उसका यह कार्य नागरिकों को दी गई अवसर की समता की गारण्टी के प्रतिकूल नहीं समझा जाएगा।

## प्रशासन के उद्देश्य

संविधान की प्रस्तावना में देश के प्रशासन के समक्ष पाँच स्पष्ट उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं- 1. न्याय, 2. स्वतंत्रता, 3. समानता, बन्धुत्व, एवं 5. राष्ट्रीय एकता की स्थापना। प्रशासन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह इन उद्देश्यों को साकार करे। इन उद्देश्यों को व्यवहार में साकार करके ही वह अपनी औचित्यता सिद्ध कर सकता है।

## पथक प्रशासनिक विधि का अभाव

भारत में प्रशासन देश की विधि के अन्तर्गत ही कार्य करता है। यहाँ फ्रांस की तरह पथक प्रशासकीय कानून और न्यायालयों की व्यवस्था नहीं की गई है।

## प्रशासन की नई भूमिका

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने विकास की विभिन्न मंजिलें तय की हैं। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय विकास हुआ है। लोक-कल्याणकारी राज्य के अभ्युदय ने राज्य की भूमिका को विस्तृत बना दिया है। प्रशासन-तंत्र का भारी विस्तार हुआ है। इस बदलते परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक बन गया है कि भारतीय लोक-प्रशासन अपनी नई भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वहन करे। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प ही शेष नहीं रह जाता है। प्रशासन का लोकतांत्रिक दृष्टिकोण के अनुरूप आचरण करना अपरिहार्य बन गया है। फलतः लोक-प्रशासकों का उचित प्रशिक्षण और उनमें मानवीय संवेदना का विकास करना अत्यावश्यक है। विकास कार्यों प्रति लोगों में साझेदारी की भावना पैदा करना भी लोक-प्रशासन का अहम दायित्व बन जाता है।

उपरोक्त विशेषताओं सहित भारतीय प्रशासन में कुछ नकारात्मक विशेषताएँ भी विकसित होती जा रही हैं जैसे -

## नौकरशाही का आधिपत्य

आधुनिक प्रशासनिक तथा कल्याणकारी राज्यों में कर्मचारी तंत्र का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु कर्मचारी तंत्र में व्याप्त अहं, लालफीताशाही, कठोर नियमों के प्रति मोह, शक्ति लालसा, अकार्यकुशलता तथा संवेदनशून्यता इत्यादि नौकरशाही लक्षण बाधक तत्त्व हैं। भारतीय लोक प्रशासन में भी भ्रष्टाचार, अकार्यकुशलता, अनुशासनहीनता सहित नौकरशाही के समस्त अवगुण विद्यमान हैं। यद्यपि भारत में लोक प्रशासन का बाह्य स्वरूप विकासोन्मुख तथा कल्याणकारी दिखलाई पड़ता है तथापि आन्तरिक रूप से प्रशासन तंत्र की कार्यशैली आज भी ब्रिटिश मॉडल पर आधारित है जिसमें आम आदमी की मानवीय संवेदनाओं से कहीं अधिक नियमों को वरीयता दी जाती है।

## विस्तृत एवं जटिल प्रशासन

भारत में लोक प्रशासन कार्यक्षेत्र एक प्रकार से विस्तृत एवं उलझा हुआ है क्योंकि अंग्रेजी शासन काल से अद्यतन अनेकानेक प्रशासनिक संस्थाएँ भारत में गठित होती रही हैं। संघीय स्तर पर कार्यरत विशाल केन्द्रीय सचिवालय तथा राज्यों में राज्य शासन सचिवालयों सहित इनके कार्यकारी संगठनों का सम्पूर्ण देश में जाल बिछा हुआ है। अनेक प्रकार के बोर्ड, आयोग, संगठन, न्यायाधिकरण, संस्थान, परिषद् प्राधिकरण, अभिकरण, निगम तथा सरकारी कम्पनियाँ विभिन्न कार्यों के निष्पादन हेतु कार्यरत हैं। भारत में विश्व के सभी प्रमुख देशों में प्रचलित प्रशासनिक संगठन किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। समस्या यह है कि

यहाँ आयोग, समिति तथा कार्यदलों की रिपोर्ट के आधार पर नित्य नए संगठन स्थापित करना एक परम्परा बन चुकी है परिणामस्वरूप परम्परागत नौकरशाही की कार्यशैली में किंचित भी परिवर्तन नहीं आया है बल्कि इसका आकार तथा वित्तीय भार अवश्य बढ़ता जा रहा है।

### **व्याधिग्रस्त प्रशासन**

वस्तुतः कोई भी व्यवस्था या संगठन पूर्णतया त्रुटिरहित होता है बल्कि कमियाँ और और समस्याएँ सभी संगठनों में पाई जाती हैं लेकिन भारतीय लोक प्रशासन की व्याधियाँ जटिल, असाध्य तथा विचित्र प्रकार की हैं। प्रशासन तंत्र में सामान्यज्ञ (I.A.S.) अधिकारियों का वर्चस्व है अतः विशेषज्ञ (डॉक्टर, इंजीनियर) अधिकारी अपनी स्थिति सुधार हेतु संघर्ष कर रहे हैं। सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद के अतिरिक्त मंत्री-लोक सेवक (अर्थात् सचिव) के मध्य विवादों की भी कमी नहीं है। इसी प्रकार लोक प्रशासन में वर्ग संघर्ष, हड़ताल, मुकदमेबाजी तथा कार्मिकों को भारी भीड़, घोटाले मुख्य समस्याएँ हैं। वार्षिक बजट का एक बड़ा भाग केवल कर्मचारियों के वेतन भत्तों पर खर्च होता है जबकि उनकी कार्यकुशलता का स्तर घटता जा रहा है। आवश्यकता इस बात कि है कि प्रशासनिक सुधारों के साथ-साथ लोक सेवकों में नैतिकता तथा कार्य के प्रति निष्ठा का भाव विकसित हो।

### **नियामकीय और विकास कार्यों का मिश्रण**

भारतीय प्रशासन में नियामकीय एवं विकास कार्यों को मिश्रित कर दिया गया है। दोनों प्रकार के कार्य स्तरों पर समान अधिकारियों द्वारा किए जाते हैं। यद्यपि विकास कार्य अलग अधिकारियों द्वारा किया जाता है, किन्तु ये अधिकारी नियामकीय अधिकारियों की देख-रेख में कार्य करते हैं जो सरकार के प्रति दोनों प्रकार के कार्यों के लिए जिम्मेदार हैं। उदाहरण के लिए, कलक्टर एक ओर तो कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा राजस्व, आदि के कार्य करता है और दूसरी ओर वह पंचायती राज्य का निरीक्षक एवं पथ-प्रदर्शक, विकास कार्यों का समन्वयकर्ता एवं सामुदायिक योजना का अभिकर्ता भी है। इसी प्रकार उपखण्ड, तहसील और ग्राम स्तर पर ये दोनों विरोधी प्रकृति के कार्य एक ही प्रकार के अधिकारियों को सौंपे गए हैं।

### **प्रशासनिक निर्णयों में राजनीतिक हस्तक्षेप और स्थानीय नेताओं की गुटबन्दी**

इसके कारण प्रशासकों में एक प्रकार की असुरक्षा और निराशा की भावना पायी जाती है। दिसम्बर 1994 में पटना में एक अभूतपूर्व घटना हुई। शहर में निषेधाज्ञा लागू होने के बावजूद पटना में भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों ने एक प्रभावी मौन जुलूस निकाला। बाद में आई. ए. एस. अधिकारियों के एक प्रवक्ता ने राजनीति के अपराधीकरण पर गहरी चिन्ता प्रकट की। पिछले कुछ वर्षों से राजनीति पर अपराधी तत्व हावी होते जा रहे हैं। वे प्रशासन पर नाजायज दबाव डालते हैं, अधिकारियों को धमकाते हैं और मारपीट कर डालते हैं। बिहार में एक जनता दल सांसद ने सचिवालय के एक वरिष्ठ अधिकारी के साथ मारपीट की थी; गाली-गलौज तो आए दिन होती रहती है।

### **सीमित नागरिक सहभागिता**

विकास कार्यों में आम नागरिक की साझेदारी बहुत सीमित है जिसके कारण अभीष्ट या वांछित लक्ष्यों की सिद्धि नहीं हो सकी है। नौकरशाही आम जनता का न विश्वास अर्जित कर पायी है और न ही विकास कार्यक्रम में जनता की भूमिका स्पष्ट की जा सकी है। नौकरशाही अभी तक 'बन्द प्रणाली' (Closed System) है, जो नेता को साथ लेकर चलने में विश्वास नहीं रखती।

### **सामन्तवादी भव्य**

चूँकि भारत का सामाजिक ढाँचा अभी तक सामन्तवादी है, मन्त्री, विधायक और नौकरशाही के सदस्य, सभी सामन्ती मूल्यों के शिकार हैं। फलस्वरूप, विकास का लाभ भी बड़े किसानों, पूंजीपतियों और सम्पन्न वर्गों तक ही सीमित रह गया है। विकास अधिकारियों और जिला प्रशासन से मिलकर ऋण राशि का बड़ा भाग समर्थ किसान हड़प कर गए। छोटे काश्तकारों और भूमिह्वर किसानों की उपेक्षा की गई है। इसी प्रकार नगरों में भी लाईसेन्स, परमिट, आदि के माध्यम से व्यापारी वर्ग ने बड़ा फायदा उठाया है। हाल ही में काले धन और समानान्तर अर्थव्यवस्था का बड़े वेग से विकास हुआ है।

- आक्रोश एवं हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण शांति और व्यवस्था की जटिल समस्या

- पंचवर्षीय योजनाओं के तहत अत्यधिक पूंजी निवेश के उपरोक्त क्षेत्रिय असंतुलन
- सम द्ध इलाकों को आस-पास झोपड़ बस्तियों का फैलाव जो कि अव्यवस्था, असमानता अराजकता का कारण
- बढ़ती हुई, प्रव तियां भाषा धर्म, संस्कृति एवं उपराष्ट्रीयता जैसी विभाजनात्मक प्रव तियां
- झूठा प्रशासनिक दंभ
- राष्ट्रीय आप का असमान वितरण
- ग्रामीण एवं शहरी विकास में असमानता
- बढ़ते विनिवेश से उपजी अनेक समस्याएं

निश्चय ही विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्रीय देश भारत की समस्त प्रशासनिक विशेषताओं पर प्रकाश डालना एक कष्ट साध्य कार्य है। समय के साथ प्राचीन विशेषताओं का धूमिल होना और नवीन का अर्जित एवं द ष्टिगोचर होना अवश्यंभावी है।

क्योंकि प्रत्येक राजनीतिक संरचना के अन्तर्गत कार्यरत प्रशासनिक व्यवस्था समय, स्थिति व आवश्यकतानुसार परिवर्तन होती रहती है।

## अध्याय-4

# भारतीय प्रशासन के संघात्मक एवं एकात्मक पहलू (Federal and Unitary Aspects of Indian Administration)

---

विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं के केन्द्र एवं प्रांतों में शक्ति विभाजन के आधार पर दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है, संघात्मक प्रशासन एवं एकात्मक प्रशासन। परन्तु भारतीय प्रशासन में दोनों पहलुओं का समिश्रण दृष्टिगोचर होता है।

### भारतीय संघशासन

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भारत सरकार अधिनियम, 1935 (Government of India Act, 1935) के अन्तर्गत स्थापित पद्धति और स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति से प्रभावित होकर संघीय शासन प्रणाली की व्यवस्था की। परन्तु संघीय शासन प्रणाली को जो रूप भारतीय संविधान द्वारा दिया गया है, उसके सम्बन्ध में प्रायः देशी तथा विदेशी राजनीतिशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों तथा संविधानिक विशेषज्ञों द्वारा भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किए गए हैं। कुछ लोगों का मत है कि इसके एकात्मक लक्षण इतने प्रबल हैं कि इसे संघात्मक की अपेक्षा एकात्मक संविधान कहना चाहिए। परन्तु दूसरे वर्ग के लोगों का विचार है कि भारतीय संविधान में संघवाद के सिद्धान्त इतने अधिक हैं कि कुछ एकात्मक तत्त्वों के होते हुए भी यह एक संघात्मक संविधान है। जे. सी. जौहरी (J. C. Johri) के शब्दों में "प्रसिद्ध विधि-वेत्ताओं, राजनीतिक वैज्ञानिकों तथा दूसरे लेखकों के विचारों में इसके सम्बन्ध में बहुत भिन्नता पाई जाती है, कुछ इसे संघात्मक, कुछ एकात्मक तथा कुछ अन्य दोनों का मध्य मार्ग अपनाते हुए अर्ध-संघात्मक कहते हैं।" इस मतभेद का मुख्य कारण संवैधानिक विशेषज्ञों में संघवाद के सम्बन्ध में परस्पर भिन्नता का विद्यमान होता है। अतः इस बात का निर्णय करने के लिए कि भारतीय संविधान संघात्मक है या नहीं, यह जानना आवश्यक है कि संघवाद क्या है तथा एक संघात्मक राज्य के अनिवार्य लक्षण क्या हैं?

### संघवाद

संघवाद राज्य से अभिप्राय ऐसी शासन प्रणाली से है, जिसके अनुसार कुछ स्वतन्त्र राज्य स्वेच्छा से कुछ सामान्य हितों की पूर्ति के लिए एक केन्द्रीय सरकार का निर्माण करते हैं और अपनी स्थानीय तथा निजी समस्याओं का समाधान अपनी निजी स्थानीय सरकारों द्वारा करते हैं। श्री कोडण्डा राव (Sh. Kodanda Rao) के शब्दों में, "संघात्मक राज्य की स्थापना पहले से विद्यमान प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों द्वारा स्वेच्छापूर्वक की जाती है, जो सीमित शक्ति केन्द्रीय संघीय सरकार को सौंपते हैं तथा इस प्रकार केन्द्र को सौंपे गए विषयों के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों में स्वायत्त होते हैं।" फाईनर के अनुसार, "एक संघराज्य वह राज्य है जिसमें अधिकार तथा शक्ति का एक भाग स्थानीय क्षेत्रों को सौंपा जाता है जबकि दूसरा केन्द्रीय संस्था में निहित होता है, जिसकी स्थापना स्थानीय क्षेत्रों के समूह ने स्वेच्छा से मिल कर की हो।" गार्नर के मतानुसार, "संघ सरकार एक ऐसी प्रणाली है जिसमें केन्द्रीय तथा स्थानीय अपने-अपने क्षेत्र में, जिसे संविधान अथवा संसद् के किसी कानून द्वारा निश्चित किया जाता है, सर्वोच्च होती है।" इस प्रकार संघात्मक सरकार दोहरी शासन व्यवस्था है, जिसमें शक्तियां केन्द्रीय तथा क्षेत्रीय सरकारों में विभाजित होती हैं। श्री डी. डी. बासु (D. D. Basu) ने संघात्मक प्रणाली की परिभाषा करते हुए कहा है, "संघात्मक प्रणाली बहुत से राज्यों का सामान्य हितों के लिए एक राज्य में मिश्रण है जिसमें मिश्रित राज्य दूसरे विषयों में स्वायत्त होते हैं। मिश्रित राज्य संघात्मक राज्य के एकमात्र प्रतिनिधि या इकाइयां नहीं होते परन्तु संघात्मक तथा राज्य सरकारें दोनों ही

अपनी-अपनी सत्ता एक ही स्रोत, देश के संविधान से प्राप्त करती हैं। इस प्रकार संघवाद सामान्य हितों तथा स्थानीय स्वायत्तता जैसी विरोधी प्रवृत्तियों के समाधान का सिद्धान्त है। इसके लिए न पूर्ण स्वतन्त्रता, न पूर्ण परतन्त्रता बल्कि परस्पर निर्भरता की आवश्यकता है। अनेकता में एकता आधुनिक संघवाद का लक्षण है।”

यदि संघवाद की इस धारणा को स्वीकार कर लिया जाए तो भारतीय संविधान तथा प्रशासन के संघात्मक रूप के सम्बन्ध में कोई संशय नहीं रहता। एलगजैंड्रोविक्स (Prof. Alexandrowics) के विचार में, “भारत निस्संदेह एक संघात्मक राज्य है जिसमें प्रभुसत्ता के गुणों को केन्द्र तथा राज्यों में विभाजित किया गया है।” श्री सानथानम (Shri Santhanam) के शब्दों में, “भारत के संघात्मक राज्य होने में कोई संशय नहीं है।” पाल एपलबी (Paul Appleby) ने भारतीय संविधान को “अत्यन्त संघात्मक” कहा है। इन सभी लेखकों के विचार का मुख्य आधार यह है कि यद्यपि संविधान द्वारा भारत को राज्यों का संघ (Union of States) घोषित किया गया है और स्पष्ट रूप से संघात्मक राज्य की व्यवस्था नहीं की गई तथापि इसमें संघात्मक राज्य के तत्त्व पाये जाते हैं जिनके कारण इसे संघात्मक संविधान कहा जाता है।

## भारतीय प्रशासन के संघात्मक पहलू

प्रो. डाइसे (Dicey) ने संघात्मक संविधान की तीन विशेषताएं बताई हैं: (i) संविधान की सर्वोच्चता, (ii) सरकार की शक्तियों का सीमित रूप में विभाजन, (iii) न्यायालयों की संविधान की व्याख्या करने की शक्ति। प्रो. डाइसे द्वारा दिए गए ये तत्त्व भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप में पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त हमारे संविधान के और भी कई ऐसे तत्त्व हैं जो इसे संघात्मक रूप देते हैं। इन तत्त्वों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

1. **शक्तियों का विभाजन** - अमेरिका तथा दूसरे संघात्मक राज्यों की भांति भारत में संघीय सरकार तथा राज्य सरकारों में शक्तियों का बटवारा संविधान द्वारा किया गया है। वास्तव में संघात्मक प्रणाली की मुख्य विशेषता शक्तियों का विभाजन है। के. सी. व्हीयर (K. C. Wheare) के अनुसार, संघात्मक सिद्धान्त “शक्तियों के विभाजन की विधि है ताकि केन्द्रीय तथा क्षेत्रीय सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में सम्पन्न तथा स्वतन्त्र रहें।” संघात्मक राज्य में शक्तियों का विभाजन लिखित संविधान द्वारा किया जाता है जो केन्द्र एवं राज्य सरकार की शक्तियों का स्रोत होता है जबकि एकात्मक शासन प्रणाली में केन्द्र एवं इकाइयों में शक्तियों का विभाजन केन्द्रीय सरकार द्वारा किया जाता है। भारतीय संविधान द्वारा इन शक्तियों को तीन सूचियों में विभाजित किया गया है: (i) संघ सूची, (ii) राज्य सूची तथा (iii) समवर्ती सूची। (i) संघ सूची में राष्ट्रीय महत्त्व तथा एक से अधिक राज्यों में सम्बन्ध रखने वाले, सुरक्षा, विदेश नीति, रेलवे मुद्रा आदि 97 विषय रखे गए हैं। इन पर केवल संसद् ही कानून बना सकती है। (ii) राज्य सूची में शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन, कृषि आदि 66 विषय सम्मिलित किए गए हैं, और इन पर प्रायः राज्य विधानमण्डल कानून बना सकते हैं। 42 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा इस सूची में चार विषय, शिक्षा (Education), वन (Forest), वन्य पशुओं तथा पक्षियों की रक्षा (Protection of wild animals and birds) तथा नाप तोल (Weights & Measures) को निकाल कर समवर्ती सूची में दर्ज कर दिया गया है। इस प्रकार इस सूची में अब 62 विषय हैं। (iii) समवर्ती सूची में 47, विवाह, तलाक, आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन, समाज सुरक्षा और प्रैस आदि ऐसे विषय सम्मिलित किए हैं जिन पर केन्द्रीय संसद् अथवा राज्यविधान मण्डल, दोनों ही कानून बना सकते हैं। इस सूची में 42 वें संशोधन द्वारा 5 और विषय अंकित किए गए हैं। अब इसमें अब 52 विषय अंकित हैं। इनके अतिरिक्त जो शक्तियां संविधान में अंकित नहीं की गईं और जिन्हें अविशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers) कहा जाता है, केन्द्र को दी गईं। इस प्रकार हमारे संविधान द्वारा केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र को बड़ी सावधानी से निश्चित किया गया ताकि दोनों अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र रहें और स्वायत्तता से शासन का संचालन कर सकें। डा. एम. पी. शर्मा (Dr. M. P. Sharma) के अनुसार, “संघवाद का सार दो बातों में है। प्रथम एक संघ कुछ इकाइयों का जिन्हें राज्य, प्रान्त या कैंटन कहा जाता है और जिनकी अपनी सरकारें तथा कार्य होते हैं, का बना हुआ राज्य होता है। दूसरे एक संघ में एक ओर केन्द्रीय या संघीय सरकार और दूसरी ओर राज्य सरकारों में संविधान द्वारा शक्तियों का विभाजन होना चाहिए ताकि इन में से कोई भी एक भागीदार इन्हें स्वेच्छा से बदल न सके। हम देखते हैं कि भारतीय संघ में ये दोनों तत्त्व पाए जाते हैं।” अतः भारत एक संघात्मक राज्य है जिसमें प्रभुसत्ता की विशेषताओं को केन्द्र तथा राज्य में विभाजित किया गया है।

2. **संविधान की सर्वोच्चता** - भारतीय प्रशासन के संघात्मक होने की दूसरी विशेषता यह है कि अमेरिका के संविधान की भांति, भारत के संविधान को देश का सर्वोच्च कानून (Supreme Law of the Land) माना जाता है तथा यह देश की सभी प्रशासकीय संस्थाओं एवं पदाधिकारियों की शक्ति का स्रोत है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें इसकी अवहेलना नहीं कर सकती और न ही इस की धाराओं के प्रतिकूल किसी कानून का निर्माण कर सकती है। केन्द्रीय एवं राज्य का कोई भी अधिकारी या शासक इसकी धाराओं के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं कर सकता। राष्ट्रपति, राज्यपाल, न्यायाधीश तथा अन्य प्रमुख पदाधिकारी अपना पद ग्रहण करने से पहले, इसकी सर्वोच्चता को स्वीकार करते हुए इसकी धाराओं के अनुसार अपने कर्तव्य की पालना करने की शपथ लेते हैं। संघात्मक संविधानों की तरह भारतीय संविधान का लिखित तथा कठोर होना भी इसकी सर्वोच्चता का प्रमाण है।  
लिखित और विस्तृत संविधान होने का कारण यह है कि संघात्मक संविधानों में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की शक्तियों का स्पष्ट एवं विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है ताकि उनमें किसी प्रकार का कोई भी विवाद उत्पन्न न हों और वे अपने-अपने क्षेत्र में रह कर काम करें। भारतीय संविधान में भी केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की शक्तियां एवं कार्य-क्षेत्र का विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है। संविधान के निर्माताओं ने बड़े विस्तृत रूप में सरकार के प्रत्येक पहलू के सम्बन्ध में लिखा है।
3. **कठोर संविधान** - संघीय राज्य के लिए कठोर संविधान का होना भी अनिवार्य है। हमारा संविधान चाहे अमेरिका के संविधान की भांति बहुत कठोर नहीं परन्तु इंग्लैंड की भांति लचीला भी नहीं कि जिसे संसद के साधारण बहुमत द्वारा बदला जा सके। संशोधन करने की दृष्टि से भारतीय संविधान को तीन भागों में बाँटा गया है। एक भाग वह है जिसकी धाराओं को संसद केवल साधारण बहुमत से बदल सकती है। दूसरा भाग वह है जिसकी धाराओं में संशोधन करने के लिए संसद के दोनों सदनों के अपने-अपने सदस्यों की कुछ संख्या का स्पष्ट बहुमत तथा उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों की संख्या का 2/3 बहुमत आवश्यक हो। तीसरा भाग वह है जिसकी धाराओं में संशोधन करने के लिए संसद के दोनों सदनों की कुल संख्या का स्पष्ट बहुमत तथा उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों की कुल संख्या के 2/3 बहुमत के अतिरिक्त कम से कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों का समर्थन भी अनिवार्य है। भारतीय संविधान का प्रथम प्रकार का भाग इसके लचीलेपन का प्रमाण है जबकि दूसरा और तीसरा भाग इसके कठोर होने का साक्षी है। इन्हीं भागों के अन्तर्गत संविधान की अधिकतर धाराएं आती हैं जिनमें आसानी से संशोधन करने का अधिकार ना तो केन्द्रीय सरकार को है और न ही राज्य सरकारों को प्राप्त है। इसके अतिरिक्त हमारे संविधान का कठोर होने का यह भी एक कारण है कि इसमें इंग्लैंड के संविधान की भांति साधारण कानून की तरह संशोधन नहीं किया जा सकता। भारतीय संविधान में साधारण कानून में संशोधन करने और संविधान में संशोधन करने की विधि अलग-अलग है। संविधान में संशोधन करने के लिए एक विशेष विधि की व्यवस्था की गई है। अतः भारतीय संविधान एक कठोर संविधान है।
4. **स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष न्यायपालिका** - संघात्मक राज्य में संविधान की व्याख्या तथा सुरक्षा करने के लिए और संघीय तथा राज्य सरकारों में परस्पर झगड़ों का निर्णय करने के लिए स्वतन्त्र न्यायालय की व्यवस्था की जाती है। यह कार्यपालिका तथा विधानपालिका के प्रभाव से स्वतन्त्र होता है तथा इनके द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही को, जिसे वह संविधान के विरुद्ध समझे, अवैध घोषित कर सकता है। भारत में भी स्वतन्त्र न्यायालय की स्थापना की गई है जो संविधान के संरक्षक के रूप में कार्य करता है। सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय यदि संसद या राज्य विधानपालिकाओं द्वारा बनाए गए कानूनों को संविधान के विरुद्ध समझें तो उन्हें रद्द कर सकते हैं।
5. **द्विसदनीय विधानपालिका** - संघात्मक शासन प्रणाली में द्विसदनीय विधानपालिका की व्यवस्था होती है जिनमें से एक सदन जनता का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में जैसे प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) के सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं और दूसरे सदन, सैनेट (Senate) के सदस्यों को राज्य विधानमण्डलों द्वारा चुना जाता है। भारतीय संसद भी द्विसदनीय है। इसके उपरि सदन को राज्य सभा (Council of State) कहा जाता है और इसके सदस्यों को राज्य विधान सभाओं द्वारा चुना जाता है। निम्न सदन को लोक सभा कहा जाता है और इसके सदस्यों को जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर चुना जाता है। भारतीय संसद का द्विसदनीय होना हमारे संविधान के संघात्मक होने का प्रमाण है।

6. **दोहरी शासन प्रणाली** - संघात्मक राज्य की एक और विशेषता उसकी दोहरी शासन प्रणाली होती है। केन्द्र तथा राज्य के स्तर पर अलग-अलग सरकारों की व्यवस्था होती है। इसकी स्थापना संविधान द्वारा की जाती है, जिनके द्वारा इनका कार्य-क्षेत्र भी निश्चित होता है तथा वे अपने-अपने क्षेत्र में कानून भी बना सकती हैं। भारत में भी केन्द्र तथा राज्यों के स्तर पर प थक्-प थक् सरकारों की व्यवस्था संविधान अनुसार की गई है और उन्हें अपने क्षेत्र में कानून बनाने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों को प थक्-प थक् कर लगाने का अधिकार दिया गया है। दोनों स्तरों का अपना-अपना अस्तित्व होता है चाहे केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकारों पर नियन्त्रण करने की शक्ति प्राप्त है। इस प्रकार केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों का प थक् होना भी हमारे संविधान का संघात्मक होना सिद्ध करता है। डॉ. अम्बेदकर ने इस बात को स्पष्ट करते हुए कहा है, "यह केन्द्र स्तर पर संघ परिधि के स्तर पर राज्यों की व्यवस्था करके दोहरी शासन प्रणाली की स्थापना करता है तथा दोनों को प्रभुसत्ता सम्पन्न शक्तियाँ दी गई हैं जो वे अपने-अपने क्षेत्र में प्रयोग करते हैं। संघ राज्यों के ढीले सम्पर्क वाला संगठन नहीं और न ही राज्य संघ से शक्ति प्राप्त करने वाली इकाइयाँ हैं। संघ तथा राज्यों की स्थापना संविधान द्वारा की गई है तथा दोनों अपनी-अपनी सत्ता संविधान से प्राप्त करते हैं। कोई भी अपने क्षेत्र में दूसरे के अधीन नहीं।"

## **संविधान के एकात्मक पहलू** (Unitary Elements of the Constitution)

उपरोक्त तत्त्वों के होते हुए भी यदि भारतीय संविधान की तुलना अमेरिका तथा अन्य संघात्मक राज्यों से की जाए तो यह प्रतीत होता है कि भारत का संविधान शुद्ध संघीय संविधान नहीं है। श्री के. एम. मुन्शी (K. M. Munshi) के मतानुसार, "भारत एक संघात्मक राज्य नहीं है परन्तु एक संघ है। केन्द्रीय सरकार संघात्मक सरकार नहीं परन्तु परिपूर्ण शक्तियों वाली सरकार है।" श्री कृष्णा पी. मुकर्जी (Krishna P. Mukerji) ने तो यहां तक कहा है कि "भारतीय संविधान निश्चित ही असंघात्मक तथा एकात्मक संविधान है।" के. सी. व्हीयर (K.C. Wheare) के शब्दों में, "भारतीय संविधान ने ऐसी सरकार की स्थापना की है, जो अधिकतर असंघात्मक, एकात्मक लक्षणों सहित संघात्मक राज्य की अपेक्षा संघात्मक लक्षणों वाला एक एकात्मक राज्य है।" यद्यपि इन विचारों का पूर्णतः समर्थन नहीं किया जा सकता, तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतीय संविधान पूर्णतः संघात्मक नहीं, अपितु इसका एकात्मकता की ओर झुकाव अवश्य है। इस प्रकार भारतीय संविधान में एक संघात्मक राज्य के तत्त्व स्पष्ट रूप में विद्यमान हैं। संविधान में कुछ ऐसे तत्त्व पाए जाते हैं, जो इसे एकात्मक राज्य सिद्ध करते हैं। संविधान के एकात्मक तत्त्वों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है:

1. **केन्द्र तथा राज्यों के लिए एक संविधान** - अमेरिका के विपरीत, जहां संघ का संविधान इकाइयों से प थक् है और प्रत्येक इकाई अपना-अपना संविधान बनाती है; भारत में केन्द्र तथा राज्यों के लिए एक ही संविधान की व्यवस्था की गई है। इसमें केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के संगठन तथा शक्तियों का उल्लेख किया गया है और उनसे सम्बन्धित धाराओं में संशोधन करने का ढंग भी एक ही है। किसी भी राज्य को अलग संविधान बनाने या संघ से अलग होने का अधिकार नहीं। यद्यपि संविधान की धारा 370(2) के अन्तर्गत जम्मू व काश्मीर राज्य को अपना संविधान बनाने की स्वतन्त्रता दी गई है परन्तु इसमें कोई ऐसा उपबंध या धारा नहीं हो सकती जो भारतीय संविधान के प्रतिकूल हो।
2. **शक्तिशाली केन्द्र** - यदि संविधान में दी गई सूचियों का अध्ययन किया जाए तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि राज्यों की तुलना में केन्द्र को अधिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। केन्द्रीय सूची में सुरक्षा, विदेश नीति, मुद्रा, रेलवे आदि जैसे सभी महत्वपूर्ण विषयों को सम्मिलित किया गया है तथा इनकी संख्या (97), राज्य सूची के (62) विषयों से काफी अधिक है। यद्यपि दोनों को अपने-अपने क्षेत्र में कानून बनाने की स्वायत्तता प्रदान की गई है, फिर भी विशेष परिस्थितियों में संसद् राज्य सूची में दिए गए विषयों पर भी कानून बना सकती है। संविधान के अनुसार राज्य सभा 2/3 बहुमत से पास कर दे कि राज्य सूची में दिए गए किसी विषय पर कानून बनाना राज्य के हित में है या इसके लिए आवश्यक है, जो संसद् राज्यों के लिए उस विषय पर कानून बना सकती हैं। ऐसे कानून की अवधि एक समय में एक वर्ष होती है और यदि इसके काल में वृद्धि करने की जरूरत हो, जो इसे दोबारा पास करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त समवर्ती सूची में दिए गए विषयों पर यद्यपि संसद् तथा राज्य विधानमण्डल दोनों ही कानून बना सकते हैं

तथापि यदि उनके द्वारा बनाए गए कानून में भिन्नता पाई जाए तो संसद द्वारा बनाए गए कानूनों को मान्यता दी जाती है। इसके अतिरिक्त अविशिष्ट (Residuary) शक्तियां केन्द्रीय सरकार को ही दी गई हैं जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, आस्ट्रेलिया आदि के संविधानों द्वारा अविशिष्ट शक्तियां राज्यों को प्रदान की गई हैं। इस प्रकार शक्तियों का विभाजन केन्द्र के हित में और एक शक्तिशाली केन्द्र का निर्माण किया गया है।

3. **संकटकालीन व्यवस्थाएं** - भारतीय संविधान में संकटकाल की व्यवस्था की गई है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रपति को राष्ट्रीय सुरक्षा (आन्तरिक अशान्ति या बाहरी आक्रमण) किसी राज्य में संवैधानिक यन्त्र के विफल होने या देश अथवा देश के किसी भाग में वित्तीय अस्थिरता आदि समस्याओं से निपटने के लिए संकटकालीन शक्तियां प्रदान की गई हैं:

- (i) यदि संविधान की धारा 352 के अधीन आन्तरिक अशान्ति या बाहरी आक्रमण के कारण राष्ट्रपति शासन की घोषणा की जाए तो केन्द्रीय सरकार का समस्त देश पर पूर्ण अधिकार हो जाता है राष्ट्रपति की यह शक्ति इतनी अधिक तथा प्रभावकारी है कि इसके परिणामस्वरूप देश का संघात्मक रूप ही एकात्मक बन जाता है। इस के लिए किसी संविधानिक संशोधन की आवश्यकता नहीं होती। केवल राष्ट्रपति द्वारा दिए गए आदेश द्वारा ही देश की संघात्मक प्रकृति समाप्त हो जाती है तथा देश के शासन संचालन की जिम्मेदारी केन्द्रीय सरकार में निहित हो जाती है। उदाहरणतया जून, 1975 में आन्तरिक संकटकाल की घोषणा के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार का राज्य सरकारों पर पूर्ण नियन्त्रण हो गया था। इस प्रकार राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियां बहुत प्रभावकारी हैं तथा हमारी संविधान की एकात्मकता का प्रतीक हैं।
- (ii) संकटकाल में राज्यों पर केन्द्रीय सरकार का पूर्ण अधिकार हो जाता है। संसद राज्य सूची में दिए गए विषयों पर कानून बना सकती है। केन्द्रीय सरकार शक्ति का प्रयोग करने के लिए राज्य सरकारों को आदेश दे सकती है। संविधान की वित्त सम्बन्धी धाराओं को निलम्बित कर सकती है।
- (iii) यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाए कि किसी राज्य में शासन संविधान की धाराओं के अनुसार नहीं चलाया जाता तो वह अधिघोषण जारी करके वहां का प्रशासन अपने हाथ में ले सकता है।
- (iv) यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत या इसके किसी भाग में वित्तीय स्थिरता को खतरा है तो वह वित्तीय स्थिरता को खतरा है तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है। ऐसी दशा में वह राज्य सरकारों को आवश्यक आदेश दे सकता है कि वे अपना खर्च उसकी अनुमति से करें। इस दशा में विधानमण्डल द्वारा पारित किए गए धन बिलों के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति लेना आवश्यक है। राष्ट्रपति राज्य तथा उच्च न्यायालयों के कर्मचारियों के वेतन कम कर सकता है।
- (v) केन्द्रीय सरकार जब चाहे राज्यपालों को पद से हटा सकती है जैसे जनवरी, 1990 में राष्ट्रपति के कहने पर 17 राज्यों के राज्यपालों ने अपने पदों से त्यागपत्र दे दिए।

4. **राष्ट्रपति द्वारा राज्यपालों की नियुक्ति** - अमेरिका के विपरीत, जहां पर राज्यपाल को राज्य की जनता द्वारा चुना जाता है, भारत में कॅनेडा (Canada) की तरह राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वे राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त (during his pleasure) इस पद पर रहते हैं। इसी तरह केन्द्रीय सरकार के कहने पर जम्मू कश्मीर के राज्यपाल श्री जगमोहन ने 25 मई, 1990 को अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। राज्यपाल केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं और उनके द्वारा ही केन्द्र सरकार राज्यों पर नियन्त्रण करती है। यद्यपि सामान्य अवस्था में राज्यपाल राज्य के संवैधानिक मुखिया के रूप में मन्त्रिमण्डल के परामर्श अनुसार कार्य करता है, परन्तु संकटकालीन घोषणा के समय वह केन्द्रीय सरकार के आदेश के अनुसार अपने कर्मचारियों की सहायता से वास्तविक प्रशासक के रूप में कार्य करता है। राज्य में संवैधानिक ढांचे के विफल होने की सूचना भी राज्यपाल ही राष्ट्रपति को देता है। इस प्रकार राज्यपाल द्वारा केन्द्रीय सरकार राज्यों पर नियन्त्रण करती है।

5. **केन्द्र को राज्य सरकारों को निर्देश देने की शक्ति** - संविधान द्वारा केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकारों को निर्देश देने की शक्ति प्रदान की गई है तथा राज्य सरकारों के लिए इनकी पालना करना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त यह भी व्यवस्था की गई है कि संघ सरकार राज्य सरकारों को राष्ट्रीय और सैनिक महत्व के लिए घोषित किए गए संचार



सांघनों के निर्माण और रक्षा के लिए निर्देश दे सकती है।

6. **राष्ट्रपति को राज्य विधेयकों को रद्द करने की शक्ति** - संविधान द्वारा यह भी व्यवस्था की गई है कि कुछ प्रकार के विधेयक, जैसे निजी सम्पत्ति के अनिवार्य अभिग्रहण (Acquisition), संसद द्वारा पारित किए कानून द्वारा किसी वस्तु के आवश्यक घोषित किए जाने पर कर लगाना, उच्च न्यायालयों की शक्तियों को कम करना आदि, राज्य विधानमण्डलों द्वारा पास किए जाने के लिए बाद राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए सुरक्षित रखे जा सकते हैं। ऐसी दशा में राष्ट्रपति या इन विधेयकों की स्वीकृति प्रदान कर सकता है या उन्हें रद्द कर सकता है या उन्हें अपनी सिफारिशों के साथ राज्य विधानमण्डल को पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है।
7. **संसद का राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन करने का अधिकार** - संघात्मक राज्यों में प्रत्येक राज्य को अपने क्षेत्र अथवा सीमाओं को अखण्ड रखने का अधिकार होता है और केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों, राज्य विधानमण्डलों की स्वीकृति के बिना उनकी सीमाओं में परिवर्तन नहीं कर सकती। जैसे - अमेरिका, कॅनेडा तथा आस्ट्रेलिया में किसी भी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन करने से पहले उसकी अनुमति लेनी पड़ती है। परन्तु भारत में संसद को यह अधिकार है कि वह राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है। किसी राज्य से उसका प्रदेश अलग करके, अथवा दो या दो से अधिक राज्यों के भागों को मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकती है। किसी राज्य का क्षेत्र बड़ा अथवा कम कर सकती है और आवश्यकता अनुसार उसका नाम भी बदल सकती है। ऐसा करने के लिए कोई भी बिल राष्ट्रपति की सिफारिश पर पेश किया जाता है। वास्तव में राष्ट्रपति बिल की सिफारिश करने से पहले सम्बन्धित राज्य के विधानमण्डल के विचारों को जानने की चेष्टा करता है। परन्तु उसके लिए राज्य विधानमण्डल के विचारों को स्वीकार करना आवश्यक नहीं।  
संसद को ऐसी शक्ति देना संघात्मक प्रणाली के विरुद्ध है, परन्तु देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इसकी व्यवस्था करना आवश्यक था। ऐसी शक्ति द्वारा देशी रियासतों को समाप्त करने के लिए सन् 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम (State Reorganisation Act) पास किया और इन्हीं धाराओं के अन्तर्गत नागालैंड, आंध्र, गुजरात, हरियाणा, मेघालय, अरुणाचल आदि का निर्माण किया गया है। केन्द्रीय सरकार संसद की स्वीकृति से किसी राज्य के क्षेत्र का किसी अन्य देश से समझौता या सन्धि करके परिवर्तन भी कर सकती है। जैसे 1967 में कच्चाति टापू (Kachativu Island) जो तमिलनाडु राज्य में था, को श्रीलंका को सौंप दिया गया था।
8. **राज्यों को संघ से अलग होने का अधिकार नहीं** - भारत में राज्यों तथा केन्द्र के लिए एक संविधान की ही व्यवस्था नहीं बल्कि भूतपूर्व सोवियत रूस की तरह यहां पर राज्यों को आत्मनिर्णय अथवा संघ से अलग होने का अधिकार प्रदान नहीं किया गया, ऐसा होना संघात्मक प्रणाली के सिद्धांतों के अनुकूल नहीं। कई बार यद्यपि कुछ राज्यों द्वारा अधिक शक्तियों की मांग की जाती है तथापि यह केवल अधिक स्वायत्तता की मांग है, भारत संघ से अलग होने की मांग नहीं।
9. **राज्य सभा में राज्यों का असमान प्रतिनिधित्व** - अमेरिका, स्विट्जरलैंड, आस्ट्रेलिया आदि संघात्मक राज्यों में संसद के उपरि सदन में इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है, परन्तु भारतवर्ष में ऐसा नहीं। यहाँ पर राज्यों को जनसंख्या अथवा आकार के आधार पर राज्यसभा में प्रतिनिधित्व दिया गया है। इसके अतिरिक्त राज्य सभा में केवल राज्यों के प्रतिनिधित्व ही नहीं होते, बल्कि उनके अतिरिक्त 12 व्यक्ति जो कला, विज्ञान, साहित्य आदि में निपुण हों राष्ट्रपति मनोनीत करता है। यह संघात्मक प्रथा के विपरित है और एकात्मक राज्य की विशेषता है।
10. **इकहरी नागरिकता** - अमेरिका तथा अन्य संघात्मक राज्यों में दोहरी नागरिकता पाई जाती है। वहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति संघ का नागरिक होने के साथ-साथ राज्य का नागरिक भी होता है। प्रत्येक नागरिक को राज्य की ओर से विशेष अधिकार प्रदान किए जाते हैं जो कि दूसरे राज्यों से भिन्न हो सकते हैं। वहाँ पर एक व्यक्ति पहले राज्य का नागरिक होता है और बाद में संघ का। प्रत्येक राज्य ने नागरिकता संबंधी अपने पथक्-पथक् नियम बनाए हुए हैं। अमेरिका में एक राज्य का नागरिक दूसरे राज्य का नागरिक नहीं माना जाता तथा यदि वह दूसरे राज्य में जाए तो उसे उस राज्य के नागरिक के अधिकार प्राप्त नहीं होते। परन्तु भारत में इकहरी नागरिकता की व्यवस्था की गई है। सभी भारत के नागरिक हैं, किसी विशेष राज्य के नहीं। सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त है। एक व्यक्ति चाहे वह किसी भी राज्य में क्यों न जाए, उसे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। पंजाब तथा बंगाल के लोगों

- में नागरिकता के आधार पर कोई मतभेद नहीं पाया जाता। नागरिकता संबंधी शक्ति केन्द्रिय सरकार को प्रदान की गई है और इस विषय को केन्द्रिय सूची में सम्मिलित किया गया है।
11. **संगठित न्याय प्रणाली** - भारतीय संविधान में दूसरे संघात्मक संविधानों से इस बात की भिन्नता भी पाई जाती है कि यहाँ पर दोहरी न्याय व्यवस्था की अपेक्षा एक संगठित न्याय-प्रणाली की व्यवस्था की गई है। अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में संघ तथा राज्यों का न्याय प्रबंध पथक्-पथक् है। भारत वर्ष में यद्यपि केन्द्रिय स्तर पर सर्वोच्च न्यायालय तथा राज्यों के स्तर पर उच्च न्यायालयों की स्थापना की गई है तथापि वे एक ही न्याय व्यवस्था के अंग हैं। भारत के राज्यों के उच्च न्यायालय अमेरिका की तरह स्वतन्त्र नहीं, वे सर्वोच्च न्यायालय के अधीन कार्य करते हैं तथा उन पर संघ और राज्यों के कानून एक समान लागू होते हैं। उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। इतना ही नहीं जिला स्तर के न्यायालय उच्च न्यायालय के अधीन होते हैं, तथा उनके विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में की जा सकती है।
  12. **संवैधानिक संशोधन में संघ की श्रेष्ठता** - संविधान के संशोधन में भी राज्यों की अपेक्षा संघीय सरकार को अधिक अधिकार प्राप्त हैं। संविधान में बहुत सी धाराएँ ऐसी हैं जिनमें संसद् सुगमता से संशोधन कर सकती है और कुछ ऐसी हैं जिनमें संशोधन करने के लिए विशेष प्रक्रिया को अपनाया पड़ता है परन्तु ऐसी धाराएँ बहुत कम हैं जिनमें संसद् द्वारा संशोधन करने के पश्चात् राज्य विधानमण्डलों की सम्मति लेने आवश्यक हो। राज्य विधानमण्डलों की अमेरिका की तरह संवैधानिक संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं है। किसी राज्य के विधानमण्डल के उपरि सदन, विधान परिषद् को समाप्त करने या स्थापित करने के लिए भी संसद् की स्वीकृति लेनी पड़ती है। अतः संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया में केन्द्र तथा राज्यों को समान अधिकार प्राप्त नहीं है बल्कि केन्द्र को अधिक शक्ति प्राप्त है।
  13. **राज्यों को वित्तीय मामलों में केन्द्र पर निर्भर होना** - यद्यपि संविधान के द्वारा राज्य सरकारों का कर लगाने का अधिकार दिया गया है। फिर भी केन्द्र की अपेक्षा उनकी आय के साधन बड़े सीमित होते हैं। इन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है। संघीय करों द्वारा प्राप्त किए गए राजस्व का सघं तथा राज्यों में वितरण राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।
  14. **नियोजन का केन्द्रीयकरण** - नियोजन के केन्द्रीयकरण से भी एकात्मकता को बल मिला है। सानथनम के शब्दों में, "नियोजन ने संघात्मक राज्य का अवक्रमण किया है तथा हमारा देश कई प्रकार से एकात्मक ढंग से कार्य करता है।" इसी प्रकार श्री त्रिलोक सिंह ने भी इस विचार का समर्थन करते हुए कहा है कि "राष्ट्रीय नियोजन ने केन्द्र के क्षेत्र में विस्तार किया है, जिसमें केन्द्र तथा राज्यों के उत्तरदायित्व में भिन्नता का अभाव हो रहा है।" यद्यपि योजनाओं को लागू करने का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर है तथा केन्द्रीय सरकार उन की सलाह से योजनाओं का निर्माण करती है वास्तव में योजना आयोग (Planning Commission) केन्द्रीय स्तर पर होने के कारण केन्द्र की शक्ति में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council) जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना के कारण केन्द्रीय सरकार के देश के आर्थिक क्षेत्र पर नियन्त्रण में विशेष वृद्धि हुई है।
  15. **अखिल भारतीय सेवाएँ** - भारत में केन्द्र तथा राज्यों के शासन संचालन के लिए अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था की गई है। इन सेवाओं के अधिकारी केन्द्र तथा राज्य सरकार दोनों स्तरों पर काम करते हैं। परन्तु उन की भर्ती संघ लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) के परामर्श पर केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है। राज्यों में सभी उच्च पदों पर काम करने वाले अधिकारी अखिल भारतीय सेवाओं आई. ए. एस. (I. A. S.), आई. पी. एस. (I. P. S.) आदि सेवाओं के सदस्य होते हैं। यद्यपि इन सेवाओं के अधिकारी राज्यों में काम करते हैं तथापि उन पर केन्द्रीय सरकार का पूर्ण नियन्त्रण होता है।
  16. **मौलिक बातों में एकरूपता** - भारतीय संविधान के एकात्मक होने का एक और प्रमाण यह भी है कि इसके अनुसार शासन सम्बन्धी बहुत सी मौलिक बातों में एकरूपता पाई जाती है। जिस प्रकार भारतीय प्रशासन में एकरूपता लाने के लिए अखिल भारतीय सेवाओं, दीवानी एवं फौजदारी कानून तथा एक प्रकार की न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। समस्त देश में वित्तीय मामलों में एकरूपता स्थापित करने के लिए नियन्त्रक महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General) की नियुक्ति की गई है जो केन्द्रीय तथा राज्य सरकार के वित्तीय मामलों पर नियन्त्रण करता है। इसी प्रकार सारे देश के लिए एक चुनाव आयोग की व्यवस्था भी की गई है।

17. **केन्द्र राज्यों में सेना भेज सकता है** - संविधान के 45 वें संविधान संशोधन में 257 A अनुच्छेद की व्यवस्था की गई है। इस अनुच्छेद के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर केन्द्र सरकार राज्यों में हथियारबन्द सेना भेज सकती है। जैसा कि पंजाब तथा जम्मू कश्मीर की वर्तमान स्थिति से निपटने के लिए केन्द्र द्वारा सी. आर. पी. (C. R. P.) तथा अन्य हथियारबन्द सेनाएं भेजी गई हैं। ये सेनाएं केन्द्र के निर्देशन में काम करती हैं। कई लोग विशेषकर क्षेत्रीय राजनीतिक दल केन्द्र की इस शक्ति का प्रायः विरोध करते हैं तथा इसे संघवादी सिद्धान्तों के विपरीत कहते हैं। परन्तु देश की बिगड़ती हुई स्थिति और पथकतावादी शक्तियों को देखते हुए केन्द्र की इस शक्ति को अनुचित नहीं कहा जा सकता। कई बार राज्य सरकारें अपनी स्थानीय स्थिति से निपटने के लिए केन्द्र से सेना भेजने की प्रार्थना भी करती है।

## एकात्मक तत्वों की प्रभाविकता

उपरोक्त वाद-विवाद से यह सिद्ध हो जाता है कि यद्यपि भारत में सैद्धान्तिक रूप में संघात्मक संविधान की स्थापना की गई है, परन्तु व्यवहार में यह एकात्मक है। संविधान के निर्माताओं ने देश की परिस्थितियों को देखकर इस मिश्रित शासन प्रणाली को अपनाने का निर्णय किया क्योंकि वे न तो केन्द्रीय सरकार को इतना शक्तिशाली बनाना चाहते थे कि एक सम्पूर्ण एकात्मक राज्य की स्थापना हो जाए जिस में इकाइयों का कोई अस्तित्व न हो और न ही इकाइयों को इतनी शक्ति प्रदान करना चाहते थे कि वे केन्द्र की अवहेलना कर सकें। संघात्मक सिद्धान्तों को अपनाने का कारण यह था कि भारत जैसे विशाल देश में इस प्रणाली के अतिरिक्त किसी और शासन-पद्धति द्वारा शासन का संचालन क्षमतापूर्वक नहीं किया जा सकता।

यदि भारतीय संविधान का विस्तृत रूप में अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि हमारे संविधान का अधिकतर भाग भारत सरकार अधिनियम, 1935 पर आधारित है। मुख्यतः संघात्मक शासन प्रणाली इसी से प्रेरित होकर अपनाई गई क्योंकि 1935 के अधिनियम में प्रान्तों को प्रान्तीय स्वायत्तता (Provincial Autonomy) प्रदान की गई थी, इसलिए नवीन संविधान के अन्तर्गत इस व्यवस्था को बनाए रखना भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल समझा गया।

परन्तु ऐसा होते हुए भी एक शक्तिशाली केन्द्र के निर्माण की आवश्यकता को अनुभव किया गया जिससे एकात्मक शासन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला जिसके परिणामस्वरूप देश में केन्द्रीयकृत संघात्मक शासन प्रणाली (Centralised Federalism) की स्थापना की गई। इसके कई कारण थे जिन में से मुख्य निम्न प्रकार हैं:

1. **समय की आवश्यकता** - जब हम स्वतन्त्र हुए तो देश की स्थिति इतनी गम्भीर थी कि केवल एक शक्तिशाली केन्द्र ही इस का सामना कर सकता था। 1947 में देश का नापाक विभाजन हुआ। ब्रिटिश शासकों ने हमारी मातृभूमि का विभाजन ही नहीं किया बल्कि देश में साम्प्रदायिकता को इतना प्रोत्साहित किया कि समस्त भारत में साम्प्रदायिकता की अग्नि प्रचण्ड हो गई। देश के विभिन्न भागों में विशेषकर पंजाब और बंगाल में साम्प्रदायिकता पर आधारित इतने ज्यादा दंगे-फसाद हुए कि उसने विगत समय के अत्याचारों की कहानियों को मात कर दिया। मानव, मानव नहीं रहा। उसने दानवता का चोला पहन कर खून की भयानक होली खेली। पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थियों की दशा बड़ी शोचनीय थी। इसके साथ प्रांतवाद तथा भाषावाद जैसी अन्य समस्याएं उभर रही थीं जो राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधा थीं। ऐसी दशा में देश के निर्माताओं ने भारत को एक धर्म-निरपेक्ष एवं संगठित राज्य बनाने के लिए एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना करना उत्तम समझा क्योंकि एक शक्तिशाली केन्द्र द्वारा ही, इन सभी पथकतावादी प्रवृत्तियों का दमन करके एक शक्तिशाली, संगठित, धर्म-निरपेक्ष राज्य का निर्माण किया जा सकता था।
2. **दूसरे देशों का प्रभाव** - संविधान के निर्माताओं ने अमेरिका, स्विट्जरलैंड, आस्ट्रेलिया आदि के उदाहरणों से यह अनुभव कर लिया था कि केन्द्र के पास शक्तियों के कम होने के कारण किस प्रकार राज्यों तथा संघ में संघर्ष रहता है। वे भारत में ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना करना आवश्यक समझा ताकि आरम्भ से ही ऐसी व्यवस्था की जाए कि बाद में पश्चाताप न करना पड़े। इसके अतिरिक्त उनका यह भी विश्वास था कि जब तक शक्तिशाली केन्द्र का निर्माण नहीं किया जाता, राज्यों पर न तो नियन्त्रण किया जा सकता है और न ही उनके कार्यों एवं प्रशासन में समन्वय किया जा सकता है।
3. **राष्ट्रीय अखंडता** - भारत जब स्वतन्त्र हुआ तो केवल इसका दो भागों में ही विभाजन नहीं हुआ बल्कि भारत में लगभग 600 ऐसी रियासतें भी थीं, जिन्हें भारत में सम्मिलित करने की बड़ी कठिन समस्या थी। विशेषकर जब बहुत से देसी

- रियासतों के शासक स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना करने का स्वप्न देख रहे थे और ऐसा करने के लिए कुछ शासकों में परस्पर बातचीत चल रही थी। कुछ शासक भारत की अपेक्षा पाकिस्तान से मिलना चाहते थे। ऐसी दशा में पथक्तावादी तत्त्वों का दमन करने और इन देसी रियासतों को भारत में सम्मिलित करने के लिए शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना करना अनिवार्य था। यह केवल एक शक्तिशाली केन्द्र की व्यवस्था का ही परिणाम था कि हैदराबाद, जूनागढ़ तथा कश्मीर जैसे राज्यों को भारत में मिलाया जा सका।
4. **भारत का इतिहास** - संविधान के निर्माताओं के समक्ष भारत का इतिहास था कि जब भी केन्द्रीय सरकार दुर्बल हुई भारत का विघटन हुआ। भारतीय इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है कि जब भी केन्द्रीय सरकार कमजोर हुई, विदेशी आक्रमणकारियों ने आक्रमण किए तथा हमारे देश के धन तथा गौरव को खूब लूटा। वास्तव में भारत की पराधीनता का आरम्भ ही केन्द्रीय सरकार की कमजोरी से हुआ। यदि भारत में सदैव शक्तिशाली सरकार विद्यमान रहती तो यहां पर मुस्लिम और ब्रिटिश शासकों का शासन न होता और न ही हमारी मौलिक सभ्यता का पतन होता। हमारे देश के निर्माता अब भूत को दोहराना नहीं चाहते थे और इसी उद्देश्य से उन्होंने संविधान द्वारा शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की।
  5. **आर्थिक व सामाजिक विकास के लिए जरूरी** - भारत जब स्वतन्त्र हुआ तो हमारी आर्थिक और सामाजिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी। अंग्रेजों की भारतीय हितों के विपरीत आर्थिक नीति के कारण देश की अर्थ-व्यवस्था बड़ी अस्थिर तथा दुर्बल थी। देश में उद्योगों का अभाव, बेकारी, निर्धनता आदि बुराइयां विद्यमान थी। सामाजिक क्षेत्र में भी स्थिति निराशाजनक थी। लोग रंग, जन्म, जाति, नसल आदि के आधार पर बंटे हुए थे तथा देश में छुआ-छूत आदि सामाजिक कुरीतियां प्रचलित थी। ऐसी दशा में सम्पूर्ण देश में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन लाने की आवश्यकता थी ताकि सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करके तथा लोगों की आर्थिक दशा में सुधार करके उनका विकास किया जा सके। ऐसा करने के लिए एक शक्तिशाली केन्द्र की व्यवस्था अनिवार्य थी क्योंकि शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार द्वारा ही राष्ट्रीय विकास से सम्बन्धित योजनाओं को कुशलतापूर्वक लागू किया जा सकता है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने इस सत्यता को स्वीकार करते हुए एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना करने को श्रेष्ठ समझा ताकि सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति द्वारा देश का उत्थान किया जा सके।
  6. **भविष्य के लिए आवश्यक** - हमारे संविधान के निर्माता अति दूरदर्शी तथा देश की अखंडता के प्रति समर्पित थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता केवल उसी समय नहीं थी बल्कि यह सदैव रहेगी। भारत में विभिन्न भाषाओं एवं धर्मों में विश्वास रखने वाले लोग रहते हैं। उन सभी को एक लड़ी में पिरोकर रखने और पथक्तावादी तत्त्वों का दमन करने के लिए शक्तिशाली केन्द्र का होना आवश्यक है। जैसे भारत की वर्तमान स्थिति से सिद्ध हो गया कि असम आन्दोलन, खालिस्तान और गौरखालैंड जैसी अपथक्तावादी जैसे आन्दोलनों का सामना केवल संगठित तथा शक्तिशाली केन्द्र ही कर सकता है। हमारे संविधान के निर्माताओं ने ऐसी स्थितियों को पहले ही अनुभव किया था और इसका सामना करने के लिए एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना करना अनिवार्य समझा।
  7. **भारत एक देश है** - भारत में शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना करने का सबसे प्रमुख कारण था कि अमेरिका या कैंनेडा की तरह भारत संघ स्वतन्त्र राज्यों में परस्पर समझौते का परिणाम नहीं बल्कि यह एक देश है। इसके राज्य वास्तव में इसके प्रशासकीय प्रान्त हैं जिन्हें इससे पथक् (secede) होने का अधिकार नहीं है और न ही उनका अपना कोई पथक् अस्तित्व है। इसीलिए कई लेखक राज्यों के स्थान प्रान्त शब्द का प्रयोग करना श्रेष्ठ समझते हैं और संविधान में प्रान्तों के लिए राज्य शब्द के प्रयोग की आलोचना करते हैं क्योंकि प्रान्त के लिए राज्य शब्द का प्रयोग शास्त्रीय दृष्टि से उचित नहीं।

उपरोक्त कारणों से प्रभावित होकर ही संविधान के निर्माताओं ने एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की। शक्तिशाली केन्द्र केवल उस समय के लिए ही उपयोगी नहीं था बल्कि वर्तमान तथा भविष्य के लिए भी यह उपयोगी है। शक्तिशाली केन्द्र के कारण ही देश में आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति हो पाई है और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है। शक्तिशाली केन्द्र द्वारा ही पथक्तावादी प्रवृत्तियों का दमन किया जा सकता है। यदि केन्द्र में ऐसी व्यवस्था न होती केन्द्र की स्थापना करना भारतीय परिस्थितियों के लिए अनिवार्य था। पंडित नेहरू जी ने इन्हीं विचारों को समक्ष रखते हुए 20 अगस्त, 1947 को

संविधान सभा में शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में कहा था, "हम सभी इस विचार से सहमत हैं कि निर्बल केन्द्रीय शक्ति की स्थापना करना देश के हितों के लिए हानिकारक सिद्ध होगा क्योंकि यह देश में शान्ति स्थापित करने, सार्वजनिक हितों में समन्वय करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में समस्त देश का प्रतिनिधित्व करने में उपयोगी नहीं होगी।" अन्त में यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान एक मिश्रित संविधान है। यह संघात्मक होते हुए भी एकात्मक है तथा "यह न तो पूर्णतया संघात्मक है और न ही पूर्णतया एकात्मक बल्कि दोनों का सम्मिश्रण है।"

समय के साथ भारतीय प्रशासन के संघात्मक एवं एकात्मक पहलुओं में भी परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। आज एकदलीय प्रभुता एवं शक्तिशाली नेतृत्व के अभाव, प्रांतीय दलों की महता, प्रांतीय नेतृत्व, उदारवाद, विनिवेश, ग्लोबलाइजेशन आदि ने कहीं न कहीं इन पहलुओं को भी प्रभावित किया है। आज केन्द्र प्रांतों की स्वायत्तता की मांग को पूर्णतः नजर अंदाज नहीं कर सकता।

## अध्याय-5

# भारतीय प्रशासन की सामाजिक एवं आर्थिक विकास में भूमिका (Role of Administration)

---

किसी भी राष्ट्र का राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं प्रावैधिक विकास जिन महत्वपूर्ण साधनों पर निर्भर करता है उनमें लोक सेवाओं का स्थान सर्वोपरि है। ऐसा देखा गया है कि एशिया तथा अफ्रीका के देश जो कई सदियों की दासता के पश्चात स्वतंत्र हुए हैं, एवं वे देश जो दूसरों की अपेक्षा अधिक द्रुत गति से आगे बढ़ सके हैं उन सभी का विकास एक कुशल, उत्तरदायी तथा ईमानदार लोक सेवा के फलस्वरूप ही संभव बन सका है। विश्व में लिया विश्व युद्ध के पश्चात यह स्पष्ट हुआ कि नव-निर्मित राज्यों में कई राज्य दूसरों की अपेक्षा कम विकसित थे। इन कम विकसित राज्यों में भारत भी एक था। सीमित प्राकृतिक साधन तथा निरन्तर प्राकृतिक आपदाओं का सामना करता हुआ यह राज्य आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ था। एक कुशल एवं जागृत राजनीतिक नेतृत्व तथा दक्ष लोक सेवा के सम्मिलित प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत आज प्रगतिशील राज्यों में से एक है। यह नहीं कि इसने अपनी निर्धनता से जुड़ी समस्याओं को हल कर लिया है किन्तु यह भी सर्वविदित है कि जड़त्व एवं निरन्तर पिछड़ेपन की अवस्था को छोड़ यह राज्य आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों के कई आयामों में पूर्व से अधिक उन्नत है। यह प्रगति की यात्रा पूर्णतया संतोषप्रद तो नहीं मानी जा सकती तथापि एक ऐसा आधार अवश्य निर्मित हो चुका है जहाँ पर विकास के एक विशाल भवन का निर्माण करना पहले से अधिक सहज है।

यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में उदारीकरण एवं निजीकरण के पक्ष में काफी आवाज उठायी जा रही है तथापि विकास प्रक्रिया में राज्य एवं सरकार की भूमिका किसी प्रकार से संकुचित नहीं होती। हाल ही में नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो. अमृत्य सेन के सिद्धान्तों के अनुरूप भारत में एक ऐसी सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें निजीकरण एवं उदारीकरण के साथ-साथ एक उत्तरदायित्वपूर्ण एवं प्रतिबद्ध सरकार अपनी भूमिका दक्षता से निभा सके। आवश्यकता इन दोनों उन्मुखीकरणों के संश्लेषण की है लोक प्रशासन के माध्यम से न कि इनमें से किसी एक को चुनने की।

### प्रशासन का महत्व

#### (Significance of Administration)

प्रशासन किसी भी देश के समाज तथा उसकी राजनीति का एक अविभाज्य अंग होता है। समाज का स्वरूप तथा राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति प्रशासन के दर्शन में परिलक्षित होती है और इसका सबसे सजीव प्रमाण उस देश की लोक सेवाओं में आने वाला अधिकारी वर्ग होता है। ब्यूरोक्रेसी अथवा प्रशासन तन्त्र जिसे जन-साधारण प्रशासन का पर्यायवाची समझता है, किसी भी प्रशासन की रीति-नीतियों एवं पद्धतियों के चयन में निर्णायक भूमिका का निर्वाह करता है।

आधुनिक संसार में लोक सेवा के महत्व को बताते हुए ऑग (Ogg) ने संक्षेप में कहा है कि "सरकार का कार्य केवल राज्य सचिव तथा विभागों के अन्य प्रधानों, मण्डलों के सभापति, संसदीय अवर सचिवों, कनिष्ठ अधिपति तथा विशिष्ट अधिपति अर्थात् मन्त्रिगण द्वारा ही पूर्ण नहीं किया जा सकता। इन लोगों से यह आशा कभी नहीं की जाती कि वे कर एकत्र करें एवं लेखा परीक्षण, कारखानों का निरीक्षण, जनगणना आदि कार्य करें, हिसाब रखने, डाक के वितरण और समाचार ले जाने की तो बात तो दूर है। ऐसे बहुमुखी कार्य तो उन अधिकारियों तथा कर्मचारियों द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं जिन्हें स्थाई लोक सेवक कहा

जाता है। स्त्री-पुरुषों का यह विशाल समूह ही देश के एक छोर से दूसरे छोर तक विधि का पालन करता है और इन्हीं के द्वारा जन-साधारण नित्यप्रति राष्ट्रीय सरकार के निकट सम्पर्क में आता है। जनता की दृष्टि में इस निकाय का महत्त्व भले ही कम हो, किन्तु मन्त्रालयों के लिए काम करने वालों की यह सेना सरकार के उन उद्देश्यों को, जिनके लिए सरकार विद्यमान है, पूर्ण करने के लिए कम आवश्यक नहीं है।”

लोक सेवाएँ देश के सामाजिक जीवन को व्यवस्था और सुरक्षा प्रदान करती हैं। देश के विकास तथा शान्ति-व्यवस्था की दृष्टि से राजनीतिक स्तर पर जो निर्णय लिये जाते हैं, उनको कार्य रूप देकर लोक सेवाएँ देश की शान्ति-व्यवस्था को सुदृढ़ आधार प्रदान करती हैं। सरकार द्वारा व्यवस्थापिका के मंच पर तथा उसके बाहर जनता को अनेक प्रकार के आश्वासन दिए जाते हैं। इन आश्वासनों को पूरा करने के लिए लोक सेवाओं द्वारा योजनाबद्ध रूप से प्रयास किए जाते हैं। लोक सेवाएँ नीति-रचना में सहयोगी की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। वह अपने व्यापक प्रशासकीय ज्ञान तथा दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर प्रशासन के तकनीकी पक्ष तथा अन्य बारीकियों को मन्त्रियों के सामने प्रस्तुत करती हैं। आज लोक सेवाओं का महत्त्वपूर्ण कार्य राजनीतिक निर्णय को कार्यान्वित करना नहीं वरन् राजनीतिज्ञों को यह परामर्श देना है कि उनको क्या निर्णय लेना चाहिए। फिशर के कथनानुसार, प्रशासनिक अधिकारियों का परम्परागत कर्तव्य यह है कि जब निर्णय लिए जा रहे हों तो वे अपने राजनीतिक अध्यक्षां को बिना किसी भय तथा पक्षपात के अपना सारा अनुभव तथा जानकारी बता दें, चाहे उनका परामर्शमन्त्री के प्रारम्भिक दृष्टिकोण के अनुकूल हो अथवा न हो।

लोक सेवाएँ जन-सेवा के लिए समर्पित होती हैं। बी. सुब्रह्मण्यम ने लिखा है, “महाभारत के व्यास जैसे सन्त, वुडरो विल्सन जैसे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा चाणक्य जैसे राजनीतिशास्त्री या पाल एपलबी जैसे प्रशासनिक सुधारकों ने नागरिक कल्याण के लिए समर्पित लोक सेवा पर जोर दिया है।” लोक सेवाएँ जनतान्त्रिक व्यवस्था के सफल संचालन में अनेक दृष्टियों से सहयोग करती हैं। संसदीय देशों में मन्त्रिगण अपने कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए प्रत्येक कदम पर लोक सेवकों का सहारा लेना पड़ता है। सांसदों के प्रश्नों का उत्तर लोक सेवकों द्वारा तैयार किया जाता है। मन्त्री महोदय अपने अनेक दोषों को लोक सेवकों पर डालकर अपना तात्कालिक बचाव कर लेते हैं। उदाहरण, के लिए भारत में छठे लोकसभाई निर्वाचनों के समय (मार्च 1977) जब विरोधी दलों द्वारा कांग्रेस सरकार की परिवार नियोजन के लिए की गई ज्यादतियों का उल्लेख किया गया तो कांग्रेस ने अपने स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिए नौकरशाही पर दोषारोपण किया था। नारमन जे. पावेल का कहना है कि उत्तरदायित्व की सांविधानिक व्यवस्था में नौकरशाही का कार्य निश्चय ही बढ़ जाता है।

लोक सेवाएँ सरकार की प्रतिनिधि प्रकृति को वास्तविक बनाती हैं, ते जनहित की साधना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं तथा विकास कार्यों को बुद्धिपूर्वक संचालित करती हैं। लोक सेवाओं के बिना उत्तरदायी सरकार का कार्य-संचालन कठिन बन जाता है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री चैम्बरलेन ने लोक सेवकों को सम्बोधित करते हुए इस कठिनाई को स्वीकार कर कहा था कि “मुझे विश्वास है कि आप लोग हम लोगों के बिना भी विभाग का प्रशासन कर सकते हैं, किन्तु मुझे आशंका है कि हम लोग आपके बिना विभागीय कार्य नहीं कर सकेंगे।” लोक सेवाएँ सरकारी नीति की रचना और कार्यान्विति के प्रायः सभी स्तरों पर कार्य करती हैं।

राज्य के बढ़ते हुए कार्यों के साथ-साथ कार्मिक-वर्ग का योग एवं महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है। पहले जबकि सरकारें प्रबन्ध-नीति (Laissez Faire) में विश्वास करती थीं और अपने कार्यों को केवल समाज में कानून-व्यवस्था बनाए रखने तक ही सीमित रखती थीं, उस समय तो कर्मचारी वर्ग के कार्य भी इन थोड़े से उद्देश्यों की पूर्ति तक ही सीमित थे। परन्तु विज्ञान तथा शिल्पकला की प्रगति के वर्तमान युग में राज्य की क्रियाओं में असाधारण रूप से वृद्धि हुई है। आजकल तो राज्य जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त मानवीय कल्याण कार्यों में संलग्न रहता है। राज्य की क्रियाएँ अत्यन्त विस्तृत तथा विविध प्रकार की हो गई हैं। प्रत्येक स्थान पर राज्य वर्तमान रहता है और कोई भी नागरिक राज्य के प्रभाव और उसकी शक्तियों से बच कर नहीं रह पाता। राज्य उन पर सिविल सेवकों के माध्यम से नागरिकों तक पहुँचता है जो कि प्रशिक्षण-प्राप्त, निपुण, स्थायी तथा व्यावसायिक रूप से कार्य करने वाले वैतनिक अधिकारी होते हैं। अपनी व्यापक शक्तियों तथा कार्यक्षेत्र के कारण लोक सेवक वास्तविक सत्ताधारी बन जाते हैं। रेमजेम्योर की मान्यता है कि नीति-रचना, निर्णय-प्रक्रिया एवं निर्णयों की कार्यान्विति में लोक सेवकों का इतना प्रभाव रहता है कि मन्त्रिगण उनकी कठपुतली मात्र बनकर रह जाते हैं। लोक सेवाओं के प्रभावपूर्ण

योगदान के सम्बन्ध में लॉस्की ने लिखा है कि "यह सरकार को संचालित करती है, आम चुनाव के परिणामों के जोखिम को सन्तुलित करती है तथा निष्पक्ष रूप से व्यावहारिक है, उससे जन-इच्छा को जोड़कर राजनीतिक यंत्र में तेल देने का कार्य करती है।"

आधुनिक समाज की जटिल एवं पेचीदा समस्याओं को ऐसे अधिकारियों की देखरेख में नहीं छोड़ा जा सकता जो कि अप्रशिक्षित, अवैतनिक, अशिक्षित तथा अनिच्छुक हों। 17वीं तथा 18वीं शताब्दी की वह कार्मिक व्यवस्था, जिसमें कि अप्रशिक्षित तथा अवैतनिक वर्ग से सिविल कर्मचारी हुआ करते थे, वर्तमान समय के लिए पूर्णतया अनुपयुक्त है। आधुनिक समय में तो कुशल, प्रशिक्षण-प्राप्त तथा सुशिक्षित व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता है जो कि राज्य की सेवा कर सके तथा योजनाओं एवं कार्यक्रमों को लागू कर सके। कार्यों का विशिष्टीकरण तथा विभाजन वर्तमान वैज्ञानिक युग की विशेषता बन गया है। एक ही आदमी सभी कार्यों व उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं कर सकता। अतः प्रशासन के विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए तकनीकी योग्यता-प्राप्त कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं। आजकल तो सिविल सेवकों के एक व्यावसायिक वर्ग के द्वारा शासन-कार्य चलाया जाता है। ये कुशल प्रशासक तथ्य एवं आँकड़े एकत्र करते हैं, अनुसंधान करते हैं और जनता की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए योजनाएँ बनाते हैं। यह कहना ठीक है कि "लोक प्रशासन में कार्मिक वर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर लोक सेवाओं का महत्त्व निम्नानुसार व्यक्त किया जा सकता है-

1. लोक सेवाएँ सामाजिक जीवन को व्यवस्थित तथा सुरक्षित रखती हैं।
2. मंत्रियों द्वारा जनता को दिये गये आश्वासनों को लोक सेवाओं द्वारा मूर्त रूप दिया जाता है अथवा उन्हें व्यवहार में क्रियान्वित किया जाता है।
3. लोक सेवाएँ नीति-निर्माण में भी भूमिका का निर्वाह करती हैं।
4. लोक सेवाओं को 'सभ्यता के संरक्षक' के रूप में स्वीकार किया जाता है। वे भावी पीढ़ियों के लिए सभ्यता को सुरक्षित रखने में अहम अपनी भूमिका का निर्वाह करती हैं।
5. लोक सेवाएँ जन-सेवा को समर्पित होती हैं। उनका प्रथम और सर्वोपरि लक्ष्य जन-हित की भावना को साकार करना होता है।
6. प्रजातन्त्र की सफलता में लोक सेवाओं का अपूर्व महत्त्व है।

## विकासशील समाज में लोक प्रशासन की प्रकृति

### (Nature of Public Administration in a Developing Society)

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के देश जिन्हें तृतीय विश्व के देशों की संज्ञा दी जाती है, विकासशील देशों की श्रेणी में आ गए हैं। इन देशों के संक्रमणकालीन समाज में प्रशासन की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनमें से जिन देशों में पहले नौकरशाही का संगठन प्रभावहीन तथा प्राथमिक था वहाँ अब इसका निरन्तर विकास हो रहा है। विकासशील देशों में सेवीवर्ग प्रशासन के विकास के साथ-साथ कुछ निम्नलिखित सामान्य समस्याएँ पायी जाती हैं-

1. बाह्य आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा तथा आन्तरिक व्यवस्था की स्थापना करना।
2. शासन के औचित्य के प्रति सहमति बनाए रखना।
3. विभिन्नतापूर्ण धार्मिक, साम्प्रदायिक तथा क्षेत्रीय तत्त्वों को राष्ट्रीय राजनीतिक समुदाय में एकीकृत करना।
4. केन्द्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय सरकारों के बीच तथा सरकारी सत्ता और निजी क्षेत्र के बीच औपचारिक शक्तियों तथा कार्यों को संगठित एवं वितरित करना।
5. परम्परागत सामाजिक तथा आर्थिक निहित स्वार्थों को हटाना।
6. आधुनिक एकीकृत ज्ञान एवं संस्थाओं का विकास करना।



7. मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक सुरक्षा को प्रोत्साहित करना।
8. राष्ट्रीय बचत एवं अन्य वित्तीय स्रोतों को गतिशील बनाना।
9. विनियोग का बुद्धिपूर्ण आवंटन तथा सुविधाओं एवं सेवाओं का कुशल प्रबन्ध करना।
10. आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सहभागिता को सक्रिय बनाना।
11. अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में एक सुरक्षित स्थिति प्राप्त करना।
12. आतंकवाद का मुकाबला करना आदि।

उक्त सभी समस्याओं के निराकरण के लिए अनुभवी राजनीतिज्ञों के कुशल नेतृत्व के साथ-साथ सेवीवर्ग प्रशासन की दक्षता, योग्यता और कर्मठता नितान्त वांछनीय है।

### सामान्य विशेषताएँ

विकासशील देशों की संक्रमणकालीन लोक सेवाओं या सेवीवर्ग प्रशासन की कुछ सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- (1) यहाँ का सेवी वर्ग प्रशासन धर्म, साम्प्रदायिकता, जाति, जनजाति, वर्ग एवं संस्कृति आदि के प्रभावों तथा दबावों से सदैव ग्रसित रहता है। स्थानीय राजनीतिज्ञ एवं नौकरशाही अपनी शक्ति-स्थिति के साथ किसी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहते। अतः वर्तमान में यह दबाव एक गंभीर समस्या बन गया है।
- (2) प्रायः सभी विकासशील देश कभी यूरोपीय साम्राज्यवाद के अंग थे। यहाँ की नौकरशाही के संगठन तथा कार्यों का स्वरूप साम्राज्यवादी देशों द्वारा निर्धारित किया गया था और तभी की परम्पराएँ यहाँ अब तक चली आ रही हैं जिनकी परिवर्तित परिस्थितियों, चुनौतियों तथा वातावरण में उपयोगिता नहीं रही है। फिर निहित और प्रतिक्रियावादी तत्त्वों द्वारा इन परिवर्तनों का विशेष किया जा रहा है।
- (3) विकासशील देशों की नौकरशाही में निहित स्वार्थों की समस्या बनी हुई है, इसी कारण पुराने लोक सेवक सत्ता और महत्त्व के पदों पर अपना वर्चस्व जमाये हुए हैं अथवा उच्च वर्ग के लोग उच्च पदों को घेरे हुए हैं। ये निहित स्वार्थ सेवीवर्ग प्रशासन में वांछनीय परिवर्तन नहीं होने देते। इन देशों की नौकरशाही कभी-कभी समाज के उन वर्गों का प्रतिनिधित्व करने लगती है जिसके विचारों को नई पीढ़ी त्याग चुकी है। जब नौकरशाही पदों पर प्रशिक्षित सैनिक अथवा उद्योगपति आ जाते हैं तो उसके विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है। विकासशील देशों में अधीनस्थ पदों पर प्रवेश की परम्परा, वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति, कार्यक्रम पूर्ण उत्साह की अपेक्षा निष्क्रिय निरपेक्षता पर जोर तथा कार्यकाल की सुरक्षा आदि बातें पाई जाती हैं। इनके परिणामस्वरूप यथास्थिति को बनाए रखने का वातावरण पाया जाता है। यह स्थिति परिवर्तन और सामंजस्य की विरोधी होती है। इन देशों का अभिजात्य वर्ग अपनी शक्तियाँ तथा विशेषाधिकार त्यागने को राजी नहीं है।
- (4) इन देशों में व्यावसायिक तथा तकनीकी सेवीवर्ग के लिए सन्तोषजनक अभिप्रेरण नहीं रहता। इसके विपरीत इन देशों के तकनीकी विकास के लिए विशेषज्ञ अधिकारियों की भारी आवश्यकता रहती है। सेवीवर्ग व्यवस्था पर गैर-विशेषज्ञों तथा निहित स्वार्थों का प्रभाव रहने के कारण डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि विशेष अधिकारियों को उपयुक्त पद प्राप्त नहीं हो पाते और वे सरकारी सेवा में अधिक समय नहीं रह पाते अथवा असन्तुष्ट बने रहकर अपने निजी व्यवसायों की ओर अधिक ध्यान देते हैं। इन देशों में मुख्य पदों पर गैर-विशेषज्ञ अधिकारी व्यावसायिक तथा विशेषज्ञ अधिकारियों को प्रवेश नहीं पाने देते, फलतः नीति-निर्माता राजनीतिज्ञ प्रायः विशेषज्ञ अधिकारियों से विचार-विमर्श नहीं कर पाते।
- (5) इन देशों का सेवीवर्ग भ्रष्टाचार, लालफीताशाही और अकर्मण्यता का शिकार रहता है।
- (6) सेवीवर्ग और साधारण जनता के बीच अत्यधिक दूरी बनी रहती है।

### सामाजिक-आर्थिक विकास पर प्रशासन का प्रभाव

विकासशील देशों में लोक सेवाओं या सेवीवर्ग प्रशासन को अनेक परिवेशात्मक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसे

आर्थिक विकास, सामाजिक सुधार, राजनीतिक स्थिरता, शिक्षा का प्रसार, समाज सुरक्षा आदि कार्यों की दिशा में उल्लेखनीय दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। देश का नियोजित आर्थिक विकास भी अनेक नए दायित्व सौंपता है। विकासशील देशों का एक दुःखद तथ्य यह है कि यहाँ वांछनीय परिवर्तन लाने वाला मुख्य यन्त्र सरकार होती है तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ सरकार के नियन्त्रण और निर्देशन के अधीन ही कुछ कार्य कर पाती हैं। अतः नौकरशाही का कार्यक्षेत्र एवं प्रभाव क्षेत्र बढ़ जाता है। अपने परिवर्तित दायित्वों का निर्वाह करने के लिए नौकरशाही के संगठन तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना वांछनीय है। इस सम्बन्ध में कोठारी एवं राय का कहना सही है कि "यदि एक प्रमुख सामाजिक परिवर्तनकर्ता के रूप में सरकारी नौकरशाही को सफल होना है तो इसे कुछ परम्परागत दृष्टिकोण एवं काम के तरीकों को छोड़ना होगा। जिस जनता पर इसे शासन करने की आदत थी उसके प्रति दृष्टिकोण एवं काम के तरीकों को छोड़ना होगा। जिस जनता पर इसे शासन करने की आदत थी उसके प्रति दृष्टिकोण बदल कर सहभागिता निर्मित करनी होगी।" विकासवादी नीतियों के कारण सेवीवर्ग प्रशासन की रूप-रचना पर मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं-

1. जन-आकाँक्षाओं के प्रति सजग दृष्टिकोण - विकासशील देशों की नौकरशाही काफी संवेदशील होती है। यह सदैव सजग तथा सतर्क प्रतीक्षा और शंका की दृष्टि से नौकरशाही कार्यों का मूल्यांकन करते हुए यह जानने का प्रयत्न करती है कि नौकरशाही उनकी समस्याओं के समाधान तथा विकास की दृष्टि से क्या कर रही है। साधनहीन, क्षमताहीन जन-साधारण अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं नहीं कर पाता है। अतः नौकरशाही से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी नीति एवं कार्यक्रम तय करते समय जन-आकाँक्षाओं का समुचित ध्यान रखे।
2. जनसाधारण के साथ घनिष्ठ सहयोग - पं. जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि "प्रशासनिक अधिकारी, चाहे किसी भी स्तर का हो, करोड़ों-करोड़ों जनों से सम्बन्ध रखता है। इन लोगों की समस्याएँ कार्यालय में बैठे-बैठे आदेश प्रसारित करने मात्र से दूर नहीं हो जाती वरन् इनके समाधान के लिए, उनके करोड़ों हाथों का सहयोग आवश्यक है।" ऐसी स्थिति में आम जनता को कार्य करने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है। नौकरशाही को जनता के शासन की भाँति नहीं वरन् सेवक तथा सहयोगी की भाँति व्यवहार करना चाहिए।
3. उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण - विकासशील देशों की नौकरशाही व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के प्रति उत्तरदायी रहकर कार्य करती है। यहाँ की कार्यपालिका राजनीतिक अस्थिरता की समस्या से ग्रस्त रहकर जन-आकाँक्षाओं की पूर्ति का प्रयास करती है। विकास-कार्यों के क्षेत्र में की गई उपलब्धियाँ उनके जन-समर्थन तथा राजनीतिक स्थिरता का आधार बनती हैं। अतः यह आवश्यक है कि नौकरशाही निरन्तर मन्त्रियों के निर्देशन तथा नियन्त्रण में रहकर कार्य करे और विकास कार्यों में सफलता का सेहरा स्वयं के सिर बाँधने की अपेक्षा सारा श्रेय मन्त्रियों को ही लेने दे।

## सामाजिक-आर्थिक विकास में प्रशासन की भूमिका

प्रशासन लोक सेवा को 'सरकार की चतुर्थ शाख' (Fourth Branch of Government) कहा जाता है। यह निम्नलिखित कार्यों का सम्पादन करती है-

1. **सामाजिक परिवर्तन को क्रियान्वित करना (Implementing Social Change)** - प्रजातन्त्रात्मक सरकार का सच्चा मापदण्ड बदलती हुई सामाजिक आवश्यकताओं को पहचानना और उनके अनुसार कार्य करना है। वर्तमान समय में सरकार के कार्य पर्याप्त विस्तृत हो गए हैं क्योंकि जनता की माँग है कि सामान्य कल्याण को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक प्रत्येक कार्य सरकार द्वारा किया जाना चाहिए। आज समाज के प्रत्येक वर्ग के विभिन्न कार्य सरकार ने अपने ऊपर ले लिए हैं। उद्योगों में कार्य करने वाले मजदूर अपनी सुरक्षा के लिए सरकार की ओर देखते हैं। स्वयं उद्योग भी बहुत कुछ सरकारी टेकों पर भी निर्भर होते हैं। इस प्रक्रिया में सरकार विरोधी पक्षों के बीच मध्यस्थ से अधिक बन गई है। इसने सभी नागरिकों के लिए सुरक्षा और सद्जीवन प्राप्त करने का उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया है। यह परिवर्तन जनता की स्वीकृति से हुआ है, किन्तु परिवर्तन स्वयं अपने आपको क्रियान्वित नहीं करता। राष्ट्रपति विल्सन का कहना था कि संविधान को क्रियान्वित करना उसे बनाने से अधिक कठिन है। संस्थाओं में नवीन प्रयोगों के लिए आवश्यक कुशलता और अनुभव लोक सेवा द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए। पिफनर तथा प्रीरथस के कथनानुसार, "इस अर्थ में नौकरशाही एक सामाजिक साधन है जो व्यवस्थापिका के अभिप्राय और उसकी पूर्ति

के मध्य स्थिर दूरी को भरती है।" जब एक बार व्यवस्थापिका निर्णय ले लेती है तो नौकरशाही उसे क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक कदम उठाती है। विभिन्न सरकारी विभागों की नीतियों एवं कार्यों पर विभिन्न हित-समूहों का प्रभाव पड़ता है। विभिन्न हित समूह और दबाव समूह, नौकरशाही के इस कार्य को प्रभावित करते हैं। जब नौकरशाही व्यवस्थित तकनीकों का विकास कर लेती है तो यह विशेष हितों के दावों का विरोध करने की शक्ति प्राप्त कर लेती है।

2. **सामाजिक आर्थिक नीति की सिफारिश करना (Recommending Policy)** - नौकरशाही का सामाजिक-आर्थिक नीति-निर्धारण में भी योगदान होता है। व्यवस्थापिका बहुत कुछ प्रशासनिक विशेषज्ञों पर आधारित रहती है क्योंकि सार्वजनिक नीति में प्रायः तकनीकी जटिलताएँ आ जाती हैं जिनमें विशेष ज्ञान और सोच-विचार की आवश्यकता होती है। व्यवस्थापिका के अधिसंख्यक सदस्य अनुभवहीन और नौसिखिए होते हैं जिन्हें बहुत कुछ विशेषज्ञों के निर्णयों पर निर्भर रहना होता है। उदाहरण के लिए व्यवस्थापिका सेना सम्बन्धी निर्णय लेना चाहे तो इसके लिए इसे सम्बन्धित विशेषज्ञों से पूछताछ करनी होगी। मैक्स वेबर का कहना था कि आधुनिक राज्य पूर्ण रूप से नौकरशाही पर निर्भर हैं। नीति-निर्माण पर नौकरशाही का प्रभाव व्यवस्थापिका की प्रक्रिया के दो सोपानों में पड़ता है। प्रथम, नौकरशाही को प्रायः व्यवस्थापन की पहल करने तथा प्रस्तावित विषयों पर व्यवस्थापिका को सिफारिश करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। द्वितीय, व्यवस्थापिका द्वारा पारित व्यवस्थापन को क्रियान्वित करने में नौकरशाही कुछ स्वायत्तता का व्यवहार करती है। नौकरशाही का परामर्श बहुत महत्त्व रखता है क्योंकि वह जानती है कि नीति को किस प्रकार क्रियान्वित किया जाएगा। यदि नीति के लक्ष्य उपलब्ध न किए जा सकें तो इसकी जानकारी भी नौकरशाही द्वारा ही प्रदान की जा सकती है। वह उपयुक्त विकल्प प्रस्तुत करने में भी समर्थ है।
3. **व्यवस्थापन करना (Framing Legislation)** - प्रशासनिक शाखा द्वारा पर्याप्त मात्रा में व्यवस्थापन की दिशा में भी पहल की जाती है। कहा जाता है कि अमेरिकी कांग्रेस में आधे से अधिक व्यवस्थापन कार्यपालिका विभागों और अभिकरणों में जन्म लेते हैं तथा राष्ट्रपति द्वारा बजट-ब्यूरो के माध्यम से समन्वित किये जाते हैं। लोक प्रशासन का एक प्रतिनिधित्वपूर्ण कार्य यह है कि इसकी नीति समूह के हितों को अभिव्यक्त करती है। अमेरिकी कांग्रेस द्वारा किया जाने वाला व्यवस्थापन प्रशासनिक अधिकारियों की सिफारिश पर आधारित होता है। उच्च स्तर के अधिकांश नौकरशाहों का समय व्यवस्थापन से सम्बन्धित कार्यों में व्यतीत होता है, ताकि प्रशासनिक कार्यों को सरल बनाया जा सके। प्रशासनिक शाखा प्रस्तावित विषय के बारे में देश भर के सम्बन्धित समूहों से पूछताछ करती है। प्रशासक व्यवस्थापिका में स्थित अपने मित्रों में विचार-विमर्श करते हैं। अधिकांश अभिकरणों के व्यवस्थापिका में अपने हितैषी होते हैं जो बदले में अभिकरण से कुछ लाभ उठा लेते हैं। इस प्रकार का सम्पर्क व्यवस्थापिका में प्रशासनिक प्रस्तावों की स्वीकृति को सफल बना देता है।
4. **व्यवस्थापिका को प्रभावित करना (Influencing Legislature)** - नौकरशाही का प्रभाव नीति पर उस समय पड़ता है जब व्यवस्थापिका पर विचार-विमर्श किया जा रहा हो। विशेषज्ञों की आवश्यकता नौकरशाही के योगदान को महत्त्वपूर्ण बना देती है। मुख्य विषयों पर व्यवस्थापिका की समितियों प्रशासनिक विभागों से लिखित वक्तव्य मँगा लेती हैं। प्रशासक कार्यपालिका की उन गोपनीय बैठकों में भाग लेते हैं जिनमें प्रमुख निर्णय लिए जाते हैं। विभागों एवं अभिकरणों द्वारा समितियों को आँकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं ताकि व्यवस्थापन के समर्थन में बोलते समय वे उनका प्रयोग कर सकें। प्रशासक सम्मेलन-समितियों में प्रतिनिधित्व अथवा भाग लेते हैं ताकि उनके विभागों को प्रभावित करने वाले विषयों पर परामर्श दे सकें। अपने-अपने विभागों के सचिवों का परामर्श बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। नौकरशाही प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण वातावरण में कार्य करती है। शक्ति, सम्मान और अस्तित्व के लिए लगातार संघर्ष चलता रहता है। अधिक कार्यक्रमों का अर्थ है कि उनके लिए अधिक धन एकत्रित किया जाए और साथ ही कार्यक्रम में लाभान्वित होने वाले समूह का समर्थन भी प्राप्त किया जाए। प्रशासन को न केवल नीति-निर्माण में अधिक भाग लेना पड़ता है वरन् उसे नीति को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक राजनीतिक शक्ति का संगठन भी करना होता है। जिन सेवाओं को प्रमुख हित-समूहों का अनुशासित सहयोग नहीं मिलता वे संतोषजनक रूप से कार्य नहीं करते। सरकारी अभिकरण और जनता के बीच पारस्परिक लाभ के कारण ही सम्बन्ध स्थापित होता है। जनता को आवश्यक सेवाएँ प्राप्त होती हैं जबकि नौकरशाही स्तर और शक्ति प्राप्त करती है।

5. **प्रतिद्वन्दी हितों के बीच समायोजन (Weighing Competing Interest)** - नौकरशाही व्यवस्थापन कार्य में कुछ विवेक से काम लेती है और इस प्रकार उसकी शक्तियों में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। प्रशासक कभी-कभी सार्वजनिक हित को अपने कार्यों का आधार बनाकर अधिक विवेक का प्रयोग करने लगते हैं। इस सामान्य हित के पीछे विशेष हितों को गौण बना दिया जाता है।

## लोक सेवक की भूमिका

संक्षेप में हम उन महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों का विवेचन कर रहे हैं जो कि लोक सेवकों की भूमिका से जुड़े रहते हैं।

- विधान निर्माण में सहायता** - राजस्थान विधान सभा में पारित होने वाले सभी विधेयकों का मसौदा लोक सेवकों द्वारा ही तैयार किया जाता है। इनके लिए राज्य का विधि विभाग प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं, किन्तु भूमिका उन सभी विभागों के लोक सेवकों की होती है जिनके विषय से संबंधित विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। लोक सेवक प्रत्यायोजित विधान की शक्तियों का उपयोग करते हैं तथा इस संबंध में आवश्यक नियम बनाने में मुख्य भूमिका निभाते हैं।
- केन्द्रीय सरकार को प्रशासनिक सहायता** - सरकार का अपना एक सचिवालय होता है जिसमें कि सहायता प्रदान करने के लिए एक सचिव होता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का सदस्य होता है। कई अन्य अधीनस्थ अधिकारी भी सरकार को उसके कार्यों के निर्वहन में सहायता प्रदान करते हैं। इसी प्रकार प्रधानमंत्री सचिवालय होता है जिसके बारे में सभी मंत्रियों को भी सहायता प्रदान करने हेतु सैंकड़ों कर्मचारी कार्यरत होते हैं।  
लोक सेवा के सदस्यों का उत्तरदायित्व है कि वे मंत्रियों को प्रशासनिक कार्य करने हेतु आवश्यक सहायता एवं परामर्श प्रदान करें, क्योंकि मंत्रिमंडल एवं विभिन्न विषयों के मंत्रियों की नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है, और इस प्रक्रिया में आवश्यक सुझाव एवं राय देना लोक सेवकों का कर्तव्य है। इसी प्रकार संसद में मंत्रियों के कार्यों को सुलभ बनाने हेतु आवश्यक सूचनाओं व प्रमाण देने का उत्तरदायित्व भी लोक सेवकों का होता है।
- न्यायिक प्रशासन में सहायता** - सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, जिला एवं सत्र न्यायालय, अधीनस्थ न्यायालय एवं अन्य विशेष न्यायालयों के प्रशासन को सुलभ बनाने के लिए इन न्यायालयों में प्रशासनिक कार्य सम्पन्न करने हेतु तथा न्यायालय के निर्णयों को लागू करने के लिए लोक सेवकों की भूमिका अहम होती है। बिना प्रशासनिक एवं पुलिस तंत्र की सहायता के न्यायालय कार्य नहीं कर सकते हैं, तथा इस संबंध में प्रदत्त प्रशासनिक सहायता न्यायिक व्यवस्था को सशक्त बनाने में उपयोगी होती है।
- नियोजन** - नियोजन तंत्र की व्यवस्था संचालन में लोक सेवकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। योजनाओं का निर्माण तथा उनके निष्पादन में प्रबोधन (मोनिटरिंग) लोक सेवकों की कुशाग्रता पर ही निर्भर करती है।
- वित्तीय प्रशासन** - बजट के निर्माण, संसद में उसको प्रस्तुत करने, बजट के अंतिमीकरण, उसके निष्पादन, शिक्षा एवं अनुसंधान आदि से संबंधित कार्यों एवं राज्य की आय के स्रोतों की अभिवृद्धि एवं वित्त पर नियंत्रण एवं नियमन की भूमिका लोक सेवकों के माध्यम से ही होती है।
- राज्य का समग्र विकास** - शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, संचार, कृषि, सिंचाई, उद्योग, ग्रामीण विकास आदि के वैकासिक क्षेत्रों में निरन्तर प्रगतिशील नीतियों का बनाना व उनको लागू करने में लोक सेवकों की महती भूमिका रहती है।  
सचिवालय स्तर पर स्थित विभिन्न विभाग, विकास प्रशासन से जुड़े विभिन्न निदेशालय, संभागीय स्तर पर कार्यरत विभागों के कार्यालय, जिला ग्रामीण विकास अभिकरण, विभिन्न विभागों के जिला स्तरीय कार्यालय जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण जिलाधीश कार्यालय है आदि के माध्यम से वैकासिक कार्यक्रमों को निष्पादित किया जाता है। केन्द्रीय एवं जिला स्तरीय अधिकारी अपने अधीन उप-जिला स्तर एवं खण्ड एवं ग्राम स्तर पर होने वाले वैकासिक कार्यक्रमों को दिशा प्रदान करते हैं तथा उस क्षेत्र में होने वाली प्रगति का निरन्तर प्रबोधन करते हैं।
- स्थानीय शासन संस्थाओं का संचालन एवं नियंत्रण** - पंचायती राज संस्थाएँ, नगरपालिकाएँ, नगरपरिषद, नगर विकास न्यास व विकास प्राधिकरण जैसी संस्थाओं के माध्यम से भारत के गांवों व नगरों का व्यवस्थित विकास करने का उत्तरदायित्व लोक सेवकों का ही है। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के माध्यम से राजस्थान का नागरिक शासकीय तंत्र से जुड़ गया है तथा इसकी कुशलता पर ही जनता का विश्वास निर्भर करता है। स्थानीय शासन संस्थाओं में

- कुशलता का स्तर अभी अपेक्षा से काफी कम है। अतः 73वें एवम् 74वें संविधान संशोधन को कुशलता से लागू करने का उत्तरदायित्व लोक सेवकों का ही है।
- 8, **जनता के प्रति संवेदनशीलता एवं प्रशासन में जन-सहभागिता** - एक संवेदनशील प्रशासन जनता की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं को ध्यान में रख कर अपनी गतिविधियाँ संचालित करता है। प्रशासनिक नीतियों व योजनाओं के निर्माण एवं उनको लागू करने में जनता की भावनाओं का ध्यान परमावश्यक है। जनता की शिकायतों को दूर करना तथा उनमें प्रशासन के प्रति आस्था उत्पन्न करना भी लोक सेवकों का ही उत्तरदायित्व है। जनता की प्रशासन में सहभागिता जितनी अधिक होगी, उतनी ही प्रशासन में गत्यात्मकता एवं यथार्थता आयेगी। जनता की सहभागिता की क्षमता एवं उसकी इच्छा-शक्ति की अभिवृद्धि के लिए जनता की सहभागिता के अधिकतम अवसर प्रदान किये जाने चाहिए तथा लोक सेवक जनता से विकास प्रक्रियाओं में ही नहीं नियामकीय प्रशासन में भी सीधे व निरन्तर सम्बन्ध रखे तभी जनतंत्रात्मक प्रशासन की भावनापूर्ण हो सकती है।
- 9, **सामाजिक न्याय सुलभ कराना** - निर्धन, पिछड़े, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के सदस्यों, बेकार व भूमिहीन, विकलांग, निरीह महिलाएँ तथा बालकों के विकास पर अधिक भलीभांति एवं एकाग्रता से ध्यान देने का उत्तरदायित्व लोक सेवकों का ही है। यह समाज के विशेष वर्ग हैं तथा इनको प्राथमिकता प्रदान करना कल्याणकारी राज्य का प्रमुख उत्तरदायित्व है।
- 10, **कानून व व्यवस्था का सुचालन** - राज्य में कानूनों का पालन ईमानदारी व कुशलता से हो, जन-जीवन सुरक्षित हो, जनता में सुरक्षा की भावना विकसित हो, अपराध पर नियंत्रण हो, कुशल विधि पालन हो एवं सामान्य व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित महसूस करे, यह सुनिश्चित करना राज्य सरकार तथा जिला एवं स्थानीय सरकार से जुड़े सभी लोक सेवकों का उत्तरदायित्व है। पुलिस प्रशासन की सुस्तैदी एवं ईमानदारी से एक ऐसा वातावरण बनाया जा सकता है कि जिसमें कि अपराधी भयभीत तथा सहज सामान्य व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित अनुभव करे। इस हेतु वर्तमान प्रशासन-तंत्र में एक नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न होना चाहिए जिसमें कि पुलिस प्रशासन शक्तिशाली वर्गों का नहीं, किन्तु निर्बलों का मित्र बन सके।
- 11, **विविध कार्य** - चुनावों को कुशलता से सम्पन्न कराना, जनगणना प्रवीणता से संचालित करना, राज्य की नीतियों का आवश्यक प्रचार-प्रसार करना, केन्द्र-राज्य संबंध में व अन्य राज्यों के साथ राज्य के संबंधों को विवेकपूर्ण ढंग से संचालित करना आदि कुछ ऐसे कार्य हैं जिन्हें लोक सेवक कुशलता से सम्पादित करते हैं। संक्षेप में ऐसे कोई भी जन-जीवन से जुड़े कार्य नहीं जोकि लोक सेवकों के उत्तरदायित्वों की परिधि से परे हों। एक प्रशासनिक राज्य एवं कल्याणकारी राज्य की भूमिका निभाने वाले प्रदेश की सरकार में नियुक्त लोक सेवक उन सभी उत्तरदायित्वों का वहन करते हैं जो कि जन-कल्याण एवं जन-सुरक्षा से जुड़े हों। आवश्यकता इस बात की है कि इन महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को ईमानदारी से निभाया जाये तथा प्रत्येक लोक सेवक की शैजी एवं व्यवहार में "लोक" अर्थात् "जनता" की सेवा को तन्मयता से करने की भावना झलकती हो।

## Unit - II

### अध्याय-6

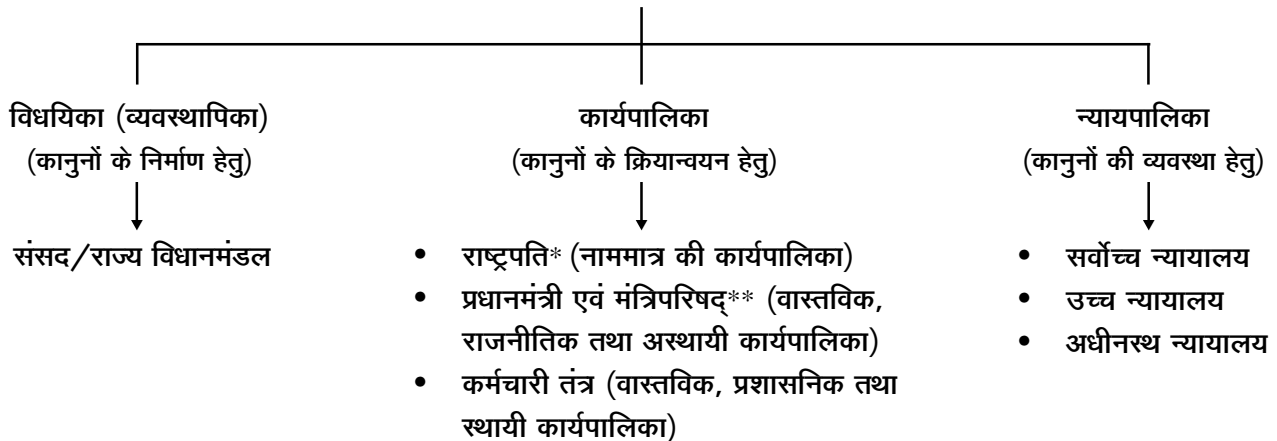
# संघीय कार्यपालिका : राष्ट्रपति

हमारे संविधान-निर्माताओं ने ब्रिटिश प्रणाली के अनुरूप उत्तरदायी अथवा संसदीय प्रणाली की कार्यपालिका अपनायी है और तदनु रूप मन्त्रिमण्डलात्मक प्रणाली का प्रावधान किया है। संसदीय सरकार में राष्ट्रपति संवैधानिक अध्यक्ष होता है, लेकिन वास्तविक शक्ति मन्त्रिपरिषद् में निहित होती है जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होता है। डॉ. अम्बेडकर के कथनानुसार हमारा राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु शासन नहीं करता। वह राष्ट्र का प्रतीक है। उसका शासन में यह स्थान है कि उसके नाम पर राष्ट्र के निर्णय घोषित किये जाते हैं।

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति पद का विशेष महत्व है। इसके चार प्रमुख कारण हैं। प्रथम, राष्ट्रपति ऐसे समूह द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं जिसमें सम्पूर्ण देश के प्रतिनिधित्व का समावेश होता है। इसमें राज्यों के विधानमण्डलों के सदस्यों के अतिरिक्त संसद के दोनों सदनों के सदस्य भी सम्मिलित होते हैं। द्वितीय, राष्ट्रपति के द्वारा जो शपथ ली जाती है वह संविधान की रक्षा के रूप में होती है। तीसरा, राष्ट्रपति के विरुद्ध संविधान में महाभियोग की व्यवस्था की गयी है। चौथा, देश के प्रतिरक्षा बलों के प्रधान के रूप में राष्ट्रपति का महत्व बढ़ जाता है।

#### भारत की शासन व्यवस्था

##### सरकार के अंग



\* राज्यों के राज्यपाल

\* राज्यों के मुख्यमंत्री

जिस प्रकार संघ सरकार की अपनी व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका है उसी प्रकार राज्यों के विधानमंडल (विधानसभा तथा विधान परिषद्) व्यवस्थापिका के रूप में तथा राज्यपाल, मुख्यमंत्री एवं मंत्रिपरिषद्, कार्यपालिका की भूमिका निभाते हैं।

## संघ-कार्यपालिका

केन्द्र सरकार के कर्तव्यों को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए कार्यरत कार्यपालिका वास्तव में सम्पूर्ण देश की जनभावनाओं एवं आकांक्षाओं की प्रतीक तथा नेतृत्वकर्ता संस्थाएँ हैं। परन्तु अध्याय में संघ स्तर पर दृष्टव्य राजनीतिक कार्यपालिका का वर्णन किया जा रहा है :-

- (i) राष्ट्रपति
- (ii) प्रधानमंत्री
- (iii) मंत्रिपरिषद्

भारत के संविधान का अनुच्छेद-52 यह प्रावधान करता है कि "भारत का एक राष्ट्रपति होगा।" संसदीय लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था अपनाने के कारण भारत के राष्ट्रपति की स्थिति ब्रिटेन के सम्राट की भाँति केवल 'संवैधानिक अध्यक्ष' के समान है। यद्यपि भारत का राष्ट्रपति-पद वंशानुगत नहीं बल्कि निर्वाचन के माध्यम से भरा जाता है। संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित हैं जिनका प्रयोग वह या तो स्वयं अथवा अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के माध्यम से करता है। चूँकि संविधान का अनुच्छेद-74 यह उपबन्ध करता है कि राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सहायता तथा परामर्श के आधार पर करेगा अतः राष्ट्रपति का पद वास्तविक रूप से अधिकार सम्पन्न नहीं है।

### राष्ट्रपति पद हेतु योग्यताएँ (Qualification)

- (i) वह भारत का नागरिक हो,
- (ii) 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो,
- (iii) लोकसभा का सदस्य चुने जाने की योग्यता रखता हो (अर्थात् उसका नाम किसी संसदीय निर्वाचन मण्डल में मतदाता के रूप में पंजीकृत हो, पागल या दीवालिया न हो तथा किन्हीं कारणों से चुनाव लड़ने पर प्रतिबंधित न हो,
- (iv) वह भारत सरकार या किसी राज्य सरकार का उक्त सरकारों के अधीन किसी संस्था में लाभ का पद धारण किया हुआ न हो।

5 जून, 1997 को जारी एक अध्यादेश के पश्चात् राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को 50 प्रस्तावक तथा 50 अनुमोदक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है तथा 15000 रूपए जमानत राशि के जमा कराने पड़ते हैं।

### राष्ट्रपति का चुनाव

संविधान के अनुच्छेद 54 और 55 में राष्ट्रपति के चुनाव का उल्लेख किया गया है। भारत का राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुना जाता है, प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा नहीं। यह व्यवस्था संसदीय प्रणाली के अनुरूप है जिसमें राज्याध्यक्ष नाममात्र का अध्यक्ष होता है और वास्तविक शक्ति मंत्रिपरिषद् में निहित होती है।

**निर्वाचक मण्डल** - अनुच्छेद 54 के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक ऐसे निर्वाचक-मण्डल द्वारा करने की व्यवस्था है जिसमें निम्नलिखित सदस्य होते हैं :

- (क) संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, तथा
- (ख) राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य।

राष्ट्रपति के निर्वाचक-मण्डल में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विधानमण्डलों के सदस्यों को सम्मिलित करके इस बात का प्रयत्न किया गया है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हो तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रपति पद का रूप प्राप्त हो सके।

**नामांकन** - राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी के लिए यह आवश्यक है कि उसका नामांकन पत्र कम से कम 10 निर्वाचकों द्वारा

प्रस्तावित तथा कम से कम 50 निर्वाचकों द्वारा अनुमोदित किया जाए तथा उसके लिए 15000 रु. की धनराशी जमानत के रूप में जमा की जाये। यदि किसी प्रत्याशी को कुल मतों के छठे भाग के बराबर मत नहीं मिलते तो यह राशि जब्त हो जाती है। उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशी के लिए 5 प्रस्तावकों और 5 अनुमोदकों की व्यवस्था है। यह भी प्रावधान किया गया था कि कम से कम बीस निर्वाचक राष्ट्रपति के चुनाव को तथा दस निर्वाचक उपराष्ट्रपति के चुनाव को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दे सकते हैं।

**निर्वाचन-पद्धति एवं मतों के मूल्यों का निर्धारण** - राष्ट्रपति का निर्वाचन निर्वाचक-मण्डल द्वारा परोक्ष रीति से एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के आधार पर किया जाता है। इस पद्धति के अनुसार चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए उम्मीदवार को "न्यूनतम कोटा" प्राप्त करना आवश्यक होता है। राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए न्यूनतम कोटा निर्धारित करने का सूत्र इस प्रकार है -

$$\text{न्यूनतम कोटा} = \frac{\text{दिये गये मतों की संख्या} + 1}{\text{निर्वाचित होने वाले प्रत्याशियों की संख्या} + 1}$$

न्यूनतम कोटा की व्यवस्था इसलिए की गयी है ताकि मतदाताओं के स्पष्ट बहुमत का समर्थन प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही राष्ट्रपति पद प्राप्त कर सके।

राष्ट्रपति के निर्वाचन की एक विशेष बात यह है कि निर्वाचक मण्डल के प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य समान नहीं होता। प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य निम्नलिखित दो सिद्धान्तों के आधार पर निश्चित किया जाता है : प्रथम, भारतीय संघ के कुछ राज्यों की विधानसभा के सदस्य अधिक जनसंख्या का और कुछ राज्यों की विधानसभा के सदस्य बहुत कम जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। विधानसभा के प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य उस अनुपात से निश्चित होता है, जितनी जनसंख्या का वह प्रतिनिधित्व करता है।

द्वितीय, सिद्धान्त यह अपनाया गया है कि राष्ट्रपति के चुनाव में केन्द्र तथा राज्यों का बराबर का हिस्सा होना चाहिए। इसीलिए सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के समस्त सदस्यों के जितने मत हों, उतने ही मत संसद सदस्यों द्वारा दिये जाने चाहिए। इसका सूत्र निम्न प्रकार है :

$$(1) \quad \text{किसी भी राज्य या संघीय क्षेत्र की विधानसभा के सदस्य के मतों की संख्या} \\ = \frac{\text{राज्य या संघीय क्षेत्र की जनसंख्या}}{\text{राज्य विधानसभा या संघीय क्षेत्रों की विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या}} \div 1000$$

$$(2) \quad \text{संसद के प्रत्येक सदन के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मतों की संख्या}$$

$$= \frac{\text{समस्त राज्य और संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के समस्त सदस्यों को प्राप्त मतों की संख्याओं का कुल योग}}{\text{संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या}}$$

इस प्रकार निर्धारित मतों के मूल्यों के आधार पर दिए गये मतों की गणना की जाती है और यदि प्रथम वरीयता (First Preference) के मतों की गणना में प्रत्याशी को निर्वाचित होने के लिए आवश्यक 50 प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त नहीं होते तब द्वितीय वरीयता (Second Preference) के मतों की गणना की जाती है, जिसमें प्रथम वरीयता में सबसे कम मत प्राप्त करने वाले प्रत्याशी के मतों का हस्तांतरण किया जाता है। यदि द्वितीय गणना में किसी को निश्चित कोटा प्राप्त नहीं होता है तो तीसरी और फिर चौथी गणना चलती है। इस प्रकार गणना का क्रम तब तक चलता रहता है जब तक किसी एक प्रत्याशी को निश्चित कोटा प्राप्त नहीं हो जाता। यदि अंत में दो प्रत्याशी रह जाएं और दोनों को भी निश्चित कोटा प्राप्त न हो तो सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले व्यक्ति को निर्वाचित घोषित किया जाएगा।



## अप्रत्यक्ष निर्वाचन क्यों ?

प्रश्न यह उठता है कि भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष क्यों रखा गया है और क्यों निर्वाचक-मण्डल में विधानसभाओं के सदस्यों को स्थान दिया गया। अप्रत्यक्ष निर्वाचन के कारण निम्नलिखित हैं :

1. राष्ट्रपति का निर्वाचन यदि जनता द्वारा प्रत्यक्ष और व्यस्क मताधिकार के आधार पर होता तो लगभग 20 करोड़ मतदाताओं के लिए व्यवस्था करना अत्यधिक कठिन होता।
2. राष्ट्रपति एक संवैधानिक प्रमुख है तथा मन्त्रिमण्डल वास्तविक कार्यपालिका। अतः इस शासन-व्यवस्था में राष्ट्रपति के प्रत्यक्ष निर्वाचन का औचित्य नहीं है और अप्रत्यक्ष निर्वाचन से कोई सैद्धान्तिक हानि नहीं है।
3. राष्ट्रपति के निर्वाचक-मण्डल में राज्यों की विधानसभाओं के सदस्यों को भी इसलिए सम्मिलित किया गया है ताकि राष्ट्रपति सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर सके। श्री नेहरू के शब्दों, "राष्ट्रपति के निर्वाचक-मण्डल में संघीय संसद के राज्यों के विधानसभा के सदस्यों को सम्मिलित कर इस बात का प्रयत्न किया गया है कि राष्ट्रपति दलीय आधार पर न हों और संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तविक रूप में राष्ट्रपति चुनाव का रूप प्राप्त हो सके।"
4. निर्वाचक-मण्डल में संसद-सदस्यों के साथ-साथ राज्य विधानमण्डलों के सदस्यों को सम्मिलित करने का उद्देश्य राजनीतिक संतुलन बनाए रखना था। यदि निर्वाचक-मण्डल में केवल संसद के ही सदस्य भाग लें तो बहुसंख्यक दल सरलता से अपने प्रत्याशी को निर्वाचित करा सकता है। लेकिन राष्ट्रपति किसी बहुमत दल का नहीं होता। इसी कारण विधानसभाओं के सदस्यों को निर्वाचक-मण्डल में स्थान दिया गया है जिससे बहुमत दल अपने ही बल पर अकेले राष्ट्रपति के पद पर अपने प्रत्याशी को निर्वाचित नहीं कर सकता।
5. आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अपनाने का उद्देश्य यह था कि राष्ट्रपति बहुमत मतों के बजाए स्पष्ट बहुमत से निर्वाचित हों। इस पद्धति से छोटे-छोटे राजनीतिक दलों की शक्ति का भी चुनाव में महत्व हो जाता है और राष्ट्रपति के चुनाव को बहुमत दल की स्वेच्छाचारिता से बचाया जा सकता है। पायली के शब्दों में, "राष्ट्रपति राष्ट्र का मुखिया होता है, राष्ट्र में सभी दल या गुट सम्मिलित हैं और राष्ट्रपति दलीय व्यवस्था के ऊपर है। इसलिए यह आवश्यक है कि उसका चुनाव भारी से भारी बहुमत द्वारा हो। यदि साधारण बहुमत प्रणाली इस निर्वाचन के लिए अपनायी जाती तो इस बात का कोई आश्वासन नहीं था किन्तु वर्तमान निर्वाचन प्रणाली में यह निश्चित है कि राष्ट्रपति का चुनाव पूर्ण बहुमत प्राप्त करने पर ही हो सकता है।"

राष्ट्रपति के चुनाव के लिए अपनायी गयी वर्तमान निर्वाचन प्रणाली जटिल एवं पेचीदा प्रणाली है। इसकी आलोचना का एक आधार यह है कि इसके लिए "आनुपातिक प्रतिनिधित्व पर आधारित एकल संक्रमणीय मत प्रणाली" शब्दावली का प्रयोग उचित नहीं है, क्योंकि "आनुपातिक प्रतिनिधित्व" का प्रयोग वहीं किया जा सकता है जहाँ एक से अधिक व्यक्तियों का निर्वाचन होता है। यह ठीक है कि इस व्यवस्था में मतों का हस्तान्तरण होता है, परन्तु इस कारण से उसे आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसका उद्देश्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्राप्त करना नहीं, वरन् यह देखना है कि उसमें राष्ट्रपति को निर्धारित मतों का समर्थन प्राप्त होता है या नहीं। आलोचना का दूसरा आधार यह है कि उसमें एक से अधिक प्रत्याशी होने पर भी यदि मतदाता अपनी ओर से मतपत्र पर केवल एक ही विकल्प चिन्हित करते हैं और यदि इस प्रक्रिया में किसी भी प्रत्याशी को निर्धारित मत प्राप्त नहीं होते तो ऐसी स्थिति में निर्वाचन का कोई परिणाम नहीं निकलेगा।

उक्त आलोचनाओं के होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि चुनाव प्रणाली व्यवस्था में सरल प्रक्रिया है। इसका एक लाभ यह है कि इसके अन्तर्गत वही व्यक्ति निर्वाचित हो सकता है जिसे कुछ मतों का पूर्ण बहुमत प्राप्त हो। दूसरा लाभ यह है कि यह निर्वाचन प्रक्रिया संघीय सिद्धान्त के अधिक अनुरूप है। राष्ट्रपति के चुनाव के समय आर्थिक हलचल नहीं होती और चुनाव अत्याधिक शान्ति के साथ हो सकता है।

नवें राष्ट्रपति का चुनाव 13 जुलाई, 1992 को सम्पन्न हुआ। डॉ. शंकर दयाल शर्मा चुनाव में विजयी हुए। डॉ. शर्मा अपनी योग्यता के आधार पर राष्ट्रपति चुने गये। उन्होंने अपना 5 वर्ष का कार्यकाल सफलतापूर्वक पूर्ण किया। डॉ. शर्मा के पश्चात् के. आर. नारायणन भारत के दसवें राष्ट्रपति बनें। इस समय सुयोग्य, सज्जन, सरल, विनम्र और स्वस्थ प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति

राष्ट्रपति के पद को सुशोभित कर रहे हैं। के. आर. नारायणन भारत की पिछड़ी जाति के हैं जो अपनी अद्भुत योग्यता के आधार पर राष्ट्रपति पर को गरिमा प्रदान कर रहे हैं।

### शपथ

#### (Oath)

भारत के राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश शपथ दिलवाता है। संविधान के अनुच्छेद-60 में शपथ का प्रारूप दिया गया है।

“मैं, अमुक ईश्वर की शपथ लेता हूँ/सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूँ कि मैं श्रद्धापूर्वक संघ के राष्ट्रपति के पद का कार्यपालन (अथवा राष्ट्रपति के कर्तव्यों का निर्वहन) करूँगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान एवं विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करूँगा तथा मैं भारत की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूँगा।”

### कार्यकाल

#### (Tenure)

राष्ट्रपति पाँच वर्ष के लिए चुना जाता है एवं संविधान के अनुसार कोई भी व्यक्ति कितनी ही बार राष्ट्रपति-पद धारण कर सकता है। राष्ट्रपति के पदावधि की समाप्ति से पूर्व उसका चुनाव कराना आवश्यक है किन्तु नए राष्ट्रपति के पद ग्रहण करने तक कार्यरत राष्ट्रपति पद पर बना रहता है। मृत्यु, पदत्याग या अन्य कारणों से भी पद रिक्त होने पर 6 माह के भीतर निर्वाचन कराना आवश्यक है। राष्ट्रपति की मृत्यु या अन्य अक्षमताओं के कारण पद ग्रहण न करने की स्थिति में उपराष्ट्रपति यह दायित्व निभाता है। द प्रसीडेन्ट सक्सेशन एक्ट, 1969 के अनुसार यदि उपराष्ट्रपति भी उपलब्ध न हों तो सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश तथा इनकी अनुपलब्धता में सर्वोच्च न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश राष्ट्रपति-पद ग्रहण करता है।

राष्ट्रपति अपनी इच्छा से पद त्याग कर सकता है तथा महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा समय पूर्व पद से हटाया भी जा सकता है।

### महाभियोग प्रक्रिया

#### (Impeachment Process)

भारत में राष्ट्रपति पर महाभियोग 'संविधान के अतिक्रमण' में लिए लगाया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद-61 के अनुसार संसद के किसी भी सदन द्वारा यह आरोप एक संकल्प (Resolution) के रूप में हो, जिस पर कम से कम एक चौथाई सदस्यों (उस सदन में) के हस्ताक्षर हों, राष्ट्रपति को 14 दिन का नोटिस भेजा जाए तथा यह प्रस्ताव सदन के कुल सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित होना चाहिए। दूसरा सदन लगाए गए आरोपों की जाँच स्वयं करेगा अथवा किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण के द्वारा करवाएगा। राष्ट्रपति इस जाँच में स्वयं उपस्थित हो सकते हैं या किसी प्रतिनिधि को भेज सकते हैं। जाँच के पश्चात् यदि दूसरा सदन भी दो तिहाई बहुमत से लगाए गए महाभियोग (इम्पीचमेन्ट) संकल्प को पारित कर देता है तो राष्ट्रपति को उसी समय पर छोड़ना पड़ेगा। भारत में अभी तक किसी भी राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग प्रस्ताव नहीं लाया गया है। सन् 1970 में उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन के विवाद में राष्ट्रपति वी. वी. गिरि के विरुद्ध विपक्षी नेता मधु लिमये ने महाभियोग प्रस्ताव लाने का प्रयास अवश्य किया था।

### राष्ट्रपति के विशेषाधिकार

स्वाभाविक रूप से किसी भी देश के राष्ट्राध्यक्ष को कतिपय विशेष उन्मुक्तियों, सुविधाएँ तथा अधिकार प्राप्त होते हैं। भारत के राष्ट्रपति को अधोलिखित विशेषाधिकार प्राप्त हैं :

- (i) अनुच्छेद-361 (1) के अनुसार राष्ट्रपति अपने दल की शक्तियों के प्रयोग और कर्तव्यों के पालन के लिए किए गए कर्तव्यों के क्रम में किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा किन्तु महाभियोग के आरोप में यह विशेषाधिकार लागू नहीं होता है।
- (ii) अनुच्छेद-361 (2) के अनुसार राष्ट्रपति के विरुद्ध उसकी पदावधि में किसी प्रकार की दण्डक कार्यवाही किसी

न्यायालय में न तो संस्थित की जा सकती है और न ही चालू रखी जा सकती है।

- (iii) अनुच्छेद-361 (3) राष्ट्रपति को पदावधि के दौरान किसी भी न्यायालय द्वारा बन्दी बनाने या कारावास भेजने के लिए वारन्ट जारी करने को निषिद्ध करता है।
- (iv) अनुच्छेद-361 (4) के अनुसार राष्ट्रपति पर उसके वैयक्तिक कार्यों से सम्बन्धित दीवानी कार्यवाही की जा सकती है बशर्ते कि लिखित सूचना तथा 2 माह के नोटिस एवं इस सूचना में कार्यवाही की प्रकृति, वाद-कारण, पक्षकार का नाम, विवरण, पता तथा माँगे गए अनुतोष का विवरण दिया गया हो।

### वेतन-भत्ते

राष्ट्रपति को संसद द्वारा अनुमोदित वेतन भत्ते देय हैं। सन् 1998 के संशोधन के पश्चात् राष्ट्रपति को 50,000 रूपए प्रतिमाह वेतन तथा तीन लाख रूपए पेंशन वार्षिक देय है।

### अन्य सुविधाएँ

राष्ट्रपति को भारत सरकार की संचित निधि से आकर्षक वेतन, भत्ते, पेंशन, चिकित्सा तथा यात्रा सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। राष्ट्रपति को प्राप्त वेतन-भत्ते, सुविधाएँ तथा पदावधि के दौरान घटाए नहीं जा सकते हैं यद्यपि संसद समय-समय पर इनमें वृद्धि करती रहती है। भारत के राष्ट्रपति को नई दिल्ली स्थिति 'राष्ट्रपति भवन' के निःशुल्क आवास तथा कर्मचारीगण की सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। सन् 1914-1929 के दौरान अंग्रेजों द्वारा निर्मित राष्ट्रपति भवन पूर्व में वायसराय हाउस या वाइसरीगल पैलैस कहलाता था। अपनी वास्तुकला के लिए प्रसिद्ध यह भवन तीन बड़े हॉल-दरबार हाल, अशोक हाल तथा बैंक्वेट हाल में युक्त है। सामान्यतः सभी प्रमुख समारोह दरबार हाल में, शपथ ग्रहण समारोह अशोक हाल में तथा मेहमानों के भोज इत्यादि बैंक्वेट हाल में होते हैं। राष्ट्रपति भवन परिसर में ही लगभग 1000 किस्म के फूल-पौधों से युक्त 'मुगल गार्डन' है जो प्रतिवर्ष कुल समय आम जनता के लिए खोला जाता है।

राष्ट्रपति के प्रशासनिक कार्यों को संपादित करने तथा अन्य सहायता उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रपति सचिवालय कार्य करता है जिसमें अनेक अधिकारी तथा कर्मचारी कार्यरत हैं।

## राष्ट्रपति की शक्तियाँ एवं कार्य

भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति भारत संघ का प्रधान है। संविधान द्वारा उसे अनेक शक्तियाँ एवं अधिकार प्राप्त हैं जिनका अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं :

1. सामान्यकालीन अधिकार,
2. आपातकालीन अधिकार,
3. अस्थायी अधिकार।

1. **सामान्यकालीन अधिकार** - राष्ट्रपति के सामान्यकालीन अधिकार वे हैं, जिनका प्रयोग वह सामान्य स्थितियों में प्रतिदिन शासन सम्बन्धी कार्यों में करता है। सामान्यकालीन शक्तियाँ निम्नलिखित हैं :

- (क) **कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ** - संविधान के अनुच्छेद 53 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है, जिसका प्रयोग वह या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा कर सकता है। पुनः संविधान के अनुच्छेद 77 के अनुसार भारत सरकार के समस्त प्रशासन सम्बन्धी कार्य राष्ट्रपति के नाम से संचालित होते हैं और औपचारिक रूप से भारत सरकार के समस्त महत्वपूर्ण निर्णय राष्ट्रपति के निर्णय होते हैं। परन्तु यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हमारे देश में संसदीय शासन-प्रणाली की स्थापना की गयी है। अतः राष्ट्रपति को किसी प्रशासनिक कार्य को सम्पादन नहीं करना पड़ता। इस प्रकार राष्ट्रपति की शक्तियाँ औपचारिक मात्र हैं। इस बात का स्पष्टीकरण संविधान के अनुच्छेद 74 से हो जाता है जिसमें यह कहा गया है कि राष्ट्रपति को अपने कार्यों के सम्पादन में सहायता एवं मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी जिसका नेतृत्व प्रधानमन्त्र करेगा, और राष्ट्रपति अपने कार्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा। संविधान संशोधन (चवालीसवाँ) अधिनियम, 1978 की धारा 11 द्वारा

अब संविधान में यह अंश स्थापित किया गया है कि "परन्तु मन्त्रिपरिषद् से ऐसी सलाह पर साधारणतः या/अन्यथा पुनर्विचार करने की अपेक्षा कर सकेगा और राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के पश्चात् दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।" अनुच्छेद 78 के अनुसार प्रधानमन्त्री का यह कर्तव्य है कि वह राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल के संघीय प्रशासन एवं व्यवस्थापन सम्बन्धी प्रस्ताव की सूचना दे। राष्ट्रपति की इच्छानुसार प्रधानमन्त्री द्वारा ऐसे विषयों को, जिन पर केवल किसी मन्त्री ने निर्णय लिया है, मन्त्रिमण्डल के विचारार्थ रखा जा सकता है।

कार्यपालिका शक्तियों के अन्तर्गत प्रशासकीय, राजनीतिक, सैनिक और न्यायिक अथवा अर्द्ध-न्यायिक सभी प्रकार की शक्तियाँ सम्मिलित हैं। राष्ट्रपति प्रशासन का औपचारिक अध्यक्ष है और सभी संघीय अधिकारी, चाहे वे सैनिक सेवा के हों अथवा असैनिक सेवा के राष्ट्रपति के अधीन हैं। राष्ट्रपति को नियुक्ति एवं पदच्युति की व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। जिन अधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है उनमें से मुख्य हैं-प्रधानमन्त्री, अन्य संघीय मन्त्री, राज्यपाल, महाधिवक्ता, नियन्त्रक एवं महालेख परीक्षक, उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, राजदूत एवं अन्य राजनयिक अधिकारी, आदि। वह विभिन्न आयोगों के सदस्यों को भी नियुक्त करता है; जैसे - वित्त-आयोग, योजना-आयोग, निर्वाचन-आयोग, भाषा-आयोग, आदि। यह नियुक्तियाँ राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की सलाह से करता है। राष्ट्रपति को अपने ही मन्त्रियों, राज्यपालों, महाधिवक्ता, उच्च सैनिक अधिकारियों आदि को पदच्युत करने का अधिकार है। राष्ट्रपति प्रतिरक्षा सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति है और राज्य का अध्यक्ष होने के नाते सभी प्रकार के राजनयिक विशेषाधिकारों का उपयोग करता है। देश के राजनयिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति उसी के द्वारा की जाती है और विदेशी राजदूत अपने पद के प्रमाण-पत्र उसे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। सभी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियाँ या समझौते उसी के नाम से किये जाते हैं। राष्ट्रपति न्याय और सम्मान का स्रोत है। उसे अपराधियों को क्षमा करने, दिये गये दण्ड को कम करने, दण्ड में छूट देने, दण्ड को रोकने आदि के अधिकार हैं। राष्ट्रपति विशिष्ट नागरिकों को उपाधियों के माध्यम से सम्मानित करता है।

यहाँ स्मरणीय है कि भारत में उत्तरदायी सरकार है, इसलिए राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल की सिफारिश पर करता है। राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है। किन्तु जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तब राष्ट्रपति अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है।

(ख) **विधायिनी शक्तियाँ** - संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। संघ की विधायी शक्तियों को राष्ट्रपति और संसद के दोनों सदनों में निहित माना गया है। राष्ट्रपति विधायी प्रक्रिया का अभिन्न अंग है, क्योंकि उसकी स्वीकृति के बिना कोई विधेयक अधिनियम नहीं बन सकता। राष्ट्रपति को संसद का अधिवेशन बुलाने, उसे स्थगित करने, उसमें भाषण देने और उसे सन्देश भेजने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त संसद को आहूत करने, सत्रावसान करने तथा विघटन करने का भी अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त है। वह राज्यसभा के 12 सदस्यों को मनोनीत करता है जिन्हें साहित्य, कला, विज्ञान और समाज-सेवा में से किन्हीं का विशिष्ट और व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए। राष्ट्रपति को लोकसभा के भी कुछ सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार है। वह अधिक से अधिक दो ऐंग्लो-इण्डियन सदस्यों को मनोनीत कर सकता है।

संसद द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। वह विधेयक पर हस्ताक्षर करके उसे अधिनियम का रूप दे सकता है। संविधान संशोधन विधेयक के अतिरिक्त वह किसी भी विधेयक पर स्वीकृति देने से इन्कार कर सकता है अथवा विधेयक संसद द्वारा पुनः पारित होकर यदि स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत हो जाये तो राष्ट्रपति को उस पर स्वीकृति देनी ही पड़ती है। कुछ विशेष प्रकार के विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व-आज्ञा के बिना संसद में प्रस्तावित ही नहीं किये जा सकते; जैसे - वित्त-विधेयक, किसी राज्य की सीमा अथवा नाम को बदलने से सम्बन्धित विधेयक, व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने से सम्बन्धित विधेयक। संविधान के अनुच्छेद 123 के अन्तर्गत जब संसद का अधिवेशन नहीं हो रहा हो, तो राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने का अधिकार है। ये उन विषयों से सम्बन्धित होते हैं जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार होता है। ऐसे अध्यादेश का वैसा ही प्रभाव होगा जैसा संसद द्वारा स्वीकृति अधिनियमों का और यह संसद के अधिवेशन के आरम्भ होने की तिथि से छह सप्ताह तक जारी रहेगा, तत्पश्चात् इसे रद्द समझा जायेगा। संसद इस तिथि से पूर्व भी उसे रद्द करार दे सकती है। राष्ट्रपति स्वयं जब चाहे अपना अध्यादेश वापस ले सकता है।

राज्यों के सम्बन्ध में भी राष्ट्रपति को कुछ विधायिनी शक्तियाँ प्राप्त हैं। राज्यपाल विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित कर सकता है। राष्ट्रपति उसे स्वीकार कर सकता है, अस्वीकार कर सकता है या विधानमण्डल के पास पुनः विचारार्थ वापस कर सकता है। राज्यों के बीच व्यापार पर प्रतिबन्ध सम्बन्धी विधेयक बिना राष्ट्रपति की पूर्व-स्वीकृति के राज्य के विधानमण्डल में प्रस्तुत नहीं किये जा सकते। यदि राज्य का विधानमण्डल नागरिकों की सम्पत्ति अधिगृहीत करने का विधेयक पारित करे, तो वह राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना कानून नहीं बन सकता। समवर्ती सूची में वर्णित विषयों पर राज्य द्वारा निर्मित कानून यदि संसद के किसी कानून के विरुद्ध है तो राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना वे वैध नहीं हो सकते।

राष्ट्रपति को अण्डमान एवं निकोबार द्वीपसमूह, लक्षदीप, मिनीकाय और अमीनदीवी द्वीपसमूह आदि क्षेत्रों की शान्ति, विकास और सुप्रशासन के लिए नियम बनाने का अधिकार है।

(ग) **वित्तीय शक्तियाँ** - वित्तीय क्षेत्र में भी राष्ट्रपति को संविधान द्वारा व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। प्रथम, बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के कोई धन-विधेयक संसद में प्रस्तुत नहीं हो सकता। विशेषतः ऐसे विधेयक जिसका सम्बन्ध किसी ऐसे कर या शुल्क से हो अथवा जिसका कुछ अंश राज्यों को मिलने वाला हो। दूसरे, भारत की आकस्मिक निधि राष्ट्रपति के अधीन है और राष्ट्रपति आवश्यकता पड़ने पर अग्रदाय रूप में शासन को उससे धन दे सकता है। तीसरे, राष्ट्रपति को राज्यों में आय-कर का वितरण करने की शक्ति प्राप्त है और उसे राज्यों के लिए पटसन के निर्यात-कर से प्राप्त होने वाली धनराशि का अंश निश्चित करने का भी अधिकार है। चौथे, उसे संघ तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध निश्चित करने के लिए वित्त-आयोग की नियुक्ति करने का अधिकार है। पाँचवें, उसे देशी नरेशों को प्रीवीपर्स देने का अधिकार था जो अब समाप्त हो गया है।

(घ) **न्यायिक शक्तियाँ** - राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करने, संसद के दोनों सदनों द्वारा प्रार्थना करने पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को पदच्युत करने, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या निर्धारित करने, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के परामर्श से उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का स्थानान्तरण करने आदि का अधिकार राष्ट्रपति को है। संविधान के अनुच्छेद 72 के अनुसार उसे क्षमादान का अधिकार दिया गया है। वह दण्ड को पूर्णरूप से क्षमा कर सकता है, स्थगित कर सकता है अथवा दण्ड में परिवर्तन कर सकता है। इस अधिकार का प्रयोग केवल तीन प्रकार के दण्डों पर किया जा सकता है।

1. यदि दण्ड किसी सैनिक न्यायालय द्वारा दिया गया हो;
2. यदि दण्ड ऐसे मामलों में दिया गया हो जो केन्द्रीय कार्यपालिका के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हों; और
3. यदि अपराधी को मृत्युदण्ड दिया गया हो।

व्यवहार में राष्ट्रपति उक्त सभी अधिकारों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल के परामर्श से ही करता है।

(ङ) **सैनिक शक्तियाँ** - राष्ट्रपति देश की तीनों सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति होता है, परन्तु वह सैनिक शक्तियों का प्रयोग संसद द्वारा निश्चित कानून के अन्तर्गत ही करता है। वस्तुतः युद्ध और शान्ति के समय कानून बनाने का अधिकार पूर्णतः संसद को प्राप्त है और बिना संसद की स्वीकृति या बाद में संसद की स्वीकृति लेने की आशा में, न तो वह युद्ध की घोषणा कर सकता है और न ही सेनाओं को युद्ध में लड़ने के लिए भेज सकता है।

(च) **कूटनीतिक शक्तियाँ** - राष्ट्रपति विदेशों में देश का प्रतिनिधित्व करता है। वह राजदूतों की नियुक्ति करता है। वह विदेशी राजनयिक प्रतिनिधियों के प्रमाण-पत्रों को स्वीकार करता है। अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियाँ, समझौते या बातचीत राष्ट्रपति के नाम में ही किये जाते हैं। व्यवहार में ये तभी लागू होते हैं जब इन पर संसद की स्वीकृति मिल जाती है।

2. **आपातकालीन शक्तियाँ** - हमारे संविधान में देश की रक्षा को सुदृढ़ करने, संकट में केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाने तथा व्यापक आन्तरिक अशान्ति, क्रान्ति और उपद्रव को रोकने के लिए राष्ट्रपति को निम्नलिखित संकटकालीन शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं :

- (क) युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक अशान्ति से उत्पन्न संकट,
- (ख) राज्यों में संवैधानिक तन्त्र के असफल होने से उत्पन्न संकट, एवं
- (ग) वित्तीय संकट।

(क) **युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक अशान्ति से उत्पन्न संकट** - मूल संविधान के अनुच्छेद 352 में व्यवस्था है कि यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाये कि युद्ध, बाह्य आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति के कारण भारत या उसके किसी भाग की शान्ति-व्यवस्था के नष्ट होने की आशंका है या यथार्थ रूप में इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने पर राष्ट्रपति संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता था। संसद की स्वीकृति के बिना भी यह दो माह तक लागू रहती थी और संसद से स्वीकृति हो जाने पर शासन जब तक उसे लागू रखना चाहता, लागू रख सकता था। अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत अब तक चार बार संकटकाल की घोषणा की गयी है - 1962, 1965, 1971 तथा 1975। संकटकाल के दौरान शक्तियों का दुरुपयोग किया गया, विशेषकर 1975 में। अतः इन संकटकालीन शक्तियों का दुरुपयोग न किया जाये इसलिए 44वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों पर काफी प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं, जो इस प्रकार हैं -

1. अनुच्छेद 352 में "आन्तरिक अशान्ति" के स्थान पर "सशस्त्र विद्रोह" शब्दावली का प्रयोग किया गया है, जिससे राष्ट्रपति आन्तरिक अशान्ति की स्थिति में सभी आपात-उद्घोषणा कर सकेगा जब देश के किसी भाग में "सशस्त्र विद्रोह" प्रारम्भ हो गया हो।
2. राष्ट्रपति द्वारा आपात की घोषणा तभी की जा सकेगी जब केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल लिखित रूप से राष्ट्रपति को ऐसा परामर्श दे।
3. राष्ट्रपति द्वारा घोषण किये जाने के एक माह के अन्दर संसद के विशेष बहुमत (पथक-पथक संसद के दोनों सदनों के कुल बहुमत एवं उपस्थिति और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत) से इसकी स्वीकृति आवश्यक है तथा लागू रखने के लिए प्रति छह माह बाद संसद की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है।
4. संसद के साधारण बहुमत द्वारा संकटकाल की घोषणा समाप्त की जा सकती है।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि 44वें संविधान द्वारा भारतीय संविधान में किये गये 38वें संवैधानिक संशोधन को भी रद्द कर दिया गया है। जिसमें यह प्रावधान था कि राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत की गयी संकटकालीन घोषणा को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस प्रकार अब राष्ट्रपति द्वारा लागू की गयी आपातकालीन घोषणा को न्याय योग्य बना दिया गया है। अब आपातकालीन घोषणा को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

मूल संविधान में व्यवस्था थी कि अनुच्छेद 352 के अधीन संकटकाल की घोषणा पूरे देश के लिए ही की जा सकती है, देश के केवल किसी एक या कुछ भागों के लिए नहीं। किन्तु 42वें संविधान संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी है कि अब राष्ट्रपति संकटकाल की घोषणा पूरे देश के किसी एक या कुछ भागों के लिए भी कर सकता है।

**आपात-उद्घोषण के प्रभाव** - संक्षेप में, आपात-उद्घोषणा के संवैधानिक प्रभाव निम्नलिखित होंगे :

- (1) संसद को सम्पूर्ण देश अथवा उसके किसी क्षेत्र के लिए सभी विषयों अथवा राज्य-सूची में दिये गये विषयों पर भी कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जायेगी। राज्य-सूची के सम्बन्ध में संघ द्वारा निर्मित ये कानून उद्घोषणा की समाप्ति के छह माह बाद प्रभावी नहीं रहेंगे।
- (2) संघ की कार्यपालिका को राज्यों की कार्यपालिकाओं को यह निर्देश देने का अधिकार प्राप्त हो जाता है कि किस प्रकार शक्ति का प्रयोग करें।
- (3) राष्ट्रपति ये आदेश दे सकता है कि संघ और राज्यों के बीच आय-वितरण सम्बन्धी सभी या कोई भी उपलब्ध चालू वित्तीय वर्ष में उसके निर्देशानुसार संशोधित होते रहेंगे, परन्तु ऐसा आदेश यथाशीघ्र संसद के दोनों सदनों के सामने रखा जायेगा।

- (4) आपातकालीन घोषणा के लागू रहने के समय 19वें अनुच्छेद द्वारा नागरिकों को प्राप्त स्वतन्त्रताएँ स्थगित हो जायेंगी और राज्य के द्वारा इन स्वतन्त्रताओं को स्थगित करने वाले कानूनों का निर्माण किया जा सकेगा। 44वें संशोधन द्वारा व्यवस्था की गयी है कि यदि आपातकाल युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण के कारण लागू किया गया है तब अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रताओं को स्थगित या समाप्त किया जा सकता है, लेकिन यदि आपात-स्थिति सशस्त्र विद्रोह के कारण लागू की गयी है, तो अनुच्छेद 19 की व्यवस्थाओं को स्थगित नहीं किया जा सकता। आपात-स्थिति की समाप्ति के बाद ऐसे कानून तत्काल समाप्त हो जायेंगे।
- (5) मूल संविधान में व्यवस्था थी कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा अनुच्छेद 32 में वर्णित संवैधानिक उपचारों (न्यायालय की शरण) के अधिकारों को भी स्थगित कर सकता है। 44वें संशोधन के आधार पर यह व्यवस्था की गयी है कि आपातकाल में भी जीवन और शारीरिक स्वाधीनता के अधिकार को समाप्त या सीमित नहीं किया जा सकेगा। लेकिन इसके अतिरिक्त अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए नागरिक न्यायालय की शरण ले सकेंगे।

(ख) **राज्यों में संवैधानिक तन्त्र के असफल होने से उत्पन्न संकट** - संविधान के अनुच्छेद 355 के अनुसार संघ सरकार का यह दायित्व है कि वह प्रत्येक राज्य की बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक अशान्ति से रक्षा करे तथा यह देखे कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुकूल हो। अनुच्छेद 356 के अनुसार अगर राष्ट्रपति को राज्यपाल के प्रतिवेदन पर या किसी अन्य प्रकार से यह विश्वास हो जाये कि ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो गयी हैं कि किसी राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है, तो वह संकटकाल की घोषणा कर सकता है।

ऐसा संकटकाल घोषित करने की विधि वही है जो प्रथम प्रकार के संकट के लिए है। मूल संविधान में संकट की समयवधि छह माह थी। 42वें संशोधन द्वारा इस अवधि को एक वर्ष कर दिया गया था, किन्तु 44वें संशोधन द्वारा इस अवधि को पुनः छह माह कर दिया गया है। 44वें संशोधन के पूर्व राज्य में राष्ट्रपति शासन की अधिकतम अवधि तीन वर्ष थी, लेकिन अब इस व्यवस्था में परिवर्तन किया गया है कि राज्य में राष्ट्रपति शासन के एक वर्ष की अवधि के बाद इसे और अधिक समय के लिए जारी रखने का प्रस्ताव संसद तभी पारित कर सकेगी, जबकि इस प्रकार का प्रस्ताव पारित किये जाने के समय अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकाल लागू हो और चुनाव आयोग यह प्रमाणित कर दे कि राज्य में चुनाव कराना सम्भव नहीं है।

**घोषणा के संवैधानिक प्रभाव** - इस प्रकार की घोषणा के परिणाम निम्नलिखित होंगे :

- (1) राष्ट्रपति किसी भी राज्य-अधिकारी का कोई भी कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य स्वयं ग्रहण कर सकता है।
  - (2) राष्ट्रपति राज्य के विधानमण्डल की शक्तियाँ संसद को हस्तान्तरित कर सकेगा और संसद को यह अधिकार होगा कि वह उन विधायी शक्तियों को राष्ट्रपति को सौंप दे अथवा राष्ट्रपति को यह अधिकार दे कि वे उन्हें किसी अन्य अधिकारी को सौंप दे।
  - (3) यदि लोकसभा का सत्र नहीं चल रहा हो, तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की स्वीकृति दे सकता है।
  - (4) राष्ट्रपति उद्घोषणा की पूर्ति के लिए उच्च न्यायालय की शक्ति को छोड़कर अन्य समस्त शक्तियाँ अपने हाथ में ले सकता है।
- (ग) **वित्तीय संकट** - अनुच्छेद 360 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाये कि भारत में या उसके किसी भाग में आर्थिक साख को खतरा है, तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है। ऐसी घोषणा के लिए भी वही विधि निर्धारित है जो प्रथम प्रकार के संकट की घोषणा के लिए निर्धारित हैं।

**वित्तीय संकट की घोषणा प्रभाव** - इस घोषणा के संवैधानिक परिणाम निम्नलिखित होंगे :

- (1) संघ तथा राज्यों के किसी भी वर्ग के अधिकारियों के वेतन और भत्तों में कमी कर सकता है।
- (2) यह आदेश दे सकता है कि राज्य के समस्त वित्त-विधेयक उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किये जायें।
- (3) संघ की कार्यपालिका राज्य की कार्यपालिका को शासन सम्बन्धी आवश्यक आदेश दे सकता है।

- (4) राष्ट्रपति केन्द्र तथा राज्यों में धन सम्बन्धी बंटवारे के प्रावधानों में आवश्यक संशोधन कर सकता है। अभी तक देश में आर्थिक संकटकाल की घोषणा नहीं की गयी है।
3. **राष्ट्रपति के अस्थायी अधिकार** - सन् 1935 के भार शासन अधिनियम के अनुच्छेद 391 और 392 के अनुसार गवर्नर जनरल को कुछ अस्थायी शक्तियाँ प्रदान की गयी थीं। संविधान के निर्माताओं ने उक्त अधिनियम का अनुसरण करते हुए कार्यपालिका के प्रमुख को अनेक अस्थायी शक्तियाँ प्रदान की हैं जो निम्नवत् हैं :
- (क) संघ में हिन्दी को राजभाषा बनाने तथा कुछ अल्पसंख्यकों के साथ विशेष व्यवहार सम्बन्धी शक्तियाँ।
- (ख) भाषा आयोग नियुक्त करने तथा उसके परामर्शानुसार राजभाषा के पद पर हिन्दी को प्रतिष्ठित करने की शक्ति।
- (ग) संविधान के अनुसार आंग्ल-भारतीय समुदाय के दो प्रतिनिधियों को लोकसभा के लिए मनोनीत करने की शक्ति।

### संकटकालीन शक्तियों का मूल्यांकन

संकटकालीन शक्तियों के सम्बन्ध में जहाँ एक ओर कुछ लोगों द्वारा आलोचना की गयी है वहीं दूसरी ओर कुछ लोगों ने शक्तियों को औचित्यपूर्ण बतलाया है। संकटकालीन शक्तियों की आलोचना के आधार ये हैं - इन शक्तियों से संघात्मक शासन-व्यवस्था का आधारभूत स्वरूप समाप्त हो जाता है, राष्ट्रपति के अधिनायक बन सकता है, राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शक्तियों के दुरुपयोग की सम्भावना, राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता को खतरा, मौलिक अधिकारों का अर्थहीन होना, आदि। इन आलोचनाओं में सत्य का अंश अवश्य है किन्तु ये आलोचनाएँ अतिशयोक्तिपूर्ण हैं और इस प्रकार की आलोचनाओं में व्यावहारिक पक्ष को भुला दिया गया है। दूसरी ओर, संकटकालीन शक्तियों के औचित्य के पक्ष में कहा जाता है कि संकटकाल में राष्ट्र की सुरक्षा के लिए केन्द्र के पास उपर्युक्त शक्तियों का होना आवश्यक है, राष्ट्रपति तानाशाह नहीं बन सकता।

कांग्रेस (इ) को राज्य विधानसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। बेअन्तसिंह के नेतृत्व में कांग्रेस (इ) मंत्रीमंडल सत्तारूढ़ हुआ। इसके साथ ही राज्य में राष्ट्रपति शासन समाप्त हुआ। बेअन्तसिंह की राजनीतिक इच्छा-शक्ति तथा पुलिस महानिदेशक के. पी. एस. गिल की दृढ़ता ने राज्य में आतंकवाद की कमर तोड़ दी लेकिन आतंकवादियों ने मुख्यमंत्री बेअन्तसिंह को बम-विस्फोट में मार दिया।

- (3) **वित्तीय आपात (अनुच्छेद 360)** : अनुच्छेद 360 यह उपबन्ध करता है कि यदि राष्ट्रपति को 'समाधान' हो जाए कि भारत अथवा उसके किसी भाग की वित्तीय स्थिरता अथवा साख (Stability or Credit) संकट में है तो वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है। ऐसी स्थिति में वह किसी भी राज्य को आवश्यक निर्देश दे सकता है। वह राज्य के सेवारत कर्मचारियों के वेतन तथा भत्तों में कमी करने और सभी धन-विधेयक तथा अन्य वित्तीय विधेयक स्वीकृति के लिए अपने पास भेजने के निर्देश दे सकता है। वह सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों सहित केन्द्रीय सरकार के सेवारत कर्मचारियों के वेतन तथा भत्तों में कमी करने का आदेश दे सकता है।

अनुच्छेद 360 में जारी की गई उद्घोषणा की कालावधि 2 महीने की होगी। यदि उच्च कालावधि दो महीने की समाप्ति के पहले संसद द्वारा पारित संकल्प से अनुमोदित नहीं कर दी जाती तो 2 महीने की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी। यद्यपि राष्ट्रपति को आपातकालीन प्रावधानों के अन्तर्गत व्यापक अधिकार दिये गये हैं तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि वह इनका उपयोग मनमाने ढंग से करता है। वह केवल अपने पद के ही कारण गणराज्य का प्रधान है। कार्यपालिका का वास्तविक प्रमुख प्रधानमंत्री है तथा मन्त्रिमण्डल (मन्त्रि-परिषद्) वास्तविक कार्यपालिका है।

### राष्ट्रपति की शक्तियों का मूल्यांकन

राष्ट्रपति की शान्तिकालीन शक्तियों पर टीका-टिप्पणी की कोई विशेष बात नहीं है किन्तु पिछले कुछ वर्षों में आपातकालीन शक्तियाँ कटु विवाद का विषय रही हैं। संविधान निर्माताओं ने देश के वीजाजन से उत्पन्न परिस्थितियों और आन्तरिक उपद्रवों तथा बाह्य आक्रमण के संकट से उत्पन्न परिस्थितियों को दृष्टिगत रखकर ही संविधान में ये प्रावधान निर्धारित किये थे। यद्यपि संविधान में आपातकालीन शक्तियों पर नियन्त्रण की व्यवस्था है लेकिन 25 जून, 1975 को लादी गई आपात स्थिति के बाद देश में जो राजनीतिक और प्रशासनिक वातावरण बना उसने यह सिद्ध कर दिया कि आपातकाल के दौरान अधिकारों का किस तरह दुरुपयोग किया जा सकता है। आलोचकों की राय में आपातकाल का सहारा लेकर देश में संघात्मक शासन को समाप्त



करके पूर्ण एकात्मक तथा निरंकुश शासन स्थापित किया जा सकता है अतः राष्ट्रपति की आपात्कालीन शक्तियाँ निःसंदिग्ध रूप से आपत्तिजनक हैं लेकिन दूसरी तरफ राष्ट्रपति की आपात्कालीन शक्तियों की व्यवस्था को अमान्य ठहराते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत में संसदीय शासन-प्रणाली की व्यवस्था की गई है जिसमें राष्ट्रपति की शक्ति का प्रयोग व्यवहार में केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् द्वारा किया जाता है। राष्ट्रपति सामान्य परिस्थितियों में कभी भी मन्त्रि-परिषद् की सहायता के बिना शासन नहीं चला सकता। यदि वह आपात्कालीन घोषणा करके अपनी मनमानी करने का प्रयास भी करे तो भी यह सर्वथा असम्भव है कि संसद की इच्छा के विरुद्ध वह शासन कार्य चला सके। संसद का राष्ट्रपति पर प्रभावशाली नियन्त्रण है।

सन् 1975 के आपात्काल में हुई गलतियों को दृष्टिगत रखते हुए 44वें संविधान संशोधन द्वारा आपात्काल के विरुद्ध ठोस व्यवस्थाएँ की गई हैं। अब यह सुनिश्चित कर दिया गया है कि मन्त्रि-मण्डल द्वारा राष्ट्रपति को दी गई लिखित रूप में सलाह के आधार पर ही आपात्काल की घोषणा की जा सकेगी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह घोषणा उपयुक्त और पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद की जाए। 44वें संशोधन द्वारा यह सुरक्षात्मक व्यवस्था भी कर दी गई कि आपात्-उद्घोषणा को दोनों सदनों द्वारा उसी बहुमत से स्वीकार किया जाना होगा जितना बहुमत संविधान में संशोधन के लिए आवश्यक होता है। यह भी निर्धारित किया गया कि इसकी स्वीकृति संसद द्वारा एक महीने की अवधि के भीतर ही करनी होगी। इन व्यवस्थाओं के बाद राष्ट्रपति की आपात् शक्तियों के मूल में छिपा भय अब उतना नहीं रहा है जितना पहले था। ऐसा विचार उपयुक्त नहीं है कि आपात्कालीन शक्तियों की व्यवस्था ही समाप्त कर दी जाए। केन्द्र को शक्ति-सम्पन्न इसलिए भी होना चाहिए कि राज्य तथा संघ की इकाइयाँ बाह्य आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना करने की शक्ति नहीं रखते और आन्तरिक विप्लव को सुलझाने के सम्बन्ध में भी उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। देश में आतंकवादियों और पथकतावादियों की चुनौतियों ने भी केन्द्र के शक्तिशाली होने की आवश्यकता सिद्ध कर दी है। अतः इन शक्तियों को बनाए रखना परम आवश्यक है।

## राष्ट्रपति की भूमिका (Role of President)

भारत का राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका या रबर की मुहर के रूप में जाना जाता है क्योंकि संसदीय लोकतंत्र में मंत्रिपरिषद् की स्थिति वास्तविक कार्यपालिका की होती है। मुख्य कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति अपने समस्त कर्तव्यों का निर्वहन प्रधानमंत्री तथा मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा के अनुरूप करता है तथापि यदि राष्ट्रपति चाहे तो अनैतिक या निर्वाहित कर्तव्यों को करने से मना कर सकता है अथवा मंत्रिपरिषद् को पुनर्विचार हेतु कह सकता है। अधिकांश उच्च तथा संवैधानिक पदों पर नियुक्ति का कार्य राष्ट्रपति ही करता है। ऐसी स्थिति में वह ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहेगा जो उसकी व्यक्तिगत छवि तथा पद की गरिमा के विरुद्ध हो।

संविधान के संरक्षक के रूप में भी राष्ट्रपति की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि राष्ट्रपति संविधान तथा विधि, के परिरक्षण, संरक्षण तथा प्रतिरक्षण की शपथ ग्रहण करता है। यद्यपि राष्ट्रपति की स्थिति मंत्रिपरिषद् के परामर्श को सहज रूप में स्वीकार करने वाले संवैधानिक प्रमुख की प्रतीत होती है किन्तु सन् 1997 में उत्तर प्रदेश में कल्याणसिंह सरकार द्वारा विश्वास मत प्राप्ति के बावजूद राज्यपाल रोमेश भंडारी द्वारा राष्ट्रपति शासन के लिए की गई सिफारिश को तत्कालीन राष्ट्रपति श्री के. आर. नारायणन के इन्द्रकुमार गुजराल सरकार के पास पुनर्विचार के लिए लौटा कर अपने संवैधानिक दायित्वों का परिचय दिया था। स्वतंत्र भारत के इतिहास में यह प्रथम ऐसी घटना थी जब किसी राष्ट्रपति ने अनुच्छेद-356 के दुरुपयोग के विरुद्ध विचार प्रकट किए थे। इस प्रकार यदि राष्ट्रपति चाहे तो मंत्रिपरिषद् को सद्मार्ग पर चलने को विवश कर सकता है। राष्ट्रपति श्री नारायणन ने वाजपेयी सरकार द्वारा बिहार में राबड़ी देवी सरकार को बर्खास्त करने की सिफारिश (सन् 1998) भी पुनर्विचार हेतु लौटा दी थी।

राष्ट्राध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति की कार्यशैली, विचार तथा व्यापक दृष्टिकोण न केवल देश के नागरिकों पर अपितु विदेशों पर भी गहरा प्रभाव छोड़ता है। विदेशी प्रतिनिधि मंडलों तथा शासनाध्यक्षों के साथ वार्ता-मुलाकात तथा विदेश यात्रा के दौरान राष्ट्रपति का व्यवहार एक मिसाल बन जाता है। गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्र के नाम सन्देश, संसद में अभिभाषण

तथा अन्य सभी समारोहों में राष्ट्रपति की गरिमापूर्ण उपस्थिति राष्ट्रपति एकता में अभिवृद्धि करती है। शोषण, अत्याचार तथा अन्याय से पीड़ित आम जनता भी राष्ट्रपति से न्याय की अपेक्षा में अनेक परिवाद प्रेषित करती है। बहुमत की कमी तथा अस्थिर सरकारों के दौर में सम्पूर्ण देश-विदेश की नजरें राष्ट्रपति भवन की ओर टिक जाती हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति की भूमिका बहुत निष्पक्ष तथा गंभीर हो जाती है।

## राष्ट्रपति की सांविधानिक स्थिति

राष्ट्रपति की शक्तियों का सिद्धान्त और व्यवहार में (In Theory and Practice) जो विवेचन किया गया है उससे यह स्पष्ट है कि यद्यपि कुछ अवसरों पर राष्ट्रपति को स्वविवेक का प्रयोग करना पड़ता है। इसके बावजूद भी मूलतः वह एक सांविधानिक राज्याध्यक्ष (Constitutional Head) है जो अपने शक्तियों का प्रयोग मन्त्रि-परिषद् की सलाह से करता है अर्थात् वास्तविक कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में नहीं बल्कि मन्त्रि-परिषद् में निहित है जिसका नेता प्रधानमंत्री होता है।

भारत का राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों का आलोचक, परामर्शदाता, मार्गदर्शक और मित्र है। परामर्शदाता के रूप में वह अपने विचारों को मन्त्री के समक्ष प्रभावशाली तरीके से रख सकता है। आलोचक के रूप में वह उस मन्त्रणा पर आपत्ति कर सकता है, जो मन्त्री ने उसे किसी विषय पर दी हो किन्तु उसे जिद या हठ नहीं करनी चाहिए और अन्तिम उपचार के रूप में यदि मन्त्री राष्ट्रपति की बात को न मानना चाहें तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। मन्त्रिमण्डल के मित्र के रूप में राष्ट्रपति को इतनी सावधानी बरतनी चाहिए कि वह अपनी बात पर व्यर्थ के लिए ही अड़ा न रहे, जिसके फलस्वरूप शासन का स्थायित्व ही खतरे में पड़ जाए। मार्गदर्शक के रूप में राष्ट्रपति मन्त्रियों को उन्हें अपने विभागों के कुशल संचालन और दक्षता प्राप्त करने के संबंध में उपयोगी सलाह और मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है। जब तक राष्ट्रपति ऐसी मन्त्रि-परिषद् की मन्त्रणा पर चलता है जिसको लोकसभा का विश्वास प्राप्त है, वह कोई असांविधानिक कृत्य नहीं कर सकता है।

सांविधानिक प्रधान होने का यह अर्थ नहीं कि राष्ट्रपति के पद का कोई महत्त्व ही नहीं है। वह राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। वह सरकार द्वारा शासन-संचालन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। दलगत राजनीति के ऊपर रहकर और निष्पक्ष होने के नाते मन्त्रि-परिषद् के निर्णयों पर काफी प्रभाव डाल सकता है। और समय-समय पर प्रधानमंत्री को उचित सलाह दे सकता है। ये सब बातें बहुत हद तक उसके व्यक्तित्व पर आधारित हैं। 42वें और 44वें संशोधन के पश्चात् यह सोचना कि राष्ट्रपति एक कठपुतली मात्र है, असत्य है। यद्यपि उसके विशेषाधिकार का क्षेत्र अत्यन्त सीमित हो गया है तथापि ऐसी परिस्थितियाँ हैं जहाँ राष्ट्रपति की शक्ति पर उपर्युक्त संशोधन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है और वह इन मामलों मन्त्रि-मण्डल के परामर्श से कार्य करने के लिए विधिक रूप से बाध्य नहीं है, वे मामले निम्नलिखित हैं - (1) प्रधानमंत्री की नियुक्ति व (2) लोकसभा का विघटन। समय-समय पर भारत के सभी राष्ट्रपतियों ने देश के सांविधानिक विकास में सार्थक भूमिका का निर्वाह किया है। अब तक के राष्ट्रपतियों में राष्ट्रपति आर. वैंकटरमण का कार्यकाल बहुत ही चुनौतीपूर्ण रहा है। उन्हें अपने कार्यकाल में तीन अल्पमतीय प्रधानमंत्रियों - विश्वासनाथ प्रतापसिंह, चन्द्रशेखर और पी. वी. नरसिंहाराव को नियुक्त करना पड़ा और काफी राजनीतिक उतार-चढ़ावों से गुजरना पड़ा। वर्तमान राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा को भी देश की विषम राजनीतिक परिस्थितियों में कार्य करना पड़ रहा है। देश में एक के बाद एक उजागर हुए 'घोटालों' ने भारतीय संसदीय व्यवस्था को झकझोर दिया है। देश के चोटी के राजनेताओं पर शक की सुई घुमने से स्थिति विकट हो गई। उसके बाद ग्यारहवीं लोकसभा के चुनाव के बाद अस्तित्व में आई 'त्रिशंकु संसद' ने राष्ट्रपति की कठिनाइयों को और बढ़ा दिया लेकिन डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने स्थिति का दूरदर्शितापूर्ण आकलन कर के पहले अटलबिहारी वाजपेयी तथा बाद में एच. डी. देवेगोड़ा को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त करके राजनीतिक अनिश्चिता का पटाक्षेप कर दिया। इस प्रकरण में राष्ट्रपति की भूमिका सही थी। देश के अधिकांश प्रख्यात संविधानवेत्ताओं और विधिवेत्ताओं ने राष्ट्रपति की भूमिका को 'संविधान-सम्मत' बताया। राष्ट्रपति ने राजनीतिक-गत्यावरोध को समाप्त करके यह स्पष्ट कर दिया कि भारत की संसदीय व्यवस्था में इस पर की सार्थकता और उपयोगिता है।

सारांश में, भारत का राष्ट्रपति देश का संवैधानिक अध्यक्ष है और प्रायः सभी राष्ट्रपतियों ने इसी के अनुरूप कार्य किया है। उन्होंने प्रधानमन्त्रियों के साथ 'संघर्ष' की स्थिति का सहारा कभी नहीं लिया। इससे भारत की राजनीतिक व्यवस्था को स्थायित्व ही प्राप्त हुआ है।

## अध्याय-7

# प्रधानमंत्री

## (Prime Minister)

संसदीय शासन-प्रणाली में प्रधानमंत्री को केन्द्रीय स्थिति प्राप्त होती है। वह सम्पूर्ण शासन-प्रणाली का मूल आधार है और राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र बिन्दु है। प्रधानमंत्री कार्यपालिका का वास्तविक अध्यक्ष होता है। इसके अतिरिक्त वह अपने दल और जनता का सर्वोच्च नेता तथा देश का प्रमुख प्रवक्ता होता है। इस प्रकार वह मंत्रीमण्डल का प्रमुख, संसद का नेता, देश का नेता, दल का नेता और सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति का मूर्तिमान स्वरूप होता है। डॉ. अम्बेडकर के शब्दों में, "वास्तव में प्रधानमंत्री सम्पूर्ण तंत्र की धुरी है।" भारत की संसदीय शासन-व्यवस्था में प्रधानमंत्री का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसे देश का राजनीतिक या वास्तविक प्रशासक कहा जाता है। उसे ही देश की गृह-नीति, वित्तीय नीति और विदेश नीति का प्रवक्ता माना जाता है। वह भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का भाग्य-विधाता माना जाता है। उसे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की धुरी तथा गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र-बिन्दु कहा जाता है। भारतीय संविधान में प्रधानमंत्री पद का उल्लेख केवल तीन बार किया गया है-

प्रथम, अनुच्छेद 74(1) में उल्लेख है कि "राष्ट्रपति को अपने कार्यों का सम्पादन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होगी जिसका प्रधान, प्रधानमन्त्री होगा।"

द्वितीय अनुच्छेद 75(1) में लिखा है कि "प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री की मन्त्रणा से करेगा।"

तृतीय, अनुच्छेद 78 में राष्ट्रपति को जानकारी देने के सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री के दायित्व के बारे में कहा गया है कि प्रधानमन्त्री का कर्तव्य होगा कि वह -

- (क) संघ-कार्यों का प्रशासन सम्बन्धी मन्त्रि-परिषद् के समस्त निश्चयों तथा विधि-निर्माण के लिए प्रस्थापनाएँ राष्ट्रपति को पहुँचाएगा,
- (ख) संघ-कार्यों का प्रशासन सम्बन्धी तथा विधि-निर्माण विषयक प्रस्थापनाओं सम्बन्धी जिस जानकारी को राष्ट्रपति मँगाए उसको देगा, तथा
- (ग) किसी विषय को, जिस पर किसी मन्त्री ने निश्चय ले लिया हो किन्तु मन्त्रि-परिषद् ने विचार न किया हो, राष्ट्रपति के चाहने पर परिषद् प्रमुख के विचार के लिए रखेगा।

प्रधानमन्त्री मन्त्रि-परिषद् का प्रधान होने के कारण उसका नेतृत्व करता है। प्रधानमन्त्री की स्थिति का पता बहुत कुछ उसके चुने जाने के तरीके से लगाया जा सकता है। यदि प्रधानमन्त्री का चयन उसके स्वयं के व्यक्तित्व तथा दल में उसकी सुदृढ़ स्वतन्त्र स्थिति के कारण हुआ है तो प्रधानमन्त्री की स्थिति निश्चय ही मजबूत होती है। प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू का कांग्रेस दल के संसदीय संगठन पक्ष पर पूर्ण वर्चस्व होने के कारण वे अत्यन्त शक्तिशाली प्रधानमन्त्री माने जाते थे। यदि प्रधानमन्त्री के चयन में दलीय नेताओं, मुख्य-मन्त्रियों आदि का विशेष हाथ है तो प्रधानमन्त्री की स्थिति कमजोर होगी। सन् 1964 में पंडित जवाहरलाल नेहरू के देहावसान के बाद जब लालबहादुर शास्त्री को प्रधानमन्त्री बनाया गया तो कामराज ने यही कहा था कि प्रधानमन्त्री 'समकक्षों में प्रथम' से अधिक नहीं होगा। अतः प्रारम्भ में उनकी स्थिति कमजोर थी। सन् 1966

में श्रीमती इन्दिरा गाँधी को प्रधानमन्त्री पद पर प्रतिष्ठित करने में कांग्रेस अध्यक्ष के. कामराज नाडार, सिण्डीकेट गुट तथा राज्यों के मुख्यमन्त्रियों की भूमिका रही। लेकिन सन् 1969 में काँग्रेस-विभाजन और राष्ट्रपति के चुनाव में वी. वी. गिरि की विजय के बाद देश की राजनीतिक व्यवस्था पर श्रीमती गाँधी की पकड़ धीरे-धीरे मजबूत होती गई। उन्होंने अपनी प्रतिभा और नेतृत्व-क्षमता का परिचय देते हुए भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर अपना निर्विवाद नेतृत्व कायम कर लिया। जो गौरवपूर्ण और सुदृढ़ स्थिति पं. जवाहरलाल नेहरू की थी, वही स्थिति उनकी पुत्री इन्दिरा गाँधी ने अर्जित कर ली। सन् 1984 के बाद राजीव गाँधी ने भी अल्पकाल में अपनी नेतृत्व-क्षमता का परिचय दे दिया था और वह एक शक्तिशाली प्रधानमन्त्री के रूप में उभरे। उनका अपने दल के संसदीय और संगठन पक्ष पर पूर्ण नियन्त्रण था। वे अपने दल के निर्विवाद नेता बने रहे। मोरारजी देसाई शक्तिशाली प्रधानमन्त्री के रूप में कभी उभर नहीं सके। चौधरी चरणसिंह कामचलाऊ सरकार के प्रधानमन्त्री रहे तथा कभी अपनी क्षमता का परिचय नहीं दे सके। विश्वनाथ प्रतापसिंह और चन्द्रशेखर भी अल्पमतीय प्रधानमन्त्री होने के कारण प्रभावशाली प्रधानमन्त्री के रूप में अपनी छवि नहीं बना सके। पी. वी. नरसिम्हाराव की स्थिति भी प्रारम्भ में सुदृढ़ नहीं थी। लोकसभा में काँग्रेस (इ) को पूर्ण बहुमत प्राप्त होने पर उनकी स्थिति सुदृढ़ हुई। सन् 1996 के लोकसभा चुनाव के बाद किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होने पर राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने लोकसभा में सबसे बड़े दल के नेता अटलबिहारी वाजपेयी को प्रधानमन्त्री के रूप में नियुक्त किया। लेकिन वे मात्र 13 दिनों तक ही अपने पद पर रहे। उसके बाद उन्होंने 13 दलीय संयुक्त मोर्चे के नेता एच. डी. देवेगौड़ा को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया, जिनकी स्थिति भी सुदृढ़ नहीं थी। उसके बाद इन्द्र कुमार गुजराल की भी यही स्थिति रही। 1998 के लोक सभा चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिलने पर राष्ट्रपति के. आर. नारायणन् ने भाजपा एवं सहयोगी दलों के नेता के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जिनकी स्थिति भी सुदृढ़ नहीं रही। क्योंकि सहयोगी दलों द्वारा बार-बार समर्थन वापसी की धमकी दी जाती रही। इसी घटना क्रम में 14 अप्रैल को भाजपा के सहयोगी दलों ने अपना समर्थन वापस ले लिया। जिसके कारण राष्ट्रपति ने अगले दिन प्रधानमन्त्री को विश्वासमत प्राप्त करने को कहा। लोकसभा में विश्वास प्रस्ताव पर 26 घंटे बहस चली जिसके बाद मतदान हुआ जिसमें भाजपा को 269 एवं विपक्ष को 270 मत मिले अतः एक मत के अन्तर से भाजपा सरकार का पतन हो गया। प्रधानमन्त्री की स्थिति, शक्तियों और उत्तरदायित्वों की समुचित रूप से समझने के लिए मन्त्रिमण्डल और राष्ट्रपति के साथ उसके सम्बन्धों तथा विभिन्न क्षेत्रों में उसकी महत्वपूर्ण स्थिति और जिम्मेदारियों का वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं-

### प्रधानमन्त्री राजनीतिक प्रमुख के रूप में

भारतीय संविधान-निर्माताओं ने संविधान-सभा में काफी विचार-विमर्श के पश्चात् ब्रिटेन की संसदीय व्यवस्था या "वेस्टमिन्स्टर" मॉडल को अपनाया। संसदीय प्रणाली में गतिशीलता का तत्त्व अधिक मात्रा में देखने को मिलता है, इसलिए ब्रिटेन में सत्ता का केन्द्र समय के साथ बदलता रहा। प्रारम्भ में सत्ता का केन्द्र राजा से हटकर हाउस ऑफ लॉर्ड्स, हाउस ऑफ लॉर्ड्स से हाउस ऑफ कॉमन्स, हाउस ऑफ कॉमन्स से कैबिनेट, और आज का कैबिनेट से हटकर प्रधानमन्त्री वास्तविक सत्ता का केन्द्र बन गया है। सत्रहवीं सदी में इंग्लैण्ड में इस व्यवस्था को तब अपनाया गया, जब इस व्यवस्था के अन्तर्गत सत्ता का वास्तविक केन्द्र संसद थी। लेकिन 19 वीं सदी में सक्रिय विविध तत्त्वों ने इस सदी के समाप्त होते-होते संसद के स्थान पर मन्त्रिमण्डल को सत्ता का वास्तविक केन्द्र बना दिया। 20 वीं सदी में विश्व के सभी कार्यपालिका-प्रधान देशों में सत्ता के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति देखी गयी है। ब्रिटेन में युद्ध, आर्थिक संकट और द्रुतगामिता की दिशा में बढ़ने वाले विविध चरणों ने मन्त्रिमण्डलीय प्रमुख में सत्ता के केन्द्रीकरण को जन्म दिया और एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई, जिसे युद्ध के बाद के वर्षों (1945) में "प्रधानमन्त्रीय शासन" नाम दिया गया और प्रधानमन्त्री वास्तविक कार्यपालिका बन गया। भारत में प्रधानमन्त्री की यही स्थिति है। प्रधानमन्त्री के महत्व को दर्शाने के लिए समय-समय पर जिन मुहावरों का प्रयोग किया जाता रहा है अब वे व्यर्थ हो गये हैं। अब हमारी बर्कले के इस अभिमत में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के पद की वस्तुस्थिति प्रकट होती है : "वेस्टमिन्स्टर में संसदीय लोकतन्त्र की उच्च मन्त्रिमण्डलीय शक्ति है।" क्रॉसमैन ने भी लिखा है, "द्वितीय महायुद्ध के बाद के वर्षों में मन्त्रिमण्डलीय शासन-प्रणाली प्रधानमन्त्री शासन-प्रणाली में परिवर्तित हो गयी है।" जॉन मैकिन्टोश अधिक सरल शब्दों में लिखते हैं, "अब देश पर प्रधानमन्त्री द्वारा शासन किया जाता है।"

उक्त कथन भारतीय प्रधानमन्त्री के सम्बन्ध में सत्य प्रतीत होते हैं। पिछले 56 वर्षों में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में प्रधानमन्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रधानमन्त्री मुख्य प्रशासक, सत्ता का स्रोत, मुख्य नीति-निर्माता तथा मुख्य राजनयिक के रूप

में राष्ट्र के समक्ष उपस्थित हुआ है। हम भले ही "प्रधानमन्त्रीय शासन" शब्द का प्रयोग न करें, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद में भारत में यह देखने को मिलता है कि कैबिनेट तथा समस्त शासन के संदर्भ में सामान्यतः प्रधानमन्त्री को बहुत अधिक प्रमुखता की स्थिति प्राप्त हो गयी है और मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की स्थिति प्रधानमन्त्री के एजेण्ट जैसी होकर रह गयी है। श्रीमती गांधी तथा राजीव गांधी के कार्यकाल में यह स्थिति देखने को मिलती है। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि विगत कुछ वर्षों की राजनीतिक घटनाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत में प्रधानमन्त्री मन्त्रिपरिषद् का ही केन्द्र बिन्दु नहीं है, अपितु वह सम्पूर्ण राष्ट्र का केन्द्र बिन्दु है। इस सम्बन्ध में ग्रीव्ज का कथन कि "सरकार राष्ट्र की स्वामी है और प्रधानमन्त्री सरकार का स्वामी है" भारत के प्रधानमन्त्री के विषय में सत्य प्रतीत होता है। भारत में महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नीतियों, परराष्ट्र, वित्त, सुरक्षा, राष्ट्रीय अर्थ-नीति आदि के निर्माण में प्रधानमन्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वस्तुतः वह सम्पूर्ण संवैधानिक ढाँचे और राज्य-व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु है।

## जनमत और प्रधानमंत्री

वास्तव में प्रधानमन्त्री और जनता दोनों ही परस्पर अन्तर्सम्बन्धित और अन्योन्याश्रित हैं। प्रधानमन्त्री की भूमिका, कार्यों एवं नीतियों का प्रभाव जनता पर पड़ता है और जनमत के समर्थन एवं असमर्थन का प्रभाव प्रधानमन्त्री पर पड़ता है। प्रधानमन्त्री केवल सत्तारूढ़ दल का ही नहीं, सम्पूर्ण देश का नेता होता है अतः जनमत के विश्वास, बहुमत एवं लोकप्रियता को अपने पक्ष में कर, वह अत्यन्त शक्तिशाली प्रधानमन्त्री की भूमिका सम्पादित कर सकता है। अपने प्रबल जन-समर्थन के कारण ही पं. जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गाँधी एवं अटलबिहारी वाजपेयी का 'करिश्मा' भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर छाया रहा। वे देश के जनमत को प्रभावित करने में सफल रहे। प्रधानमंत्री को जनमत का सम्मान करते हुए ही निर्णय लेना चाहिए। जो प्रधानमन्त्री जनमत की उपेक्षा करता है, वह अधिक समय तक अपने पद पर बने नहीं रह सकता है।

भारतीय प्रशासन कि इंग्लैण्ड के समान भारत में भी लोकसभा के बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जायेगा। इस प्रकार सामान्य परिस्थितियों में प्रधानमन्त्री के चयन में राष्ट्रपति को कोई विवेकात्मक अधिकार प्राप्त नहीं है। किन्तु विशेष परिस्थितियों में प्रधानमन्त्री के चयन में राष्ट्रपति के द्वारा अपने विवेक का प्रयोग किया जा सकता है, जैसाकि जुलाई 1979 और नवम्बर 1990 में प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति ने अपने विवेक का प्रयोग किया।

1. **प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल** - ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की तरह भारत का प्रधानमन्त्री भी मन्त्रिपरिषद् तथा मन्त्रिमण्डल के निर्माण, जीवन तथा मृत्यु का केन्द्रबिन्दु है। संवैधानिक स्थिति कुछ भी हो, किन्तु व्यवहार में मन्त्रिपरिषद् की स्थिति एक सलाहकार परिषद् जैसी हो गयी है। आज यदि यह कहा जाये कि भारत सरकार के कार्यों का सम्पादन प्रधानमन्त्री द्वारा मन्त्रियों की सहायता और परामर्श से हो रहा है तो यह सत्य के अधिक निकट होगा। समय की आवश्यकता एवं माँग के अनुसार "आन्तरिक कैबिनेट", "युद्ध कैबिनेट", "आपातकालीन कैबिनेट", "किचन कैबिनेट" की स्थापना के कारण कैबिनेट अपनी नीति-निर्धारण तथा निर्णय लेने की सत्ता एवं प्रभाव को खोती जा रही है। इन असंवैधानिक संस्थाओं के निर्माण का परिणाम यह हुआ कि प्रधानमन्त्री किसी भी मन्त्री, यहां तक कि बाहर के व्यक्ति से भी सलाह ले सकता है। सरदार वल्लभभाई पटेल की मृत्यु (1950) के बाद पण्डित नेहरू का एकछत्र प्रभुत्व स्थापित हो गया। आगे चलकर श्रीमती इन्दिरा गांधी (जो पन्द्रह वर्षों तक प्रधानमन्त्री रही) की स्थिति भी इस दिशा में अच्युनौती पूर्ण रही। उनके पुत्र और उत्तराधिकारी राजीव गांधी को, जो मूलतः अभिजात वर्ग के थे, राजनीति, सरकार तथा प्रशासन की जानकारी थी। उन्होंने पाँच वर्षों तक एक "बादशाह" की भांति शासन किया। पण्डित नेहरू, इन्दिरा गांधी तथा राजीव गांधी के प्रधानमन्त्रित्व में मन्त्रिपरिषद् तथा कैबिनेट की स्थिति महत्वहीन हो गयी थी और मन्त्रिमण्डलीय शासन-प्रणाली प्रधानमन्त्रीय शासन-प्रणाली में परिवर्तित हो गयी थी।

मन्त्रिपरिषद् तथा मन्त्रिमण्डल के निर्माण में प्रधानमन्त्री स्वतन्त्र होता है। प्रधानमन्त्री ही निर्णय करता है कि मन्त्रिमण्डल में किसे सम्मिलित करे और कितने मन्त्री हों। वह चाहे तो अपने दल के बाहर के व्यक्ति को भी मन्त्री नियुक्त कर सकता है। वह मन्त्रियों के बीच विभागों का वितरण भी अपनी इच्छानुसार करता है। वह मन्त्री पदों में जब चाहे तब परिवर्तन कर सकता है तथा किसी मन्त्री के कार्यों अथवा आचरण से असन्तुष्ट होने पर उससे त्यागपत्र माँग सकता है। उसे मन्त्रियों को पदच्युत करने का भी अधिकार प्राप्त है।

प्रधानमन्त्री को किसी मन्त्री को पदोन्नत या पदावनत करने का अधिकार है। वह मन्त्रिपरिषद् की बैठकों की अध्यक्षता

- करता है। मन्त्रिपरिषद् की समस्त गतिविधियों एवं कार्रवाइयों का संचालन प्रधानमन्त्री ही करता है। प्रधानमन्त्री ही मन्त्रिपरिषद् की एकता तथा सुदृढ़ता कायम रखता है। इस प्रकार प्रधानमन्त्री मन्त्रिपरिषद् का पूर्ण निर्माता होता है। संक्षेप में, वह सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषद् एवं प्रशासन का निरीक्षण एवं नियन्त्रण करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रधानमन्त्री मन्त्रिपरिषद् के जीवन और मरण का केन्द्रबिन्दु है।
2. **प्रधानमन्त्री और संसद** - प्रधानमन्त्री लोकसभा का नेता होता है। लोकसभा में बहुमत दल के नेता को ही राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद् गठित करने के लिए आमन्त्रित करता है। प्रधानमन्त्री यह पद इसी आधार पर प्राप्त करता है कि उसे सदन में बहुमत प्राप्त है। यह भी सत्य है कि प्रधानमन्त्री की शक्ति और प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके पीछे कितना बहुमत तथा स्थायित्व है। प्रधानमन्त्री व्यवस्थापन और प्रशासन से सम्बन्धित नीतियों के निर्धारण में मन्त्रिमण्डल द्वारा संसद का पथ-प्रदर्शन करता है। वह संसद में मन्त्रिमण्डल का प्रतिनिधित्व करता है, महत्वपूर्ण विधेयकों पर भाषण देता है, सरकारी नीति के मुख्य विषयों के सम्बन्ध में घोषणाएँ करता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर भाषण देता है। शासकीय विधेयकों को प्रधानमन्त्री की सलाह के अनुसार तैयार किया जाता है। देश की आर्थिक तथा विदेश-नीति और वार्षिक बजट के निर्धारण में वह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की सलाह पर ही लोकसभा को भंग करता है। अपने कुशल एवं प्रभावशाली नेतृत्व से प्रधानमन्त्री संसद की प्रतिष्ठा बनाये रखता है।
  3. **प्रधानमन्त्री और जनमत** - प्रधानमन्त्री संसद का नेता होने के अतिरिक्त जनता का नेता भी होता है। वास्तव में उसकी शक्ति का स्रोत प्रचण्ड जनमत का समर्थन है। प्रधानमन्त्री जनता द्वारा चुना जाता है, क्योंकि चुनाव उसके नाम से ही लड़े जाते हैं तथा जनता उसके नाम पर ही पार्टी को मत देती है। इस सम्बन्ध में डॉ. (श्रीमती) विमला शुक्ला का यह कथन सत्य प्रतीत होता है- "वास्तव में प्रधानमन्त्री और जनता दोनों परस्पर अन्तर्सम्बन्धित अन्योन्याश्रित हैं। प्रधानमन्त्री की भूमिका और कार्यों एवं शक्तियों का प्रभाव जनता पर पड़ता है तथा जनमत के समर्थन एवं असमर्थन का प्रभाव प्रधानमन्त्री पर पड़ता है। प्रधानमन्त्री केवल सत्तारूढ़ दल का ही नहीं, सम्पूर्ण देश का नेता होता है। अतः जनमत के विश्वास, बहुमत एवं लोकप्रियता को अपने पक्ष में कर वह अत्यन्त शक्तिशाली प्रधानमन्त्रीय भूमिका सम्पादित करता है।" अपने प्रबल जन-समर्थन के कारण ही नेहरू तथा इन्दिरा गांधी का "करिश्मा" भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर छाया रहा और इसी जन-समर्थन के बूते पर वे महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सफल रहे।

### अनुग्रह की शक्ति

प्रधानमन्त्री लोगों का अनेक प्रकार से अनुग्रह कर सकता है। देश के सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियों राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमन्त्री के परामर्श से ही की जाती हैं। प्रधानमन्त्री अपने सहयोगी महत्वपूर्ण मंत्रियों से इस सम्बन्ध में परामर्श ले सकता है, पर अन्तिम निर्णय का अधिकार और उत्तरदायित्व उसी का होता है। इस शक्ति ने प्रधानमन्त्री की भूमिका को बहुत अधिक शक्तिशाली बना दिया है। ऐसा करके वह अपने समर्थकों और अनुयायियों को लाभ पहुँचा सकता है।

### प्रधानमन्त्री और विदेश-नीति

प्रधानमन्त्री को देश की विदेश नीति का प्रवक्ता माना जाता है। विदेश-नीति के निर्धारण में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। प्रधानमन्त्री पंडित श्री जवाहरलाल नेहरू ने भारत की विदेश-नीति के निर्माण में इतना अधिक योगदान दिया कि 'भारतीय विदेश नीति को नेहरू की विदेश-नीति' कहा जाने लगा। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने विदेश विभाग स्वयं अपने पास रखा था। प्रधानमन्त्री विदेश मंत्रालय को चाहे अपने आधीन रखे अथवा किसी दूसरे मंत्री को सौंपे, लेकिन इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उसे विदेश मंत्रालय से घनीष्ट सम्पर्क बनाए रखना पड़ता है और अन्तर्राष्ट्रीय जगत में देश का वास्तविक प्रवक्ता वही होता है। विदेश-नीति के सभी महत्वपूर्ण मामलों का निश्चय अन्तिम रूप से वही करता है। किसी भी देश को मान्यता देना अथवा मान्यता समाप्त करना, राजदूतों को नियुक्त करना, उन्हें वापस बुलाना आदि सभी मामलों में वास्तविक निर्णय प्रधानमन्त्री द्वारा ही दिया जाता है। कैबिनेट की राजनीतिक मामलों की समिति तथा विदेश मंत्रालय की नीति निर्माण समिति के माध्यम से यह नियन्त्रण व्यवहार में लाया जाता है। भारत के साथ अपना सम्बन्ध बनाए रखने के लिए छोटे-बड़े सभी राष्ट्र प्रधानमन्त्री के रूख का आंकलन करते रहते हैं। विदेशों में प्रधानमन्त्री की आवाज को देश की आवाज माना जाता है।

## प्रधानमंत्री और सुरक्षा-नीति

सुरक्षा सम्बन्धि मामलों पर प्रधानमंत्री की पूरी दृष्टि रहती है। रक्षा-मंत्री को प्रधानमंत्री के निकट सम्पर्क और पूर्ण नियन्त्रण में रहकर ही कार्य करना पड़ता है। देश की हार-जीत का श्रेय प्रधानमंत्री को ही मिलता है। सन् 1962 में चीन के आक्रमण के समय भारत की हार के लिए पंडित जवाहरलाल नेहरू आलोचना के पात्र बने थे। सन् 1965 के युद्ध में पाकिस्तान पर विजय का सहारा लालबहादुर शास्त्री के सिर पर बाँधा गया। सन् 1971 में भारत-पाक युद्ध में भारत की शानदार विजय और स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में बांग्लादेश की स्थापना का श्रेय श्रीमति इन्दिरा गाँधी ने कमाया। 1999 में पाकिस्तान के साथ हुए कारगिल संघर्ष में भारत की जीत का सहारा प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के सिर बाँधा गया। कब युद्ध करना है? कब युद्ध बंद करना है? किस महाशक्ति से क्या सहायता लेनी है? किस राष्ट्र के प्रति क्या नीति अपनानी है? किस प्रकार शान्ति समझौते करने हैं? संयुक्त राष्ट्रसंघ में क्या कूटनीतिक पैतरे दिखाने हैं? इस प्रकार के सभी निर्णय अन्तिम रूप से प्रधानमंत्री द्वारा लिए जाते हैं। समस्त सैनिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री के निर्देशानुसार ही किया जाता है। युद्धकाल में भारत के प्रधानमंत्री मोर्चों पर जाकर अपने सैनिकों का साहस बढ़ाते रहे हैं और यह सिद्ध करते रहे हैं कि वे देश की सुरक्षा का कितना महान उत्तरदायित्व संभाले हुए हैं।

## प्रधानमंत्री का अर्थतन्त्र

आर्थिक मामलों पर भी प्रधानमंत्री का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। देश के अर्थतन्त्र की सफलता-असफलता का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री पर ही होता है। कई बार प्रधानमंत्री स्वयं वित्त मन्त्रालय का संभाल लेता है। जुलाई 1969 से जून 1970 तक वित्त विभाग श्रीमति गाँधी ने अपने पास ही रखा था। वित्त-मंत्री कोई भी राष्ट्रीय महत्व का फैसला स्वयं नहीं कर सकता है। बजट-निर्माण का कार्य प्रधानमंत्री से परामर्श लेकर ही किया जाता है। योजना आयोग के अध्यक्ष का पद आरम्भ से ही प्रधानमंत्री के पास रहा है और राष्ट्रीय परिषद् में भी आम तौर पर प्रधानमंत्री ही छाया रहता है। राज्यों को वित्तीय सहायता देने सम्बन्धी अन्तिम निर्णय के पीछे प्रधानमंत्री का परामर्श और भूमिका ही प्रमुख होती है। योजनाओं के सफल संचालन का भार उसे ही उठाना पड़ता है। देश की जनता अपनी आर्थिक कठिनाईयों से छुटकारा पाने के लिए प्रधानमंत्री की ओर देखती है। जनता को संतोष देकर प्रधानमंत्री न केवल अपनी सरकार की प्रतिष्ठा बढ़ाता है, बल्कि आम चुनावों में अपने दल को विजयी भी बनाता है। समय-समय पर प्रधानमंत्री राष्ट्र के समक्ष महत्वपूर्ण आर्थिक कार्यक्रम प्रस्तावित करता है। श्रीमती गाँधी द्वारा घोषित बीस-सूत्रीय कार्यक्रम राष्ट्रीय कार्यक्रम बन गया था। प्रधानमंत्री राजीव गाँधी द्वारा घोषित बीस-सूत्रीय कार्यक्रम को भी राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में अंगीकार किया गया। प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव एवं अटलबिहारी वाजपेयी की उदार आर्थिक नीतियों ने अर्थ-व्यवस्था के नये स्वरूप का निर्धारण किया है।

## प्रधानमंत्री और विधि-निर्माण

विधि-निर्माण संसद् का अधिकार और क त् य हैं, लेकिन व्यवहार में इस क्षेत्र में भी प्रधानमंत्री की निर्णायक भूमिका होती है। संसद् में बहुमत दल का नेता होने के कारण वह संसद् से इच्छित कानून बनवा सकता है, संविधान में संशोधन करवा सकता है, लेकिन प्रधानमंत्री यह सब कुछ करते समय जनता और विरोधी दलों का खयाल रखता है। अपना उत्तरदायित्व समझने वाला कोई भी प्रधानमंत्री निरंकुशता के मार्ग पर नहीं चलेगा। भारत में अब तक जो भी प्रधानमंत्री हुए हैं उन्होंने लोकतान्त्रिक आदर्शों और परम्पराओं के प्रति पूर्ण निष्ठा रखे हुए अपनी शक्तियों का प्रयोग किया है। जब सत्ता का कुछ दुरुपयोग किया तो भारतीय मतदाताओं ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी और काँग्रेस को अस्वीकार कर दिया और वे सत्ताच्युत हो गईं। लेकिन अपनी भूलों को स्वीकार कर लेने के बाद 1980 में जनता ने पुनः उन्हें प्रधानमंत्री बना दिया।

## मुख्यमन्त्रियों के साथ सम्बन्ध

प्रधानमंत्री का राज्यों की राजनीति पर नियन्त्रण होता है। उसकी राज्यों के मुख्यमन्त्रियों की नियुक्ति करने और उन्हें अपदस्थ करने में अहम भूमिका होती है। एक शक्तिशाली प्रधानमंत्री का मुख्यमन्त्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। पं. जवाहरलाल नेहरू को 'सर्वोच्च प्रधानमंत्री' भी कहा जाता था। लेकिन जब पाँचवें दशक के अन्तिम वर्षों में नेहरू का काँग्रेस संगठन पर से प्रभाव कम होने लगा तो विभिन्न राज्यों के मुख्यमन्त्रियों ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना प्रारम्भ किया। सन् 1966 में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्रधानमंत्री के रूप में चयन करने में राज्यों के मुख्यमन्त्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रहा। उन्होंने सत्ता में आने के बाद अनेक

मुख्यमन्त्रियों को बदला। शरद पवार ही ऐसे अपवाद वाले मुख्यमंत्री रहे, जिन्हें चाहते हुए भी राजीव गांधी पद से हटा नहीं सके। गैर-काँग्रेस मुख्यमन्त्रियों और प्रधानमंत्री के सम्बन्ध राजनीतिक कारणों से सौहार्द्रपूर्ण नहीं रह पाते हैं। वे एक दुर्बल प्रधानमंत्री को पसंद करते हैं। राज्यपालों की नियुक्ति करने में तथा प्रस्तावित लोकपालों की नियुक्ति में प्रधानमंत्री महत्वपूर्ण शक्ति रखता है। जहाँ एक ओर मुख्यमंत्री के पदासीन होने व बने रहने के लिए प्रधानमंत्री की सहानुभूति अति आवश्यक होती है और एक विरोधी प्रधानमंत्री एक मुख्यमंत्री की राजनीतिक मत्तु का कारण बन सकता है। वहाँ राज्यों के मुख्यमन्त्रियों के साथ अच्छे सम्बन्ध होने पर प्रधानमंत्री की स्थिति मजबूत होती है और वह अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह तथा अपनी नीतियों का कार्यान्वयन अधिक प्रभावी ढंग से कर सकता है। यदि प्रधानमंत्री की अपेक्षा मुख्यमन्त्रियों का व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है तो प्रधानमंत्री की स्थिति पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

### प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति

प्रधानमंत्री का कर्तव्य है कि भारत संघ के कार्यों के प्रस्ताव के सम्बन्ध में मन्त्रि-परिषद् के निर्णयों से तथा कानून बनाने के प्रस्तावों में और उनसे सम्बन्धित जानकारी से राष्ट्रपति को अवगत कराए। प्रधानमंत्री का यह कर्तव्य है कि अगर राष्ट्रपति चाहे तो किसी ऐसे मामले में जिस पर किसी मन्त्री ने निर्णय कर लिया हो, परन्तु जिस पर मन्त्रि-परिषद् द्वारा विचार नहीं किया गया हो, मन्त्रि-परिषद् के विचारार्थ प्रस्तुत करे। प्रधानमंत्री की स्थिति निश्चय ही तब अधिक मजबूत होती है, जबकि राष्ट्रपति भवन में एक मैत्रीपूर्ण व्यक्तित्व विराजमान हो। एक मैत्रीविहीन राष्ट्रपति पर्याप्त सीमा तक प्रधानमंत्री के लिए कठिनाई उपस्थित कर सकता है। यह देश के हित में है कि प्रधानमंत्री तथा राष्ट्रपति एक-दूसरे को सहयोग देते हुए अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें। वैसे सांविधानिक व्यवस्था की माँग है कि राष्ट्रपति वही करे जो प्रधानमंत्री परामर्श दे। प्रधानमंत्री का शक्तिशाली व्यक्तित्व और व्यापक प्रभाव किसी भी व्यक्ति को राष्ट्रपति पद पर आसीन कराने में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है, किन्तु पद पर आसीन होने के बाद वह व्यक्ति राजनीतिक तटस्थता रखते हुए अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करता है। भारत के सभी राष्ट्रपतियों ने इस व्यवस्था और परम्परा से सहमति प्रकट की है कि राष्ट्रपति को मन्त्रि-परिषद् की मन्त्रणा के अनुसार ही अपनी शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का निर्वहन करना है। राम जवाया बनाम भारत सरकार, यू. एन. राव बनाम इन्दिरा गाँधी, शमशेरसिंह बनाम स्टेट ऑफ पंजाब के वादों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से भी उपरोक्त मत की ही पुष्टि होती है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति के पद का कोई महत्त्व नहीं है। 'वह राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है और सरकार द्वारा शासन-संचालन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह दलगत राजनीति के ऊपर रहकर और एक निष्पक्ष व्यक्ति होने के नाते मन्त्रि-परिषद् के निर्णयों पर काफी प्रभाव डाल सकता है और समय-समय पर प्रधानमंत्री को उचित सलाह दे सकता है। ये सब बातें बहुत हद तक उसके व्यक्तित्व पर आधारित हैं। यही हमारे संविधान की मूल भावना है और हम आशा करते हैं कि इस उच्चतम पद के धारण करने वाले इस भावना का समुचित आदर करेंगे और जनतंत्र को सफल बनाने में अपना अमूल्य योगदान देने का भरसक प्रयत्न करेंगे।' 42वें और 44वें संविधान संशोधनों के फलस्वरूप यद्यपि राष्ट्रपति के विशेषाधिकारों का क्षेत्र सीमित हो गया है तथापि ऐसी परिस्थितियाँ हैं जहाँ राष्ट्रपति की शक्ति पर इन संशोधनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है प्रधानमंत्री की नियुक्ति तथा लोकसभा के विघटन के मामलों में मन्त्रिमण्डल के परामर्श से कार्य करने के लिए राष्ट्रपति विधिक रूप से बाध्य नहीं हैं।

### प्रधानमंत्री और दल

वह अपने दल का घोषित अथवा अघोषित सर्वमान्य नेता होता है। सामान्य निर्वाचन प्रधानमंत्री का निर्वाचन है। वह प्रत्याशियों के चयन में अन्तिम अधिकार रखता है। दल के सदस्य प्रधानमंत्री के नेतृत्व में ही राजनीतिक गतिविधियाँ निश्चित करते हैं। दल के कार्यक्रमों को उसका आशीर्वाद प्राप्त है। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करते हैं। प्रधानमंत्री की समस्त शक्ति इस बात पर ही आधारित है कि वह अपने दल में महत्त्वपूर्ण स्थान दलीय नेतृत्व को क्षमता एवं दल के बहुमत का समर्थन प्राप्त कर सकने में पूर्ण सक्षम है अथवा नहीं? यदि उसका दल संसद् में अपने बहुमत को खो देता है या उसके विरुद्ध विद्रोह कर देता है, तो उसकी समस्त शक्ति समाप्त हो जाती है।

प्रधानमंत्री के विशेषकर संसदीय दल के नेता के रूप में, अपने दल के केन्द्रीय दल संगठन के सम्बन्ध में, दल के प्रधानमंत्री की स्थिति एवं दल और सरकार के नेतृत्व की दृष्टि से उसकी भूमिका, भारतीय राजनीतिक पद्धति का दीर्घकालीन विवादपूर्ण



विषय रहा है। दल की स्थिति, भूमिका एवं प्रधानमंत्री से उसके सम्बन्धों का संविधान के अन्तर्गत कहीं पर भी सुपरिभाषित कर सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित नहीं किया गया है। ये अतिरिक्त सांविधानिक संरचना के रूप में परम्पराओं, परिस्थितियों और राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित एवं परिभाषित किए जाते रहे हैं। कभी ये विवाद सरकार और दल के दोनों प्रमुखों प्रधानमंत्री बनाम दलीय अध्यक्ष के मध्य, कभी संसदीय बनाम संगठनात्मक पक्ष के मध्य चर्चित होते रहे हैं। पं. जवाहरलाल नेहरू के समय दल शक्ति की सरकार के हाथों में हस्तान्तरित की गई, किन्तु उनकी मृत्यु के बाद स्थिति बदल गई। अब तक व्यावहारिक रूप से दलीय अध्यक्ष का चयन प्रधानमंत्री करता था, परन्तु पं. नेहरू के देहावसान से बाद दल के अध्यक्ष कामराज नाडार ने लालबहादुर शास्त्री और श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्रधानमंत्री के रूप में चयन करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। सन् 1967 के आम चुनाव के पश्चात् श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने पकड़ मजबूत कर ली और कांग्रेस के विभाजन के पश्चात् तो कांग्रेस दल पर श्रीमती गाँधी का प्रभुत्व स्थापित हो गया। 1971 के लोकसभा चुनाव के पश्चात् प्रधानमंत्री के पद ने दल-अध्यक्ष के पद को आच्छादित कर दिया और औपचारिक शक्तियाँ न होते हुए भी प्रधानमंत्री वास्तविक रूप से दल और सरकार दोनों का ही नेता बन गया। तभी तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष देवकान्त बरुआ ने प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के लिए कहा था- 'इन्दिरा ही भारत है, भारत ही इन्दिरा है।' सन् 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी तो प्रधानमंत्री और दल के अध्यक्ष चन्द्रशेखर के सम्बन्धों के विषय में एकदम स्पष्ट स्थिति नहीं रही पर ऐसा लगा कि दल का अध्यक्ष अपनी सांविधानिक शक्तियों और अधिकारों के प्रति जागरूक है। जनता सरकार अल्पकालिक रही और जनवरी, 1980 में श्रीमती इन्दिरा गाँधी विशाल बहुमत के साथ पुनः प्रधानमंत्री बनीं और दल-अध्यक्ष का पद प्रधानमंत्री के पद द्वारा पुनः उसी प्रकार आच्छादित हो गया जिस प्रकार 1971 के बाद हुआ था। 31 अक्टूबर, 1984 को उनकी हत्या के बाद उनके पुत्र राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने। प्रधानमंत्री के साथ-साथ राजीव गाँधी दल के अध्यक्ष भी रहे। दल के संचालन में उनकी भूमिका निर्णायक और सर्वोपरि रही। बाद के प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रतापसिंह और चन्द्रशेखर की अपने दल पर पकड़ सशक्त नहीं होने से वे शक्तिशाली प्रधानमंत्री के रूप में नहीं उभर सके। पूर्व प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव भी प्रधानमंत्री के साथ-साथ कांग्रेस अध्यक्ष भी बने रहे।

### प्रधानमंत्री वास्तविक कार्यपालिका के रूप में

प्रधानमंत्री का महत्वपूर्ण अन्तरदायित्व नीति-निर्धारण और क्रियान्वयन, प्रशासनिक दक्षता, जनता और सरकार के बीच प्रभावशाली सम्बन्ध तथा सरकार का संसद् के साथ सम्पर्क बनाये रखना है। यह कार्य प्रायः मुख्य कार्यपालिका के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। उसके कार्य संक्षेप में योजना, संगठन, स्टाफ, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन, बजट, लोक-सम्पर्क और प्रशासनिक सुधार करना हैं। मुख्य कार्यपालिका दो प्रकार के कार्य करती है-राजनीतिक और प्रशासनिक। राजनीतिक कार्यों के अन्तर्गत शासन की नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए विविध समर्थन प्राप्त करना, उसे बनाये रखना तथा राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करना आदि कार्य आते हैं। ये महत्वपूर्ण कार्य हैं। इनमें किसी भी कार्य की अवहेलना का अर्थ है समय के पूर्व ही अपने पद को खो देना या उसका संकट आमन्त्रित करना। मुख्य कार्यपालिका के प्रशासकीय कार्यों की गुलिक ने एक शब्द 'पोस्टकोर्ब' में समाविष्ट किया है। इस शब्द से योजना, संगठन, स्टाफ, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन और बजट का बोध होता है। इन कार्यों में हम प्रशासकीय नीति के निर्धारण, नियोजन, जनसम्पर्क और प्रशासकीय सुधारों को सम्मिलित कर सकते हैं। प्रधानमंत्री मुख्य कार्यपालिका, प्रशासनिक प्रमुख और महाप्रबन्धक के रूप में अधिक भूमिका निभाने लगा है। यहाँ हम प्रधानमन्त्रशासनिक कार्यों की चर्चा करेंगे।

### योजना बनाना

योजना का अर्थ होता है सही तरीके से सोच-समझकर कार्य करना। किसी निर्धारित निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किसी सर्वोत्तम मार्ग का चुनाव तथा विकास की चेतन प्रक्रिया ही नियोजन है। योजना एक विवेकपूर्ण, गतिशील, सोच-समझकर किया गया प्रयास है। विकासशील देशों के लिए मुख्य कार्यपालिका का सबसे महत्वपूर्ण कार्य योजना तथा प्रशासकीय नीति की मुख्य रूपरेखाएँ निर्धारित करना है। भारत में योजना आयोग, जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है, योजना बनाने का कार्य करता है। आर्थिक योजना के साथ-साथ प्रशासकीय योजना बनाने का कार्य मुख्य कार्यपालिका ही करती है। नीति-प्रशासन के लिए वह मार्गदर्शक का कार्य करती है। कार्यपालिका प्रायः 'सामान्य नीति' का निर्धारण करती है किन्तु कभी-कभी प्रशासकों को विशिष्ट नीति सम्बन्धी निर्देश भी देती है। उसका पर्याप्त समय महत्वपूर्ण नीतियों के निर्माण में व्यतीत होता है। यह नीतियों

से सम्बन्धित अनेक ऐसे निर्णय करती है जो प्रशासन के कार्य-संचालन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। पदाधिकारी अनेक महत्वपूर्ण मामलों के सम्बन्ध में मुख्य कार्यपालिका से विचार-विमर्श करते हैं तथा उसका परामर्श लेते हैं। इस प्रकार भारत में प्रधानमंत्री (मुख्य कार्यपालिका) जो योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, राष्ट्रीय नेता व संसाद के नेता के रूप में देश के लिए आर्थिक एवं प्रशासकीय नीति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

### **संगठनकर्ता के रूप में**

संगठन बनाना या औपचारिक स्वरूप की स्थापना करना जिससे निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्य को अनुविभागों में व्यवस्थित, निर्धारित तथा समन्वित करना मुख्य कार्यपालिका का दायित्व है। वह संगठनात्मक ढाँचा तैयार करती है और उसमें संशोधन करती है। अनेक कानूनों को लागू करने के लिए विधायिकाओं को प्रायः विभागों, ब्यूरो, आयोगों, कार्यलयों तथा निगमों की स्थापना करनी पड़ती है। इन इकाइयों के आन्तरिक संगठन से सम्बन्धित विस्तृत बातों की पूर्ति मुख्य कार्यपालिका द्वारा ही की जाती है। साथ ही वह संगठनों की विस्तृत रूपरेखाएँ निर्धारित करती है जिनके द्वारा नीति के लक्ष्य पूरे किये जाते हैं। अनेक बार प्रशासन को संकटों का सामना करना पड़ता है और ऐसी परिस्थितियों में यह सम्भव है कि मुख्य कार्यपालिका द्वारा नये अभिकरणों की स्थापना की जाये अथवा पहले से स्थापित अभिकरणों का पुनर्संगठन किया जाये।

### **कर्मचारी नियुक्त करना**

कर्मचारी सम्बन्धी समस्त कार्य, जैसे कर्मचारियों की भर्ती करना, उन्हें प्रशिक्षित करना तथा कार्य के अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करना आदि कार्य स्टाफिंग के अन्तर्गत आते हैं। प्रायः सभी देशों में राज्य के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करने का अधिकार मुख्य कार्यपालिका को प्राप्त होता है। भारत में, वास्तव में, सभी महत्वपूर्ण पदों की नियुक्तियाँ प्रधानमंत्री (मुख्य कार्यपालिका) के द्वारा की जाती हैं। राष्ट्रपति नाममात्र का मुख्य कार्यपालिका होता है। इन नियुक्तियों में राज्यों के राज्यपाल, राजदूत, उच्चतम न्यायालय तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीश, महान्यायवादी, संघीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य, सेना के जनरल आदि सम्मिलित हैं। मुख्य कार्यपालिका जिन पदाधिकारियों की नियुक्ति करती है उनको पदच्युत करने का अधिकार भी उसे प्राप्त होता है। नियुक्ति के सम्बन्ध में भारतीय प्रधानमंत्री अमेरिका के राष्ट्रपति की तुलना में अधिक शक्तिशाली है। अमेरिका में नियुक्तियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को सीनेट का अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक है जबकि प्रधानमंत्री पर ऐसा कोई नियन्त्रण नहीं है। दल के नेता के रूप में प्रधानमंत्री वास्तव में अपने शासित राज्यों के मुख्यमन्त्रियों और अन्य मन्त्रियों का चयन करता है। कैबिनेट नियुक्ति समिति के अध्यक्ष के रूप में वह विभिन्न पदों पर इच्छानुसार नियुक्तियाँ करता है।

### **निर्देश देना**

इसका आशय निर्णय करना और उन निर्णयों को विशिष्ट व सामान्य आदेशों एवं निर्देशों का रूप देना तथा उद्यम के नेता के रूप में कार्य करना। किसी संगठन में काम करने की प्रेरणा निर्देशों एवं आदेशों से प्राप्त की जाती है। मुख्य कार्यपालिका समय-समय पर विभिन्न प्रकार के आदेश, निर्देश तथा घोषणा करती है। उसका कर्तव्य यह देखना है कि कानून समुचित रीति से क्रियान्वित किये जा रहे हैं अथवा नहीं, और सरकार का प्रत्येक अभिकरण एवं विभाग ठीक प्रकार से कार्य कर रहा है या नहीं। मुख्य कार्यपालिका ही विभिन्न विभागीय अध्यक्षों को विशिष्ट एवं सामान्य नीति सम्बन्धी निर्देश जारी करती है ताकि प्रशासन का कार्य उचित रूप से चलता रहे। निर्देश और आदेश जारी करके वह प्रशासन को नेतृत्व प्रदान करती है। जब हस्तक्षेप करना आवश्यक होता है तो वह हस्तक्षेप भी करती है। जब उसके पथ-प्रदर्शन की माँग होती है तो उसे पथ-प्रदर्शन करना पड़ता है। उसके निर्देश अधिशासी आज्ञाओं, घोषणाओं, पत्रों एवं परिपत्रों आदि का रूप ले लेते हैं। इन्हीं आज्ञाओं, निर्देशों तथा सूचनाओं के द्वारा मुख्य कार्यपालिका देश की प्रशासकीय मशीनरी पर प्रभावपूर्ण रीति से अपना प्रभुत्व एवं नियन्त्रण स्थापित करती है।

### **समन्वय स्थापित करना**

प्रशासनिक संगठनों के कार्यों में समन्वय स्थापित करना मुख्य कार्यपालिका का एक महत्वपूर्ण कार्य है। हजारों अधिकारी और कर्मचारी, संगठन तथा कार्यालय प्रशासन में कार्य करते हैं। उनकी क्रियाओं में उचित रूप से इसलिए समन्वय किया जाता

है ताकि उनमें परस्पर किसी भी प्रकार का टकराव एवं विद्वेष उत्पन्न न हो। मुख्य कार्यपालिका को विभिन्न विभागों की भिन्न-भिन्न क्रियाओं से परस्पर सम्बन्ध एवं समन्वय स्थापित करना पड़ता है। उसे विभिन्न प्रशासकीय विभागों के मतभेदों को सुलझाकर उनमें परस्पर एकता स्थापित करनी पड़ती है। मुख्य कार्यपालिका विभिन्न विभागों में पारस्परिक विवादों एवं मतभेदों को सुलझाने का अन्तिम आश्रय है। सम्पूर्ण प्रशासकीय मशीनरी के सुचारु एवं कुशल संचालन हेतु उसके कार्यों में समन्वय स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है। मुख्य कार्यपालिका का यह एक महत्वपूर्ण कार्य है। समन्वय स्थापित करने के लिए वह अन्तर्विभागीय समितियों का निर्माण तथा सम्पर्क अधिकारियों की नियुक्ति कर सकता है। विभिन्न विभागों में समुचित समन्वय एवं तालमेल बनाये रखने के लिए वह अनेक अन्तर्विभागीय कड़ियों की स्थापना करता है।

### निर्देशन

प्रतिवेदन देना अर्थात् जिनके प्रति कार्यपालिका उत्तरदायी है उन्हें शासन की गतिविधियों से अवगत रखना। इसका अर्थ यह है कि कार्यपालिका को अभिलेखों, अनुसन्धानों तथा निरीक्षण द्वारा अपने अधीनस्थों के साथ-साथ स्वयं अपने आपको भी अवगत रखना चाहिए। निर्देशन के दो पहलू हैं- (i) संचार की ऐसी पद्धति करना जिसमें सूचना निम्न स्तर से उच्च स्तर तक सरलता से पहुँच सके; और (ii) एक ऐसी कार्य-पद्धति स्थापित करना जिनके माध्यम से प्रधानमंत्री संसद, विभिन्न दबाव-समूहों को सूचित कर सके। सम्पूर्ण प्रशासन के कार्यों का निरीक्षण और उस पर नियन्त्रण रखने का अधिकार प्रशासन के प्रमुख होने के रूप में प्रधानमंत्री का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए, विभिन्न प्रशासकीय अभिकरणों तथा विभागों की कार्यप्रणाली से सम्बन्धित समस्त जानकारी उसको प्राप्त होनी चाहिए। वह प्रशासकीय विभागों से उनके कार्यों से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की जानकारी, अभिलेख, कागजात अथवा सूचनाएँ माँग सकता है। उसे जाँच-पड़ताल करने की आज्ञा देने का अधिकार होता है। प्रधानमंत्री को माह में एक बार विभागों के सचिवों से अवश्य मिलना चाहिए जिससे उसे विभागों की गतिविधियों की जानकारी प्राप्त होती रहे। इसी प्रकार विभिन्न मन्त्रियों को भी अपने-अपने विभागों के प्रमुख निर्णयों की जानकारी प्रधानमंत्री को देते रहना चाहिए। प्रधानमंत्री अपने कार्यों के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी होता है।

### बजट

बजट में बजट बनाना अर्थात् बजट से सम्बन्धित सभी कार्य करना, वित्तीय एवं कर सम्बन्धी योजनाएँ बनाना, लेखांकन तथा उस पर नियन्त्रण रखना सम्मिलित है। प्रधानमंत्री को मुख्य कार्यपालिका के रूप में पर्याप्त वित्तीय सत्ता प्राप्त होती है। बजट तैयार करना, देश की वित्तीय एवं आर्थिक नीति का निर्माण करना, बजट को विधायिका में प्रस्तुत करना तथा अनुमोदन होने के पश्चात् उसको लागू करना मुख्य कार्यपालिका के कर्तव्य हैं। संक्षेप में, वित्तीय क्षेत्र में मुख्य कार्यपालिका देश को दिशा प्रदान करती है।

### लोक-सम्पर्क

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सरकारी सूचना तथा प्रचार के अभिकरणों की बाढ़ सी आ गयी है और उनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। श्रेष्ठ लोक-सम्बन्ध आज नेतृत्व के महत्वपूर्ण गुण माने जाने लगे हैं और इसके महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। अधिकांश सरकारों में लोक-सम्बन्ध का विभिन्न नामों से जाने वाला एक स्वतन्त्र विभाग होता है। इसके साथ-साथ राष्ट्रीय, राजकीय और जिला स्तर पर लोक-सम्पर्क अधिकारी होते हैं। लोकतन्त्र में मुख्य कार्यपालिका को स्वयं का स्वतः लोक-सम्पर्क अधिकारी होना पड़ता है। अवस्थी एवं माहेश्वरी के अनुसार, "इतिहास में कुछ नेता तो अपने लोक-सम्बन्ध का कार्य स्वयं ही उत्तम तरीके से करते रहे हैं। राष्ट्रपति एफ. डी. रूजवेल्ट ने अन्य जन-नेताओं की अपेक्षा इस विषय पर अधिक कुशलता से विचार किया था। जनता की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, भय, इच्छाओं या अनिच्छाओं को समझने और उसी के अनुसार काम करने की उनमें विचित्र योग्यता थी। इसी प्रकार महायुद्ध के दौरान प्रधानमंत्री चर्चिल की भी वैसी ही स्थिति तथा अपनी जनता पर सत्ता थी। उन्होंने एक औसत अंग्रेज की इच्छा तथा निश्चय को नाजी आक्रमण तथा अत्याचार से लड़ने और उसे पराजित करने में एकजुट कर दिया था। हमारे स्वर्गीय प्रधानमंत्री नेहरू भी इसी श्रेणी में आते हैं। सरकार की ओर से वह जनता से सर्वाधिक प्रभावशाली लोक-सम्बन्धों के लिए सदैव इच्छुक एवं प्रयत्नशील रहते थे, और कांग्रेस दल के लिए वह सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले व्यक्ति थे। नेहरू के इस कथन में उस समय बिल्कुल अतिशयोक्ति

नहीं थी जब उन्होंने कहा था कि भारत में वे स्वयं पर्यटकों के लिए बहुत बड़े आकर्षण के केन्द्र रहे हैं।" इस प्रकार, संक्षेप में, लोकतन्त्र में लोक-सम्बन्ध का विशेष महत्व होता है।

## **प्रधानमन्त्री की भूमिका** (Role of Prime Minister)

वास्तविक तथा राजनीतिक प्रकृति की कार्यपालिका के रूप में पदस्थापित भारत का प्रधानमन्त्री देश की जनता की आकांक्षाओं, विपक्ष की आलोचनाओं तथा शासन-सत्ता की असीम शक्तियों का केन्द्र बिन्दु होता है। प्रधानमन्त्री के पद पर रहते हुए उसे अनेक प्रकार की भूमिकाएँ (रोल्स) निर्वाहित करनी पड़ती हैं। यथा-

### **1. देश के लोकतांत्रिक शासक के रूप में**

भारत प्रजातांत्रिक मूल्यों में आस्था रखने वाला कल्याणकारी राज्य है जहाँ संसदीय लोकतंत्र की शासन प्रणाली प्रवर्तित है। यद्यपि संवैधानिक दृष्टि से राष्ट्रपति की स्थिति सर्वोच्च प्रतीत होती है तथापि देश का वास्तविक शासक प्रधानमन्त्री होता है। देश में लोकतंत्र की वास्तविक स्थापना, जनसाधारण के कष्टों का निवारण तथा संवैधानिक निर्देशों की अनुपालना मुख्यतः प्रधानमन्त्री तथा उसकी मंत्रिपरिषद् के अन्य मंत्रियों की कार्यशैली से प्रभावित होती है। अधिसंख्य मामलों में प्रधानमन्त्री जनता-जनार्दन द्वारा समर्थन प्राप्त राजनीतिक दल का वरिष्ठ तथा योग्य राजनीतिज्ञ होता है जो शासन के माध्यम से राजनीतिक तथा प्रशासनिक लक्ष्यों की पूर्ति कराता है। सत्तारूढ़ राजनीतिक दल की छवि तथा प्रधानमन्त्री की कार्यशैली एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। आम जनता भी अधिकांश मामलों में प्रधानमन्त्री की भूमिका को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करती है क्योंकि प्रधानमन्त्री जन आकांक्षाओं की पूर्ति का स्वाभाविक स्रोत है। प्रधानमन्त्री की राष्ट्रीय स्तर पर समस्याओं से लड़ने की क्षमता जनसाधारण को प्रत्यक्षतः प्रभावित करती है। यही कारण है कि प्रधानमन्त्री की असफलता सत्तारूढ़ राजनीतिक दल के पतन का कारण बन जाती है।

### **2. नीति निर्माता के रूप में**

संसदीय लोकतंत्र में प्रधानमन्त्री तथा उसकी मंत्रिपरिषद्, व्यवस्थापिका या विधायिका का एक भाग होते हैं। इस प्रकार प्रधानमन्त्री कार्यपालिका तथा विधायिका दोनों में प्रभावी भूमिका निभाता है। प्रधानमन्त्री ही वह व्यक्ति है जो राष्ट्रीय समस्याओं, कार्यक्रमों, योजनाओं तथा सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए आधारभूत नीतियाँ बनाता है। यद्यपि ये नीतियाँ उस दल की मान्यताओं से अत्याधिक प्रभावित होती हैं जिस दल का प्रधानमन्त्री सदस्य होता है तथापि नीति-निरूपण में प्रधानमन्त्री की भूमिका सर्वोपरि तथा निर्णायक होती है। स्वतन्त्रता से अब तक पदासीन रहे प्रधानमंत्रियों ने आर्थिक नियोजन तथा सामाजिक विकास में अपनी दलगत तथा व्यक्तिगत मान्यताओं पर आधारित नीतियों को देश में लागू किया है फिर चाहे ये नीतियाँ राष्ट्रीय आम सहमति के विरुद्ध ही क्यों न रही हों। वस्तुतः किसी भी देश का लोक प्रशासन मुख्यतः उस देश के शासन की नीतियों, राजनेतओं के चरित्र तथा जनसहयोग की भावना से प्रभावित होता है। रक्षा नीति, विदेश नीति, औद्योगिक नीति तथा आयात-निर्यात नीति इत्यादि ऐसी नीतियाँ हैं जो देश के विकास की दशा और दिशा दोनों को व्यापक रूप से प्रभावित करती हैं। नीतियों के अतिरिक्त अन्य सामयिक कानूनों, योजनाओं तथा विकासपरक कार्यक्रमों के निर्माण, क्रियान्वयन, नियंत्रण तथा मूल्यांकन में प्रधानमन्त्री के नामों से चर्चित रहे हैं जैसे - पंडित जवाहरलाल नेहरू का पंचशील सिद्धान्त, इन्दिरा गाँधी का गरीबी हटाओ तथा 20 सूत्री कार्यक्रम, राजीव गाँधी का कम्प्यूटरीकरण तथा पी.वी. नरसिम्हा राव का आर्थिक उदारीकरण इत्यादि।

### **3. विकासोन्मुख नेतृत्व के रूप में**

भारत उन देशों में सम्मिलित है जहाँ सामाजिक-आर्थिक विकास के लक्ष्य नियोजन प्रणाली के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमन्त्री का विकास के क्रम में दृष्टिकोण तथा पहल करने की क्षमता राष्ट्र के समग्र विकास में निश्चित रूप से निर्णायक भूमिका निर्वाहित करती है। राष्ट्र की समस्याओं, जनाकांक्षाओं, उपलब्ध संसाधनों तथा कुशल प्रशासनिक तंत्र के साथ दूरदर्शितापूर्वक

समन्वय स्थापित करने वाला प्रधानमंत्री ही विकास को नये आयाम दे सकता है।

प्रथम प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने मिश्रित अर्थव्यवस्था में दृष्टिकोण को अपनाते हुए सामाजिक-आर्थिक विकास का प्रयास किया, वहीं राजीव गाँधी ने अति आधुनिक तकनीकी साधनों का विकास कार्यों में प्रयोग प्राथमिक रूप में स्वीकार किया जबकि श्री राव ने सरकार को सामाजिक विकास में अपरिहार्य मानते हुए शेष क्षेत्रों में निजी भागीदारी का आह्वान किया था। मूलतः प्रधानमंत्री की नीतियाँ, कार्यशैली तथा नौकरशाही के साथ सम्बन्ध उसके विकासोन्मुख नेतृत्व को प्रभावित करते हैं। विकास के प्रति अलग-अलग राजनीतिक दलों में अपना-अपना दृष्टिकोण होता है। इसी कारण विभिन्न प्रधानमंत्रियों के कार्यकाल में विकास कार्यों की दिशा अंशतः प्रभावित होती रहती है क्योंकि मूल तथा स्थायी विकास कार्य तो स्वाभाविक रूप से जारी रहते हैं। प्रत्येक प्रधानमंत्री की इच्छा विकास को प्रभावित अवश्य करती है। पिछड़े वर्गों, कर्षकों, अल्पसंख्यकों, महिलाओं, निःशक्तजनों, शरणार्थियों तथा विस्थापितों इत्यादि के उत्थान हेतु कारगर विकास कार्यक्रम प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर हैं।

#### 4. संसद में राजनीतिज्ञ के रूप में

सामान्यतः प्रधानमंत्री लोकसभा का सदस्य होता है। बहुमत वाले दल का सर्वसम्मत नेता होने के कारण उसे अन्य राजनीतिक दलों अर्थात् विपक्ष के नेताओं के साथ राजनीतिक-वैचारिक भिन्नता तथा प्रधानमंत्री होने के कारण स्वाभाविक शासकीय दबाव का सामना करना पड़ता है। संसद में प्रस्तुत किए जाने वाले विधेयक, प्रस्ताव तथा आम बजट एवं रेल बजट में प्रधानमंत्री की कार्यशैली स्पष्ट दिखाई देती है। इसी प्रकार प्रश्नकाल, विश्वास मत प्रस्ताव या अविश्वास प्रस्ताव इत्यादि के समय प्रधानमंत्री को सत्तारूढ़ दल तथा देश की वास्तविक कार्यपालिका दोनों दृष्टियों से बहस में उत्तर देना पड़ता है। किसी भी प्रधानमंत्री के लिए विपक्ष की आलोचना तथा तथ्यात्मक आरोपों का सामना करना एक दुष्कर कार्य होता है। संसद में प्रधानमंत्री न केवल अपनी सरकार के बचाव की रक्षात्मक भूमिका निभाता है अपितु कई बार एक चतुर राजनीतिज्ञ के रूप में विशिष्ट रणनीति भी तैयार करता है। प्रधानमंत्री होने के नाते उसे अपने स्वयं के दल, सहयोगी दल तथा विपक्षी दलों के सांसदों की क्षेत्रीय तथा व्यक्तिगत समस्याओं का निवारण भी करना पड़ता है क्योंकि प्रधानमंत्री एक प्रकार से सभी संकटमोचक होता है। लोकसभा के अध्यक्ष के साथ मिलकर बैठकों की कार्यसूची बनाने तथा सदन में व्यवस्था स्थापित करने में भी प्रधानमंत्री का बहुत योगदान होता है।

#### 5. अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर देश के प्रतिनिधि के रूप में

तेजी से भागती दुनिया में हो रहे ध्रुवीकरणों के कारण किसी भी देश की छवि उसके गुणों से भी प्रभावित होती है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन, राष्ट्रमण्डल तथा सार्क के माध्यम से भारत की छवि न्यूनाधिक मात्रा में निष्पक्ष तथा शांतिप्रिय राष्ट्र की है। इसके लिए पूर्व प्रधानमंत्रियों की विचारधारा तथा अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर भारत की सार्थ उपस्थिति महत्वपूर्ण रही है। संयुक्त राष्ट्र की सभाओं तथा अन्य अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं के क्रम में भारत के पक्ष को स्पष्ट करने में प्रधानमंत्री की भूमिका महत्वपूर्ण सिद्ध होती है।

## प्रधानमंत्री निरंकुश नहीं बन सकता

(The Prime Minister cannot be a Despot)

प्रधानमंत्री की शक्तियाँ असीमित हैं तथापि यह एक अधिनायक अथवा तानाशाह के रूप में आचरण नहीं कर सकता है। वह स्थापित नियमों और अभिसमयों के अनुसार प्रतिबन्धों के अधीन रहकर देश का शासन करता है और इन प्रतिबन्धों की अवहेलना करने पर उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। प्रधानमंत्री की शक्तियों पर निम्नलिखित प्रभावशाली अंकुश बने रहते हैं :-

1. **लोकमत का नियन्त्रण** - कोई भी प्रधानमंत्री लोकमत को नहीं टुकरा सकता है। पं. जवाहरलाल नेहरू जनमत के समर्थन पर ही निर्विवाद नेता बने रहे और आपातकाल के कारण श्रीमती इन्दिरा गाँधी जनमत का समर्थन खोकर 1977 के लोकसभा चुनाव में पराजित हुईं। जनमत के दबाव के कारण ही प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने मानहानि विधेयक, 1988 को वापस ले लिया था। मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा के तुरन्त बाद प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रतापसिंह बहुत अधिक लोकप्रिय हो गये थे, परन्तु शीघ्र ही यह स्थिति उनके पतन का प्रमुख कारण भी बनी।

2. **लोकसभा के बहुमत का प्रतिबन्ध** - प्रधानमंत्री भी लोकसभा के बहुमत के बल पर ही अपनी शक्तियों का प्रयोग कर पाता है। एक बार बहुमत मिलने का अर्थ यह नहीं है कि वह सदा ही बना रहेगा। निरंकुश आचरण करने पर प्रधानमंत्री बहुमत का विश्वास खो सकता है और अपनी स्थिति का खतरे में डाल सकता है।
3. **साथी मन्त्रियों का अंकुश** - प्रधानमंत्री अपनी कैबिनेट के महत्वपूर्ण और व्यापक प्रभाव वाले साथियों की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने से प्रायः बचता है। उनका विश्वास खोकर वह दल में अपनी स्थिति को दुर्बल नहीं बनाना चाहेगा।
4. **दलीय प्रतिबन्ध** - अपने दल के बल पर ही कोई व्यक्ति प्रधानमंत्री पद पर बैठता है, अतः उसे कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय लेने से पूर्व अपने दल को भी विश्वास में लेना पड़ता है। अस्तु संसदीय दल के समर्थन के बिना कोई भी प्रधानमंत्री अपने पद पर अधिक समय तक बना नहीं रह सकता है।
5. **राज्यों में विरोधी दलों की सरकारें** - राज्यों में विरोधी दलों की सरकारें प्रधानमंत्री की तानाशाही प्रवृत्ति पर अंकुश लगा सकती हैं। यदि केन्द्र और सभी राज्यों में एक ही दल सत्तारूढ़ हो तो भी राज्य सरकारों की इच्छा का सम्मान प्रधानमंत्री को करना पड़ता है। वर्तमान में बिहार में जनता दल, उत्तर प्रदेश, गुजराज में भाजपा, महाराष्ट्र में कांग्रेस, पंजाब में अकाली दल और पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी साम्यवादी दल के नेतृत्व वाली वामपंथी मोर्चे की सरकार भी वर्तमान प्रधानमंत्री की शक्तियों को नियन्त्रित करती है।
6. **मुख्यमन्त्रियों का दबाव** - प्रधानमंत्री को अपनी नीतियों के सफल कार्यान्वयन के लिए राज्यों के मुख्यमन्त्रियों को साथ लेकर चलना पड़ता है। उनके युक्तिसंगत दबाव को वह सहन करता है। अपने उत्तरदायित्व के प्रति सजग मुख्यमंत्री अपने सद्परामर्श से प्रधानमंत्री को निरंकुशता की ओर नहीं जाने देते हैं।
7. **राष्ट्रपति का परामर्श** - यद्यपि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श के अनुसार अपनी शक्तियों और कार्यों का निर्वहन करता है, लेकिन वह अपने सद्परामर्श, अपनी सामाजिक चेतनावनी आदि के माध्यम से प्रधानमंत्री के ऐसे कदमों पर प्रभाव डाल सकता है, जो निरंकुशता की ओर बढ़ रहे हैं। प्रधानमंत्री को एक मैत्रीपूर्ण राष्ट्रपति की आवश्यकता सदैव ही होती है। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की असीमित शक्तियों पर नियंत्रण रखता है।
8. **विरोधी दल** - विरोधी दलों की रचनात्मक आलोचना प्रधानमंत्री को निरंकुशता की ओर जाने से रोकती है। सुदृढ़ और संगठित विपक्ष तो इस मामले में और भी प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है। वे संसद् में और संसद् के बाहर प्रधानमंत्री पर नियंत्रण रखते हैं।
9. **बहुदलीय व्यवस्था** - केन्द्र में एक ही दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो या जो बहुमत मिले वह बहुत कम सदस्यों का हो तो यह स्थिति भी प्रधानमंत्री को नियन्त्रित रखती है। अल्पमतीय प्रधानमंत्री की स्थिति कमजोर बनी रहती है।
10. **न्यायपालिका** - संविधान विरोधी कानून को असंवैधानिक घोषित करने की जो शक्ति न्यायपालिका को है वह भी प्रधानमंत्री को बड़ी सीमा तक नियन्त्रित रखती है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति से ही प्रधानमंत्री पर नियंत्रण स्थापित हो पाता है।
11. **निष्पक्ष निर्वाचन आयोग** - संविधान में एक निष्पक्ष निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की गई है और यह व्यवस्था भी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में, चुनाव सम्बन्धी मामलों में प्रधानमंत्री की निरंकुशता पर प्रतिबन्ध आरोपित करती है।

इस प्रकार के अंकुशों और प्रतिबन्धों के रहते हुए भारत का कोई भी प्रधानमंत्री तानाशाह नहीं बन सकता। वह सांविधानिक सीमाओं के भीतर रहकर ही अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है।

### नवीन स्थिति

मार्च 1977 में जनता पार्टी के सत्ता में आने पर प्रधानमंत्री की स्थिति और सत्ता में काफी बदलाव आया है। मोरारजी देसाई ने प्रधानमंत्री बनने के बाद कहा था कि अब वे 'प्रधानमन्त्रीय सरकार' के स्थान पर समकक्षों में प्रथम, प्रधानमंत्री के रूप में कार्य करेंगे। साथ ही वह प्रयास करेंगे कि वास्तविक "कैबिनेट (मन्त्रिमण्डलीय) सरकार" स्थापित की जा सके। मोरारजी देसाई

ने ऐसा ही किया और उनके समय में कैबिनेट को वह स्थिति प्राप्त हुई जैसा कि संविधान में उल्लेखित था। कैबिनेट की अनौपचारिक बैठकें होती थीं जिनमें कैबिनेट मन्त्रियों के अतिरिक्त योजना आयोग के उपाध्यक्ष, जनता पार्टी के अध्यक्ष और कभी-कभी राज्यमंत्री भी हिस्सा लेते थे। यह एक नवीन संवैधानिक प्रयोग था। जनता पार्टी चार विभिन्न दलों के घटकों से मिलकर बनी थी, इसलिए प्रधानमंत्री मन्त्रिपरिषद् का निर्माण करने में स्वतन्त्र नहीं थे। उन्हें समस्त घटकों को साथ लेकर चलना पड़ता था। इस प्रकार यह प्रयोग अपने पूर्व कांग्रेस दल की परम्परा के ठीक विपरीत था जिसमें सरकारी तन्त्र का पार्टी के संगठनात्मक खण्ड पर प्रभाव होता था अतः प्रधानमंत्री की तुलना में दल के अध्यक्ष की भूमिका सहायक जैसी थी। इसके विपरीत, जनता पार्टी के अध्यक्ष की एक स्वतन्त्र हैसियत थी और सरकार द्वारा नीति-निर्धारण एवं निर्णय लेने में उससे परामर्श लिया जाता था। वह इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का एक हिस्सा था। यह नवीन विकास एक स्वस्थ परम्परा थी।

1979-80 के चुनाव में इन्दिरा गांधी के सत्ता में आने पर फिर से पुरानी कांग्रेस व्यवस्था स्थापित हुई। श्रीमती गांधी अपनी हत्या 31 अक्टूबर, 1984 तक प्रधानमंत्री बनी रहीं। उनके बाद राजीव गांधी 1989 के अन्त तक प्रधानमंत्री रहे। 1989 के आम चुनावों में किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। कांग्रेस दल को सबसे अधिक स्थान मिले किन्तु कांग्रेस ने सरकार बनाने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार, देश में एक नवीन घटना घटी और अल्पमत दल, जनता पार्टी ने वी. पी. सिंह के नेतृत्व में सरकार का गठन किया। इस प्रकार को दो विपक्षी दलों-भारतीय जनता पार्टी और साम्यवादी दल-का बाहर से समर्थन प्राप्त था। यह अल्पमत सरकार मात्र ग्यारह माह सत्ता में रही और नवम्बर 1990 में सरकार गिर गयी। इसके बाद चन्द्रशेखर के नेतृत्व में दलबदलुओं से निर्मित नवीन समाजवादी दल की सरकार बनी, जिसे कांग्रेस दल का बाहर से समर्थन प्राप्त था। कुछ महीनों बाद इस सरकार का गिरना स्वाभाविक था और राष्ट्रपति ने 1991 में नवीन चुनाव कराये। चुनाव में फिर से 'त्रिशंकु संसद' बनी। 21 मई, 1991 को राजीव गांधी की निर्मम हत्या से भारतीय राजनीति में 'वंश शासन' की समाप्ति हुई। चुनाव में कांग्रेस दल सबसे बड़े दल के रूप में विजयी हुई किन्तु उसे पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं था। राष्ट्रपति ने कांग्रेस के वरिष्ठ सदस्य पी. वी. नरसिंह राव को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया। वे 22 जून, 1991 को प्रधानमंत्री बने और उन्होंने अपने पाँच वर्ष के कार्यकाल में सामान्य रूप से अच्छा कार्य किया है। किन्तु, 1994 के अन्त में हुए चार राज्यों की विधानसभा के चुनावों में तीन राज्यों में कांग्रेस की पराजय के बाद उनके नेतृत्व पर प्रश्नचिह्न लग गया। उनकी स्थिति कमजोर हुई। नरसिंह राव म दुभाषी, सरल एवं लोकतन्त्री हैं जो आम सहमति के समर्थक और विचार-विमर्श द्वारा शासन चलाने के पक्षधर हैं। उन्होंने देश को स्थायित्व और सरकार को संसदीय स्वरूप प्रदान किया है। 1997 के आम चुनावों के बाद लोकसभा में सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाली भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी मात्र 13 दिन के लिए प्रधानमंत्री रहे। उनके बाद 13 दलों के गठबन्धन से निर्मित संयुक्त मोर्चे की सरकार देवगौड़ा के नेतृत्व में बनी। इस सरकार को कांग्रेस और मार्क्सवादी साम्यवादी दलों का बाहर से समर्थन प्राप्त था। यह सरकार जो कांग्रेस के समर्थन के सहारे चल रही थी एकाएक 30 मार्च को कांग्रेस द्वारा समर्थन वापस लेने के फलस्वरूप पदच्युत हो गयी। यह सरकार दस माह सत्ता में रही। इस सरकार के पतन के पश्चात् पुनः इन्द्रकुमार गुजराल के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा की सरकार सत्तारूढ़ हुई। वर्तमान सरकार को कांग्रेस तथा मार्क्सवादी साम्यवादी दलों का बाहर से समर्थन प्राप्त है। प्रधानमंत्री के रूप में इन्द्रकुमार गुजराल की छवि साफ-सुथरी है। इन्द्रकुमार गुजराल की सरकार मात्र 8 माह सत्तारूढ़ रही। कांग्रेस द्वारा पुनः समर्थन वापस लेने के बाद गुजराल सरकार ने त्यागपत्र दे दिया।

बारहवीं लोकसभा चुनाव के पश्चात् भाजपा और सहयोगी दलों के समर्थन से बनी सरकार अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 19 मार्च, 1998 को सत्तारूढ़ हुई। तेरहवीं लोकसभा 1999 के चुनाव के बाद वाजपेयी पुनः 13 अक्टूबर, 1999 को प्रधानमंत्री बने।

### प्रधानमंत्री को संस्थागत समर्थन

समकालीन जटिल और बड़ी सरकारों के युग में मुख्य कार्यपालिका के पास विस्तृत उत्तरदायित्वों और अनेकानेक कर्तव्यों का बोझ आ गया है। इसलिए उसे सहायता, राहत और समर्थन की आवश्यकता है। प्रधानमंत्री को संस्थागत समर्थन देने के विषय पर प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा विचार-विमर्श किया गया था। यद्यपि सभी लोग इस प्रकार के समर्थन के पक्षधर थे, किन्तु मतभेद यह था कि किस प्रकार का समर्थन दिया जाये। एक विचारधारा के अनुसार मन्त्रालयों में विद्यमान मशीनरी का उपयोग किया जाये और उसे सुविधानुसार अधिक प्रभावशाली बनाया जाये। इसके विपरीत, दूसरी विचारधारा के अनुसार,

प्रधानमंत्री कार्यालय को शक्तिशाली बनाने के लिए उसे प्रत्यक्ष सहायता देनी चाहिए जिससे वह प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान कर सके। अध्ययन दल ने मध्य मार्ग अपनाते हुए ऐसे संस्थागत समर्थन की स्थापना का सुझाव दिया जिससे विद्यमान मन्त्रालयों के कार्यों में दोहरापन न आये। ऐसी इकाई की स्थापना प्रधानमंत्री कार्यालय के स्थान पर कैबिनेट सचिवालय में की जानी चाहिए और केवल गुणी विशेषज्ञों की नियुक्ति की जानी चाहिए। वर्तमान में संस्थागत समर्थन देने वाली संस्थाएँ कैबिनेट समितियाँ, सचिव समितियाँ, कैबिनेट सचिवालय और प्रधानमंत्री का कार्यालय है।

भारतीय शासन-व्यवस्था में प्रधानमंत्री का पद सरकार का सबसे महत्वपूर्ण पद है। उसकी शक्ति इतनी व्यापक है कि अब शक्ति न तो संसद के हाथों में रही है और न ही मन्त्रिमण्डल के हाथों में है, बल्कि प्रधानमंत्री के हाथों में केन्द्रित हो गयी है। प्रधानमंत्री का सचिवालय शासनतन्त्र का न केवल स्थायी अंग बन गया है बल्कि समस्त शक्ति का स्रोत भी। भारत में निर्वाचन वास्तव में प्रधानमंत्री का ही निर्वाचन हो गया है। 1971, 1980 तथा 1984 के निर्वाचन सही अर्थों में व्यक्तित्व के ही चुनाव थे। भारत में मन्त्रियों की स्थिति प्रधानमंत्री के सलाहकारों जैसी हो गयी है और प्रधानमंत्री का निर्णय ही सर्वोपरि होता है। हमारे यहाँ प्रधानमंत्री की स्थिति उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। जहाँ एक ओर अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण नेहरू, इंदिरा गांधी तथा राजीव गांधी प्रभावशाली प्रधानमंत्री हुए हैं, वहीं दूसरी ओर मोरारजी देसाई, चरणसिंह, वी. पी. सिंह तथा चन्द्रशेखर जैसे व्यक्ति दुर्बल प्रधानमंत्री के रूप में देखने को मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री के पद का महत्व उसे ग्रहण करने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। इस सम्बन्ध में जैनिंग्स का कथन पूर्णतः सत्य है, "प्रधानमंत्री के पद की स्थिति अवश्य ही वह होगी जो उस पद को ग्रहण करने वाला व्यक्ति बनाना चाहेगा और अन्य मन्त्री बनने देंगे।" शंखधर ने उचित ही कहा है कि "ऐसा कोई कारण नहीं है कि यह पद सदैव शक्तिशाली ही रहे। दुर्बल प्रधानमंत्री के समय में जिसके पीछे अल्प-बहुमत है, कभी भी स्थिति बदल सकती है।"

जहाँ तक प्रधानमन्त्रीय भूमिका के निर्वाह का प्रश्न है, यह भी प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। इस सम्बन्ध में डॉ. विमला शुक्ला ने लिखा है, "यदि कोई प्रधानमंत्री अपने प्रभावशाली निर्विवादीय नेतृत्व और राष्ट्रीय स्तर की ख्याति एवं लोकप्रियता के कारण अपने स्वयं के आधार पर प्रधानमंत्री का पद प्राप्त करेगा तो निश्चय रूप से उसकी भूमिका प्रधानमन्त्रीय होगी अन्यथा नहीं।"



## अध्याय-8

# मंत्रिमण्डल सचिवालय, मंत्रिमण्डल सचिव (Cabinet Secretariat & Cabinet Secretary)

मंत्रिमण्डल सचिवालय एक ऐसा निकाय है जो उच्च स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण समन्वयकारी भूमिका निभाता है और यह प्रधान मंत्री के निदेश के अधीन कार्य करता है।

स्वतंत्रता से पूर्व गवर्नर जनरल या वयसराय की कार्यकारी परिषद् ही मंत्रिमण्डल सचिवालय की भूमिका निभाती थी। लॉर्ड वेलिंग्टन (1931-36) वह प्रथम गवर्नर जनरल थे जिन्होंने अपने निजी सचिव को सन् 1936 से केबिनेट की बैठकों में उपस्थित होने तथा कार्यवाही का विवरण लिखने की अनुमति प्रदान की थी। इसी वर्ष केबिनेट का एक नया पद सजित किया गया जबकि पूर्व में गवर्नर जनरल का निजी सचिव ही केबिनेट सचिव होता था। सर एरिक कोट्स भारत के प्रथम केबिनेट सचिव नियुक्त हुए। स्वतंत्रता के पश्चात् गवर्नर जनरल के स्थान पर प्रधानमंत्री की पद स्थिति सामने आयी। भारत विभाजन तथा स्वतंत्रता के कारण अनुभवी आई. सी. एस. अधिकारियों की कमी होने के परिणामस्वरूप केबिनेट सचिवालय को प्रधानमंत्री सचिवालय के साथ सम्बद्ध कर दिया गया। स्वतंत्रता के बाद एन. आर. पिल्लै प्रथम केबिनेट सचिव नियुक्त किए गए। उन्होंने लन्दन जाकर ब्रिटिश केबिनेट सचिवालय की संरचना तथा कार्यप्रणाली का अध्ययन किया तथा भारत आकर आवश्यक परामर्श सरकार को प्रदान किया। सन् 1948 में 'आर्थिक तथा सांख्यिकी इकाई' इस सचिवालय से जोड़ दी गई। योजना आयोग के निर्माण के पश्चात् यह इकाई केबिनेट सचिवालय से हटा दी गई लेकिन केन्द्रीय सांख्यिकी इकाई (C.S.U) इस सचिवालय से दी गई। सन् 1961 में केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन की स्थापना का कारण सी. एस. यू को उसमें मिला दिया गया। भारतीय में ओ. एण्ड एम. (संगठन एवं पद्धति) नामक संभाग बनाया गया जो मार्च, 1964 में ग ह मंत्रालय के अधीन गठित प्रशासनिक सुधार विभाग को स्थानान्तरित कर दिया। सन् 1947 के विभाजन, सन् 1962 के चीन आक्रमण तथा सन् 1966 के पाकिस्तान आक्रमण के कारण केबिनेट सचिवालय में गुप्तचर शाखा तथा आपातकालीन शाखा स्थापित की गई थी जो शरणार्थी समस्या, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा पुनर्वास सम्बन्धित कार्य सम्पादित करती थी। सन् 1973 में इस सचिवालय के अधीन लगभग 6 विभाग कार्यरत थे। सन् 1973 में ही ग ह मंत्रालय से प्रशासनिक सुधार विभाग लेकर वापिस केबिनेट सचिवालय में स्थापित किया गया। सन् 1977 में ग ह मंत्रालय को कार्मिक विभाग तथा ओ. एण्ड एम. स्थानान्तरित कर दिया गया जो अब स्वतंत्र रूप में "कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय" कहलाता है। इस प्रकार केबिनेट सचिवालय की संरचना में निरन्तर परिवर्तन आता रहा है।

### संगठन

#### (Organisation)

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है अतः मंत्रिमण्डल सचिवालय के शीर्ष पर भी प्रधानमंत्री ही आसीन होता है। प्रशासनिक स्तर पर इस सचिवालय का प्रमुख 'मंत्रिमण्डल सचिव' या केबिनेट सcretरी कहलाता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठतम तथा योग्यतम लोक सेवक होने के कारण देश का सर्वोच्च प्रशासनिक पद धारण करता है। केबिनेट सचिव केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत कार्यरत समस्त मंत्रालयों तथा विभागों के कार्मिक तंत्र को भी निर्देशित करता है जबकि प्रधानमंत्री का प्रमुख प्रशासनिक सलाहकार होने के कारण वह मंत्रिमण्डल की बैठकों, कार्यसूची तथा निर्णयों के क्रियान्वयन में महती भूमिका निभाता है। केबिनेट सचिव के अधीन तीन सचिव क्रमशः सुरक्षा, समन्वय तथा अनुसंधान एवं विश्लेषण खण्ड (Research and Analysis Wing) अर्थात् 'रा' तथा एक निदेशक, लोक शिकायत निवारण के कार्य सम्पादित करते हैं। प्रथम खण्ड का प्रभारी सचिव (सुरक्षा) मुख्यतः प्रधानमंत्री की सुरक्षा, विशेष सुरक्षा कमान्डो की व्यवस्था, पूर्व प्रधानमंत्रियों तथा

अतिविशिष्ट सुरक्षा श्रेणी प्राप्त व्यक्तियों की रक्षा से सम्बन्धित कार्य निर्वाहित करता है। यह पद आई. पी. एस अधिकारी द्वारा धारण किया जाता है। जिसके अधीन निदेशक (Special Protection Group) तथा एक संयुक्त सचिव भी कार्यरत होता है। एस. पी. जी. की स्थापना सन् 1984-85 में की गई थी। इस खण्ड में रक्षा सेवाओं के अधिकारी भी कार्यरत रहते हैं। सचिवालय का दूसरा खण्ड समन्वय का होता है जिसका प्रमुख एक सचिव तथा उसके अधीन एक अतिरिक्त सचिव तथा दो संयुक्त सचिव क्रमशः समन्वय तथा संयुक्त वार्ता समिति होते हैं। इस खण्ड में अधिकांश अधिकारी आई. ए. एस. तथा आई. पी. एस. होते हैं। यह खण्ड मंत्रिमंडल की बैठकों की कार्यसूची बनाने, मंत्रियों को सूचना देने, बैठक की आवश्यक व्यवस्थाएँ करने तथा महत्वपूर्ण फाइलों के रख-रखाव इत्यादि का कार्य करता है।

रक्षा एवं पुलिस अधिकारियों से युक्त केबिनेट सचिवालय का तीसरा खण्ड अनुसंधान एवं विश्लेषण खण्ड (राँ) से सम्बन्धित है जिसका प्रमुख एक सचिव होता है जिसके अधीन विशेष सचिव, संयुक्त सचिव (2), निदेशक (3), महानिरीक्षक (2) तथा अन्य अधिकारी कार्यरत हैं। यह खण्ड आन्तरिक तथा बाह्य सुरक्षा एवं गुप्तचर एजेन्सी का कार्य निर्वाहित करता है जिसे रक्ष एवं ग ह मंत्रालयों से समन्वय एवं सहायता प्राप्त होती है। राँ की स्थापना सन् 1968 में की गई थी तथा आर. एन. काव इसके प्रथम प्रमुख बने थे। केबिनेट सचिव का चौथा खण्ड 'लोक शिकायत निदेशालय' का है। एक निदेशक तथा अन्य उपसचिव, अवर सचिवों से युक्त यह निदेशालय सन् 1988 में राजीव गाँधी सरकार द्वारा स्थापित किया गया था। यह निदेशालय केन्द्रीय मंत्रालयों, विभागों, केन्द्रीय लोक उपक्रमों इत्यादि के जनसाधारण की शिकायतों ग्रहण करता है तथा सबन्धित विभाग तक अग्रिम कार्यवाही हेतु अग्रेषित करता है।

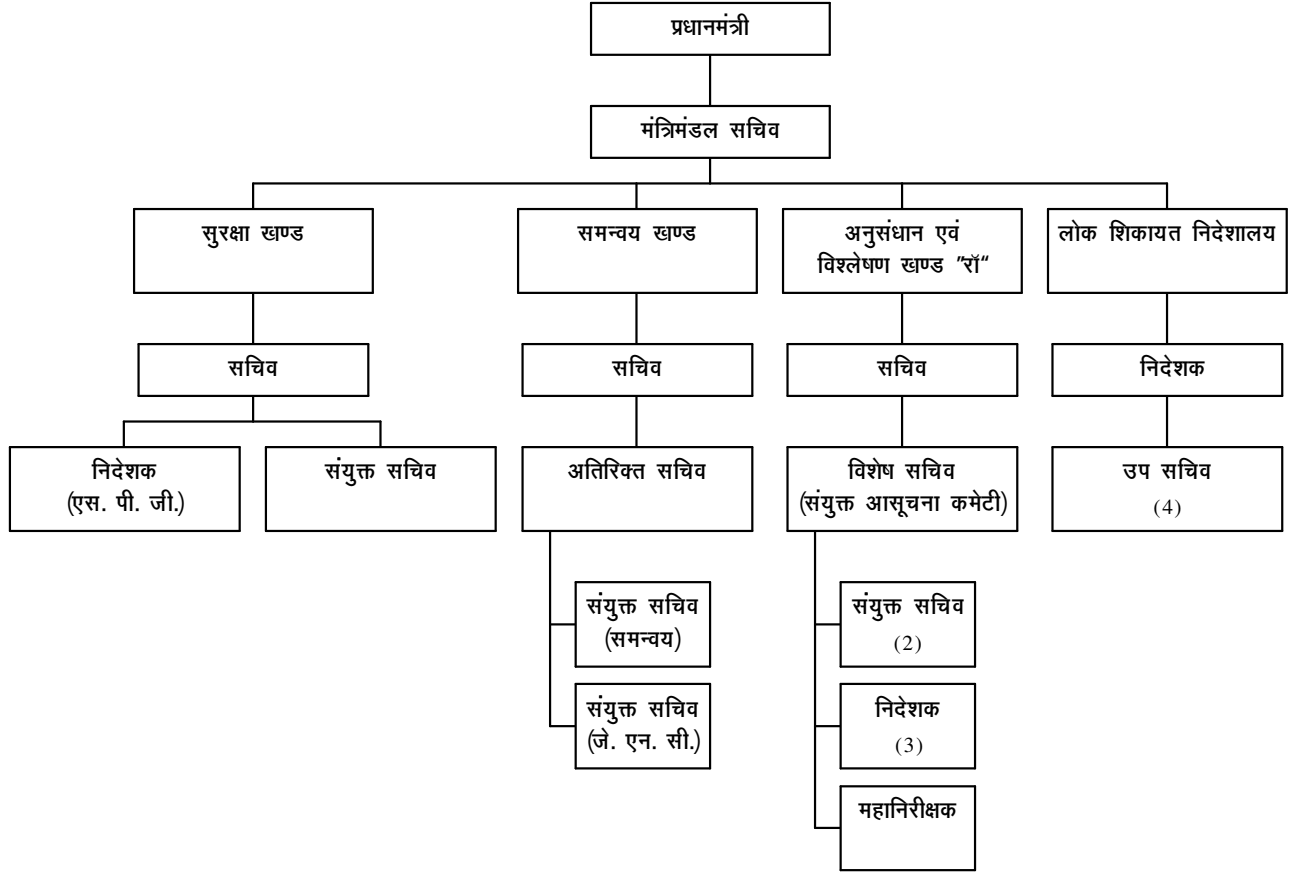
केबिनेट सचिवालय के अधीन लगभग 13 हजार कार्मिक कार्यरत हैं। पाँचवे वेतन आयोग की सिफारिश पर मंत्रिमंडल सचिवालय के एक भाग के रूप में कार्यकुशलता इकाई भी बनाई गई है जो समस्त केन्द्रीय मंत्रालयों के कामकाज पर निगरानी रखती है। वैसे यह इकाई कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेन्शन मंत्रालय में है। केबिनेट सचिवालय की आन्तरिक संरचना तथा पदाधिकारियों की नियुक्ति सत्तारूढ़ प्रधानमंत्री की इच्छा एवं नीति पर अत्यधिक निर्भर करती है। राजीव गाँधी के शासन काल (1985-89) के दौरान इस सचिवालय में अनेक सलाहकार तथा विशेषाधिकारी नियुक्त किए गए थे। इस सचिवालय की शक्तियाँ तथा प्रधानमंत्री कार्यालय का कार्यक्षेत्र परस्पर टकराता रहा है। केबिनेट सचिवालय में नियुक्त होने वाला केबिनेट सचिव सर्वाधिक महत्त्व तथा गुरुतर दायित्वों का पद है। इस पद पर वरिष्ठ तथा योग्य आई. ए. एस. अधिकारी की नियुक्ति प्रधानमंत्री की अनुशंसा पर सामान्तः 2-3 वर्षों के लिए होती है जिसे आवश्यकता होने पर बढ़ाया भी जा सकता है। यद्यपि प्रधानमंत्री का अपना निजी सचिव तथा प्रधानमंत्री कार्यालय का पथक् से सचिव होता है तथापि केबिनेट सचिव की भूमिका प्रधानमंत्री के आँख तथा कान के समान होती है जो न केवल प्रधानमंत्री को परामर्श एवं सूचना उपलब्ध करवाता है बल्कि मंत्रिमंडल की बैठकों में उपस्थित होकर मिनिट्स भी तैयार करता है जिन्हें मंत्रियों तथा मंत्रालयों तक पहुँचाने के अतिरिक्त मंत्रिमंडल के निर्णयों की क्रियान्विति भी सुनिश्चित करवाता है। केन्द्रीय सचिवालय की सचिवों की समिति (C.O.S.) तथा राज्यों के मुख्य सचिवों की समिति का अध्यक्ष होने के साथ साथ वह केबिनेट की विभिन्न समितियों में भी सम्मिलित होता है। भारत सरकार की नीतियों तथा कार्यक्रमों में केबिनेट सचिव की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आपातकाल, कामचलाऊ सरकार तथा समाचार पत्रों पर मानहानि के दावों के मामलों में अनुमति प्रदान करने की स्थिति अत्यंत प्रभावी हो जाती है।

## केबिनेट सचिवालय के कार्य

केबिनेट सचिवालय केन्द्रीय प्रशासन का केन्द्रीयबिन्दु है। इसके कार्यों का विवरण निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

1. केबिनेट सचिवालय के रूप में,
2. प्रारम्भकर्ता विभाग के रूप में,
3. समन्वयकर्ता के रूप में, तथा
4. मन्त्रिमण्डल के निर्णयों को क्रियान्वित करने के रूप में।

## मंत्रीमंडल सचिवालय : संगठनात्मक ढांचा



- कैबिनेट सचिवालय के रूप में** - यह केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल और उसकी समितियों को दैनिक कार्य से सम्बन्धित सचिवालयीय सहायता प्रदान करता है। यह सचिवालय कैबिनेट की बैठकों के लिए कार्य-सूची तैयार करता है, इसके वाद-विवादों तथा निर्णयों का अभिलेख रखता है तथा इसके सम्मुख आने वाले विषयों पर ज्ञापन तैयार करता है। यह सचिवालय सूचना-केन्द्र के रूप में विभिन्न सरकारी संस्थाओं से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएँ केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल उसकी समितियों तथा राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति को प्रेषित करता है। यह मन्त्रिमण्डल की बैठकों के निर्णयों की सूचना भी सम्बन्धित विभागों को पहुँचाता है। प्रमुख विषयों पर लिए गए निर्णयों का मासिक प्रतिवेदन तैयार करके यह विभिन्न सम्बन्धित संस्थाओं को प्रेषित करता है। इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री अभिलेखों को अपनी इच्छानुसार तैयार कराकर मंत्रियों एवं अधिकारियों के पास भेजने का कार्य भी करता है। इस प्रकार यह सचिवालय सम्बन्धि समस्त कार्यों को सम्पन्न करता है।
- प्रारम्भकर्ता विभाग के रूप में** - इस रूप में कैबिनेट सचिवालय तीन प्रकार के प्रारम्भिक कार्य करता है। प्रथम, मन्त्रिपरिषद् में मन्त्रियों, राज्यमन्त्रियों, उपमन्त्रियों तथा संसदीय सचिवों की नियुक्तियाँ, उनके विभागों के वितरण, शपथ-ग्रहण समारोह, पदग्रहण, त्यागपत्र आदि मामलों से सम्बन्धित समस्त कार्य इसके अधीन आते हैं। द्वितीय, संविधान के अनुच्छेद 77 (3) के प्रावधानों के अन्तर्गत ऐसे कानूनों का निर्माण करना जो सरकार के कार्यों को सुविधापूर्वक सम्पन्न करने में सहायता करते हों। यह कैबिनेट कार्यालय में होता है। तीसरे, सरकार की नीतियों को लागू करने तथा उनमें समन्वय लाने से सम्बन्धित विभागों की देखरेख रखना इसका महत्वपूर्ण प्रारम्भिक कार्य है। इस कार्य को करने में अन्य मन्त्रालयों तथा विभागों के अधिकारों को न तो यह कम करता है और न ही छीनता है, अपितु विभिन्न विभागों के बीच समन्वय स्थापित करता है, उन्हें उचित परामर्श देता है तथा सरकारी नीतियों को सुचारु रूप से लागू करता है।

3. **समन्वयकर्ता विभाग के रूप में** - किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था में सरकारी नीतियों को कुशलतापूर्वक लागू करने के लिए विभागों के बीच समन्वय का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए अनेक तरीकों को अपनाया गया है। कैबिनेट विषयों से सम्बन्धित विभाग एक ऐसा ही अभिकरण है जो प्रभावशाली समन्वय के लिए कार्यरत है। भारत सरकार में अनेक प्रकार की इकाइयाँ कार्य करती हैं; जैसे - मन्त्रालय, विभाग, निगम बोर्ड, कम्पनियाँ, नयी-नयी समितियाँ आदि। इस समय स्थिति यह है कि शायद ही कोई व्यक्ति इन विभिन्न इकाइयों की पूर्ण सूची तैयार कर सके। नित्य नवीन संगठन स्थापित हो रहे हैं। इन विभिन्न इकाइयों में समन्वय स्थापित करना कठिन कार्य है। कैबिनेट सचिवालय का प्रमुख कार्य विभिन्न विभागों में समन्वय संस्था है। कैबिनेट सचिव विभिन्न सचिव केन्द्रीय प्रशासनिक स्तर पर यह सचिवालय एक प्रमुख समन्वय संस्था है। कैबिनेट सचिव विभिन्न सचिव समितियों का अध्यक्ष होने के नाते विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह सचिवालय केन्द्र और विभिन्न राज्यों के बीच भी समन्वयात्मक कार्य करता है।

अक्टूबर 1945 में वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में समन्वय समिति का गठन हुआ था। इसका कार्यक्षेत्र नागरिक एवं सैनिक मामलों में समन्वय स्थापित करना था। इस समिति के सचिव के पास कोई कार्यपालिक अधिकार नहीं थे, फिर भी वह समिति की ओर से निम्नलिखित कार्य करता था :

- (अ) सरकार की प्रमुख प्रशासनिक नीतियों और गतिविधियों में समन्वय स्थापित करने में सहायता प्रदान करना।
- (ब) भारत सरकार के मन्त्रालयों के बीच अथवा राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकार के बीच प्रशासनिक क्षेत्र में गतिरोध या मतभेदों कठिनाइयों को दूर करने में सहायता प्रदान करना।
- (स) विभिन्न मन्त्रालयों के बीच किसी विषय पर विवाद उत्पन्न होने पर समन्वयकर्ता का कार्य करना।
- (द) एक से अधिक मन्त्रालयों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रशासनिक विषयों की प्रगति का अवलोकन करना।
- (य) कार्यकारिणी की समन्वय समिति के समक्ष उन विषयों को रखना जहाँ समिति के आदेश की आवश्यकता है।

4. **मन्त्रिमण्डल के निर्णयों को क्रियान्वित करने के रूप में** - यह सचिवालय मुख्यतः कैबिनेट सचिव के माध्यम से प्रधानमन्त्री तथा आवश्यक होने पर मन्त्रियों को (यदि वे चाहें) समय-समय पर महत्वपूर्ण विषयों से सम्बन्धित नीतियों के निरूपण एवं निष्पादन के विषय के परामर्श देता है। इसे मन्त्रिमण्डल के समक्ष प्रस्तुत सभी विषयों सम्बन्ध में मन्त्रिमण्डल की सहायता और आवश्यक कार्यवाही करनी पड़ती है; जैसे - संसद में व्यवस्थापन के लिए प्रस्तुत किए जाने वाले प्रस्ताव तैयार करना, विदेशों के साथ संधियों एवं समझौतों आदि से सम्बन्धित मामले, संसद के अधिवेशनों को प्रारम्भ करने, स्थगित करने और लोससभा को भंग करने संबंधि प्रस्तावों पर विचार करना, सार्वजनिक जाँच समितियों नियुक्ति और एसी समितियों की रिपोर्ट पर विचार, मन्त्रिपरिषद द्वारा लिए गए किसी भी पूर्व-निर्णय पर पुनर्विचार, आदि। कैबिनेट सचिवालय का एक महत्वपूर्ण कार्य यह देखना भी है कि मन्त्रिमण्डल या उसकी समितियों द्वारा लिए गए निर्णय लागू हो रहे हैं अथवा नहीं। इस कार्य हेतु यह सचिवालय मासिक प्रवेदन तैयार करता है जिसमें प्रत्येक मन्त्रालय के कार्यों की समीक्षा रहती है कि किस सीमा तक निर्णयों पर अमल हुआ है। यदि यह पाया जाता है कि कैबिनेट के निर्णयों को अमल में लाने के लिए कोई मन्त्रालय प्रगति नहीं कर रहा है तो यह विषय उच्चतर स्तर पर तय किया जाता है ताकि निर्णयों को लागू करने में तेजी लायी जा सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय अनेक महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करता है। संक्षेप में, यह उच्चतर स्तर पर निर्णय किये जाने की प्रक्रिया में समन्वय करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और प्रधानमंत्री के निर्देश के अनुसार कार्य करता है। यह सचिवों की समितियों कार्य भी करता है। समय-समय पर इसकी बैठकें मन्त्रिमण्डलीय सचिव की अध्यक्षता में उन समस्याओं पर विचार करने और परामर्श देने के लिए होता है जिन पर मन्त्रालयों के बीच परस्पर परामर्श और समन्वय की आवश्यकता होती है।

### कार्य-प्रक्रिया

कैबिनेट तथा उसकी समितियों के कार्यों का संचालन उन नियमों के अन्तर्गत होता है। जिन्हें कैबिनेट ने 1947 में निर्मित किया था। कैबिनेट अपने मामलों को तीन तरीकों से सम्पन्न करती है - प्रथम, कैबिनेट में विचार - विमर्श द्वारा; दूसरे, पत्रों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सदस्यों के पास प्रपत्र भेजकर; और तीसरे, कैबिनेट की समिति में बातचीत द्वारा जिसमें दो

से अधिक मंत्री प्रधानमंत्री द्वारा मनोनित किए जाते हैं। बैठकों में सम्मिलित होने के लिए किसी मन्त्रि को निमन्त्रण नहीं भेजा जाता है बल्कि नोटिस द्वारा सूचित किया जाता है। राज्यमन्त्री जो स्वतन्त्र विभाग के प्रभारी होते हैं तथा उनके विभाग से सम्बन्धित बातों पर जब कैबिनेट में विचार होता है तब उन्हें निमन्त्रण देकर बुलाया जाता है। इन बैठकों की व्यवस्था कैबिनेट और उसके सचिवालय के अधिकारियों द्वारा की जाती है। मन्त्रालय के वरिष्ठ अधिकारी बैठकों के समय उपस्थिति रहते हैं या आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बैठक में बुलाया जाता है। बैठक का विवरण कैबिनेट सचिव द्वारा तैयार किया जाता है जिसे किसी बैठक के 24 घण्टों के अन्दर प्रधानमंत्री के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। प्रधानमंत्री की अनुमति मिलने पर यह विवरण कैबिनेट मन्त्रियों, राज्यमन्त्रियों जो विभागों के स्वतंत्र प्रभावी होते हैं तथा सम्बन्धित सचिवों के पास भेज दिए जाते हैं। यदि इस विवरण में बैठक में उपस्थित किसी मंत्री द्वारा संशोधन कराया जाता है तो उसे प्रधानमंत्री के विचारार्थ भेज दिया जाता है। यदि प्रधानमंत्री स्वीकृति दे देते हैं तो संशोधित विवरण पुनः सदस्यों के पास भेज दिया जाता है। प्रत्येक कैबिनेट की बैठक के बाद कैबिनेट सचिव प्रेस को मुख्य निर्णयों की जानकारी देता है।

## प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव (Suggestions of ARC)

प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है कि मन्त्रिमण्डल सचिवालय एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली संस्था है। आयोग का मत था कि विभिन्नताओं और मतभेदों को दूर करने के प्रभावशाली समन्वय-कार्य में यह सचिवालय उतना सक्षम नहीं हो सका है, जितनी इससे अपेक्षा थी। आयोग ने मन्त्रिमण्डल सचिवालय के पुनर्गठन और इसकी कार्यक्षमता के लिए सुझाव दिए थे जो निम्नलिखित हैं -

- (A) सांख्यिकी विभाग को वित्त विभाग में मिला लिया जाना चाहिए। ऐसा करने से सचिवालय के पास अधिकांशतः ऐसे विभाग बचे रहेंगे, जिनका सम्बन्ध मन्त्रिमण्डलीय मामलों से है। इसके अतिरिक्त **सैन्य-प्रशाखा** रक्षा मन्त्रालय को सौंप दी जानी चाहिए। सेना अध्यक्षों की समिति केवल रक्षा-कार्य से ही सम्बन्धित होनी चाहिए।
- (B) उपर्युक्त विभागों को हटाकर इस सचिवालय का इस प्रकार से पुनर्गठन किया जाए कि इसमें सरकारी कार्यों के सम्पादन हेतु विशेषीकृत इकाइयों (सेल) की व्यवस्था हो। इन इकाइयों के कार्य होंगे -
  1. मन्त्रालयों में होने वाली गतिविधियों से प्रधानमंत्री को अवगत करते रहना।
  2. मन्त्रियों के प्रमुख निर्णयों का स्मरण-लेख (मेमोरेण्डम) प्राप्त कर प्रधानमंत्री के सम्मुख प्रस्तुत करना।
  3. कैबिनेट समितियों से सम्बन्धित ऐसे कार्य जो मन्त्रालयों के समूह से सम्बन्धित हैं, कैबिनेट सचिवालय को सौंपते रहना।
  4. प्रधानमंत्री मन्त्रिमण्डल तथा कैबिनेट सचिवालय द्वारा उच्च मन्त्रिमण्डलीय कार्य - क्षेत्र में नीतियों को नया रूप देने में सहायता करना।
  5. प्रधानमंत्री के विचारों से मन्त्रिमण्डल तथा मन्त्रिमण्डलीय समितियों को समय-समय पर अवगत करते रहना।
  6. संयुक्त सचिव (जिसके अधिन सेल हो) समिति के सचिव की भाँति कार्य करे और जो सेल द्वारा सेवित हो और कैबिनेट समिति से सम्बन्धित हो तथा यदि उसके मन्त्रालयों के बारे में कोई विवादास्पद विषय हो तो वह मन्त्रिमण्डल की बैठक में भी सम्मिलित किया जा सकता है।
  7. यदि दो या दो के अधिक मन्त्रालयों के बीच मतभेद हो तो उनसे सम्बन्धित सचिव को प्रारम्भिक अवस्था में ही कैबिनेट सचिवालय को सूचित करना चाहिए, जिससे कि औपचारिक विचार-विमर्श के बाद मतभेदों को दूर किया जा सके।
  8. कैबिनेट सचिव को समय-समय पर अन्य सचिवों से मिलते रहना का चाहिए।
  9. यदि किसी मन्त्रालय में किसी महत्वपूर्ण मामले से सम्बन्धित जटिल प्रश्न उठ खड़े होते हैं तो उन्हें कैबिनेट सचिव को बतलाना चाहिए, जिससे कि वह यदि आवश्यक समझे तो प्रधानमंत्री के आदेश पाकर उन प्रश्नों का सुलझा सके।

10. कैबिनेट सचिवालय मन्त्रिमण्डल के कार्यों के लिए एक 'स्टाफ भुजा' के समान है। अतः उसे सरकारी कार्यों का सम्पादन करने हेतु एक सरकारी विभाग मात्र नहीं समझा जाना चाहिए। इसका अस्तित्व भारत सरकार के नियमों द्वारा पुनर्गठित किया जाना चाहिए।

प्रशासनिक सुधार आयोग के अनेक व्यावहारिक सुझावों को मानकर केन्द्र में सत्तारूढ़ होने वाली सभी दलों की सरकारों ने यथासम्भव उन पर अमल किया है। इन सुझावों को प्रभावशाली ढंग से लागू करके ही मन्त्रिमण्डल सचिवालय की कार्यवाही को सकारात्मक और सार्थक बनाया जा सकता है।

### **मन्त्रिमण्डल सचिवालय का महत्त्व** (Importance of Cabinet Secretariat)

मन्त्रिमण्डल सचिवालय के बहुमुखी कार्य ही इसके महत्त्व को सिद्ध करते हैं। भारत जैसे संसदीय जनतंत्र में जहाँ मन्त्रिमण्डलीय मन्त्रियों को संसद में उपस्थित होना पड़ता है और जन-प्रतिनिधियों के प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है, उन्हें उचित सलाह देने तथा आवश्यक आकड़ें उपलब्ध कराने के लिए सामान्य प्रकार के विभाग से कार्य नहीं चल सकता। अतः इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए विशेषतः मन्त्रिमण्डल स्तर के मन्त्रियों से संसद में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने हेतु आवश्यक आकड़ें एवं तथ्य उपलब्ध करने तथा नीति-निर्माण सम्बन्धि निर्णयों में सहायता करने के लिए एक नवीन प्रकार के निकाय 'मन्त्रिमण्डल सचिवालय' की स्थापना की आवश्यकता अनुभव की गई। यह मन्त्रिमण्डल सचिवालय नाम से पुराना होते हुए भी कार्यक्षेत्र एवं प्रकृति की दृष्टि से पूर्णरूपेण नया है। संसदीय प्रश्नों का उत्तर देने तथा नीति - निर्माण कार्य में सहयोग देने की दिशा में इस सचिवालय की भूमिका अपेक्षकृत अधिक प्रभावशाली एवं विशेषीकृत है। इस संशोधन एवं परिवर्तन की स्थापना के कारण इसके महत्त्व एवं भूमिका में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। प्रधानमंत्री के सचिवालय की स्थापना के कारण इसका महत्त्व पूर्वापेक्षा कम हो गया है, किन्तु फिर भी इसके बढ़ते हुए महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता।

### **कैबिनेट सचिव** (Cabinet Secretary)

कैबिनेट सचिवालय का प्रमुख कैबिनेट होता है जो प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रहता है। कैबिनेट सचिवालय की अध्यक्षता कैबिनेट सचिव द्वारा की जाती है। वह इस सचिवालय का प्रशासनिक प्रमुख होता है। कैबिनेट सचिव केन्द्रीय संस्थापन मण्डल का पदेन अध्यक्ष भी होता है। वह भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठतम सदस्य होता है। प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार "योग्यतम एवं वरिष्ठतम" अधिकारी को ही कैबिनेट सचिव बनाया जाना चाहिए। यह सचिवों के सम्मेलन की अध्यक्षता भी करता है। भारत में इस पद का प्रारम्भ 1950 में हुआ और एन. आर. पिल्लई प्रथम कैबिनेट सचिव बने। एन. के. मुखर्जी के कार्यकाल तक आई. ए. एस वर्ग के सदस्य कैबिनेट सचिव के पद पर पदासीन होते हैं। वर्तमान में सुरेन्द्र सिंह 1 अगस्त, 1994 से इस पद पर कार्यरत हैं।

इस पद की महत्ता के विषय में आर्यंगर प्रतिवेदन (1949) में लिखा है कि "कैबिनेट सचिव प्रशासनिक अधिकारियों में सबसे उच्च श्रेणी का व्यक्ति होता है, जो अपने गुणों, शक्ति-पहल करने की क्षमता तथा प्रभातशीलता के कारण इस पद पर नियुक्त किया जाता है। वह कैबिनेट सचिवालय में समन्वयात्मक कार्यों को देख सकता है, विशेषतः उन कार्यों को जिनमें मन्त्रिमण्डल और प्रधानमंत्री रूचि रखते हों।" भारतीय प्रशासन का यह सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न एवं प्रतिष्ठित पद माना जाता है। इस पदभूमि में भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने अनुशंसा की थी कि इस पद को अधिक प्रभावी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इसकी अवधि 3 या 4 वर्ष की रहे। देशमुख अध्ययनमण्डल की सिफारिश तो यह थी इस पद को अन्य सचिवों की तुलना में अधिक वेतनमान दिया जाये। किन्तु प्रशासनिक आयोग ने इस सिफारिश को न मानते हुए अनुशंसा की कि कैबिनेट सचिव को अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा में वेतन के अधिकतम वेतनमान का अधिकतम वेतन दिया जाये, जो 9000 रु. है। इसकी अतिरिक्त उसे अधिक मनोरंजन भत्ता मिलता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार भी 'योग्यतम एवं वरिष्ठतम' अधिकारी को ही मन्त्रिमण्डलीय सचिव बनाया जाना चाहिए। मन्त्रिमण्डलीय सचिव मन्त्रिमण्डलीय सम्मेलनों में प्रधानमंत्री के समीप बैठता है। वह सचिवों के सम्मेलन की

अध्यक्षता भी करता है। इस प्रकार से उसका पद बड़े महत्त्व और प्रतिष्ठा का है। इस पद के महत्त्व का आयांगर समिति ने अपने प्रतिवेदन में निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है- "मन्त्रिमण्डलीय सचिव प्रशासनिक अधिकारियों में सबसे ऊँची श्रेणी का व्यक्ति होता है, जो अपने गुणों, शक्ति, पहल करने की क्षमता तथा प्रभावशीलता के कारण इस पद पर नियुक्त किया जाता है वह मन्त्रिमण्डल सचिवालय में समन्वयात्मक कार्यों को देखता है, विशेषतः उन कार्यों को जिनमें मन्त्रिमण्डल और प्रधानमंत्री रूचि रखते हैं।" आयांगर समिति ने यह सझाव भी दिया था कि प्रधानमंत्री अथवा मंत्रियों द्वारा प्रशासनिक नियुक्तियों के लिए जो सलाहकार समिति है, उसका मन्त्रिमण्डलीय सचिव पदेन अध्यक्ष नियुक्त किया जाना चाहिए। भारतीय प्रशासन का यह सबसे शक्तिशाली एवं प्रतिष्ठित पद माना जाता है।

मन्त्रिमण्डलीय सचिव अपने सचिवालय के सम्पूर्ण कार्य का पर्यवेक्षण करता है। वह केन्द्रीय सरकार की विभिन्न सचिव समितियों का अध्यक्ष होता है और प्रधानमंत्री, मन्त्रिमण्डलीय समितियों तथा मन्त्रिमण्डल को महत्त्वपूर्ण नीति-प्रश्नों पर परामर्श देता है। वह विभिन्न विभागों में समन्वय हेतु मुख्य समन्वयक का कार्य करता है। केन्द्र और विभिन्न राज्यों के बीच भी वह समन्वयात्मक कार्य करता है वह नई दिल्ली में केन्द्र तथा राज्यों के सचिवों के सम्मेलनों का आयोजन करता है।

मन्त्रिमण्डलीय सचिव यह भी देखता है कि मन्त्रालयों द्वारा मन्त्रिमण्डल के निर्णय क्रियान्वित किए जाएँ। वह जब कभी आवश्यक समझे तभी विभागीय सचिवों एवं वरिष्ठ अधिकारियों की बैठक बुला सकता है और उन्हें आवश्यक दिशा-निर्देश दे सकता है। मन्त्रिमण्डलीय सचिव एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अधिकारी है। उसके कार्य संख्या और प्रभाव की दृष्टि से पर्याप्त उल्लेखनीय हैं। यह सभी स्थायी कर्मचारियों के लिए परामर्शदाता का कार्य करता है। वे जब कभी अपनी विभागीय कठिनाइयों को उसके सामने लाते हैं तो वह उन्हें समुचित निर्देशन ताकि परामर्श देता है। इस पद के दायित्वों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि इस पद को धारण करने वाला व्यक्ति पर्याप्त अनुभवी अधिकारी हो जो उच्च स्तर की प्रतिभा तथा व्यापक कल्पना शक्ति का भी धनी हो।

आयांगर समिति ने इस पद के महत्त्व में अपने प्रतिवेदन में निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है :-

"मन्त्रिमण्डलीय सचिव प्रशासनिक अधिकारियों में सबसे ऊँची श्रेणी का व्यक्ति होता है, जो अपने गुणों, शक्ति, पहल करने की क्षमता तथा प्रभावशीलता के कारण इस पद पर नियुक्त किया जाता है वह मन्त्रिमण्डल सचिवालय में समन्वयात्मक कार्यों को देखता है, विशेषतः उन कार्यों को जिनमें मन्त्रिमण्डल और प्रधानमंत्री रूचि रखते हैं।" भारतीय प्रशासन यह सबसे शक्तिशाली एवं प्रतिष्ठित पद माना जाता है।

### **मन्त्रिमण्डलीय सचिव की भूमिका**

मन्त्रिमण्डलीय सचिव अपने सचिवालय के सम्पूर्ण कार्य का पर्यवेक्षण करता है। वह केन्द्रीय सरकार की विभिन्न सचिव समितियों का अध्यक्ष होता है और प्रधानमंत्री, मन्त्रिमण्डलीय समितियों तथा मन्त्रिमण्डल को महत्त्वपूर्ण नीति-प्रश्नों पर परामर्श देता है। वह विभिन्न विभागों में समन्वय हेतु मुख्य समन्वयक का कार्य करता है। केन्द्र और विभिन्न राज्यों के बीच भी वह समन्वयात्मक कार्य करता है वह नई दिल्ली में केन्द्र तथा राज्यों के सचिवों के सम्मेलनों का आयोजन करता है।

मन्त्रिमण्डलीय सचिव यह भी देखता है कि मन्त्रालयों द्वारा मन्त्रिमण्डल के निर्णय क्रियान्वित किए जाएँ। वह जब कभी आवश्यक समझे तभी विभागीय सचिवों एवं वरिष्ठ अधिकारियों की बैठक बुला सकता है और उन्हें आवश्यक दिशा-निर्देश दे सकता है मन्त्रिमण्डलीय सचिव एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अधिकारी है। उसके कार्य संख्या और प्रभाव की दृष्टि से पर्याप्त उल्लेखनीय हैं। यह सभी स्थायी कर्मचारियों के लिए परामर्शदाता का कार्य करता है। वे जब कभी अपनी विभागीय कठिनाइयों को उसके सामने लाते हैं तो वह उन्हें समुचित निर्देशन ताकि परामर्श देता है। इस पद के दायित्वों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि इस पद को धारण करने वाला व्यक्ति पर्याप्त अनुभवी अधिकारी हो जो उच्च स्तर की प्रतिभा तथा व्यापक कल्पना शक्ति का भी धनी हो। मन्त्रिमण्डलीय सचिव का प्रधानमंत्री के साथ अत्यन्त निकट का सम्बन्ध होता है और उसे उसका अत्यन्त विश्वस्त व्यक्ति माना जाता है। अनेक समीक्षक उसे 'प्रधानमंत्री की आँख और कान' के रूप में भी विभूषित करते हैं। उससे कह उपेक्षा की जाती है कि वह उचित ढंग से कार्यों को सम्पादित करने के लिए प्रधानमंत्री की सहायता करे।

मन्त्रिमण्डलीय सचिव के दायित्वों को देखते हुए यह आवश्यक है कि इस पद पर अत्यन्त ईमानदार, अनुभवी सक्षम और वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी की नियुक्ति की जाये। सारांश में, केन्द्रीय प्रशासन में मन्त्रिमण्डलीय सचिव की गुरुतर भूमिका है

आयंगर प्रतिवेदन (1949) के अनुसार कैबिनेट सचिव को वरिष्ठता के आधार पर सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिए। उसे केन्द्रीय सरकार के समस्त विभागों में समन्वय स्थापित करना चाहिए, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस आयोग की राय में ऐसी परम्परा स्थापित करनी चाहिए जिसमें कैबिनेट सचिव उस समिति का पदेन अध्यक्ष हो जिसे प्रशासनिक नियुक्तियाँ करनी होती हैं। देशमुख टीम (1968) इस पद के क्रियान्वयन के तरीके से संतुष्ट नहीं थी और उसने इस पद की गरिमा तथा भूमिका में सुधार के लिए सिफारिश की थी।



## अध्याय-9

# केन्द्रीय सचिवालय

### (Central Secretariat)

---

भारत सरकार (केन्द्र सरकार) के अधीन समस्त मंत्रालयों तथा विभागों का सामूहिक नाम केन्द्रीय सचिवालय या सेन्ट्रल सेक्रेटेरियट है। आधुनिक केन्द्रीय सचिवालय नामक इस प्रशासकीय व्यवस्था की शुरुआत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के दौरान हुई। हालाँकि मौर्याकाल, गुप्तकाल, सल्तनत काल तथा मुगलकाल में भी तत्कालीन शासकों के राजकार्यों को पूर्ण करने के लिए कई प्रकार के विभाग एवं राजकर्मचारी कार्यरत रहते थे लेकिन वर्तमान भारतीय प्रशासनिक तंत्र मुख्यतः अंग्रेजों द्वारा स्थापित तथा कालान्तर में किंचित परिवर्तित प्रणाली का पर्याप्त माना जाता है। ब्रिटिशकाल में इसे 'इम्पीरियल सेक्रेटेरियट' कहा जाता था।

#### विकास

भारतीय प्रशासन के संगठन के पद-सोपान में केन्द्रीय सचिवालय का एक संस्था के रूप में महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रशासकीय संगठन का मस्तिष्क है और इसके आदेश सम्पूर्ण देश में प्रचलित होते हैं। किन्तु अन्य प्रशासनिक संस्थाओं की तरह सचिवालय भी ब्रिटिश शासन काल की देन है। भारतीय सचिवालय स्वजातिक (Sui generis) हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के समय भारत में प्रशासनिक एकता स्थापित करने में केन्द्रीय सचिवालय की एक विशेष भूमिका थी। कम्पनी शासन में बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन केन्द्रीय सरकार का सचिवालय गठित किया गया, जिसमें 1833 के चार्टर अधिनियम के तहत प्रशासनिक मितव्ययता की दृष्टि से कुछ परिवर्तन किये गये। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन था राजस्व एवं वित्त विभागों को मिलाकर एक विभाग बना दिया जाना। 1843, 1855 और 1862 से 1919 तक सचिवालय में विभागों का गठन-पुनर्गठन होता रहा और अनेक नये विभागों का निर्माण हुआ। 1919 से 1947 तक का युग केन्द्रीय सचिवालय में विभिन्न सुधारों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

लॉर्ड कार्नवालिस ने सचिवालय के पुनर्गठन और शक्तिशाली बनाने की दिशा में कुछ पहल की। उसका प्रमुख योगदान महामन्त्री के पद का सृजन था। इस पदाधिकारी को बाद में प्रमुख सचिव की संज्ञा दी गयी। इसके हाथ में समस्त शक्तियाँ तथा उत्तरदायित्व थे। लॉर्ड वैलेजली ने भी सचिवालय के पुनर्गठन में काफी रुचि ली। केन्द्रीय सचिवालय के विकास में उसके सुधारों का काफी योगदान रहा। उसकी योजना के अन्तर्गत सचिवालय का कार्य काफी मात्रा में बढ़ गया तथा साथ में उत्तरदायित्व में भी वृद्धि हुई। बी. बी. मिश्र के अनुसार, "वैलेजली का प्रमुख योगदान था सरकार के सचिवों की गरिमा को बढ़ाना। यह कार्य उसने उनके वेतन को बढ़ाकर तथा उत्तरदायित्व में वृद्धि करके किया। साथ ही सचिवों के कार्यों में भी उसने बढ़ोतरी की।" अठारहवीं सदी के अन्त में सरकार में गवर्नर जनरल, तीन पार्षद और सचिवालय के चार विभाग थे। प्रत्येक विभाग एक सचिव के अधीन था और उन पर नियन्त्रण रखने के लिए एक प्रमुख सचिव। मॉण्टफोर्ड सुधारों (1919) के पूर्व भारत सरकार में गवर्नर जनरल और सात सदस्य तथा नौ सचिवालयीय विभाग थे। 1919 की लिविलियन स्मिथ कमेटी के सुझाव के आधार पर (अ) विभागीय विषयों को पुनर्गठित किया गया, (ब) लिखित आलेखों की प्रथा शुरू की गयी, (स) केन्द्रीय तहसील की व्यवस्था प्रारम्भ हुई, तथा (द) सचिवालय में प्रतिनियुक्ति व्यवस्था को सुदृढ़ किया गया। 1919 में पुनर्गठित सचिवालय में कुल ग्यारह विभाग थे।

सचिवालय के संगठन और कार्यपद्धति के विषय में बाद के वर्षों में इंचकेप समिति, ह्वीलर समिति और मैक्सवेल समिति ने केन्द्रीय सचिवालय के सुधार के लिए और भी सुझाव प्रस्तुत किये। द्वितीय महायुद्ध के कारण जब स्थिति नाजुक हो गयी तो 1945

में सचिवालय का पुनर्गठन आवश्यक समझा गया। इसके पूर्व 1941 में नागरिक सुरक्षा, सूचना और प्रसारण तथा भारतीय समुद्रपारीय विभाग स्थापित किये जा चुके थे। युद्ध के कारण सुरक्षा समन्वय का नया विभाग स्थापित हुआ और युद्ध-आपूर्ति मण्डल गठित किया गया। 1942 में खाद्य-विभाग स्थापित हुआ और उद्योग एवं नागरिक आपूर्ति को पुनः एक कर दिया गया। 1944 में योजना तथा विकास नामक विभाग स्थापित किया गया। युद्ध के बाद यद्यपि सचिवालय में और भी परिवर्तन किये गये, किन्तु सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन शिक्षा, स्वास्थ्य और कृषि मन्त्रालयों का विभाजन था। श्रम-मन्त्रालय का जन्म भी इसी समय हुआ। 15 अगस्त, 1947 को सत्ता-हस्तान्तरण के समय केन्द्रीय सचिवालय में 19 विभाग थे।

व्यापक अर्थ में 'सचिवालय' शब्द से तात्पर्य सचिवों के कार्य से है। वह मन्त्री मुख्य सलाहकार होता है, जो उसके प्रशासनिक कार्यों में उसकी सहायता तथा आवश्यक सलाह प्रदान करता है। इस शब्द की उत्पत्ति भारत के प्रशासन में उस समय हुई, जब अंग्रेजों ने अपने उपनिवेश में सचिव की सरकार स्थापित की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकारी सत्ता जनता द्वारा निर्वाचित मन्त्रियों के अधीन रखने की व्यवस्था की गई है। इस बदली हुई स्थिति में सचिवालय का सम्बन्ध मन्त्री के कार्यालय से जोड़ा जा सकता है।

सचिवालय एक ऐसा संगठन है जो उसके संचालन में सहायता करता है। यह सहायता मन्त्रियों द्वारा नीति निर्माण सम्बन्धी कार्यों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त वह सचिवालय की समस्त अपेक्षित सूचनाएँ तथा सामग्री मन्त्रियों के सम्मुख रहता है, जिससे कि वह शीघ्रता से सही नीति निर्धारण कर सके।

### आवश्यकता

#### (Need)

केन्द्रीय सचिवालय की आवश्यकता के क्रम में निम्नांकित कारण वर्णित किए जाते हैं-

1. मंत्रिगण प्रायः व्यस्त रहते हैं अतः उनके प्रशासनिक कार्य सचिवालय करता है।
2. मंत्रियों को विधि, नीति, कार्यक्रम निर्माण में सचिवालय द्वारा तकनीकी सहायता प्रदान की जा सकती है।
3. राजनीतिक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिपरिषद् अस्थायी तथा अकुशल होती है, अतः स्थायी कार्यपालिका (सचिवालय) एवं कुशल कार्मिकों की आवश्यकता है।
4. सचिवालय द्वारा मंत्रियों का तटस्थ एवं व्यावहारिक सुझाव दिया जा सकता है।
5. वस्तुतः सचिवालय व्यवस्था आधुनिक कल्याणकारी-प्रशासकीय राज्यों का अभिन्न अंग है जिसका कोई अन्य विकल्प उपलब्ध नहीं है।

### विशेषताएँ

#### (Characteristics)

भारत में केन्द्रीय सचिवालय की निम्नांकित विशेषताएँ कही जा सकती हैं-

1. यह ब्रिटिशकाल में स्थापित प्रशासनिक संगठन है जो निरन्तर परिवर्तित होता रहता है।
2. भारतीय प्रशासन तंत्र का शीर्षस्थ तथा विशालतम संगठन है।
3. सरकार के बढ़ते दायित्वों तथा कार्यक्षेत्र में विस्तार के कारण केन्द्रीय सचिवालय की 'काया भी सूजती' रही है।
4. लोक सेवाओं तथा नौकरशाही की समस्त अच्छाइयाँ एवं बुराइयाँ इसमें व्याप्त हैं।
5. वह केन्द्र सरकार के समस्त मंत्रालयों या विभागों का एकीकृत नाम है।
6. मंत्रालयों या विभाग के अधीन कुछ कार्यकारी संस्थाएँ यथा-निदेशालय, बोर्ड, आयोग, संस्थान तथा लोक उपक्रम इत्यादि कार्यरत हैं जिनके क्षेत्रीय कार्यालय आवश्यकतानुसार राज्यों में कार्यरत हैं।
7. केन्द्रीय सरकार की नीतियों, विधियों तथा कार्यक्रमों के निर्माण एवं नियंत्रण में इस सचिवालयी व्यवस्था की अहम भूमिका है।
8. केन्द्रीय सचिवालय के प्रत्येक मंत्रालय तथा विभाग का शीर्षस्थ पद राजनीतिक मंत्री द्वारा तथा प्रशासनिक स्तर पर

सचिव पद भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी द्वारा ग्रहण किया जाता है।

9. सुविधा की दृष्टि से मंत्रालय को कई विभागों, खण्डों एवं संभागों में विभक्त किया गया है।
10. भारत में केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत शासन के प्रत्येक कार्य से सम्बन्धित कोई न कोई विभाग अवश्य कार्यरत है, चाहे वह कार्य राज्य सूची से ही सम्बन्धित क्यों न हो।
11. सचिवालय नीति निर्माण करता है जबकि क्रियान्वयन का कार्य कार्यकारी संस्थाओं को दिया गया है।
12. अधिकारी पदों पर अभी भी 'अवधि प्रणाली' लागू है।

### लोक सेवाएँ

केन्द्रीय सचिवालय अर्थात् भारत सरकार के मंत्रालयों तथा विभागों में नियुक्त होने वाले अधिकारी कर्मचारी विभिन्न प्रकार की लोक सेवाओं से सम्बन्धित होते हैं-

1. अखिल भारतीय सेवाएँ
2. केन्द्रीय सेवाएँ
3. केन्द्रीय सचिवालय सेवाएँ
4. केन्द्रीय सचिवालय स्टेनोग्राफर सेवाएँ
5. केन्द्रीय सचिवालय लिपिकीय सेवाएँ

तीन अखिल भारतीय सेवाओं यथा-भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा तथा भारतीय वन सेवा के अधिकारी भारत में कहीं भी पदस्थापित हो सकते हैं। सर्वोच्च प्रशासनिक पदों पर इन अधिकारियों की नियुक्ति होती है। इसके पश्चात् केन्द्रीय सेवाएँ हैं जिनके अधिकारी मंत्रालयों तथा कार्यकारी विभागों में कार्यरत होते हैं। केन्द्रीय सचिवालय सेवा की चार ग्रेड क्रमशः चयनित ग्रेड (उप सचिव या समकक्ष), ग्रेड-I (अवर सचिव या समकक्ष), अनुभाग अधिकारी ग्रेड तथा सहायता ग्रेड हैं। केन्द्रीय सचिवालय स्टेनोग्राफर सेवा की वरिष्ठ प्रमुख निजी सचिव ग्रेड, निजी सचिव ग्रेड-ए एवं बी (अब संयुक्त है), ग्रेड-सी तथा ग्रेड-डी नामक चार ग्रेड हैं जबकि केन्द्रीय सचिवालय लिपिकीय सेवाओं की दो ग्रेड हैं-उच्च डिवीजन ग्रेड तथा निम्न डिवीजन ग्रेड। निम्न डिवीजन ग्रेड अर्थात् क्लर्क की भर्ती कर्मचारी चयन आयोग करता है तथा उच्च डिवीजन ग्रेड पूर्णतया पदोन्नति से भरी जाती है। अनुभाग अधिकारी तथा सहायक ग्रेड के पद पदोन्नति एवं सीधी भर्ती दोनों प्रकार से भरे जाते हैं। अवर सचिव से लेकर सचिव तक के पद भारतीय प्रशासनिक सेवा या केन्द्रीय सेवाओं श्रेणी-I से भरे जाते हैं। ग्रेड-I चयनित ग्रेड तथा निजी सचिव ग्रेड के पद कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के अधीन हैं अतः इनका केन्द्रीय सचिवालय के किसी भी विभाग में पदस्थापन हो सकता है जबकि अन्य अधीनस्थ पद सम्बन्धित मंत्रालयों एवं विभागों के अनुसार विकेन्द्रीकृत कर दिए गए हैं।

केन्द्रीय सचिवालय के विभिन्न मंत्रालयों में अवर सचिव से संयुक्त सचिवों तक के पद भरने के लिए शुरू में केन्द्रीय संस्थापना मंडल का गठन किया गया था जिसे सन् 1970 से वरिष्ठ चयन मंडल एवं केन्द्रीय संस्थापना मंडल में विभक्त किया गया। प्रथम मंडल केबिनेट सचिव की अध्यक्षता में संयुक्त सचिव तथा निदेशक इत्यादि पदों पर नियुक्ति की अनुशंसा करता है जबकि केन्द्रीय संस्थापना मंडल उप सचिव एवं अवर सचिव की नियुक्ति की सिफारिश करता है।

### अवधि प्रणाली

केन्द्रीय सचिवालय के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों में अधिकारियों के पद राज्य संवर्गों के अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों, केन्द्रीय सेवाओं के श्रेणी प्रथम अधिकारियों, चयनित सूची के राज्य सेवाओं के अधिकारियों इत्यादि से भरे जाते हैं। एक निश्चित अवधि तक ये अधिकारी किसी मंत्रालय में पदस्थापित रहते हैं जो सन् 1905 से लॉर्ड कर्जन के शासन काल में शुरू हुई थी। लॉर्ड कर्जन ने यह प्रणाली जिला एवं क्षेत्रीय कार्यालयों में नियुक्त प्रशासनिक अधिकारियों के ज्ञान एवं अनुभव को केन्द्रीय स्तर पर उपयोग में लाने, तथा इन अधिकारियों का केन्द्रीय सत्ता के साथ सामंजस्य बैठाने के लिए शुरू की थी। अवधि प्रणाली के पक्ष एवं विपक्ष में बहुत बार बहस हो चुकी है। निस्संदेह इस प्रणाली में गुण-दोष दोनों विद्यमान हैं।

### अवधि प्रणाली के गुण-दोष

गुण	दोष
1. यह संघात्मक शासन व्यवस्था के लिए हितकर है क्योंकि इससे केन्द्र-राज्य सम्बन्ध घनिष्ठ होते हैं तथा राष्ट्रीय एकता बढ़ती है।	1. विशिष्टीकरण के इस युग में यह प्रणाली बाधक है।
2. सूत्र एवं स्टॉफ अधिकारियों का आपसी सामंजस्य स्थापित होता है।	2. क्षेत्रीय अनुभव प्राप्त अधिकारियों के ज्ञान का केन्द्रीय स्तर पर कोई उपयोग नहीं हो पाता है।
3. प्रशासनिक अधिकारियों की सोच का दायरा विस्तृत हो जाता है।	3. भारत में आज भी राजनीति तथा संकीर्ण मानसिकता के लक्षण स्पष्ट दिखते हैं अतः यह प्रणाली असफल सिद्ध होती है।
4. उत्साही एवं महत्वाकांक्षी अधिकारियों को उच्च स्तर पर कार्य करने का अवसर मिलता है।	4. बहुत-सी राज्य सरकारें कुछ अधिकारियों के दण्ड स्वरूप केन्द्र को भेजती हैं।
5. राज्य अधिकारियों की नीरसता तथा एकाकीपन समाप्त होता है।	5. कतिपय अधिकारी पुनः मूल स्थान पर वापिस नहीं जाते हैं।
6. अभिप्रेरणा एवं मनोबल बढ़ता है।	6. अवधि प्रणाली की सुव्यवस्थित नीति एवं तंत्र अभी तक नहीं बन पाया है।
7. लोक सेवकों में तटस्थता एवं कार्यकुशलता का भाव उत्पन्न होता है।	7. इससे क्षेत्रीय अधिकारियों को सचिवालय में जाने तथा आराम करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

केन्द्रीय सचिवालय सेवाओं की स्थापना (1951) के कारण अवर सचिव तथा उप सचिव इत्यादि के कुछ पद इन्हीं सेवाओं से भरे जाने लगे हैं, अतः अवधि प्रणाली का क्षेत्र सीमित हुआ है। इसी प्रकार सन् 1957 में 'केन्द्रीय प्रशासनिक पूल' के निर्माण के पश्चात् वित्त एवं वाणिज्य जैसे विशेषज्ञ पद पूल के अधिकारियों से भरे जाते हैं। साथ ही प्रशासन में बढ़ती विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति एवं माँग के कारण अवधि प्रणाली की ओर झुकाव स्वाभाविक रूप से कम हुआ है। वर्तमान में सचिव तथा संयुक्त सचिव पदों पर 5 वर्ष, उप सचिव के पद पर 4 वर्ष तथा अवर सचिव पद पर 3 वर्ष की अवधि निर्धारित है।

विभाग	:	सचिव/अतिरिक्त/विशेष सचिव
खंड	:	संयुक्त/अतिरिक्त सचिव
संभाग	:	निदेशक/उपसचिव
शाखा	:	अवर सचिव
अनुभाग	:	सेक्शन अधिकारी

केन्द्रीय सचिवालय में दो प्रकार के कर्मचारी कार्य करते हैं- (अ) अधिकारी वर्ग, (ब) अधीनस्थ वर्ग। पहले वर्ग में सचिव, उपसचिव तथा सचिव आते हैं। यदि विभाग बड़ा है तो संयुक्त सचिव या अतिरिक्त सचिव भी होते हैं, जिन्हें विभाग के किसी भी अंग का कार्य सौंपा जाता है। वे अपने क्षेत्र में आने वाले सभी विषयों के सम्बन्ध में मन्त्री से सीधा सम्पर्क रखते हैं। संयुक्त या अतिरिक्त सचिव का स्तर लगभग सचिव के स्तर के समान होता है। वे कार्यभार से बोझिल सचिव का बोझ हटका करते हैं। संयुक्त तथा अतिरिक्त सचिव से आशा की जाती है कि वे महत्वपूर्ण मामलों पर मुख्य सचिव से परामर्श लेते रहें। अधिकारी वर्ग में प्रायः भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य होते हैं।

### सचिव

सचिव विभाग/मन्त्रालय का प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी होता है। सचिव विभाग के समस्त प्रशासनिक क्रियाकलापों तथा

नीतियों पर परामर्श देने के लिए मन्त्री का प्रधान परामर्शदाता होता है। उसका कर्तव्य है कि वह विषय के सभी सम्बद्ध तथ्यों को मन्त्री के समक्ष प्रस्तुत करे ताकि मन्त्री उस पर उचित निर्णय ले सके। यह आवश्यक है कि वह अपने मन्त्री को पूर्ण सूचना देता रहे। सचिव को निर्भय होकर अपने विचार प्रस्तुत करने चाहिए। परामर्श, संकेत एवं प्रोत्साहन देना तथा समझाना उसका कर्तव्य तथा अधिकार दोनों हैं।

केन्द्रीय सचिवालय के किसी-किसी मन्त्रालय में एक से अधिक सचिव होते हैं। सभी सचिव यद्यपि समान वेतन पाते हैं, लेकिन वे समान दर्जे के नहीं होते हैं। एक सचिव मन्त्रालय का सचिव होता है जबकि अन्य सचिव मन्त्रालय में विभिन्न विभागों के सचिव होते हैं और वे मन्त्रालय के अधीन रहकर कार्य करते हैं।

### **विशेष सचिव**

स्वतन्त्रता के उपरान्त सत्ता के नवीन स्तर स्थापित करने के फलस्वरूप मौलिक सोपान में व्यवधान उत्पन्न हुआ है। इसका उसकी एकता, कुशलता तथा प्रभावशीलता पर विपरित प्रभाव पड़ा है। विशेष सचिव का पद इस व्यवधान का अच्छा उदाहरण है। 1951 में सर्वप्रथम कृषि-मन्त्रालय में विशेष सचिव की नियुक्ति की गई थी।

### **अतिरिक्त सचिव**

प्रारम्भ में सचिव के बाद प्रशासनिक पद-सोपान में उपसचिव का स्थान होता था परन्तु संयुक्त तथा अतिरिक्त सचिव पद की स्थापना से पद-सोपान वरिष्ठता सूची में अन्तर आया है। प्रशासनिक सुधार सम्बन्धी अधिकांश समितियों ने इस पद की समाप्ति या उनके पदों में कमी करने का अनुशंसा की।

### **संयुक्त सचिव**

जब किसी मन्त्रालय का कार्य अधिक बढ़ जाता है और सचिव कार्य के बोझ में दबा रहता है, तब उसके कार्यों में सहायता के लिए एक या अधिक शाखाओं की स्थापना की जाती है। संयुक्त सचिव स्वतन्त्र रूप से शाखा का प्रमुख होता है और वह सौंपे गये कार्यों को करने में सक्षम होता है।

### **निदेशक**

यह पद अपेक्षाकृत नवीन है और इसकी स्थापना 1960 में हुई। यह पद कुछ अधिकारियों के अहम की संतुष्टि के लिए सजित किया गया है। जहाँ तक उत्तरदायित्व का प्रश्न है, यह उपसचिव के समकक्ष होता है।

### **उपसचिव**

यह सचिव की ओर से कार्य करता है। सचिवालय में उपसचिव का महत्व होता है और वह एक डिवीजन का प्रभारी होता है। इससे सम्बन्धित कार्यों के प्रति वह उत्तरदायी होता है।

### **अवर सचिव**

यह मन्त्रालय की एक शाखा का प्रभारी होता है और अपने कार्यक्षेत्र में अनुशासन बनाए रखने के लिए उत्तरदायी होता है। छोटे-छोटे मामलों को यह स्वयं निपटाता है। उपसचिव के कार्य को हलका करना इसका एक प्रमुख कार्य है।

### **विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी (ओ. एस. डी.)**

प्रशासनिक कार्यों अथवा अप्रत्याशित आपात-स्थिति में व्यक्ति विशेष को स्थान देने के लिए प्राचीन काल से ही ओ. एस. डी. की व्यवस्था प्रचलित है।

ऐसे अधिकारियों को नियुक्त किये जाने का कारण कुछ भी हो और इस व्यवस्था के लाभ कुछ भी हों, व्यवस्था की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :

1. ओ. एस. डी. पदनाम का विचित्र आकर्षण अधिकतर व्यक्तियों को आकर्षित करता है।
2. "पद किसी स्तर का द्योतक नहीं।"

3. मूल विचार के विपरीत, शासन बड़ी सरलता से और बड़ी मात्रा में ओ. एस. डी. नियुक्त करता है।
4. अपने इस विशेष पद पर "अनिश्चित काल" तक बने रहने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।
5. प्रशिक्षण की दृष्टि से यह पद आदर्श एवं उपयुक्त है।
6. यह पद प्रशासनिक और राजनीतिक कारणों से निर्मित किये जाते हैं।

### कार्यालय

(अ) स्वतःचलित कार्य जिन्हें कार्यालय को बिना किसी विशेष निर्देश के भेजा जाता है; और (ब) अधिकारी के निर्देश पर किया गया कार्य। प्रथम वर्ग के कार्य निम्नलिखित हैं:

1. पत्राचार में सन्दर्भित या समस्त प्रपत्रों या टिप्पणियों को उचित रूप में, पृष्ठ-क्रमांक और सीमान्त सन्दर्भ में व्यवस्थित करना।
2. तथ्यों की पुष्टि करना।
3. विधि और नियमों को इंगित करना।
4. विभाग में उपलब्ध अन्य प्रासंगिक तथ्य और आँकड़े प्रदान करना।
5. पूर्व-उदाहरण या निर्णय या नीतियों के प्रपत्र प्रस्तुत प्रपत्रों के प्रसंगों को उद्धृत करना।
6. प्रकरणों के निराकरण के सम्बन्ध में सांविधि या पारम्परिक प्रक्रिया की ओर ध्यान आकर्षित करना।
7. दिन-प्रतिदिन के प्रकरणों या उन प्रकरणों में जहाँ पूर्व-उदाहरण स्थापित हैं, अनुमोदनार्थ प्रस्तुत करना।
8. उचित समय पर मामलों पर आदेश या कार्रवाई हेतु ध्यानाकर्षित करना।

द्वितीय श्रेणी में आने वाले कार्यों की तालिका निम्नवत् है:

1. प्रकरण का परीक्षण करना और यह देखना कि निर्णय के लिए सभी सामग्री प्रस्तुत है।
2. यदि आवश्यक हो तो सूचना का सारणीकरण और संक्षिप्तीकरण करना।
3. आदेशानुसार प्रलेख तैयार करना। कार्यालय अनुभाग (सेक्शन) अधिकारी, सहायक, उच्च श्रेणी और निम्न श्रेणी लिपिक, टाइपिस्ट, आशुलिपिक और चतुर्थ श्रेणी (ग्रेड डी) आदि से मिलकर बनता है।

### केन्द्रीय सचिवालय की कार्यप्रणाली

#### (Working Procedure)

मंत्री को उसकी संसदीय जिम्मेदारियों को निभाने में सहायता देना सचिवालय की कार्य करने की एक निश्चित पद्धति है। महत्वपूर्ण नीति विषयक प्रश्नों पर मंत्री और सचिव दोनों ही विचार करते हैं और तब सचिव एक टिप्पणी तैयार करता है, जिसमें विचार-विमर्श से उत्पन्न निर्णयों का उल्लेख होता है। मंत्री द्वारा स्वीकार कर लिए जाने पर ये निर्णय अन्तिम हो जाते हैं। सचिव का कर्तव्य है कि वह मंत्री के विचारों का समझकर और मन्त्रालयों की सम्पूर्ण नीति का ध्यान में रखकर प्रशासन का कार्य संचालित करे।

सचिवालय में कार्य निष्पादित करने के दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं—(1) कुछ मन्त्रालयों अथवा विभागों में अधिकारी अनुस्थापक व्यवस्था के अनुसार कार्य होता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत अनुभाग अधिकारी प्राप्त पत्रों के परीक्षण आदि का कार्य स्वयं करता है और उसके अधीन कार्मिक वर्ग पर टंकण अभिलेख समन्वय तथा संचालन में सहायता देने का कार्यभार होता है। (2) अधिकांश मन्त्रालयों और विभागों में परम्परागत व्यवस्था के अनुसार कार्य किया जाता है, जिसके अन्तर्गत अधीनस्थ कार्मिक वर्ग प्राप्त पत्रों की परीक्षा करता है, टिप्पणी तैयार करता है और अपने से उच्च स्तर के अधिकारी के समक्ष निर्देशन या निर्देश हेतु प्रस्तुत करता है। मन्त्रालय या विभाग को सम्बोधित किये जाने वाले सभी पक्ष या मामले केन्द्रीय प्राप्ति एवं प्रसार शाखाओं में पहुँचते हैं। यहाँ से उन्हें विभिन्न सम्बन्धित अनुभागों में वितरित किया जाता है।

**अनुभाग का डायरिस्ट (Diarist)** - इन पत्रों को अनुभाग अधिकारी के सम्मुख रखता है। अनुभाग अधिकारी इन्हें दो श्रेणियों में वर्गीकृत करता है-प्राथमिक तथा सहायक (Primary and Subsidiary) नये तथा मौलिक कार्यों से सम्बन्धित पत्र प्राथमिक श्रेणी में रखे जाते हैं और प्राथमिक पत्रों से सम्बन्धित सभी पत्रों को सहायक श्रेणी में लिया जाता है। वर्गीकरण करने के उपरान्त अनुभाग अधिकारी पत्र को सम्बन्धित सहायक के पास भेज देता है। जब कोई पत्र समस्यापरक होता है अथवा उसकी बातों पर व्यक्तिगत ध्यान की आवश्यकता होती है तो अनुभाग अधिकारी या तो स्वयं उसका जबाब देता है अथवा सम्बन्धित सहायक को आवश्यक निर्देश भेज देता है तथा यदि आवश्यक समझे तो उससे जरूरी आदेश प्राप्त कर लेता है। डायरिस्ट (Diarist) को पत्र वापस मिलने पर वह उन्हें रोजनामचा में चढ़ाकर सम्बन्धित सहायकों के पास भेज देता है। ये सहायक उस पत्र की जाँच के लिए सम्बन्धित फाइल, पिछले कागजात, सुची-पत्र, नियम, अधिनियम इत्यादि का अध्ययन करते हैं और अन्त में अपनी टिप्पणी लगाकर अनुभाग अधिकारी को वास लौटा देते हैं।

अनुभाग अधिकारी इस टिप्पणी की ध्यान से परीक्षा करता है और अपनी राय तथा सुझाव के साथ उसे शाखा अधिकारी (अवर सचिव) के पास भेज देता है। शाखा अधिकारी अपने ही दायित्व पर अधिक से अधिक मामलों को निपटा देता है। महत्वपूर्ण मामलों अथवा नीति सम्बन्धी प्रश्नों पर वह उप-सचिव या अन्य उच्च अधिकारी संयुक्त सचिव या सचिव के पास भेज देता है। इन अधिकारियों तक प्रायः वे ही विषय भेजे जाते हैं, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकृति के होते हैं तथा जिनका सम्बन्ध किसी नीति विषयक प्रश्न से होता है। संयुक्त सचिव तथा सचिव यदि आवश्यक समझें तो विषय को मन्त्री के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। ऐसा करते समय वे उसके साथ अपनी संक्षिप्त टिप्पणी भी लगा देते हैं। वहाँ मन्त्री को यह स्वविवेक का अधिकार प्राप्त है कि वह या तो स्वयं उस विषय में आदेश प्रसारित करे अथवा निर्णय के लिए मन्त्रिमण्डल के सम्मुख प्रस्तुत कर दे।

### केन्द्रीय सचिवालय के कार्य

भारतीय राजव्यवस्था एवं प्रशासनिक तंत्र में सचिवालय की भूमिका थिंक टैंक की मानी जाती है जो राजनीतिक मंत्रियों को परामर्श तथा सहायता प्रदान करने का कार्य करता है ताकि शासन की नीतियाँ एवं कानून प्रभावी ढंग से क्रियान्वित हो सकें। सन् 1986 की गणना के अनुसार भारत सरकार लगभग 2000 प्रकार के कार्य सम्पादित करती है। सचिवालय हैण्डबुक के अनुसार केन्द्रीय सचिवालय सामूहिक रूप से या स्वतंत्र रूप से एक मंत्रालय, निम्नांकित कार्य सम्पादित करता है-

### नीति निर्माण एवं संशोधन

सरकार द्वारा निर्मित कानून, अध्यादेश, न्यायिक आदेश, कार्यकारी आदेश, निर्णय तथा समसामयिक प्रयास लोक नीति के निर्माण के आवश्यक रूप हैं। किसी भी देश में कई प्रकार की नीतियाँ हो सकती हैं जो विषयानुसार, आवश्यकतानुसार तथा समस्यानुसार विभाजित की जा सकती हैं। भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना करने, स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराने, शिक्षा का प्रसार करने तथा ऊर्जा एवं उद्योग क्षेत्र को विकसित करने इत्यादि कई प्रकार की नीतियाँ सरकार द्वारा निर्मित तथा संशोधित की जाती रहीं हैं। ये नीतियाँ ही सरकार के कार्यक्रमों, उद्देश्यों तथा इच्छाओं को प्रतिबिम्बित करती हैं। नीतियों के निर्माण में सचिवालय स्थित मंत्रालय अपने विषय एवं कार्य क्षेत्र में सम्बन्धित तथ्य, सूचना एवं तकनीकी परामर्श सरकार को देता है। परिवर्तित परिस्थितियों में यदि नीति की प्रासंगिकता कम हो जाए तो उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन सुझाने का कार्य भी सचिवालय के अधिकारी करते हैं। यद्यपि लोक नीति के निर्माण में राजनीतिक उद्देश्य तथा बाध्यताएँ अभिभावी रहती हैं तथापि सचिवालय नीति निर्माण में अहम् भूमिका निर्वाहित करता है। इन नीतियों का मुख्य ध्येय जनकल्याण, सुरक्षा तथा विकास को सार्थक दिशा तथा गति प्रदान करना होता है ताकि कल्याणकारी राज्य के लक्ष्य प्राप्त किए जा सकें।

### क्षेत्रीय योजनाएँ एवं कार्यक्रम निर्माण

लोक नीति, सरकार के किसी विषय या क्षेत्र के सम्बन्ध में स्थूल प्रारूप होती है जबकि उस नीति के उद्देश्यों की सम्पूर्ति हेतु अनेक कार्यक्रम एवं योजनाएँ निर्मित की जाती हैं। ये योजनाएँ क्षेत्रीय (Sectoral) आधारों यथा-कृषि, स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, ग्राम विकास, उद्योग इत्यादि विषयों में विभक्त होती हैं। प्रत्येक मंत्रालय किसी न किसी क्षेत्र अथवा विषय के अनुसार कार्य सम्पादित करता है। प्रत्येक विभाग अपने कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित विकास योजनाएँ एवं कार्यक्रम सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करता है। संघीय स्तर पर कार्यरत योजना आयोग पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से इन कार्यक्रमों को एकीकृत तथा संगठित स्वरूप

देकर स्वीकृति प्रदान करता है। योजनाओं को निर्मित करने से पूर्व मंत्रालय अपने तकनीकी कार्यकारी संगठनों से विचार-विमर्श करता है, आवश्यक तथ्य एकत्र करता है तथा पक्ष-विपक्ष के सभी आयामों को सूक्ष्मता से जाँचता है। योजना की स्वीकृति के पश्चात् उसके क्रियान्वयन के समय नियंत्रण तथा निर्देशन का कार्य भी सचिवालय करता है।

### **कानूनों, नियमों तथा उपनियमों का निर्माण**

वर्तमान प्रशासनिक संरचनाएँ, मूलतः वैधानिक तथा तार्किक आधारों पर कार्यरत संगठन हैं। प्रशासन का प्रत्येक कृत्य संविधान के मूलभूत प्रावधानों तथा प्रवर्तित कानूनों के अनुसरण में होता है। यह मंत्रालय की दायित्व है कि वह सम्बन्धित विषय में निर्मित तथा प्रवर्तित कानूनों की पालना सुनिश्चित करे। यदि किसी कानून की उपादेयता में कमी आती है अथवा नए कानून की आवश्यकता पड़ती है तो आवश्यक प्रारूप तैयार करना तथा विधि एवं न्याय विभाग से मार्गदर्शन प्राप्त करना पड़ता है। विधानमण्डल द्वारा पारित नए कानून अथवा पूर्व निर्मित कानून में संशोधन के पश्चात् आवश्यक प्रशासनिक नियम और उपनियम बनाए जाते हैं। कानूनों, नियमों, उपनियमों का निर्माण तथा उनका यथोचित क्रियान्वयन करवाना सचिवालय का उत्तरदायित्व है।

### **बजट निर्माण एवं नियंत्रण**

वित्त, आधुनिक प्रशासन तंत्र का रक्त कहलाता है क्योंकि वित्त के अभाव में किसी भी प्रशासनिक कार्य का सम्पादन लगभग असंभव होता है। लॉयड जॉर्ज का कथन है-“जिसको शासन कहते हैं, वह वास्तव में वित्त है।” लोक प्रशासन के विकास के प्रारंभिक चरणों में जब वस्तु विनिमय के स्थान पर मुद्रा का प्रचलन हुआ तभी से वित्त तथा प्रशासन एक-दूसरे के पर्याय हुए होंगे। केन्द्रीय सचिवालय का प्रत्येक मंत्रालय, विभाग तथा अधीनस्थ कार्यालय अपना-अपना बजट अर्थात् वार्षिक आय-व्यय और योजनाओं के लिए पंचवर्षीय बजट तैयार करते हैं। मंत्रालय में पदस्थापित वित्तीय सलाहकार सम्पूर्ण बजट को एकीकृत रूप में आँकता तथा विश्लेषित करता है। आवश्यकतानुसार बजटीय प्रावधानों में संशोधन करके उसे वित्त मंत्रालय को प्रस्तुत किया जाता है। निर्माण की इस प्रक्रिया में वैधानिक प्रावधानों, संगठन के उद्देश्यों, सरकार की नीतियों, जनता की इच्छाओं तथा उपलब्ध संसाधनों का ध्यान रखना आवश्यक होता है। यह दायित्व सचिवालय के अधिकारी-कर्मचारी निभाते हैं ताकि मंत्री को समुचित परामर्श प्रदान किया जा सके। विधानमण्डल द्वारा बजट की स्वीकृति के पश्चात् उसके क्रियान्वयन पर कड़ी नजर रखना भी सचिवालय का कार्य है।

### **नीति एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण**

सचिवालय द्वारा सरकार को प्रदत्त परामर्श के पश्चात् अनुमोदित नीति तथा कार्यक्रम का अधीनस्थ कार्यालयों एवं अन्य सम्बद्ध संगठनों द्वारा निष्पादन किया जाता है, जिस पर सचिवालय द्वारा नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण किया जाता है। प्रत्येक परियोजना की प्रगति का प्रबोधन (Monitoring) तथा मूल्यांकन करना भी मंत्रालय का दायित्व है। पर्यवेक्षण का आशय केवल ऊपरी निरीक्षण से नहीं बल्कि अधीनस्थ को आवश्यक मार्गदर्शन एवं सहायता प्रदान करना है ताकि कार्य, अधिक कुशलता एवं उद्देश्यपूर्ण ढंग से पूर्ण हो सके। प्रत्येक कार्यालय अपने स्तर पर सम्पादित हो रहे कार्यक्रमों, योजनाओं तथा परियोजनाओं का मासिक, त्रैमासिक, छमाही अथवा वार्षिक प्रगति-विवरण मंत्रालय को प्रेषित करता है। इसके अतिरिक्त आवश्यक दौरों, निर्देशों, परिपत्रों तथा संशोधन-सुझावों के माध्यम से सचिवालय पर्यवेक्षण करता है। संसद में उठाए जाने वाले प्रश्नों, प्रेस की कतरनों, न्यायालयी निर्णयों तथा जनसाधारण से प्राप्त शिकायतों के आधार पर कार्यक्रमों में परिवर्तन भी किया जाता है।

### **समन्वय करना**

दो या दो से अधिक व्यक्तियों या संगठनों के मध्य आपसी सकारात्मक सामंजस्य स्थापित करना संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नितांत आवश्यक है। मूने के अनुसार समन्वय संगठन का प्रथम नियम है तथा शेष नियम इसी के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि समन्वय के अभाव में सम्पूर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो सकती है। वर्तमान प्रशासनिक संस्थाएँ विस्तृत, जटिल तथा विशेषज्ञतायुक्त संगठन हैं। ऐसी स्थिति में आपसी असहमति, संशय, संघर्ष तथा असहयोग की समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। केन्द्रीय सचिवालय का यह दायित्व है कि वह सभी आवश्यक स्तरों पर समन्वय स्थापित करे ताकि प्रशासनिक कार्य भलीभाँति संचालित हो सकें। सामान्यतः केन्द्रीय सचिवालय निम्नांकित स्तरों पर समन्वय करता है-



- 1 विदेशी अभिकरणों एवं भारत सरकार के संगठनों के मध्य
- 2 राज्य सरकार एवं भारत सरकार के संगठनों के मध्य
- 3 स्वयंसेवी संगठनों तथा केन्द्रीय मंत्रालय के मध्य
- 4 एक ही विभाग के विभिन्न कार्यकारी संगठनों के मध्य
- 5 राजनीतिक दलों, दबाव समूहों तथा भारत सरकार के संगठनों के मध्य
- 6 आम जनता, प्रेस तथा केन्द्रीय मंत्रालयों के मध्य
- 7 योजना आयोग, मंत्रिमंडल सचिवालय, प्रधानमंत्री कार्यालय तथा अन्य मंत्रालयों के मध्य
- 8 संवैधानिक निकायों, स्वायत्तशासी संगठनों तथा भारत सरकार के मंत्रालयों के मध्य।

सारांशतः किसी भी स्तर पर व्यवधान उत्पन्न होने पर केन्द्रीय सचिवालय की यह भूमिका बन जाती है कि वह तत्काल समन्वय स्थापित करने में सहयोग करे।

### **संगठनात्मक कार्यकुशलता में वृद्धि**

संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नाना प्रकार के संसाधनों यथा-मशीन, धन, प्रक्रिया, कच्ची सामग्री तथा मानव श्रमशक्ति की आवश्यकता होती है। संगठन के इन संसाधनों में सर्वप्रमुख है-मानव संसाधन अर्थात् कार्मिकगण। कार्मिकों की भर्ती, वर्गीकरण, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतनमान, सेवा शर्तों तथा अन्य आनुषंगिक लाभों के माध्यम से उन्हें अभिप्रेरित तथा प्रतिबद्ध करने का प्रयास किया जाता है ताकि संगठन में कार्यकुशलता बढ़े। बहुधा मानव संसाधन विकास के अतिरिक्त संगठन के नियमों, कानूनों, संरचना तथा प्रक्रियाओं में भी संशोधन-परिवर्तन किया जाता है ताकि कार्यकुशलता में अभिवृद्धि हो सके। प्रत्येक मंत्रालय अपने अधीनस्थ विभागों और कार्यालयों में कार्यरत कार्मिकों के माध्यम से संगठनात्मक कुशलता का स्तर उच्च बनाने का निरन्तर प्रयास करता है।

### **मंत्रियों को सहायता एवं परामर्श प्रदान करना**

वस्तुतः सचिवालय का मुख्य कार्य सम्बन्धित मंत्रालय के मंत्रियों को प्रशासनिक सहायता तथा परामर्श प्रदान करता होता है क्योंकि राजनीतिक मंत्री समय तथा विशेषज्ञता की कमी के कारण मंत्रालय के कार्य निष्पादन में स्वयं को पूर्ण सक्षम नहीं पाते हैं अतः सचिवालय में पदस्थापित सचिव तथा अन्य कार्मिक मंत्री महोदय को आवश्यक सूचनाओं, तथ्यों, फाइलों, कानूनों और पूर्व निर्णयों के माध्यम से परामर्श प्रदान करते हैं। प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा प्रदत्त परामर्श को स्वीकारना या अस्वीकारना पूर्णतया मंत्री की इच्छा पर निर्भर करता है तथापि सचिवालयी सहायता मंत्री के निर्णय को व्यापक रूप से प्रभावित करती है।

### **तथ्य एवं सूचना एकत्रण**

तथ्यों पर आधारित क्रमबद्ध ज्ञान, विज्ञान कहलाता है। चूँकि लोक प्रशासन की कार्यप्रणाली भी वैज्ञानिक पद्धतियों पर आधारित है अतः प्रशासन का प्रत्येक निर्णय तथ्य, सूचना तथा आँकड़ों पर निर्भर करता है। सचिवालय अपने संलग्न, अधीनस्थ एवं अन्य संगठनों के माध्यम से आवश्यक सूचना-सामग्री एकत्र करवाता है ताकि विश्वसनीय एवं व्यावहारिक नीति तथा योजनाएँ निर्मित हो सकें। सूचना क्रांति के वर्तमान युग में बिना सूचना किसी प्रकरण पर निर्णय करना निरर्थक-सा प्रतीत होता है। इसीलिए केन्द्रीय सचिवालय के सभी मंत्रालय, राज्यों के सचिवालय तथा जिला प्रशासन, योजना आयोग के निकनेट (NICNET) से जुड़े हुए हैं।

### **आलोचना**

स्वतन्त्र भारत की विशेष समस्याओं के संदर्भ में संघीय सचिवालय का रूप पर्याप्त बदल गया है। इनके संगठन का आकार तथा कार्यों की मात्रा बढ़ गयी है। फलस्वरूप इसकी कार्यवाही की गति धीमी होने के साथ-साथ अनेक असम्बद्ध बातों को महत्त्व दिया जाने लगा है। सेवीवर्ग की कार्यकुशलता अत्यन्त कम हो गई है। संक्षेप में सचिवालय के दोष निम्नलिखित हैं-

- (1) सचिवालय में सेवी वर्ग की संख्या अधिक बढ़ गई है तथा यह भीड़-भाड़ युक्त संगठन बन गया है।
- (2) यह जन-सुविधा को ध्यान में रखकर तत्परता से कार्य नहीं करता है।
- (3) यह हमेशा गैर-महत्त्वपूर्ण कार्यों से दबा रहता है। प्रशासनिक अनौपचारिकता का निर्वाह करते हुए उच्च उच्चाधिकारियों को महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए समय नहीं मिल पाता है।
- (4) दिन-प्रतिदिन के कार्यों में राजनीतिक हस्तक्षेप इतना बढ़ गया है कि अनेक वरिष्ठ कर्मचारियों को निराशा और क्षोभ होता है।
- (5) यह विभिन्न योजनाओं पर स्वीकृति प्रदान न करके और प्रक्रियाओं के कठोर पालन पर जोर न देकर उन्हें क्रियान्वित होने नहीं देता।
- (6) सचिवालय की अधिकांश कार्यवाही अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा सम्पन्न की जाती है और उच्च अधिकारी सहज ही उनके कार्यों को स्वीकार कर लेते हैं।
- (7) कार्य के गलत तरीके अपनाये जाते हैं, कागजों को अनेक स्तरों से होकर निकलना पड़ता है तथा उपयुक्त प्रत्यायोजन नहीं किया जाता है।
- (8) नियोजन तथा वित्त विभाग के कार्यों का अतिराव व दोहराव होता है।
- (9) सचिवालय के अधिकारियों का चयन करते समय पर्याप्त सावधानी नहीं बरती जाती है। इन अधिकारियों का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है।
- (10) राष्ट्रीय चरित्र पर व्याप्त जातिवाद, वर्गवाद या भाई भतीजावाद के कारण पक्षपात पनपता है तथा अधीनस्थ कर्मचारी उच्च अधिकारी की भाँति व्यवहार करने लगते हैं।

### सुधार के लिए सुझाव

सचिवालय की कार्यवाही एवं संगठन में सुधार किया जाना अत्यन्त अनिवार्य है। इसके कार्यकर्ताओं के निषेधात्मक दृष्टिकोण को विधेयात्मक बनाना जरूरी है ताकि वे अपने कार्य भली-भाँति सम्पन्न कर सकें तथा अपने आपको समयानुसार बदल सकें। इस कार्य द्वारा सरकार को कार्यकुशल तथा राष्ट्र को शक्तिशाली और सम्पन्न बनाया जा सकता है। केन्द्रीय सचिवालय में सुधार के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं-

- (1) **मध्यवर्तियों की समाप्ति**-सरकारी यन्त्र का पुनर्गठन करना अनिवार्य है क्योंकि इसमें मध्यस्थों की अधिकता के कारण कार्य में देरी होती है। सचिवालय द्वारा योजनायें बनायी जाती हैं और नीचे के स्टाफ द्वारा इन्हें क्रियान्वित किया जाता है। शेष कार्यकर्ता अनावश्यक देरी के अतिरिक्त कुछ नहीं करते। अतः यह उचित है कि इन्हें कम किया जाये तथा निदेशकों के पद समाप्त कर दिये जायें। ऐसा होने पर योजनाओं की क्रियान्विति में कम से कम देरी होगी।
- (2) **स्थायी नीति शाखाओं की स्थापना**-एक अन्य सुझाव दिया जाता है कि प्रत्येक विभाग में नीति सम्बन्धी एक स्थायी शाखा रखी जाये ताकि रचनात्मक कार्य में अनुभवी व्यक्ति भाग ले सकें और गैर-अनुभवियों द्वारा उसे थोपा न जाये।
- (3) **विभागाध्यक्षों को अधिक शक्तियाँ**-विभाग के अध्यक्षों को अधिक शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए ताकि इन्हें प्रत्येक कार्य पर सरकारी अनुमति प्राप्त न करनी पड़े। साथ ही उन्हें वित्तीय तथा सेवी-वर्ग प्रशासन की दृष्टि से भी अधिक शक्तियाँ दी जानी चाहिए ताकि अधीनस्थ स्टाफ पर वाँछित नियन्त्रण रख सकें।
- (4) **स्थायी शोध शाखा**-एक स्थायी शोध शाखा बनायी जाए तो प्रशासनिक यन्त्र को अधिक कार्यकुशल बनाने की दृष्टि से अध्ययन करती रहे। संगठन एवं प्रक्रिया की भाँति इसका गठन किया जाये। प्रत्येक विभाग में इसकी एक सैल रहे जो उस विभाग विशेष में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील रहे।
- (5) **गलत नियम बदले जावें**-जिन विभागों में आवश्यकता से अधिक या कम कर्मचारी हैं उनको सम्भाला जाये तथा अप्रशिक्षित, अयोग्य, सम्मान की गलत भावनायुक्त तथा नियमों के अन्धभक्त कर्मचारियों को बदला जाये। सेवीवर्ग को नये दायित्वों का महत्त्व बताया जाय। कार्य में देरी तथा अनियमितता बरतने वालों का दायित्व स्पष्ट करके उन्हें दण्डित किया जाए।

- (6) **स्थानगत दूरियों में कमी**-सचिवालय के कार्यों में कुशलता लाने के लिए विभागाध्यक्ष, सचिव तथा मंत्री के मध्य स्थानगत दूरियाँ कम की जाएँ। सचिव तथा विभागाध्यक्ष के कार्यालय निकटवर्ती कक्ष में हों तथा मंत्री भी अधिक दूर न रहे।
- (7) **क्रियान्विति में सुधार**-नीतियों तथा नियमों को सही तरीके से उपयुक्त समय में क्रियान्वित करने की व्यवस्था की जाए। क्रियान्विति के समय प्रायः मूल उद्देश्य की अवहेलना करते हुए व्यक्तिगत स्वार्थों को ध्यान में रखा जाता है। इस पर रोक लगाई जाये, जो अधिकी नियमों को पढ़ने की परवाह नहीं करते और लिपिकों को मनमानी व्याख्या के लिए छोड़ देते हैं, उन्हें दण्डित किया जाये।
- (8) **विशेषज्ञों का सम्मान**-प्रशासनिक विभागों की अध्यक्षता विशेषज्ञ अधिकारियों द्वारा की जानी चाहिए। प्रायः होता यह है कि गैर अनुभवी भारतीय प्रशासनिक सेवा के युवा अधिकारियों को विभागाध्यक्ष बना दिया जाता है और दो-तीन वर्ष के अन्तर पर उन्हें एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानान्तरित कर दिया जाता है, यह गलत है। तकनीकी विभागों का संचालन हमेशा विशेषज्ञों को सौंपा जाना चाहिए और सामान्यज्ञों का स्थान केवल नियोजन, समन्वय, मण्डल आयोग इत्यादि में ही शीर्ष पर रहें, शेष कार्यों में उन्हें सहयोगी बनाया जावे।
- अशोक चन्दा के शब्दों में, "केन्द्रीय सचिवालय संघीय सरकार का प्रमुख कार्यपालक यन्त्र है और केन्द्रीय विषयों के प्रशासन के प्रति उत्तरदायी होता है। राष्ट्रीय महत्व के विषय में समन्वय तथा विदेश, आर्थिक और वित्तीय नीतियों में सहायता प्रदान करता है।"

## अध्याय-10

# प्रधानमंत्री कार्यालय

## (Prime Ministers Office)

प्रधानमंत्री को सचिवालयी सहायता प्रदान करने के लिए स्वतंत्रता के तुरन्त पश्चात् प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'प्रधानमंत्री सचिवालय' की स्थापना करवाई थी जो आज प्रधानमंत्री कार्यालय या पी. एम. ओ. कहलाता है। स्वतंत्रता से पूर्व गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद् पी. एम. ओ. के कार्य सम्पादित करती थी। जिस प्रकार राज्यों में मुख्यमंत्री कार्यालय शासन-सत्ता का केन्द्र बनता जा रहा है उसी प्रकार संघीय स्तर पर पी. एम. ओ. की स्थिति बन रही है। भारत सरकार के 'कार्यविधि नियम, 1961' के अन्तर्गत पी. एम. ओ. को एक विभाग का दर्जा प्राप्त है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में संसदीय शासन-व्यवस्था को अपनाया गया है। राष्ट्रपति शासन-व्यवस्था का प्रधान है। शासन के सारे कार्य उसी के नाम से सम्पादित किये जाते हैं। उसे शासन कार्यों में सहायता तथा सलाह देने के लिए प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मन्त्रिपरिषद् की व्यवस्था होती है। व्यवहार में, प्रधानमंत्री ही राष्ट्रपति की सारी शक्तियों का उपभोग करता है अतः प्रधानमंत्री को ही देश का 'सर्वोच्च' या 'वास्तविक शासक' माना जाता है। उसे सारे देश में सबसे शक्तिशाली संस्था माना जाता है। उसे देश का मुख्य प्रशासक, राजनीतिक शासक, मन्त्रिमण्डल का निर्माता, पुनर्गठनकर्ता, समन्वयकर्ता तथा नियन्त्रणकर्ता, राष्ट्रीय नीतियों का निर्माता तथा आधिकारिक प्रवक्ता, सर्वोच्च मुख्यमंत्री, विदेश नीति का निर्माता तथा संचालनकर्ता और देश की प्रशासनिक व्यवस्था का केन्द्र-बिन्दु माना जाता है। ऐसी शक्तिशाली संस्था से सम्बद्ध होने के कारण प्रधानमंत्री सचिवालय की शक्ति और भूमिका स्वाभाविक रूप से ही महत्वपूर्ण बन जाती है। वर्तमान में प्रधानमंत्री सचिवालय की भूमिका उत्तरोत्तर रूप से बढ़ती जा रही है।

### प्रधानमंत्री सचिवालय का विकास

प्रधानमंत्री सचिवालय की स्थापना और इसके विकास का भी एक इतिहास रहा है। विभिन्न प्रधानमन्त्रियों के शासनकाल में इस सचिवालय का स्वरूप विकसित होता गया। 15 अगस्त, 1947 को भारत के गणराज्य बनने पर प्रधानमंत्री सचिवालय की स्थापना की गई। इस सचिवालय का निर्माण उन समस्त कार्यों के सम्पादन करने के उद्देश्य से किया गया, जिन्हें 15 अगस्त, 1947 से पूर्व गवर्नर-जनरल के सचिव (व्यक्तिगत) द्वारा किया जाता था। स्मरणीय है प्रधानमंत्री ने इसी तिथि से वे सभी कार्य अपने हाथ में ले लिए जो 15 अगस्त, 1947 से पूर्व गवर्नर-जनरल सरकार की कार्यपालिका का प्रमुख के रूप में किया करता था। आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है जिससे अनेक विशेषज्ञ सम्बद्ध हैं।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रधानमन्त्रित्व काल में इस सचिवालय का प्रारम्भिक विकास हुआ। उनके समय में इस सचिवालय की शक्तियों के सीमित होने के कारण इसकी शक्ति तथा भूमिका भी कमजोर थी लेकिन पण्डित नेहरू द्वारा भारतीय सिविल सेवा के एक वरिष्ठ तथा योग्य प्रशासनिक अधिकारी श्री आर्यंगर को अपने निजी सहायक के रूप में नियुक्त करने के साथ ही प्रधानमंत्री सचिवालय की शक्ति तथा स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। उन्होंने अपने व्यक्तित्व तथा प्रशासनिक योग्यता से मन्त्रिमण्डल की बैठकों में भाग लेना प्रारम्भ किया। इससे प्रधानमंत्री के निजी सहायक का स्तर बढ़ गया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री सचिवालय के अनुरूप भारत में भी प्रधानमंत्री के सचिवालय का पुनर्गठन किया गया। प्रधानमंत्री के निजी सहायक के पद के भारत सरकार के संयुक्त सचिव के पद के समकक्ष कर दिया गया। लेकिन पण्डित जवाहरलाल नेहरू के कार्यकाल में प्रधानमंत्री सचिवालय की भूमिका सीमित ही रही।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के देहावसान के बाद लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने। उनके कार्यकाल में 'प्रधानमंत्री सचिवालय' की भूमिका को नूतन आयाम प्राप्त हुए और उसकी शक्तियों में असाधारण वृद्धि हुई। उन्होंने लक्ष्मीकान्त झा जैसे वरिष्ठ सदस्य को अपना सचिव बनाया। श्री झा जैसे वरिष्ठ सदस्य की नियुक्ति ने प्रधानमंत्री सचिवालय की शक्तियों में अनायास ही वृद्धि कर दी। प्रधानमंत्री सचिवालय की नीति निर्माण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका हो गई। प्रधानमंत्री के सचिव के रूप में लक्ष्मीकान्त झा की भूमिका बहुत शक्तिशाली हो गई और उन्होंने नीतिगत मामलों में भी अपनी भूमिका का निर्वाह करना प्रारम्भ कर दिया। यथार्थ में, शास्त्री के कार्य-काल मकें ही प्रधानमंत्री सचिवालय की संस्थागत और प्रक्रियागत स्थिति उभर कर सामने आई। अब इसका अध्यक्ष के रूप में सचिव स्तर के प्रशासनिक अधिकारी की नियुक्ति की जाने लगी और इस कार्यालय की गतिविधियों में नियमितता आ गई। इस कार्यालय के कर्मचारी-वर्ग की संख्या में वृद्धि हुई और इसके बजट में विस्तार हुआ। श्री लालबहादुर शास्त्री के कार्यकाल में प्रधानमंत्री सचिवालय की स्थिति और भूमिका आलोचला का विषय बनी।

श्री शास्त्री के देहावसान के बाद श्रीमती इन्दिरा गाँधी इस देश की प्रधानमंत्री बनीं। प्रारम्भ में उनकी स्थिति कमजोर थी और उस समय लक्ष्मीकान्त झा प्रधानमंत्री के सचिव थे। उनकी निर्णय प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका थी। श्री झा के बाद प्रमुख अर्थशास्त्री पी. एन. हक्सर प्रधानमंत्री श्रीमती गाँधी के शक्तिशाली सचिव हुए, जिनके कार्यकाल में प्रधानमंत्री सचिवालय की शक्ति में भारी वृद्धि हुई। प्रधानमंत्री प्रक्रिया में श्री हक्सर की भूमिका बहुत बढ़ गई। श्री हक्सर के बाद पी. एन. धर श्रीमती गाँधी के सचिव बने और उनके काल में इस सचिवालय ने शक्तिशाली स्थान प्राप्त कर लिया।

इस तरह से इस सचिवालय को श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्रधानमंत्रित्व काल में असाधारण महत्व प्राप्त हो गया। उनके 1977 तक के प्रधानमंत्रित्वकाल में इसने शासन का शीर्षस्थ स्थान प्राप्त कर लिया। इस सचिवालय द्वारा इस काल में भारत के रूप में कार्य किया गया और सभी शासकिय विभागों की स्थिति इसके समक्ष नगण्य हो गई थी। सन् 1977 में मोरारजी दसाई के नेतृत्व में जनता शासन ने इसके अत्यधिक बढ़े हुए महत्व को कम करने के लिए कार्यवाही की और इसका नाम बदल कर 'प्रधानमंत्री का कार्यालय' (Prime Minister's Office) कर दिया। श्रीमती इन्दिरा गाँधी 1980 में पुनः सत्तारूढ़ हुई प्रधानमंत्री का कार्यालय पहले जैसा प्रबल नहीं हो पाया। राजीव गाँधी के शासनकाल में प्रधानमंत्री सचिवालय की महत्वपूर्ण भूमिका बरकरार रही। बाद के प्रधानमंत्रियों विश्वनाथ प्रतापसिंह और चन्द्रशेखर का कार्यकाल इतना सीमित रहा कि इस सचिवालय को प्रभावशाली भूमिका के निर्वाह करने का अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ।

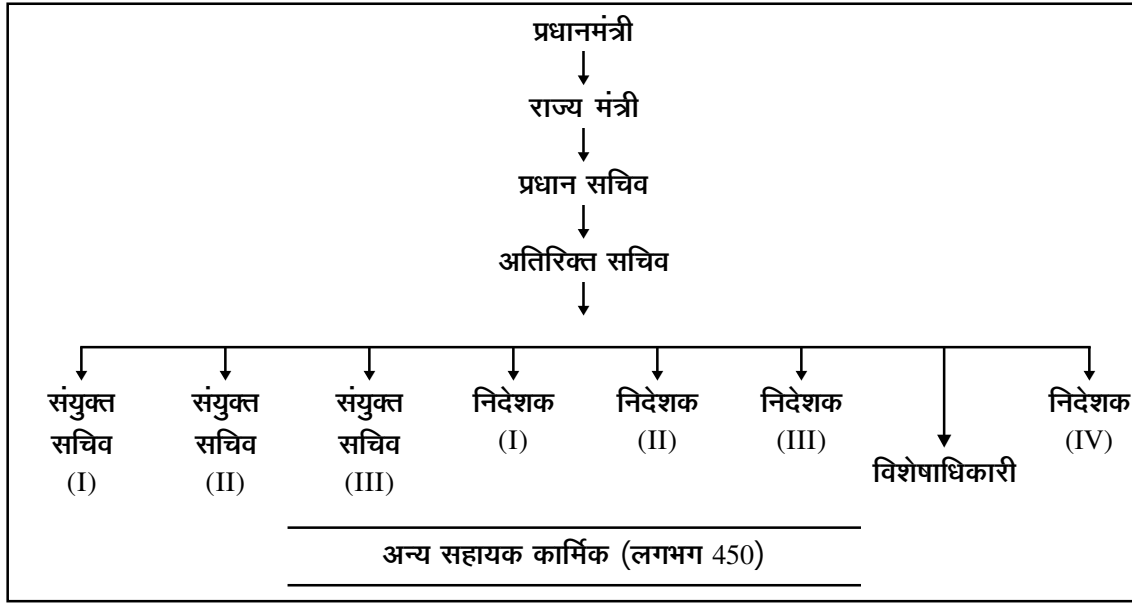
पी. वी. नरसिंहराव के समय प्रधानमंत्री सचिवालय की स्थिति अधिक सुदृढ़ नहीं रही। श्री एच. डी. देवेगौड़ा जिस तरह की संविद सरकार का नेतृत्व कर रहे हैं, उसको देखते हुए प्रधानमंत्री सचिवालय की भूमिका सशक्त नहीं हो सकती है। अनेक न्यायिक प्रकरणों में जांच प्रधानमंत्री के अधीन सचिवालय यथा सी. बी. आई. आदि से हो रही है जिसमें प्रधानमंत्री की दखल का आरोप-प्रत्यारोप, न्यायालयों में अपने प्रभाव का उपयोग आदि का आरोप विचाराधीन है।

## संगठन

प्रधानमंत्री कार्यालय का प्रत्यक्ष नियंत्रण स्वयं प्रधानमंत्री द्वारा किया जाता है तथापि कई बार राज्य मंत्री या उप मंत्री का पद भी इस कार्यालय में सजित कर दिया जाता है जैसा कि पी. वी. नरसिंहराव सरकार ने भुवनेश चतुर्वेदी तथा बाद में असलम शेर खॉ को पी. एम. ओ. में राज्य मंत्री का कार्यभार दिया था। इसी प्रकार यह व्यवस्था प्रायः अल्पकालीन ही रही है।

प्रशासनिक स्तर पर पी. एम. ओ. का एक प्रधान सचिव होता है। सन् 1947 में पंडित नेहरू ने एच. वी. आर. आयंगर (आई. सी. एस.) को प्रधान निजी सचिव नियुक्त किया। उसके पश्चात् लाल बहादुर शास्त्री के प्रधानमंत्री काल में एल. के. झा प्रधान सचिव बने, जिन्होंने पी. एम. ओ. को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संगठन में परिवर्तित किया। इन्दिरा गाँधी के शासनकाल में पी. एन. हक्सर, पी. सी. अलैकजेण्डर तथा पी. एन. धर, राजीव गाँधी के समय सरला ग्रेवाल तथा बी. जी. देशमुख एवं पी. वी. नरसिंहराव के काल में पी. एम. ओ. का सचिव प्रधानमंत्री का अत्यन्त विश्वासपात्र अधिकारी होने के कारण नीति निर्माण तथा अन्य शासकीय कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रधान सचिव के पद पर सेवारत या सेवानिवृत्त आई. ए. एस. अधिकारी अथवा किसी अन्य की नियुक्ति प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है।

### प्रधानमंत्री कार्यालय का संगठन



प्रधान सचिव की सहायतार्थ एक अतिरिक्त सचिव, तीन संयुक्त सचिव, चार निदेशक तथा एक विशेषाधिकारी कार्यरत है जो क्रमशः कार्मिक एवं नीति विषयक मामले, विधि एवं न्याय, रेलवे, परिवहन, संचार, विशेष तथा अणुशक्ति, ग्रामीण विकास, गृह मंत्रालय समन्वय, आपातकालीन समस्याएँ तथा उत्तरी-पूर्वी राज्यों के प्रकरणों में प्रमुख सचिव की सहायता करते हैं। इन अधिकारियों को प्रदत्त कार्य इस बात पर निर्भर करता है कि सत्तारूढ़ प्रधानमंत्री के पास कौन से मंत्रालय हैं। विशेषाधिकारी (O.S.D.) पद पर नियुक्ति प्रायः राजनीतिक तथा मित्रता लाभों के लिए की जाती है। इन्द्र कुमार गुजराल ने जब प्रो. भवानी सेन गुप्ता को पी. एम. ओ. में विशेषाधिकारी नियुक्त किया तो लोकसभा में भारी हंगामा हुआ क्योंकि प्रो. गुप्ता भारत के परमाणु बम निर्माण के विरोधी, सी.टी.बी.टी. के समर्थक तथा सियाचिन के मामले में पाकिस्तान के समर्थक माने जाते हैं। इस विवाद के चलते प्रो. गुप्ता को दो दिन में ही त्यागपत्र देना पड़ा। पी.एम.ओ. में अन्य अधिकारी-कर्मचारी आवश्यकता के अनुसार नियुक्त किए जाते हैं। गृह मंत्रालय के अधीन रहे 'जम्मू-कश्मीर विभाग' को एक नवम्बर, 1994 से प्रधानमंत्री के अधीन कर दिए जाने के कारण यह कार्यालय इससे सम्बन्धित कार्य भी संभालता था किन्तु मई, 1998 में जम्मू-कश्मीर विभाग पुनः गृह मंत्रालय को सौंप दिया गया। आवश्यकतानुसार अन्य अनुभाग या प्रकोष्ठ भी प्रधानमंत्री कार्यालय में स्थापित किए जा सकते हैं। जैसे-अटल बिहारी वाजपेयी कार्यालय में 'अयोध्या-प्रकरण' पथक से बनाया हुआ है।

#### प्रधानमंत्री कार्यालय (सचिवालय) के कार्य (Functions)

इस कार्यालय (सचिवालय) का प्रमुख कार्य प्रधानमंत्री को उसके समस्त कार्यों एवं दायित्वों के निर्वहन में सचिवीय सहायता प्रदान करना है। देश के सम्मुख सामान्य परिस्थितियाँ हों अथवा आपातकालीन, प्रधानमंत्री को वास्तविक मुख्य कार्यपालिका के रूप में संघीय सरकार के समस्त प्रशासनिक एवं अन्य दायित्वों को पूर्ण करने में यह कार्यालय कदम-कदम पर सहायता करता है। प्रधानमंत्री कार्यालय प्रधानमंत्री के अतिरिक्त हाथ, आँख और कान का कार्य करता है। यह विभिन्न मामलों से सम्बन्धित सूचना, जानकारियाँ, आँकड़े, सामग्री एकत्रित कर उन पर गम्भीरता से विचार करता है और आवश्यकतानुसार निर्णय लेने के लिए प्रधानमंत्री को सुझाव देता है। इस प्रकार यह कार्यालय (सचिवालय) प्रधानमंत्री के लिए अतिरिक्त मस्तिष्क का कार्य करता है।

प्रधानमंत्री कार्यालय (सचिवालय) के प्रमुख कार्यों को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर अधिक स्पष्ट किया जा सकता है-

1. 'कार्य व्यापार नियम' सम्बन्धी कार्य- 'कार्य व्यापार नियमों' के तहत प्रधानमंत्री के अधीन केन्द्रीय सरकार के कुछ

विभाग और मंत्रालयों का प्रत्यक्ष दायित्व होता है। इन विभागों और मंत्रालयों के कुशल संचालन का दायित्व प्रधानमंत्री के कन्धों पर होता है। इन विभागों में आन्तरिक सहयोग एवं समन्वय बनाए रखने, कुशल और प्रभावी प्रशासनिक संचालन आदि में यह कार्यालय प्रधानमंत्री को सचिवालय सहायता प्रदान करता है।

2. **प्रधानमंत्री को दायित्वों के पूर्ण करने में सहायता देना** - भारत देश में संसदात्मक व्यवस्था के तहत भारत का प्रधानमंत्री वास्तविक राजनैतिक कार्यपालिका (सरकार) का मुखिया होता है। इस रूप में प्रधानमंत्री को केन्द्रीय सरकार के समस्त विभागों और मंत्रालयों के मध्य सहयोग और समन्वय बनाए रखना पड़ता है। यही नहीं, उसे समस्त राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों से भी सम्पर्क बनाए रखना पड़ता है। समस्त प्रशासनिक संस्थाएँ प्रधानमंत्री के कुशल प्रशासनिक नेतृत्व की अपेक्षा रखती हैं। केन्द्रीय सरकार की श्रेष्ठ नीतियों के निर्माण और कुशल संचालन के दायित्वों के निर्वाह में यह कार्यालय प्रधानमंत्री कार्यालय को सहायता देता है।
3. **योजना सम्बन्धी कार्यों में सहायता देना**-प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को योजना सम्बन्धी कार्यों के कुशल निर्वाह के लिए भी सचिवीय सहायता उपलब्ध कराता है। प्रधानमंत्री देश के 'योजना आयोग' तथा 'राष्ट्रीय विकास परिषद्' का भी अध्यक्ष होता है। यह संस्थान देश के चहुँमुखी विकास के लिए योजनाओं का निर्माण और मूल्यांकन करती है। ऐसी स्थिति में योजनाओं के निर्माण और मूल्यांकन में भी प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को सचिवीय सहायता उपलब्ध कराता है।
4. **प्राकृतिक आपदाओं के समय सहायता देना**-भारत भौगोलिक दृष्टि से विविधता वाला देश है, जिसमें आए दिन देश के किसी क्षेत्र में बाढ़, अकाल, सूखा, भूकम्प, महामारी आदि अनेक प्राकृतिक आपदाएँ होती रहती हैं। इन आपदाओं से निपटने तथा जनता को तुरन्त राहत प्रदान करने के लिए 'प्रधानमंत्री राहत कोष' का निर्माण किया गया है, जिसका संचालन प्रधानमंत्री कार्यालय द्वारा ही किया जाता है। इस कोष से समस्त राज्यों या नागरिकों को दी गई सहायता का पूरा लेखा-जोखा रखने का दायित्व इसी कार्यालय का होता है।
5. **जनसम्पर्क सम्बन्धी कार्य**-आज का युग जनसम्पर्क का युग है। सरकार के प्रमुख होने की हैसियत से प्रधानमंत्री को जनसम्पर्क बनाए रखना अति आवश्यक है। प्रधानमंत्री अपने कार्यालय के माध्यम से प्रधानमंत्री को जनसम्पर्क बनाए रखना अति आवश्यक है। प्रधानमंत्री अपने कार्यालय के माध्यम से निरन्तर प्रेस, रेडियो, दूरदर्शन आदि संचार माध्यमों से जनसम्पर्क बनाए रखता है। यह जनसम्पर्क बनाए रखने का कार्य प्रधानमंत्री कार्यालय करता है। इसके अतिरिक्त जनता द्वारा प्रधानमंत्री को व्यक्तिगत तौर पर प्राप्त अनेक आवेदनों, शिकायतों, शिकायतों, अनुरोधों का भी संतोषप्रद उत्तर देना प्रधानमंत्री कार्यालय का अनिवार्य कार्य है। इस प्रकार प्रधानमंत्री के जनसम्पर्क सम्बन्धी कार्यों को भी प्रधानमंत्री कार्यालय पूर्ण करता है।
6. **अन्य कार्य**-वे समस्त कार्य जो किसी मंत्रालय अथवा विभाग को नहीं सौंपे गये हैं प्रधानमंत्री कार्यालय (सचिवालय) के क्षेत्राधिकार में आ जाते हैं। यह कार्यालय प्रधानमंत्री के आवयक सरकारी कागजात तैयार करके उनके सधारण के लिए भी जिम्मेदार है। प्रधानमंत्री द्वारा माँगी गई सूचना, आँकड़े एवं सामग्री उपलब्ध कराता है। प्रधानमंत्री के अतिथियों का स्वागत-सत्कार करना भी इस कार्यालय का कार्य है। प्रधानमंत्री द्वारा समय-समय पर दिए जाने वाले भाषण तैयार करना भी इस कार्यालय का ही कार्य है। इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री की देश-विदेश यात्राओं के विस्तृत कार्यक्रम भी यही कार्यालय तैयार करता है।

प्रधानमंत्री कार्यालय (सचिवालय) के उपरोक्त महत्त्वपूर्ण कार्यों को देखकर समय-समय पर अनेक विद्वानों ने इसे 'सरकार का लघु स्वरूप' तथा 'लघु मंत्रिमण्डल' तक कहा है। प्रधानमंत्री कार्यालय के बढ़ते महत्त्व के कारण कैबिनेट सचिवालय तथा केन्द्रीय सचिवालय का महत्त्व कम हो गया है।

### **प्रधानमंत्री कार्यालय (सचिवालय) की बदलती भूमिका (महत्त्व)**

प्रधानमंत्री कार्यालय (सचिवालय) की भूमिका सदैव देश के प्रशासन में एक-सी नहीं रही है। समय के साथ-साथ इसकी भूमिका (महत्त्व) में भी परिवर्तन होते रहे हैं। इस कार्यालय की भूमिका पर इसमें रहे सचिवों की पृष्ठभूमि, व्यक्तित्व,

महत्वाकांक्षा, कार्यक्षमता, कार्यशैली और प्रधानमंत्री द्वारा उन पर किए गए विश्वास का भी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा है। प्रधानमंत्री कार्यालय (सचिवालय) की बदलती भूमिका (महत्त्व) का वर्णन काल-क्रम के अनुसार निम्नांकित प्रकार से रहा है-

**पं. जवाहरलाल नेहरू का शासन काल (15 अगस्त 1947-1964)** - नेहरू जी स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे। उनके शासन काल में प्रधानमंत्री सचिवालय की भूमिका प्रधानमंत्री को केवल सचिवीय सहायता देने तक ही सीमित थी। नेहरू के काल में प्रधानमंत्री सचिवालय की भूमिका ज्यादा प्रभावी नहीं थी क्योंकि नेहरू जी ने अपने काल में कैबिनेट सचिवालय को अधिक महत्त्व दिया।

**लालबहादुर शास्त्री का शासन काल (1964 से 1966)** - नेहरू जी के बाद शास्त्री जी देश के प्रधानमंत्री बनाए गये। शास्त्री जी के काल में प्रधानमंत्री सचिवालय को प्रभावशाली और शक्तिशाली भूमिका प्राप्त हुई। नेहरू जी एवं शास्त्री जी के प्रशासन में यह अन्तर था कि नेहरू जी कुछ मंत्रालय स्वयं के पास रखते थे जबकि शास्त्री जी अपने स्वयं के पास कोई विभाग या मंत्रालय नहीं रखते थे। सम्भवतः इसी कारण शास्त्री जी की निर्भरता कैबिनेट सचिवालय कि तुलना में प्रधानमंत्री सचिवालय पर बढ़ गई थी। शास्त्री जी मंत्रीमण्डल की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करते थे।

**इन्दिरा गाँधी का (प्रथम) शासन काल (1966-1977)** - 24 जनवरी, 1966 को श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने भारतीय शासन की बागडोर के रूप में संभाली। इन्दिरा गाँधी ने 24 मार्च, 1977 तब प्रधानमंत्री का पद संभाला। जब देश की प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी बनी तब प्रधानमंत्री सचिवालय के प्रधान पद पर एल.के.झा थे। झा एक अनुभवी और योग्य सचिव थे। इसलिए इन्दिरा गाँधी ने प्रधानमंत्री सचिवालय को अत्यधिक महत्त्व दिया। इन्दिरा गाँधी सभी प्रकार के कार्यों में झा से परामर्श लेती थी। झा को वह इतना महत्त्व देती थी कि शायद ही कोई निर्णय वह उनके बिना लेती थी। मंत्रालयों तथा कैबिनेट सचिवालय का काम तो उन्हें क्रियान्वित करने का ही था। इस प्रकार इन्दिरा गाँधी के इस काल में प्रधानमंत्री सचिवालय की भूमिका तथा महत्त्व अत्यधिक प्रभावी और शक्तिशाली था।

**मोरारजी देसाई (जनता पार्टी) का शासन काल (1977-79)** - मोरारजी देसाई ने देश की सत्ता संभालते ही प्रधानमंत्री सचिवालय का नाम बदनकर प्रधानमंत्री कार्यालय कर दिया। प्रधानमंत्री के सचिव पद से पी.एन. धर को हटाकर वी.शंकर का नियुक्त किया। लोकतांत्रिक रूप प्रदान किया। प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने इसी क्रम में प्रधानमंत्री कार्यालय के आकार और शक्तियों में कमी की इस कार्यालय का स्वरूप वही हो गया जो नेहरू काल में था। निजी सचिव और गिने-चुने सहायक मात्र रह गये।

**इन्दिरा गाँधी का (द्वितीय) शासन काल (1980-1984)** - जनवरी, 1980 के आम चुनाव के बाद इन्दिरा गाँधी दूसरी बार देश की प्रधानमंत्री बनीं। अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए इन्दिरा गाँधी ने फिर से प्रधानमंत्री सचिवालय को शक्ति का केन्द्र बनाया। इसके अधिकारियों और कर्मचारियों की संख्या में फिर से वृद्धि की गई। डॉ.पी.सी. अलेक्जेंडर को संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यालय से बुलाकर प्रधानमंत्री सचिवालय का प्रधान सचिव नियुक्त किया। उन्हें 'प्रिंसीपल सचिव' बनाया गया। आर.के. धवन को प्रधानमंत्री का निजी सचिव बनाया गया। इन्दिरा गाँधी के द्वितीय काल के शासन में भी प्रधानमंत्री सचिवालय अन्य सचिवालयों तथा मंत्रालयों की तुलना में काफी शक्तिशाली रहा।

**राजीव गाँधी का शासन काल (1984 से 1991)** - राजीव गाँधी को प्रशासनिक राजनैतिक कार्यों का ज्यादा अनुभव नहीं था, अतः प्रधानमंत्री सचिवालय पर राजीव गाँधी की अश्रितता स्वाभाविक थी राजीव गाँधी ने प्रधानमंत्री सचिवालय का विस्तार करके इसकी शक्तियों में वृद्धि की। राजीव गाँधी हर मामलों में अपने प्रधान सचिव से परामर्श लेते थे। राजीव गाँधी के शासनकाल में प्रधानमंत्री सचिवालय देश की सत्ता में इतना छाया हुआ था कि उसे 'लघु मंत्रीमण्डल' कहा जाता था।

**पी. वी. नरसिम्हाराव का शासन काल (1991-1996)** - नरसिम्हाराव ने अपने प्रधानमंत्री काल में प्रधानमंत्री सचिवालय को महत्त्व दिया। लेकिन इतना नहीं जितना इन्दिरा गाँधी एवं राजीव गाँधी ने दिया लेकिन प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव ने अपने कार्यकाल में 1992 में प्रधानमंत्री सचिवालय में 'अयोध्या प्रकोष्ठ' स्थापित करके एक नई परम्परा डाली।



**अटलबिहारी वाजपेयी, एच. डी. देवेगोड़ा एवं इन्द्रकुमार गुजराल का कार्यकाल (जुलाई 1966 से दिसम्बर 1999 तक)-** इस काल में तीनों ही प्रधानमंत्री को स्पष्ट बहुमत नहीं था अतः प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका प्रभावी नहीं रही। इस प्रकार 1947 से 1999 तक प्रधानमंत्री सचिवालय के आकार, शक्तियों में समय के अनुसार वृद्धि तथा कमी होती गई। अब अक्टूबर 1999 से 13 वीं लोकसभा में राजग के सर्वसम्मत नेता अटलबिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री हैं अतः इन्हें अब 543 सदस्यों की लोकसभा में 300 सदस्यों का बहुमत प्राप्त है। अतः अब की बार वाजपेयी सरकार पूर्ण बहुमत से सत्ता में है। प्रधानमंत्री सचिवालय की छवि को लकर समय-समय पर आलोचना होती रही है।

## अध्याय-11

# वित्त मन्त्रालय : संगठन और कार्य

## (Ministry of Finance : Organisation and Functions)

वित्त मन्त्रालय का दायित्व केन्द्रीय सरकार का वित्तीय प्रबन्ध करने और सारे देश पर प्रभाव डालने वाले सभी वित्तीय मामलों को निपटाने का है। इस मन्त्रालय को अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने सुशोभित किया है, जिनमें सी. डी. देशमुख; मोरारजी देसाई, टी. टी. कृष्णामाचारी, यशवन्तराव चव्हाण, एच. एम. पटेल, वी. पी. सिंह, नारायणदत्त तिवारी, एस. बी. चव्हाण, डॉ. मनमोहन सिंह के नाम उल्लेखनिय रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद डॉ. मनमोहनसिंह ही ऐसे वित्त-मंत्री रहे, जो पूरे पाँच वर्ष तक इस पद पर बने रहे।

वित्त मन्त्रालय भारत की केन्द्रीय सरकार का ग ह मन्त्रालय के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण मन्त्रालय है। यह मन्त्रालय केन्द्रीय सरकार के वित्त प्रशासन के लिए उत्तरदायी है। यह सम्पूर्ण देश को प्रभावित करने वाले सभी आर्थिक और वित्तीय मामलों से सम्बन्धित है जिसमें विकास के लिए संसाधनों को जुटाने का काम भी शामिल है। यह मन्त्रालय केन्द्रीय सरकार के व्यय का विनियमन करता है जिसमें राज्यों को संसाधनों का अन्तरण भी शामिल है। वित्त मन्त्रालय उन अनुमानों तथा मदों पर व्यापक नियंत्रण रखता है जो संसद द्वारा समय-समय पर स्वीकृत किये जाते हैं तथा जिनके लिए संसद द्वारा साधनों का नियोजन भी किया जाता है। यह मन्त्रालय विभिन्न व्यय कारक विभागों पर प्रशासकीय नियंत्रण रखता है साथ ही उनके क्रियाकलापों में समन्वय भी रखता है। केन्द्र सरकार की सामान्य आर्थिक तथा वित्तीय नीतियाँ तथा विकास कार्यक्रमों का निर्धारण भी वित्त मन्त्रालय द्वारा ही किया जाता है। वित्त मन्त्रालय सरकार के आय-व्यय के वार्षिक अनुमान (बजट) तैयार करता है तथा उन्हें स्वीकृति हेतु संसद के समक्ष प्रस्तुत करता है। बजट की क्रियान्विति के लिए भी यह आवश्यक कार्यवाही करता है। इस प्रकार भारत सरकार का वित्त मन्त्रालय वित्त पर मुख्य नियंत्रण और पर्यवेक्षण करने वाला प्रमुख संगठन है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के वित्तीय कार्यों का सम्पादन प्रारम्भ में गठित जन विभाग द्वारा किया जाता था जिसे इंग्लैण्ड से दिशा निर्देश प्राप्त होते थे किन्तु कम्पनी के कार्यों में विस्तार के कारण प थक् से वित्त विभाग की आवश्यकता अनुभव होने पर सन् 1810 में जन विभाग की वित्त शाखा को स्वतंत्र 'वित्त विभाग' का स्वरूप प्रदान किया गया। सन् 1843 में वित्त विभाग, ग ह विभाग, विदेश विभाग तथा मिलिट्री विभाग नामक चार विभाग इम्पीरियल सचिवालय में कार्यरत थे।

सन् 1843 में वित्त विभाग की राजस्व शाखा, ग ह विभाग में समाहित कर दी गई। सन् 1860 में राजस्व शाखा (ग ह विभाग) के वाणिज्यिक कार्य वित्त विभाग को प्रदान करते हुए इसे 'वित्त एवं वाणिज्य विभाग' नाम दिया गया लेकिन सन् 1905 में 'वाणिज्य एवं उद्योग विभाग' की प थक् से संरचना की गई। सन् 1909 तथा 1919 के भारत सरकार अधिनियमों के माध्यम से वित्त विभाग के कार्य क्षेत्र में अनेक परिवर्तन किए गए। लन्दन स्थित भारत सचिव का इस विभाग पर निरन्तर नियंत्रण बना रहा जो स्वतंत्रता के पश्चात् ही समाप्त हुआ। सन् 1947 में इसे वित्त मन्त्रालय का नाम दिया गया जिसमें व्यय, आर्थिक मामले तथा राजस्व नामक तीन शाखाएँ कार्यरत थीं। सन् 1949 में वित्त मन्त्रालय के अधीन दो विभाग बनाए गए :-

- (1) राजस्व एवं व्यय विभाग
- (2) आर्थिक मामलात विभाग।

सन् 1955 में वित्त मन्त्रालय के अधीन 'कम्पनी लाँ विभाग' गठित किया गया जिसे 1958 में वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्रालय को हस्तान्तरित कर दिया गया। सन् 1963 में आर्थिक सुधारों हेतु वित्त मन्त्रालय के अधीन 'समन्वय विभाग' बनाया गया तथा

कम्पनी लॉ विभाग को वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय से लेकर वित्त मंत्रालय के अधीन 'राजस्व एवं कम्पनी लॉ विभाग' नामक विभाग के आधीन कर दिया गया। अगले वर्ष 'कम्पनी लॉ एवं बीमा विभाग' का गठन किया गया। इस प्रकार सन् 1964 में वित्त मंत्रालय के अधीन राजस्व, व्यय, आर्थिक मामलात, समन्वय तथा कम्पनी लॉ एवं बीमा नामक पाँच विभाग कार्यरत थे। सन् 1966 में कम्पनी लॉ को विधि मंत्रालय को सौंप दिया गया। सन् 1967 में समन्वय विभाग भी समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार सन् 1967 में वित्त मंत्रालय के अधीन तीन विभाग यथा-राजस्व एवं बीमा, व्यय तथा आर्थिक मामलात कार्यरत थे।

वित्त मंत्रालय की संगठनात्मक तथा कार्यात्मक संरचना में निरन्तर परिवर्तन आता रहा है क्योंकि की प्रशासनिक कार्यों में संशोधन का प्रत्यक्ष प्रभाव वित्त मंत्रालय पर स्वाभाविक रूप से पड़ता है। उपर्युक्त वर्णित परिवर्तनों के अतिरिक्त सन् 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण, सन् 1972 में साधारण बीमा का राष्ट्रीयकरण, एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम (M.R.T.P) 1969 एवं कम्पनी अधिनियम, 1956 में हुए 19 बार (सन् 2001 तक) के संशोधन ने वित्त मंत्रालय की संरचना को बार-बार प्रभावित किया है। नब्बे के दशक में इस मंत्रालय में चार विभाग यथा-राजस्व एवं बीमा, व्यय आर्थिक मामलात तथा बैंकिंग कार्यरत थे। वर्ष 1996-97 के दौरान विधि एवं न्याय मंत्रालय से कम्पनी कार्य विभाग लेकर वित्त मंत्रालय में मिला दिया गया था जिसे सन् 1998 में फिर से विधि एवं न्याय मंत्रालय के अधीन कर दिया गया है। इस प्रकार विभाग वर्ष 1998-99 के दौरान वित्त मंत्रालय के अधीन तीन विभाग कार्यरत थे -

- (1) आर्थिक कार्य विभाग
- (2) व्यय विभाग
- (3) राजस्व विभाग।

### संगठन एवं कार्य

#### (Organisation and Functions)

वित्त मंत्रालय का सर्वोच्च पद वित्त मंत्री द्वारा धारण किया जाता है जो केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् में एक वरिष्ठ, अनुभवी तथा कार्यकुशल राजनीतिज्ञ होता है। वित्त मंत्री की सहायतार्थ वित्त राज्य मंत्री तथा उप मंत्री भी नियुक्त किए जाते हैं। सत्तारूढ़ दल की नीतियों तथा कार्यकुशलता, आम बजट तथा जनकल्याण हेतु शुरु की जाने वाली नवीन योजनाओं के माध्यम से वित्त मंत्री ही राष्ट्र के सम्मुख आता है। वित्त मंत्री को प्रशासनिक सहायता उपलब्ध कराने के लिए वित्त सचिव कार्यरत होता है जो सामान्यतः भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है किन्तु प्रधानमंत्री वी. पी. सिंह के शासनकाल में बिमल जालान तथा पी. वी. नरसिम्हा राव के समय मोण्टेक सिंह अहलुवालिया जो अर्थाशास्त्री हैं, को वित्त सचिव बनाया गया था। वित्त सचिव की सहायतार्थ तीन सचिव क्रमशः सचिव आर्थिक मामलात, सचिव व्यय तथा सचिव राजस्व, कार्यरत रहते हैं जो अपने-अपने विभागों के प्रमुख भी होते हैं। तीनों सचिवों की सहायतार्थ अनेक विशिष्ट सचिव, अतिरिक्त सचिव, उप सचिव इत्यादि पदस्थापित होते हैं जो भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षण सेवा, केन्द्रीय राजस्व सेवा, केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क सेवा, भारतीय रेलवे सेवा तथा केन्द्रीय सचिवालय सेवा से सम्बन्धित होते हैं। वित्त मंत्रालय के आधीन लगभग 1 लाख 70 कार्मिक कार्यरत हैं।

(क) **आर्थिक कार्य विभाग** - देश के आम बजट तथा राष्ट्रपति शासन वाले राज्य का बजट तैयार करने, आर्थिक मामलों पर निगरानी रखने तथा मुद्रा, बैंकिंग, बीमा को नियंत्रित करने का दायित्व यह विभाग निभाता है जो आठ प्रभागों में बँटा हुआ है -

- (1) **आर्थिक प्रभाग** - यह प्रभाग भारत सरकार की आर्थिक नीतियों से सम्बन्धित कार्य सम्पादित करता है। अर्थव्यवस्था के कार्य निष्पादन पर पर्यवेक्षण रखना, समसामयिक परिवर्तनों पर निगरानी रखना, आर्थिक नीतियों की समीक्षा करना, विकास में गति लाने के सुझाव देना, मुद्रास्फीति पर नियंत्रण करना तथा 'आर्थिक समीक्षा' तैयार करना इसके प्रमुख दायित्व हैं। आर्थिक समीक्षा के अन्तर्गत विदेशी क्षेत्र, राजकोषीय नीति तथा मुद्रा, उद्योग तथा आधारभूत संरचना, कीमते तथा कृषि, समन्वय तथा सामाजिक क्षेत्र पर चर्चा की जाती है। इस प्रभाग में वित्तीय नीति तथा लोक वित्त, संतुलित भुगतान, उत्पादन तथा सूचना, मूल्य, धन तथा उधार नामक कई इकाइयाँ कार्यरत हैं।

- (2) **बैंकिंग प्रभाग** - यह प्रभाग वाणिज्यिक बैंक नीति, शाखा विस्तार, कृषि साख, देश-विदेश के बैंक तथा राष्ट्रीय आवास बैंक से सम्बन्धित कार्य निष्पादित करता है जो मुख्यतः बैंकिंग परिचालन, औद्योगिक वित्त, प्राथमिकता क्षेत्र, कार्मिक सम्बन्ध तथा सतर्कता से सम्बन्धित होते हैं। 19 जुलाई, 1969 के अध्यादेश द्वारा बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था। अगस्त, 1991 में वित्तीय प्रणाली के ढाँचे, संगठन तथा कामकाज को लेकर बनी एम. नरसिंहम समिति की अनुशंसा के पश्चात् यह प्रभाग बैंकों की बैलेंस शीट पर अधिक निगरानी रखने लगा है। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के अन्तर्गत 1 अप्रैल, 1935 को गठित तथा 1 जनवरी, 1949 को राष्ट्रीयकृत रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया इस क्रम में वित्त मन्त्रालय को तकनीकी परामर्श प्रदान करता है। एक रूपये का नोट वित्त मन्त्रालय ही जारी करता है।
- (3) **बीमा प्रभाग** - बीमा प्रभाग बीमा से सम्बन्धित गतिविधियों को नियंत्रित करता है। एक सितम्बर, 1956 को गठित भारतीय जीवन बीमा निगम (L.I.C.) तथा नवम्बर, 1972 में गठित भारतीय साधारण बीमा निगम (G.I.C.) जो नेशनल इन्श्योरेन्स कम्पनी लि., न्यू इण्डिया एश्योरेन्स कम्पनी लि., ओरियण्टल इन्श्योरेन्स कम्पनी लि. तथा यूनाइटेड इण्डिया इन्श्योरेन्स कम्पनी लि. के माध्यम से कार्य करती है तथा डाक बीमा योजना को यह प्रभाग मार्गदर्शन प्रदान करता है। बीमा नीति एवं प्रशासन संचालन में यह विभाग प्रमुख अभिकरण है। प्रमुख बीमा योजनाओं की घोषणा तथा जनकल्याण की नीति भी इसी प्रभाग द्वारा निर्मित होती है। बीमा क्षेत्र में बनी निजी कम्पनियों को भी यह प्रभाग नियंत्रित-निर्देशित करता है।
- (4) **बजट प्रभाग** - यह प्रभाग देश के आम बजट, संघ शासित प्रदेशों तथा राष्ट्रपति शासन के अधीन आए हुए राज्यों के बजट का निर्माण, अनुदान माँगों, अतिरिक्त एवं पूरक माँगों को तैयार कराने, मंत्रिमंडल के सम्मुख प्रस्तुत करने, लोक ऋण, बाजार ऋण, आर्थिक मार्गोपाय, उधार एवं ब्याज को दरों तथा भारत की आकस्मिक निधि से सम्बन्धित कार्य संचालित करता है। 'राष्ट्रीय बजट संगठन' भी इसी प्रभाग के संलग्न रहकर कार्य करता है।
- (5) **पूँजी निवेश प्रभाग** - यह प्रभाग पूँजी निर्गम नियंत्रण, विदेशी निवेश-नीति, विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए आचार संहिता, भारतीय निवेश केन्द्र, अनिवासी भारतीय (N.R.I.) को भारत के निवेश के लिए सुविधाएँ, शेयर बाजार तथा 'भारतीय यूनिट ट्रस्ट' से सम्बन्धित कार्य सम्पादित करता है। इस प्रभाग का मुख्य कार्य अधिक से अधिक पूँजी निवेश करवाना है।
- (6) **विदेशी वित्त विभाग** - विदेशी सरकारों द्वारा भारत को मिलने वाले अनुदान, आपात सहायता, मानवीय सहायता तथा ऋणों को यह प्रभाग निर्देशित करता है। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय विकास संघ, एशियाई विकास बैंक, अन्तरराष्ट्रीय कृषि विकास निधि, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, राष्ट्रमंडल तकनीकी सहयोग निधि, विदेशी मुद्रा बजट तथा ऋण अदायगी से सम्बन्धित कार्यों के अतिरिक्त ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, कनाडा, नीदरलैण्ड, बेल्जियम, इटली, आस्ट्रिया, नार्वे, स्वीडन, स्विट्जरलैण्ड, रूस, चैकोस्लोवाकिया तथा कोलम्बो प्लान से प्राप्त सहायता भी नियंत्रित करता है।
- (7) **फंड बैंक प्रभाग** - यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया द्वारा सन् 1986 से लन्दन स्टॉक एक्सचेंज से सम्बद्ध 'इण्डिया फंड' तथा सन् 1997 में विदेश में पहला 'इंडिया डेट फंड' नामक ऋण कोष चालू किया गया है जो मिस्त्र तथा श्रीलंका को सहायता प्रदान करता है। इसी प्रकार के वित्तीय संसाधन एकत्र कर वित्त मन्त्रालय ने फंड बैंक प्रभाग स्थापित किया है जो मूलतः वित्तीय सहायता से सम्बन्धित कार्य देखता है।
- (8) **मुद्रा तथा सिक्के प्रभाग** - भारतीय मुद्रा, सिक्के, रूपए, स्टाम्प, डाक सामग्री, टिकिट, ज्यूडिशियल स्टाम्प, नॉन-ज्यूडिशियल स्टाम्प, भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारतीय स्टेट बैंक के चैक, राष्ट्रीय बचत प्रमाण-पत्र, इंदिरा विकास पत्र, किसान विकास पत्र, पोस्टल ऑर्डर, पासपोर्ट तथा प्रोमिसरी नोट इत्यादि छपवाने में यह प्रभाग नियंत्रण करता है। इण्डिया सिक्यूरिटी प्रेस, नासिक रोड की दो इकाइयाँ स्टाम्प प्रेस तथा सेण्ट्रल स्टाम्प डिपो हैं। करेंसी नोट प्रेस, नासिक रोड, सिक्कूरिटी पेपर मिल, होशंगाबाद, बैंक नोट प्रेस, देवास, सिक्कूरिटी प्रिन्टिंग प्रेस, हैदराबाद में हैं। मुम्बई, कोलकाता, हैदराबाद एवं नोएडा में चार सरकारी टकसाल हैं जो सिक्के ढालने, सोने-चाँदी की परख करने तथा पदकों का उत्पादन करती हैं। करेंसी नोट प्रेस (नासिक रोड) 10, 50 तथा

100 रुपए के नोट छापती है जबकि करेंसी नोट प्रेस (देवास) 20, 50, 100 तथा 500 रुपए के नोट छापती है। सिक्यूरिटी प्रिन्टिंग प्रेस (हैदराबाद) द्वारा पोस्टकार्ड, लिफाफे, नॉन ज्यूडिशियल स्टाम्प तथा केन्द्रीय एक्साइज स्टाम्प मुद्रित किए जाते हैं। सिक्यूरिटी पेपर मिल (होशंगाबाद) बैंक नोट तथा अन्य महत्वपूर्ण कागजात मुद्रित करती है। मुम्बई, कोलकाता, हैदराबाद तथा नोएडा स्थित टकसालों (Mints) द्वारा सिक्कों का उत्पादन, सोना तथा चाँदी की परख (Assaying), मैडल तथा स्म ति सिक्कों (Commemorative Coins) का निर्माण किया जाता है।

सन् 1985 में गठित 'आर्थिक आसूचना ब्यूरो' जो आर्थिक अपराधों पर नियंत्रण, आसूचना तथा समन्वय करता है तथा 12 अप्रैल, 1988 को गठित 'भारतीय प्रतिभूति और एक्सचेंज बोर्ड' (SEBI) जो, 1995 से वैधानिक संस्था है, पूँजी जारी करने वाली प्रतिभूतियों के अंतरण से सम्बन्धित कार्य देखता है, इसी विभाग के सहायक अभिकरण हैं। आर्थिक कार्य विभाग चैरिटेबल एर्ण्डोमेण्ट एक्ट, 1890, इण्डियन सिक्यूरिटी एक्ट, 1906, करेन्सी आर्डिनेन्स, 1990, पूँजी निर्गम (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 तथा एशियाई विकास अधिनियम, 1966 का क्रियान्वयन भी नियंत्रित करता है।

(ख) **व्यय विभाग-** यह विभाग मुख्यतः भारत सरकार के समस्त विभागों में मितव्ययता लाने, व्यय को नियंत्रित करने, लोक सेवाओं पर नियंत्रण रखने, वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन करने, लागत-लेखा पर परामर्श देने तथा रक्षा लेखा के कार्यों को सम्पादित करता है। इस विभाग के अधीन कार्यरत प्रभागों का विवरण निम्नानुसार है-

1. **संस्थापना प्रभाग-** संस्थापना प्रभाग वेतन पाने वाले केन्द्र सरकार के लोक सेवकों की सेवा शर्तों से सम्बन्धित कार्य नियंत्रित करता है जिसके अंतर्गत वेतनमान संशोधन एवं नियमन, भत्ते निर्धारण तथा अन्य लाभ सम्मिलित हैं। यह प्रभाग वेतनमान संशोधन, वेतनवृद्धि, प्रतिनियुक्ति भत्ता, कैंडर रिव्यू इत्यादि मामलों में तुलनात्मक आपेक्षिकता तथा कर्तव्य को ध्यान में रखकर परीक्षण कर परामर्श देता है। वेतन आयोगों की अनशंसाएँ भी यही प्रभाग संचालित कराता है। सन् 1968 में बनी 'वेतन अनुसंधान इकाई' महँगाई भत्ते, शहरी क्षतिपूर्ति भत्ते तथा मकान किराया भत्ते पर विश्लेषण करती है। एक जनवरी, 1990 से कार्यरत 'केन्द्रीय पेंशन लेखा कार्यालय' भी इस प्रभाग से समन्वित रह कर कार्य करता है।
2. **योजना वित्त प्रभाग-** पूर्व में योजना वित्त प्रभाग दो शाखाओं में विभक्त था जो अब एकीकृत कर दिया गया है। राज्यों की वार्षिक योजनाओं के लिए चाहे वे केन्द्र द्वारा प्रायोजित हों या विदेशी सहायता प्राप्त हों, पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम, सीमा क्षेत्र विकास कार्यक्रम, गैर योजना राजस्व घाटा अनुदान, राज्यों में आपदा राहत कोष के लिए केन्द्र का हिस्सा तथा राष्ट्रीय आपदा राहत कोष में केन्द्रीय सहायता के हिस्से के निर्धारण से सम्बन्धित व्यवस्था करता है।
3. **वित्त आयोग प्रभाग-** संवधान के अनुच्छेद-280 के अनतर्गत प्रति पाँच वर्ष पश्चात् राष्ट्रपति वित्त आयोग गठित करता है जो केन्द्र एवं राज्यों में करों के बँटवारे तथा अनुदान इत्यादि पर परामर्श देता है। यह प्रभाग वित्त आयोग को प्रशासनिक सहायता उपलब्ध कराता है तथा वित्त आयोग की अनुशंसाओं की क्रियान्विति के क्रम में सहायता प्रदान करता है। अब तक ग्यारह वित्त आयोग रिपोर्ट दे चुके हैं।
4. **लेखा एवं महानियंत्रक प्रभाग-** यह प्रभाग भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक कार्यालय से समन्वय करता है तथा उसे आवश्यक सामग्री, प्रशासनिक सहायता एवं संरचना उपलब्ध कराता है। एक संवैधानिक संस्था के रूप में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक संघ तथा राज्यों के लेखाओं के स्वरूप निर्धारित करने तथा लेखा परीक्षण करने की राष्ट्रपति की शक्तियों का (अनुच्छेद 150) प्रयोग करता है। वस्तुतः नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कार्यालय ही 'भारतीय लेखा एवं अंकेक्षण विभाग' होता है।
5. **लागत लेखा प्रभाग-** यह प्रभाग लागत तथा लेखाशास्त्र में विशेषज्ञता प्राप्त अभिकरण है जो भारत सरकार के समस्त मंत्रालयों या विभागों एवं अन्य अभिकरणों को औद्योगिक लागत तथा मूल्य इत्यादि विषयों पर व्यावसायिक सहायता प्रदान करता है। मुख्यतः मितव्ययता लाना तथा कुशलता प्रदर्शित करना इस प्रभाग का प्रयास रहता है।

6. **कर्मचारी निरीक्षण शुल्क**- सन् 1964 से गठित यह प्रभाग प्रशासनिक कुशलता तथा मितव्ययता की स्थापना करने का प्रयास करता है। कार्य निष्पादन मानक तथा पद्धतियाँ तैयार करना, तरीके-प्रणाली परिवर्तित करना, कार्य-विधियों में नवाचार करना तथा कार्य प्रणाली इत्यादि का अध्ययन करना एवं प्रशासनिक सुधार तथा सार्वजनिक शिकायत विभाग को आवश्यक कार्यवाही की अनुशंसा करना इसके मुख्य कृत्य हैं। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस एकक की अनुशंसाएँ परामर्श नहीं बल्कि आदेशात्मक होती हैं जिन्हें एक निश्चित अवधि में पूर्णरूपेण अमल में लाना आवश्यक होता है।
7. **क्रियान्वयन प्रकोष्ठ**- यह प्रकोष्ठ योजना कार्यों के निष्पादन के समय हो रहे व्यय को नियंत्रित करने में प्रमुख भूमिका निभाता है। साथ ही योजनाओं की प्रगति में योजना आयोग से समन्वय करता है एवं राज्य सरकारों से रिपोर्ट इत्यादि प्राप्त कर योजना वित्त प्रभाग से समन्वय करता है।
8. **समन्वित वित्त प्रभाग**- यह प्रभाग नवगठित है जो समस्त वित्तीय संसाधनों को एकीकृत स्वरूप प्रदान कर विश्लेषण करता है। कर, शुल्क, गैर कर प्राप्तियाँ, विदेशी सहायता तथा आंतरिक ऋण इत्यादि से सम्बन्धित आय अनुमान लगाकर तत्सम्बन्धी व्यय नीति बनाना इसके मुख्य कार्य हैं।  
व्यय विभाग में ही सन् 1965 से गठित 'लोक उपक्रम ब्यूरो' कार्यरत है। यह ब्यूरो सरकारी निगमों तथा कंपनियों से सम्बन्धित वित्तीय कार्यों पर निगरानी रखता है।

**विक्रय कर विंग प्रभाग** - यह प्रभाग राजस्व विभाग माल के अन्तर्राज्यीय विक्रय कर पर उद्ग्रहण केन्द्रीय विक्रय कर से सम्बन्धित विधायी कार्य को देखता है। जबकि केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम 1956 को लागू करने का कार्य राज्य सरकारों का है। विक्रय कर प्रभाग भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 से सम्बन्धित कुछ मामलों को भी देखता है।

**केन्द्रीय आर्थिक आसूचना ब्यूरो प्रभाग** - दस प्रभाग की स्थापना जुलाई 1985 में की गई जिसका मुख्य कार्य आर्थिक अपराधों की जाँच-पड़ताल करके और आर्थिक कानूनों को लागू करने से सम्बन्धित विभिन्न एजेन्सियों द्वारा आसूचना एकत्र करने की कार्यवाहियों, जाँच-पड़ताल के प्रयासों और प्रवर्तन कार्यवाही का समन्वय करना तथा उसे सुदृढ़ बनाना। यह केन्द्र एवं राज्य दोनों स्तर पर इन कार्यों से सम्बन्धित विभागों और निदेशालयों के साथ सम्पर्क बनाये रखता है। यह राजस्व विभाग में कार्यरत जाँच-पड़ताल करने वाली एजेन्सियों को पूर्व निर्देश देने और नियंत्रण रखने का कार्य भी करता है।

**प्रवर्तन निदेशालय प्रभाग** - प्रवर्तन निदेशालय प्रभाग मुख्यतः देश में विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम के उपबन्धों को लागू करवाने तथा विदेशी मुद्रा के बाहर जाने को रोकने से सम्बन्धित कार्य करता है। इसके लिए यह प्रभाग विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973 के द्वारा भारत के विदेशी मुद्रा कारोबार के लिए विनियमन एवं नियंत्रण के लिए व्यापक प्रबन्ध करता है।

**व्यापक नियंत्रण ब्यूरो प्रभाग** - यह प्रभाग भारत में व्यापक औषधि एवं मन प्रभाव पदार्थ अधिनियम, 1985 को लागू करके देश-विदेश में इसका अवैध प्रचलन और प्रसार रोकता है।

**समपहृत सम्पत्ति अपील अधिकरण प्रभाग** - देश में इसकी स्थापना 1977 से की गई है। यह प्रभाग तस्कर और विदेशी मुद्रा छल साधक (सम्पत्ति समपहरण) अधिनियम, 1976 के तहत अपील अधिकरण के रूप में आर्थिक अपराधी द्वारा स्वयं और कोफेकोसा के अधीन नजरबन्द व्यक्तियों अथवा उनके नाम पर विशिष्टीक त रिश्तेदारों/सम्बन्धियों द्वारा गैर-कानूनी तरीकों से प्राप्त सम्पत्ति को समपहरण के लिए सक्षम प्राधिकारियों की हैसियत से तैनात अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध अपीलें सुनता है।

**आयकर समझौता आयोग प्रभाग** - इस प्रभाग के अन्तर्गत आयकर समझौता आयोग से सम्बन्धित कार्य किये जाते हैं। आयकर समझौता आयोग 1.4.1976 को आयकर और धनकर के मामलों के निपटाने हेतु आयकर अधिनियम 1961 के अध्याय XIX-क तथा धनकर अधिनियम, 1957 के अध्याय V-क के अन्तर्गत गठित किया गया है। आयकर समझौता आयोग की चार पीठें (बेंचें) स्थापित की गई हैं। प्रथम पीठ नई दिल्ली में है जिसमें एक अध्यक्ष एवं दो सदस्य हैं जबकि अतिरिक्त पीठ (बेंचें) मुम्बई, चेन्नई तथा कलकत्ता में स्थापित हैं जिसमें प्रत्येक में एक उपाध्यक्ष एवं दो सदस्य होते हैं।

**सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क, स्वर्ण नियंत्रण अपील अधिकरण प्रभाग** - यह प्रभाग सीमा शुल्क अधिनियम, 1962, केन्द्रीय

उत्पाद शुल्क एवं नमक अधिनियम, 1944 तथा स्वर्ण नियंत्रण अधिनियम 1968 के अन्तर्गत आयुक्त एवं आयुक्त (अपील) के द्वारा पारित आदेशों के खिलाफ अपीलों के निपटान के लिए स्थापित किया गया है। इसे सीमा शुल्क (टैरिफ) अधिनियम, 1985 के अन्तर्गत एन्टी डम्पिंग शुल्क और सेवा कर से सम्बन्धित मामलों के सम्बन्ध में पदनामित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेशों के खिलाफ अपील सुनने का अधिकार भी प्रदान किया गया है। इस अधिकरण में एक अध्यक्ष, दो उपाध्यक्ष तथा 18 सदस्य हैं। इसकी दिल्ली, मुम्बई में दो-दो तथा कलकत्ता एवं चेन्नई में एक-एक बैंच है।

**अग्रिम विनिर्णय प्राधिकरण प्रभाग** - यह 1 जून 1993 से प्रारम्भ हुआ है। इसकी स्थापना भारत सरकार द्वारा वित्त अधिनियम, 1993 के आधार पर आयकर अधिनियम 1967 के तहत की गई है। यह प्राधिकरण जो अनिवासी आवेदनकर्ता द्वारा किये गए अथवा किये जाने वाले प्रस्तावित कारोबार के सम्बन्ध में इसकी कर देयताएँ निर्धारित करने में उठ सकने वाले मामलों से सम्बन्धित कानूनी प्रश्नों अथवा आवेदन-पत्र में विनिर्दिष्ट तथ्यों के सम्बन्ध में अनिवासियों के लिए बाध्यकारी निर्णय देता है। इस प्राधिकरण में एक अध्यक्ष तथा दो सदस्य हैं।

**आन्तरिक कार्य अध्ययन एकक प्रभाग** - यह प्रभाग राजस्व विभाग के अन्तर्गत आने वाले संगठनों में प्रशासन की गुणवत्ता में सुधार लाने का प्रयास करता है। इसके लिए यह प्रशासन के व्यय में बचत करने तथा कार्यकुशलता प्रशासन में स्वच्छता लाने हेतु मार्गदर्शी सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करता है। इसके लिए यह प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग तथा राष्ट्रीय अभिलेखागार से सम्पर्क बनाये रखता है।

**राजभाषा नीति कार्यान्वयन प्रभाग** - यह प्रभाग निदेशक (राजभाषा) के नियंत्रण में कार्य करता है। इसकी सहायता के लिए इसमें दो उप-निदेशक, चार सहायक निदेशक तथा अन्य सहायक स्टाफ कार्यरत हैं। यह प्रभाग राजभाषा नीति के कार्यान्वयन तथा राजभाषा विभाग द्वारा समय-समय पर जारी आदेशों और अनुदेशों का कार्यान्वयन करता है। इस प्रभाग का यह प्रयास रहता है कि सभी स्तरों पर सरकारी काम में हिन्दी भाषा का अधिकाधिक प्रयोग हो।

**सहायता एवं अनुदान प्रभाग** - यह प्रभाग राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में अनुसंधान कार्यक्रमों को सहायता अनुदान देता है। इसके अतिरिक्त यह राजस्व विभाग के देशभर में सम्बद्ध कार्यालयों के कर्मचारियों के खेलकूद एवं सौस्क तिक क्रिया कलापों के लिए सहायता अनुदान देता है।

## राजस्व विभाग

वित्त मन्त्रालय का राजस्व विभाग तीसरा महत्वपूर्ण विभाग है, जो दो सांविधिक बोर्डों-केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड के माध्यम से देश में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष संघीय करों से सम्बन्धित राजस्व मामलों के बारे में नियंत्रण रखता है। इसका इंचार्ज सचिव (राजस्व) होता है। इसके कार्यों में सहायता हेतु अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी होते हैं। राजस्व विभाग को कार्यों की दृष्टि से निम्न 14 प्रभागों में संगठित किया गया है-

- (i) सामान्य प्रशासन प्रभाग,
- (ii) केन्द्रीय उत्पादन शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड प्रभाग,
- (iii) केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड प्रभाग,
- (iv) विक्रय कर विंग प्रभाग
- (v) केन्द्रीय आर्थिक आंकलन ब्यूरो प्रभाग,
- (vi) प्रवर्तन निदेशालय प्रभाग,
- (vii) स्वायत्त नियंत्रण ब्यूरो प्रभाग,
- (viii) समपहत सम्पत्ति अपील अधिकरण प्रभाग,
- (ix) आयकर समझौता आयोग,
- (x) सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क एवं स्वर्ण नियंत्रण अपील अधिकरण प्रभाग,
- (xi) अग्रिम विनिर्णय प्राधिकरण प्रभाग,

- (xii) आन्तरिक कार्य अध्ययन एकक प्रभाग,
- (xiii) राजभाषा नीति कार्यान्वयन प्रभाग,
- (xiv) सहायता अनुदान प्रभाग

**सामान्य प्रशासन प्रभाग** - यह प्रभाग राजस्व विभाग के मुख्यालय से सम्बन्धित सभी प्रशासनिक कार्यों, दोनों बोर्डों के मध्य समन्वय, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899, केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम, 1956 और समझौता आयोग (धनकर, सम्पत्ति कर), समपहृत सम्पत्ति अपील अधिकरण, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क, स्वर्ण नियंत्रण अपील अधिकरण, अग्रिम विनिर्णय प्राधिकरण, प्रवर्तन निदेशालय और तस्करी एवं विदेशी मुद्रा ऋण माध्यम अधिनियम के तहत सक्षम प्राधिकारियों एवं स्वापक औषधि एवं मनप्रभावी पदार्थ अधिनियम से सम्बन्धित कार्यों को देखता है।

**केन्द्रीय उत्पादन शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड प्रभाग** - यह प्रभाग केन्द्रीय उत्पादन शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड से सम्बन्धित कार्य देखता है। बोर्ड में एक अध्यक्ष तथा पाँच सदस्य होते हैं जो भारत सरकार के क्रमशः पदेन विशेष सचिव एवं अपर सचिव होते हैं। यह प्रभाग बोर्ड के माध्यम से सीमा शुल्क तथा केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों के उदग्रहण तथा वसूली करने, तस्करी की रोकथाम करने तथा इस बोर्ड के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले सीमा शुल्क; केन्द्रीय उत्पाद शुल्क तथा नारकोटिक्स से सम्बन्धित मामलों के प्रशासन हेतु नीति तैयार करता है। यह बोर्ड अपने अधीनस्थ संगठनों जैसे-सीमा शुल्क गार्ड, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्तालयों तथा केन्द्रीय राजस्व नियंत्रण प्रयोगशाला के लिए प्रशासनिक प्राधिकरण का भी कार्य करता है।

**केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड प्रभाग** - यह राजस्व विभाग का एक महत्वपूर्ण प्रभाग है जो देश में प्रत्यक्ष करों के द्वारा राजस्व प्राप्त करता है। आयकर तंत्र में केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड एक शीर्षस्थ संस्था है जो विभिन्न कानूनों के माध्यम से विभिन्न सांविधिक कार्यों को निष्पादित करने के अलावा कर प्रशासन से सम्बन्धित नीतियों को तैयार करने और लागू करने के लिए भी उत्तरदायी है। इस बोर्ड में एक अध्यक्ष और पाँच सदस्य हैं। केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड निम्न अधिनियमों को प्रशासन देखता है तथा इसके माध्यम से प्रत्यक्ष कर लगाकर राजस्व वसूली करता है - आयकर अधिनियम, 1961, धनकर अधिनियम 1957, दानकर अधिनियम, 1958, ब्याज कर अधिनियम, 1974, व्यय कर अधिनियम, 1987 तथा बेमानी लेनदेन (निषेध) अधिनियम, 1988।

1. **करों की प्राप्ति** - संसद द्वारा प्रस्तावित स्वीकृति और अनुमोदित सभी प्रकार के करों को प्राप्त करने का कार्य वित्त मंत्रालय का महत्वपूर्ण दायित्व है। इन करों को प्राप्त करने के लिए वित्त मंत्रालय देश के केन्द्रीय, क्षेत्रीय एवं सम्भागीय आधार पर अपने कार्यालय को सचेत करता है। वित्त मन्त्रालय को सभी धन खजानों के माध्यम से प्राप्त होता है और वहीं वह जमा हो जाता है।
2. **कराधान नीति का नियमन** - सरकार के विभिन्न विभाग सम्भावित प्राप्तियों और व्यय का उल्लेख विवरण-पत्र मन्त्रालय को प्रेषित करते हैं। अतिरिक्त व्यय के लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता होती है। धन की प्राप्ति को अन्तिम रूप देने का भी दायित्व वित्त मन्त्रालय सम्पन्न करता है। सरकार की ऋण-नीति का भी निर्धारण वित्त मन्त्रालय करता है।
3. **आय-व्यय का अनुमान** - वित्त मन्त्रालय के विविध कार्य केवल आय के साधनों तथा व्ययों के आवश्यक तथ्यों के विचार-विमर्श से सम्बन्धित है। ये अनुमान तथ्यों पर आधारित होने के बाद भी सम्भावित होते हैं। अनुमान के बाद भी उनमें अधिक उलट-फेर संभव नहीं है।
4. **व्यय पर नियन्त्रण** - वित्त मन्त्रालय राष्ट्रीय आय के विवरण को बजट के रूप में प्रस्तुत करता है। संसद द्वारा स्वीकृति प्रेषित कर दी जाती है। इस विभाग का कार्य इससे भी अधिक है। यह प्रत्येक विभाग के व्यय को कड़ी निगरानी से देखता है। यह अनावश्यक व्यय की सुविधा नहीं देता।
5. **बजट की प्रस्तुति** - वित्त मन्त्रालय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बजट के निर्माण का है। वित्त मन्त्रालय की दृष्टि से समस्त विभागों से प्राप्त आय-व्यय के विवरण को संचालित और वर्गीकृत करके बजट तैयार करता है तथा उसे संसद से पास होने पर निष्पादन हेतु सम्बद्ध विभागों को सूचित करता है।



इस प्रकार केन्द्र सरकार की सम्पूर्ण व्यवस्था वित्त मन्त्रालय के नियन्त्रण में है। सरकार के अन्य मन्त्रालय भी अपने महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में वित्त मंत्रालय पर निर्भर रहते हैं। वित्त मन्त्रालय वास्तव में विभिन्न मन्त्रालयों में समन्वयकर्ता की भूमिका अदा करता है। इस मन्त्रालय के पास वित्त व्यवस्था का उत्तरदायित्व होने से अन्य मन्त्रालय या विभाग अपने को इसी पर आश्रित समझते हैं एवं इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते हैं।

## अध्याय-12

### ग ह मंत्रालय

### (Home Ministry)

भारत सरकार के समस्त मंत्रालयों में ग ह मंत्रालय का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इसी महत्व के कारण प्रोटोकॉल नियमों के अनुसार कैबिनेट में प्रधानमंत्री के बाद 'ग ह मंत्री' का ही नाम आता है। ग ह मंत्रालय किसी न किसी रूप में वे सभी कार्य करता है जो भारत सरकार से अपेक्षित है। इसलिए भारत सरकार के करीब 900 से 500 कार्य अकेला ग ह मंत्रालय करता है। ग ह मंत्रालय की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य देश में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना है।

**ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-** भारत सरकार का ग ह मंत्रालय प्राचीनतम मंत्रालय है जिसका विकास एक लम्बी प्रक्रिया से होकर हुआ है। 1843 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में पहली बार 'ग ह विभाग' की स्थापना की गई। उस समय इस विभाग में विदेश, वित्त एवं सैनिक विभाग भी सम्मिलित थे। उस समय इस विभाग में 6 शाखाएँ - सामान्य, राजस्व, समुद्रीय, न्यायिक, विधि एवं चर्च थी। 1855 में पहली बार 'सार्वजनिक निर्माण विभाग' को इससे अलग किया गया। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अगस्त, 1947 में इसका नाम ग ह विभाग से बदलकर 'ग ह मंत्रालय' (मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स) किया गया। 1964 में ग ह मंत्रालय में 'सामाजिक सुरक्षा विभाग' जोड़ा गया। 1965 में अगस्त से 'आसाम राइफल्स' का कार्य भी ग ह मंत्रालय को सौंपा गया। 1966 जनवरी में 'प्रशासनिक सुधार आयोग' को भी इसमें जोड़ा गया। 1970 में इसके अंतर्गत 'कार्मिक विभाग' की स्थापना की गई। 1974 में इसके अन्तर्गत 'राजभाषा विभाग' की स्थापना की गई। जून 1977 में ग ह मंत्रालय में 'कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग' स्थापित किया गया। जनवरी, 1986 में कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग इससे अलग करके इसको अलग मंत्रालय का दर्जा दिया गया। "ग ह मंत्रालय के हाथ इतने लम्बे हैं कि वह देश के किसी भी कोने में पहुँच सकता है। किसी भी व्यक्ति को छू सकता है तथा प्रभावित कर सकता है।"

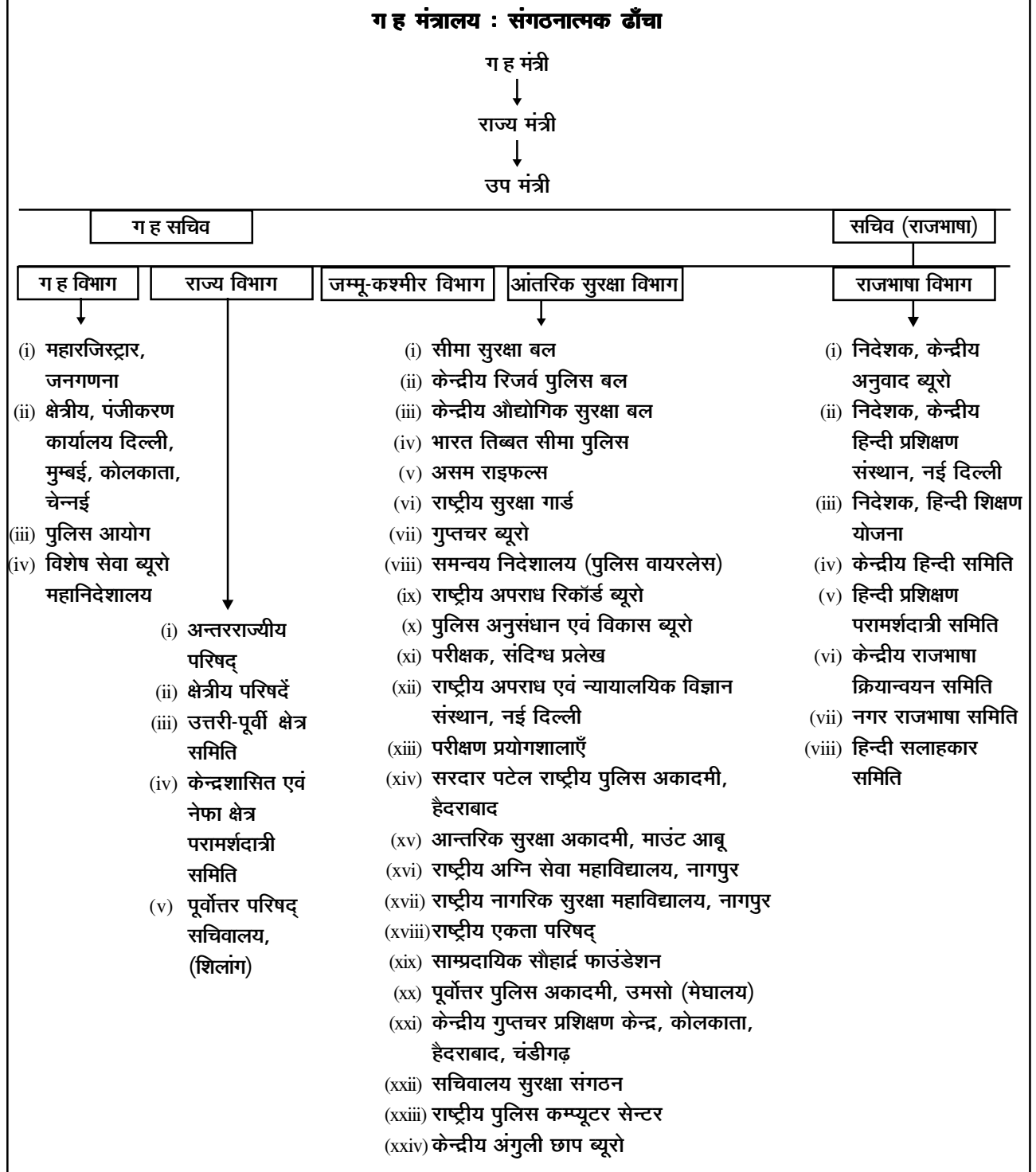
#### संगठन

#### (Organisation)

ग ह मंत्रालय का शीर्ष पद एक कैबिनेट स्तर में मंत्री द्वारा ग्रहण किया जाता है। ग ह मंत्री की स्थिति मंत्रालय की विशालता, गंभीरता तथा उपादेयता के कारण प्रधानमंत्री के पश्चात् नम्बर दो पर होती है। ग ह मंत्री के अधीन राज्य मंत्री तथा उप मंत्री भी आवश्यकतानुसार नियुक्त किए जाते हैं। ग ह मंत्रालय के समस्त नीतिगत निर्णय ग ह मंत्री द्वारा अथवा प्रधानमंत्री एवं केन्द्रीय मंत्रिमंडल के परामर्शानुसार लिए जाते हैं। देश की आंतरिक सुरक्षा, शांति एवं व्यवस्था से सम्बद्ध यह मंत्रालय चार विभागों में विभक्त है जिसके प्रशासनिक प्रमुख सचिव कहलाते हैं। ग ह सचिव के अधीन आंतरिक सुरक्षा विभाग, राज्य विभाग, ग ह विभाग तथा जम्मू-कश्मीर विभाग हैं जबकि एक अन्य सचिव के अधीन केवल राजभाषा विभाग रखा गया है। मंत्रालय के सचिव आई. एस. एस. होते हैं। जिनके अधीन विशेष सचिव, सयुक्त सचिव, निदेशक, विशेषाधिकारी तथा उप सचिव इत्यादि पदस्थापित होते हैं। कार्यों की दृष्टि से आंतरिक सुरक्षा विभाग सबसे बड़ा विभाग है जिसमें 10 सयुक्त सचिव तथा जम्मू-कश्मीर विभाग में अधिकारियों की संख्या तुलनात्मक रूप से कम है। मंत्रालय का प्रशासनिक प्रमुख ग ह सचिव कहलाता है जो सचिव (न्याय) का अतिरिक्त कार्य संभालता है। ग ह मंत्रालय के अधीन लगभग 5.5 लाख कार्मिक कार्यरत हैं।

ग ह मंत्रालय को कार्य विभाजन की दृष्टि से पाँच विभागों में बाँटा गया है। ग ह विभाग, आन्तरिक सुरक्षा विभाग, राज्य विभाग, जम्मू-कश्मीर विभाग तथा राजभाषा विभाग के नाम से स्थापित इन विभागों के अधीन कई संभाग तथा अनुभाग कार्यरत हैं।

जिनमें सैंकड़ों अधिकारी -कर्मचारी पदस्थापित हैं। ग ह मन्त्रालय के अधीन कई प्रकार से सुरक्षा बल कार्यरत हैं। सन् 1965 में स्थापित सीमा सुरक्षा बल देश की सीमाओं की रक्षा तथा तस्करी एवं घुसपैठ नियंत्रण का कार्य करता है जबकि असम राइफल्स (1835 में काचेर लेवी नाम से शुरू) पूर्वोत्तर राज्यों में, भारत-तिब्बत सीमा पुलिस (1962) उत्तरी सीमा पर आंतरिक सुरक्षा का जिम्मा उठाते हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड, आतंकवाद के विरुद्ध, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल (1939) विद्रोह, दंगों, तथा आन्दोलनों के नियंत्रण के लिए तथा औद्योगिक सुरक्षा बल (1968), लोक उपक्रमों में पदस्थापित किये जाते हैं। इस मन्त्रालय के विशद तथा गंभीर कार्यों को पूरा करने के लिए केन्द्रीय गुप्तचर ब्यूरो कार्यरत है जिसकी स्थापना सन् 1887 में 'ठगी विभाग'



की एक शाखा के रूप में हुई थी। अग्निशमन, अपराध, न्यायलयिक विज्ञान (Forensic Science) जनगणना, विदेशी नागरिक पंजीकरण, पुलिस प्रशिक्षण, अपराध रिकार्ड, अनुसंधान इत्यादि से सम्बन्धित अनेक संस्थाएँ एवं कार्यालय भी इस मंत्रालय से सम्बद्ध हैं। सन् 1990 में स्थापित अन्तरराज्यीय परिषद् राष्ट्रीय एकता परिषद् तथा क्षेत्रीय परिषदों को प्रशासनिक सहायता प्रदान करना इस मंत्रालय के अधीन हैं। 1 नवम्बर, 1994 से इस मंत्रालय के 'जम्मू-कश्मीर विभाग' को प्रत्यक्ष: प्रधानमंत्री के अधीन कर दिया गया था जिसे वाजपेयी सरकार ने 23 मई, 1998 को प्रधानमंत्री कार्यालय से हटाकर पुनः ग ह मंत्रालय को सौंप दिया। मंत्रालय की आन्तरिक संरचना केन्द्रीय सचिवालय की संगठनात्मक पद्धति तथा कार्य प्रक्रियानुसार कई शाखाओं में विभक्त ग ह हैं। मंत्रालय एक आसूचना ब्यूरो भी है जिसकी शाखाएँ राज्यों में भी कार्यरत हैं। यह ब्यूरो आन्तरिक गड़बड़ियों पर नियंत्रण का कार्य करता है। सन् 1946 में गठित ग ह रक्षक दल (Home Guards) एक स्वयंसेवी बल है जो पुलिस कार्यों में ग ह विभाग की सहायता करता है। केरल राज्य के अतिरिक्त समस्त भारत में होम गार्ड्स हैं।

ग ह मंत्रालय के विभिन्न विभागों के अधीन या सम्बद्ध अभिकरणों का विवरण इस प्रकार है -

(अ) **अधीनस्थ अभिकरण**

- (i) महारजिस्ट्रार, जनगणना तथा क्षेत्रीय जनगणना कार्यालय
- (ii) क्षेत्रीय पंजीकरण (विदेशी नागरिक) कार्यालय, दिल्ली, मुम्बई कोलकाता, चेन्नई
- (iii) गुप्तचर ब्यूरो
- (iv) समन्वय निदेशालय, (पुलिस वायरलेस)
- (v) राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो
- (vi) परीक्षक, संदिग्ध प्रलेख
- (vii) परीक्षण प्रयोगशालाएँ
- (viii) पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
- (ix) केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो
- (x) विशेष सेवा ब्यूरो महानिदेशालय
- (xi) सचिवालय सुरक्षा संगठन

(ब) **पुलिस बल**

- (i) सीमा सुरक्षा बल
- (ii) केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल
- (iii) केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल
- (iv) भारत-तिब्बत सीमा पुलिस
- (v) असम राइफल्स
- (vi) राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड
- (vii) होम गार्ड (स्वयंसेवी बल) राज्यों में

(स) **प्रशिक्षण संस्थान**

- (i) केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली
- (ii) सरदार पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद
- (iii) राष्ट्रीय अग्निसेवा महाविद्यालय, नागपुर
- (iv) राष्ट्रीय नागरिक सुरक्षा महाविद्यालय, नागपुर

- (v) आन्तरिक सुरक्षा अकादमी, माउंटआबू
- (vi) राष्ट्रीय अपराध एवं न्यायालयिक विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली
- (vii) पूर्वोत्तर पुलिस अकादमी, उमसों, उमियस, (मेघालय)
- (viii) केन्द्रीय गुप्तचर प्रशिक्षण केन्द्र, कोलकाता, हैदराबाद, चंडीगढ़।

(द) **परिषदें/समितियाँ/आयोग**

- (i) राष्ट्रीय एकता परिषद्
- (ii) अन्तरराज्यीय परिषद्
- (iii) क्षेत्रीय परिषदें
- (iv) साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए राष्ट्रीय फाउंडेशन
- (v) केन्द्रीय हिन्दी समिति
- (vi) हिन्दी प्रशिक्षण परामर्शदात्री समिति
- (vii) केन्द्रशासित एवं नेफा क्षेत्र परामर्शदात्री समिति
- (viii) उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र समिति
- (ix) केन्द्रीय राजभाषा क्रियान्वयन समिति
- (x) नगर राजभाषा समिति
- (xi) हिन्दी सलाहकार समितियाँ
- (xii) केन्द्रीय आपातकालीन सहायता परामर्शदात्री समिति
- (xiii) पुलिस आयोग
- (xiv) राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग (स्वतन्त्र तथा वैधानिक संस्था)

उपर्युक्त वर्णित अधीनस्थ कार्यालयों, समितियों, प्रशिक्षण संस्थाओं तथा पुलिस बलों के माध्यम से ग ह मन्त्रालय अपने गुरुतर दायित्वों को पूरा करता है। पुलिस आयोग, पुलिस प्रशासन तथा कार्यप्रणाली में सुधार हेतु सुझाव देता है जबकि संसदीय कानून द्वारा अक्टूबर, 1993 में स्थापित राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग एक स्वतन्त्र एवं वैधानिक संस्था के रूप में आम व्यक्ति के मानवाधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करता है। मानवाधिकार आयोग के सम्मुख आने वाली अधिकांश शिकायतें पुलिस के अत्याचारों से सम्बन्धित होती हैं। यद्यपि पुलिस तथा आन्तरिक सुरक्षा का अधिकांश कार्य राज्य प्रशासन से सम्बन्धित हैं तथापि अनेक कानून ऐसे हैं जिनका क्रियान्वयन केन्द्रीय ग ह मन्त्रालय करता है। जैसे -

- (i) राजभाषा अधिनियम, 1963
- (ii) पासपोर्ट (भारत में प्रवेश) अधिनियम, 1920
- (iii) विदेशी नागरिक पंजीकरण अधिनियम, 1939
- (iv) नागरिकता अधिनियम, 1955
- (v) विदेशी अंशदान (नियमन) अधिनियम, 1976
- (vi) राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980
- (vii) अस्त्र, आग्नेयास्त्र, गोलाबारूद तथा विस्फोटक सामग्री अधिनियम, 1908
- (viii) सरकारी गोपनीयता अधिनियम, 1923
- (ix) उग्रवाद प्रभावित क्षेत्र (विशेष न्यायालय) अधिनियम, 1984

- (x) आतंकवाद निरोधक अधिनियम (पोटा), 2002
- (xi) आवश्यक सेवा नियमन अधिनियम, 1981
- (xii) गैर कानूनी गतिविधियाँ (नियंत्रण) अधिनियम, 1967
- (xiii) विस्थापित व्यक्ति (प्रतिकर एवं पुनर्वास) अधिनियम, 1954
- (xiv) जन्म एवं मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969

## कार्य

### (Functions)

गृह मंत्रालय का कार्यक्षेत्र सदैव से ही विस्तृत तथा गंभीर प्रकृति का रहा है। वर्तमान में मंत्रालय के कार्य इसके विभागों के अनुसार यहाँ वर्णित किए जा रहे हैं।

#### 1. गृह विभाग

यह विभाग संवैधानिक प्रावधानों की क्रियान्विति तथा मंत्रालय की शीर्ष नीतियों का निर्माण एवं निष्पादन करता है। इसके अतिरिक्त अन्य कार्य हैं-

- (i) राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् के सदस्यों, राज्यपालों, उपराज्यपालों इत्यादि के पदग्रहण, पदत्याग तथा निलम्बन इत्यादि, की सूचना जारी करना
- (ii) विधायिका में आचार संहिता तथा शांति व्यवस्था सुनिश्चित कराना
- (iii) संसद में सदस्यों का मनोनयन
- (iv) अनुच्छेद-352 तथा अनुच्छेद-356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन
- (v) राष्ट्रीयगीत, राष्ट्रगान, राष्ट्रीय झंडा, राष्ट्रीय पर्व, राजभाषा, गणवेश, राष्ट्रचिन्ह तथा अन्य महत्वपूर्ण मानकों पर निगरानी एवं राष्ट्रीय चरित्र की स्थापना
- (vi) राजनीतिक बन्धियों, निष्काषितों, अल्पसंख्याकों, शरणार्थियों, स्वतन्त्रता सेनानियों, भाषायी अल्पसंख्याकों इत्यादि के मामले निस्तारण
- (vii) जन्म-मृत्यु पंजीकरण तथा जनगणना से सम्बन्धित कार्य
- (viii) राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के पास भेजे जाने वाले विधेयकों पर आवश्यक कार्यवाही
- (ix) राष्ट्रपति द्वारा क्षमादान की शक्तियों के मामले
- (x) नागरिकता तथा विदेशी पंजीकरण के मामले
- (xi) केन्द्रीय एवं राज्य लॉटरीज पर नियमन
- (xii) महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सुरक्षा तथा मृत्यु के समय अन्य आवश्यक कार्यवाहियाँ
- (xiii) विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठित व्यक्तियों का सम्मान, अलंकरण एवं सुविधा देना
- (xiv) अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय तथा अन्तरराष्ट्रीय समझौते के प्रकरण निस्तारित करना
- (xv) स्वयंसेवी संगठनों को मिलने वाली विदेशी सहायता राशि पर नियंत्रण करना
- (xvi) पुलिस आयोग से सम्बन्धित अनुशंसाओं की अनुपालना करना
- (xvii) मानवधिकारों की स्थापना करना तथा उल्लंघन होने पर कार्यवाही करना
- (xviii) मानवधिकारों की स्थापना करना तथा उल्लंघन होने पर कार्यवाही करना

गृह मंत्रालय द्वारा प्रति 10 वर्ष पश्चात् की जाने वाली जनगणना विश्व की सबसे बड़ी प्रशासनिक प्रक्रिया मानी जाती है।

## 2. आंतरिक सुरक्षा

राष्ट्रीय स्तर पर शांति एवं व्यवस्था बनाये रखना इस विभाग का मुख्य दायित्व है। यद्यपि पुलिस, लोक व्यवस्था तथा कारागार, राज्य सूची के विषय हैं तथापि अति महत्वपूर्ण तथा संवेदनशील विषय होने के कारण केन्द्रीय ग ह मन्त्रालय का सहयोग एवं समन्वय आवश्यक हो जाता है। यह विभाग अग्रंकित कार्य करता है-

- (i) राष्ट्र में आंतरिक सुरक्षा एवं व्यवस्था सुनिश्चित करना
- (ii) राज्य सरकारों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के प्रशासन को समुचित मार्गदर्शन एवं सहायता देना
- (iii) साम्प्रदायिक सौहार्द, राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता, विधि का शासन, समानता एवं भाईचारा तथा आपसी सामंजस्य बनाने में सहयोग करना
- (iv) देश की सीमाओं तथा आन्तरिक तंत्र में पुलिस बल तैनात करना
- (v) लोक उपक्रमों में सुरक्षा व्यवस्था सुनिश्चित करना
- (vi) आतंकवाद, अलगावाद, घुसपैठ, अशांति एवं विद्रोह पर नियंत्रण पाना
- (vii) देश भर की जेलों की दशा तथा कैदी जीवन स्तर में सुधार करवाना
- (viii) अन्तरराष्ट्रीय आपराधिक पुलिस संगठन (इन्टरपोल) से समन्वय स्थापित करना
- (ix) नागरिक सुरक्षा, अग्निशमन, होम गार्ड्स तथा युद्धकाल में व्यवस्था से सम्बन्धि कार्य
- (x) भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों की संवर्ग व द्वि, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य पुलिस कर्मियों के व त्तिका विकास प्रकरण
- (xi) शरणार्थी समस्या पर नियंत्रण तथा उनका पुनर्वास
- (xii) पुलिस अनुसंधान, विकास तथा आधुनिकीकरण के प्रयास करना
- (xiii) पुलिसकर्मियों को शौर्य पदक तथा अन्य प्रमाणपत्र इत्यादि प्रदान करना
- (xiv) कतिपय केन्द्रीय अधिनियमों की क्रियान्विति पर निगरानी करना जैसे-
  - (अ) अस्त्र, आग्नेयास्त्र गोलाबारूद तथा विस्फोटक सामग्री अधिनियम, 1908
  - (आ) सरकारी गोपनीयता अधिनियम, 1923
  - (इ) उग्रवाद प्रभावित क्षेत्र (विशेष न्यायालय) अधिनियम, 1984
  - (उ) आवश्यक सेवा नियमन अधिनियम, 1981 (एस्मा)
  - (ऊ) गैरकानूनी गतिविधियाँ (नियंत्रण) अधिनियम, 1996
  - (ए) विदेशी अंशदान नियमन अधिनियम, 1976
  - (ऐ) प्रतीक एवं नाम (अनुचित प्रयोग निवारण) अधिनियम, 1971
- (xv) मानवता की रक्षा हेतु शारीरिक-मानसिक साहस प्रदर्शित करने वालों को कबीर पुरस्कार प्रदान करना।

## 3. राज्य विभाग

जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है यह विभाग राज्यों से सम्बन्धित कार्यों का निरस्तारण करता है। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में सुधार तथा केन्द्रशासित प्रदेशों के प्रशासन का सुचारु संचालन इसके मुख्य दायित्व हैं। फरवरी 1990 में गठित राष्ट्रीय एकता परिषद् तथा मई, 1990 में बनी अन्तरराज्यीय परिषद् एवं विभिन्न क्षेत्रीय परिषदों के माध्यम से केन्द्र-राज्यों, केन्द्रशासित प्रदेशों तथा राज्यों के मध्य आपसी विवाद सुलझाने का प्रयास किया जाता है। यह विभाग कई प्रकार की गुरुतर जिम्मेदारियाँ पूरी करता है, जैसे-

- (i) केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को सुधारना तथा बाधों को दूर करना

- (ii) अन्तरराज्यीय परिषद, राष्ट्रीय एकता परिषद, क्षेत्रीय परिषदों तथा अन्य परामर्शदात्री निकायों या समितियों को प्रशासनिक सहायता
- (iii) नये राज्यों का निर्माण, क्षेत्र में परिवर्तन, नाम में परिवर्तन तथा इससे सम्बन्धित अन्य कार्य
- (iv) पूर्व नरेशों तथा रजवाड़ों से सम्बन्धित विवादों का निस्तारण
- (v) राज्यों से सम्बन्धित मामलों में जाँच आयोगों का गठन एवं सहायता
- (vi) राज्यों के साथ समझौते एवं अन्य कार्यवाहियाँ
- (vii) राज्यों को शांति-व्यवस्था हेतु मार्गदर्शन, सहायता एवं समन्वय
- (ix) सीमावर्ती तथा विशिष्ट क्षेत्रों में विकास एवं कल्याणकारी गतिविधियों का संचालन
- (x) केन्द्र शासित प्रदेशों तथा नेफा (North East Frontier Agency) क्षेत्र के प्रशासन से सम्बन्धित कार्य निष्पादन।

#### 4. राजभाषा विभाग

संघीय सरकार के मंत्रालयों एवं विभागों में राजभाषा हिन्दी के प्रसार तथा मान्यता हेतु विभाग केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो तथा केन्द्रीय हिन्दी समिति के माध्यम में राजभाषा अधिनियम, 1963 की क्रियान्विति सुनिश्चित कराता है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग के अधीन कार्यरत केन्द्रीय हिन्दी संस्थान तथा अन्य प्रशिक्षण संस्थानों के माध्यम से केन्द्रीय लोक सेवकों को हिन्दी में प्रवीण बनाने का प्रयास करता है। राजभाषा विभाग के अन्य कार्य निम्नलिखित हैं:

- (i) केन्द्रीय सचिवालय राजभाषा सेवाओं का संचालन, निर्धारण तथा विकास करना
- (ii) विभिन्न मंत्रालयों में हिन्दी में कार्य को प्रोत्साहन
- (iii) केन्द्रीय मंत्रालयों में पदस्थापित निदेशक (राजभाषा) के माध्यम से प्रत्येक मंत्रालय एवं विभाग द्वारा हिन्दी में किये गये कार्य का मासिक प्रबोधन एवं मूल्यांकन
- (iv) राजभाषा प्रसार हेतु प्रशिक्षण, कार्यशाला तथा अन्य आवश्यक व्यवस्थाएँ करना
- (v) पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो के माध्यम से पुलिस विषय पर हिन्दी में लिखी पुस्तकों को पंडित गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार प्रदान करवाना
- (vi) केन्द्र सरकार के मंत्रालयों या विभागों या अन्य सम्बद्ध संगठनों के कार्मिकों द्वारा हिन्दी में लिखी किसी भी विषय की पुस्तक पर इन्दिरा गाँधी राजभाषा पुरस्कार योजना संचालित करना
- (vii) केन्द्रीय मंत्रालयों तथा विभागों को हिन्दी पुस्तकों की सूची उपलब्ध कराना तथा टी. वी. स्पॉट इत्यादि कार्यक्रम तैयार करना
- (viii) हिन्दी में कम्प्यूटर प्रयोग, द्विभाषी प्रयोग, निकनेट से सम्पर्क तथा हिन्दी प्रयोग को बढ़ावा देने के समस्त प्रयास करना
- (ix) हिन्दी-प्रयोग को सुनिश्चित करने हेतु केन्द्रीय कार्यालयों का निरीक्षण करना तथा उत्कृष्ट कार्य करने वाले मंत्रालय या कार्यालय को राजभाषा शील्ड प्रदान करना।

#### 5. जम्मू-कश्मीर विभाग

भारत के संविधान के अनुच्छेद-370 के अनुसार जम्मू-कश्मीर एक विशेष दर्जा प्राप्त राज्य है अतः इस राज्य के संविधान, कानून तथा केन्द्र के साथ सम्बन्धों को लेकर अनेक प्रकार की तकनीकी समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं। दूसरी ओर पाकिस्तान के साथ लगी जम्मू-कश्मीर की दुर्गम सीमा को लेकर भी अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं। इसीलिए जम्मू-कश्मीर नामक पृथक विभाग कार्यरत है जो इस राज्य से सम्बन्धित समस्त नीति विषयक, अग्रवाद-नियंत्रण, केन्द्र-राज्य सम्बन्ध तथा विकास कार्यक्रमों से सम्बन्धित मुद्दों पर आवश्यक कार्यवाही करता है।

इस प्रकार गृह मंत्रालय का कार्यक्षेत्र अत्यंत व्यापक तथा गंभीर दायित्वों से युक्त है। इसीलिये इस मंत्रालय में सामयिक



परिवर्तन होते रहते हैं। डॉ. पी. डी. शेनाय समिति (अक्टूबर, 2002) की सिफारिश पर ग ह मन्त्रालय ने जनवरी, 2002 से आम नागरिकों को राष्ट्रीय झण्डा फहराने की अनुमति दे दी है। सन् 1991 से मन्त्रालय में पुलिस नियोजन संभाग की स्थापना की गई है जो पुलिसकर्मियों की आवश्यकता, व त्तिका विकास, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवा-दशा सुधार तथा जनसाधारण के साथ बेहतर सम्बन्धों के क्रम में कार्य करता है। राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्यों के बजट का निर्माण तथा केन्द्रशासित एवं अन्य सीमावर्ती क्षेत्रों में प्रशासन तथा विकास कार्यक्रमों का निष्पादन भी मुख्यतः ग ह मन्त्रालय द्वारा निर्देशित-नियंत्रित किया जाता है। होमगार्ड्स के प्रशिक्षण एवं विकास तथा नागरिक भूमिका रहती है। बढ़ते आतंकवाद, अपराध, साम्प्रदायिक दंगों तथा धरना-प्रदर्शन की भारतीय मानसिकता के कारण ग ह मन्त्रालय का कार्य निरसंदेह अत्यंत कठिन तथा चुनौतीपूर्ण हो गया है।

### **सामान्य काल में ग ह मन्त्रालय का योगदान (Role of Home Ministry in Normal Times)**

सामान्यकाल में भी ग ह-मन्त्रालय के कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। देश में शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने का महत्वपूर्ण दायित्व इसी विभाग पर है। लोक-सेवाओं की भर्ती और उनका प्रशासन तथा संघीय क्षेत्रों का प्रशासन करना इसके महत्वपूर्ण दायित्व है। संघीय क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था बनाये रखने का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व ग ह-मन्त्रालय का है, जबकि राज्यों की स्थिति में ग ह-मन्त्रालय इस कार्य के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं होता क्योंकि यह विषय राज्य-सूची के अन्तर्गत आता है। यहाँ ग ह-मन्त्रालय परमर्श सम्बन्धी और समन्वयकारी योगदान करता है। ग ह मन्त्रालय सभी राज्यों के पुलिस बल के प्रशिक्षण, साज-सज्जा, उपकरण एवं कार्य सम्पादन के स्तर का निर्धारण करता है। राज्यों के उच्च पुलिस अधिकारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, स्थानान्तरण आदि का नियमन भी ग ह-मन्त्रालय द्वारा ही किया जाता है क्योंकि वे भारतीय पुलिस सेवा के सदस्य होते हैं। भारत में विदेशियों के प्रवेश, आवास, भ्रमण करने आदि नियन्त्रण ग ह-मन्त्रालय ही करता है। लोक सेवाओं (Public Services) की भर्ती और प्रशिक्षण के लिए समान स्तरों की स्थापना करने, पदोन्नति वरिष्ठता, आचरण, अनुशासन तथा सेवा-शर्तों को नियमित करने वाले सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण इसी मन्त्रालय द्वारा किया जाता है।

केन्द्र के राज्यों के साथ सम्बन्ध (Relations with States) के क्षेत्र में ग ह मन्त्रालय का कार्य यह देखना होता है कि ऐसे राष्ट्रीय प्रकृति के मामलों के सम्बन्ध में किसी न किसी प्रकार तालमेल तथा एकरूपता बनी रहे। पुनश्च, ग ह-मन्त्रालय अन्य अनेक ऐसे कार्य सम्पन्न करता है जो कि उपर्युक्त किसी भी श्रेणी में नहीं आते हैं। इनमें प्रमुख है भारत के गजट का प्रकाशन, राष्ट्रपति के पदों के चुनाव परिणामों की अधिसूचना (Notification) जारी करना तथा उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों, महालेखा परीक्षक (Auditor General), महान्यायवादी (Attorney General) तथा अन्य न्यायाधीशों, महालेखा परीक्षक (Auditor General) महान्यायवादी (Attorney General) तथा संघीय लोक सेवा आयोग, अन्तर्राज्यीय आयोग, चुनाव आयोग, भाषा आयोग एवं भाषाई अल्पसंख्यकों के आयोग के चेयरमैन व सदस्यों की नियुक्तियों की विज्ञप्तियाँ जारी करना। यह मन्त्रालय पूर्वता अधिपत्र (Warrant of Precedence) तथा राष्ट्रीय छुट्टियों की सूची तैयार करता है। राष्ट्रपति द्वारा दिये जाने वाले पदकों (Medals) के सम्बन्ध में यही निश्चित करता है। इसका सम्बन्ध राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान, राष्ट्र-चिन्ह व जनगणना से तथा भारत सरकार व भूतपूर्व भारतीय रियासतों के शासकों के मध्य के विलय तथा पारस्परिक करारों से होता है जिसमें कि भूतपूर्व राजाओं के प्रिवीपर्स शामिल हैं। यही नहीं विदेशियों को नागरिकता, प्रेस सम्बन्धी कानूनों, संसद व्यवस्था चुनाव शास्त्रासत्र सम्बन्धी अधिनियम (Act) व नियम, संकटकालीन सहायता, अग्निशामक सेवाएं, अपराधी जनजातियों, अन्तर्राज्यीय आवागमन, सरकारी भाषा तथा राज्यसभा के लिए 13 सदस्यों का नामांकन भी ग ह मन्त्रालय द्वारा ही होता है। इस प्रकार से सामान्य काल में ग ह-मन्त्रालय की देश की राजनीतिक व्यवस्था में अत्यन्त प्रभावशाली और सक्रिय भूमिका है।

### **आपात्काल में ग ह मन्त्रालय का योगदान (Role in Emergency)**

आपात्काल में ग ह-मन्त्रालय की अत्यन्त विशिष्ट भूमिका होती है। यह संविधान के अनुच्छेद 352 और 356 में निहित व्यवस्थाओं का प्रयोग करता है। आपात्कालीन अथवा संकटकालीन व्यवस्थाओं से सम्बन्धित मामलों के विषय में (वित्तीय संकटकाल से सम्बन्धित मामलों को छोड़कर) ग ह-मन्त्रालय को प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। विदेशी आक्रमण से उत्पन्न राष्ट्रीय आपात्काल की स्थिति में ग ह-मन्त्रालय को जनता का मनोबल (Morale) बराबर ऊँचा बनाए रखना होता है। ग ह-मन्त्रालय इस सम्बन्ध में राजनीतिक निर्णय करता है कि संकटकालीन स्थिति की घोषणा को कब समाप्त किया जाये।

### ग ह-मन्त्रालय के सम्मुख उपस्थित मुख्य चुनौतियाँ

भारत जैसे विशाल देश में ग ह-मन्त्रालय की भूमिका चुनौतीपूर्ण रही है। वर्तमान में भारत के ग ह-मन्त्रालय को निम्नलिखित प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है-

1. काफी लम्बे समय से चल रही पंजाब में आतंकवादी गतिविधियों ने ग ह-मन्त्रालय के सम्मुख प्रबल चुनौती उपस्थित की हैं।
2. उत्तरी-पूर्वी सीमान्त प्रदेशों में अराजकतावादी शक्तियों की गतिविधियाँ ग ह-मन्त्रालय के सामने चुनौती उपस्थित कर रही हैं। नागा-विद्रोहियों की भूमिगत गतिविधियाँ।
3. बाँगलादेश से आने वाले घुसपैठियों की समस्या।
4. विगत कुछ वर्षों से अनेक कारणों से देश में साम्प्रदायिकता का उफान आया है।
5. अयोध्या में राम-जन्म भूमि और बाबरी मस्जिद वाला प्रकरण।
6. बम्बई, कलकत्ता और देश के अन्य महानगरों में हुए बम-विस्फोट।
7. माफिया-गिरोहों की गतिविधियों सार्वजनिक जीवन को अस्त-व्यस्त कर रही हैं अवैध कार्यों को प्रोत्साहित करती हैं। सरकारी भूमि पर कब्जा करने अथवा अतिक्रमण।
8. भारतीय पुलिस की बिगड़ी हुई छवि।
9. दक्षिण भारत के राज्यों, विशेष रूप से तमिलनाडू में श्रीलंका के आतंकवादी संगठन लिट्टे की गतिविधियाँ।
10. ग ह-मन्त्रालय पर देश के अति विशिष्ट व्यक्तियों, प्रमुख राजनीतिक व्यक्तियों और विदेश राजनयिक मिशनों के कर्मचारियों की सुरक्षा।
11. ग ह-मन्त्रालय की केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के निर्धारण में प्रमुख भूमिका है।
12. राज्यों के अनुच्छेद 356 का भी व्यापक प्रयोग रहा है जिसके कारण ग ह मंत्रालय के कार्य में बढ़ोतर हुई है।
13. देश में संसदीय तथा राज्य विधानसभाओं के निर्वाचनों को शांतिपूर्ण ढंग से सम्पन्न कराना।
14. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन-जाति के लोगों का कल्याण।
15. अल्पसंख्यकों में विश्वास भाव जाग्रत करना।
16. हवाला-प्रकरण के बाद सी. बी. आई (केन्द्रीय जाँच ब्यूरो) की स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता को बनाये रखने का गहन दायित्व।

उपयुक्त विश्लेषण के आधार पर यही कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के पश्चात् ग ह-मन्त्रालय की भूमिका में निरन्तर विस्तार होता जा रहा है।

## अध्याय-13

# विदेश मन्त्रालय

## (Ministry of External Affairs)

आज के अन्तर्राष्ट्रीय युग में संसार के सभी देशों के राजनैतिक नियमन के प्रशासन में विदेश मन्त्रालय का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत के संदर्भ में यह बात और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत की अपनी स्वतन्त्र भौगोलिक स्थिति एवं विदेश नीति (गुट निरपेक्ष) के सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक के नियमन एवं संचालन में एक विशेष प्रकार की भूमिका निभाते हैं। भारत का विदेश मन्त्रालय देश के प्रमुख मन्त्रालयों में से एक है। यह अन्य देशों के साथ भारत के राजनीतिक एवं विदेशी सम्बन्धों का नियमन करने वाली एवं विदेश नीति का निर्माण एवं क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी है।

भारत में सर्वप्रथम 1783 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में 'विदेश विभाग' की स्थापना की गई। सन् 1914 में इसका नाम विदेश विभाग से बदलकर 'विदेश एवं राजनीति विभाग' कर दिया गया। सन् 1946 में विदेशी कार्यों से सम्बन्धित दो विभाग कार्यरत थे- विदेश विभाग तथा राष्ट्रमण्डलीय सम्बन्ध विभाग। स्वतन्त्र भारत में 1947 में इन दोनों विभागों को मिलाकर एक 'विदेश एवं राष्ट्रमण्डलीय सम्बन्ध मन्त्रालय' बना दिया गया। सन् 1948 में इस मन्त्रालय को सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय का विदेशी प्रचार विषय भी सौंप दिया गया। सन् 1949 में इस मन्त्रालय से राष्ट्रमण्डलीय शब्द हटाकर केवल इसे विदेश मन्त्रालय नाम दिया गया। तब से ये विदेश मन्त्रालय के रूप में ही कार्यरत है।

### विदेश मन्त्रालय का संगठन (Organisation)

यह मन्त्रालय एक विशाल मन्त्रालय है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व यह मन्त्रालय सदैव ही गवर्नर जनरल की देखरेख में रहा। स्वतन्त्रता के बाद जब तक पंडित नेहरू भारत के प्रधानमंत्री रहे तब तक वे विदेश-मंत्री भी बने रहे। उसके बाद भी इस मन्त्रालय के सभी मंत्री हमेशा कैबिनेट के महत्वपूर्ण सदस्यों में से रहे।

इस मन्त्रालय का प्रधान कैबिनेट स्तर का एक मंत्री होता है। उसकी सहायता के लिए राज्यमंत्री एवं उपमंत्री होते हैं। जून 1991 में एम.एस. सोलंकी भारत के विदेश-मंत्री थे। उन्होंने लगभग एक वर्ष तक इस पद पर कार्य किया। बाद में उन्होंने इस पद से त्यागपत्र दे दिया। जुलाई 1992 में जब नरसिंह राव ने मन्त्रिमण्डल का पुनर्गठन किया तब इस मन्त्रालय को स्वयं अपने अधीन रखा। उनकी सहायता के लिए अनेक पदाधिकारी कार्यरत हैं। विदेश सचिव मन्त्रालय को स्वयं अपने अधीन रखा। उनकी सहायता के लिए अनेक पदाधिकारी कार्यरत हैं। विदेश सचिव मन्त्रालय का प्रशासकीय सचिव होता है। विदेश सचिव की सहायता के लिए दो और अपने-अपने क्षेत्रों में सीधे मंत्री के सम्पर्क में रहकर कार्य करते हैं। पहले इन तीनों सचिवों के कार्यों में समन्वय स्थापित करने के लिए एक महासचिव हुआ करता था, किन्तु 1964 में इस पद को समाप्त कर दिया गया। सलमान हैदर विदेश सचिव के स्थान पर 30 जून 1997 से के. रघुनाथ नये विदेश सचिव के पद पर कार्य कर रहे हैं। फरवरी 1995 से दिनेशसिंह के स्थान पर प्रणव मुखर्जी विदेश मंत्री के पद पर कार्यरत रहे। प्रधानमंत्री बाजपेयी ने भी विदेश मन्त्रालय अपने पास रखा है किन्तु वर्तमान में जसवन्त सिंह विदेश मंत्री हैं।

विदेश मन्त्रालय में एक सचिवालय और दो अधीनस्थ कार्यालय हैं। अभी तक इस मन्त्रालय में कोई संलग्न कार्यालय नहीं है। इनके अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्व में भारत सरकार मे राजदूत फौले हुए हैं और इन्हें मन्त्रालय का अधीनस्थ अथवा संलग्न कार्यालय

नहीं कहा जा सकता।

विदेश मन्त्रालय में एक-एक विदेश सेवा बोर्ड है जो विदेश सचिव के अधीन कार्य करता है। बोर्ड में अन्य सचिव (पूर्व), सचिव (पश्चिम) और संयुक्त सचिव (प्रशासन) होते हैं। वाणिज्य मंत्रालय का सचिव भी इस बोर्ड का सदस्य होता है। विदेश सेवा बोर्ड मन्त्रालय के सेवी-वर्गों की पदोन्नति, पदांकन, ट्रान्सफर, स्थायीकरण आदि कार्यों के सम्बन्ध में सरकार को परामर्श देता है। मन्त्रालय का स्वयं का "विदेश सेवा प्रशिक्षण संस्थान" है। इसके अतिरिक्त मन्त्रालय में "इण्डियन कौन्सिल ऑफ कल्चरल रिलेशन्स" नाम का एक स्वतन्त्र संस्था है। इसकी स्थापना सन् 1950 में हुई थी जिसका मुख्यालय दिल्ली में है। इसकी क्षेत्रीय शाखाएँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य दूसरे देशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्धों को मजबूत करना तथा आदान-प्रदान करना था। यह संस्थान अपनी स्वयं की पत्रिका अंग्रेजी, हिन्दी, फ्रांसीसी, अरबी और स्पेनिश भाषा में प्रकाशित करता है। इसके द्वारा पुस्तकें भी प्रकाशित की जाती हैं। शोधकर्ता तथा अध्ययन करने वाले के लिए स्वयं का एक बड़ा पुस्तकालय है जिसमें वर्ष 1990-91 में लगभग 75,000 पुस्तकें थीं।

यह मन्त्रालय 19 प्रभागों में विभाजित है। प्रभागों का यह वर्गीकरण कार्यात्मक है। 19 प्रभागों में से 9 प्रादेशिक प्रभाग, 6 विशेषज्ञ प्रभाग और 4 विविध विषयों से सम्बन्धित प्रभाग हैं। विश्व के दूसरे देशों के साथ सम्बन्धों को बनाये रखने के लिए विदेश-मन्त्रालय ने सारे देशों को उनकी भौगोलिक स्थिति के आधार पर 9 भागों में विभाजित किया है। ये 9 भाग हैं -

1. अमरीकी प्रभाग,
2. यूरोपीय प्रभाग,
3. पश्चिमी एशियाई और उत्तरी अफ्रीका प्रभाग,
4. अफ्रीका प्रभाग,
5. पाकिस्तान प्रभाग,
6. बंगलादेश प्रभाग,
7. उत्तरी एशिया प्रभाग,
8. पूर्वी एशिया प्रभाग,
9. दक्षिणी एशिया प्रभाग।

इस प्रकार इस मन्त्रालय के प्रत्येक प्रभाग में अनेक देश हैं, जो भौगोलिक आधार पर सम्मिलित किये गये हैं। प्रत्येक प्रभाग अपने क्षेत्र में आने वाले देशों से भारत के वैदेशिक सम्बन्धों के संचालन के लिए उत्तरदायी है। उपर्युक्त 9 प्रभागों के अतिरिक्त दस अन्य प्रभाग और हैं जो विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं। वे इस प्रकार हैं -

1. प्रोटोकॉल डिवीजन,
2. संयुक्त राष्ट्र तथा सम्मेलन डिवीजन,
3. वैधानिक एवं सन्धि डिवीजन,
4. पासपोर्ट, एमिग्रेशन तथा कॉन्सलर डिवीजन,
5. विदेशों में प्रचार डिवीजन,
6. ऐतिहासिक डिवीजन,
7. प्रशासकीय डिवीजन,
8. आर्थिक डिवीजन,
9. नीति आयोजन तथा पुनर्निरीक्षण डिवीजन,
10. कर्मचारी सुरक्षा, संचार और नागरिक सुरक्षा डिवीजन।

**अधीनस्थ कार्यालय** - मन्त्रालय के दो अधीनस्थ कार्यालय हैं -

1. केन्द्रीय पारपत्र एवं उत्प्रवास संगठन, तथा
2. विदेश-मन्त्रालय का होस्टल।

**विदेशों में दूतावास** - विदेशों में राजदूत, उच्चयुक्त तथा वाणिज्य कमीशन आदि प्रकार के दूतावास हैं। प्रशासकीय दृष्टि से इनकी स्थिति ऐसी है कि उन्हें परिभाषित रूप में संलग्न या अधिनस्थ कार्यालय नहीं कहा जा सकता। फिर भी प्रशासकीय दृष्टि के आधार पर विदेशों में स्थित भारतीय राजनयिक एवं वाणिज्य कार्यालयों को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है -

1. दूतावास (आवासीय)
2. दूतावास (अनावासीय)
3. उच्चायुक्त (आवासीय)
4. उच्चायुक्त (अनावासीय)
5. उप-उच्चायुक्त या सहायक उच्चायुक्त
6. आयुक्त (आवासीय)
7. आयुक्त (अनावासीय)
8. लिंगेशन (अनावासीय)
9. कौंसुलेट्स जनरल (आवासीय)
10. कौंसुलेट्स जनरल (अनावासीय)
11. कौंसुलेट्स (आवासीय)
12. वाइस-कौंसुलेट्स (आवासीय)
13. आवासीय वाणिज्य कमीशन
14. विशेष मिशन (आवासीय)

**विदेश मन्त्रालय के कार्य**

(Functions)

1. विदेशी राज्यों तथा राष्ट्रमण्डलीय देशों से भारत के सम्बन्धों को निर्वहन करना।
2. भारत में स्थिति विदेशी राजनयिक तथा वाणिज्य दूतावासों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकारियों एवं इनमें विशेष अभिकरणों को प्रभावित करने वाले सभी विषयों पर विचार करना।
3. भारतीय नागरिकों तथा भारत में आने वाले विदेशी नागरिकों के पारपत्र एवं वीसा सम्बन्धी कार्यों का संचालन करना।
4. विदेशों के अपराधियों का भारत से प्रत्यर्पण तथा विदेशों से भारतीय अपराधियों का प्रत्यर्पण करना।
5. विदेशी मामलों के कारण उत्पन्न स्थिति के संदर्भ में भारत में निवारक नजरबंदी कानून लागू करना।
6. भारतीय अधिनियम 1952 के तहत प्रवासियों को भेजना तथा बुलाना।
7. भारत में तिब्बत और तिब्बत से भारत के लिए सभी व्यापारियों, कुलियों तथा तीर्थ यात्रियों के लिए यात्रा का प्रबन्ध करना।
8. नागालैण्ड राज्य से सम्बन्धित विषयों का संचालन करना।
9. विदेशियों को भारत से स्वदेश भेजना तथा भारतीयों को विदेशों से स्वदेश बुलाना।
10. विदेशी शरणार्थियों तथा विदेशों में सेवा अर्पित करने वालों के उत्तराधिकारियों को पेन्शन देना।

11. विदेशी आगन्तुकों, राजनयिकों तथा वाणिज्य दूतावास के प्रतिनिधियों के स्वागत आदि का औपचारिक कार्य सम्पन्न करना।
12. पाण्डिचेरी, गोआ, दमन तथा दीव के उन विषयों का संचालन करना है जो फ्रांस और पुर्तगाल से सम्बन्धित हैं।
13. भूटान जैसे राज्यों के साथ सम्बन्धों का निर्वाह करना।
14. सीमावर्ती क्षेत्रों में विकास कार्यक्रम चलाना।
15. संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट अभिकरणों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेना।
16. भारतीय विदेश सेवा तथा उसकी शाखा "बी" का संचालन करना।
17. विदेशों में भारतीय विदेश नीति का प्रचार करना।
18. विदेशों के साथ राजनैतिक संधियों, समझौते और अधिवेशनों में शामिल होना।
19. भारत के बाहर स्थित तीर्थ स्थानों पर भारतीय तीर्थयात्रियों को सहयोग देना है। सन् 1955 के पन्त मिर्जा समझौता के अनुसार पाकिस्तान में गैर-मुस्लिम तीर्थ स्थानों तथा भारत में मुस्लिम तीर्थ स्थानों की रक्षा तथा देखभाल करना।
20. पाकिस्तान से गैर-मुस्लिमों के भारत आगमन को नियमित करना।
21. भारत और पाकिस्तान में अल्पसंख्यक वर्गों के अधिकारियों की रक्षा करना।
22. युद्ध प्रारम्भ करना अथवा युद्ध विराम करने के सम्बन्ध में सूचनाएँ जारी करना।
23. जल, थल, वायु तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के उल्लंघन और महासागरों पर की जाने वाली डकैती तथा अपराधी के सम्बन्ध में आवश्यक कार्यवाही करना।
24. अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूछताछ करता है तथा सांख्यिकी एकत्रित करता है।
25. भारत की भूमि सीमाओं का निर्धारण करना।
26. देश की भूमि सीमाओं पर होने वाले आक्रमणों तथा वारदातों का मुकाबला करना।
27. भारत के ऊपर से गुजरने वाले गैर-अनुसूचित विदेशी नागरिक तथा सैनिक विमानों को राजनयिक उड़ान की अनुमति देना।
28. अन्तर्राष्ट्रीय कानून से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर विचार करना करता है, जैसे-प्रादेशिक जल, संस्पर्शी क्षेत्र, महासमुद्रों में मछली पकड़ने के अधिकारों का समर्थन आदि।

### मूल्यांकन (Evaluation)

भारत की स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जितनी सुदृढ़ होनी चाहिए आज हम अपनी उतनी सुदृढ़ स्थिति अनुभव नहीं करते। मन्त्रालय को वास्तविक रूप से जितना काम करना चाहिए उतना वह करने में असमर्थ दिखाई देता है। ए. डी. गोरवाला ने इन असफलताओं की ओर संकेत करते हुए कहा था, "कोई भी अनुभवी व्यक्ति जो दिल्ली स्थित विदेश मन्त्रालय का निरीक्षण करे वह नेहरू जी की प्रशासकीय अयोग्यता का स्पष्ट रूप से अवलोकन कर सकता है। मन्त्रालय में काम करने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है, उनके पास काम बहुत कम है। विदेश स्थित दूतावासों के कर्मचारी उस देश की भाषा को समझने का प्रयास नहीं करते जहाँ के लिए वह नियुक्त होते हैं। कार्य करने का बहुत कम ज्ञान है। सभी सम्पर्कों के ज्ञान का अभाव है, ऊँचा रहने तथा अनावश्यक प्रदर्शन पर धन का अपव्यय होता रहता है।"

एक कुशल व्यक्ति ने बहुत समय पूर्व इन दोषपूर्ण व्यवस्थाओं को छोड़ दिया होता। जैसे-जैसे समय बढ़ता जा रहा है वैसे ही नेहरू प्रशासन में स्थिति खराब होती जा रही है। आज नेहरू जी नहीं हैं। प्रशासन में परिवर्तन आये हैं, लेकिन विदेश जाने वाले साधारण नागरिक से लेकर संसद सदस्यों तक की यह शिकायतें हैं कि हमारे आवासी कुशलतापूर्वक कार्य नहीं करते। वे अधिक रूचि लेकर भी कार्य नहीं करते। एक छोटा सा शेष बचा पाकिस्तान प्रचार की दृष्टि से बहुत सशक्त दिखाई देता है, उसका परिणाम हमारे विदेशी दूतावासों की अकर्मण्यता नहीं तो यह क्या है।

विदेश मन्त्रालय में वॉछनीय सुधारों के सम्बन्ध में पिल्लई कमेटी ने अनेक महत्त्वपूर्ण सिफारिशें प्रस्तुत की। इनमें से कुछ प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं -

पिल्लई कमेटी का कहना था कि इन मन्त्रालय में कोई परामर्शदात्री निकाय नहीं है। मन्त्रालय में अपने कार्यों के सम्बद्ध में विशिष्ट परामर्श देने वाले विशेषज्ञ अभिकरणों का अभाव एक संगठनात्मक दुर्बलता है। मन्त्रालय को चाहिए कि वह विशेषज्ञ सलाहकारों के कुछ ऐसे प्रशासकीय निकाय गठित करे, जिनसे मन्त्रालय का कार्य विशेषीक त ढंग से संचालित किया जा सके। कमेटी की मान्यता थी कि हमारी विदेश नीति जो अब तक विश्व स्तर पर असफल रही है, उसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि हमारे प्रधानमंत्री एवं विदेश मंत्री नेहरू ने अपने विदेश मन्त्रालय के अधिकतर निर्णय व्यक्तिगत स्तर पर लिये और विशेषज्ञों की सहायता नहीं के बराबर ली। अतः पिल्लई कमेटी का यह सुझाव है कि इस मन्त्रालय में कुछ ऐसे परामर्शदाता निकाय होने चाहिए जो नीति निर्माण में निरन्तरता के साथ विशिष्ट सलाह दे सकें।

विदेश मन्त्रालय के सम्बन्ध में प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी कुछ सिफारिशें की हैं। आयोग का कहना है कि हमारी विदेशी नीति में मौलिक परिवर्तन नहीं हो सके हैं। समय के साथ-साथ विदेश नीति के मूल आधारों में परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक हैं। अतः प्रशासकीय सुधार आयोग का मत था कि भारत की विदेश नीति के आधार क्या हों तथा इन मन्त्रालय को विदेशों के साथ कैसे सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए इन निर्णयों को लेने के लिए एक "नियमित विभाग" स्थापित किया जाना चाहिए। यह विभाग सदैव इस प्रकार के अनुसन्धान में लगा रहे कि भारत के विदेश मन्त्रालय को किन-किन देशों से कब और कैसे सम्बन्ध स्थापित करना देश के राष्ट्रीय हित में होगा। अमूक देश के साथ वर्तमान समय में जो सम्बन्ध हैं, वे ठीक हैं अथवा नहीं और यदि इन्हें बदलना हो तो किस प्रकार? यह सब कार्य इस विभाग का उत्तरदायित्व होना चाहिए।

विदेश मन्त्रालय के संगठन एवं कार्यों का उपर्युक्त अध्ययन यह बतलाता है कि विदेशों से सम्बन्धित भारत सरकार के जितने भी विषय अथवा कार्य हैं, उन सबका नियमित निर्वाह इसी मन्त्रालय के द्वारा किया जाता है। विश्व के राष्ट्रों के साथ शत्रुता, मित्रता अथवा तटस्थता के सम्बन्ध स्थापित करने के निर्णय इसी मन्त्रालय द्वारा लिए जाते हैं। इसके दूतावासों को विदेशों में भारत की ऐसी आँखों एवं कानों की संज्ञा दी जा सकती है, जो दूसरे देशों के सम्बन्ध में भारत सरकार को समय-समय पर आवश्यक सूचनाएँ देते रहते हैं। इसी सूचना के आधार पर भारत सरकार उन देशों से अपने संबंधों में आवश्यक परिवर्तन करती रहती है। समय-समय पर राजदूतों के सम्मेलन बुलाकर भी उन्हें आवश्यक निर्देश दिए जाते हैं और वैदेशिक संबंधों की समीक्षा की जाती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यही कहा जा सकता है कि गृह, वित्त, रक्षा एवं विदेश मन्त्रालय का भारती शासन-व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

## अध्याय-14

### रक्षा मन्त्रालय : संगठन एवं कार्य

### (Ministry of Defence : Organisation and Functions)

भारत के केन्द्रीय प्रशासन में रक्षा मन्त्रालय की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके पीछे लम्बा अतीत है। सन् 1776 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में सैनिक विभाग के रूप में रक्षा मन्त्रालय की स्थापना हुई थी। सन् 1938 में सैनिक विभाग के नाम में परिवर्तन कर इसे 'रक्षा विभाग' कहा जाने लगा। सन् 1942 में रक्षा विभाग का विभाजन कर इसे युद्ध विभाग तथा रक्षा विभाग में परिवर्तित कर दिया गया। इस तरह से रक्षा विभाग दो भागों में विभक्त हो गया। महायुद्ध की समाप्ति के बाद स्थिति में पुनः परिवर्तन हुआ और पूर्व स्थिति को बहाल करने का निर्णय लिया गया। परिणामस्वरूप युद्ध विभाग और रक्षा विभाग का पुनः एकीकरण करते हुए 'रक्षा विभाग' की स्थापना की गई। सन् 1946 में देश में अन्तरिम सरकार की स्थापना के साथ ही रक्षा मन्त्रालय की स्थिति में परिवर्तन किया गया। अब इस विभाग की अध्यक्षता का दायित्व मुख्य सेनाध्यक्ष या सेनापति के स्थान पर मंत्री को सौंपा गया। सन् 1947 में रक्षा विभाग का नाम परिवर्तित करके रक्षा मन्त्रालय कर दिया गया। इस तरह से रक्षा मन्त्रालय का समय-समय पर पुनर्गठन होता रहा है।

1906 में सैनिक विभाग को समाप्त कर दो नये विभागों का निर्माण किया गया। प्रथम, सेना विभाग को सेनापति के अधीन तथा सेना आपूर्ति विभाग को सैनिक सदस्य के नियन्त्रण में रखा गया। दोनों अपने-अपने कार्यों के प्रति उत्तरदायी थे। कुछ वर्षों बाद 1909 में सैनिक सदस्य के पद को समाप्त करके सेनापति सर्वोच्च सत्ता सहित सैनिक सदस्य बन गया। 1938 में सैनिक विभाग का नाम बदलकर रक्षा विभाग कर दिया गया। 1942 में रक्षा विभाग पुनः दो हिस्सों में विभाजित किया गया - युद्ध विभाग प्रमुख सेना कमाण्डर के अधीन और रक्षा विभाग भारत के रक्षा सदस्य के अधीन था। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् दोनों विभागों को मिलाकर एक विभाग कर दिया गया जिसे रक्षा विभाग के नाम से सम्बोधित किया गया। स्वाधीनता के पश्चात् यह रक्षा मन्त्रालय बन गया जो एक स्वतन्त्र कैबिनेट मन्त्री के अधीन था। इसी समय थल, वायु और नौसेना को अलग-अलग सेनापति के अधीन कर दिया गया। नवीन संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति को रक्षा सेवाओं का सर्वोच्च सेनापति घोषित किया गया। इसके फलस्वरूप प्रमुख सेनापति का पद समाप्त (1955) कर दिया गया और सेना के प्रमुखों को थल सेना प्रमुख, नौसेना प्रमुख और वायु सेना प्रमुख कहा जाने लगा। सन् 1962 में 'रक्षा उत्पादन विभाग' की स्थापना की गयी और 1965 में 'रक्षा पूर्ति विभाग' स्थापित किया गया।

#### कार्य-योजना और समितियाँ

सामान्यतः रक्षा मन्त्रालय का काम करने का तरीका वही है जो अन्य मन्त्रालयों का है। यद्यपि फाइलों की आवाजाही, टिप्पणियाँ, प्रारूप और पत्राचार के माध्यम से सभी सूचनाएँ उपलब्ध करने का औपचारिक तौर-तरीका मन्त्रालय द्वारा अपनाया जाता है फिर भी प्रशासनिक प्रक्रिया, उच्च अधिकारियों के साथ सम्पर्क, बातचीत और परामर्श की पद्धति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

कई वर्षों से रक्षा मन्त्री की सहायता के लिए अनेक समितियाँ कार्य कर रही हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण सेनाध्यक्षों की समिति है। इसी समिति में थल सेनाध्यक्ष, नौसेनाध्यक्ष और वायुसेनाध्यक्ष होते हैं। इस समिति का अध्यक्ष उसे बनाया जाता है, जो इस समिति में सबसे अधिक समय से काम कर रहा हो। इसी समिति की सहायता के लिए बहुत-सी उप-समितियाँ होती हैं, जो



योजना, प्रशासन संचार आदि विशिष्ट विषयों पर विचार करती हैं। ये समितियाँ विभागीय समन्वय के साथ-साथ निर्णय लेने में सहायक सिद्ध होती हैं।

जिन महत्त्वपूर्ण विषयों पर तत्काल निर्णय लेने की आवश्यकता होती है, उन पर रक्षा मंत्री की प्रायःकालीन बैठकों में विचार-विनिमय किया जाता है। इन बैठकों में तीनों सेनाध्यक्ष, मन्त्रिमण्डल के सचिव और रक्षा मन्त्रालय के सभी विभागों के सचिव भाग लेते हैं।

**सेनाध्यक्ष :** सशस्त्र सेनाएँ अथात् सेना, नौसेना और वायुसेना अपने-अपने सेनाध्यक्षों के अधीन काम करती हैं और प्रधान स्टाफ अफसर इनकी सहायता करते हैं।

**समन्वित वित्त:** वित्तीय सलाहकार (रक्षा सेवाएँ) अपने दायित्वों का निर्वाह करने में रक्षा मन्त्रालय की सहायता करते हैं। मन्त्रालय तथा सेना मुख्यालय से ये निकट सम्पर्क बनाए रखते हैं। वित्तीय सलाहकार के अधीन काम कर रहे वित्त विभाग के कार्य अनुबन्ध 2 में दिये गए हैं।

### **प्रशासन को कुशल बनाना**

समय-समय पर रक्षा-मन्त्रालय के कार्य को गतिशील बनाने एवं प्रशासन को चुस्त व अधिक कुशल बनाने के लिए अनुशासनबद्धता तथा समय की पाबन्दी आदि अनेक उपाय अपनाए गये हैं। कुछ मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं -

प्रशासन को अधिक कुशल बनाने में लगने वाले समय को कम करने और खर्च में मितव्ययता अपनाने के लिए अनेक अध्ययन किये गए। मन्त्रालय का रिकार्ड ठीक प्रकार से रखने पर निरन्तर निगरानी रखी गयी है। बेकार और पुराने रेकार्ड को नष्ट करने के लिए प्रयत्न किए जाते रहे हैं।

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सभी अनुभागों का नियमित निरीक्षण करने के अलावा वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा विभिन्न परिसरों में स्थित कार्यालयों का नियमित अचानक निरीक्षण किए जाने की परम्परा और पद्धति का सहारा लिया जाता है। इनका उद्देश्य समय की पाबन्दी, सफाई और काम को शीघ्र निपटाना होता है। इसके परिणामस्वरूप मन्त्रालय के काम के तौर-तरीके में काफी सुधार हुआ है।

देश के लिए सुरक्षा योजना का निर्माण करना रक्षा मन्त्रालय का सर्वोपरि और प्राथमिक कर्तव्य है। चीन के आक्रमण के बाद 1964 ई. में रक्षा के सम्बन्ध में निरन्तर योजना बनाए रहने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। तब से निरन्तर विस्तृत योजना बनाने और उसका प्रबोधन करने रहने की योजना प्रचलित है।

एक प्रक्रिया के रूप में योजना का विस्तार करते हुए रक्षा संगठन की विभिन्न युनिटों के कार्य कलापों में सामंजस्य लाया जाता है। अपने कार्य को सर्वोच्च महत्त्व प्रदान करते हुए इसका उद्देश्य आयोजकों की सहायता करना है ताकि वे भविष्य को अधिक स्पष्ट रूप से देख सकें और उपलब्ध सीमाओं के अन्तर्गत उसके लिए समुचित योजना तैयार कर सकें। इस प्रकार के प्रयत्नों के निर्धारण में विभिन्न तत्व कार्यनीति, सक्रियात्मक आवश्यकता, गुप्त जानकारियाँ और राजनीतिक सूझबूझ का योगदान रहता है।

रक्षा क्षेत्र का आकार बढ़ने के साथ-साथ उसकी योजना में जटिलताएँ बढ़ गई हैं। सक्रियात्मक आवश्यकता के स्तर पर आयोजना के काम में दो प्रकार के अभ्यास करने पड़ते हैं -

1. देश के संसोधनों का निश्चित कर उनमें से कितनी मात्रा में रक्षा के कार्यों में व्यय कर सकता है, और
2. इन संसाधनों को विभिन्न कार्यों के लिए आबंटित करना, जो बहुत ही आवश्यक है।

विभिन्न स्पर्धात्मक आवश्यकताओं को इस प्रकार समन्वित करना होता है कि समस्त उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके। इस बात का अभ्यास एक बहुत कठिन कार्य होता है।

### **रक्षा मन्त्रालय का सचिवालय**

रक्षा मन्त्रालय का सचिवालय (Secretariat) की निम्नांकित 13 शाखाएँ (Branches) हैं -

1. आर्डिनेंस शाखा (Ordinance Branch)
2. एडजुटेंट जनरल की शाखा (Adjutant General's Branch)
3. वायु शाखा (Air Branch)
4. वेतन तथा पेंशन शाखा (Salary and Pension Branch)
5. सामान्य स्टाफ शाखा (General Staff Branch)
6. समन्वय शाखा (Co-ordination Branch)
7. सावधानी व सतर्कता शाखा (Vigilance Branch)
8. नौ-सेना शाखा (Navy Branch)
9. कर्मचारी वर्ग शाखा (Personnel Branch)
10. पंजीकरण शाखा (Registration Branch)
11. कर्मचारी सम्पर्क शाखा (Personnel Relations Branch)
12. क्वार्टर मास्टर जनरल शाखा (Quarter-master General's Branch)
13. प्रशासन शाखा (Administration Branch)

स्थल-सेना, नौ-सेना तथा वायु-सेना के प्रधान कार्यालय अथवा सदर मुकाम (Headquarters) इस मंत्रालय से संलग्न होते हैं।

### रक्षा व्यय

रक्षा योजना तैयार करने वालों को विश्व स्तर पर हुए परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र में उत्पन्न विशिष्ट खतरों के संदर्भ में कार्यक्रमों की समीक्षा का चुनौतीपूर्ण कार्य करना होता है। रक्षा योजना तैयार करने वालों का यह प्रयास रहता है कि भारत की रक्षा सेनाओं की न्यूनतम अनुरक्षण आवश्यकताओं और उनके आधुनिकीकरण के कार्य में संतुलन रखा जाए जिससे अर्थव्यवस्था पर उसका अनावश्यक बोझ न पड़े। भारत के आकार और सुरक्षा के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए, रक्षा व्यय का निर्धारण जो केन्द्रीय सरकार के कुल व्यय का सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में किया गया है, पड़ोसी देशों के व्यय की तुलना में सबसे कम है।

### रक्षा मंत्रालय के कार्य

रक्षा मंत्रालय अपने तीनों विभाग - रक्षा विभाग, रक्षा उत्पादन एवं आपूर्ति विभाग, रक्षा अनुसंधान एवं विकास विभाग तथा रक्षा वित्त विभाग के द्वारा निम्नलिखित कार्य करता है -

#### 1. रक्षा विभाग

1. भारत और उसके प्रत्येक भाग की रक्षा करना, इसमें रक्षात्मक तैयारियाँ तथा ऐसे सभी काम आते हैं जो युद्ध के समय युद्ध को ठीक ढंग से चलाने तथा युद्ध के बाद सेना को ढंग से विकसित करने के लिए आवश्यक हैं।
2. संघ की सशस्त्र सेनाएँ थल सेना, नौसेना, वायुसेना।
3. थल सेना, नौसेना और वायुसेना के रिजर्व।
4. प्रादेशिक सेना।
5. राष्ट्रीय कैडिट कोर।
6. थल सेना, नौसेना, वायुसेना और आयुध निर्माणियों से सम्बन्धित कार्य।
7. रिमाउंट, वेटरनरी और फार्म संगठन।
8. कैंटीन स्टोर विभाग (भारत)

9. रक्षा प्राक्कलनों से वेतन भोगी सिविलियन सेवाएँ।
  10. हाईड्रोग्राफिक सर्वेक्षण और नेवीगेशनल चार्ट बनाना।
  11. छावनियों के निर्माण, छावनी क्षेत्रों की हदबंदी और कुछ क्षेत्रों को उसकी सीमा से बाहर निकालना एवं क्षेत्रों के स्थानीय स्वायत्त शासन, ऐसे क्षेत्रों में छावनी बोर्डों का गठन तथा प्राधिकारियों और उनका अधिकार क्षेत्र तथा उनमें आवास सम्बन्धी विनियमन (इसमें किराया नियंत्रण भी शामिल है)।
  12. रक्षा प्रयोजनों के लिए भूमि और सम्पत्ति का अर्जन, अधिग्रहण, अभिरक्षा और उसे वापसी, अनाधिक त कब्जा करने वालों को रक्षा भूमि और सम्पत्ति से बेदखल करना।
  13. भूतपूर्व सैनिकों से सम्बन्धित मामले, इनमें पेंशनभोगी भी शामिल हैं।
  14. रक्षा लेखा विभाग।
  15. सेना की जरूरतों की पूर्ति के लिए खाद्य सामग्री की खरीद और उसका निपटान (इसमें खाद्य और सिविल सप्लाइ मंत्रालय (खाद्य विभाग) को सौंपी गयी मदें शामिल नहीं हैं)।
  16. तटरक्षक संगठन।
  17. देश में गोताखोरी और सम्बन्धित कार्य-कलापों से सम्बद्ध मामले।
  18. रक्षा मंत्रालय के अधीन निम्नलिखित अंतर सेवा संगठन कार्य करते हैं -
    - (1) मुख्य प्रशासन अधिकारी का कार्यालय,
    - (2) सशस्त्र सेना चिकित्सा सेवा,
    - (3) राष्ट्रीय रक्षा कॉलेज,
    - (4) जन सम्पर्क निदेशालय,
    - (5) सेना चित्र प्रभाग,
    - (6) विदेशी भाषा निदेशालय,
    - (7) इतिहास अनुभाव,
    - (8) रक्षा संपदा महानिदेशालय,
    - (9) सेना खेलकूद नियंत्रण बोर्ड,
    - (10) रक्षा प्रबंध कॉलेज, सिंकदराबाद और
    - (11) रक्षा मंत्रालय पुस्तकालय।
- (2) रक्षा उत्पादन एवं पूर्ति विभाग**
1. आयुध निर्माणी बोर्ड और आयुध निर्माणियाँ,
  2. हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड,
  3. भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड,
  4. मझगाँव डॉक लिमिटेड,
  5. गार्डन रीच शिपबिल्डर्स एवं इंजीनियर्स लिमिटेड,
  6. गोवा शिपयार्ड लिमिटेड,
  7. भारत डायनामिक्स लिमिटेड,
  8. मिश्र धातु निगम लिमिटेड,
  9. तकनीकी विकास और उत्पादन (वायु) निदेशालय सहित गुणवत्ता आवश्वासन महानिदेशालय,

10. मानकीकरण निदेशालय सहित रक्षा उपस्करों और भंडारों का मानकीकरण,
11. भारत एवं मूवर्स लिमिटेड,
12. वैमानिकी उद्योग का विकास और नागर विमानन विभाग तथा अंतरिक्ष विभाग से सम्बन्धित प्रयोक्ताओं को छोड़कर अन्य प्रयोक्ताओं के कामकाज में समन्वय,
13. रक्षा प्रयोजन के लिए आवश्यक वस्तुओं का देशीकरण, विकास और उत्पादन,
14. मात्र रक्षा सेवाओं के लिए सामान की खरीद।

(3) **रक्षा अनुसंधान तथा विकास विभाग** : इस विभाग के कार्यों पर 1984-85 की वार्षिक रिपोर्ट में निम्नानुसार प्रकाश डाला गया है -

1. रक्षा अनुसन्धान तथा विकास विभाग इसके समस्त प्रकार के प्रशासनिक कार्यों को देखता है। इसके अलावा यह राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में रक्षा सम्बन्धी अनुसन्धान, विकास और परीक्षण का समन्वय कर राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादन-क्षमताओं सम्बन्धी मुख्य विकास कार्यक्रमों में केन्द्रीय अभिकरण के रूप में कार्य करता है।
2. रक्षा अनुसन्धान तथा विकास संगठन की देश भर में फैली हुई 40 प्रयोगशालाएँ, स्थापनाएँ तथा फील्ड यूनिटें हैं।
3. रक्षा अनुसन्धान तथा विकास संगठन के विज्ञान और तकनीकी में अनेक विधाएँ शामिल हैं, जैसे - वैमानिकी, राकेट और प्रक्षेपास्त्र, इलेक्ट्रॉनिक और इंस्ट्रुमेंटेशन, समाघात वाहन, सामान्य इंजीनियरी, नौ-सेना की प्रणालियाँ, विस्फोटक अनुसन्धान सहित शस्त्र तकनीक, कम्प्यूटर विज्ञान सामग्री खाद्य सामग्री और कृषि अनुसन्धान, जीव-विज्ञान, व्यावहारिक विज्ञान, थल अनुसन्धान, कार्य अध्ययन और प्रणाली विश्लेषण के विस्तृत क्षेत्र शामिल हैं। रक्षा अनुसन्धान तथा विकास विभाग तीनों सेनाओं की निर्दिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने अथवा भविष्य में राष्ट्रीय सुरक्षा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उक्त सभी क्षेत्रों में अनुसंधान और विकास परियोजनाएँ एवं तकनीकी विकास परियोजनाएँ चलाता है।
4. स्टाफ परियोजनाओं की श्रेणी में सशस्त्र सेनाओं की विनिर्दिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मुख्य हथियार पद्धति के डिजाइन और विकास पर बल दिया जाता है। यह मुख्य कार्यक्रम अक्सर सामूहिक प्रयासों के रूप में शुरू किए जाते हैं जिसमें रक्षा अनुसन्धान तथा विकास विभाग की कई प्रयोगशालाएँ भाग लेती हैं। उत्पादन अभिकरण इन कार्यक्रमों के प्रारम्भिक चरण में ही इनके डिजाइन और विकास कार्यक्रमों से सम्बद्ध होते हैं।
5. तकनीकी विकास परियोजनाओं की भावी प्रणालियों के डिजाइन और विकास के लिए अपेक्षित विज्ञान और तकनीकी आवश्यकता पूरी करना इन परियोजनाओं का मुख्य कार्य है। रक्षा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इस समय जो निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं तथा खतरों और संक्रियात्मक आवश्यकताओं में जो परिवर्तन आ रहे हैं उनको देखते हुए इस प्रकार के मूल अनुसन्धान तथा विकास का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।
6. रक्षा अनुसन्धान तथा विकास विभाग का देश में तकनीकी के विकास में काफी सहायनीय योगदान रहा है। अनुसन्धान तथा विकास संगठन के वैज्ञानिकी, प्रक्षेपास्त्रों, इलेक्ट्रॉनिकी और शस्त्रों जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में हाल ही के निवेश स्तर में वृद्धि से यह आशा की जाती है कि अगले कुछ वर्षों में अनुसन्धान तथा विकास की देशी तकनीकी के उपयोग से रक्षा उत्पादन में काफी वृद्धि होगी।
7. मुख्य रक्षा प्रणालियों के विकास कार्यक्रमों के निष्पादन में केन्द्रीय अभिकरण की भूमिका निभाते हुए रक्षा अनुसन्धान तथा विकास संगठन समुचित प्रबन्ध संगठनों के माध्यम से कार्य करता है। समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार कार्य आगे बढ़ सके, इसके लिए संगठनों को पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। परियोजनाओं की जानकारी हासिल करने और उच्च वैज्ञानिक तथा तकनीकी तत्त्वों वाले इन कार्यक्रमों की समीक्षा के लिए समुचित व्यवस्था की गई है।
8. अनुसन्धान तथा विकास कार्यक्रमों के अलावा, रक्षा अनुसन्धान तथा विकास योजनाओं को उनकी आवश्यकताएँ

बताने, प्राप्त किए जाने वाले यन्त्र का मूल्यांकन करने, आग और विस्फोटकों से सुरक्षा करने तथा संक्रियात्मक समस्याओं को सुलझाने में मदद दी जाती है। इस विभाग के कारण भारत अत्याधुनिक हथियारों का उत्पादन करने में सफल रहा है।

### अन्य-सेवा संगठन

तीनों सेनाओं अर्थात् थल-सेना, नौ-सेना और वायु-सेना के लिए चिकित्सा, जन-सम्पर्क, खेलकूद, आवास और विदेशी भाषाओं की पढ़ाई आदि जैसी समान सुविधाएँ उपलब्ध कराने के कार्य अन्तर-सेवा संगठनों के हैं। ये अन्तर-सेवा संगठन सीधे रक्षा मन्त्रालय के अधीन काम करते हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण संगठन इस प्रकार हैं -

1. मुख्य प्रशासन अधिकारी का कार्यालय,
2. सशस्त्र सेना चिकित्सा सेवा,
3. रक्षा भूमि तथा छावनी,
4. राष्ट्रीय रक्षा कॉलेज,
5. जन-सम्पर्क निदेशालय,
6. सेना चित्र प्रभाग,
7. इतिहास अनुभाग,
8. सेना खेलकूद नियन्त्रण बोर्ड,
9. विदेशी भाषा विद्यालय,
10. रक्षा मन्त्रालय पुस्तकालय।

मुख्य प्रशासन अधिकारी तीनों सेना मुख्यालयों और सेवा संगठनों के असैनिक कर्मचारियों के कार्मिक प्रबन्ध, प्रशासनिक और कल्याण सम्बन्धी मामलों को देखता है। मुख्य प्रशासन अधिकारी सशस्त्र सेना मुख्यालयों, अन्तर-सेवा संगठनों और सम्बद्ध यूनिटों के सभी सैनिक अफसरों के लिए रिहायशी आवास की व्यवस्था करता है। मुख्य प्रशासन अधिकारी, निदेशक (सुरक्षा) के रूप में रक्षा मुख्यालय सुरक्षा क्षेत्र में सुरक्षा सम्बन्धी व्यवस्था और सुरक्षा अनुदेशों के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार है।

### सहायता प्राप्त संस्थान

रक्षा मन्त्रालय, रक्षा अध्ययन तथा विश्लेषण संस्थान, दिल्ली तथा दार्जिलिंग और उत्तरकाशी में स्थित पर्वतारोहण संस्थानों को उनके दैनिक कार्यों के लिए सहायता प्रदान करता है। एक अन्य सहायता प्राप्त संस्थान जवाहर पर्वतारोहण और शीतकालीन खेल संस्थान की स्थापना अक्टूबर, 1983 में की गई है।

### सशस्त्र सेनाओं तथा नागरिक अधिकारियों में सहयोग

कानून और व्यवस्था या आवश्यक सेवाएँ बनाए रखने और प्राकृतिक विपदाओं से प्रभावित क्षेत्रों में जब कभी भी राहत पहुँचाने के लिए सशस्त्र सेनाओं से कहा जाता है तो वे नागरिक अधिकारियों को आवश्यक सहयोग प्रदान करती हैं। ऐसे अवसर आते हैं जब विकास योजनाएँ शुरू करने के समय ऐसे विशेष प्रकार के उपकरण या विशेष जानकारी की जरूरत पड़ती है, जो सेनाओं के अलावा अन्यत्र सुलभ नहीं होती है। ऐसी स्थिति में सशस्त्र सेनाएँ नागरिक अधिकारियों को समुचित सहायता प्रदान करती है। सेनाएँ विभिन्न प्रकार का सर्वेक्षण करने वाली एजेन्सियों को सामरिक और अन्य सहायता देती हैं - विशेष रूप से ऐसी एजेन्सियों को जो दुर्गम स्थानों में सर्वेक्षण कर रही हों। इसके अलावा अनेक प्रकार की दुर्घटनाओं के समय सशस्त्र सेनाएँ आवश्यक मदद प्रदान करती हैं। सशस्त्र सेनाओं से सहायता केवल तभी माँगी जाती है, जब अन्य सभी विकल्प नकारात्मक और अपर्याप्त पाये गए हों। ऐसी व्यवस्था सशस्त्र सेनाओं के संक्रियात्मक एवं सैनिक कार्यों की दृष्टि से की जाती है।

कानून और व्यवस्था कायम रखना मूलतः नागरिक अधिकारियों का काम है लेकिन जब सशस्त्र सेनाओं से सहायता लेना अपरिहार्य हो जाए तो नागरिक अधिकारी उसकी माँग कर सकते हैं। यद्यपि नागरिक अधिकारियों की ओर से इस प्रकार की

मॉग आने पर उसकी पूर्ति करना सशस्त्र सेनाओं के लिए आवश्यक हो जाता है फिर भी इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उनसे प्राप्त सहायता का उपयोग कम से कम समय के लिए और किसी विशेष स्थिति को नियन्त्रण में लाने के लिए ही किया जाए।

समय-समय पर देश में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने, साम्प्रदायिक दंगों को कुचलने, बाढ़ और भूकम्प से हुए विनाश में राहत कार्यों में सेना का उपयोग और नागरिक अधिकारियों और कर्मचारियों की हड़तालों के समय आवश्यक सेवाओं को बनाए रखने के लिए सेना का उपयोग किया जाता रहा है। सेना ने इन सब दायित्वों को अत्यन्त कुशलता और अनुशासन के साथ निभाया है। भारतीय सेना को विश्व की सबसे अनुशासित सेना माना जाता है। इस प्रकार देश की रक्षा सेनाओं की नागरिक प्रशासन में महत्वपूर्ण स्थान है इसीलिए रक्षा सेनाओं की भूमिका ने जनसाधारण में उसकी 'छवि' को उज्ज्वल बनाया है।

### **आतंकवादियों और राष्ट्र-विरोधी तत्त्वों के विरुद्ध सेना की सक्रिय भूमिका**

भारतीय सेना ने देश की एकता और अखण्डता को नुकसान पहुँचाने वाले आतंकवादियों और उग्रवादियों के विरुद्ध कठोर और सफल कार्यवाही करके उनकी कमर तोड़कर रख दी है। पंजाब, नागालैण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा और मिजोरम में आतंकवादियों और पथकवादी तत्त्वों के विरुद्ध सेना ने ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। जून, 1984 में पंजाब में 'आपरेशन ब्ल्यू स्टार' और मई 1987 में 'आपरेशन ब्लैक थण्डर' द्वारा सेना ने सफलतापूर्वक आतंकवादियों का सफाया किया। त्रिपुरा में टीएनवी छापामारों को कुचलने में भी सेना ने महत्वपूर्ण भूमिका निर्वह किया है। यह सेना का ही करिश्मा था कि नागालैण्ड में विद्रोही नागाओं को कुचला जा सका। सेना ने लालडेंगा के नेतृत्व वाले मिजो नेशनल फ्रन्ट को काबू में करके उसे राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा में सम्मिलित होने के लिए विवश किया। सन् 1990 में असम में 'उल्फा' उग्रवादियों को कुचलने के लिए सेना ने जो अभियान चलाया, उसे 'आपरेशन बजरंग' कहा गया। असम के कोंकराझार क्षेत्र में जातीय हिंसा को दबाने में सुरक्षा बलों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

अन्त में, निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि सामान्य और आपातकाल दोनों में रक्षा मन्त्रालय अपनी सार्थक तथा सकारात्मक भूमिका का निर्वह करता आया है।

## Unit-III

### अध्याय-15

## राज्यपाल

### राज्यपाल (The Governor)

भारतीय प्रशासन की मुख्य विशेषता यह है कि संघीय तथा राज्य स्तरों पर एक प्रकार की शासन पद्धति की व्यवस्था की गई है। जिस प्रकार संघीय सरकार की कार्यकारी शक्तियां राष्ट्रपति में निहित हैं, उसी तरह राज्य के स्तर पर राज्यपाल मुख्य कार्यपालक के रूप में कार्य करता है। संविधान की धारा 154 (1) के अनुसार, "राज्य की कार्यकारी शक्तियां राज्यपाल में निहित होंगी जो इनका प्रयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के द्वारा करेगा।" राष्ट्रपति की भांति राज्यपाल भी एक संवैधानिक मुखिया है और वह राज्य के मन्त्रिपरिषद् के परामर्श से अपनी शक्ति का प्रयोग करता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 153 के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य में एक राज्यपाल की व्यवस्था की गई है। संविधान के सातवें संशोधन (1956) के द्वारा यह व्यवस्था की गई कि एक ही व्यक्ति दो राज्यों से अधिक राज्यों का राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है।

#### नियुक्ति

##### (Appointment)

संविधान के अनुच्छेद 155 के अनुसार राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। अनुच्छेद 156 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त अपने पद पर बना रह सकता है। राष्ट्रपति ही राज्यपाल को पदमुक्त कर सकता है, उसे समय से पूर्व वापस बुला सकता है, तथा एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानान्तरण कर सकता है। सामान्यतया: राज्यपाल का कार्यकाल पाँच वर्ष का है, पर अपने कार्यकाल समाप्त होने के बाद भी वह अपने पद पर तब तक बना रह सकता है, जब तक किसी अन्य व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त न कर दिया जाये। वह समय से पूर्व भी राष्ट्रपति को सम्बोधित करके त्यागपत्र देकर पद विमुक्त हो सकता है। चूंकि राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त अपने पद पर रहता है, अतः उसे हटाने के लिए महाभियोग या अन्य कोई ऐसी व्यवस्था संविधान द्वारा नहीं की गई है। उल्लेखनीय है कि भारत में एक राज्य का राज्यपाल राज्य का प्रमुख है न कि सरकार का है।

#### योग्यताएं

संविधान की धारा 157 के अनुसार वह भारतीय नागरिक हो, 35 वर्ष का हो, तथा केन्द्र या राज्य विधायिका का सदस्य न हो (यदि वह सदस्य है तो राज्यपाल का पद ग्रहण करते ही उसका पद रिक्त माना जायेगा); वह किसी लाभ के पद पर नियुक्त न हो तथा राज्यपाल की नियुक्ति के समय सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री से सलाह लेने की परम्परा है। पर कई बार इस परम्परा का पालन नहीं किया गया। वस्तुतः राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री से सलाह लेना एक परम्परा है, संवैधानिक आवश्यकता नहीं। राष्ट्रीय एकता के भाव को मद्देनजर रखते हुए यह भी परम्परा है कि राज्यपाल उस राज्य का निवासी न हो, इस व्यवस्था के द्वारा राज्यपाल को उस राज्य की राजनैतिक दलबन्दी से दूर रखने का उद्देश्य भी है। परन्तु इस परम्परा के भी अपवाद रहे हैं।

राज्यपाल के विरुद्ध कोई फौजदारी कार्यवाही नहीं की जा सकती, उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है तथा न बन्दी बनाया जा सकता है। अपने कार्यों को करने और शक्तियों के प्रयोग के लिए वह न्यायालयों के प्रति उत्तरदायी नहीं है।

## शपथ

राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, राज्यपाल को पद की शपथ दिलाते हैं। उच्च न्यायाधीश की अनुपस्थिति में अन्य वरिष्ठ न्यायाधीश की सहायता से यह कार्य सम्पन्न किया जाता है। राज्यपाल को निष्पक्ष, न्यायप्रिय, उदार व व्यापक दृष्टिकोण रखने वाला एवं राष्ट्रीय एकता के संरक्षक की भूमिका निभाहने वाला होना चाहिए। अतः राज्यपाल संविधान की रक्षा करने तथा जनता के कल्याण तथा सेवा की शपथ लेता है।

## वेतन व अन्य भत्ते

राज्यपाल की गरिमा के अनुरूप उसे वेतन, अन्य भत्ते तथा सुविधाएं मिलती हैं जिनका निर्धारण संसद में बनाये गये कानून द्वारा होता है। वर्तमान में राज्यपाल का मासिक वेतन 36,000 रुपये है। राज्यपाल के कार्यकाल के दौरान उसके वेतन, भत्तों तथा अन्य सुविधाओं को घटाया नहीं जा सकता।

## अवधि

### (Term)

राज्यपाल की नियुक्ति पांच वर्ष के लिए की जाती है और वह राष्ट्रपति की इच्छा पर्यन्त अपने पद पर रहता है। उसे अवधि समाप्त होने तक इस पद पर रहना पड़ता है जब तक उसका उत्तराधिकारी पद सम्भाल न ले। राज्यपाल अपनी अवधि के समाप्त होने से पहले भी अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है तथा उसे राष्ट्रपति द्वारा हटाया भी जा सकता है। राष्ट्रपति उसे एक राज्य से किसी दूसरे राज्य में तबदील (Transfer) भी कर सकता है। उसे राष्ट्रपति की भांति महाभियोग (Impeachment) द्वारा राज्य विधानमण्डल नहीं हटा सकता और यदि किसी कारण राज्य विधानमण्डल किसी राज्यपाल को पद पर रखना उचित न समझे तो वह उसे हटाने के लिए कोई पग नहीं उठा सकता, केवल राष्ट्रपति को इस विषय के बारे में अपने विचार भेज सकता है। इस दशा में राज्यपाल की स्थिति राष्ट्रपति की तुलना में श्रेष्ठ है क्योंकि उसे महाभियोग का भय नहीं होता।

## न्यायिक सुविधाएं

### (Judicial Immunities)

राज्यपाल को संविधान द्वारा कई न्यायिक सुविधाएं भी प्रदान की गई हैं- (i) उसे अपने पद की शक्तियों के प्रयोग और कर्तव्यों की पालना के लिए राज्य के किसी भी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होना पड़ता। (ii) उसके कार्यकाल में उसके विरुद्ध किसी प्रकार की दण्ड कार्यवाही किसी न्यायालय में उपस्थित नहीं की जा सकती। (iii) उसके कार्यकाल में उसके विरुद्ध कोई फौजदारी मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता, और न ही उसे बन्दी बनाने के लिए किसी न्यायालय द्वारा आदेश दिया जा सकता है। (iv) उसके विरुद्ध दिवानी मुकद्दमा चलाने के लिए उसे दो महीने पूर्व नोटिस देना पड़ता है।

## उपराज्यपाल की व्यवस्था नहीं

### (No Provision of Deputy Governor)

राज्य प्रशासन के सम्बन्ध में यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि केन्द्र की भांति राज्य स्तर पर उपराज्यपाल की कोई व्यवस्था नहीं की गई। प्रान्तीय संविधान समिति ने एक उपराज्यपाल की नियुक्ति करने का सुझाव दिया था, परन्तु मसौदा समिति ने इसे अस्वीकार कर दिया।

## राज्यपाल की शक्तियां एवं कार्य

### (The Powers and Functions of the Governor)

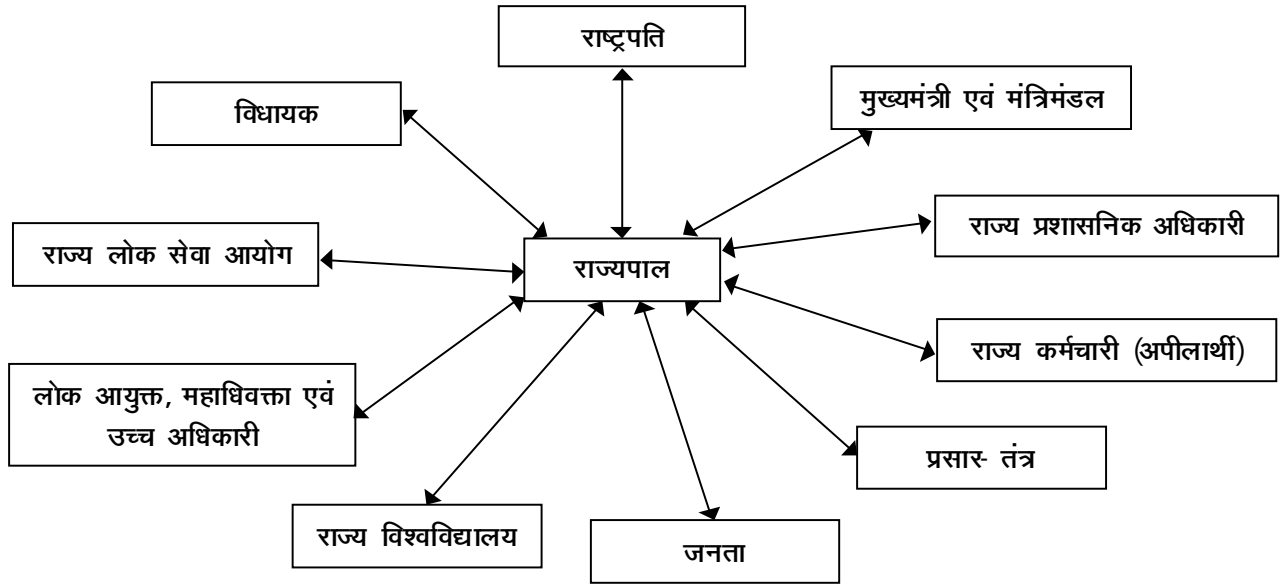
राष्ट्रपति की भांति राज्यपाल को भी बहुत सी शक्तियां प्राप्त हैं जिनका उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

### (क) कार्यकारी शक्तियां (Executive Powers)

- (i) राज्यपाल राज्य सरकार का मुख्य कार्यपालक होता है और राज्य का प्रशासन उसके नाम पर चलाया जाता है। संविधान द्वारा राज्य की कार्यकारी शक्तियां उसके हाथ में दी गई हैं। वह इनका प्रयोग स्वयं या अपने



### राज्यपाल का भूमिका-तंत्र



- अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करवाता है। राज्य सूची में सम्मिलित किए गए विषयों का संचालन करता है तथा समवर्ती सूची में दिए गए विषयों के शासन को राष्ट्रपति की स्वीकृति से चलाता है।
- (ii) मुख्यमंत्री तथा उसकी सलाह से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है जो उसके प्रसाद-पर्यन्त (During his Pleasure) पद पर रहते हैं। वह मुख्यमंत्री तथा मन्त्रिमण्डल को पदच्युत भी कर सकता है तथा उनसे त्याग पत्र भी मांग सकता है। राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श से मन्त्रिपरिषद् के किसी भी मन्त्री को पदच्युत कर सकता है तथा उनसे त्याग पत्र भी मांग सकता है।
  - (iii) वह सरकार अथवा मन्त्रिपरिषद् के कार्य करने के सम्बन्ध में नियम बनाता है तथा मन्त्रियों में विभागों का विभाजन करता है तथा उनके विभागों में परिवर्तन भी कर सकता है।
  - (iv) वह राज्य के उच्चाधिकारियों, एडवोकेट जनरल (Advocate General), राज्य सेवा आयोग (State Public Service Commission) के अध्यक्ष तथा सदस्यों आदि की नियुक्ति करता है। राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय उसका परामर्श लिया जाता है।
  - (v) वह राज्य के शासन प्रबन्ध का सर्वदा निरीक्षण करता है और मुख्यमंत्री से किसी भी प्रकार की शासन सम्बन्धी सूचना प्राप्त कर सकता है।
  - (vi) जिन राज्यों में प्रादेशिक समितियों (Regional Councils) की स्थापना की गई है, वहां यदि राज्य सरकार तथा प्रादेशिक समितियों में किसी विषय पर मतभेद हो जाए तो उस मामले को राज्यपाल के पास भेजा जाता है तथा उसका निर्णय अन्तिम होता है।
  - (vii) संविधान के 36 वें संशोधन के अन्तर्गत सिक्किम राज्य के राज्यपाल को सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए कुछ विशेष शक्तियां सौंपी गई हैं। धारा 356 के अनुसार यदि राज्य में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए या होने की सम्भावना हो जिसमें राज्य के शासन का संचालन संविधान के अनुसार करना संभव न हो तो राज्यपाल ऐसी स्थिति की रिपोर्ट राष्ट्रपति को देता है। ऐसी सूचना प्राप्त करने के पश्चात् राष्ट्रपति राज्य में संकट काल की घोषणा करके राज्य का शासन अपने हाथ में ले लेता है। ऐसी दशा में राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। वह संवैधानिक मुखिया के स्थान पर वास्तविक शासक होता है।

**(ख) विधायी शक्तियाँ (Legislative Powers)**

- (i) वह राज्य विधानमण्डल का अधिवेशन बुला सकता है, उसे स्थगित कर सकता है और इसका (जहां दो सदन हों वहां निम्न सदन, विधान सभा का) विघटन कर सकता है। वहां दोनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है। उसे एक वर्ष में कम से कम दो बार विधान मण्डल का अधिवेशन बुलाना पड़ता है जिसके अनुसार एक अधिवेशन की अन्तिम बैठक तथा दूसरे अधिवेशन की प्रथम बैठक में छः महीने से अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए।
- (ii) वह विधानमण्डल के किसी भी सदन में या अलग-अलग या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भाषण दे सकता है और इसके लिए विकास-मण्डल के सदस्य को उपस्थित रहने के लिए कहा जा सकता है। भाषण आम चुनाव के पश्चात् तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम अधिवेशन में दिया जाता है। इसमें सरकार की आगामी वर्ष के बारे में नीति की घोषणा की जाती है।
- (iii) वह विधानमण्डल में विचाराधीन बिल के सम्बन्ध में या किसी और उद्देश्य के लिए किसी भी समय सन्देश भेज सकता है। इस सन्देश पर विधानमण्डल को अवश्य ही विचार करना पड़ता है।
- (iv) वह राज्य विधान परिषद् (Legislative Council) के 1/6 सदस्यों को मनोनीत करता है। यदि वह समझे कि आम चुनाव में एंग्लो इंडियन (Anglo-Indian) जातियों को उपयुक्त प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ तो वह इनके दो सदस्य विधान सभा (Legislative Assembly) में मनोनीत कर सकता है।
- (v) विधान मण्डल द्वारा पास किया गया कोई भी बिल उसकी स्वीकृति के बिना कानून नहीं बन सकता। वह किसी भी बिल को अपने सन्देश सहित विधानमण्डल को एक बार पुनर्विचार के लिए भेज सकता है। इसे राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रख सकता है। वित्त बिल को जिसे विधानमण्डल पास कर दे, पुनर्विचार के लिए वापस नहीं भेज सकता।
- (vi) कोई भी वित्त बिल राज्यपाल की नियुक्ति के बिना विधान सभा में पेश नहीं किया जा सकता।
- (vii) राष्ट्रपति की भांति राज्यपाल को भी यह शक्ति प्राप्त है कि जब भी विधानसभा का अधिवेशन न हो रहा हो तथा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाए जिस पर काबू पाने के लिए वह किसी विशेष कानून बनाने की आवश्यकता समझे, तो अध्यादेश (Ordinance) जारी कर सकता है।
- (viii) यदि राज्य विधानसभा या राज्य विधान परिषद् के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का स्थान रिक्त हो जाए तो राज्यपाल सम्बन्धित सदन के किसी भी सदन को उस सदन की उस समय तक अध्यक्षता करने के लिए नियुक्त कर सकता है जब तक कि सदन के स्थायी अध्यक्ष का निर्वाचन नहीं हो जाता।

**(ग) वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)**

राज्यपाल की आज्ञा के बिना राज्य विधान मण्डल में कोई भी वित्त बिल पेश नहीं किया जा सकता। राज्यपाल बजट तैयार करवाता है और वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने के पूर्व वित्त मन्त्री द्वारा विधान मण्डल में पेश करवाता है। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर वह पूरक (Supplementary), अतिरिक्त (Additional) तथा असाधारण (Exceptional) अनुदानों को प्राप्त करने के लिए विधान मण्डल की स्वीकृति के लिए पेश करवाता है। राज्यपाल राज्य की आकस्मिक निधि (Contingency Fund) में से खर्च करने का अधिकार रखता है परन्तु उस के द्वारा खर्च किए गए खर्च के लिए विधानसभा की स्वीकृति लेना आवश्यक है।

**(घ) न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)**

राज्यपाल किसी भी ऐसे व्यक्ति को जिसे राज्य सूची में सम्मिलित विषयों से सम्बन्धित किसी कानून की उल्लंघना करने पर सजा दी गई हो, क्षमा कर सकता है, उसकी सजा को कम अथवा स्थगित कर सकता है। राज्यपाल को मृत्यु दण्ड के मामले में क्षमादान का अधिकार प्राप्त नहीं है। यह शक्ति केवल राष्ट्रपति को ही प्राप्त है। वह जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। राज्यपाल पर उसके कार्यकाल में किसी प्रकार का अभियोग या मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता।

**राज्यपाल की स्वविवेकीय शक्तियाँ**

### (Discretionary Powers of the Governor)

राज्यपाल की स्वविवेकीय शक्तियों के निम्नलिखित दो रूप हैं-

- (1) संविधान-प्रदत्त स्वविवेकीय शक्तियाँ (Constitutional Discretionary Powers)
- (2) परिस्थितिजन्य स्वविवेकीय शक्तियाँ (Situational Discretionary Powers)

#### संविधान-प्रदत्त स्वविवेकीय शक्तियाँ

इसका अभिप्राय उन शक्तियों से है जिनके प्रयोग के सम्बन्ध में राज्यपाल को स्वविवेक से निर्णय लेने का अधिकार संविधान द्वारा दिया गया है। यह संविधान के अनुच्छेद (163)1 तथा (2) की शब्दावली से स्वयं स्पष्ट है-

अनुच्छेद 163(1) - "जिन बिन्दुओं पर संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कर्तव्यों अथवा उनमें से किसी को स्वविवेक से करे, उनको छोड़कर राज्यपाल को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा।"

अनुच्छेद 163(2) - "यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है कि जिसके सम्बन्ध में, इस संविधान के द्वारा या अधीन राज्यपाल से अपेक्षित है कि स्वविवेक से कार्य करे तो राज्यपाल का स्वविवेक से किया हुआ विनिश्चय अन्तिम होगा तथा राज्यपाल द्वारा की गई किसी निर्णय की मान्यता पर इस कारण से कोई आपत्ति नहीं की जाएगी कि उसे स्वविवेक से कार्य करना या न करना चाहिए था।"

अनुच्छेद 160 में उल्लेख है कि "इस अध्याय {संविधान के भाग (6) का अध्याय (2) कार्यपालिका सम्बन्धी} में उपबन्ध में नहीं की गई किसी आकस्मिकता में राज्यपाल के कर्तव्यों के निर्वहन के लिए राष्ट्रपति, जैसा उचित समझे, वैसा उपबन्ध बना सकेगा।" स्पष्ट है कि राष्ट्रपति ऐसे उपबन्धों का निर्माण कर सकता है जिनमें राज्यपाल को स्वविवेकीय शक्तियों के प्रयोग के अधिक अवसर मिल सकें।

संविधान द्वारा कुछ विशेष मामलों में और विशेषकर असम के राज्यपाल को स्वविवेकीय अधिकार दिए गए हैं। असम के राज्यपाल का यह विशेषाधिकार है कि वह प्रजातीय क्षेत्रों से सम्बन्धित कुछ प्रशासकीय मामलों तथा असम सरकार व स्वायत्त जिला-परिषद् के बीच खनिज सम्पत्ति सम्बन्धी विवादों के सम्बन्ध में स्व-विवेक के निर्णय करे। विद्रोही एवं भूमिगत नागाओं से निपटने के लिए नागालैण्ड के राज्यपाल को स्वविवेकीय शक्तियों के प्रयोग की शक्ति है, तो सिक्किम के राज्यपाल को वहाँ के सभी क्षेत्रों के लोगों के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए समुचित प्रबन्ध की दृष्टि से विशेष उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं।

#### परिस्थितिजन्य स्वविवेकीय शक्तियाँ

इसका अभिप्राय यह है कि राज्यपाल को कुछ स्वविवेकीय शक्तियाँ परिस्थितियों-विशेष में प्राप्त होती हैं। ये विशेष परिस्थितियाँ तब उत्पन्न हो सकती हैं जब-

1. किसी एक दल को विधान सभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो।
2. संयुक्त सरकार का गठन हो और आपसी फूट के कारण शासन का सुचारु संचालन करना कठिनाई पूर्ण हो।
3. दल-बदल के कारण सरकार के अस्तित्व को खतरा पैदा हो जाए।
4. राज्य में शान्ति और व्यवस्था को खतरा पैदा हो गया हो या उसकी सम्भावना हो।
5. मन्त्रिमण्डल में विधान सभा के अविश्वास की स्थिति पैदा हो गई हो, आदि।

राज्यपाल को स्वविवेकीय शक्तियों के प्रयोग के अवसरों को डॉ. एम. वी. पायली ने निम्नानुसार गिनाया है-

- (1) "मन्त्रि-परिषद् की स्थापना से पूर्व मुख्यमंत्री का चुनाव, (2) मन्त्रि-मण्डल को पदच्युत् करना, (3) विधान सभा का विघटन करना, (4) मुख्यमंत्री से प्रशासनिक तथा विधायी कार्यों के सम्बन्ध में सूचना माँगना, (5) किसी एक मन्त्री द्वारा किए गए निर्णय

(जिस पर मन्त्रि-परिषद् ने विचार न किया हो) को मन्त्रि-परिषद् के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करने के लिए मुख्यमंत्री को आदेश देना, (6) विधान-मण्डल द्वारा पारित किसी विधेयक को स्वीकृति न देकर उसे पुनर्विचार के लिए लौटा देना, (7) राज्य विधान-मण्डल द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजना, (8) किसी अध्यादेश को प्रख्यात करने से पूर्व राष्ट्रपति के आदेश (Instruction) की याचना करना, (9) राष्ट्रपति को आपात् घोषणा करने का परामर्श देना, तथा (10) असम तथा अन्य पूर्ववर्ती राज्यों के राज्यपाल के लिए आदिम जाति क्षेत्रों की कुछ प्रशासनिक समस्याओं का हल करना, असम राज्य (स्वायत्तशासी क्षेत्र की) जिला-परिषदों के खनिज स्वामित्व सम्बन्धी विवादों का निर्णय।" उपर्युक्त परिस्थितियों में राज्यपाल को अपनी शक्ति और भूमिका का प्रदर्शन करने का सुनहरा अवसर प्राप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में राज्यपाल वास्तविक शासक के रूप में आचरण करता है। राज्यपाल की भूमिका से जिस पक्ष को राजनीतिक नुकसान उठाना पड़ता है, वह उसका कटु आलोचक बन जाता है। अपनी इन स्वविवेकीय शक्तियों के प्रयोग के कारण ही राज्यपालों को आलोचना का पात्र बनना पड़ता है। इनके अतिरिक्त राज्यपाल कई प्रकार के कार्य अपने विवेकाधीन कर सकता है-

### मुख्यमंत्री की नियुक्ति सम्बन्धी

(Regarding Appointment of the Chief Minister)

- (i) यदि राज्य विधानसभा में किसी भी दल को बहुमत प्राप्त न हो तो वह अपनी इच्छा से किसी ऐसे व्यक्ति को जिसे वह बहुमत का समर्थन प्राप्त करने के योग्य समझता हो, मुख्यमंत्री नियुक्त कर सकता है।
- (ii) **राज्य में संवैधानिक यन्त्र के विफल होने से सम्बन्धी** (Concerning Failure of Constitutional Machinery in a State)- राज्य में संवैधानिक यन्त्र के विफल हो जाने का निर्णय भी वह स्वयं अपनी इच्छा से करता है और राष्ट्रपति को इसके बारे में सूचना देता है। ऐसा करते समय उसे मुख्यमंत्री अथवा मन्त्रिमण्डल का परामर्श मानना या न मानना उसकी व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर करता है। ऐसी दशा में वह अपने विवेक अनुसार निर्णय करता है। सरकारिया आयोग (Sarkaria Commission) के अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियों में ही संवैधानिक विफलता की घोषणा की जानी चाहिए-
  - (a) राजनीतिक संकट (Political Crisis)
  - (b) आन्तरिक विद्रोह (Internal Subversion)
  - (c) भौतिक विनाश (Physical Breakdown)
  - (d) केन्द्रीय कार्यपालिका के निर्देशन को न मानना (Non-Compliance with Constitutional Directions of the Union Executive)

सरकारिया आयोग द्वारा चाहे ऐसी व्यवस्था करके राज्यपाल की विवेकशील शक्तियों को सीमित करने का प्रयास किया है परन्तु ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई या नहीं का निर्णय करना राज्यपाल में निहित है। भविष्य में क्या होगा कुछ कहा नहीं जा सकता। वर्तमान दशा में राज्यपाल की यह शक्ति उसके विवेक पर निर्भर करती है।

- (iii) **राज्य विधान सभा के विघटन सम्बन्धी** (Relating to Dissolution of State Legislative Assembly)- राज्य विधान सभा का विघटन भी राज्यपाल के विवेक पर निर्भर करता है। यद्यपि प्रायः इस शक्ति का प्रयोग मुख्यमंत्री के परामर्श के अनुसार किया जाता है तथापि कुछ प्रान्तों में राज्यपालों ने मुख्यमन्त्रियों के परामर्श को स्वीकार नहीं किया और अपनी इच्छानुसार विधानसभा का विघटन किया। जैसे पंजाब में भूतपूर्व मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह द्वारा विधान सभा का विघटन न करने के प्रस्ताव को राज्यपाल द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था।
- (iv) **राष्ट्रीय संकट काल** (National Emergency)- संकटकाल की घोषणा के समय राष्ट्रपति द्वारा निश्चित सीमा के अन्तर्गत राज्यपाल शासन का संचालन अपनी इच्छानुसार चलाता है।
- (v) **विश्वविद्यालय के उपकुलपति की नियुक्ति सम्बन्धी** (Regarding Vice-Chancellor of the University)- राज्यपाल विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में अपनी शक्ति का प्रयोग अपने विवेकाधीन द्वारा कर सकता है।
- (vi) **मन्त्रिमण्डल से सूचना प्राप्त करना** (To get Information from the Council of Ministers)- राज्यपाल,

मन्त्रिमण्डल से किसी प्रकार की सूचना प्राप्त कर सकता है। मुख्यमंत्री का यह संवैधानिक उत्तरदायित्व है कि वह मन्त्रिमण्डल द्वारा किए गए प्रत्येक निर्णय के बारे में राज्यपाल को सूचना दे।

(vii) **विविध शक्तियां** (Miscellaneous Powers)- उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त राज्यपाल को और भी शक्तियां प्राप्त हैं जिन में निम्नलिखित विवेकाधीन शक्तियां भी सम्मिलित हैं-

- (i) वह राज्य लोक आयोग की वार्षिक रिपोर्ट प्राप्त करके इसे मन्त्रि परिषद् की समालोचना (Comments) के लिए भेज देता है। बाद में वह उस रिपोर्ट को मन्त्रिपरिषद् की समालोचना सहित विधानसभा के अध्यक्ष (Speaker) को विधान मण्डल के समक्ष रखने के लिए भेज देता है।
- (ii) वह राज्य की आय एवं व्यय के सम्बन्ध में आडीटर-जनरल (Auditor-General) की वार्षिक रिपोर्ट को विधान मण्डल के समक्ष रखवाता है।
- (iii) केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि होने के नाते यदि वह समझे कि राज्य का प्रशासन संविधान की धाराओं के अनुसार नहीं चलाया जाता तो वह राज्य की संवैधानिक मशीनरी के विफल हो जाने की सूचना राष्ट्रपति को देता है।
- (iv) वह युद्ध, बाहरी आक्रमण या आंतरिक अशांति के कारण या राज्य में संवैधानिक मशीनरी के विफल हो जाने के कारण संकटकाल में राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है।
- (v) राज्यपाल राज्य विधान मंडल द्वारा पास किए गए किसी भी बिल को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रख सकता है। उसकी इस शक्ति को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
- (vi) राज्यपाल मन्त्रिमण्डल से किसी भी विषय सम्बन्धी सूचना प्राप्त कर सकता है। मुख्यमंत्री का यह संवैधानिक कर्तव्य है कि मन्त्रिमण्डल द्वारा किए गए प्रत्येक निर्णय के सम्बन्ध में राज्यपाल को सूचना दे।
- (vii) विधानमण्डल द्वारा पास किए गए किसी भी बिल को विधानमण्डल द्वारा पुनर्विचार करने के लिए वापस भेज सकता है परन्तु यदि विधानमण्डल उसे दूसरी बार फिर इसी तरह पास कर दे तो राज्यपाल को इसे स्वीकृत करना पड़ता है।

### राज्यपाल व राष्ट्रपति शासन

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत यदि राष्ट्रपति यह महसूस करे कि किसी राज्य में संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर शासन चलाया जाना सम्भव नहीं है तब वह आपात स्थिति लागू कर सकता है। एच. एस. कबूरिया ने अपनी पुस्तक प्रेसीडेन्ट्स आफ इण्डिया में उन परिस्थितियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है जिनमें ऐसी आपात स्थिति उत्पन्न होती है। वे स्थितियाँ हैं-

- (i) कानून और व्यवस्था की विफलता।
- (ii) दल-बदल के कारण राजनैतिक अस्थिरता।
- (iii) संसदीय व्यवस्था पर आघात, जैसे बहुमत खोने पर भी मुख्यमंत्री त्यागपत्र न दे।
- (iv) भ्रष्टाचार, कुप्रशासन, अलगाववादी व आतंककारी गतिविधियाँ।
- (v) राज्य सरकार के प्रति जनता का विरोध।
- (vi) बहुमत दल से जनता का विश्वास उठना।
- (vii) बहुमत प्राप्त होने पर भी कोई दल यदि सरकार बनाने से इन्कार कर दे तथा अल्पमत दल को सरकार बनाने से रोके।
- (viii) गठबन्धन सरकार का गठन न हो पाये।
- (ix) किसी विशिष्ट समस्या से बचने के लिए सरकार द्वारा स्वयं ऐसा प्रस्ताव।

ऐसे आपातकाल में ये परिणाम होंगे-

- (i) उच्च न्यायालय के अतिरिक्त राज्य सरकार के सारे कार्य या कुछ कार्य राष्ट्रपति स्वयं ग्रहण कर ले।
- (ii) राज्य की विधायिका शक्तियों का प्रयोग संसद के द्वारा या संसद के अधीन किया जाये।
- (iii) आपातकालीन घोषणा के उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक एवं वांछित कदम उठाये जायें।

ऐसी कोई भी घोषणा संसद के दोनों सदनों में रखी जानी चाहिए। संसद द्वारा समर्थित न होने पर दो माह में ऐसी घोषणा स्वयं निरस्त हो जायेगी, अर्थात् दो माह के अन्दर संसद द्वारा घोषणा को स्वीकृति मिल जानी चाहिए। यदि इन दो महीनों के दौरान लोक सभा भंग हो जाती है, और राज्य सभा ने इसे सहमति प्रदान कर दी है तो नवगठित लोक सभा की पहली बैठक के 30 दिन समाप्त होते ही यह उद्घोषणा भी समाप्त हो जायेगी और इस बीच नवगठित लोक सभा भी अपनी सहमति दे देती है तो घोषणा लागू होने के छह महीने तक चल सकती है। उसकी अवधि छह-छह महीने करके कई बार बढ़ाई जा सकती है लेकिन इन सबकी कुल अवधि तीन वर्ष से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। हाँ, संविधान संशोधन से यह अवधि और भी आगे बढ़ाई जा सकती है, जैसे जम्मू तथा कश्मीर के मामले में हुआ है।

अनुच्छेद 356, अनुच्छेद 355 का महज परिणाम है तथा दोनों अनुच्छेद एक दूसरे से सहज रूप से जुड़े हुए हैं। अनुच्छेद 355 के अनुसार केन्द्र का कर्तव्य है कि प्रत्येक राज्य में संवैधानिक शासन व्यवस्था को सुनिश्चित करे। यदि सुदृढ़ तथा सक्षम शासन सम्भव नहीं हो पा रहा हो तो अनुच्छेद 356 के मदद से स्वयं प्रयास करे।

राज्यपाल स्वविवेक का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति को प्रतिवेदन भेजता है। इसके लिए उसे मुख्यमंत्री से सलाह लेना व्यावहारिक नहीं है, अन्यथा होगा यह कि मुख्यमंत्री द्वारा प्रतिवेदन स्वीकार करना या उसकी सलाह देने का तात्पर्य होगा कि उसकी सरकार संविधान के अनुसार काम नहीं कर रही है। राज्यपाल को प्रतिवेदन भेजते समय सरकार के संवैधानिक आधार पर न चल पाने के पर्याप्त आधार होने चाहिए।

राष्ट्रपति शासन के दौरान लोकप्रिय सरकार नहीं होती। अतः समस्त मंत्रि-परिषद् के कार्य राज्यपाल में केन्द्रित हो जाते हैं। परिणामस्वरूप इस काल में राज्यपाल राज्य एवं सरकार दोनों का प्रमुख बन जाता है। उसकी सहायता के लिए दो अथवा तीन सलाहकार होते हैं जो सामान्यतया सेवानिवृत्त प्रशासनिक अधिकारी होते हैं। विभिन्न सचिवों की समस्त 'फाइलें' इन्हीं सलाहकारों के माध्यम से राज्यपाल को जाती हैं।

यह राज्यपाल के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है कि वह राष्ट्रपति शासन के दौरान अपने पद को क्या स्वरूप प्रदान करता है? एक सत्ताप्रिय राज्यपाल अति हस्तक्षेपवादी हो सकता है अथवा एक 'संविधानवादी' राज्यपाल सक्रियता के बावजूद संतुलित ढंग से निर्णय ले सकता है। सामान्यतया, दूसरी कोटि के ही राज्यपाल विभिन्न राज्यों में देखने को मिले हैं।

### राज्यपाल संघ का अभिकर्ता ?

संविधान के कुछ अनुच्छेदों की व्यवस्था के अनुसार राज्यपाल केन्द्र व राज्य के मध्य एक कड़ी के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। संविधान के अनुच्छेद 160 के अनुसार राष्ट्रपति राज्यपाल को उन आकस्मिक स्थितियों के सम्बन्ध में कार्य करने का अधिकार दे सकता है जिनके सम्बन्ध में संविधान मौन है।

अनुच्छेद 200 के तहत राज्यपाल राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयक को रोक सकता है।

अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति राज्यपाल के प्रतिवेदन या बिना प्रतिवेदन के राज्य में आपातस्थिति घोषित कर सकता है।

अनुच्छेद 167 मुख्यमंत्री को यह दायित्व सौंपता है कि वह राज्य गतिविधियों के बारे में राज्यपाल को सूचना दे जिसकी आगे सूचना राज्यपाल राष्ट्रपति को देता है।

अनुच्छेद 257 के अन्तर्गत प्रावधान है कि राज्य कार्यपालिका को केन्द्र के विरुद्ध पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर काम नहीं करना चाहिए अर्थात् राज्यपाल को राष्ट्रपति के निर्देश व सलाह की अनुपालना करनी चाहिए।

उपर्युक्त अनुच्छेदों को मद्देनजर रखते हुए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि राज्यपाल की केन्द्र के सम्बन्ध में वास्तविक भूमिका क्या होनी चाहिए। क्या वह केन्द्र की "इच्छा" के अनुरूप काम करे या उसे स्वनिर्णय व स्वविवेक के आधार पर काम करने

का अधिकार है ? समस्या की जड़ वस्तुतः राज्यपाल की नियुक्ति सम्बन्धी पद्धति में ही निहित है। राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। प्रो. के.वी. राव का मत है कि समस्या की जड़ यही है कि राज्य का प्रधान न तो राज्य द्वारा चुना जाता है न उसके प्रति उत्तरदायी है न उसके द्वारा हटाया जा सकता है। राज्यपाल की नियुक्ति और विमुक्ति की पद्धति उसे राष्ट्रपति के अधीनस्थ होने का दर्जा प्रदान करती है। घटनाक्रमों ने यह सिद्ध भी कर दिया है कि वह राष्ट्रपति की अवज्ञा नहीं कर सकता। "कड़ी" व "अभिकर्ता" भूमिकाओं में विभेद करते हुए मानते हैं कि अभिकर्ता की तुलना में "कड़ी" के रूप में उसकी भूमिका अधिक सकारात्मक है। लेकिन एक ही समय में वह दोनों भूमिकाओं का निर्वाह नहीं कर सकता। उसे राज्य सरकार को प्रतिबिम्बित करना चाहिए न कि प्रतिवादी या केन्द्र के जासूस के रूप में काम करना चाहिए। किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले उचित होगा कि विभिन्न राज्यों में राज्यपालों की कार्यशैली व तत्सम्बन्धी घटनाक्रम पर एक विश्लेषणात्मक दृष्टि डालें।

कई बार राज्यपाल ने राज्य के हित में अपने केन्द्र के साथ सम्बन्धों का सकारात्मक प्रयोग किया। राज्यपाल वी.वी. गिरि ने योजना आयोग के समक्ष केरल के हित में संघर्ष किया। आयोग ने तृतीय योजना में राज्य के लिए 105 करोड़ रुपये देने का प्रस्ताव किया था, किन्तु अन्ततः फैसला 175 करोड़ पर हुआ। यह गिरि के ही प्रयत्नों का फल है।

कई राज्यपालों ने राज्यों में संवेदनशील प्रशासक की भाँति समस्याओं को सुलझाने तथा वैधानिक कार्यक्रम को गति देने में सक्रिय भूमिका निभायी।

### समीक्षा

राज्यपाल के पद का मूल्यांकन करते हुए विभिन्न विद्वानों, विशेषज्ञों, राजनीतिज्ञों तथा विचारकों ने अपना मत व्यक्त किया है।

डॉ. अम्बेडकर - शक्तियों की बात तो दूर, राज्यपाल के तो कोई कार्य ही नहीं है, उसके तो केवल कर्तव्य हैं।

विजयलक्ष्मी पण्डित - यदि कोई व्यक्ति इस पद को स्वीकार करता है तो उसको पद नहीं वरन वेतन का आकर्षण है।

सरोजिनी नायडू - राज्यपाल उस पक्षी की भाँति है जो सोने के पिंजरे में बन्द है।

एच.पी. मोदी - संवैधानिक अध्यक्ष होने से राज्यपाल के कोई विशेष कार्य नहीं।

के.एम. मुंशी - राज्यपाल संवैधानिक औचित्य का प्रहरी और वह कड़ी है जो राज्य को केन्द्र के साथ जोड़ते हुए भारत की एकता के लक्ष्य को प्राप्त करता है।

एम.वी. पायली - वह केवल नाममात्र का अध्यक्ष नहीं है, वह एक ऐसा अधिकारी है जो राज्य के शासन में महत्वपूर्ण रूप से भाग ले सकता है।

इन्दिरा गाँधी - संकीर्ण प्रान्तीयतावाद पर विजय प्राप्त करने में राज्यपाल की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

राज्यपाल के पद के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी धारणाओं को व्यक्त किया गया है जिससे इस पद के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न व समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। इसके लिए संविधान निर्माताओं को दोष देना सर्वथा अनुचित होगा, क्योंकि वे भावी समस्याओं का पूर्वानुमान एक सीमा तक ही लगा सकते थे। वस्तुतः इस पद को समझने के लिए संविधान को उसकी सम्पूर्णता में देखना होगा। राज्यपाल को निश्चित रूप से अधिक कुछ करने को नहीं होता क्योंकि संविधान निर्माता वस्तुतः चाहते ही यही थे। राज्यपाल से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि राज्य में एक समानान्तर सरकार चलाए। उसकी भूमिका बुद्धिमान परामर्शदाता, मध्यस्थ तथा विवाद की स्थिति में बीच-बचाव करने वाले की है, न कि सक्रिय राजनीतिज्ञ की। उसे मंत्रिमण्डल की सलाह के अनुसार चलना चाहिए किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक सलाह को तुरन्त स्वीकार कर ले। वह विधेयकों को पुनर्विचार के लिए रोक सकता है ताकि जल्दबाजी से निर्णय न लिये जायें। अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति को प्रतिवेदन भेजते समय पर्याप्त सावधानी व नियंत्रण से काम लेना चाहिए, अन्यथा राज्य के संरक्षक के रूप में उसकी तस्वीर धूमिल हो जाएगी। उसे सक्रिय राजनीति से अलग रहना चाहिए, क्योंकि किसी दल विशेष का प्रतिनिधित्व करता हुआ एक सक्रिय राजनीतिज्ञ समस्त जनता का विश्वासपात्र नहीं बन सकता। इसी कारण सरकार या आयोग के सुझावों पर ध्यान देना आवश्यक है।

## राज्यपाल की स्थिति

### (Position of the Governor)

संविधान के अनुसार राज्यपाल की स्थिति राज्य में उसी प्रकार है जिस प्रकार राष्ट्रपति की संघ सरकार में, परन्तु दोनों की स्थिति में सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक रूप में भिन्नता पाई जाती है। सैद्धान्तिक तौर पर सभी कार्यकारी शक्तियां राज्यपाल में केन्द्रित हैं और वह राज्य प्रशासन का स्रोत है। उसके नाम पर राज्य का प्रशासन चलाया जाता है। वह मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद् के सदस्यों तथा राज्य के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है। उसकी स्वीकृति के बिना कोई भी कानून नहीं बनाया जा सकता। परन्तु राज्य स्तर पर केन्द्र की भांति संसदीय प्रणाली को अपनाये जाने के कारण वास्तव में राज्यपाल स्वयं अपनी शक्तियों का प्रयोग नहीं करता। उसे संवैधानिक शासन होने के कारण साधारणतः मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करना पड़ता है। यद्यपि संविधान द्वारा इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया गया फिर भी राज्य के लिए मंत्रिपरिषद् के परामर्श को स्वीकार करना आवश्यक है। इसका मुख्य कारण यह है कि मंत्री राज्यपाल के कार्यों के लिए व्यक्तिगत तथा संयुक्त रूप में विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होते हैं इसलिए राज्यपाल की शक्तियों का प्रयोग मंत्रियों द्वारा ही किया जाता है। वह स्वयं केवल आसाधारण परिस्थितियों में ही इनका प्रयोग कर सकता है। राज्यपाल की इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि संविधान निर्माता कॅनेडा तथा आस्ट्रेलिया के गवर्नर की भांति उसे केवल नाममात्र राज्यपाल का रूप देना चाहते थे। इसी प्रकार प्रत्यक्ष निर्वाचन के स्थान पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त करने की प्रथा को अपनाया गया। डॉ. अम्बेदकर (Dr. Ambedkar) ने संविधान सभा में राज्यपाल की शक्तियों तथा स्थिति का वर्णन करते हुए स्पष्ट रूप में कहा था, "गवर्नर की शक्तियां इतनी सीमित, नाममात्र होंगी तथा उसकी स्थिति इतनी विभूषक होगी कि वह कोई भी कार्य अपनी इच्छा तथा व्यक्तिगत निर्णय के आधार पर नहीं कर सकेगा।" संविधान के अनुसार उसके लिए सभी विषयों पर मंत्रिपरिषद् का परामर्श स्वीकार करना आवश्यक है। इसका समर्थन कलकत्ता हाई कोर्ट ने इस प्रकार किया है कि "राज्यपाल इस संविधान के अन्तर्गत अपने मंत्रियों की सलाह के बिना कोई भी कार्य नहीं कर सकता।" एच. वी. कामथ (H.V. Kamath) के अनुसार, "राज्यपाल एक ओर से मुख्यमंत्री तथा दूसरी ओर से राष्ट्रपति अथवा वास्तव में प्रधानमंत्री के हाथ में कठपुतली है।"

विचारों के होते हुए भी राज्यपाल का पद सर्वथा प्रभाव वाला नहीं। उसे कुछ ऐसी शक्तियां भी प्राप्त हैं जिनका प्रयोग वह अपनी इच्छा के अनुसार कर सकता है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि राज्यपाल की स्थिति संवैधानिक मुखिया तथा वास्तविक प्रशासक दोनों की है। वह एक ही समय में राज्य का मुख्य कार्यपालक तथा संघीय सरकार का प्रतिनिधि है।

पायली (Pylee) के अनुसार, "संवैधानिक व्यवस्थाओं के ध्यानपूर्वक अध्ययन तथा समस्त संविधान की योजनाओं की दृष्टि से उनका मूल्यांकन करने से प्रतीत होगा कि राज्यपाल न तो नाममात्र का मुखिया है और न ही वह रबर स्टैम्प (Rubber Stamp) है, परन्तु वह एक ऐसा कार्यकर्ता है जिसे राज्य के कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है।"

4. कृषि विपणन निदेशालय
5. राजस्थान राज्य बीज निगम
6. राजस्थान राज्य भू विकास निगम
7. राजस्थान राज्य कृषि विपणन मंडल
8. राजस्थान राज्य कृषि उद्योग निगम
9. राजस्थान बीज प्रमाणन अभिकरण



# अध्याय-16

## मुख्यमंत्री

### मुख्यमंत्री (The Chief Minister)

मुख्यमंत्री का पद एक संवैधानिक पद है। वह राज्य सरकार का वास्तविक अध्यक्ष है। राज्य की कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान होने के नाते उसकी स्थिति राज्य के शासन में प्रायः वैसी ही है, जैसी केन्द्रीय शासन में प्रधानमंत्री की है। वह राज्य का नायक है अतः मुख्यमंत्री को राज्य प्रशासन की धुरी कहा जा सकता है।

#### नियुक्ति

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करता है। सामान्यतः विधानसभा के बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री के पद पर नियुक्त किया जाता है किन्तु ऐसी परिस्थितियाँ आ सकती हैं जबकि राज्य विधानसभा में किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति के मामले में स्वविवेक का प्रयोग करता है। सन् 1967 के बाद अनेक राज्यों में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होने पर मुख्यमंत्रियों के चयन करने में राज्यपालों ने स्वविवेकाधिकार का प्रयोग किया लेकिन उनके द्वारा सभी राज्यों में इन स्व-विवेकीय शक्तियों का प्रयोग समान रूप में नहीं किया गया और विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न मापदण्डों को अपनाकर स्वयं को आलोचना का पात्र बनाया। किसी राज्य में राज्यपाल ने सबसे बड़े दल के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त किया और संविद् या गठबन्धन के नेता के दावे को अस्वीकार कर दिया जबकि उनके समर्थकों की संख्या अधिक थी (मद्रास 1951, राजस्थान 1967 और हरियाणा 1982)। ऐसा अधिकतम तभी हुआ है जब केन्द्र में उसी दल की सरकार सत्तारूढ़ थी जिस दल के नेता को राज्य में सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया था। किसी राज्य में सबसे बड़े दल के नेता के दावे को अस्वीकार करके संविद् या गठबन्धन के नेता को सरकार बनाने का निमन्त्रण दिया गया है-1979 में केन्द्र में, पंजाब में 1967 में, पश्चिम बंगाल में 1970 में, बिहार और महाराष्ट्र में 1978 में।

सन् 1982 में हरियाणा के राज्यपाल जी. डी. तपासे ने इस विवेकाधिकार का बड़े नाटकीय ढंग से प्रयोग किया जिसने इस बात को और स्पष्ट कर दिया कि राज्यपालों द्वारा अपनी शक्ति का राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग किया जाता है। हरियाणा में 90 सदस्यों के सदन में कांग्रेस (इ) को 35 सीटें मिली थी जबकि लोकदल, भारतीय जनता पार्टी, संयुक्त दल को 36 सीटें मिली थी। राज्यपाल ने नाटकीय ढंग से कांग्रेस दल के नेता भजनलाल को बुलाकर मुख्यमंत्री पद की शपथ दिला दी। राज्यपाल के इस कदम की कटु शब्दों में आलोचना हुई। समय-समय पर राज्यपालों द्वारा अल्पमतीय मुख्यमंत्रियों को नियुक्त किए जाने के निर्णयों की आलोचना हुई। असम में श्रीमति अनवरा तैमूर और केशवचंद्र गोगोई, सिक्किम में बी. बी. गुरुंग, आन्ध्र प्रदेश में भास्करराव और जम्मू-कश्मीर में गुल मोहम्मद शाह जैसे अल्पमतीय मुख्यमंत्रियों को सत्तारूढ़ करने के राज्यपालों के निर्णय कटु आलोचना के शिकार बने। प्रमुख संविधान वेत्ताओं, न्यायविदों तथा राजनीतिक समीक्षकों का मत है कि राज्यपाल की स्वविवेकीय शक्ति मनमानी नहीं है, वरन् उसके प्रयोग करने में अग्रलिखित परम्पराओं का पालन करना चाहिए-

- (1) उसे सर्वप्रथम सबसे बड़े दल के नेता को बुलाना चाहिए;
- (2) चुनाव के पहले नये संयुक्त दल या गठबन्धन के नेता को;

- (3) अविश्वास के प्रस्ताव आने पर विरोधी दल के नेता को;
- (4) दल-बदल या चुनाव के पश्चात् बने गठबन्धन के नेता को।

इन सभी परिस्थितियों में जब राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं तो उन्हें स्वविवेक का प्रयोग करना होता है। निर्वाचन के बाद विधायिका के किसी भी दल के स्पष्ट बहुमत में न आने से भी राज्यपाल के सामने इस क्षेत्र में निर्णय की चुनौती आती है।

पिछले कुछ समय में कुछ राज्यों के घटनाक्रम ने मुख्यमंत्री के चयन व सरकार बनाने के आमंत्रण सम्बन्धी राज्यपाल के अधिकार व उससे सम्बन्धित व्यवहार पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। उत्तर प्रदेश में पिछले कुछ समय से सरकारों के गिरने व बनने की विचित्र प्रक्रिया रही। राज्यपाल के निर्णयों के बारे में उठे विवाद ने उत्तर प्रदेश की सरकार के शासन की गरिमा को ही कम किया है।

जहाँ तक मुख्यमंत्री की विमुक्ति का प्रश्न है इस सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 164(1) में उल्लेख है कि मुख्यमंत्री राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर रहता है। सामान्यतया जब तक मुख्यमंत्री व उसका दल सदन में बहुमत का आधार पाते हैं तब तक अपने पद पर रहते हैं और जब वे सदन में बहुमत खो देते हैं, या किसी महत्वपूर्ण मुद्दे पर मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित हो जाये तो मुख्यमंत्री व उसके मंत्रिमंडल को अपने पद पर से हटाना होता है। इस सम्बन्ध में सैद्धान्तिक व्यवस्था व व्यवहार में अन्तर देखा गया है। राज्यपाल से अपेक्षा की जाती है कि वे राज्य की राजनीति में तटस्थ भूमिका का निर्वाह करेंगे तथा परिवार के मुखिया के रूप में राज्य व शासन को सलाह मशवरा देते रहेंगे। व्यवहार में विभिन्न राज्यों के राज्यपालों ने केन्द्र के एजेन्ट के रूप में उसके दिशा-निर्देश पर काम किया है। ऐसी स्थिति में व्यावहारिक रूप में मुख्यमंत्री को हटाने का काम केन्द्रीय सरकार के दिशा निर्देश पर होता है। ऐसी स्थिति अधिकतर तब आती है तब केन्द्र व राज्य में भिन्न राजनैतिक दलों की सरकारें हो तथा दोनों में टकराव की स्थिति उत्पन्न हो। इस सम्बन्ध में कई बार अलग-अलग राज्यों में राज्यपालों ने परस्पर विरोधी निर्णय दिये हैं।

### कार्य एवं अधिकार

राज्य के शासनतन्त्र की केन्द्रीय शक्ति यदि मन्त्रि-परिषद् होती है तो मन्त्रि-परिषद् में शक्ति का केन्द्र मुख्यमंत्री होता है। मुख्यमंत्री के कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें करना उसके लिए संविधान की दृष्टि से आवश्यक है और कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें वह परम्पराओं के अनुसार करता है।

**मुख्यमंत्री के संविधानिक कार्य एवं अधिकार** - जिन कार्यों का करना मुख्यमंत्री का संविधानिक दायित्व है, वे इस प्रकार हैं -

1. मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य होता है कि वह राज्य-कार्यों के प्रशासन के सम्बन्ध में मन्त्रि-परिषद् द्वारा लिए गए समस्त विनिश्चयों तथा विधान बनाने सम्बन्धी समस्त प्रस्थापनाएँ राज्यपाल को सुपुर्द करे। दूसरे शब्दों में, मुख्यमंत्री, मन्त्रिपरिषद् द्वारा लिए गए समस्त निर्णयों की सूचना राज्यपाल को देता है।
2. राज्यपाल को वह समस्त जानकारी प्रेषित करे जो उसने राज्य-प्रशासन के सम्बन्ध में मन्त्रि-परिषद् के तत्सम्बन्धी विनिश्चयों तथा विधान निर्माण सम्बन्धी प्रस्थापनाओं के सन्दर्भ में चाही है।
3. ऐसे किसी विषय पर जिस पर मन्त्री ने अपना विनिश्चय प्रदान कर दिया है लेकिन उसे मन्त्रि-परिषद् के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत नहीं किया गया है, उसके सम्बन्ध में मुख्यमंत्री पर यह दायित्व है कि ऐसे विनिश्चयों को राज्यपाल की अपेक्षा करने पर मन्त्रि-परिषद् के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करे।  
अनुच्छेद 167 में समाविष्ट किये गए मुख्यमंत्री के सांविधानिक कर्तव्यों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मुख्यमंत्री का उक्त समस्त कर्तव्यों का पालन किया जाना अनिवार्य है।
4. राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखना उसका प्राथमिक दायित्व है।
5. राज्य में प्रशासन-तन्त्र को सुचारू रूप से चलाना उसका प्रमुख दायित्व है।

**मुख्यमंत्री के परम्परागत एवं व्यावहारिक कार्य-**मुख्यमंत्री के वे कार्य जिन्हें परम्परागत रूप से करता है, निम्नलिखित हैं-

1. राज्यपाल मंत्रियों की नियुक्ति व पदच्युति मुख्यमंत्री के परामर्श के अनुसार ही करता है अतः मंत्रियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में मुख्यमंत्री सर्वेसर्वा होता है। वह उसका विशेषाधिकार होता है कि वह किसे मंत्रिमण्डल में शामिल करे अथवा किसे नहीं करे ?  
मंत्रियों के कार्यकाल के विषय में सविधान की व्यवस्था यह है कि वे राज्यपाल के प्रसाद-पर्यन्त मंत्री पद पर रहेंगे परन्तु व्यवहार में यह प्रसाद-पर्यन्तता राज्यपाल की न होकर मुख्यमंत्री की होती है क्योंकि मुख्यमंत्री अपना परामर्श राज्यपाल को देकर कभी किसी मंत्री को पदच्युत् करवा सकता है। त्यागपत्र नहीं देने वाले मंत्री को वह बर्खास्त कर सकता है।
2. मुख्यमंत्री, मंत्रियों के विभागों का बँटवारा करता है। वही उनके विभागों में परिवर्तन करता है। शासन के नवीन विभागों की उत्पत्ति तथा विद्यमान विभागों की समाप्ति आदि का अधिकार मुख्यमंत्री को प्राप्त होता है।
3. शासन के विविध विभागों की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं तथा ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं कि जब एक विभाग का निर्णय किसी दूसरे के विभाग के निर्णय के प्रतिकूल होता है। ऐसी स्थिति में जब दो विभागों के मंत्रियों में कोई गतिरोध पैदा हो जाता है अथवा निर्णय लिए जाने से पहले उनके बीच का कोई मतभेद उभर आता है तो मुख्यमंत्री का कार्य ऐसे विभागों के बीच समन्वय बैठाना होता है। ऐसी परिस्थितियों में वह विविध विभागों को आवश्यक आदेश और निर्देश दे सकता है।
4. मुख्यमंत्री विधानसभा का नेतृत्व करता है। शासन के नेतृत्व के साथ वह विधान सभा का नेतृत्व करता है। उसे सदन का नेता कहा जाता है तथा अपने इसी रूप में वह विधानसभा के भंग किए जाने के विषय में अपना परामर्श राज्यपाल को देता है।
5. राज्यपाल द्वारा जो उच्चस्तरीय नियुक्तियों की जाती हैं, वे वास्तव में मुख्यमंत्री के द्वारा की जाती हैं, क्योंकि राज्यपाल ये सब कार्य मुख्यमंत्री के परामर्श के अनुसार करता है।
6. राज्य सरकार का प्रमुख प्रवक्ता मुख्यमंत्री होता है। वही राज्य सरकार की ओर से सरकारी निर्णयों की अधिक त घोषणा करता है। दो मंत्रियों के परस्पर विरोधी वक्तव्यों से उत्पन्न गतिरोध को मुख्यमंत्री अपना निर्णायक वक्तव्य देकर समाप्त करता है।
7. वह मन्त्रि-परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
8. वह विभिन्न सम्मेलनों और परिषदों की बैठकों में राज्य का प्रतिनिधित्व करता है। वह राष्ट्रीय विकास परिषद् और क्षेत्रीय परिषदों में राज्य का प्रतिनिधित्व करता है।
9. मुख्यमंत्री मन्त्रिपरिषद् और राज्य विधान सभा के बीच की संपर्क कड़ी माना जाता है।
10. मुख्यमंत्री राज्य विधान सभा और जनता के मध्य संपर्क-सूत्र है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुख्यमंत्री राज्य का सबसे महत्वपूर्ण और शक्तिशाली व्यक्ति होता है।

### **राज्यपाल, मुख्यमंत्री और मन्त्रिमण्डल : कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे**

1. नवम्बर, 1973 में राज्यपाल सम्मेलन में बोलते हुए तत्कालीन राष्ट्रपति वी. वी. गिरि ने कहा था कि राज्यपालों को मन्त्रि-मण्डलों के विरुद्ध सार्वजनिक बहस में नहीं पड़ना चाहिए। राज्यपाल कुछ अप्रकट रूप से कार्य करता है। समाचार-पत्र या सार्वजनिक मंच, उनके मंच नहीं हैं। दूसरे अर्थ में, राज्यपालों को अपने मन्त्रिमण्डलों के विरुद्ध सार्वजनिक वक्तव्य और टिप्पणियाँ नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से राज्य का राजनीतिक वातावरण तो विषाक्त होता ही है, राज्यपाल और मन्त्रि-परिषद् के बीच कुछ अवांछनीय 'शीतयुद्ध' की-सी स्थिति बन जाती है।
2. राज्यपाल तथा मन्त्रि-मण्डल दो समानान्तर शक्तियाँ नहीं बल्कि एक-दूसरे की पूरक शक्तियाँ हैं। उनका एक-दूसरे के साथ पूर्ण तालमेल और पारस्परिक विश्वास के साथ कार्य करना वांछनीय ही नहीं, अत्यावश्यक है। ऐसी स्थिति में राज्य-प्रशासन का सुचारु रूप से संचालन संभव है।

शासनाधिकार मंत्रि-मण्डल को है। संविधान में मंत्रि-मण्डल को शासन करने का उत्तरदायित्व प्रदान किया गया है। राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में राज्यपाल मंत्रि-मण्डल का मित्र, सलाहकार और मार्गदर्शक है।

यदि उपर्युक्त दिशा-निर्देशों का ईमानदारी से पालन किया जाए तो अनावश्यक संविधानिक विवादों से बचा जा सकता है।

### **मुख्यमंत्री : प्रशासकीय भूमिका**

एक राज्य के मुख्यमंत्री की सफलता इस बात पर अत्यधिक निर्भर करती है कि वह अपने मंत्रिमण्डल व मंत्रि-परिषद् के माध्यम से विभिन्न विभागों में तालमेल तथा समन्वय किस प्रकार स्थापित करता है। कुछ शासकीय विभाग मुख्यमंत्री प्रत्यक्ष रूप से अपने अधीन रखता है। कौन से विभाग मुख्यमंत्री के पास रहेंगे इसके लिए कोई निश्चित नियम नहीं है, यह मुख्यमंत्री की स्वयं की इच्छा तथा समयानुसार किसी विभाग के महत्व के ऊपर निर्भर करता है। कोई मंत्री मंत्रिमण्डल से हटता है तो वैकल्पिक व्यवस्था होने तक वह विभाग भी मुख्यमंत्री के पास ही रहता है। जब किसी विभाग का उत्तरदायित्व मुख्यमंत्री प्रत्यक्ष रूप से संभाल लेता है तो उसकी शक्तियाँ व कार्य अन्य विभागों के प्रभारी मंत्रियों की भांति ही होती हैं। राजस्थान में ऐसे कई अवसर आए हैं जबकि एक मुख्यमंत्री के पास लगभग एक दर्जन विभाग रहे हैं। सिद्धान्त रूप से मुख्यमंत्री को उतने विभाग ही अपने पास रखने चाहिए जिनका प्रबन्ध वह कुशलतापूर्वक कर सके। इसीलिए उसकी प्रबंधकीय कुशलता व क्षमता ही यह निर्धारित करती है कि किसी मुख्यमंत्री के पास कितने विभाग रहेंगे?

प्रशासन की सफलता के लिए आवश्यक है कि मुख्यमंत्री, अन्य मंत्रियों एवं लोकसेवकों में सौहार्दपूर्ण संबंध हों, ऐसा वातावरण बनाने में मुख्यमंत्री महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। संवैधानिक दृष्टि से देखें तो राज्य में नीति-निर्माण का कार्य मुख्यमंत्री व अन्य मंत्री करते हैं किन्तु व्यावहारिक रूप से इस क्षेत्र में लोक सेवकों की भूमिका के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। नीति-निर्माण के लिए आवश्यक सूचनाएं, व आंकड़े लोक सेवकों द्वारा ही प्रस्तुत किए जाते हैं। इस प्रकार वे नीति-निर्माण का आधार बनाते हैं। इसके अतिरिक्त मुख्यमंत्री व उनके सहयोगियों द्वारा बनाई नीति तभी सफल हो सकती है जबकि लोक सेवक उन्हें उसी भावना के अनुरूप कार्य रूप में परिणत करें। ऐसे में मुख्यमंत्री का अपने विभाग के मंत्रियों तथा लोक सेवकों के साथ परस्पर संबंधों की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हो जाती है।

### **मुख्यमंत्री की वास्तविक स्थिति**

#### **(The Actual Position of the Chief Minister)**

राज्यपाल और मन्त्रि-मण्डल के सन्दर्भ में मुख्यमंत्री की वास्तविक स्थिति को हम जान चुके हैं पर मुख्यमंत्री की स्थिति अनेक बातों पर निर्भर करती है, जिनमें से कतिपय निम्नलिखित हैं :-

1. भारत में बहुदलीय व्यवस्था के बावजूद अभी तक 1967 के बाद के कुछ समय को छोड़कर एकदलीय प्रभाव रहा है। हाई कमान और प्रधानमंत्री का संरक्षण जिस मुख्यमंत्री को प्राप्त हो वह विधान सभा की गुटबाजी का सफलतापूर्वक मुकाबला कर पाता है।
2. केन्द्र में यदि शासक दल की स्थिति कमजोर है तो राज्यों के मुख्य मंत्रियों की स्थिति अधिक मजबूत हो जाती है क्योंकि उन पर केन्द्रीय निर्देशनों अथवा हाई कमान के निर्देशनों का वह प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. यदि राज्य विधान सभा में मुख्यमंत्री को स्पष्ट बहुमत प्राप्त है तो उसकी स्थिति अधिक सुदृढ़ होती है।
4. यदि विधानसभा में दल-बदल का जोर है तो मुख्यमंत्री की स्थिति अनिश्चय में रहती है, ऐसे मुख्यमंत्री की स्थिति प्रायः कमजोर ही रहती है।
5. मुख्यमंत्री की वास्तविक स्थिति उसके स्वयं के और राज्यपाल के व्यक्तित्व के अनुपात पर निर्भर करती है। यदि राज्यपाल कमजोर व्यक्तित्व वाला है तो मुख्यमंत्री की स्थिति अधिक मजबूत हो जाती है।
6. यदि मुख्यमंत्री का व्यक्तित्व 'करिश्माई' है अथवा उसमें जनता को सम्मोहित करने की शक्ति है तो उसकी स्थिति सुदृढ़ होगी।
7. अगर मुख्यमंत्री प्रशासनिक दृष्टि से सक्षम है और राज्य प्रशासन पर उसकी मजबूत पकड़ है तब उसकी स्थिति शक्तिशाली रहेगी।

8. यदि केन्द्र में उसी के दल की सरकार है तो मुख्यमंत्री की स्थिति प्रभावशाली रहेगी।
  9. प्रधानमंत्री के साथ मधुर सम्बन्ध हैं तो मुख्यमंत्री की स्थिति प्रभावी रहेगी।
  10. अगर प्रधानमंत्री के चयन में मुख्यमंत्रियों की निर्णायक भूमिका रही हो तो उनकी शक्ति में अभिवृद्धि होगी।
- सारांश में यही कहा जा सकता है कि मुख्यमंत्री राज्य प्रशासन की धुरी होता है।

## अध्याय-17

# राज्य सचिवालय

### राज्य सचिवालय (STATE SECRETARIAT)

केन्द्रीय प्रशासन की भांति राज्य प्रशासन को क्षमतापूर्वक चलाने के लिए विभिन्न प्रशासकीय विभागों की स्थापना की गई है। प्रत्येक विभाग को किसी न किसी मन्त्री के अधीन रखा जाता है जो विभाग के राजनीतिक मुखिया के रूप में कार्य करता है तथा अपने विभाग के आधार पर विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है। एक मन्त्री के अधीन एक से अधिक विभाग भी रखे जाते हैं। मन्त्री की सहायता के लिए केन्द्र की भांति एक सचिव (Secretary) होता है जो प्रशासकीय मुखिया (Administrative Head) के रूप में कार्य करता है। सचिव की नियुक्ति अखिल भारतीय प्रशासकीय सेवाओं (I.A.S.) के राज्य में कार्य करने वाले पदाधिकारियों में से की जाती है। प्रत्येक विभाग को उपविभागों, शाखाओं, सैक्शनों तथा उपसैक्शनों में विभाजित किया जाता है। सचिव का विभाग पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। राज्य सरकार के सभी विभागों का समूह, जिनके प्रशासकीय मुख्याधिकारी सचिव तथा राजनीतिक मुख्याधिकारी मन्त्री होते हैं, को सचिवालय कहते हैं। सचिवालय के विभागों की संख्या भिन्न-भिन्न प्रान्तों में 11 से लेकर 24 तक होती है। प्रशासकीय सुधार आयोग ने इसे 13 तक सीमित रखने का सुझाव दिया है। विभाग का सचिव केन्द्रीय सरकार की भांति विभाग के मन्त्री के सहायक एवं सलाहकार के रूप में कार्य करता है और मन्त्री विभाग के आधार पर विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रत्येक राज्य में राज्य सचिवालय, राज्य शासन व प्रशासन का वह केन्द्र है जहाँ से प्रत्यक्ष रूप से नीति निर्धारण तथा परोक्ष रूप से नीति के क्रियान्वयन की प्रक्रिया संचालित होती है। इस प्रशासनिक संरचना के शिखर पर राजनीतिक नेतृत्व, मध्य में सचिवालय तथा अन्त में निदेशालय होते हैं। सचिवालय वस्तुतः सत्ता का हृदय है, जहाँ से शासन शरीर के लिए आवश्यक निर्देश के रूप में रक्त संचार प्राप्त होता है।

#### संरचना

केन्द्र सरकार की भांति, प्रत्येक राज्य सरकार का एक शासन सचिवालय होता है, जो राज्य शासन की उच्चतम संस्था है। महाराष्ट्र में इसे "मंत्रालय" के रूप में जाना जाता है। नाम से तो प्रतीत होता है कि सचिवालय "सचिवों" का आलय (घर) है, किन्तु वास्तव में यह सचिवों के अतिरिक्त उनके उच्चतर राजनीतिक अधिकारी मंत्रियों का भी कार्य-स्थल है अर्थात् सचिवालय वह संस्था है जहाँ राज्य सरकार के सभी मंत्रियों, सचिवों तथा उनके अधीनस्थ अधिकारियों के कार्यालय स्थित होते हैं। राज्य सरकार के सभी विभाग इस संस्था के अंग होते हैं। यहाँ एक अंतर समझ लेना चाहिए। सचिवालय के अधीन कई कार्यपालक विभाग अथवा निदेशालय होते हैं, वे सचिवालय के अंग नहीं होते। जैसे राजस्थान का उच्च तकनीकी शिक्षा विभाग तो सचिवालय का अंग है, किन्तु इसके नीचे कार्यरत निदेशालय जैसे कॉलेज शिक्षा निदेशालय, सचिवालय का अंग नहीं है। वह तो कार्यकारी विभाग है। विभाग तथा कार्यकारी विभाग में अन्तर है। सचिवालय का सम्बन्ध मूलतः 'नीति' से है। इन नीतियों के क्रियान्वयन के लिए कुछ संस्थाएं होती हैं जिन्हें कार्यकारी संस्थाएं या विभाग कहते हैं। कार्यकारी विभागों के प्रमुख को अलग-अलग नामों से जाना जाता है यथा: निदेशक, महानिदेशक, महानिरीक्षक, आयुक्त, नियन्त्रक आदि, पर सामान्यतया इन्हें विभागाध्यक्ष कहा जाता है। सचिवालय विभागों की स्थिति वरिष्ठ तथा निदेशालय विभागों की स्थिति कनिष्ठ होती है। सचिवालय में कृषि उत्पादन विभाग का प्रमुख सचिव, कृषि उत्पादन होता है, तो निदेशालय में निदेशक, कृषि विभाग का प्रमुख होता है। सचिवालय के प्रत्येक विभाग के साथ कार्यकारी विभाग सम्बद्ध नहीं होते हैं, विशेषकर उन विभागों के साथ जिनकी

भूमिका परामर्शीय एवं नियन्त्रकीय है, जैसे वित्त, कार्मिक, योजना एवं प्रशासनिक सुधार। सचिवालय का विभाग प्रमुख अधिकांशतः सामान्यज्ञ होता है, जबकि निदेशालय का विभाग प्रमुख सामान्यतया विषय-विशेषज्ञ होता है।

कुछ ऐसे भी विभाग हैं जहां सचिवालय-निदेशालय का पथक्करण नहीं पाया जाता, जैसे ग्रामीण विकास तथा पंचायती राज विभाग, राहत विभाग, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति विभाग आदि। इसी प्रकार कतिपय महत्त्वपूर्ण विभाग हैं जो केवल सचिवालय तक ही सीमित हैं, जैसे कार्मिक विभाग, प्रशासनिक सुधार विभाग, सामान्य प्रशासन विभाग, नियोजन विभाग, वित्त विभाग, विधि विभाग आदि।

## भूमिका

राजस्थान शासन सचिवालय की भूमिका के मुख्य आयाम इस प्रकार हैं:

### 1. नीति-निर्माण

सत्ता के केन्द्र के रूप में सचिवालय राज्य सरकार की सभी शक्तियों का स्रोत है। यह राज्य सरकार की मुख्य नीति-निर्माण संस्था है। राज्य प्रशासन से सम्बन्धित सभी मामलों पर मुख्यमंत्री एवं अन्य मंत्रियों को यह नीति-निरूपण में सहायता प्रदान करता है। नीतियों का यह उद्गम स्थल है, साथ ही उनके संशोधन का केन्द्र भी यही है।

सचिवालय में ही स्थित मंत्रिमंडल सचिवालय प्रमुख नीति-निरूपण संस्था है। साथ ही मुख्यमंत्री एवं मुख्य सचिव के कार्यालय भी इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सचिवालय में एक नीति-नियोजन इकाई भी है जिसका सचिव मुख्यमंत्री का सचिव ही है। जैसे प्रत्येक विभाग के मंत्री एवं सचिव एकीकृत रूप से अपने-अपने विभाग के विषयों से सम्बन्धित नीतियों के प्रारूप बनाने के लिये उत्तरदायी हैं। यही प्रारूप मुख्यमंत्री की स्वीकृति के पश्चात मंत्रिमंडल की बैठकों में प्रस्तुत किये जाते हैं। राज्य की औद्योगिक नीति, कृषि नीति, स्वास्थ्य नीति, आवास नीति आदि सचिवालय में विभिन्न स्तरों पर मंथन के ही परिणाम हैं। किन्तु कई बार कुछ नीतियाँ विभिन्न विभागों के पारस्परिक मतभेद के कारण अंतिम अवस्था तक नहीं पहुँच पाती। 1995-96 में पर्यटन नीति का यही हाल हुआ, क्योंकि परिवहन विभाग इस नीति के कुछ भागों से सहमत नहीं था। उधर, 1996 में ही परिवहन नीति भी केन्द्र सरकार की कतिपय मुद्दों पर स्वीकृति के अभाव में अटकी रह गई थी। किन्तु सामान्यतया ऐसी कठिनाइयाँ नीति-प्रक्रिया में देखने को नहीं मिलती। 1994 के पश्चात राजस्थान शासन सचिवालय में सचिवों की समितियों की नवीन व्यवस्था कार्य कर रही है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सम्बन्धित विभागों के सचिव नीतिगत प्रश्नों पर विचार-विमर्श करते हैं। महत्त्वपूर्ण पत्रावलियाँ भी कई बार इस समिति को समीक्षा के लिए भेज दी जाती हैं। सचिवों की समिति के कुछ सदस्य स्थाई होते हैं, बाकी सम्बन्धित विषयों के सचिव होते हैं तथा मुख्य सचिव द्वारा मनोनीत भी किये जाते हैं।

### 2. सूचनाओं का केन्द्र

नीति-निर्माण का क्षेत्र हो अथवा नीति निष्पादन एवं मुल्यांकन का, सही सूचनाएँ एवं आँकड़े अति आवश्यक हैं जिनके आधार पर नीतियाँ एवं निर्णय लिये जाते हैं। सचिवालय राज्य प्रशासन के सभी पहलुओं के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करने, उनके वर्गीकरण एवं विश्लेषण करने एवं आवश्यकता पड़ने पर उन्हें विभिन्न संस्थाओं को सम्प्रेषित करने का दायित्व निभाता है। यह कार्य आयोजना एवं वित्त विभाग मुख्य रूप से करते हैं। आयोजना विभाग के अधीन कार्य कर रहे कम्प्यूटर विभाग, सूचना प्रौद्योगिकी विभाग एवं जिला आयोजना सम्भाग विकासात्मक सांख्यिकी के एकत्रण एवं वर्गीकरण में विशेष सफलता अर्जित कर सके हैं।

### 3. मुख्य समन्वयक संस्था

राज्य प्रशासन में निदेशालय, मंडल, निगम, लोक उपक्रम, क्षेत्रीय एवं स्थानीय संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। समस्त प्रशासनिक तंत्र को एक सूत्र में बांधने का दायित्व सचिवालय का है। प्रशासन की मुख्य समन्वयात्मक संस्थाएँ हैं - मंत्रिमंडल सचिवालय, मुख्यमंत्री का कार्यालय, मुख्य सचिव का कार्यालय, आयोजना विभाग, वित्त विभाग, विधि विभाग, कार्मिक विभाग, प्रशासनिक सुधार विभाग, सामान्य प्रशासन विभाग तथा अन्य सचिवालय स्थित विभाग। सचिवों की समितियाँ तथा आयोजना एवं विकास समन्वय समितियाँ भी इस क्षेत्र में महती भूमिका निभाती हैं।

#### 4. नियमन एवं नियन्त्रण

सरकारी प्रशासन के विभिन्न पहलुओं पर नियम-निरूपण का कार्य सचिवालय के विभिन्न विभागों में होता है। इनमें से मुख्य कार्मिक, वित्त एवं विधि विभाग हैं। अन्य विभाग भी अपने-अपने क्षेत्र से सम्बन्धित नियम बनाते हैं जिन्हें मंत्रिमंडल अथवा सम्बन्धित मंत्री की स्वीकृति से घोषित किया जाता है।

सरकारी योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों एवं नियमों का पालन एवं कुशल निष्पादन विभिन्न निदेशालय एवं अन्य संस्थाएँ करें, यह सुनिश्चित करना सचिवालय का ही कार्य है। नीतियों एवं निर्णयों के निष्पादन पर निगरानी रखना सचिवालय का ही मुख्य दायित्व है।

#### 5. संसदीय एवं विधायी भूमिका

राज्य सरकार के प्रशासन के बारे में संसद अथवा राज्य विधान सभा में उठाये गये प्रश्नों का उत्तर तैयार करना, विधायी समितियों के समक्ष प्रशासन का प्रतिनिधित्व, नये विधेयकों का निरूपण, पुराने विधानों में संशोधन आदि से सम्बन्धित मामले सचिवालय के ही कार्यक्षेत्र में आते हैं।

#### 6. केन्द्र एवं अन्य राज्यों से सम्बन्ध

राजस्थान राज्य के केन्द्र सरकार एवं अन्य राज्यों से सम्बन्धित प्रशासनिक मामले राज्य सचिवालय के विभिन्न विभागों के कार्यक्षेत्र में ही आते हैं। केन्द्र सरकार से मिलने वाली सहायता, ऋण, कार्यक्रमों से सम्बन्धित निर्देश आदि के मामले सचिवालय में ही निपटाए जाते हैं। मुख्यमंत्री एवं मुख्य सचिव के कार्यालय इस सम्बन्ध में महती भूमिका निभाते हैं। विभिन्न राज्यों से सीमा-निर्धारण, नदी-जल, नहरी-पानी, पर्यावरण-सुरक्षा, तस्करी-निरोध, दस्यु-उन्मूलन आदि से सम्बन्धित निर्णय एवं उनके निष्पादन के मामले सचिवालय के ही कार्य क्षेत्र में आते हैं।

#### 7. कार्मिक प्रशासन

सचिवालय के कार्मिक विभाग में अखिल भारतीय सेवाओं एवं मुख्य उच्चतर राज्य सेवाओं के मामले निपटाए जाते हैं। इन सेवाओं से सम्बन्धित नियुक्तियों, पदस्थापन, पदोन्नति, स्थानान्तरण, अनुशासनात्मक कार्यवाही आदि इसी विभाग के क्षेत्राधिकार में आते हैं। नये पदों का स जन, उनका नियमन, अधिकारियों की पुनर्नियुक्ति, त्यागपत्र, विशेष वेतन, भत्ते, पेंशन आदि के मामले भी यहीं निपटाए जाते हैं। हाँ, कई विभागीय सेवाओं एवं मध्य एवं निम्न स्तर के कर्मचारियों के कार्मिक प्रशासन सम्बन्धी मामले सम्बन्धित विभागों में ही निर्णीत होते हैं। राजस्थान सेवा नियम, आचरण एवं अनुशासनात्मक कार्यवाही नियम आदि सचिवालय में ही निरूपित एवं संशोधित होते हैं।

#### 8. वित्तीय प्रशासनिक नियन्त्रण

सचिवालय स्थित राजस्थान सरकार का वित्त विभाग प्रशासन एवं नियन्त्रण का मुख्य केन्द्र है। विभिन्न विभागों से प्राप्त आय एवं व्यय के अनुमानों को संशोधित कर सरकार का वार्षिक बजट बनाना, विभागों को व्यय की वित्तीय स्वीकृति प्रदान करना, बजट में संशोधनों के प्रस्तावों की समीक्षा करना, वाणिज्य कर एवं उत्पाद कर विभागों पर नियन्त्रण रखना आदि इस विभाग के मुख्य दायित्व हैं। राजस्थान लेखा सेवा पर प्रशासनिक नियन्त्रण भी इसी विभाग का है।

#### 9. आयोजना प्रशासन

राज्य की पंचवर्षीय एवं वार्षिक योजनाओं के निरूपण एवं निष्पादन पर निगरानी एवं उनका मूल्यांकन सचिवालय स्थित आयोजना विभाग का मुख्य दायित्व है। केन्द्र स्थित योजना आयोग से विचार-विमर्श कर राज्य योजना के आकार, संसाधनों एवं सहायता के मामले इसी विभाग के अन्तर्गत आते हैं।

राजस्थान शासन में नियोजन के मामलों पर अन्तर्विभागीय समन्वय हेतु आयोजना तथा विकास समन्वय समितियों, मुख्य सचिव की अध्यक्षता में, कार्य करती हैं। यह समितियाँ योजनागत कार्यक्रमों के निष्पादन में समन्वय को अधिक सुलभ बनाती हैं।

#### 10. सामान्य प्रशासन

सचिवालय स्थित सामान्य प्रशासन विभाग के क्षेत्राधिकार में सरकारी आवास, भवनों, विश्रामग हों, वाहनों, उत्सवों,



अनुदानों एवं आयोजनों के विषय आते हैं। वैसे समस्त सरकारी सम्पदा इसी विभाग के क्षेत्राधिकार में आती है। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, केन्द्रीय मंत्री, अन्य उच्च अधिकारी, विदेशों के प्रतिनिधि आदि उच्चस्तरीय अतिथियों की राजस्थान यात्रा के दौरान प्रबन्धों एवं शिष्टाचार से सम्बन्धित क्रियाएँ सामान्य प्रशासन विभाग के ही क्षेत्राधिकार में आती हैं।

### 11. प्रशासनिक सुधार

1955 में राजस्थान सरकार के शासन सचिवालय में "संगठन एवं पद्धति" सम्भाग की स्थापना हुई थी। आज यह एक प्रशासनिक सुधार का व्यापक अंग है। समस्त शासकीय विभागों एवं संस्थाओं में प्रशासनिक सुधारों को निर्देशित करना एवं उनका मूल्यांकन करना इस विभाग का दायित्व है। 1992 से 1995 के बीच कार्यरत प्रशासनिक सुधार समिति (अध्यक्ष : गोपालक षण भनोत) द्वारा दी गई सिफारिशों पर आजकल यह विभाग उचित कार्यवाही कर रहा है।

### 12. विधि परामर्श

विभिन्न सरकारी नीतियों एवं निर्णयों के वैधानिक पहलुओं की समीक्षा कर उपयुक्त राय एवं न्याय देने का उत्तरदायित्व राज्य के विधि विभाग का है। विभिन्न विभागों के सैंकड़ों मामले इस विभाग के पास सन्दर्भ एवं विमर्श हेतु आते रहते हैं।

उपरोक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि सचिवालय राज्य प्रशासन की सभी महत्वपूर्ण नीतियों एवं प्रशासनिक मामलों में केन्द्रीय भूमिका निभाता है। इसके कार्यों का विस्तार निरन्तर होता रहा है व नवीन शासकीय उत्तरदायित्वों के जुड़ने से इसके आकार व भूमिका की अभिवृद्धि अपेक्षित है।

साधारणतया प्रत्येक राज्य में निम्नलिखित विभाग होते हैं-

1. गृह विभाग (Home Department)
2. सामान्य प्रशासन विभाग (General Administration Department)
3. वित्त विभाग (Finance Department)
4. खाद्य तथा कृषि विभाग (Food and Agriculture Department)
5. स्वास्थ्य विभाग (Health Department)
6. शिक्षा विभाग (Education Department)
7. उद्योग विभाग (Industry Department)
8. नियोजन विभाग (Planning Department)
9. कानून विभाग (Law Department)
10. सिंचाई विभाग (Irrigation Department)
11. जेल विभाग (Jail Department)
12. स्थानीय शासन विभाग (Local Government Department)
13. लोक सम्पर्क विभाग (Public Relations Department)
14. राजस्व विभाग (Revenue Department)
15. परिवहन विभाग (Transport Department)
16. समाज कल्याण विभाग (Social Welfare Department)
17. सहकारिता विभाग (Co-operative Department)
18. शुल्क तथा रोजगार विभाग (Excise and Taxation Department)
19. श्रम तथा उत्पादन कर विभाग (Labour and Employment Department)

20. भाषा विभाग (Language Department)
21. जागरण विभाग (Vigilance Department)
22. सार्वजनिक कार्य विभाग (Public Works Department)
23. वन विभाग (Forest Department)

हरियाणा के सचिवालय में लगभग ये सभी विभाग हैं।

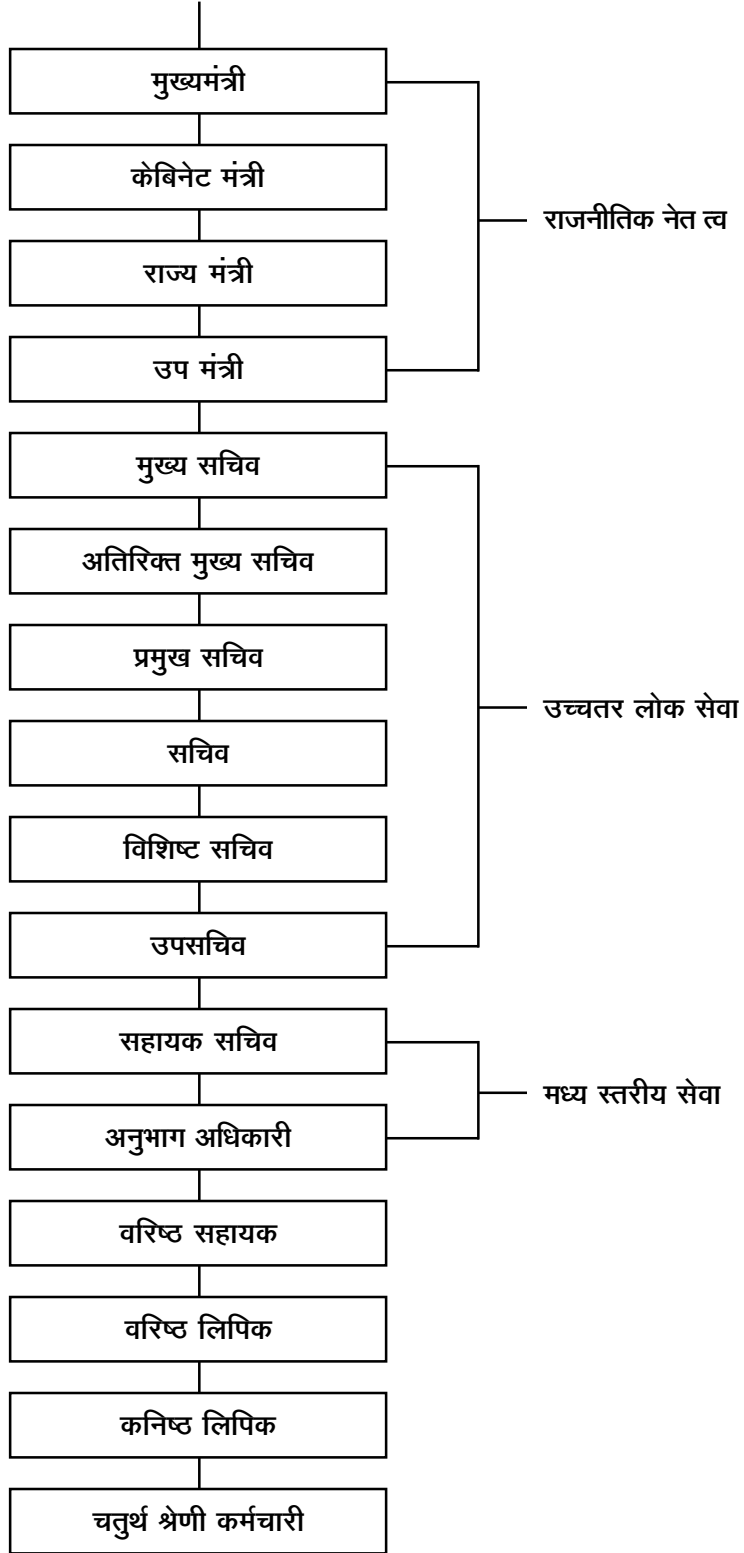
संक्षेप में सचिवालय राज्य सरकार की केन्द्रीय इकाई है और इसे कई प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार है -

1. सरकार की सामान्य नीति तथा कार्यक्रम बनाने में सहायता करना।
2. सरकार की नीतियों तथा कार्यक्रमों की सफलता तथा कार्यान्वयन का निरीक्षण करना।
3. सचिवालय के विभिन्न विभागों का समन्वय करना।
4. भारत सरकार तथा दूसरे राज्यों की सरकार से सम्पर्क बनाए रखना और उनसे पत्र व्यवहार करना।
5. सरकार को नीति तथा कार्यक्रमों में परिस्थितियों के अनुसार संशोधन करने के लिए सुझाव देना।
6. विधान मण्डल में प्रस्तुत किए जाने वाले बिलों के प्रारूप तैयार करना।
7. विधान सभा एवं विधान मण्डल में सदस्यों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर तैयार करना।
8. विधान सभा तथा विधान परिषद् की समितियों की बैठकों का प्रबन्ध करना।
9. राज्यों में लागू की गई योजनाओं पर भौतिक एवं वित्तीय दृष्टि से पुनर्विचार करना।
10. सरकार की विभिन्न प्रकार की समितियों की बैठक में उपस्थित होने वाले सदस्यों को मनोनीत करना।
11. राज्य का बजट बनाना और राज्य सरकार के व्यय पर नियन्त्रण रखना।
12. सरकारी सेवाओं के सम्बन्ध में बनाए गए नियमों की अनुमति देना।
13. व्यय सम्बन्धी सभी विषयों तथा प्रस्तुत किए सुझावों पर विचार करना।
14. उच्च पदों पर नियुक्तियां करने के लिए सुझाव देना और इन पदों पर काम करने वाले पदाधिकारियों को पदोन्नति एवं स्थानान्तरण के बारे में प्रस्ताव तैयार करना और आवश्यकतानुसार उनके विरुद्ध अनुशासनीय कार्यवाही करना।

प्रशासनिक सुधार आयोग (Administrative Reforms Commission) ने भी राज्य के सचिवालय को विशेष महत्त्व दिया है तथा इसके कार्यों का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार किया है -

- (i) मन्त्रियों की नीति निर्माण, समय-समय पर नीतियों में संशोधन करने तथा वैधानिक उत्तरदायित्व की पूर्ति के कार्यों में सहायता करना।
- (ii) कानून, नियमों तथा विनियमों के प्रारूप (Draft) तैयार करना।
- (iii) नीतियों तथा कार्यक्रम का समन्वय करना, इनके कार्यान्वयन का निरीक्षण एवं नियन्त्रण करना तथा उसके परिणामों पर पुनर्विचार करना।
- (iv) बजट बनाना तथा व्यय पर नियन्त्रण करना।
- (v) भारत सरकार तथा दूसरे राज्यों की सरकारों से सम्पर्क बनाए रखना।
- (vi) प्रशासकीय यन्त्र को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए इसकी देखभाल करना तथा पदाधिकारियों एवं संगठन की योग्यता में वृद्धि करने के लिए प्रयास करना।

राज्य प्रशासन में सचिवालय में पदसोपानात्मक व्यवस्था



## सचिवालय का संगठन

### (Organisational Set-up of Secretariat)

सचिवालय राज्य सरकार का महत्वपूर्ण भाग है जिसे सरकार की सामान्य नीति के बनाने तथा कार्यान्वित करने में विशेष स्थान प्राप्त है परन्तु इसकी सफलता इसके पदाधिकारियों की योग्यता तथा क्षमता पर निर्भर है। सचिवालय के संगठन का वर्णन इस प्रकार है -

### मुख्य सचिव

#### (Chief Secretary)

राज्य के स्तर पर केन्द्र की भांति कोई मन्त्रालय नहीं होता और सरकार के कार्यों को विभिन्न विभागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक विभाग को किसी न किसी मन्त्री के अधीन रखा जाता है जो इसके राजनीतिक मुख्य कार्यपालक के रूप में काम करता है और उस विभाग की ओर से विधानमण्डल के समक्ष उत्तरदायी होता है। उसकी सहायता के लिए एक सचिव होता है जो उस विभाग के स्थायी मुख्य अधिकारी के रूप में काम करता है। सचिवालय के विभिन्न विभागों में समन्वय करने तथा उनमें नियन्त्रण करने के लिए एक मुख्य सचिव की नियुक्ति की जाती है जो सचिवालय के मुख्य अधिकारी के रूप में कार्य करता है।

#### विभाग का सचिव (Secretary of a Department)

प्रत्येक विभाग को एक सचिव के अधीन रखा जाता है जो इसका मुख्य प्रशासकीय अधिकारी होता है। इस पद पर राज्य में भारतीय प्रशासकीय सेवाओं के ज्येष्ठ पदाधिकारियों को नियुक्त किया जाता है। एक विभाग का सचिव विभाग के मुख्य अधिकारी के रूप में कार्य करने के अतिरिक्त उस विभाग के मन्त्री के मुख्य सलाहकार के रूप में कार्य करता है तथा वह विभाग और मन्त्री के मध्य कड़ी के रूप में कार्य करता है। सचिव विभाग का मुख्य अधिकारी होने के कारण उस विभाग की नीति का निर्माण करता है और मन्त्री की स्वीकृति से इसे लागू करता है। वह विभाग के सभी मामलों के बारे में निर्णय करता है तथा वे विषय अपने विभागीय मन्त्री के समक्ष रखता है जिनके लिए वह मन्त्री की स्वीकृति आवश्यक समझे। प्रशासकीय मामलों में वह राज्य सचिवालय के मुख्य सचिव (Chief Secretary) के अधीन काम करता है। कई विभागों में सचिव की सहायता के लिए एक अतिरिक्त या विशेष सचिव (Additional or Special Secretary) की व्यवस्था की जाती है जो पद में तो सचिव के समान होता है, परन्तु ज्येष्ठता में उसे सचिव से कनिष्ठ समझा जाता है।

#### संयुक्त सचिव (Joint Secretary)

कुछ विभागों में जिनका कार्य बहुत अधिक तथा जटिल होता है, सचिव की सहायता के लिए एक संयुक्त सचिव की नियुक्ति की जाती है। साधारणतया संयुक्त सचिव का क्षेत्राधिकार स्वतन्त्र होता है, परन्तु सभी महत्वपूर्ण विषयों के लिए वह सचिव की स्वीकृति लेता है। प्रशासकीय क्षेत्र में वह सचिव के अधीन होता है तथापि कुछ विषयों के अतिरिक्त वह विभाग के मन्त्री से प्रत्यक्ष रूप में मिल सकता है।

#### उपसचिव (Deputy Secretary)

विभाग के सचिव, अतिरिक्त सचिव अथवा संयुक्त सचिव की सहायता के लिए उप-सचिव की नियुक्ति की जाती है और एक विभाग में कई बार एक से अधिक उप-सचिव भी नियुक्त किए जाते हैं। इस पद पर अखिल भारतीय सेवाओं (I.A.S.) के कनिष्ठ (Junior) पदाधिकारी या राज्य असैनिक सेवा के ज्येष्ठ (Senior) पदाधिकारी को नियुक्त किया जाता है। विभागों के सभी कार्य उप-सचिव द्वारा किए जाते हैं और कुछ विषयों के सम्बन्ध में वह विभाग के मन्त्री से प्रत्यक्ष बात कर सकता है। कुछ विषयों पर, जो उसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हों, वह स्वयं निर्णय करता है, परन्तु प्रायः उस के द्वारा किए निर्णय के लिए सचिव, अतिरिक्त सचिव अथवा संयुक्त सचिव की स्वीकृति लेनी पड़ती है।

#### अधीनस्थ सचिव (Under Secretary)

उपसचिव से कनिष्ठ अधिकारी को अधीनस्थ सचिव कहा जाता है। इस पद पर प्रायः राज्य असैनिक सेवाओं के पदाधिकारियों

को नियुक्त किया जाता है। वह उपसचिव के अधीन कार्य करता है और इसका सम्बन्ध विभाग के किसी एक विशेष पहलू से होता है।

इन उपरोक्त पदाधिकारियों के अतिरिक्त प्रत्येक विभाग में अधीकक्षक अथवा सैक्शन अधिकारी (Section Officer), सहायक (Assistant), उच्च डिवीज़न क्लर्क (Upper Division Clerk) तथा निम्न डिवीज़न क्लर्क (Lower Division Clerk) होते हैं।

## **राज्य के विभागों का प्रशासकीय संगठन** (Administrative Set-up of State Departments)

जैसे कि पहले भी बताया जा चुका है, राज्य प्रशासन को विभिन्न प्रशासकीय विभागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक विभाग को एक मन्त्री के अधीन रखा जाता है, जो कि उस लम्बे समय से सचिवालय के कार्यों में कुशलता लाने की आवश्यकता अनुभव की जाती रही है। इस दिशा में समय-समय पर सुझाव भी दिये गए हैं। इस दिशा में प्रशासनिक सुधार आयोग ने कुछ सुझाव प्रस्तुत किए हैं- (1) जो विभाग विशेष विषयों से सम्बन्ध रखते हैं उनमें दो स्टाफ प्रकोष्ठ (नियोजन तथा नीति पर संयुक्त सैल एवं वित्त सैल) बनाए जाने चाहिए। (2) मुख्य सचिव तथा मुख्यमन्त्री के अधीन सेवीवर्ग का एक नया विभाग बनाया जाना चाहिए। (3) प्रत्येक विभाग में एक नीति परामर्शदाता समिति स्थापित की जाए। प्रमुख कार्यपालिका विभागों के समस्त अध्यक्ष इसके सदस्य हों तथा विभागीय सचिव इसका सभापति हो।

### **सचिवों की संख्या**

राज्य सचिवालय में सचिवों की संख्या कार्य को देखकर निर्धारित की जानी चाहिए। यह सच है कि लोक कल्याणकारी राज्य के दायित्व स्वीकार करने के बाद राज्य का कार्यक्षेत्र बढ़ा है और तदनुसार सचिवालय के सचिवों की संख्या भी बढ़नी चाहिए, किन्तु तथ्य यह है कि विभिन्न राज्य सचिवालयों में सचिवों की संख्या इस कार्य के अनुपात में अधिक नहीं बढ़ी है। प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल ने 1968 में विभिन्न राज्यों में सचिवों की संख्या का उल्लेख करते हुए इसे अत्यधिक बताया था और सुझाव दिया था कि सचिवों की संख्या 10 से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि कार्य ज्यादा है तो उसे इन्हीं 10 के बीच विभाजित कर दिया जाए। सचिवालय के अधिकारियों एवं कर्मचारी वर्ग में भी तदनुसार कटौती की जाए। सचिवों की संख्या बहुत अधिक होने पर समन्वय की समस्या उठ खड़ी होती है।

### **सचिवालय अधिकारियों का चयन एवं नियुक्ति**

सचिवालय के प्रत्येक विभाग के सचिव की नियुक्ति सम्बन्धित मन्त्री के परामर्श पर मुख्यमंत्री द्वारा की जाती है। सचिव भारतीय नागरिक सेवा के सदस्य होते हैं। उपसचिव पद पर राज्य सेवा अथवा सचिवालय सेवा के पदोन्नत अधिकारियों को भी नियुक्त किया जाता है। इस प्रकार सचिवालय अधिकारियों की नियुक्ति प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा नहीं, अपितु पदोन्नति द्वारा की जाती है। पंजाब प्रशासनिक सुधार आयोग एवं राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति ने इस बात पर जोर दिया है कि राज्य सरकार के सचिवों का चयन मुख्यमंत्री द्वारा और सही तरीके से एक उच्च-स्तरीय समिति की सिफारिशों के आधार पर किया जाना चाहिए। मुख्य सचिव सरकार के सभी क्षेत्रों में कार्य कर रहे प्रतिभाशाली सचिवों में से छाँटे जाने चाहिए। चयन का एक मात्र आधार योग्यता, अनुभव एवं उपयुक्तता होना चाहिए।

### **सचिवालय की कार्य-प्रणाली (Working)**

सचिवालय के विभिन्न स्तरों के पदाधिकारी पद की महत्ता के अनुसार कार्य सम्पन्न करते हैं। शासन सचिव अपने अधीनस्थ स्टाफ पर सामान्य नियन्त्रण एवं निगरानी रखते हैं। वह प्रत्येक कर्मचारी की कुशलता और सरलता से कार्य सम्पन्न करने में सहायता देते हैं। उप-सचिव (Deputy Secretary) सचिव की सहायता करता है और समय-समय पर सचिव द्वारा सौंपे गए कार्य सम्पन्न करता है। अवर-सचिव (Under Secretary) द्वारा यह देखा जाता है कि किसी प्रस्तुत विवाद से सम्बन्धित सभी तथ्य संलग्न किए गए हैं अथवा नहीं। प्रस्तुत मामले में कार्यवाही का सुझाव भी इसी स्तर पर दिया जाता है।

**अनुभाग का अधीक्षक (Superintendent)**-यह व्यवस्था करता है कि अनुभाग में आने वाले सभी कागज-पत्रों पर उचित कार्यवाही की जाए। जिन मामलों में कुछ कार्य करना जरूरी होता है उन्हें वह अवर-सचिव को शीघ्र पहुँचाने का प्रबन्ध करता

है। अधीक्षक की देख-रेख में ही कार्यालय-प्रक्रिया के अनुशीलन का प्रबन्ध किया जाता है। वह सभी अधिनियमों, नियमों, कार्यालय-प्रक्रिया तथा फाइल बनाने आदि कार्यों से परिचित रहता है इसलिए अपने सहायकों को आवश्यक दिशा-निर्देश प्रदान करता है। यह निर्णय 'क्या' पर प्रभाव नहीं डालता वरन् 'कैसे' का सुझाव देता है। निर्णय लेना उच्चाधिकारियों का कार्य है।

### फाइल-व्यवस्था

सचिवालय में कार्यालय की कार्यवाही किस प्रकार संचालित की जाती है, इसका विवरण सचिवालय कार्य-प्रणाली (Secretariat Manual) में स्पष्टतः उल्लिखित होती है। किसी भी राज्य सचिवालय में अपनाई गई फाइल-व्यवस्था अत्यन्त सरल होती है। उदाहरण के लिए, राजस्थान सचिवालय में फाइल के दो भाग किए जाते हैं-टिप्पणियाँ एवं पत्र-व्यवहार (Notes and Correspondence)। टिप्पणी वाले भाग में सम्बन्धित विषय पर विभाग का अभिमत शामिल होता है। फाइल के इसी भाग में विवाद प्रस्तुत किए जाते हैं, कार्यवाही के सुझाव दिए जाते हैं और अन्तिम आदेश पारित किए जाते हैं। ये टिप्पणियाँ फाइल के पत्र-व्यवहार भाग पर विभिन्न स्तरों पर की जाती हैं। पत्र-व्यवहार वाले भाग में किसी विषय पर प्राप्त किए गए, भेजे गए आदि सभी पत्र होते हैं। इनको दिनांक के अनुसार व्यवस्थित किया जाता है तथा क्रमशः संख्या लगाई जाती है। नई फाइल किसी पत्र या टिप्पणी के आधार पर बनाई जाती है। महत्त्वहीन प्रकृति के विभिन्न पत्रों को रद्दी की टोकरी में डालने की अपेक्षा एक अलग फाइल में रख दिया जाता है। कोई भी नई फाइल प्रारम्भ करने से पूर्व सम्बन्धित क्लर्क या लिपिक यह देख लेता है कि उस विषय पर पहले की कोई फाइल तो उपलब्ध नहीं है। जब किसी विषय पर होने वाला पत्र-व्यवहार समाप्त हो जाता है तो वह फाइल बन्द हो जाती है। प्रत्येक फाइल यथासम्भव एक ही विषय से सम्बन्धित होनी चाहिए तथा प्रत्येक नए विषय के लिए नई फाइल बनाई जानी चाहिए।

सचिवालय के मेनुअल में यह भी बताया गया है कि एक कागज को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाए, संलग्न किया जाए तथा फाइल के अन्दर जिल्द अथवा कवर में रखा जाए, पृष्ठों तथा पैराग्राफों पर नम्बर किस प्रकार डाला जाए तथा प्राथमिकता की पर्ची किस प्रकार लगाई जाए। फाइल रखने का तरीका ऐसा होना चाहिए कि एक अधिकारी किसी फाइल को मँगाकर तत्सम्बन्धी समस्त तथ्यों की जानकारी कर सके। जब निर्णय लेने में अन्य विभाग की राय जानना अपेक्षित होता है तो तत्सम्बन्धी फाइल उस विभाग को भेज दी जाती है। सभी अधिकारियों की टिप्पणी तथा राय से युक्त फाइल प्राप्त होने के बाद उच्च अधिकारियों एवं मन्त्रियों को निर्णय लेने की सुविधा होती है। पत्राचार का तरीका भी सचिवालय के मेनुअल में वर्णित है। उसमें स्पष्टतः यह बताया गया है कि सचिवालय से बाहर के व्यक्तियों एवं अधिकारियों को किस प्रकार सम्बोधित किया जाए। इस प्रकार फाइल व्यवस्था का सचिवालय की कार्यविधि में बड़ा ही महत्त्व है।

### मन्त्री और सचिव (Minister and Secretary)

मन्त्री एवं सचिव एक-दूसरे के पूरक होते हैं। मन्त्री का कार्य नीति-निर्धारण करना है और सचिव का कार्य उस नीति को कार्यान्वित करना है। दोनों के बीच का सम्बन्ध आपसी विश्वास और सम्मान का होने पर ही उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है अथवा सफलता प्राप्त की जा सकती है। सचिव को चाहिए कि वह मन्त्री को सभी समस्याओं पर अपना स्वतन्त्र, खुली हुई और वस्तुगत परामर्श दे। किसी भी स्थिति में उसे यह प्रयास नहीं करना चाहिए कि वह अपने परामर्श को मन्त्री की इच्छानुसार दे और उसकी हॉ में हॉ मिलाये। उसे टकुरसुहाती तथा चाटुकारिता की प्रवृत्ति से बचना चाहिए। एक बार जब मन्त्री द्वारा निर्णय ले लिया जाए तो सचिव को उसका पालन इस प्रकार करना चाहिए मानों वह स्वयं उसी का निर्णय है। दूसरी ओर मन्त्री को चाहिए कि वह सचिव के प्रशासनिक कार्यों को उचित संरक्षण दे। सचिव हमेशा अनाम रूप से पर्दे के पीछे रहकर काम करते हैं। ऐसी स्थिति में व्यवस्थापिका में और उसके बाहर की गई अपने कार्यों की अनुचित आलोचनाओं का भी उत्तर नहीं दे पाते हैं। यहाँ मन्त्री को सामने आना चाहिए एवं उसे यह मानना चाहिए कि प्रशासन की आलोचना स्वयं मन्त्री की ही आलोचना है। अगर मन्त्री अपने सचिव को आलोचना-प्रत्यालोचना से बचाता है, तो उसके मनोबल में वृद्धि होगी।

### सचिव एवं विभागाध्यक्ष (Secretary and Head of the Department)

विभागाध्यक्ष अपने विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता है। उसे सम्बन्धित सचिव द्वारा अपने मन्त्री की ओर से आदेश, अनुदेश, निर्देश दिए जाते हैं और तदनुसार पर्यवेक्षण, निर्देशन एवं नियन्त्रण रखा जाता है। इन क्षेत्रीय अभिकरणों के अध्यक्षों एवं सचिवों

के स्तर तथा श्रेणी में पर्याप्त असमानता रहती है। सचिव की स्थिति और स्तर अपेक्षाकृत उच्च होता है। यद्यपि विभाग के विकास में विभागाध्यक्ष का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है किन्तु वेतन एवं भावी सम्भावनाओं की दृष्टि से उसे उचित मान्यता नहीं है। विभागाध्यक्ष सचिवों के अधीनस्थ माने जाते हैं। आज के परिवर्तित वातावरण में यह स्थिति अनुचित है। प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल का सुझाव है कि प्रमुख विभागाध्यक्षों का वेतन एवं स्तर सचिवों से अधिक नहीं तो कम से कम बराबर अवश्य रखा जाना चाहिए। ऐसा होने पर क्षेत्रीय विभागों तथा सचिवालय के बीच सेवी-वर्ग का उचित आवागमन हो सकेगा एवं तकनीकी तथा व्यावसायिक अधिकारी सचिव बनने की दौड़ छोड़कर अपने कार्य में विशेष रुचि लेने लगेंगे।

क्षेत्रीय विभागों के अध्यक्षों एवं सचिव के बीच उचित सम्बन्ध होना चाहिए। इसके अभाव में सचिवालय स्तर पर अनेक प्रशासनिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। स्थिति यह है कि प्रत्येक सचिव सभी सरकारी नियमों एवं प्रक्रियाओं का रक्षक तथा उनका व्याख्याता है। सचिव को क्षेत्रीय अभिकरणों के लिए हर सम्भव सुविधाएँ एवं सहयोग प्रदान करना चाहिए। प्रत्येक सचिव सभी सरकारी कार्यों के लिए मुख्यतः अपने मन्त्री और मुख्यमंत्री के प्रति उत्तरदायी होता है। सचिवालय मूल रूप से एक अभिलेख रखने वाला और समन्वय, नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण करने वाला कार्यालय है जबकि निष्पादक अध्यक्ष सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों की सफल कार्यान्विति के लिए उत्तरदायी है। इन दोनों अभिकरणों के कार्यों में उच्चता या अधीनस्थता का सम्बन्ध नहीं वरन् समन्वय, सहयोग तथा अच्छे कार्य की स्पष्टता का सम्बन्ध है। आज स्थिति यह है कि प्रशासनिक असफलता के लिए कोई भी उत्तरदायी नहीं बनना चाहता है। विभागाध्यक्ष प्रायः यह शिकायत करते हैं कि सचिवालय तन्त्र ने उनके कार्यों में सुविधा पहुँचाने की अपेक्षा बाधा डाली है। उनके महत्त्वपूर्ण सुझावों को सचिवालय की रद्दी की टोकरी में डाल दिया जाता है। दूसरी ओर सचिवों की शिकायत है कि निष्पादक अभिकरणों की अकार्य-कुशलता के कारण कार्यक्रम असफल हो गए। अनेक बार विभागाध्यक्ष सचिवों को लॉध कर सीधे मन्त्री की स्वीकृति प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इसी प्रकार मन्त्री अपने दौरे के समय विभागाध्यक्ष को निर्देश दे आते हैं और सचिवालय को इसका पता भी नहीं चलता। फलतः प्रशासनिक संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। इसे रोकने के लिए यह आवश्यक है कि सचिव एवं विभागाध्यक्षों का सम्बन्ध स्पष्टतः परिभाषित किया जाना चाहिए। संबंधों की यह स्पष्ट परिभाषा अनावश्यक तनाव और संघर्ष को रोकने में सहायक बनेगी और विभागाध्यक्ष को अधिक उत्साह के साथ कार्य करने को प्रेरित करेगी।

### सचिवालय की समस्याएँ

सरकारी विभागों में स्टाफ अर्थात् अधिकारियों तथा कर्मचारियों की संख्या में अपार वृद्धि होने से सचिवालय की समस्याओं में वृद्धि हुई है। प्रमुख समस्या यह है कि सचिवालय के स्टाफ में इतनी वृद्धि हो गई है जितनी सम्भवतः प्रशासनिक दृष्टि से आवश्यक नहीं है। इसके कारण अनेक बार कार्यों का दोहराव और अतिराव होता है। सरकारी अधिकारियों के पदों में अनेक अनावश्यक स्तर बना दिए जाते हैं। बड़ी जल्दी पदोन्नतियाँ होती रहती हैं। इन सबके परिणामस्वरूप सभी स्तरों पर सेवी-वर्ग की क्षमता और कार्यकुशलता घट जाती है। प्रशासनिक अधिकारी हमेशा अपनी सेवा की सुरक्षा, वेतन, भत्ते और पदोन्नति के अवसरों में ही उलझे रहते हैं। फलस्वरूप अपने कर्तव्यों और दायित्वों के प्रति सजग नहीं रहते। इन प्रवृत्तियों के कारण प्रशासनिक कार्यों की गति बढ़ने की अपेक्षा लालफीताशाही, धीमा कार्य और दूसरे अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। कोई भी आवश्यक कागज सचिव से चलकर पुनः सचिव तक पहुँचने में 16 से 18 स्तरों पर रुकता है। यह बिलकुल अनावश्यक है और श्रम तथा समय की बर्बादी है। इस दोष के कारण जनता के कष्टों में वृद्धि होती है और उसका प्रशासन से विश्वास उठने लगता है।

सचिवालय संगठन की एक अन्य समस्या यह है कि इसे बहुत सारा गैर-अनावश्यक कार्य भी सौंप दिया जाता है। इससे इसकी कार्य-क्षमता प्रभावित होती है। मंत्रियों के कमरों की अनावश्यक भीड़ भी सचिवालय के कार्य को प्रभावित करती है। मन्त्रियों द्वारा प्रशासन में अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप भी एक प्रबल चुनौती या विकट समस्या बनकर सामने आयी है। इससे सचिवों का मनोबल गिरा है वे अपने को असहाय अनुभव करने लगे हैं।

### सचिवालय में प्रशासनिक सुधार

राज्य सचिवालय के संगठन और कार्य-प्रणाली तथा उपयुक्त सुधार करने के संबंध में विभिन्न आयोगों और समितियों की स्थापना की जाती रही है जिन्होंने राज्य सचिवालय में सुधार करने के संबंध में उपयोगी और महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की हैं। प्रमुख

आयोग और समितियाँ इस प्रकार हैं-

1. केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त प्रशासनिक सुधार आयोग (1967-70),
2. राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति, 1963,
3. सचिवालय पुनर्गठन समिति, 1969, तथा
4. सचिवालय प्रक्रिया समिति, 1971।

उप आयोगों और समितियों ने राज्य सचिवालय के पुनर्गठन की आवश्यकता अनुभव की है। सचिवों की संख्या को कम करने, आर्थिक नियोजन में विशेषज्ञों की सेवाएं प्राप्त करने, सचिवालय के कार्यों में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को रोकने, प्रत्यायोजन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने, सचिवालय की नीति-निर्माण, अधिनियम निर्माण, वित्त-व्यवस्था का संचालन करने तथा उनको व्यवस्थापिका से पारित कराने तक ही सीमित करने, कर्मचारियों और अधिकारियों के उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था करने तथा कुशल और ईमानदार कर्मचारियों एवं अधिकारियों को पुरस्कार देने जैसे सुझाव दिए हैं।

सारांश में, राज्य सचिवालय की राज्य-प्रशासन में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है।

## निष्कर्ष

शासन सचिवालय नीति-निर्माण, तथ्य-एकत्रण एवं विश्लेषण, समन्वय, नियमन, नियंत्रण, संसदीय एवं विधायी कार्य, केन्द्र एवं राज्य सम्बन्धों, कार्मिक प्रशासन, वित्तीय नियन्त्रण नियोजन, सामान्य प्रशासन, प्रशासनिक सुधार एवं विधि परामर्श से सम्बन्धित कार्यों का केन्द्र है।

सचिवालय की एक सामान्य आलोचना यह है कि यहाँ प्रशासनिक, वित्तीय, कार्मिक, नियोजन एवं नीति-निर्माण की शक्तियों का केन्द्रीयकरण आवश्यकता से इतना अधिक है कि निदेशालय एवं क्षेत्रीय संस्थाएं स्वायत्तता-विहीन सी हो जाती हैं। सचिवालय पर उनकी निर्भरता प्रशासनिक दक्षता को कम करती है। निदेशालयों के तकनीकी अधिकारियों की यह राय सामान्यतया देखी गई है कि सचिवालय के अधिकारी जो अधिकांशतया सामान्य प्रशासक होते हैं, तकनीकी प्रस्तावों की गहराई व जटिलता को समझे बिना या तो उन्हें संशोधित कर देते हैं अथवा अनावश्यक आपत्तियाँ करते हैं। इससे तकनीकी अधिकारियों का मनोबल नीचा होता है तथा निर्णयों में विलम्ब भी होता है। तकनीकी निदेशकों को यह भी शिकायत है कि सचिवालय के अधिकारी मंत्रियों के निकट होने के कारण समस्त महत्वपूर्ण नीतियों एवं निर्णयों को अतिरेक रूप से प्रभावित करते हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि शक्तियों का प्रत्यायोजन निदेशालयों को प्रचुर मात्रा में किया जाए। यही राय भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग की अपने राज्य प्रशासन पर प्रतिवेदन (1969) में थी। एक और सुझाव सामान्यतया सामने आता रहा है कि सचिवालय के पदों पर विशेषज्ञों को भी नियुक्त किया जाना चाहिये। यह व्यवस्था जटिल न रखकर अधिक खुली बनाई जानी चाहिए।

सीमाओं एवं आलोचनाओं के बावजूद सचिवालय का महत्त्व प्रचुर है। फिर भी यह तो आवश्यक है कि शक्तियों के केन्द्रीयकरण के स्थान पर विकेन्द्रीयकरण एवं प्रत्यायोजन पर बल हो तथा सचिवालय के स्तर पर होने वाले प्रशासनिक विलम्बों को न्यूनतम किया जाये। इस सम्बन्ध में श्री शिवचरण माथुर की अध्यक्षता में कार्य कर रहे राजस्थान प्रशासनिक सुधार आयोग अपनी सिफारिशें देने जा रहा है।



## अध्याय-18

# शिक्षा विभाग

### शिक्षा विभाग (Education Department)

प्रत्येक राज्य में एक शिक्षा विभाग की स्थापना की जाती है, जिसे प्रायः कैबिनेट स्तर के मन्त्री के अधीन रखा जाता है। वह इस विभाग के राजनीतिक मुखिया (Political Head) के रूप में कार्य करता है। वह राज्य की शिक्षा नीति को निर्धारित करता है और शिक्षा विभाग के आधार पर राज्य विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है।

इस विभाग का प्रशासकीय मुखिया एक सचिव होता है, जिसे शिक्षा सचिव (Education Secretary) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस पर अखिल भारतीय प्रशासकीय सेवाओं (I.A.S.) के ज्येष्ठ अधिकारी को नियुक्त किया जाता है। शिक्षा सचिव इस विभाग का स्थायी मुखिया होता है तथा वह शिक्षा मन्त्री की शिक्षा सम्बन्धी नीति को निर्धारित करने में सहायता करता है। वास्तव में इस विभाग के शासन संचालन का भार शिक्षा सचिव पर होता है और इस विभाग के सभी अधिकारी उसके नियन्त्रण में कार्य करते हैं। नीति निर्माण करने में सचिव की सहायता के लिए संयुक्त सचिव, उपसचिव, अधीनस्थ सचिव तथा अन्य अधिकारियों को नियुक्त किया जाता है।

शिक्षा विभाग के शासन संचालन तथा क्षेत्रीय इकाइयों एवं सेवाओं (Field Agencies and Services) पर नियन्त्रण करने के लिए एक निदेशालय (Directorate) की स्थापना की गई है। पंजाब में पहले उच्च, माध्यमिक तथा प्रारम्भिक शिक्षा के लिए एक ही निदेशालय हुआ करता था। परन्तु 1976 में इस निदेशालय को विभाजित करके दो निदेशालयों - (i) कालिज शिक्षा निदेशालय, तथा (ii) स्कूल शिक्षा निदेशालय की स्थापना की गई। 1977 में स्कूल शिक्षा निदेशालय (School Education Directorate) को फिर दो भागों में बांटा गया। परन्तु व्यावहारिक रूप में ये दोनों एक ही निदेशालय के रूप में कार्य करते हैं। इस समय शिक्षा विभाग के अधीन निम्नलिखित तीन निदेशालय हैं-

1. Directorate for College Education.
2. Directorate for Secondary Education.
3. Directorate for Primary Education.

इन तीनों निदेशालयों को तीन अलग-अलग निदेशकों के अधीन रखा गया है।

### कार्य

#### (Functions)

शिक्षा विभाग के कार्य निम्न हैं:-

1. तीनों निदेशालयों में समन्वय स्थापित करना।
2. शिक्षा विभाग का मुख्य कार्य शिक्षा सम्बन्धी नीतियां बनाना।
3. सभी नीतियों एवं कार्यों का निरीक्षण एवं नियन्त्रित करना।
4. तीनों निदेशालयों को बजट की मंजूरी प्रदान करना। शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए कदम उठाना।
5. भारत सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों को लागू करना एवं शिक्षा से सम्बन्धित समितियों का गठन करना।

6. शिक्षा से सम्बन्धी सभी योजनाएं बनाना।
7. शिक्षा विभाग के सभी शिक्षक एवं गैर-शिक्षक कार्मिकों के वेतनों पर पुनर्विचार करना।
8. नए स्कूल, कॉलेजों आदि खोलने तथा निजी स्कूलों को अनापत्ति प्रमाण पत्र देना।
9. अराजपत्रित अधिकारियों की दण्ड के खिलाफ अपील की सुनवाई करना।
10. राजपत्रित एवं अराजपत्रित अधिकारियों के विदेशों में केन्द्र में या दूसरे राज्यों में भेजने सम्बन्धित कार्य।
11. विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित सभी सहत्त्वपूर्ण कार्य जैसे ग्रांट आदि देना।
12. प्राइवेट शिक्षण संस्थाओं को अपने तहत लेना।
13. तीनों अकादमियों के नीति सम्बन्धी कार्य।
14. विधान सभा एवं लोक सभा में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर तैयार किए जाते हैं।
15. श्रेणी II तथा श्रेणी I स्तर के अधिकारियों के नियुक्ति, तब्दीली, पैन्शन, दण्ड, पुरस्कार, डैपुटेशन, अपील आदि सुनी जाती हैं।
16. तीनों अकादमियों का सौ प्रतिशत ग्रांट शिक्षा विभाग देता है तथा इनके चेयरमैन तथा निदेशक की नियुक्ति की जाती है।
17. सभी विश्वविद्यालयों के VC's, Pro V.C.'s तथा Registrar's की नियुक्ति करना।
18. शिक्षा प्रणाली में सुधार।

शिक्षा विभाग के क्षेत्रीय स्तर पर तीन निदेशालय हैं:-

1. उच्चतर शिक्षा निदेशालय,
2. माध्यमिक शिक्षा निदेशालय,
3. प्राथमिक शिक्षा निदेशालय।

इनमें से सबसे पहले उच्चतर शिक्षा निदेशालय का संगठन एवं उच्चतर शिक्षा निदेशालय द्वारा किए जा रहे कार्यों का विवरण:-

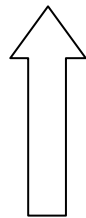
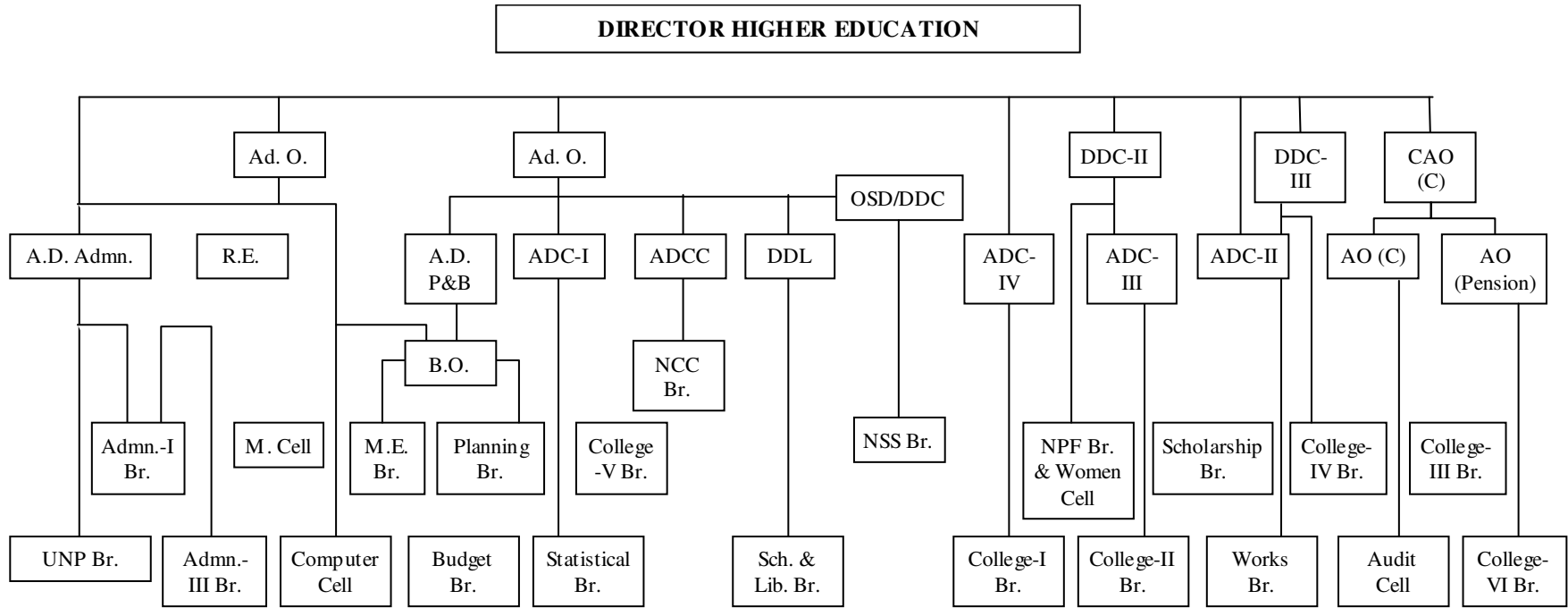
शिक्षा विभाग के उच्चतर शिक्षा निदेशालय का संगठन एवं विभाग द्वारा उच्चतर शिक्षा के लिए किए जा रहे कार्य निम्न हैं:-

निदेशालय का मुखिया निदेशक है। इनमें नीचे एक संयुक्त निदेशक, तीन उपनिदेशक (कॉलेज), चार सहायक निदेशक (योजना एवं बजट), एक उपनिदेशक (लाईब्रेरी), एक प्रशासनिक अधिकारी, एक रजिस्ट्रार शिक्षा, एक बजट अधिकारी, एक ऑफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी, एक मुख्य लेखा अधिकारी (कॉलेजिज), एक जिला न्यायवादी, एक सहायक जिला न्यायवादी, एक सहायक निदेशक कैडेट कोर, एक लेखा अधिकारी (कॉलेजिज), एक लेखा अधिकारी (पैन्शन) इनके अलावा निदेशालय में भिन्न-भिन्न शाखाएं कार्यरत हैं। इनके प्रमुख अधीक्षक हैं और हर शाखा में चार-पांच सहायक, दो-तीन क्लर्क तथा एक-एक स्टैनोग्राफर हैं। सभी शाखाओं में एक-एक चपरासी हैं:-

उच्चतर निदेशालय में निम्न शाखाएं हैं:-

1. प्रशासनिक शाखा - I
2. प्रशासनिक शाखा - II
3. विश्वविद्यालय एवं नई नीति शाखा
4. मॉनिटरिंग सैल
5. कम्प्यूटर सैल
6. मिनिस्टीरियल स्थापना शाखा
7. योजना शाखा
8. बजट शाखा
9. आंकड़ा शाखा
10. NSS शाखा

Organisational Set-up at the Directorate



ABBREVIATION

Ad. O.	Administrative Officer	RE	Registrar Education
JDC	Joint Director Colleges	AD P&B	Assisant Director Budget & Planning
DDC	Deputy Director Colleges	ADCC	Assisant Director Cadet Corps.
CAO	Chief Account Officer	ADC	Assisant Director Colleges.
OSD	Officer on Special Duty	AO (C)	Accounts Colleges
DDC	Deputy Director Colleges	BO	Budget Officer
DA	District Attorney	ADA	Assistant Distt. Attorney
Ad (Admn.)	Assistant Director (Administration)		

11. NCC शाखा
12. भाषा शाखा
13. कार्य शाखा
14. राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं महिला सैल
15. स्कॉलरशिप शाखा
16. स्कूल एवं लाईब्रेरी शाखा
17. ऑडिट सैल
18. कॉलेज शाखा - I से VI शाखा
19. कानून शाखा

उच्चतर शिक्षा निदेशालय द्वारा उच्चतर शिक्षा के लिए किए जा रहे कार्य निम्न प्रकार हैं :-

1. प्राइवेट कॉलेजों को मान्यता व ग्रान्ट देना।
2. सेवानिवृत्त रिटायरमेंट कर्मचारियों की पेंशन तथा इनके ऑडिट तथा लेखा से सम्बन्धित कार्य।
3. केन्द्र द्वारा बनाई गई नीतियों को लागू करना।
4. विश्वविद्यालयों को बजट उपलब्ध करवाना।
5. महाविद्यालयों के लिए नई इमारतों का निर्माण तथा पुरानी इमारतों की रिपेयरिंग करवाना।
6. उच्चतर शिक्षा के लिए नीतियों की शुरुआत करना।
7. कर्मचारियों के नियुक्ति सम्बन्धी कार्य करना।
8. विभिन्न कार्यों के लिए बजट का बंटवारा करना और योजना बनाना।
9. वेतन एवं नीतियों सम्बन्धी क्लास-I कॉलेज अधिकारियों के कार्य।
10. मुख्य कार्यालय के मिनिस्ट्रीयल स्टाफ की ACR's लिखी जाती है।
11. प्रिन्सीपलों के किराए मुक्त मकानों के मामले।
12. निदेशालय की वार्षिक प्रशासनिक रिपोर्ट तैयार की जाती है।
13. राज्यपाल के भाषण के लिए आंकड़े उपलब्ध करवाए जाते हैं।
14. सरकारी महाविद्यालयों के नए भवनों का निर्माण तथा उनकी रिपेयरिंग व कॉलेजों में व क्षों की नीलामी का कार्य किया जाता है।
15. तीनों निदेशालयों की वार्षिक एवं पांच वर्षीय योजना बनाई जाती है।
16. NSS से सम्बन्धित कार्य।
17. महाविद्यालय प्राध्यापकों के लिए रिफ्रेशर कोर्स आयोजित किये जाते हैं।
18. IGNOU सैन्टर खोले जाते हैं।
19. NCC से सम्बन्धित कार्य करते हैं।
20. प्राइवेट सहायता प्राप्त कॉलेजों के प्राध्यापकों के पेंशन सम्बन्धित कार्य।
21. मिनिस्ट्रीयल स्टाफ के स्थापना सम्बन्धी कार्य, स्थानान्तरण समायोजन सम्बन्धी।
22. कोर्टों से सम्बन्धित मामले, पदों का निर्माण।
23. विश्वविद्यालयों का मान्यता।

प्रधानमंत्री के 15 सूत्री कार्यक्रम के तहत अल्पसंख्यक कल्याण की क्वालिटी रिपोर्ट ग ह विभाग को, प्रधानमंत्री को, कल्याण विभाग भारत, सरकार को भेजी जाती है। राज्यपाल को मासिक रिपोर्ट भेजी जाती है।

1. शिक्षा में पिछड़े अल्पसंख्यकों का वजीफा दिया जाता है जो सरकारी महाविद्यालयों में पढ़ते हैं।
2. विभाग की गतिविधियों एवं उनकी उपलब्धियों को इक्ठठा करना।
3. सरकारी लाईब्रेरी व नगरपालिका लाईब्रेरी के लिए किताबें खरीदना, नई लाईब्रेरी बनाना, लाईब्रेरी साईंस डिप्लोमा व डिग्री धारकों को अप्रैन्टीसशीप ट्रेनिंग दी जाती है।
4. प्राइवेट कॉलेजों के नीति सम्बन्धी कार्य एवं नीति से सम्बन्धी सभी कोर्ट केस।
5. प्राइवेट कॉलेजों के शिक्षक स्टाफ, अशिक्षक स्टाफ की नियुक्ति एवं गवर्निंग बाडी के लिए Nominee नियुक्त करता है।

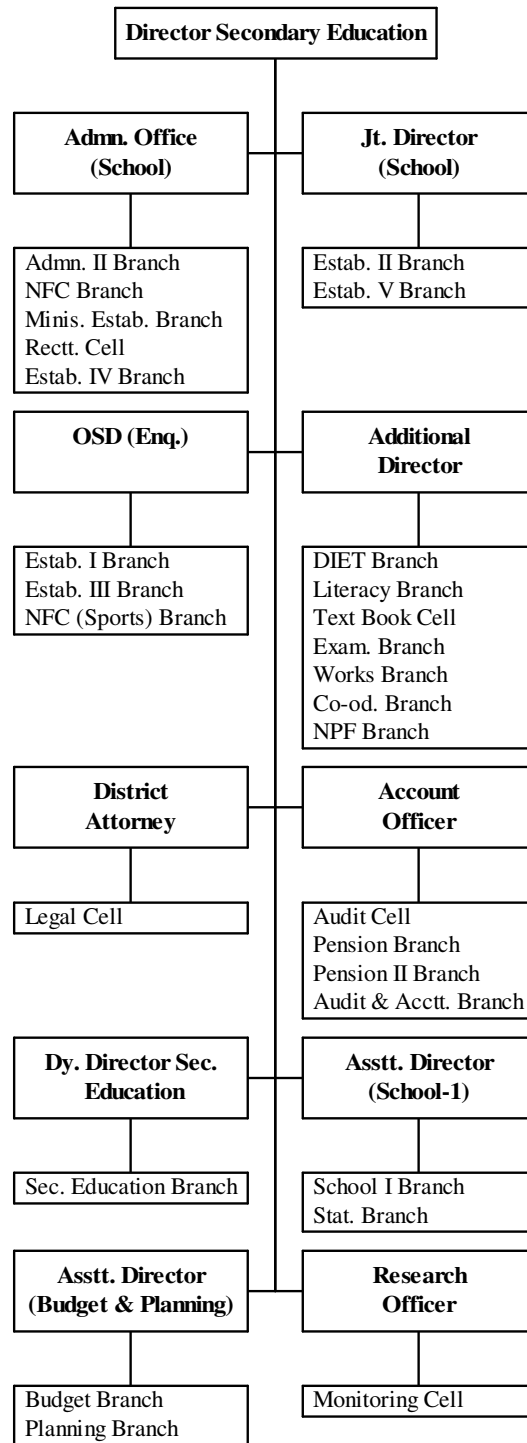
शिक्षा विभाग के माध्यमिक शिक्षा निदेशालय का संगठन इस प्रकार है :- निदेशालय का मुखिया आई. ए. एस. कॉडर का होता है। इनकी सहायता के लिए एक अतिरिक्त निदेशक, एक संयुक्त निदेशक (स्कूल), एक प्रशासनिक अधिकारी, एक Officer on Special Duty (Enquiry), एक जिला न्यायवादी, एक लेखा अधिकारी, पांच उपनिदेशक, पांच सहायक निदेशक, एक खोज अधिकारी, एक रजिस्ट्रार शिक्षा, बजट अधिकारी तथा सभी शाखाओं के अधीक्षक एवं अन्य क्लॉस III एवं क्लॉस IV कर्मचारी हैं। माध्यमिक शिक्षा निदेशालय में निम्न शाखाएं हैं:

साक्षरता शाखा, पाठ्य पुस्तक सैल, परीक्षा शाखा, कार्य शाखा, DIET शाखा, को-ऑर्डिनेशन शाखा, नई शिक्षा नीति शाखा, स्थापना शाखा-II, N.F.C. शाखा, मिनिस्ट्रीयल स्थापना शाखा, भर्ती शाखा, स्थापना शाखा-IV, स्थापना शाखा-I, स्थापना शाखा-III, N.P.C. (Sports) शाखा, Legal सैल, पैन्शन शाखा-I, II, ऑडिट तथा लेखा शाखा, ऑडिट सैल, सैकेन्डरी शिक्षा (शाखा), स्कूल शाखा-I, आंकड़ा शाखा, बजट तथा योजना शाखा, मोनिटरिंग सैल हैं।

माध्यमिक शिक्षा के लिए माध्यमिक शिक्षा निदेशालय के कार्य :-

1. शिक्षा के लिए नीतियों की शुरुआत करना।
2. सभी तरह के स्टाफ से सम्बन्धित सर्विस नियम बनाए जाते हैं।
3. कर्मचारियों के नियुक्ति सम्बन्धी कार्य।
4. स्टाफ के स्थापना सम्बन्धी विभिन्न कोर्ट केसों का निपटारा करना।
5. भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए बजट का बंटवारा तथा योजना बनाना।
6. केन्द्र द्वारा बनाई गई नीतियों को लागू करना।
7. प्राइवेट स्कूलों को मान्यता तथा ग्रान्ट आदि देना।
8. जे. बी. टी. तथा ओ. टी. में दाखिले करना।
9. राष्ट्रीय साक्षरता कार्यक्रम चलाया जाता है।
10. स्कूलों के लिए नई इमारतों का निर्माण, पुरानी इमारतों की रिपेयरिंग तथा स्कूलों को अन्य सामान उपलब्ध कराना।
11. रिटायरमेंट कर्मचारियों की पैन्शन तथा इनके ऑडिट तथा लेखा से सम्बन्धित कार्य।
12. स्कूलों के लिए वार्षिक कैलेन्डर तथा दूसरी गतिविधियों से सम्बन्धित कार्य।
13. क्षेत्रीय स्तर का निरीक्षण एवं Controlling की जाती है।
14. शिक्षकों एवं अशिक्षक स्टाफ के वेतन, पैन्शन, तबादला, डैपुटेशन, पदोन्नति सम्बन्धी सभी कार्य इनमें D.E.O.'s, D.P.E.O.'s, S.D.E.O.'s तथा B.E.O.'s आदि से सम्बन्धित कार्य भी किए जाते हैं।
15. क्षेत्रीय स्तर पर शिक्षा एवं सामाजिक क्रियाओं से सम्बन्धित कार्य।

### Organisation Set-up at the Secondary Directorate



- DIET - Branch concerning JBT and OT matters.  
 NPF - New Policy of Education  
 NFC - Branch Concerning N.D.S.I. (PTI/DPE)  
 NFC (Sports) - Regional sports  
 NFC - National Fitness Corps.  
 Exam. - Result of JBT/certificates, sanction of Govt.

16. विभिन्न मामलों की मीटिंग तथा छानबीन की जाती है।
17. कक्षा छः, सात, नौवी तथा 10+1 की परीक्षा विभाग द्वारा ली जाती है। इसके अलावा पहली से आठवीं कक्षा तक की किताबों का संपादन विभाग द्वारा किया जाता है।
18. 30,000 रुपये तक का खर्च निदेशक की अनुमति से किया जा सकता है।
19. खेलों का सामान उपलब्ध करवाया जाता है, N.D.S.I. के स्थापना सम्बन्धी कार्य।

शिक्षा विभाग के प्राथमिक शिक्षा निदेशालय का संगठन एवं शिक्षा विभाग द्वारा प्राथमिक शिक्षा के लिए किए जा रहे कार्य निम्न प्रकार हैं :-

निदेशालय का मुखिया भारतीय प्रशासनिक सेवा कैंडर का निदेशक है। इनकी सहायता के लिए एक संयुक्त निदेशक, एक उपनिदेशक, एक प्रशासन अधिकारी, तीन सहायक निदेशक जिनमें से एक सहायक निदेशक (लेखा), एक सहायक निदेशक (अध्यापक स्थापना), एक सहायक निदेशक (प्राथमिक शिक्षा), एक सहायक निदेशक (प्रशासन), एक रजिस्ट्रार शिक्षा, ए.डी.ए. - I, II, एक बजट अधिकारी, एक रिसर्च अधिकारी, इसके अलावा प्रत्येक शाखा में एक-एक अधीक्षक, अधीक्षक प्रशासन, अधीक्षक (प्राथमिक शिक्षा), अधीक्षक अध्यापक स्थापना - I, II, अधीक्षक (लेखा प्राथमिक), अधीक्षक मिड-डे मिल, अधीक्षक बजट शाखा, इनके साथ प्रत्येक शाखा में चार या पांच सहायक, दो क्लर्क, एक स्टैनो तथा एक-एक चपरासी कार्यरत हैं।

प्राथमिक शिक्षा के लिए प्राथमिक शिक्षा निदेशालय के कार्य निम्नलिखित हैं :-

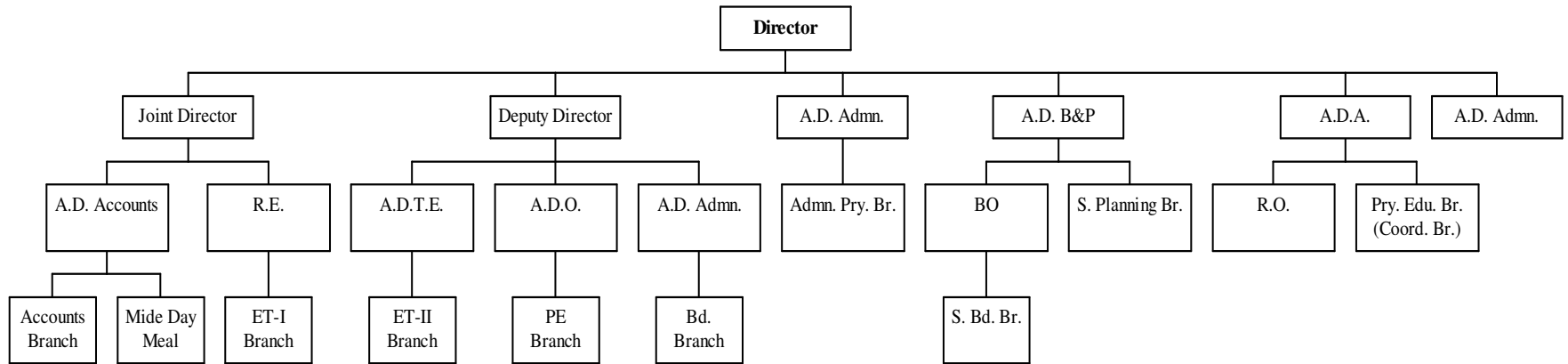
1. क्षेत्रीय स्तर तक शिक्षा एवं सामाजिक क्रियाओं से सम्बन्धित कार्य किए जाते हैं।
2. क्षेत्रीय स्तर पर प्राथमिक शिक्षा का निरीक्षण एवं Controlling का कार्य किया जाता है।
3. मिड-डे से सम्बन्धित कार्य शिक्षा विभाग ही करता है।
4. 30,000 रु-तक का खर्च प्राथमिक शिक्षा निदेशालय प्राथमिक शिक्षा पर कर सकता है।
5. प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित सभी तबादले, दण्ड, पुरस्कार, पदोन्नति और दूसरे स्थापना सम्बन्धी कार्य।
6. सांस्कृतिक गतिविधियां चलाना।
7. स्टाफ से सम्बन्धित सभी सर्विस नियम बनाना।
8. खेलों से सम्बन्धित कार्यक्रम चलाना।
9. प्राथमिक स्कूलों के वार्षिक कलेन्डर और उनके कार्यक्रमों को चलाना।
10. नए भवनों का निर्माण, स्कूलों की रिपेयरिंग और अन्य सुविधाएं प्राथमिक स्कूलों के लिए देना।
11. प्राथमिक शिक्षा के लिए नीतियों का खाका तैयार करना।
12. प्राइवेट प्राथमिक स्कूलों को मान्यता तथा ग्रांट आदि दी जाती है।
13. प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न मामलों की बैठक तथा छानबीन की जाती है।

शिक्षा विभाग द्वारा जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इसके उद्देश्य निम्न प्रकार हैं :-

- (i) प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए इसमें भी मुख्य तौर पर लड़कियों की तरफ जो अनुसूचित जाति या कमजोर वर्ग की हैं।
- (ii) Drop out दर दस प्रतिशत से कम करना।
- (iii) पढ़ने की क्षमता को बढ़ाना।
- (iv) स्कूलों में कमरे, शौचालय, फर्नीचर आदि उपलब्ध करवाना।

यह कार्य अभी आठ जिलों में चलाया जा रहा है वे हैं :- कैथल, जीन्द, सिरसा, हिसार, गुडगांव, महेन्द्रगढ़, भिवानी।

**Directorate of Primary Education, Haryana  
Administrative Set Up (As on 09.03.2000)**



- E.T.Br. - Establishment Teacher - I  
 PE - Primary Education  
 A.D. Accounts - Assistant Director  
 R.O. - Research Office  
 Pry. Edu. Br. - Primary Education  
 B.O. - Budget Officer  
 S. Planning Br. - Superintendent Planning Branch  
 R.E. - Registrar  
 A.D.T.E. - Assistant Director Teachers Establishment  
 A.D.O. - Administrative Officer  
 A.D. Admn. - Assistant Director Admn.  
 A.D. B&P - Assistant Director Budget and Planning



## शिक्षा नीति - २०००

1. राज्य सरकार प्राथमिक शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देगी तथा वर्ष 2005 तक इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हर आवश्यक कदम उठाएगी।
2. राज्य सरकार संविधान की धारा 51 में सुधार के अतिरिक्त भारत सरकार की इस नीति का कि प्राथमिक शिक्षा हर बच्चे का मौलिक अधिकार है। इस नियम का समर्थन करेगी तथा अभिभावकों को अपने बच्चों को स्कूल में भेजने के कर्तव्य का आह्वान करेगी।
3. राज्य सरकार प्रयास करेगी कि सरकारी एवं गैर-सरकारी धन का शिक्षा के लिए अधिक से अधिक निवेश किया जाए, ताकि वर्ष 2010 तक सरकार द्वारा सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का छः प्रतिशत तक शिक्षा पर खर्च किया जा सके तथा निजी क्षेत्र से मिलकर इसी अवधि में सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का 10 प्रतिशत तक खर्च हो सके।
4. राज्य सरकार प्राथमिक शैक्षिक संस्था को पी. आर. आई. और शहरी स्थानीय संस्थाओं को समुदाय तथा अन्य इकाइयों को सशक्त बनाने हेतु स्थानान्तरित करने के लिए प्रोत्साहित करेगी।
5. राज्य सरकार शिक्षा के प्रबन्धन में ग्राम शिक्षा समितियों, माता-अध्यापक संघों, अभिभावक-अध्यापक संघों की भागीदारी को भी सुनिश्चित करेगी।
6. राज्य सरकार शिक्षा में गुणात्मक एवं संख्यात्मक प्रसार के लिए गैर-सरकारी संस्थाओं को मुख्य भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करेगी।
7. राज्य सरकार लैंगिक, क्षेत्रीय, वर्गीय भेद-भाव, जिसमें लक्षित समूहों के बच्चे भी शामिल हैं के भेदभाव को कम करने पर ध्यान केन्द्रित करेगी। राज्य सरकार बराबरी एवं सामाजिक न्याय के सिद्धान्त पर आधारित एक उपयुक्त वातावरण स्थापित करेगी, जिसमें बच्चों विशेष कर लड़कियाँ तथा चुनौतीपूर्ण बच्चे भी शामिल हैं ताकि इनको अपनी क्षमताओं के विकास तथा राष्ट्र की स्मृति में योगदान देने के लिए प्रोत्साहित करे।
8. शिक्षा में अध्यापकों की केन्द्रिय भूमिका को मान्यता देते हुए राज्य सरकार अध्यापकों में पूरा भरोसा एवं विश्वास व्यक्त करती है तथा उनको अपना ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में अपनी कुशलता तथा सुधार और बाल केन्द्रित अधिगम के लिए समर्थन देगी।
9. शिक्षा के क्षेत्र में नवीनतम विकासों को ध्यान में रखते हुए तथा उनसे अध्यापकों की निकटता बनाए रखते हुए और नियमित रूप से समय-समय पर उनकी व्यवसायिक कुशलताओं में वृद्धि करने के लिए वर्तमान के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को और सुदृढ़ बनाया जाएगा, जिसमें स्कूल अध्यापकों तथा महाविद्यालय अध्यापकों के लिए सेवा में आने से पूर्व का प्रशिक्षण भी शामिल है।
10. राज्य सरकार शैक्षिक प्रणाली में पुनश्चर्या का प्रयास करेगी, ताकि यह शुद्ध, पवित्र, गुणवत्तापूर्ण, सामाजिक एवं आर्थिक रूप में उत्पादनशील तथा तेजी से बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक वातावरण के अनुरूप हो सके। प्रासंगिक ज्ञान, कुशलताओं तथा मूल्यों को प्राप्त करने के लिए तथा उनको वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में लागू करने के लिए बल दिया जाएगा।
11. शिक्षा के क्षेत्र में अपव्यय को कम करने के लिए तथा उत्पादकता को बढ़ाने के लिए सरकार प्रभावशाली कदम उठाएगी। इसमें शामिल होगा संसाधनों का कुशलतापूर्ण प्रबन्धन, शिक्षण विधियों का पुननिरीक्षण, पाठ्यक्रमों का आधुनिकीकरण तथा मूल्यांकन विधि का पुनरीक्षण आदि।
12. शिक्षा योग्यता पर आधारित होगी। सेवाओं में भर्ती, नियुक्तियाँ, पदोन्नतियाँ, नियुक्ति स्थान, स्थानान्तरण, केवल योग्यता के आधार पर होंगे, जो कि राज्य सरकार की नीति के अन्तर्गत होंगे।
13. राज्य सरकार अध्यापक-संस्था के सम्बन्धों को सुदृढ़ करेगी तथा उनको बार-बार उखाड़ने की क्रिया को बढ़ावा नहीं देगी।

14. सरकार सूचना तकनीक नीति को वास्वविकता का रूप देने के लिए स्कूल तथा महाविद्यालय स्तर पर कम्प्यूटर शिक्षा लागू करेगी।
15. अर्थव्यवस्था के विश्व व्यापीकरण तथा सूचना तकनीकी का युग होने की मांग को ध्यान में रखते हुए सरकार शिक्षा का औद्योगिक जगत से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करेगी तथा समाज के हर वर्ग के बहुमुखी विकास में सहायता करेगी। राज्य सरकार उच्च शिक्षा में व्यावसायिक सूचना तकनीकी की आवश्यकता पर आधारित पाठ्यक्रमों को लागू करने को प्राथमिकता देगी।
16. प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों में ग्रामीण-नागरिक विषमताओं को दूर करने हेतु या भाषायी कुशलताओं से उन्हें सुसज्जित करने हेतु प्राथमिक स्कूलों में पहली कक्षा से अंग्रेजी भाषा लागू करने हेतु राज्य सरकार कदम उठाएगी।
17. राज्य सरकार शिक्षा के वर्तमान उपलब्ध ढांचा/सुविधाओं को संगठित करेगी तथा अधिक से अधिक उनका लाभ उठाएगी। गुणवत्ता में सुधार लाएगी। शिक्षा का सर्वेक्षण किया जाएगा। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित उच्च शिक्षा की संस्थाओं को स्वायत्तता प्रदान की जाएगी। ग्रामीण क्षेत्रों की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा।
18. उच्च शिक्षा में नीति निर्माण, ताल-मेल तथा शैक्षिक स्तर को बनाए रखने के लिए सरकार उच्च शिक्षा के लिए एक वैधानिक संस्था की स्थापना का प्रयास करेगी। सरकार अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं को स्वायत्तता प्रदान करने का भी प्रयास करेगी।
19. नए-नए कार्यक्रमों को उपलब्ध करवाने तथा भविष्य की मांगों की आपूर्ति को उपलब्ध करवाने हेतु सरकार उच्च शिक्षा में निजी संस्थाओं द्वारा निवेश करने तथा स्ववित्तपोषण को बढ़ावा देगी।
20. हर स्तर पर जवाबदेही में ओर सुधार के लिए उचित तरीकों का निर्माण किया जाएगा तथा व्यावसायिक नियमावली पर कठोरता से चला जाएगा।
21. प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्चतर माध्यमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा में परस्पर निकटता बनाए रखने के लिए सरकार उच्च शिक्षा के प्रबन्धन ढांचे में विशेष परिवर्तन लाने का प्रयास करेगी।
22. परीक्षा तथा मूल्यांकन विधियों में सुधार एक लगातार चलती रहने वाली प्रक्रिया है। तेजी से बदलता हुआ शैक्षिक ढांचा भी उच्चतर शिक्षा के लिए एक चुनौती है, जिसके कारण समय-समय पर पाठ्यक्रमों, पाठ्यचर्या तथा परीक्षा आदि कार्यक्रमों में पुनरीक्षण की आवश्यकता पड़ती है। सरकार राज्य के विश्वविद्यालयों को सलाह देती है कि वे इन विषयों के समाधान के लिए अपने स्तर पर कोई तरीका अपनाएं।
23. योग्यता तथा उत्कृष्टता को बढ़ावा देने के लिए सरकार सर्वश्रेष्ठ अध्यापकों तथा सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं के मुखियाओं का सम्मान करने का प्रयास करेगी।
24. राज्य सरकार एन.सी.सी., एन.एस.एस., खेलकूद, मूल्यपरक शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, योग, स्काउट इत्यादि को शैक्षिक संस्थानों की मुख्य गतिविधियों में शामिल करने का प्रयास करेगी।
25. राज्य सरकार शिक्षा में बेहतर अवसर उपलब्ध कराने, समाज के विभिन्न वर्गों के दरवाजे तक शिक्षा की पहुंच सुनिश्चित करने और शिक्षा को लचीलापन तथा आजीवन की प्रक्रिया बनाने के लिए वर्तमान में उपलब्ध सुविधाओं को दूरस्थ/खुली अधिगम पद्धति से युक्त बनाने का प्रयास करेगी।

# अध्याय-19

## मुख्य सचिव

### मुख्य सचिव (The Chief Secretary)

राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। राज्य सचिवालय के पद सोपान में शीर्ष पर मुख्य सचिव रहता है। यह सचिवालय के उचित एवं कुशल कार्य-संचालन के लिए उत्तरदायी है। इस पद के महत्वपूर्ण दायित्वों को देखते हुए यह अपेक्षा की जाती है कि एक योग्य, अनुभवी, ईमानदार तथा निष्पक्ष व्यक्ति को इस पद पर नियुक्त किया जाएगा ताकि वह सभी अधिकारियों का सम्मान तथा विश्वास प्राप्त कर सके।

#### मुख्य सचिव की नियुक्ति

प्रशासनिक सुधार आयोग ने राज्य स्तर के प्रशासन पर अपनी रिपोर्ट में सुझाया है कि आधुनिक प्रशासन की चुनौतियों को देखते हुए मुख्य सचिव पद पर ऐसा व्यक्ति नियुक्त होना चाहिए जो अपने दीर्घकालीन अनुभव तथा व्यक्तिगत क्षमता के आधार पर सभी का सम्मान प्राप्त कर सके। वह अपने दायित्व का निर्वाह प्रभावशाली रूप से तभी कर सकेगा जबकि वह वरिष्ठतम पदाधिकारी हो तथा उसकी नियुक्ति के समय योग्यता को उचित सम्मान दिया जाए। इसके विपरीत यह एक चिन्तनीय तथ्य है कि मुख्य सचिव की नियुक्ति में राजनीतिक प्रभाव उल्लेखनीय बन जाता है इससे 'लूट-प्रथा' (Spoil System) को बढ़ावा मिलता है। मुख्यमंत्री के बदलते ही अथवा सत्ता में परिवर्तन होते ही मुख्य सचिव को या तो पद-त्यागने के लिए विवश किया जाता है या ऐसा नहीं करने पर उसे बर्खास्त कर दिया जाता है। नये मुख्यमंत्री के साथ ही नये मुख्य सचिव की नियुक्ति की यह प्रवृत्ति स्वस्थ नहीं मानी जा सकती है।

#### मुख्य सचिव के कार्य

मुख्य सचिव अपने राज्य के सम्पूर्ण प्रशासनिक कार्य-कलापों के सूक्ष्म तथा सुचारू रूप से संचालन के लिए उत्तरदायी है। राज्य के शीर्षस्थ प्रशासनिक अधिकारी के रूप में वह बहुमुखी कार्यों का सम्पादन करता है। डॉ. पी. डी. शर्मा, बी. एम. शर्मा तथा नीलम ग्रोवर ने मुख्य सचिव के कार्यों को निम्नानुसार गिनाया है-

- (1) राज्य स्तर पर वह मुख्यमंत्री का सलाहकार होता है। मुख्यमंत्री के कार्यों में सहायता करना, उसे आवश्यक सामग्री, आँकड़े तथा सांख्यिकी उपलब्ध कराना इसी अधिकारी के कार्य हैं। राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखने के लिए वह आवश्यक कार्यवाही करता है।
- (2) वह सम्पूर्ण सचिवालय पर सामान्य पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण रखता है।
- (3) वह लोकसेवाओं का अध्यक्ष है तथा सरकारी सेवी-वर्ग की नियुक्ति, स्थानान्तरण तथा पद-विमुक्ति, आदि की शक्तियाँ उसमें निहित हैं। फिलिप बुडरफ ने एक स्थान पर लिखा है कि मुख्य

क्योंकि उसके चारों ओर सरकारी नीतियों के निरूपण एवं क्रियान्वयन की प्रक्रिया घूमती है। राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव का वही स्थान है जो केन्द्रीय स्तर पर कैबिनेट सचिव का है तथा विभागों में वह राज्य प्रशासन का मुख्य समन्वयक एवं प्रशासकीय अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिये प्रमुख उत्प्रेरक है।

## पद का उदय तथा विकास

मुख्य सचिव का पद अंग्रेजी शासन की विरासत है। 1798 में लॉर्ड वेलेज़ली जब गवर्नर जनरल बनें तो उन्होंने केन्द्रीय सचिवालय का पुनर्संगठन किया। उसी समय मुख्य सचिव का पद सजित किया गया तथा जार्ज हिलेरो बालो पहले मुख्य सचिव बने। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन समाप्त होने तक इसी प्रकार की व्यवस्था बनी रही। 1858 में भारतीय शासन सीधे ब्रिटिश संसद के अधीन आ गया। ब्रिटिश शासित भारत में बंगाल, बम्बई तथा मद्रास "प्रेसीडेन्सी" में गवर्नर को प्रारम्भ में सीमित अधिकार दिये गये। धीरे-धीरे विभिन्न अधिनियमों द्वारा गवर्नर के अधिकारों में वृद्धि हुई। इसी काल में सभी प्रान्तों में मुख्य सचिव का पद सजित हुआ था तथा राज्य स्तरीय प्रशासन में वह महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता था। वह महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ करता था जिनमें जिला स्तर के अधिकारियों की नियुक्तियाँ प्रमुख थी। जैसे-जैसे विभिन्न अधिनियमों द्वारा भारतीयों ने शासन में प्रवेश करना प्रारम्भ किया, वैसे-वैसे मुख्य सचिव की भूमिका द्विविधापूर्ण होती गई। वस्तुतः ब्रिटिश शासन के हित तथा लोकप्रिय भारतीय नेताओं के हितों में किसका समर्थन वह किस सीमा तक करे यह निश्चित करना उसके लिए कठिन कार्य था।

## नियुक्ति

मुख्य सचिव राज्य प्रशासन में अहम् भूमिका का निर्वहन करता है, अतः उसका चयन करते समय कई बातों का ध्यान रखा जाता है। चयन का कार्य राज्य का मुख्यमंत्री करता है। परम्परा यह है कि ऐसा करते समय वह संघ सरकार से सलाह करता है, किन्तु ऐसा करना आवश्यक नहीं है। वह अपने सहयोगी मंत्रियों से भी सलाह कर सकता है पर अन्तिम निर्णय उसी का होता है। मुख्य सचिव के चयन के समय तीन बातों का ध्यान रखा जाता है -

1. **वरिष्ठता** - सर्वोच्च स्तर के भारतीय प्रशासनिक सेवा के कुछ अधिकारियों में से मुख्य सचिव का चयन किया जाता है। यह स्पष्ट है कि सामान्यतया 28-30 वर्ष के सेवा अनुभव वाले व्यक्ति मुख्य सचिव बनाये जाते हैं। यह धारणा सही नहीं है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठतम अधिकारी को ही मुख्य सचिव बनाया जाता है। राजस्थान में ऐसा कई बार हुआ है कि वरिष्ठता में चौथे, पाँचवें यहाँ तक कि आठवें स्तर वाले अधिकारियों को मुख्य सचिव नियुक्त किया गया है। ऐसे अवसर पर सामान्यता नवनियुक्त मुख्य सचिव से वरिष्ठ अधिकारियों को मुख्य सचिव का ही वेतनमान देकर उन्हें राज्य सचिवालय से बाहर कतिपय महत्वपूर्ण सरकारी पदों पर पद-स्थापित कर दिया जाता है।
2. **सेवा अभिलेख एवं कार्य दक्षता** - मुख्य सचिव का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसका पूर्व सेवा-अभिलेख अति श्रेष्ठ हो, वह शासकीय कार्य में दक्ष हो तथा उसमें निर्णय शक्ति प्रभावशाली हो। एक अन्य घटक जो मुख्य सचिव के चयन में सहायक होता है वह उस अधिकारी की अपने सहयोगियों में "टीम भावना" विकसित करने की क्षमता है।
3. **मुख्यमंत्री का विश्वास** - मुख्यमंत्री व मुख्य सचिव को आपसी तालमेल के साथ काम करना आवश्यक है। ऐसे में मुख्य सचिव को मुख्यमंत्री का विश्वास पात्र होना चाहिए। वस्तुतः मुख्य सचिव का कार्यकाल भी कभी-कभी उनके मुख्यमंत्री के साथ सम्बन्धों से प्रभावित होता है। राजस्थान प्रशासन में श्री मोहन लाल सुखाड़िया तथा श्री भगवत सिंह मेहता के अति सामन्जस्यपूर्ण सम्बन्ध रहे। फलतः श्री मेहता ने साढ़े आठ वर्ष के लम्बे समय तक मुख्य सचिव का पद भार सम्भाला तथा अपनी कार्य कुशलता का परिचय दिया। हाल ही में श्री भैरोंसिंह शेखावत एवं श्री मिट्टालाल मेहता का पारस्परिक विश्वास भी उल्लेखनीय रहा।

वस्तुतः मुख्य सचिव की नियुक्ति के समय उपरोक्त सभी बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाता है। फिर भी विभिन्न राज्यों में चयन प्रक्रिया में अपनी-अपनी परम्पराएँ व प्रवृत्तियाँ देखी गई हैं। कुछ राज्यों में वरिष्ठतम अधिकारी को मुख्य सचिव बनाने की परम्परा है तो कहीं-कहीं इसके साथ-साथ वरिष्ठता व विश्वास को भी महत्व दिया जाता है।

## सेवा अवधि

भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग का सुझाव था कि मुख्य सचिव को कम से कम तीन या चार वर्ष अपने पद पर रहना चाहिए। किन्तु इस प्रकार का नियम बना देने से मुख्यमंत्री के लिए आवश्यक हो जायेगा कि वह मुख्य सचिव के रूप में मनोनुकूल व्यक्ति

न होने पर भी उसके साथ काम करने को बाध्य हो। अभी तक की व्यावहारिक प्रवृत्ति तो यही रही है कि मुख्य सचिव की सेवा अवधि उसके मुख्यमंत्री के साथ सम्बन्धों पर निर्भर करती है। ऐसे भी उदाहरण हैं जब एक मुख्य सचिव ने ऐसे चार मुख्यमंत्रियों के साथ कार्य किया जो कि विभिन्न राजनैतिक दलों के नेता थे।

### भूमिका तथा कार्य

मुख्य सचिव की भूमिका राज्य प्रशासन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हुए भी भारतीय संविधान में उसकी भूमिका तथा कार्यों को सूचीबद्ध नहीं किया गया है। उसके औपचारिक कर्तव्यों को राज्य सरकार के कार्य विधि नियमों में उल्लिखित किया गया है, पर ये उसकी प्रभावी भूमिका को स्पष्ट करने में सक्षम नहीं है। इन नियमों में समय-समय पर संशोधन भी किये जाते रहे हैं। मुख्य सचिव की भूमिका को मोटे तौर पर दो भागों में बांटा जा सकता है :

1. औपचारिक भूमिका
2. अनौपचारिक भूमिका

औपचारिक भूमिका के अन्तर्गत तीन महत्त्वपूर्ण दायित्वों को श्रेणीबद्ध किया जा सकता है-

1. मंत्रिमंडलीय सचिव के रूप में।
2. कतिपय विभागों के सचिव के रूप में।
3. राज्य प्रशासन के मुख्य समन्वयक के रूप में।
1. **मंत्रिमंडलीय सचिव के रूप में** - मुख्य सचिव राज्य मंत्रिमंडल का भी सचिव होता है। मंत्रिमंडल सचिवालय विभाग मुख्य सचिव के सीधे नियन्त्रण में काम करता है, जिसका राजनैतिक प्रमुख मुख्यमंत्री होता है। इस विभाग के प्रमुख कार्य हैं-मंत्रिमंडल को सहायता देना, नीति समन्वय केन्द्र के रूप में काम करना, निर्णयों का क्रियान्वयन, आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करना आदि।

राज्य सरकार मुख्य सचिव से कतिपय विषयों पर उसकी सलाह माँगती है यथा-

1. मंत्रिमंडल बैठकों से सम्बन्धित प्रश्न।
2. केन्द्र-राज्य सम्बन्ध तथा अन्तरराज्य सम्बन्धों से सम्बन्धित विषय तथा क्षेत्रीय परिषद की बैठकों के संचालन से सम्बन्धित विषय।
3. राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रियों से सम्बन्धित संस्थापना सम्बन्धी विषय।
4. मुख्यमंत्री तथा मंत्री से सम्बन्धित संसदीय तथा विधान सभाई प्रश्न।
5. जनगणना से सम्बन्धित कार्यवाही।
6. राज्य के बाहर दी जाने वाली चिकित्सा सहायता।

### मंत्रिमंडलीय बैठक से सम्बन्धित कार्य

मंत्रिमंडल के सचिव के रूप में मुख्य सचिव जिन दायित्वों का निर्वाह करता है, उनमें हैं- मंत्रिमंडल की बैठकों को बुलाने के बारे में सूचना देना, मंत्रिमंडल की बैठकों का ब्यौरा तैयार करना, मंत्रिमंडल तथा उप समितियों की बैठक में भाग लेना, मंत्रिमंडल में लिये गये निर्णयों, कार्यवाहियों का रिकार्ड रखना तथा उनकी प्रति राज्यपाल, मुख्यमंत्री तथा मंत्रियों को भेजना। विभागों द्वारा बैठक में विचारार्थ रखे जाने वाले मामले आवश्यक सूचना, तथ्य तथा आँकड़े सहित प्रस्तुत किये जा रहे हैं या नहीं, यह सुनिश्चित करना भी मुख्य सचिव का दायित्व है।

### नीति-निर्माण प्रक्रिया में योगदान

मुख्य सचिव मुख्यमंत्री तथा अन्य मंत्रियों के लिए प्रमुख सलाहकार की भूमिका का निर्वाह करता है। उसका मंत्रिमंडल की बैठकों में भाग लेना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मंत्रिमंडल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह राज्य के विकास एवं उसकी सुव्यवस्था हेतु ऐसे निर्णय ले जो राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से आदर्श एवं उपयुक्त

हों। किन्तु कई बार राजनीतिक दबावों के कारण विवेकसंगत निर्णय लेने में कठिनाई होती है। ऐसे समय पर मुख्य सचिव की भूमिका महत्वपूर्ण बन जाती है।

मुख्य सचिव अपने लम्बे प्रशासनिक अनुभव के आधार पर राजनीतिज्ञों के निर्णय तथा उनके प्रशासनिक क्रियान्वयन तथा परिणामों के बीच सन्तुलन स्थापित करने में सहायता कर सकता है।

### **मंत्रिमंडलीय निर्णयों का क्रियान्वयन तथा "फॉलो अप"**

जब मंत्रिमंडल में कोई निर्णय ले लिया जाता है तब सम्बन्धित विभाग के कार्यपालक अध्यक्ष का यह दायित्व होता है कि वह उसे क्रियान्वित करे। यहाँ मुख्य सचिव की पर्यवेक्षीय भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। वह समय-समय पर विभिन्न योजनाओं, परियोजनाओं, नीतियों एवं प्रशासनिक निर्णयों के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करता रहता है। जहाँ कहीं उसे यह प्रतीत होता है कि किसी क्षेत्र में प्रगति आशानुकूल नहीं है तो उस सम्बन्ध में वह आवश्यक निर्देश देता है। कभी-कभी नीतियों एवं उपनीतियों में संशोधन हेतु भी कदम उठाने पड़ते हैं।

### **प्रशासनिक विभागाध्यक्ष की भूमिका**

सामान्यतया: राज्य का मुख्य सचिव, सामान्य प्रशासन, कार्मिक विभाग, प्रशासनिक सुधार तथा योजना विभाग का प्रशासनिक अध्यक्ष होता है। यद्यपि इस सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों में एकरूपता नहीं है कि कौन से विभाग मुख्य सचिव के अधीन होने चाहिए, परन्तु यह निश्चित है कि वे विभाग, जो राज्य प्रशासन में महत्वपूर्ण समन्वयात्मक भूमिका निभाने वाले विभाग हों, मुख्य सचिव के अधीन रखे जाते हैं। जब एक विभाग मुख्य सचिव के अधीन काम करता है तो उस विभाग का भी महत्व बढ़ जाता है।

मुख्य सचिव कार्मिक प्रशासन की भी देखभाल करता है। भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग ने यह अनुशंसा भी की है कि कार्मिक प्रशासन मुख्य सचिव के नियन्त्रण में होना चाहिए। कार्मिक सचिव के रूप में वह निम्नलिखित प्रमुख कार्यों के लिए उत्तरदायी है-

1. भारतीय प्रशासनिक सेवा के राज्य संवर्ग के अधिकारियों की स्थान रिक्ति, नियुक्ति, पदोन्नति, स्थानान्तरण, पदस्थापन, वरिष्ठता तथा सेवानिवृत्ति से सम्बन्धित मामले मुख्य सचिव के निर्देशानुसार क्रियान्वित किये जाते हैं। पदोन्नति तथा वरिष्ठता के निर्धारण में मुख्य सचिव की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।
2. सेवा शर्तों में संशोधन के लिए उसकी अनुमति आवश्यक है।
3. राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति के समय सामान्यतया: मुख्यमंत्री उससे सलाह करता है।
4. कार्मिक सचिव के नाते लोक सेवकों में नियम के प्रति प्रतिबद्धता पर नजर बनाये रखना मुख्य सचिव का काम है। अतः उसके अधीन सारी सेवाओं के अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामले उसके पास विचारार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं। अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों, विभागाध्यक्षों तथा अन्य उच्च पदस्थ अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के उसके निर्णयों को मुख्यमंत्री का समर्थन अधिकतर प्राप्त हो जाता है।
5. राज्य में पदस्थापित अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों का वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन (राजस्थान में वार्षिक निष्पत्ति प्रतिवेदन) लिखना उसका दायित्व है।
6. जिन राज्यों में लोक आयुक्त का पद है वहाँ उस पद पर नियुक्ति के समय मुख्यमंत्री मुख्य सचिव से सलाह लेता है। लोक आयुक्त के प्रतिवेदन का राज्य विधान सभा में पहुँचने के पहले मुख्य सचिव द्वारा अध्ययन किया जाता है।
7. राज्य के सरकारी अधिकारियों के कल्याण व सेवा शर्तों के निर्धारण के सम्बन्ध में वह हस्तक्षेप कर सकता है।
8. राज्य के लोक सेवकों के प्रशिक्षण तथा जीवक-प्रबन्धन (कैरियर-मैनेजमेंट) से सम्बन्धित व्यवस्था मुख्य सचिव के कार्य क्षेत्र में आती है। राजस्थान में प्रशिक्षण तथा प्रशिक्षण समन्वय की राज्य सलाहकार समिति का वह अध्यक्ष होता है।

प्रशासनिक सुधार विभाग, जो कि प्रशासनिक तंत्र के पुनर्गठन तथा प्रक्रिया सम्बन्धी सुधारों के लिए उत्तरदायी है, भी अधिकतर राज्यों में मुख्य सचिव के अधिकार क्षेत्र में आता है। इस क्षेत्र में भी यदि पथक सचिव की नियुक्ति की जाती है तब भी मुख्य सचिव, निर्देश, नेतृत्व तथा प्रशासनिक सुधार सलाहकार के रूप में अपना महत्त्व बनाये रखता है। राजस्थान में प्रशासनिक सुधार सचिव पथक होता है, तब भी प्रशासनिक सुधारों को दिशा एवं गति देने में मुख्य सचिव की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

अधिकतर राज्यों में मुख्य सचिव सामान्य प्रशासन विभाग का भी सचिव होता है। यह विभाग राज्य के अन्य प्रशासनिक विभागों की देख-रेख करता है तथा उन्हें विभिन्न आवश्यक सुविधाएँ मुहैया कराता है। सामान्य प्रशासन के सचिव के रूप में मुख्य सचिव विभिन्न महत्त्वपूर्ण कार्य करता है, यथा-

1. विशिष्ट अतिथियों के राज्य में आगमन की आवश्यक व्यवस्था करना।
2. सम्मान व विशिष्ट पद पर देने वाली विशेषज्ञ समिति की अध्यक्षता करना।
3. पूर्व शासकों तथा स्वतन्त्रता सेनानियों के सम्पत्ति तथा क्षतिपूर्ति सम्बन्धी मामले मुख्यमंत्री के पास भेजे जाने के पहले मामलों पर मत देना।
4. अन्तर्राज्यीय विवादों की समीक्षा करना।
5. कार्य विधि नियमों में संशोधन के बारे में सुझाव देना। इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय मंत्रिमंडल का होता है।
6. मोटर गैरेज के प्रशासन पर पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण करना।
7. सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में संलग्न ऐच्छिक संस्थाओं की अनुदान की मांगों के सम्बन्ध में अनुशंसा करना।
8. सरकारी आवास, भवन तथा विश्राम गृह से सम्बन्धित मामलों के सम्बन्ध में निर्णय लेना।

सामान्य प्रशासन विभाग का राजनीतिक प्रमुख मुख्यमंत्री होता है, अतः उपरोक्त में से अधिकांश मामलों पर अंतिम निर्णय मुख्यमंत्री द्वारा किया जाता है।

### मुख्य समन्वयक के रूप में

उसे राज्य प्रशासन के विभिन्न विभागों एवं अन्य संगठनों के बीच समन्वयक का कार्य करना पड़ता है। विभिन्न विभागों एवं संगठनों के कार्यकलाप इस तरह से संयोजित किये जाने चाहिए, ताकि कार्यों, कार्यक्रमों में दोहराव न हो। समय, धन व मानव श्रम का अपव्यय न हो, यह सुनिश्चित करना मुख्य सचिव का कार्य है। साथ ही यदि कहीं अन्तर-सांगठनिक अन्तर्विरोध की स्थिति हो तो उसे भी दूर करने का उत्तरदायित्व मुख्य सचिव का होता है। एक समन्वयक के रूप में मुख्य सचिव को विभिन्न स्तरों पर कार्य करना होता है, यथा-

1. केन्द्र, राज्य तथा अन्तर्राज्यीय स्तर पर;
2. राज्य के अन्तर्गत अन्तर्राज्यीय स्तर पर।

### केन्द्र, राज्य तथा अन्तर्राज्यीय स्तर पर

मुख्य सचिव केन्द्र व राज्य के बीच संवाद सेतु का कार्य करता है। योजना, वित्त तथा कार्मिक प्रबन्ध के क्षेत्र में केन्द्र तथा राज्य के बीच निरन्तर अन्तःक्रियाएँ होती हैं। अतः मुख्य सचिव का केन्द्रीय स्तर के सचिवों से लगातार सम्पर्क बनाये रखना आवश्यक है। केन्द्र के मंत्रिमंडल सचिव, योजना सचिव तथा गृह सचिव आदि से वह औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों स्तर पर सम्पर्क बनाये रखता है। इन सम्पर्कों और सम्बन्धों के माध्यम से वह केन्द्र से राज्य के लिए वित्तीय व अन्य सहायता प्राप्त करने में सहायक होता है। इन सम्पर्कों के बनाये रखने के लिए समय-समय पर सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है। समन्वय के लिए अन्तर्राज्यीय समितियों का भी समय-समय पर गठन किया जाता है।

**मुख्य सचिवों का सम्मेलन** - भारत के सभी राज्यों के मुख्य सचिवों का सम्मेलन प्रतिवर्ष नई दिल्ली में आयोजित किया जाता है। इस सम्मेलन की अध्यक्षता केन्द्र का मंत्रिमंडल सचिव करता है। इस सम्मेलन का कार्य-ब्यौरा केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा मिल कर निश्चित किया जाता है। इस सम्मेलन में राज्य प्रशासन से सम्बन्धित सभी विषयों पर विचार-विमर्श किया जाता

है। केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में भी यहाँ चर्चा की जाती है।

**क्षेत्रीय परिषदें** - यह परिषदें राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के द्वारा स्थापित की गई थी। इस समय पाँच क्षेत्रीय परिषदें कार्यरत हैं, जिनके अन्तर्गत सभी राज्य तथा केन्द्र शासित क्षेत्र आ जाते हैं। प्रत्येक क्षेत्रीय परिषद उस क्षेत्र के राज्यों से मिल कर बनती है। केन्द्रीय गृहमंत्री सभी क्षेत्रीय परिषदों का अध्यक्ष होता है। इनके अतिरिक्त राज्यों के मुख्यमंत्री, योजना आयोग का एक सदस्य, क्षेत्र के सभी मुख्य सचिव तथा सदस्य राज्यों के विकास आयुक्त इन बैठकों में भाग लेते हैं।

विभिन्न सदस्य राज्यों के मुख्य सचिव बारी-बारी से इन क्षेत्रीय परिषदों के सचिव बनाये जाते हैं। इन क्षेत्रीय परिषदों की प्रमुख गतिविधियाँ हैं - विकास परियोजनाओं के क्रियान्वयन में राज्यों को सहयोग प्रदान करना; समान नीति के निर्माण में केन्द्र तथा राज्य को विचार-विनिमय के अवसर प्रदान करना तथा राज्यों के आपसी विवाद को दूर करने में सहायता करना।

यद्यपि इन क्षेत्रीय परिषदों का निर्माण सउद्देश्य से किया गया है तथापि नियमित बैठकों के न हो सकने के कारण ये अपनी भूमिका का निर्वाह करने में सक्षम नहीं हो पाई हैं। लेकिन यह निर्विवाद तथ्य है कि इन सम्मेलनों तथा परिषदों के माध्यम से मुख्य सचिव समन्वयक की भूमिका बेहतर तौर पर निभा सकता है। बिजली, पानी तथा राज्य सीमाओं से सम्बन्धित विवादों को निपटाने का प्रयास पहले मुख्य सचिव स्तर पर किया जाता है। तत्पश्चात् ही इन विवादों को उच्चतर स्तर पर प्रेषित किया जाता है।

### राज्य प्रशासन में समन्वय

अपनी पदस्थिति तथा अधिकारों का प्रयोग करते हुए मुख्य सचिव राज्य प्रशासन के समन्वय का कार्य प्रभावशाली तरीके से कर सकता है। सचिवालय प्रशासन कई विभागों में बंटा होता है। हर विभाग का प्रमुख एक सचिव होता है। मुख्य सचिव इन सभी सचिवों को नेतृत्व प्रदान करता है। हाल ही में स्थापित सचिवों की समितियाँ भी समन्वय की महत्वपूर्ण उपकरण हैं। अन्तर्विभागीय विवादों को निपटाना तथा विभागों की गतिविधियों का पर्यवेक्षण करना उसके प्रमुख दायित्वों में से एक है। वह मंत्रिमंडल तथा विभाग के बीच की कड़ी है, क्योंकि सभी महत्वपूर्ण प्रपत्र उसी के माध्यम से मंत्रिमंडल तक पहुँचते हैं।

राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति (1963) ने सुझाव दिया था कि नियमों तथा कार्य पद्धतियों में यदि परिवर्तन करना है तो तत्सम्बन्धी सुझाव मुख्य सचिव द्वारा ही दिये जाने चाहिए। भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग (1966-70) ने मुख्य सचिव के पद को और शक्तिशाली बनाने का सुझाव दिया था।

विभिन्न विभागों के सचिवों की बैठक की अध्यक्षता मुख्य सचिव करता है तथा इसी दायित्व के अन्तर्गत अन्तर्विभागीय मुद्दों को सुलझाने का प्रयास करता है। विभिन्न योजना तथा विकास समन्वय समितियों का अध्यक्ष होने के नाते अन्तर्विभागीय समन्वय सम्भव बनाने में मुख्य सचिव महत्ती भूमिका निभाता है।

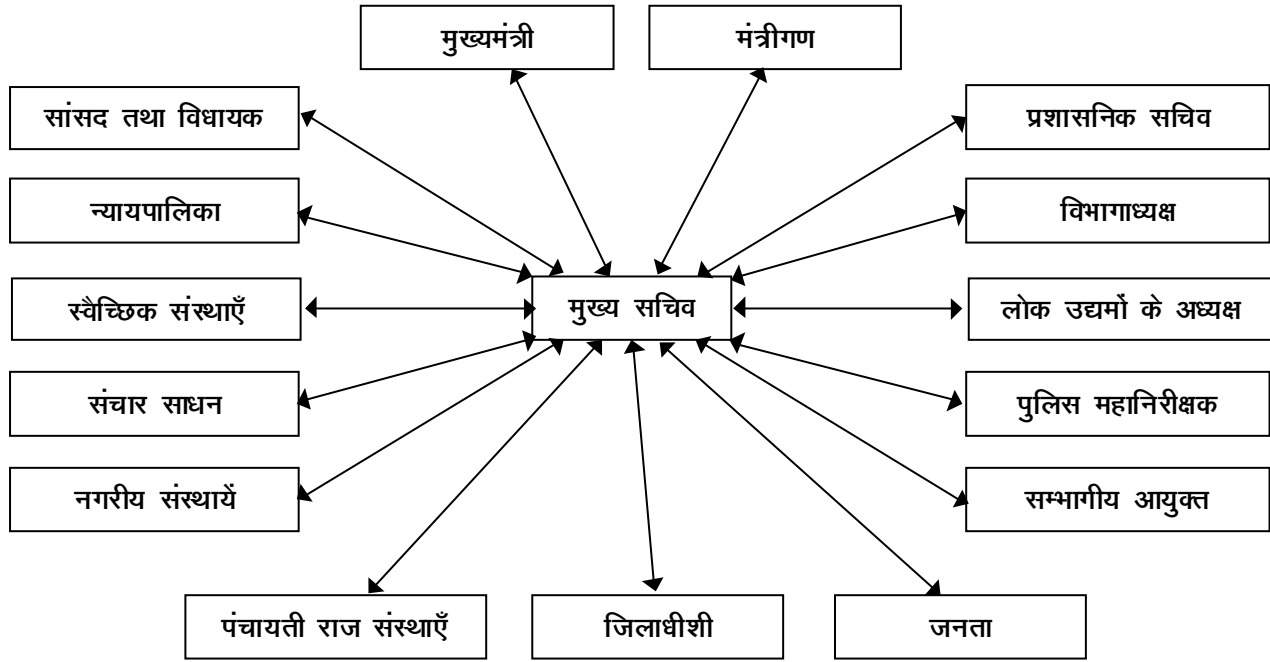
प्रशासनिक समन्वय का एक महत्वपूर्ण स्रोत राज्य के वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारियों की वार्षिक बैठकें हैं। इन बैठकों में विभिन्न विभागों के सचिव एवं अध्यक्षों के अतिरिक्त सभी जिलों के कलक्टर भी भाग लेते हैं। प्रदेश के समक्ष सभी वैकासिक एवं अन्य समस्याओं का पारस्परिक विमर्श से समाधान होने में सहायता तो मिलती ही है, एक दूसरे के विचारों एवं सुझावों से प्रशासनिक दक्षता की भी वृद्धि होती है। इस सम्मेलन में मुख्यमंत्री समेत मंत्रिमंडल के सदस्य भी भाग लेते हैं। इस कारण इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। इन वरिष्ठ अधिकारियों के इस सम्मेलन में मुख्यमंत्री एवं मुख्य सचिव की केन्द्रीय भूमिका रहती है।

### मुख्य सचिव का भूमिका-समूह

मुख्य सचिव को राज्य के विभिन्न वर्गों, संगठनों तथा व्यक्तियों के साथ काम करना पड़ता है। ऐसे में उसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इन सब के साथ उसके सम्बन्ध तथा व्यवहार कैसा है? एक तरफ राजनीतिक नेतृत्व है तो दूसरी ओर सम्पूर्ण प्रशासनिक तंत्र जिसका नेतृत्व उसे करना है। जन प्रतिनिधियों तथा जनता के प्रति जवाबदेही उसे अपने निर्णयों तथा कार्यों में सतर्कता बरतने के लिए सचेत करती है। मुख्य सचिव को किन-किन स्तरों पर सहयोग व समन्वय करना आवश्यक है यह नीचे दिये रेखाचित्र से स्पष्ट है-



### मुख्य सचिव का भूमिका-समूह



सर्वप्रथम मुख्य सचिव और मुख्यमंत्री के सम्बन्धों के मुद्दे को लें, तो यह माना जाता है कि दोनों का एक इकाई के रूप में काम करना आवश्यक है। ऐसा माना जाता है कि मुख्य सचिव को मुख्य मंत्री के मस्तिष्क की भाँति सोचना चाहिए तथा तदनुरूप कार्य करना चाहिए।

मुख्य सचिव की औपचारिक शक्तियों के अतिरिक्त उसकी प्रशासनिक स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि मुख्यमंत्री उसे कितनी छूट तथा कितने अधिकार देते हैं। कई बार विभागों के सचिव मुख्य सचिव को दरकिनार करके मुख्यमंत्री से सीधे सम्पर्क करने का प्रयास करते हैं। यदि इस प्रवृत्ति को मुख्यमंत्री बढ़ावा देते हैं तो मुख्य सचिव की स्थिति दृढ़ नहीं रहती। वस्तुतः आवश्यकता इस बात की है कि मुख्यमंत्री मुख्य सचिव से राय ले, अधिकार भी दे पर आवश्यकता पड़ने पर स्वयं स्वतन्त्र निर्णय भी ले।

मुख्यमंत्री व मुख्य सचिव के साथ-साथ काम करने को समयबद्ध या सीमाबद्ध करना कठिन है।

मुख्य सचिव के अन्य मंत्रियों के साथ सम्बन्ध इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि कई मंत्रियों को प्रशासनिक अनुभव कम होता है। इस कारण वे अपने प्रशासनिक सचिवों एवं मुख्य सचिव से परामर्श लेकर निर्णय करते हैं। अतः मंत्रियों तथा मुख्य सचिव के बीच पारस्परिक अनौपचारिक सम्बन्ध बनना स्वाभाविक है।

सांसदों तथा विधायकों के साथ सम्बन्ध रखते समय मुख्य सचिव द्वारा संतुलित व्यवहार करना वांछनीय होता है। यह सम्बन्ध न अत्यन्त नजदीकी और न अधिक दूरी के होने चाहिए। सामान्यतया सांसद एवं विधायक अपनी समस्याओं के लिये सम्बन्धित मंत्रियों अथवा मुख्यमंत्री से मिलते हैं, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे मुख्य सचिव तथा अन्य सचिवों से भी सीधा सम्पर्क करते हैं। एक विवेकपूर्ण मुख्य सचिव राज्य की राजनीति की बारीकियों को समझता है तथा सामान्यतया ऐसा आचरण करता है कि जिससे राज्य सरकार के राजनीतिक नेतृत्व को अनावश्यक रूप से शिकायतों का सामना न करना पड़े।

विभिन्न विभागों के अध्यक्ष के रूप में 'टीम' भावना के साथ काम करना आवश्यक है। इतने सारे दायित्वों को वह अकेले कुशलतापूर्वक नहीं निभा सकता। अतः सभी विभागों को यथोचित महत्त्व देते हुए उन्हें नेतृत्व करने का उत्तरदायित्व मुख्य सचिव का है।

स्वैच्छिक संस्थाएँ विकास योजनाओं व कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकती हैं। लेकिन यह तभी सम्भव होगा जब उन्हें अनुदान राशि सही समय और अधिक प्रक्रियाओं नियमों में उलझे बगैर मिल जाये। मुख्य सचिव इस दिशा में उनकी सहायता करके राज्य के विकास रथ को तेजी से आगे ले जा सकता है। किन्तु इस मद पर दिये जाने वाले अनुदान आवश्यकताओं की तुलना में अपर्याप्त सिद्ध होते हैं।

राज्य में कानून व व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व यद्यपि गृह विभाग का है, पर अन्ततः सारे विभागों को नेतृत्व देना उसका दायित्व है। ऐसे में राज्य की व्यवस्था की सम्पूर्ण तथा सही जानकारी उसके पास उपलब्ध होना आवश्यक है, अन्यथा सही तथा समयोचित निर्णय सम्भव नहीं हो पायेगा। राज्य के पुलिस प्रशासन, विशेषतया पुलिस महानिदेशक से मुख्य सचिव का निरन्तर सम्पर्क रहता है। जब भी कानून व्यवस्था का कोई संकट आता है, उस समय मुख्य सचिव तथा पुलिस महानिदेशक के बीच 24 घंटे सम्पर्क रहता है। मुख्य सचिव का सम्भागीय आयुक्तों एवं जिलाधीशों से निरन्तर सम्पर्क बना रहता है। उसके द्वारा दिये गये निर्देश एवं परामर्श को ये अधिकारी हर समय ध्यान में रखते हैं।

अन्ततः मुख्य सचिव के अपनी राज्य की जनता के साथ कैसे सम्बन्ध है, यह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था में जनता को सुखी एवं सन्तुष्ट रखना आवश्यक है। जनता की मांगों के अनुसार निर्णय लेना तथा तदनुकूल शिकायतों का निवारण करना आवश्यक है। राजस्थान के मुख्य सचिव जनता की शिकायतों को सुन कर उन पर आवश्यक कार्यवाही करना अपना कर्तव्य समझते हैं। इन में से अधिकांश अपने मानवीय व्यवहार तथा मानवीय दृष्टिकोण के कारण जाने जाते रहे हैं।

इस सारे दायित्वों को निर्वाह करने में मुख्य सचिव का व्यक्तित्व, जीवन के प्रति दृष्टिकोण, प्रशासनिक क्षमता एवं मानसिक चैतन्यता महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

## अध्याय-20

# केन्द्र-राज्य संबंध

### केन्द्र-राज्य संबंध (Centre-State Relations)

संघात्मक सरकार राज्यों के बीच एक ऐसा समझौता है जो संघ में सम्मिलित होने के इच्छुक होते हुए भी अपनी स्वयं की पहचान और स्वायत्तता बनाये रखना चाहते हैं। यह राजनीतिक व्यवस्था सर्वप्रथम अमरीका में दो सौ वर्ष पूर्व आरम्भ हुई थी। इसके पश्चात् कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, सोवियत गणराज्य (1917) तथा भारत में 1950 में इस प्रकार की संघीय प्रणाली की स्थापना हुई है। यह स्मरणीय है कि इन संघीय राज्यों के विभिन्न रूप हैं। समय के साथ-साथ छिन्न-भिन्न हो गये, जैसे सोवियत संघ (1990-91) तथा यूगोस्लाविया। भारत इस समय कठिन दौर से गुजर रहा है। संघ तथा राज्यों में शक्तियों के संवैधानिक विभाजन के अतिरिक्त संघ राज्य का एक विशिष्ट लक्षण है - केन्द्र राज्य सम्बन्धों को निर्धारित करने वाला अतिरिक्त संवैधानिक तत्व। संघ-राज्य सम्बन्धों की समस्या विस्तृत एवं जटिल है। इसका अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों में करेंगे:

1. संघ तथा राज्यों में संवैधानिक शक्तियों का विभाजन।
2. संघ तथा राज्यों में सहयोग हेतु कुछ संवैधानिक या कानूनी संस्थाओं का निर्माण। ऐसी संस्थाएँ निम्नलिखित हैं:
  - (अ) क्षेत्रीय परिषदें
  - (ब) उत्तर-पूर्वी परिषद
  - (स) अन्तर्राज्यीय परिषद

3. संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों में सुधार और सहयोग के लिए अतिरिक्त संवैधानिक साधनों की खोज।

#### 1. संवैधानिक शक्तियों का विभाजन

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 में कहा गया है कि "भारत राज्यों का एक संघ" है। संघ तथा घटक इकाइयों के बीच सम्बन्धों की चर्चा संविधान के भाग 11, 12, 13 और 18 में पर्याप्त रूप से की गयी है। भाग 11 दो अध्यायों में विभाजित है। अध्याय 1 में विधायी शक्तियों और सम्बन्धों की (अनु. 245 से 263) चर्चा की गयी है। अध्याय 2 प्रशासकीय सम्बन्धों (अनु. 256 से 263) से सम्बन्धित है। भाग 12 में जिसमें चार अध्याय हैं, वित्तीय मामलों का वर्णन किया गया है। संविधान का भाग 18 संकटकालीन उपबन्धों से सम्बन्धित है (अनु. 353 से 360)। संक्षेप में संघ-राज्य सम्बन्धों की चर्चा विस्तृत एवं जटिल है, फिर भी संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों की संक्षिप्त चर्चा निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत की जायेगी:

- (अ) विधायी सम्बन्ध,
- (ब) प्रशासनिक सम्बन्ध, तथा
- (स) वित्तीय सम्बन्ध।

वस्तुतः भारत एक संघात्मक राज्य है, इस संघवादी ढाँचे में केन्द्र की स्थिति के सुदृढ़ होने के बावजूद भी राज्यों की संस्थागत स्थिति अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह तथ्य केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की सांविधानिक व्यवस्थाओं के निम्नलिखित सैद्धान्तिक

और व्यावहारिक विवेचन से और स्पष्ट हो जाएगा।

### केन्द्र और राज्यों के विधायी सम्बन्ध

भारतीय संविधान विधायी शक्तियों का दो श्रेणियों में विभाजन करता है- (1) विधान-विस्तार की दृष्टि से, (2) विधान-विषय की दृष्टि से।

1. **विधान-विस्तार की दृष्टि से** : अनुच्छेद 245 के अनुसार, संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए संसद् भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकती है तथा किसी राज्य का विधान-मण्डल उस सम्पूर्ण राज्य के या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकता है। खण्ड (2) में व्यवस्था है कि संसद् द्वारा निर्मित कोई विधि इस कारण अमान्य नहीं समझी जाएगी कि वह भारत के राज्य क्षेत्र से बाहर लागू होती है। संसद् की विधायी शक्ति परिपूर्ण (Plenary) शक्ति है। संविधान में उपबन्धित परिसीमाओं के अधीन विधान-मण्डल को भूतलक्षी और भविष्यलक्षी दोनों प्रकार के कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है।
2. **विधान-विषय की दृष्टि से** : भारतीय संविधान निर्माताओं ने यहाँ कनाडा के संविधान में समाविष्ट सबल और सशक्त केन्द्र की अवधारणा का ही अनुसरण किया है। भारत में ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद थीं जिनके कारण केन्द्र का सबल होना आवश्यक था किन्तु संविधान-निर्माताओं ने उसमें समवर्ती सूची को जोड़ दिया। भारतीय संविधान में शक्तियों के विभाजन की योजना के सिद्धान्त प्रायः वही हैं जो 1935 के भारत सरकार अधिनियम में थे। सन् 1935 के अधिनियम में तीन सूचियों का समावेश किया गया था-संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। स्वाधीन भारत के संविधान में शक्ति-विभाजन की ये तीनों सूचियाँ इस प्रकार हैं-
  1. **संघ सूची (Union List)** : संघ सूची में राष्ट्रीय महत्त्व के 97 विषय हैं, जैसे-भारत की सुरक्षा, देशीकरण सेना, अस्त्र-शस्त्र तथा गोला-बारूद, परमाणु शक्ति, वैदेशिक सम्बन्ध, राजनयिक सन्धियाँ, रेलें आदि इन सभी राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों पर समान विधि का होना परमावश्यक है तथा इन पर कानून बनाने का एक मात्र अधिकार संसद् को दिया गया। इन विषयों पर केन्द्र का अधिकार होने के कारण ही उसे शक्तिशाली स्थान प्राप्त है।
  2. **राज्य-सूची (State List)** : राज्य सूची में 66 विषय हैं। स्थानिय आवश्यकताओं के अनुरूप इन विषयों को राज्य-सूची में रखा गया है। भारत में संघात्मक सिद्धान्त कहाँ तक लागू किए गये हैं, इसका निर्णय राज्य-सूची में उल्लिखित विषयों से अर्थात् राज्यों की विधायी शक्ति के क्षेत्र से भली प्रकार हो सकता है। राज्य सूची के कुछ प्रमुख विषय ये हैं-सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस, न्याय-प्रशासन, जेल तथा सुधारालय, स्थानीय शासन आदि। राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्यों का है। केवल विशेष परिस्थितियों और प्रक्रिया के आधार पर ही भारतीय संसद् इन पर कानून बना सकती है। इस प्रकार से केन्द्र सरकार का राज्य सूची पर भी वर्चस्व है।
  3. **समवर्ती सूची (Concurrent List)** : इस सूची में स्थानीय और राष्ट्रीय महत्त्व के 47 विषय सम्मिलित हैं। इस सूची में निम्नांकित प्रमुख विषय शामिल हैं-फौजदारी कानून व प्रणाली, व्यवहार प्रणाली, निवारक निरोध, विवाह और विवाह-विच्छेद, दिवालियापन आदि। समवर्ती सूची में ऐसे विषय हैं जिन पर सम्पूर्ण देश में सामान्य कानून का होना वांछनीय तो है किन्तु अनिवार्य नहीं इसलिए इन विषयों को केन्द्र और राज्य दोनों ही क्षेत्राधिकार में रखा गया है लेकिन यहाँ केन्द्र की सर्वोच्चता को बरकरार रखा गया है। यदि समवर्ती सूची पर केन्द्र तथा राज्यों द्वारा बनाये गये किसी कानून में अन्तर्विरोध की स्थिति है तो ऐसी स्थिति में केन्द्रीय कानून को प्राथमिकता मिलेगी।

संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा सातवीं अनुसूची को संशोधित किया गया। तदनुसार संघ सूची में 'संघ और सशस्त्र बल पर संघ का नियन्त्रण' विषय जोड़ा गया है और राज्य सूची से 'शिक्षा' को निकालकर समवर्ती सूची में समाविष्ट कर दिया गया ताकि शिक्षा के मामले में एक राष्ट्रीय नीति निर्धारित की जा सके।

4. **अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary List) :** जिन विषयों का वर्णन उक्त तीनों सूचियों में नहीं है अर्थात् अवशिष्ट शक्तियाँ संघीय सरकार को सौंप दी गई हैं। इस सम्बन्ध में भारत में कनाडा के संविधान का अनुसरण किया गया है। संसद् किसी देश अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से ही गई सन्धि, करार अथवा उपसन्धि की क्रियान्विति के लिए आवश्यक विधि निर्माण का कार्य कर सकती है।

केन्द्र की सर्वोच्चता के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं-

1. **राष्ट्रीय महत्त्व के विषय केन्द्र के पास :** जो विषय राष्ट्रीय महत्त्व के हैं वे केन्द्र को दिए गए हैं और जो विषय केवल स्थानीय महत्त्व स्थानीय महत्त्व के हैं उन्हें राज्यों को सौंपा गया है। समवर्ती सूची के विषय केन्द्र और राज्य दोनों ही के क्षेत्राधिकार में रखे गए हैं किन्तु दोनों सरकारों द्वारा निर्मित विधियों में असंगति अथवा विरोध (Conflict) की स्थिति में केन्द्रीय विधि ही मान्य होती है।
2. **संसद् को सम्पूर्ण देश के लिए कानून बनाने का अधिकार :** संसद् भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए कानून बना सकती है। राज्य की विधायिनी-शक्ति का विस्तार राज्य-क्षेत्र तक ही सीमित है।
3. **संसदीय विधियों की सर्वोच्चता :** अगर संसद् निर्मित विधियों और राज्य विधान-मण्डलों द्वारा निर्मित विधियों में असंगति है तो संसद् निर्मित विधि प्रभावी होती है, सिवाय कतिपय अपवादों के।
4. **विशेष परिस्थितियों में संसद् को राज्यों पर कानून बनाने का अधिकार :** उदाहरणार्थ, जब राज्य सभा विशेष बहुमत से यह घोषणा कर दे कि राष्ट्रीय हित में राज्य सूची के किसी विशिष्ट विषय पर संसद् द्वारा कानून बनाना आवश्यक और समयोचित है तो संसद् उस विषय पर कानून बना सकती है। आपात् उद्घोषणा के दौरान संसद् की विधायी क्षमता इतनी विस्तृत हो जाती है कि वह राज्य सूची के किसी विषय पर कानून बना सकती है।
5. **राज्य सूची पर संसदीय नियन्त्रण :** संसद् राज्यों के प्रस्ताव पर राज्य-सूची के किसी विषय पर कानून बना सकती है। इससे राज्य-सूची भी संसद् के क्षेत्राधिकार में आ जाती है।
6. **केन्द्रीय सरकार की नियन्त्रण शक्ति :** संघ-सूची में कुछ प्रविष्टियाँ ऐसी हैं जिनमें संसद् को अधिकार है कि वह कानून द्वारा आवश्यक घोषणा करने के बाद राज्यों के क्षेत्र के कुछ कार्य या विषय अपने हाथ में ले लें। संघ-सूची में कुछ ऐसे विषयों का उल्लेख है जिनके द्वारा केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों पर नियन्त्रण रख सकती है। इनमें दो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं-चुनाव और लेखा जाँच।
7. **संधि, करार या अभिसमय को लागू करने के लिए संसद् का राज्य सूची पर कानून बनाना :** चाहे उसका विषय राज्य-सूची के अन्तर्गत ही क्यों न आता हो। जब अनुच्छेद 356 के अनुसार राष्ट्रपति किसी राज्य विशेष के शासन को अपने हाथ में ले लेता है तो राज्य विधान-मण्डल के अधिकार स्वतः ही संसद् को प्राप्त हो जाते हैं।
8. **न्यायिक-निर्णय :** सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों से संघ की सर्वोच्चता सिद्ध होती है।
9. **संविधान-संशोधन :** संविधान के कुछ संशोधनों ने संसद् की विधायी शक्तियों में वृद्धि की है। उदाहरणार्थ 24वें संशोधन द्वारा गोलकनाथ के मामले।

### केन्द्र-राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध

संविधान के भाग 11 के दूसरे अध्याय के अनुच्छेद 256 से 263 तक केन्द्र-राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है। केन्द्र को राज्य की तुलना में अधिक कर्तव्य और दायित्व सौंपे गए हैं। संविधान की धारा 73 के अनुसार केन्द्र की कार्यपालक अथवा प्रशासनिक शक्तियों का विस्तार उन विषयों तक सीमित है जिन पर संसद् को विधि-निर्माण की शक्ति है। इसी तरह अनुच्छेद 162 के अनुसार राज्यों की प्रशासनिक शक्तियों का विस्तार उन विषयों तक सीमित है जिन पर राज्य विधान-मण्डल का कानून बनाने का अधिकार है पर साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि जिन विषयों पर राज्य विधान-मण्डल और संसद् दोनों का विधि-निर्माण की शक्ति है उनमें राज्य की कार्यपालिका शक्तियाँ संघ की उन कार्यपालिका शक्तियों से परिसीमित रहेंगी जो या तो संविधान द्वारा अथवा किसी संसदीय विधि द्वारा प्रदत्त हैं।

**सम्बन्धों का स्वरूप :** केन्द्र-राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों को हम निम्नलिखित सात भागों में बाँट सकते हैं-

1. संघ द्वारा राज्यों को निर्देश (अनुच्छेद 256, 257, 305 और 339)
2. संघीय कार्यों को राज्यों को सौंपना (अनुच्छेद 258)
3. राज्यों द्वारा अपने कर्त्यों को केन्द्र को सौंपना (अनुच्छेद 258 'अ')
4. अखिल भारतीय लोक सेवाएँ (अनुच्छेद 311)
5. केन्द्रीय अनुदान
6. मतभेदों को कम से कम करने की विधियाँ और परामर्श संगठन
7. योजना-आयोग एवं संघ-राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध

1. **संघ द्वारा राज्यों को निर्देश :** भारतीय संविधान-निर्माताओं ने 1935 के अधिनियम के भाग 126 से इस विचार को ग्रहण करके संघ को राज्यों को निर्देश देने का अधिकार प्रदान किया है।

(क) अनुच्छेद 256 के अनुसार, "प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका-शक्ति का इस प्रकार प्रयोग जिससे संसद् द्वारा विधियों का तथा किन्हीं वर्तमान विधियों का, जो उस राज्य में लागू हों, पालन सुनिश्चित रहे तथा संघ की कार्यपालिका-शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देश देने तक विस्तृत होगा जो भारत को उस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हो"। केन्द्रीय सरकार को इस प्रकार की शक्ति इसलिए प्रदान की गई है कि राज्यों में केन्द्रीय विधि के कार्यान्वयन में कोई बाधा उत्पन्न न हो।

(ख) अनुच्छेद 257 (1) प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका-शक्ति का इस प्रकार प्रयोग होगा जिसे संघ की कार्यपालिका-शक्ति के प्रयोग में कोई अड़चन या प्रतिकूल प्रभाव न पड़े तथा संघ की कार्यपालिका-शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देशों तक विस्तृत होगा जो भारत सरकार को उस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हो। इस व्यवस्था का एक उद्देश्य यह है कि राज्य की कार्यपालिका सत्ता का संघ की कार्यपालिका सत्ता से संघर्ष न होने पाए।

(ग) अनुच्छेद 257 (2), (3) एवं (4) में कतिपय ऐसी अवस्थाओं का उल्लेख है जिनमें राज्यों पर संघ का नियन्त्रण व्यापक हो जाता है। सामरिक महत्त्व की सड़कों तथा अन्य संचार-साधनों की देखभाल, मरम्मत, निर्माण आदि के लिए केन्द्र राज्य सरकार को निर्देश दे सकता है।

(घ) अनुच्छेद 305 केन्द्र सरकार को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह राज्य-सरकारों को निर्देश दे सके। अनुच्छेद 356 राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह राज्य में सांविधानिक व्यवस्था विफल होने की आपात् उद्घोषणा करके राज्य की समस्त शक्तियों को अपने हाथ में ले ले।

(ङ) अनुच्छेद 339 (2) में उल्लेख है कि "संघ की कार्यपालिका-शक्ति का विस्तार ऐसे किसी राज्य की उस प्रकार के निर्देश देने तक होगा जो उस राज्य को अनुसूचित आदिम जातियों के कल्याण के लिए निर्देश में परमावश्यक योजनाओं को बनाने और कार्यान्वित करने से संबंधित हो।"

2. **संघीय कार्यों को राज्यों को सौंपना :** केन्द्र राज्यों को दो प्रकार से संघीय कार्य सौंप सकता है-प्रथम, राज्य सरकार की सलाह से और द्वितीय, संसद् के माध्यम से। अनुच्छेद 228 व 258 के अनुसार राज्यों की सहमति आवश्यक है।"
3. **राज्यों द्वारा अपने कर्त्यों को केन्द्र को सौंपना :** केन्द्र की ही तरह राज्य-सरकारें भी अपने कर्त्यों को संघ सरकार को सौंप सकती हैं। अनुच्छेद (258) (अ) यह उपबन्धित करता है कि किसी राज्य केन्द्र को अपने कर्त्यों केन्द्र की सहमति से ही दे सकते हैं, जबकि केन्द्र अपने कर्त्यों को राज्यों को उनकी सहमति के बिना भी सौंप सकता है। स्पष्ट है कि संविधान ने प्रशासकीय सम्बन्धों में भी केन्द्र की प्रमुखता स्वीकार की। यहाँ भी राज्यों की स्थिति केन्द्र की तुलना में कमजोर है।
4. **अखिल भारतीय सेवाएँ :** संघीय सिद्धान्त के प्रतिकूल भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच सम्मिलित सेवाओं (Common Services) का प्रावधान है जिसे अखिल भारतीय सेवाएँ कहा जाता है। अखिल भारतीय सेवाओं के स जन

का मुख्य उद्देश्य अधिकतम अन्तर्राज्यीय सहयोग और समन्वय प्राप्त करना तथा इन सेवाओं के पदाधिकारियों द्वारा केन्द्रीय नीतियों को समुचित रूप से क्रियान्वित किया जाना है। अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों पर केन्द्रीय सरकार का विशेष नियन्त्रण रहता है और उनका स्थानान्तरण भारत में कहीं भी किया जा सकता है। ये अखिल भारतीय सेवाएँ राज्य सरकारों पर केन्द्र के नियंत्रण का प्रतीक बन गई हैं।

5. **केन्द्रीय अनुदान** : केन्द्र की यह एक बहुत महत्वपूर्ण शक्ति है जिसके द्वारा दो मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति होती है- (क) इसके माध्यम से केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों पर नियन्त्रण रखती है क्योंकि अनुदान रोके जा सकते हैं, एवं (ख) इससे केन्द्र तथा राज्यों में सहयोग और समन्वय की भावना का विकास होता है। जन-कल्याण की योजनाओं को प्रोत्साहन मिलता है जिससे अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय समृद्धि में योग मिलता है। केन्द्र राज्यों का ऋण लेते हैं उनकी गारन्टी कर सकता है। इसके फलस्वरूप केन्द्र राज्यों के प्रशासन अथवा राज्यों की कार्यपालिका सम्बन्धी नीतियों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।
6. **मतभेदों को कम करने की विधियाँ** : भारतीय संविधान में केन्द्रीय तथा राज्य सरकार के बीच के मतभेदों को सुलझाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण उपाय सुझाए गए हैं-
  1. अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत राष्ट्रपति सार्वजनिक हित के उद्देश्य से अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना कर सकता है।
  2. अनुच्छेद 261 द्वारा व्यवस्था की गई है कि भारत के राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र, संघ की और प्रत्येक राज्य की सार्वजनिक क्रियाओं तथा अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाहियों को पूरा विश्वास एवं मान्यता दी जाएगी।
  3. अनुच्छेद 131 के अनुसार संघ एवं राज्यों के पारस्परिक विवाद उच्चतम न्यायालय को सौंपे जा सकते हैं।
  4. अनुच्छेद 262 के अन्तर्गत संसद् अन्तर्राज्यीय नदी विवादों के निर्णय के लिए उपबन्ध कर सकती है। इन विवादों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय अथवा अन्य कोई न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता।
  5. राज्य और संघीय कई क्षेत्रों में बाँट दिए गए हैं और प्रत्येक क्षेत्र में क्षेत्रीय परिषद् नामक उच्च-स्तरीय परामर्शदात्री संस्था कायम की गई है जिसमें उस क्षेत्र के राज्यों और संघीय क्षेत्रों के समान हितों पर विचार-विमर्श का अवसर मिलता है।
  6. उन आरोप-पत्रों के आधार पर जो किसी राज्य के मन्त्रि-परिषद् के मुख्य मन्त्री या मन्त्रियों के विरुद्ध राष्ट्रपति को दिए जाएँ, केन्द्रीय शासन को उनकी न्यायिक जाँच कराने या न कराने के लिए अधिकार प्राप्त हैं।
  7. विभिन्न परिषदों और सम्मेलनों के द्वारा केन्द्र और राज्यों के मध्य विचार-विमर्श आवश्यक ही नहीं, अपेक्षित भी है क्योंकि ऐसा करने से संघात्मक व्यावस्था में केन्द्र-राज्यों के बीच साझेदारी की भावना बढ़ती है। केन्द्रीय सरकार ने संस्थात्मक रूप से अपने चारों ओर विभिन्न परिषदों और सम्मेलनों का जाल फैलाया है।

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में परामर्श-यन्त्र एक नया प्रयोग है। इसका प्रयोग अधिकतर उन्हीं विषयों के लिए हुआ है जो राज्य-सूची में हैं।

**योजना आयोग तथा संघ-राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध** : केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के निर्धारण में योजना आयोग की अहम भूमिका रही है। राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रम को योजनाबद्ध तरीके से लागू करने में इस आयोग ने सार्थक भूमिका का निर्वाह किया है। योजना आयोग को एक अतिरिक्त सांविधानिक सत्ता का नाम दिया जाता है और वर्तमान में इसकी स्थिति बहुत शक्तिशाली बन गई है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अखिल भारतीय सेवाओं और केन्द्र द्वारा राज्यों को निर्देश देने की स्थिति के कारण भारत में केन्द्र की स्थिति बहुत अधिक शक्तिशाली हो गई है।

### **केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध**

प्रत्येक संघात्मक संविधान इस प्रकार की व्यावस्था करता है कि वित्त सम्बन्ध में संघ-सरकार और इकाई सरकारें परस्पर स्वतंत्र रहें तथा उनके पास अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन हों।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 264 से 291 में केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों का उल्लेख है। केन्द्र और राज्यों में राजस्व-वितरण की व्यवस्था बहुत कुछ भारत सरकार अधिनियम, 1935 का अनुसरण ही है। ऐसा करते समय संविधान-निर्माताओं ने किसी कठोर सिद्धान्त को लागू न करके लचीलेपन के तत्त्वों का समावेश किया है। संविधान में बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल समय-समय पर वित्त-स्थिति पर पुनर्विचार करने और संशोधन एवं परिवर्तन का सुझाव देने के लिए एक वित्त आयोग की स्थापना का उपबन्ध भी किया गया है। विश्व के किसी भी संघात्मक संविधान में इस तरह की कोई विस्तृत व्यवस्था नहीं पाई जाती जिसके माध्यम से संघ और इकाइयों में राजस्व वितरण का समयानुकूल समायोजन और वितरण होता रहे। यह व्यवस्था भारत का अपना मौलिक योगदान है जिसने केन्द्र और राज्यों के जटिल वित्तीय सम्बन्धों का एक प्रकार से 'सरलीकरण' कर दिया है। संघ और राज्यों के मध्य राजस्व साधनों के विभाजन के सिद्धान्त के आधार हैं-कार्यक्षमता, पर्याप्तता और उपयुक्तता। इन केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तियां प्रदान करना अन्तर्राज्यीय समस्याओं को सुलझाने के लिए आवश्यक है। इसी उद्देश्य से संविधान के अनुच्छेद 262 के अधीन संसद् ने 1956 में अन्तर्राज्यीय जल-विवाद अधिनियम (Inter-state water Disputes Act) पास किया, जिसके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि अन्तर्राज्यीय जल विवादों को निपटाने के लिए एक ट्रिब्यूनल की स्थापना की जाएगी जिस के अध्यक्ष तथा दो सदस्यों को भारत का मुख्य न्यायाधीश उन व्यक्तियों में से मनोनीत करेगा, जो उस समय सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में काम कर रहे हों। इस ट्रिब्यूनल का निर्णय सम्बन्धित पक्षों के लिए बाध्य होगा तथा इसके विरुद्ध किसी भी न्यायालय में समीक्षा करने का अधिकार नहीं होगा। इसके अतिरिक्त कई प्रकार के अन्तर्राज्यीय झगड़ों को निपटाने की शक्ति केन्द्रीय सरकार को प्राप्त है। ऐसा करना भारतीय एकता तथा राष्ट्रीय सरकार सुलझाने में सफल रही है जैसे केन्द्र द्वारा थीम डैम प्राजेक्ट की समस्या को सुलझाना इस बात का प्रमाण है कि किस प्रकार कई वर्षों से पंजाब, हरियाणा, हिमाचल में तनाव को केन्द्र करने में सफल रहा है।

## **वित्तीय सम्बन्ध** (Financial Relations)

संघात्मक राज्यों में जहां केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का विभाजन किया जाता है वहां राज्यों की स्वायत्तता बनाए रखने के लिए उन्हें राजस्व प्राप्त करने के साधन भी प्रदान किए गए हैं। संघ की इकाइयों के लिए राजनीतिक स्वायत्तता की व्यवस्था भी की जाए ताकि राष्ट्रीय और क्षेत्रीय सरकारों में संघों तथा समन्वय की व्यवस्था बनी रही। भारतीय संविधान में केन्द्र तथा राज्यों में आय के साधनों का विभाजन कानून बनाने की शक्तियों के साथ-साथ ही किया गया है। केन्द्रीय सरकार सूची में दिए गए विषयों पर तथा राज्य सरकारें राज्य-सूची में दिए गए विषयों पर कर लगा सकती है। संविधान की सातवीं सूची के अनुसार केन्द्र तथा राज्यों में साधनों का बंटवारा इस प्रकार किया गया है :-

**केन्द्रीय साधन (The Union Sources)** - केन्द्र की आय के मुख्य साधन हैं:-

1. क षि-आय को छोड़ कर अन्य आय पर कर।
2. सीमा शुल्क (Custom Duties) - जिसके अन्तर्गत निर्यात शुल्क भी है।
3. तम्बाकू तथा भारत में बनाई जाने वाली दूसरी नशीली वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क (परन्तु मानव प्रयोग के लिए मद्यसारिक पथों, अफीम, भंग तथा नशीली वस्तुएं इसमें सम्मिलित नहीं की जाती)।
4. निगम कर (Corporation Tax)
5. क षि-भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति के सम्बन्ध में भू-सम्पत्ति कर (Estate Duty)
6. व्यक्तियों या कम्पनियों की क षि-भूमि के अतिरिक्त सम्पत्ति के मूल मूल्य पर कर, कम्पनियों के मूलधन पर कर।
7. सम्पत्ति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध पर कर।
8. रेल, समुद्र तथा हवाई जहाज द्वारा लाई जाने वाली वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा कर।
9. शेर बाजारों तथा वायदा बाजारों के सौदों पर कर।



10. विनिमय-पत्रों, चैकों, वचनपत्रों, वहन-पत्रों, प्रत्यय पत्रों, बीमा पत्रों, अंशों के हस्तान्तरण, ऋण-पत्रों, प्रति-पत्रियों और प्राप्तियों के सम्बन्ध में लगाने वाले मुद्रांक शुल्क की दर।
11. समाचारपत्रों की खरीद या बेच तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।
12. संघ सूची में दिए गए किसी भी विषय पर न्यायालयों में ली जाने वाली फीस के अतिरिक्त फीस।
13. व्यावसायिक उद्यमों पर कर।
14. सरकार द्वारा एकत्र की जाने वाली धन राशियां।

**राज्यों के साधन (The State's Sources) - राज्यों की आय के साधन इस प्रकार हैं:-**

1. भू-राजस्व (Land Revenue)।
2. कृषि आय पर कर।
3. कृषि-भूमि के उत्तराधिकार के विषय में शुल्क।
4. कृषि-भूमि के विषय में सम्पत्ति शुल्क।
5. भूमि तथा भवनों पर कर।
6. संसद् द्वारा खनिज विकास के सम्बन्ध में लगाए गए कानून द्वारा स्थापित की गई सीमाओं के अन्तर्गत रहते हुए खनिज अधिकार (Mineral Rights) पर कर।
7. नशीली वस्तुओं के उत्पादन पर कर (अफीम, भंग तथा दूसरे मादक प्रयोग के नशीले पदार्थ)।
8. किसी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, प्रयोग या बेचने के लिए वस्तुओं के प्रवेश पर कर।
9. बिजली की खपत तथा विक्रय पर कर।
10. समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को छोड़ कर अन्य विज्ञापनों पर कर।
11. सड़कों या आन्तरिक जलमार्गों के द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर कर।
12. पशुओं और नौकाओं पर कर।
13. सड़कों पर चलने वाली गाड़ियों पर कर।
14. सड़क या पुल प्रयोक्त करने पर कर।
15. व्यवसायों, व्यापारों तथा नौकरियों पर कर।
16. ऐश्वर्य, मनोरंजन, जुआ, शर्त आदि पर कर।
17. केन्द्रीय मुद्रांक शुल्क (Stamp duty) के विषयों के अतिरिक्त दूसरी कागज-पत्रों पर मुद्रांक शुल्क।
18. किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीसों को छोड़कर राज्य सूची में दिए गए किसी विषय के सम्बन्ध में फीस।
19. जंगलों से होने वाली आय।
20. संघ सरकार से प्राप्त होने वाले अनुदान आदि।

उपरोक्त सूचियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि संघ या राज्य सरकारें किस-किस प्रकार के कर लगा सकती हैं। राज्य सूची में दिए गए करों की आय राज्यों को मिलती है और वे ही इनका प्रयोग करते हैं, परन्तु संघ सूची के करों की आय को केन्द्र तथा राज्यों में विभाजित किया जाता है। संविधान द्वारा संघीय करों को जो पूर्णतः या अंशतः राज्यों में बांटे जाते हैं, चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है:-

1. ऐसे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए तथा इकट्ठे किए जाते हैं परन्तु बाद में राज्यों को सौंप दिए जाते हैं। वे हैं-कृषि सम्पत्ति को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार के बारे में शुल्क, कृषि सम्पत्ति को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति कर सम्पदा शुल्क (Estate Duty) आदि।

2. कई ऐसे कर एवं शुल्क हैं, जिन्हें केन्द्र द्वारा लगाया जाता है परन्तु उन्हें एकत्र तथा खर्च राज्यों द्वारा किया जाता है। ऐसे शुल्क हैं - संघ सूची में उल्लेख किए औषधि उत्पादन एवं मद्य पदार्थों तथा श्रंगार वाली वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क (Excise Duty) और स्टाम्प शुल्क आदि।
3. कई ऐसे कर हैं, जो केन्द्र द्वारा लगाए तथा इकट्ठे किए जाते हैं परन्तु इनका विभाजन केन्द्र तथा राज्यों में किया जाता है-इन करों में कृषि आय के अतिरिक्त अन्य आय पर कर, औषधि उत्पादनों और श्रंगार प्रसाधनों पर लगाए गए उत्पादन शुल्कों के अतिरिक्त वे अन्य शुल्क शामिल हैं।
4. कई ऐसे कर हैं, जिन्हें केन्द्र सरकार द्वारा लगाया तथा इकट्ठा किया जाता है और इनका विनियोजन भी केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है।
5. कई ऐसे कर हैं, जिन्हें केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाया तथा इकट्ठा किया जाता है और वह भी इनका विनियोजन करती है। ये कर केन्द्रीय सरकार के राजस्व के स्रोत हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध केन्द्रीय सूची में दिए गए विषयों से हैं। इनमें रेलवे, डाक एवं तार, टेलीफोन, वायरलैस, प्रसारण और संचार के अन्य साधन आदि।
6. संविधान द्वारा यह भी व्यवस्था की गई है कि संघ द्वारा शासित क्षेत्रों और संघीय पारिश्रमिकों के लिए नियत की गई राशि की कटौती करने के पश्चात्, आय कर के रूप में प्राप्त विशुद्ध राशि (Net proceeds) को केन्द्र तथा राज्यों में तथा विभिन्न राज्यों में राष्ट्रपति के आदेशों के अनुसार बांटा जाएगा, जो राष्ट्रपति वित्त आयोग की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद जारी करे।
7. **अनुदान (Grant-in-Aid)** - उपरोक्त आय के अतिरिक्त संविधान द्वारा राज्य सरकारों को अनुदान दिए जाने की व्यवस्था की गई है। केन्द्रीय सरकार राज्यों को सहायक अनुदान प्रदान करती है। असम, बिहार, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल को पटसन और पटसन की वस्तुओं पर निर्यात शुल्क के बदले में अनुदान दिया जाता है। अनुसूचित जातियों एवं कबीलों के अस्थान तथा कबीलीय क्षेत्रों के प्रशासन में सुधार के लिए सभी राज्यों को अनुदान दिया जाता है। केन्द्रीय सरकार ही अनुदान की राशि तथा अनुदान की शर्तों को निश्चित करती है, जिनके अन्तर्गत राज्य सरकारें इन अनुदानों का प्रयोग कर सकती हैं।
8. **ऋण (Borrowing)** - संविधान द्वारा ऋण-सम्बन्धी व्यवस्था भी की गई है। राज्य सरकारें अपने राज्य विधानमण्डलों द्वारा बनाए गए नियमों के अन्तर्गत अपनी संचित निधि (Consolidated Fund) की जमानत पर केन्द्रीय सरकार से ऋण ले सकती हैं। कोई भी राज्य किसी दूसरे देश से ऋण नहीं ले सकता।
9. **वित्तीय संकटकाल (Financial Emergency)** - वित्तीय संकटकाल के समय केन्द्रीय सरकारों का राज्य सरकारों के वित्त पर नियन्त्रण होता है। राज्य विधान मण्डलों द्वारा पारित किए गए वित्त बिल राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेजे जाते हैं और उन्हें स्वीकृत करना या न करना राष्ट्रपति एवं केन्द्रीय सरकार पर निर्भर करता है। संकट काल में केन्द्र तथा राज्यों में वित्तीय सम्बन्धों में परिवर्तन किया जा सकता है। सभी सरकारी कर्मचारियों या पदाधिकारियों, राज्य के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन में कमी की जा सकती है। राष्ट्रपति वित्तीय स्थिरता स्थापित करने के लिए कोई भी पग उठा सकता है तथा राज्यों को आदेश दे सकता है।

### केन्द्र एवं राज्य-सरकारों के उधार लेने की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 292 के अनुसार केन्द्रीय सरकार संसद् द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर भारत की संचित निधि की गारण्टी पर धन उधार ले सकती है और इन सीमाओं तक किसी ऋण की गारण्टी भी दे सकती है। अनुच्छेद 293 के अनुसार कोई राज्य भारत की सीमाओं के अन्दर राज्य विधान-मण्डल द्वारा नियत सीमाओं में रहते हुए राज्य की संचित निधि की गारण्टी पर धन उधार ले सकता है और इन्हीं सीमाओं के भीतर किसी ऋण की गारण्टी दे सकता है लेकिन राज्यों को धन उधार लेने की शक्ति पर यह प्रतिबंध है कि - (i) कोई भी राज्य भारत के बाहर कर्ज नहीं ले सकता, (ii) किसी भी ऐसे राज्य को केन्द्रीय सरकार तब तक धन उधार देने से इन्कार कर सकती है तब तक कि पिछला उधार दिया गया धन राज्य ने लौटा नहीं दिया है, (iii) यदि पिछला कार्य बकाया रहते हुए भी राज्य धन उधार लेने का आग्रह करे तो केन्द्रीय सरकार को अधिकार है कि वह उचित शर्तों के साथ धन उधार दे। भारत में राज्य सरकारें संघ सरकार के ऋणभार से दबी पड़ी हैं अतः

उन्हें सरकार की शर्तों को अधिकांशतः मानना पड़ता है। केन्द्र में सत्तारूढ़ दल की सरकार पर विरोधी राज्य सरकारों का यह आरोप रहा है कि वह अनुदान के आधार पर उन पर गैर-वाजिब शर्तें लादने का प्रयत्न करती है। केन्द्र सरकार द्वारा इसका खण्डन किया जाता रहा है।

## वित्त आयोग

संविधान के अनुच्छेद 280 के अन्तर्गत वित्त आयोग सम्बन्धी प्रावधान है। इसकी केन्द्र-राज्य संबंधों में महत्वपूर्ण भूमिका है। वित्त आयोग मुख्यतः निम्नलिखित विषयों पर अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है-

- (क) संघ और राज्यों के बीच उन करों की विशुद्ध प्राप्तियों के वितरण के सम्बन्ध में जो संघ एवं राज्यों में विभाजित होती है अथवा होंगी और राज्यों के बीच ऐसे करों की प्राप्ति के उस अंश के वितरण में जो राज्यों को प्राप्त हों में मतभेद होने पर।
- (ख) भारत के संचित-निधि में से राज्यों के राजस्व के लिए सहायता अनुदान के सिद्धान्तों के निर्धारित करने के सम्बन्ध में।
- (ग) अन्य विषयों के सम्बन्ध में जो राष्ट्रपति, सुव्यवस्थित वित्त-व्यवस्था के हित में आयोग को सौंपे।

## अन्य वित्तीय व्यवस्थाएँ

संविधान के अन्तर्गत कुछ ऐसे विशिष्ट उपबन्ध हैं जिनके अनुसार संघ और राज्य एक-दूसरे की सम्पत्ति तथा आय पर कर नहीं लगा सकते हैं। राष्ट्रपति की आपात्कालीन वित्तीय शक्तियाँ केन्द्र की निर्णायक प्रधानता की परिचायक हैं। भारत के नियन्त्रण व महालेखा परिक्षक (Comptroller and Auditor General of India) द्वारा केन्द्रीय सरकार राज्यों पर अपना नियंत्रण सुदृढ़ करने में समर्थ होती है। यह अधिकारी भारत सरकार और राज्य सरकारों के लेखा रखने के ढंग और हिसाब-किताब की जांच करता है। इस अधिकारी के माध्यम से ही संसद राज्यों की आय-व्यय पर अपना नियंत्रण रखती है। वित्तीय विषयों पर और भी अनेक उपबन्ध हैं।

भारतीय संविधान में केन्द्र-राज्य संबंधों के वित्तीय स्वरूप का सारगर्भित विश्लेषण करते हुए डॉ. एम. बी. पायली ने लिखा है कि "सारा वित्तीय ढांचा संघ तथा राज्यों के परस्पर सहयोग की भावना पर आधारित है ताकि संघ तथा राज्यों के मध्य वित्तीय संबंधों में पूर्ण तालमेल बना रहे।"

## केन्द्र-राज्य न्यायिक संबंध

भारतीय संविधान ने देश में एकल न्यायिक व्यवस्था (A Single Judicial System) की स्थापना की है। इस एकल न्यायिक व्यवस्था ने भारत में न्यायिक संवर्ग (Cadre) की भी स्थापना कर दी है। राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। राज्यों के आपसी विवादों का निपटारा उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाता है। उच्चतम न्यायालय को अधिकार है कि वह राज्य के उच्च न्यायालयों को समय-समय पर न्याय संबंधी निर्देश दे। उच्चतम न्यायालय के निर्णय नजीरों या उदाहरणों के रूप में सभी राजकीय न्यायालयों द्वारा प्रयोग में लाए जाते हैं। उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किया गया एक लेख समूचे देश में और विधि के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विधायी, प्रशासनिक, वित्तीय और न्यायिक सभी क्षेत्रों में राज्यों की तुलना में केन्द्र को बहुत अधिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। राज्यों को केन्द्र का नेतृत्व स्वीकार करना पड़ता है और केन्द्र के आदेश का पालन करना पड़ता है लेकिन यह कहना ठीक नहीं है कि राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी है। व्यवहार में केन्द्र का दृष्टिकोण राज्यों के प्रति उदार, सहनशील और समझौतावादी रहा है। इसके अतिरिक्त संवैधानिक व्यवस्थाएँ ऐसी हैं जो राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देती हैं तथा केन्द्र और राज्यों में सहयोग एवं समन्वय का वातावरण उत्पन्न कर संघर्ष या मुकदमेबाजी अथवा तनाव की बहुत कम गुंजाइश छोड़ती है अतः दोष संवैधानिक उपबन्धों का नहीं है, अपितु केन्द्र और राज्य सरकारों की 'नियत' या 'भावना' का है। अगर केन्द्र और राज्य सरकारें संविधान निर्माताओं की भावनाओं के अनुरूप आचरण करें तो कहीं कोई विवाद ही उपस्थित न हो।

## केन्द्र-राज्य मतभेदों को दूर करने संबंधी कुछ सुझाव

संविधान-विशेषज्ञों, राजनीतिक टीकाकारों, समीक्षकों, विरोधी दलों, अनेक शिक्षा शास्त्रियों, गैर-कांग्रेसी राज्य सरकारों द्वारा केन्द्र-राज्य मतभेदों को दूर करने की दिशा में मुख्यतः निम्नलिखित सुझाव दिए जाते रहे हैं -

1. भारतीय संविधान स्वरूप में संघात्मक किन्तु आत्मा से एकात्मक है अतः इसे आत्मा से भी संघात्मक बनाया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि समवर्ती सूची के विषयों का पुनर्विभाजन इस प्रकार हो कि शक्ति-विभाजन का संतुलन राज्यों के पक्ष में हो जाए।
2. राज्यों को कुछ लचीले वित्तीय स्रोत प्रदान किए जाएँ ताकि उनकी आय बढ़ सके। इस दिशा में कुछ कदम उठाए गए हैं लेकिन अभी इस संबंध में बहुत अधिक किया जाना शेष है। स्वयं राज्यों को भी अपने वित्तीय साधनों में वृद्धि तथा अपने प्रशासनिक व्यय में मितव्ययिता के लिए हर संभव प्रयत्न करने चाहिए।
3. केन्द्र के पास राज्यों को विवेकानुसार अनुदान देने की शक्ति न रहे।
4. वित्त आयोग का स्थायी संस्था के रूप में परिवर्तित किया जाए और इस आयोग का परामर्श केन्द्र के लिए बंधनकारी होना चाहिए।
5. योजना आयोग को स्वायत्ततापूर्ण सांविधानिक स्तर प्रदान किया जाए।
6. राज्यों की आर्थिक समस्या को सुलझाने के लिए एक स्थायी किन्तु गैर-राजनीतिक समिति गठित की जाए जो केन्द्र व राज्यों के मध्य आर्थिक समन्वय का कार्य करे।
7. अनुच्छेद 263 के अनुसार अन्तर्राज्यीय परिषद् (Inter-State Council) स्थापित की जाए जो राष्ट्रपति को सलाह देने का कार्य करे।
8. राष्ट्रपति एवं राज्यपाल संबंधी सांविधानिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन करके उनकी शक्तियों में इस प्रकार की वृद्धि की जाए कि वे बिना किसी व्यवस्था के स्वविवेक से काम कर सकें।
9. किसी व्यक्ति को केवल एक बार ही राज्यपाल नियुक्त किया जाए, रिटायर होने पर न तो उसे लाभ का पद दिया जाए और न ही उसे राजनीति में भाग लेने के लिए स्वतन्त्र छोड़ा जाए। राज्यपाल को हटाने के लिए महाभियोग की व्यवस्था होनी चाहिए। राज्यपाल पद पर योग्यतम व्यक्तियों को नियुक्त किया जाना चाहिए।
10. राष्ट्रपति के परामर्श के लिए एक समिति बनाई जाए, जिसके परामर्श पर राज्यपालों, न्यायाधीशों, योजना आयोग के सदस्यों आदि की नियुक्ति हो।
11. केन्द्र राज्य-सूची के विषयों में कतई हस्तक्षेप न करे। राज्य-सूची के विषयों संबंधी कार्यक्रम लागू करने, उन पर धन व्यय करने आदि का पूरा उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर रहे।
12. प्रशासन, वित्त और विधायी सभी क्षेत्रों में केन्द्रीय नियन्त्रण की व्यवस्थाएं शिथिल की जाएँ।
13. अखिल भारतीय सेवा के जो अधिकारी राज्य-सेवा में रहें उन पर पूरा नियन्त्रण राज्य सरकार का हो।
14. अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना के अलावा प्रत्येक राज्य के लिए एक सांविधानिक सलाहकार समिति की स्थापना हो, यह समिति संघीय प्रश्नों पर राज्य का परामर्श दे।
15. संविधान के अनुच्छेद 249 पर पुनर्विचार किया जाए।

## सरकारिया आयोग की सिफारिशें

30 जनवरी, 1988 को आयोग के प्रतिवेदन की मुख्य सिफारिशों का प्रकाशन किया गया, जिनमें निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय मानी हैं :-

1. आयोग के प्रतिवेदन में सुदृढ़ केन्द्र की अवधारणा पर बल दिया गया है।
2. आयोग का यह मत है कि केन्द्र और राज्यों के बीच अधिकारों के विभाजन की जो व्यवस्थाएँ संविधान में की गई हैं, उनमें परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

3. आयोग ने राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में केन्द्र और राज्यों की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हुए 'सहकारी संघवाद की अवधारणा' का समर्थन किया है।
4. आयोग ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण करने के पक्ष में अपना अभिमत प्रकट किया है।
5. आयोग ने यह सिफारिश की है कि किसी राज्य को उपद्रव ग्रस्त घोषित करने और किसी राज्य में केन्द्र द्वारा सुरक्षा बलों को भेजने से पूर्व, जहाँ तक संभव हो सके, संबंधित राज्य सरकार से सलाह लेनी चाहिए। यद्यपि आयोग का यह स्पष्ट मत है कि केन्द्र सरकार को ऐसा करने का अधिकार है।
6. आयोग ने राष्ट्रीय विकास परिषद् के नाम में परिवर्तन करने का महत्वपूर्ण सुझाव दिया है। आयोग के मत में इसका नाम 'राष्ट्रीय आर्थिक और विकास परिषद्' कर देना चाहिए।
7. आयोग ने केन्द्र और राज्यों के बीच विवादों को समाधान करने हेतु एक अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना के पक्ष में विचार व्यक्त किया है।
8. आयोग का यह सुझाव है कि केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी का नेता राज्यपाल न बने और राज्यपाल पद से निवृत्त होने के बाद उसे लाभ का पद नहीं दिया जाना चाहिए।
9. आयोग का मानना है कि अनुच्छेद 356 का सहारा पर्याप्त सोच-विचार करके ही लिया जाना चाहिए।
10. आयोग ने अखिल भारतीय सेवाओं को सुदृढ़ और सक्षम बनाने की वकालत की है।
11. आयोग ने आकाशवाणी और दूरदर्शन पर केन्द्र के अधिकार की पुष्टि करते हुए कहा है कि इन्हें प्रतिदिन के मामलों का संचालन करने के लिए उचित सीमा तक 'विकेन्द्रीकरण' की स्थिति प्रदान करनी चाहिए।
12. राष्ट्रपति के विचारार्थ रखे जाने वाले विधेयकों की समय सीमा निश्चित करने के बारे में आयोग ने कहा है कि इस संबंध में अनावश्यक विलंब को रोका जाना चाहिए।

### **केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का उभरता स्वरूप**

सन् 1996 के लोकसभा चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े दल के रूप में उभर कर सामने आई। इधर 13 दलों ने अपने को 'संयुक्त मोर्चा' के रूप में संगठित करके एच. डी. देवेगौड़ा को अपना नेता निर्वाचित किया।

अंत में, निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि भारत में 'सहकारी संघवाद' की भावना को विकसित करके ही केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को सुदृढ़ किया जा सकता है और वर्तमान परिस्थितियों में ऐसा करके ही देश की एकता और अखण्डता को कायम रखा जा सकता है।

## अध्याय-21

# कृषि विभाग (सचिवालय स्तर)

कृषि विभाग कृषि के विकास से संबंधित नीतियों के निर्माण एवं उनके सफल निष्पादन से संबंधित है। पिछले कुछ वर्षों में बड़ी संख्या में अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय कृषि विकास योजनाओं तथा संबंधित क्षेत्रों की परियोजनाओं की मात्रा लगातार बढ़ने से कृषि विभाग के दायित्व में काफी वृद्धि हुई है।

### (भूमिका)

सचिवालय स्तर पर स्थिति राजस्थान सरकार के कृषि विभाग के मुख्य दायित्व इस प्रकार हैं :-

#### 1. कृषि नीति का निर्माण

यद्यपि कृषि के क्षेत्र में राजस्थान पिछले 51 वर्षों में प्रचुर प्रगति कर रहा है, किन्तु व्यवस्थिति एवं सुचारु रूप से समग्रता का गुण लेते हुए एक कृषि नीति का निर्माण अभी तक नहीं हो पाया है। यह कृषि विभाग का दायित्व है कि वह एक ऐसी समग्र कृषि नीति का निरूपण करे जिसमें निम्नलिखित तत्त्व हों -

1. कृषि उत्पादन नीति जिसमें फसलों के उत्पादन से संबंधित प्रामाणिकता के बारे में प्रावधान हों।
2. उत्पादन में गुणात्मकता की अभिवृद्धि जिससे कि बीजों, खाद्य आदि क्षेत्र में उच्चतम कोटि के आदानों का उपयोग किया जाये।
3. भू-संरक्षण के उपाय।
4. जल ग्रहण क्षेत्र का विकास।
5. उद्यानों का विकास।
6. कृषि उद्योग के क्षेत्र में उच्चतम उत्पादन।
7. कृषि विपणन व्यवस्था में कुशाग्रता।
8. भण्डार व्यवस्था का सुसंगठित स्वरूप।
9. सिंचित क्षेत्र विकास, सिंचाई विभाग, इंदिरा गांधी नहर परियोजना, ग्रामीण विकास आदि विभागों से निरन्तर समन्वय।
10. केन्द्रीय कृषि नीति एवं प्रशासन से सामन्जस्य।

पिछले कुछ वर्षों में इस हेतु गंभीर प्रयास किये गये हैं तथा राजस्थान सरकार ने राज्य कृषि नीति का मसौदा स्वीकृति के लिए केन्द्रीय सरकार को भेजा है, किन्तु संशोधनों के संज्ञाव के साथ यह तीन बार केन्द्रीय सरकार से वापस आ चुका है। इन सुझावों का समावेश करने का प्रयत्न किया जा रहा है। ऐसी आशा है कि शीघ्र ही राजस्थान सरकार एक सर्वांगीण राज्य कृषि नीति की घोषणा कर सके।

#### 2. भविष्यात्मक आयोजना

बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकता के अनुरूप खाद्यान्नों का अधिकतम उत्पादन अनिवार्य है। यह प्रक्रिया अनवरत है। अतः आवश्यक है कि अगले 25 वर्षों, 15 वर्षों, 10 वर्षों तथा 5 वर्षों के लिए विकासात्मक योजनाएँ इस क्षेत्र में

निर्मित की जायें। ऐसी योजनाएँ अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय कृषि विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत मिलने वाली संभावित सहायता को समक्ष रखकर बनाई जाती हैं। इनका मुख्य उद्देश्य है कि आगे आने वाले काल में बढ़ती हुई आवश्यकताओं और संभावित स्थितियों का इस प्रकार समन्वय किया जाये जिससे राजस्थान कृषि के क्षेत्र में, तथा विशेषतया खाद्यान्नों के उत्पादन एवं कुशल वितरण के क्षेत्र में, समय की मांग के अनुसार विकास हो सके। राज्य सरकार के सचिवालय का कृषि विभाग इस संबंध में निरन्तर योजनाएँ व उपयोजनाएँ निर्मित करता रहता है तथा इन योजनाओं हेतु संसाधनों की उपलब्धता संभव कराने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के केन्द्रीय सरकार से निरन्तर विमर्श एवं सम्पर्क करता रहता है। इन योजनाओं को सरकार की स्वीकृति मिलने के पश्चात् उपयुक्त संस्थाओं को प्रेषित कर दिया जाता है जिससे कि उनके निष्पादन हेतु आवश्यक वित्तीय एवं तकनीकी साधन उपलब्ध हो सकें। राज्य सरकार के पंचवर्षीय एवं वार्षिक योजनाओं में कृषिगत क्षेत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि के विकास से संबंधित प्रचवर्षीय एवं वार्षिक योजनाओं के निरूपण में आवश्यक प्रमुख समन्वयात्मक भूमिका सचिवालय स्थित कृषि विभाग की ही होती है।

### 3. अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के कार्यक्रमों का प्रबन्धन

विश्व बैंक की सहायता से राजस्थान को कई कृषि विकास के कार्यक्रम स्वीकृत होते रहते हैं। उदाहरणार्थ "प्रशिक्षण एवं भ्रमण (T&V)" कार्यक्रम, जिसके अन्तर्गत गाँवों में किसानों तक आवश्यक तकनीकी परामर्श एवं आदान वितरित किये गये तथा जिससे राज्य में "हरित" संभव बनी, वह विश्व बैंक की योजना का ही अंग थी। इसके अतिरिक्त समय-समय पर राज्य में कृषि के विकास के लिए कृषि विभाग विश्व बैंक तथा विश्व खाद्य संगठन जैसी संस्थाओं को समय-समय पर प्रस्ताव भेजता रहता है जिसकी स्वीकृति के पश्चात् उपलब्ध वित्तीय साधनों का अधिकतम संभव व विवेकपूर्ण उपयोग सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी भी इसी विभाग की है। उल्लेखनीय है कि पिछले लगभग 6 वर्षों से राजस्थान में विश्व बैंक द्वारा समर्थित एवं प्रवर्तित "कृषि विकास परियोजना" लागू की जा रही है जिसके अन्तर्गत कृषि, उद्यानों, भू-जल संग्रहण, कृषि विपणन, सड़क एवं यादों का निर्माण, भण्डारण आदि क्षेत्रों हेतु समन्वित विकास कार्यक्रम लागू किये जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों के निष्पादन हेतु आवश्यक संसाधन विश्व बैंक ही प्रदान करता है।

### 4. केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रवर्तित योजनाओं का प्रबन्धन

भारत सरकार द्वारा कृषि के विकास के लिए कई महत्वपूर्ण योजनाएँ चलाई जाती हैं जिनके क्रियान्वयन हेतु राज्य सरकार को आवश्यक वित्तीय संसाधन प्रदान किये जाते हैं। जिन केन्द्रीय वैकासिक योजनाओं के प्रबंधन के लिए कृषि विभाग उत्तरदायी है, वे इस प्रकार हैं -

1. राष्ट्रीय दलहन विकास परियोजनाएँ
2. राष्ट्रीय तिलहन विकास परियोजनाएँ
3. केन्द्रीय रूई विकास परियोजनाएँ
4. राष्ट्रीय उद्यान मंडल से संबंधित परियोजनाएँ
5. फसल बीमा परियोजनाएँ
6. राष्ट्रीय सर्वेक्षण एवं अध्ययन
7. राष्ट्रीय गन्ना विकास परियोजनाएँ
8. राष्ट्रीय कृषि सिंचाई परियोजनाएँ
9. मिनीकिट्ट कार्यक्रम
10. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों में मक्का प्रदर्शन कार्यक्रम
11. राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परियोजनाएँ
12. कृषि अर्थव्यवस्था एवं सांख्यिकी तथा कृषि सांख्यिकी का विकास।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय कृषि विस्तार कार्यक्रमों के प्रबंधन का दायित्व भी इसी विभाग का ही है। केन्द्र सरकार

की परियोजना से संबंधित दो महत्वपूर्ण बातें हैं, पहली, यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुशंसित कृषि परियोजनाओं के निष्पादन के समय नियमों व उपनियमों का पूरी तरह से पालन किया जाये तथा दूसरी, इन परियोजनाओं के लिए होने वाली वित्तीय सहायता का उपयोग केवल उन्हीं उद्देश्यों के लिए किया जाये जिसके लिए कि वह साधन उपलब्ध कराये गये और साथ ही इन साधनों का विवेकपूर्ण एवं ईमानदारी से उपयोग हो। कृषि विभाग का यह दायित्व है कि वह अपने सभी अधीनस्थ संबंधित संगठनों द्वारा इन परियोजनाओं को लागू कराने की प्रक्रिया पर निरन्तर नियंत्रण रखे। अनवरत् पर्यवेक्षण द्वारा ही इन कार्यक्रमों की कुशलता सुनिश्चित की जा सकती है।

#### 5. कृषि विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु समन्वय

चूँकि कृषि प्रशासन के क्षेत्र में बड़ी मात्रा में संस्थाएँ राजस्थान में कार्य कर रही हैं, यह आवश्यक हो जाता है कि ये सभी संस्थाएँ परस्पर एकीकृत एवं समन्वित रूप से कार्यरत हों जिससे कि पारस्परिक सहयोग स्थापित हो एवं सभी परियोजनाएँ विवेकपूर्ण ढंग से निष्पादित हो सकें। समन्वय के अभाव में होने वाले विलम्ब एवं साधनों के अपव्यय को रोकना भी आवश्यक है। अतः मितव्ययता एवं कुशलता के लिए इन सभी संगठनों में तालमेल आवश्यक है। इस तालमेल को कृषि विभाग अपने स्तर पर संभव बनाता है।

जिन विभिन्न कृषि विकास कार्यक्रमों से कृषि विभाग संबंधित है, वे इस प्रकार हैं-

1. कृषि उत्पादन कार्यक्रमों से संबंधित अभियान;
2. न्यूनतम बीजों का उत्पादन एवं वितरण, भूमि संरक्षण;
3. शुष्क भूमि विकास परियोजना;
4. पौध संरक्षण तथा कीट नाशक से संबंधित परियोजनाएँ, खाद विकास कार्यक्रम;
5. सरकारी फार्म का विकास;
6. खाद की, मांग के अनुसार, आपूर्ति एवं वितरण;
7. कृषि उपज मंडियों का प्रबंधन;
8. उद्यानों व नर्सरी का विकास;
9. अजमेर तथा सांगरिया में स्थित कृषि महाविद्यालय को अनुदान;
10. पशु विकास, निर्देशन एवं प्रशासन विस्तार कार्यक्रम हेतु प्रशिक्षण; एवं
11. कृषि वस्तु भण्डारण की व्यवस्था।

इन सभी कार्यक्रमों को लागू करने में कई राज्य स्तरीय संस्थाएँ संलग्न हैं। अतः उन सभी संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करना कृषि विभाग का ही उत्तरदायित्व है। उच्चतर स्तर पर समन्वय के लिए कई समितियाँ गठित की जाती हैं, इनमें से कुछ समितियों की अध्यक्षता कृषि मंत्री करते हैं, जबकि कुछ अन्य समितियों की अध्यक्षता कृषि उत्पादन सचिव करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी समितियाँ हैं जिनकी अध्यक्षता मुख्य सचिव द्वारा की जाती है, तथा जिनमें कृषि विभाग तथा कृषि से सम्बन्धित अन्य विभागों व इकाइयों के प्रतिनिधि भाग लेते हैं। निरन्तर सूचनाएँ मंगाकर एवं नीति निर्देश प्रदान कर कृषि विभाग अपनी विभिन्न अधीनस्थ संस्थाओं को राज्य नीति के अनुसार समन्वित करता है। जहाँ आवश्यक हो वहाँ प्रबोधन एवं नियंत्रण की विभिन्न विधियों को उपयोग में लिया जाता है।

#### सम्बद्ध संस्थाओं पर आवश्यक नियंत्रण

कृषि विकास एवं प्रबंधन से संबंधित कुछ संस्थाएँ तो सीधे ही सचिवालय स्थित कृषि विभाग के अधीन कार्य करती हैं, जैसे कि कृषि निदेशालय, कृषि विपणन निदेशालय, उद्यान निदेशालय, भू-जल संग्रहण एवं भू संरक्षण निदेशालय। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी स्वायत्त संस्थाएँ भी हैं जो कार्यात्मक स्वायत्तता लिये हुए हैं, यद्यपि उन पर व हत् नियंत्रण सचिवालय स्थित कृषि विभाग का ही है। ये संस्थाएँ हैं-राजस्थान राज्य कृषि विपणन मंडल, राजस्थान राज्य बीज निगम, राजस्थान बीज प्रमाणन अभिकरण, राजस्थान राज्य कृषि तथा उद्योग निगम तथा राज्य भण्डारण निगम। इन स्वयत्त संस्थाओं के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन में कृषि विभाग का हस्तक्षेप नहीं होता किन्तु नीति के निर्माण, उच्च स्तरीय पदों पर नियुक्तियाँ, बड़ी राशि के निवेशों



एवं व्यय आदि के क्षेत्र में कृषि विभाग का इन स्वायत्त संस्थाओं पर नियंत्रण बना रहता है। इन संस्थाओं के कई ऐसे महत्वपूर्ण मामले होते हैं जिसकी स्वीकृति कृषि उत्पादन सचिव अथवा कृषि मंत्री द्वारा प्रदान की जाती है। कई ऐसे स्वायत्त संस्थाओं के अध्यक्ष कृषिमंत्री होते हैं तथा इन मंडलों के कृषि उत्पादन सचिव भी सदस्य होते हैं।

उल्लेखनीय है कि कृषि प्रशासन से संबंधित लगभग सभी स्वायत्तशासी संस्थाओं के प्रबन्ध निदेशक अथवा प्रशासनिक अधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी होते हैं और चूंकि कृषि उत्पादन सचिव एक सुपर टाइम श्रृंखला का भारतीय प्रशासनिक सेवा का ही अधिकारी होता है, अतः उसके लिए यह कठिन नहीं होता कि वे अपनी ही सेवाओं के अधिकारियों पर आवश्यक नियंत्रण स्थापित कर सकें।

### **कार्मिक प्रशासन**

यद्यपि सम्बन्धित विभाग राजस्थान कृषि सेवा, राजस्थान सेवा नियम तथा विभिन्न स्वायत्त संगठनों के सेवा नियमों के अनुसार आवश्यक अधिकारों का उपयोग करते हैं, किन्तु इन संस्थाओं में उच्च स्तरीय नियुक्तियाँ, पदस्थापन, पदोन्नतियाँ, प्रशिक्षण, सेवा की शर्तों आदि के बारे में महत्वपूर्ण निर्णय कृषि विभाग द्वारा ही लिये जाते हैं। इन विषयों से संबंधित कई ऐसे मामले हैं जिन पर कृषि उत्पादन सचिव की स्वीकृति आवश्यक है तथा कई इस प्रकार के विषय हैं जिस पर कृषि मंत्री की स्वीकृति आवश्यक होती है। अलबत्ता कृषि विभाग का यह दायित्व है कि वह अपने अधीन एवं संबद्ध सभी संस्थाओं के कार्मिक प्रशासन पर निगरानी रखे तथा यह सुनिश्चित करे कि स्थापित नियमों एवं मानकों का उल्लंघन नहीं हो।

### **वित्त प्रशासन**

कृषि निदेशालय, उद्यान निदेशालय, कृषि विपणन निदेशालय, भू-जल संग्रहण एवं भू-संरक्षण निदेशालय आदि के बजट प्रस्तावों का समायोजन कृषि विभाग में ही किया जाता है तथा इसके पश्चात् ही इन प्रस्तावों को वित्त विभाग को सम्प्रेषित किया जाता है। इसके अतिरिक्त स्वायत्त संस्थाओं जैसे राजस्थान कृषि विपणन मंडल, राजस्थान कृषि उद्योग निगम, राजस्थान राज्य बीज निगम आदि के बजट प्रस्तावों पर भी कृषि विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप हो एवं समन्वित रूप से इन्हें वित्त विभाग को प्रेषित किया जा सके।

बजट प्रस्तावों के पारित होने के पश्चात् बजट निष्पत्ति का महत्वपूर्ण दायित्व सभी निदेशालयों एवं स्वायत्त संस्थाओं का बनता है। सचिवालय स्थित कृषि विभाग का यह दायित्व है कि वह यह सुनिश्चित करे कि सभी संस्थाएँ वैकासिक आवश्यकताओं और वित्तीय नियमों के अनुसार कार्य करें तथा उचित समय पर आवश्यक व्यय किये जाएँ। कृषि विभाग का यह दायित्व है कि वह यह सुनिश्चित करे कि वह आन्तरिक अंकेक्षण की व्यवस्था सुचारु रूप से उसके अधीनस्थ एवं संबंधित संस्थाओं में लागू की जाए तथा महालेखापाल द्वारा की गई अंकेक्षण टिप्पणियों पर त्वरित कार्यवाही विभिन्न संस्थाओं द्वारा की जाये।

### **विधानसभा से सम्बन्धित कार्य**

कृषि विभाग का दायित्व है कि वह उससे संबंधित एवं अधीनस्थ सभी संस्थाओं के कार्य परिचालन से संबंधित यदि संसद या राज्य विधानसभा में प्रश्न उठाये गये हों तो उनके समुचित उत्तर तैयार करे। इन तैयार किये गये विवरणों के आधार पर कृषि मंत्री विधानसभा में अपना उत्तर दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त जन लेखा समिति, लोक उपक्रम समिति तथा अन्य विधानसभा की समितियों के कृषि से संबंधित विभागों से सम्पर्क को सुलभ बनाने हेतु भी सचिवालय स्थित कृषि विभाग को आवश्यक दिशा-निर्देश समय-समय पर देने पड़ते हैं। एक लोकतंत्र में विधायी समितियों का अत्यधिक महत्व है। अतः उनकी भावना व टिप्पणी का आदर करना एवं आवश्यक कार्यवाही करना विभिन्न शासकीय विभागों का दायित्व है। इस संबंध में कृषि विभाग आवश्यक नेतृत्व प्रदान करता है।

### **संगठन**

राज्य सरकार में कृषि विभाग का राजनीतिक प्रमुख कृषि मंत्री होता है जो कि कैबिनेट स्तर का अथवा राज्यमंत्री स्तर का मंत्री होता है। कृषि विभाग के स्थाई आदेशों में उल्लेख है कि कृषि मंत्री के पास कौन-कौन से मामले स्वीकृति के लिए जायेंगे तथा कौन से मामले वे उच्च स्वीकृति के लिए मुख्यमंत्री अथवा मंत्रिमंडल को भेजेंगे। किन्तु अधिकांश मामलों में कृषि मंत्री ही अंतिम निर्णय ले लेते हैं।

कृषि नीति के निर्माण, उसकी निष्पत्ति पर निगरानी, उच्चस्तरीय पदों पर स्थानान्तरण, अनुशासनात्मक कार्यवाही, बजट स्वीकृति, उच्च राशि के व्यय नियमानुसार अनुमोदित करना एवं संसद एवं विधानसभा के प्रश्नों के उत्तर को अंतिम रूप देना कृषि मंत्री का ही दायित्व है। यह उल्लेखनीय है कि कृषि मंत्री का कार्य केवल सचिवालय की चारदीवारी तक सीमित नहीं होता। सारे राज्य में विभिन्न क्षेत्रों में कृषिगत विकास पर निगरानी के लिए उसे भ्रमण करना पड़ता है। इसी प्रकार कृषि से संबंधित विभिन्न स्वायत्त संस्थाओं के क्रियाकलापों पर भी निगरानी रखनी पड़ती है।

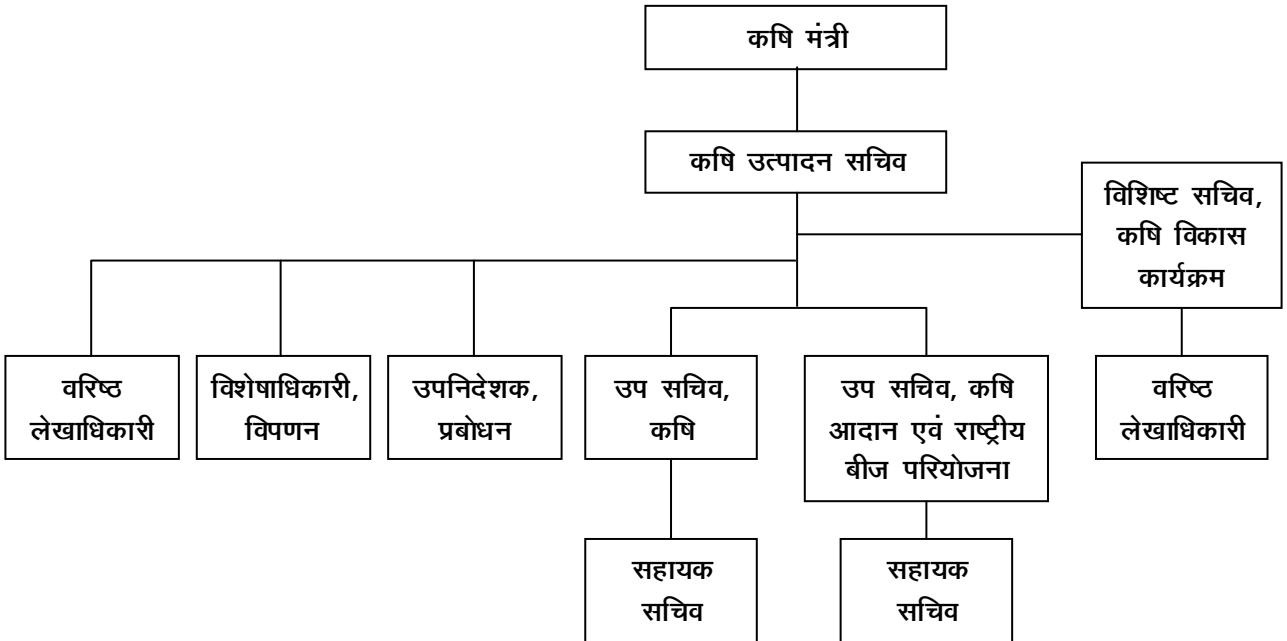
प्रशासनिक स्तर पर सचिवालय में कृषि विभाग का प्रमुख कृषि उत्पादन सचिव ही होता है जो कि भारतीय प्रशासनिक सेवा का सुपर टाइम वेतन श्रृंखला का अधिकारी होता है। विभाग के स्थाई आदेशों में यह उल्लेख होता है कि कौन-कौन से मामले निर्णय अथवा अनुमोदन हेतु अथवा कृषि मंत्री को आगे भेजने हेतु कृषि उत्पादन सचिव के समक्ष आर्येंगे। आवश्यकता पड़ने पर कृषि उत्पादन सचिव अपने विभाग व संस्था से संबंधित कोई भी पत्रावली मंगवा सकता है तथा अधिकारियों से विमर्श कर सकता है। प्रशासनिक नियुक्ति, पदोन्नति, स्थापन, प्रशिक्षण, अनुशासन, प्रशासनिक निर्देशन एवं नियंत्रण, बजट प्रशासन आदि से संबंधित मामले कृषि उत्पादन सचिव तक अवश्य जाते हैं।

कृषि उत्पादन सचिव की सहायता के लिए कृषि विभाग में दो उपसचिव हैं जिनमें एक तो कृषि विभाग का प्रशासनिक कार्य देखता है तथा दूसरा खेती एवं राष्ट्रीय बीज परियोजना से संबंधित है। इनकी सहायता के लिए दो सहायक सचिव हैं। इनके अतिरिक्त कृषि विभाग में उप निदेशक (प्रबोधन), विशेषाधिकारी (विपणन) तथा वरिष्ठ लेखाधिकारी नियुक्त हैं।

विश्व बैंक द्वारा परिवर्द्धन कृषि विकास परियोजनाओं के निष्पादन हेतु एक विशिष्ट सचिव, कृषि विकास परियोजनाएँ हैं जो भारतीय प्रशासनिक सेवा की सुपरटाइम श्रृंखला का अधिकारी है। यह अधिकारी सिंचित क्षेत्र विकास का भी सचिव होता है। इस अधिकारी के दो उत्तरदायित्व हैं-एक तो सिंचित क्षेत्र विकास का प्रशासन तथा दूसरा कृषि विकास परियोजनाओं का निर्देशन। इस अधिकारी की सहायता के लिए एक उपसचिव, कृषि विकास परियोजना भी नियुक्त है।

आंतरिक प्रशासन हेतु कृषि विभाग को 4 समूहों में बांटा गया है। ये समूह इस प्रकार हैं-

### सचिवालय स्थित कृषि विभाग का संगठन



**समूह 1** - यह राजस्थान राज्य, भण्डार निगम, विपणन तथा विपणन मंडल से संबंधित मामलों को निष्पादित करता है तथा साथ ही यह क षि मामलों के प्रशासनिक और गैर-प्रशासनिक अधिकारी के कार्मिक प्रशासन से संबंधित मामलों को निपटाता है।

**समूह 2** - यह केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रवर्तित परियोजनाओं, विश्व बैंक से सहायता प्राप्त कार्यक्रमों, राष्ट्रीय क षि विस्तार कार्यक्रमों, क षि उत्पादन अभियान, समन्वय समितियों, वार्षिक योजनाओं, समुन्नत बीजों के उत्पादन, ऋण विस्तार कार्यक्रमों के लिए प्रशिक्षण, फसल, मौसम तथा वर्षा से जुड़े मामलों से संबंधित है।

**समूह 3** - यह समूह क षि विकास कार्यक्रम, निर्माण ऋण, खेती की अपर्याप्तता, मांग व वितरण, कीट नाशक दवाओं, सरकारी फार्म आदि से संबंधित है।

**समूह 4** - यह समूह क षि उपज मण्डियों से संबंधित है तथा राज्य क षि विपणन मंडल (स्थापना संबंधी मामलों के अतिरिक्त) से संबंधित विषयों का निपटारा करता है तथा लोक लेखा समिति एवं विधानसभा में सरकार द्वारा दिये गये आश्वासनों के निष्पादन से जुड़े कार्यों को करता है।

## कार्यकारी संगठन

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, क षि विभाग कई संगठनों का प्रशासनिक विभाग है तथा इन संस्थाओं पर आवश्यक एवं पर्यवक्षेण करता है। इस विभाग का कार्यकारी संगठन इस प्रकार है-

1. क षि निदेशालय
2. आदान निदेशालय
3. भूजल ग्रहण क्षेत्र विकास भू-संरक्षण निदेशालय
4. क षि विपणन निदेशालय
5. राजस्थान राज्य बीज निगम
6. राजस्थान राज्य भू विकास निगम
7. राजस्थान राज्य क षि विपणन मंडल
8. राजस्थान राज्य क षि उद्योग निगम
9. राजस्थान बीज प्रमाणन अभिकरण

### संबंधित संस्थाएँ

क षि विभाग का जिन अन्य सरकारी विभागों के साथ निरन्तर सम्पर्क रहता है, वह इस प्रकार हैं-

1. सिंचित क्षेत्र विकास तथा जल उपयोग विभाग
2. सिंचाई विभाग
3. खाद्य विभाग
4. इंदिरा गांधी नहर परियोजना
5. राजस्थान क षि विश्वविद्यालय
6. राजस्थान राज्य विपणन मंडल

## अध्याय-22

### ग ह विभाग

### (Home Department)

केन्द्रीय स्तर पर ग ह मंत्रालय की भांति ग ह विभाग राज्य सरकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभाग माना जाता है। इसकी सक्षमता व कुशलता के अभाव में कोई भी राज्य सरकार न तो शान्ति व्यवस्था ही बनाये रख सकती है न विकास कार्यों को समुचित रूप से क्रियान्वित कर सकती है। ग ह विभाग का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि इसका दायित्व केन्द्र तथा अन्य पड़ोसी राज्यों के साथ समन्वयात्मक सम्बन्धों का निर्माण तथा उनका निर्वहन भी है।

#### संगठन

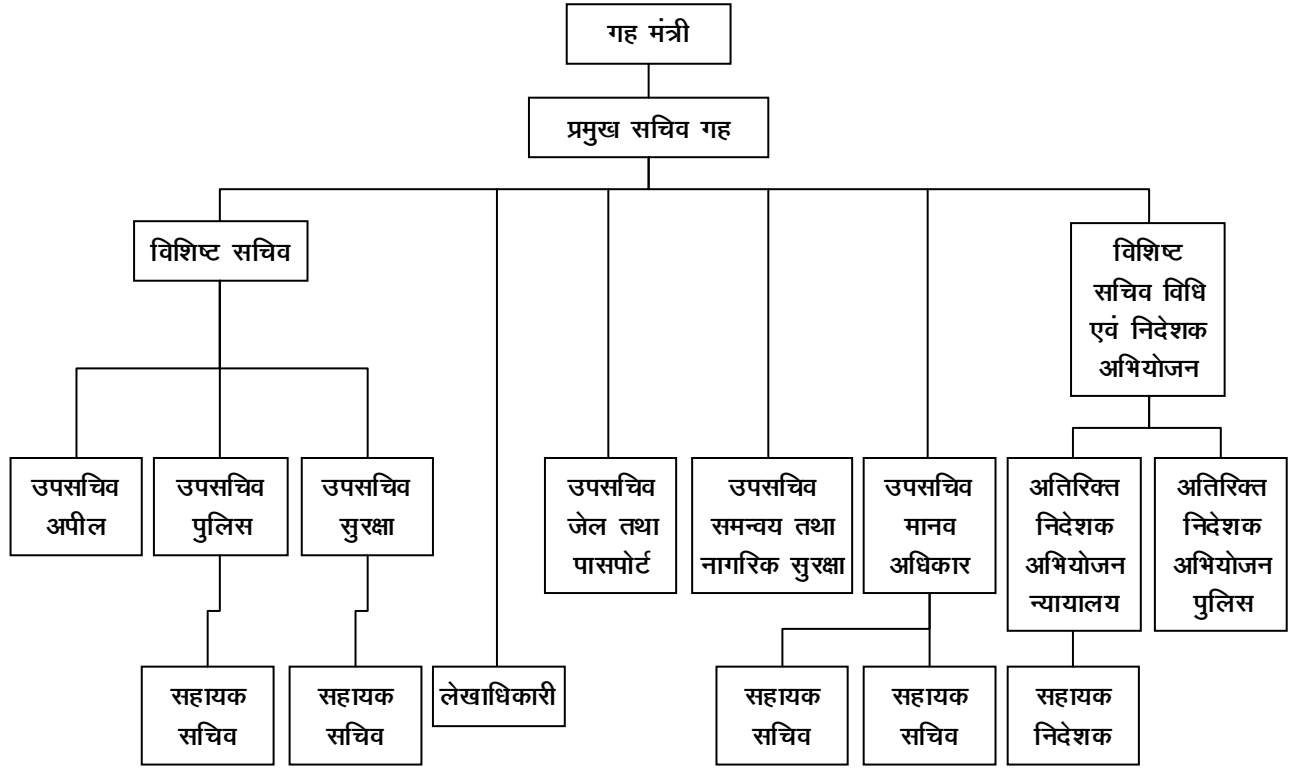
राजनैतिक स्तर पर ग ह मंत्रालय का नेतृत्व कैबिनेट स्तर के एक वरिष्ठ मंत्री द्वारा किया जाता है। कभी कभी यह विभाग मुख्यमंत्री स्वयं भी अपने पास रखते हैं। इस सम्बन्ध में कोई विशेष प्रावधान नहीं है। ग ह मंत्री के व्यक्तित्व तथा अन्य महत्वपूर्ण मंत्रियों की आपसी सहमति द्वारा ही इस विभाग का दायित्व सौंपा जाता है।

ग ह मंत्री के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं-

- राज्य विधानसभा में ग ह मंत्रालय से सम्बन्धित कानूनों, विधेयक एवं नीतियों के बारे में राज्य सरकार का दृष्टिकोण प्रस्तुत करना।
- ग ह मंत्रालय से जुड़े विधानसभा में उठाये गये प्रश्नों का उत्तर देना।
- मंत्रिमंडल की बैठकों में भाग लेना, इसमें ग ह विभाग से सम्बन्धित मामलों को प्रस्तुत करना तथा उन पर मंत्रिमंडलीय निर्णयों को लेने में सहायता प्रदान करना।
- ग ह विभाग से सम्बन्धित मामलों में महत्वपूर्ण नीति-निर्णय लेना तथा इस बारे में आवश्यकता पड़ने पर मंत्रिमंडल एवं मुख्यमंत्री से समन्वय रखना।
- ग ह विभाग के उच्च अधिकारियों के कार्यों का पर्यवेक्षण करना तथा उन्हें आवश्यक दिशा-निर्देश प्रदान करना।
- यह सुनिश्चित करना कि ग ह विभाग से सम्बन्धित कानूनों, नियमों आदि का क्रियान्वयन सही ढंग से हो रहा है।
- ग ह विभाग से सम्बद्ध संस्थाओं के क्रियाकलाप की जाँच हेतु आवश्यक दौरे एवं निरीक्षण करना।
- ग ह विभाग से सम्बन्धित मामलों में जनता की शिकायतों को दूर करने हेतु आवश्यक कदम उठाना।

प्रशासनिक स्तर पर ग ह विभाग के सचिव को सामान्यतया 'शासन सचिव, ग ह' के नाम से जाना जाता है। 1996 में इस अधिकारी का पद प्रमुख सचिव, ग ह है, तथा दिसम्बर 1998 तक इस पद पर नियुक्त अति वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारी राज्य सरकार के अतिरिक्त मुख्य सचिव भी थे।

## रेखाचित्र : ग ह विभाग का संगठन



विभाग के प्रशासनिक प्रमुख के रूप में प्रमुख ग ह सचिव को नीति निर्माण, नीति-क्रियान्वयन पर नियन्त्रण रखने, विधानसभा के प्रश्नों का उत्तर तैयार करने, आवश्यक निरीक्षण करने, भविष्य की योजनाएँ बनाने, सांगठनिक पुनर्गठन, विभागीय कार्मिकों पर नियन्त्रण रखने, नये पदों की रचना, सम्बद्ध संस्थाओं के संचालन की दक्षता सुनिश्चित करने, केन्द्र सरकार से समन्वय रखने, केन्द्रीय सुरक्षा बलों से समन्वय स्थापित करने, राज्य में स्थित सेना-केन्द्रों से सम्पर्क रखने अन्तर्राज्यीय सीमाओं पर होने वाली गतिविधियों पर नजर रखने, सीमा सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा आंतरिक सुरक्षा से सम्बन्धित अन्य मामलों के बारे में आवश्यक कर्तव्य सम्पन्न करने पड़ते हैं। वह ग ह मंत्री का औपचारिक अधीनस्थ होने के साथ-साथ अनौपचारिक सलाहकार भी है। राज्य की गोपनीय सूचनाएँ प्रमुख ग ह सचिव के माध्यम से ही मुख्यमंत्री तक पहुँचती हैं।

प्रमुख ग ह सचिव की सहायता के लिये एक विशिष्ट सचिव होता है जो आई.ए.एस. अधिकारी होता है। इस विशिष्ट सचिव के अधीन छः उपसचिव कार्य करते हैं, जो भारतीय प्रशासनिक सेवा, राजस्थान प्रशासनिक सेवा अथवा राजस्थान सचिवालय सेवा के अधिकारी हैं। इनके पद इस प्रकार हैं:

- उपसचिव, पुलिस
- उपसचिव, सुरक्षा
- उपसचिव, जेल तथा पासपोर्ट
- उपसचिव, समन्वय तथा नागरिक सुरक्षा
- उपसचिव, मानव अधिकार
- उपसचिव, अपील

विशिष्ट सचिव स्तर का एक अन्य अधिकारी विशिष्ट सचिव, विधि तथा निदेशक, अभियोजन के रूप में कार्य करता है। इसके नीचे दो अतिरिक्त निदेशक अभियोजन हैं जो न्याय तथा पुलिस के लिये पथक-पथक हैं। यह दोनों अधिकारी राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा के सदस्य होते हैं तथा उपसचिव स्तर के समकक्ष हैं।

आन्तरिक संगठन की दृष्टि से सम्पूर्ण गृह विभाग 13 समूहों का भी निर्देशन करता है। एक अधीन कार्य करता है अथवा एक सहायक सचिव के। कई बार एक सहायक सचिव दो समूहों का भी निर्देशन करता है। एक समूह अधिकारी (जो सहायक सचिव अथवा अनुभाग अधिकारी हो सकता है) उपसचिव के अधीन कार्य करता है। विभाग में एक लेखाधिकारी है जिसकी सहायता के लिए एक सहायक लेखाधिकारी कार्यरत है।

गृह विभाग में विभिन्न समूह इन विषयों से सम्बन्धित हैं-

समूह 1 - पुलिस

समूह 2 - लेखा एवं बजट

समूह 3 - जेल, पासपोर्ट, वीजा

समूह 4 - सुरक्षा -साम्प्रदायिक शान्ति, भ्रष्टाचार-निरोध

समूह 5 - न्यायिक

समूह 6 - विधि परामर्शदाता (अभियोजन)

समूह 7 - समन्वय - सीमा, सेना, सिनेमा, आर.ए.सी.

समूह 8 - नागरिक सुरक्षा, गृह रक्षा दल

समूह 9 - सुरक्षा-सीमा सुरक्षा, शस्त्र लाइसेंस, सेना हेतु भूमि-आवंटन

समूह 10 - सुरक्षा-कानून एवं व्यवस्था

समूह 11 - जेल, पासपोर्ट, वीजा

समूह 12 - अनुसूचित जाति, जनजाति, राष्ट्रीय एकता परिषद

समूह 13 - मानव अधिकार, महिला सुरक्षा

### सम्बद्ध एवं अधीनस्थ संस्थाएं

गृह विभाग अपने दायित्वों को कुछ सम्बद्ध विभागों, उप विभागों तथा अभिकरणों के माध्यम से करता है। गृह विभाग से संलग्न प्रमुख विभाग इस प्रकार हैं-

पुलिस विभाग एवं रेलवे पुलिस

कारागृह विभाग

गृह रक्षा-दल एवं नागरिक सुरक्षा विभाग

अभियोजन विभाग

भ्रष्टाचार निरोधक विभाग

अपराध जाँच विभाग

न्यायिक विभाग

गृह विभाग का मुख्य कार्य शान्ति व्यवस्था बनाये रखना है, साथ ही राज्य की सीमा से लगे राज्यों के साथ सह-अस्तित्व की भावना के साथ सौहार्द्धपूर्ण सम्बन्ध भी बनाये रखना है। ऐसे में पुलिस विभाग का दायित्व बढ़ जाना स्वाभाविक तथा आवश्यक है। पुलिस विभाग के बढ़ते महत्त्व तथा सतत् आवश्यकता के कारण इसके संगठन तथा शक्तियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। बढ़ते अपराध, मूल्यहीनता तथा असीम जन-आवश्यकताओं एवं किसी भी कीमत पर आकांक्षाओं की पूर्ति की भावना के

कारण समाज में असन्तोष बढ़ता है। ऐसी स्थिति में पुलिस को सामान्य व्यवस्था बनाये रखने के साथ शक्ति के प्रयोग की भी आवश्यकता समय-समय पर पड़ती है।

महानिदेशक पुलिस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता है जिसके अधीन पुलिस मुख्यालय, सी. आई. डी., राजस्थान पुलिस अकादमी, स्टेट क्राइम रिकार्ड ब्यूरो, पुलिस विधि विज्ञान प्रयोगशाला, दूर संचार, यातायात तथा अन्य असम्बन्धित संस्थाएँ आती हैं। इसके अतिरिक्त जिला पुलिस, रेलवे पुलिस, मेवाड़ भील कोर तथा राजस्थान आर्म्ड कान्स्टेबुलरी भी सम्मिलित हैं।

महानिदेशक पुलिस पर विभाग का वित्तीय तथा प्रशासनिक दायित्व है तथा राज्य में शान्ति व व्यवस्था बनाये रखना भी है। पुलिस प्रशासन की दृष्टि से राजस्थान को आठ रेन्जों में बाँटा गया है। इन आठ रेन्जों को पुनः 34 जिलों, 147 पुलिस सर्किलों, 676 पुलिस थाने, तथा 731 पुलिस चौकियों में विभाजित किया गया है। पिछले कुछ दिनों में महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी है तथा प्रशासन भी उनके प्रति होने वाले अत्याचारों के प्रति काफी संवेदनशील हुआ है। महिलाएँ पुलिस प्रशासन के पास बेहिचक आ सकें तथा अपनी समस्याओं को बेझिझक कह सकें इसलिए जयपुर में 8 मई, 1989 को पहला महिला थाना स्थापित किया गया।

उपरोक्त प्रशासनिक विभाजन के सन्दर्भ में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि रेंज मुख्यालय उप महानिरीक्षक पुलिस के अधीन है, जिला स्तर पर पुलिस अधीक्षक ही प्रमुख है। सर्किल अधिकारी के माध्यम से अधीनस्थ पुलिस स्टेशनों का कार्य संचालन किया जाता है। रेलवे पुलिस के द्वारा रेल लाइन तथा आसपास के क्षेत्रों में होने वाले अपराधों को नियन्त्रित करने का प्रयास किया जाता है। पुलिस अधीक्षक, रेलवे तथा अपर महानिरीक्षक, सी.आई.डी. (रेलवे और अपराध शाखा) के संयुक्त प्रयासों से इस दायित्व का निर्वहन किया जाता है। गुप्तचर विभाग को चार शाखाओं में विभाजित किया गया है- अपराध शाखा, विशेष शाखा, सतर्कता तथा कम्प्यूटर।

अपराधों व अपराधियों की शीघ्र पकड़ के लिए गुप्तचर विभाग को आधुनिक संयंत्रों से युक्त किया गया है। वायरलैस तथा प्रयोगशालाओं द्वारा पुलिस को अपने कर्तव्य पूरे करने में सहायता मिलती है। राजस्थान सशस्त्र पुलिस तथा नागरिक पुलिस तथा नागरिक पुलिस की कई बटालियनें बनाई गई हैं। भ्रष्टाचार निरोध विभाग भी गठित किया गया है जिसे राज्य अन्वेषण ब्यूरो के नाम से जाना जाता है।

पुलिस अधिकारी अपने दायित्वों को परिवर्तित सामाजिक परिवेश तथा आवश्यकताओं के अनुरूप सक्षमता के निभा सकें इसलिए उनके प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की गई है। कुछ प्रशिक्षण सेवा में प्रवेश के समय भावी दायित्वों को दृष्टिगत रख कर दिये जाते हैं। साथ ही सेवा में रहते हुए दृष्टिकोण तथा ज्ञान के नवीनीकरण हेतु रिफ्रेशर प्रशिक्षण कार्यक्रमों की भी व्यवस्था की गई है। प्रशिक्षण के मुख्य केन्द्र, राजस्थान पुलिस अकादमी को जयपुर में स्थापित किया गया है। इसके अतिरिक्त राज्य के प्रमुख शहरों में पुलिस अधिकारियों की निम्नलिखित पदसोपान व्यवस्था है :

ग ह विभाग के महत्त्वपूर्ण अंगों में होमगार्ड है जिसकी स्थापना 1963 में की गई थी। आपात स्थिति को सम्भालने के लिए इस विभाग की स्थापना की गई थी। निदेशक, नागरिक सुरक्षा एवं महा समादेष्टा, होमगार्ड के प्रशासनिक नियन्त्रण में विभाग काम करता है।

अपराधों को सुधारने का मौका देने के लिए जेल व सुधारग ह भी ग ह विभाग के नियन्त्रण में ही क्रियाशील हैं। महानिदेशक, कारागार इस विभाग का सर्वोच्च पद है। महिलाओं तथा बाल अपराधों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, अतः उनके लिए पथक सुधारग हों की स्थापना की गई है।

ग ह विभाग के अन्तर्गत अभियोजन विभाग निदेशक, अभियोजन के नियन्त्रण में कार्यरत हैं। भ्रष्टाचार निरोध का दायित्व महानिदेशक भ्रष्टाचार निरोधक विभाग का है। न्यायालय सम्बन्धी मामलों के लिए उपसचिव की व्यवस्था की गई है।

ग ह विभाग वस्तुतः सभी विभागों से कहीं न कहीं सम्बद्धित है अतः इसकी महत्ता स्वयः सिद्ध है। यह विभाग केन्द्र तथा राज्य सरकार के सौहार्द्धपूर्ण सम्बन्धों तथा समन्वय के लिए भी उत्तरदायी है।

## रेखाचित्र : पुलिस विभाग में पदसोपान व्यवस्था



## ग ह विभाग के उत्तरदायित्व

यह विभाग निम्न दायित्वों का वहन करता है:

1. **शान्ति व्यवस्था बनाये रखना पुलिस प्रशासन**

किसी भी समाज या राज्य की क्रियाशीलता बनाये रखने तथा स जनात्मक, रचनात्मक क्षमताओं उत्तरोत्तर विकास के लिए शान्तिपूर्ण तथा व्यवस्थित वातावरण की आवश्यकता होती है। ग ह विभाग का दायित्व है कि वह शान्तिपूर्ण वातावरण की यथास्थिति को बनाये रखे। इसके लिए वह समय-समय पर राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार से भी



निर्देश प्राप्त करता है। ग ह विभाग विभिन्न केन्द्रीय व राज्यीय कानूनी की क्रियान्विति हेतु आवश्यक कदम उठाने के निर्देश देता है। इस दायित्व के निर्वहन के लिए पुलिस विभाग ही राज्य के ग ह विभाग के मुख्य उपकरण के रूप में कार्य करता है। पुलिस प्रशासन से सम्बन्धित सभी दायित्व राजस्थान सशस्त्र पुलिस, रेलवे पुलिस, हामगार्ड आदि राजस्थान पुलिस प्रशासनिक नियन्त्रण की परिधि में ही आते हैं।

## 2. आंतरिक सुरक्षा

कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने की सामान्य प्रक्रिया के अतिरिक्त आंतरिक सुरक्षा के अन्य कई आयाम हैं जिनसे ग ह विभाग का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। राज्य कर्मचारियों की हड़ताल, सामाजिक तथा राजनीतिक संगठनों द्वारा किए जाने वाले आन्दोलन, साम्प्रदायिक दंगे तथा शत्रु-राष्ट्र द्वारा घोषित युद्ध जैसी परिस्थितियों के दौरान ग ह विभाग को गम्भीर चिन्तन एवं मुस्तैदी से कार्य करना पड़ता है। राज्य, सम्भाग तथा जिला एवं स्थानीय स्तर पर सुरक्षा का वातावरण बना रहे, यह देखना ग ह विभाग का ही दायित्व है। महत्वपूर्ण संस्थापनों की सुरक्षा के साथ-साथ अति महत्वपूर्ण व्यक्तियों (वी.आई.पी.) तथा अति-अति महत्वपूर्ण व्यक्तियों (वी.वी.आई.पी.) की सुरक्षा करने की जिम्मेदारी भी इसी विभाग की है।

## 3. निवारक नजरबंदी

आंतरिक सुरक्षा बनाये रखने के लिए निवारक कदम अति उपयोगी हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम तथा विदेशी विनिमय संरक्षण एवं तस्करी गतिविधियाँ निवारण अधिनियम (कोफेपोसा) के अन्तर्गत अशान्ति फैलाने वाले अथवा अपराध करने वाले व्यक्तियों की निवारक नजरबंदी राज्य की सुरक्षा के लिये आवश्यक हो जाती है। इस सम्बन्ध में आवश्यक दिशा-निर्देश ग ह विभाग ही देता है। यह विभाग ही राज्यपाल को यह सिफारिश करता है कि किन मामलों में निवारक नजरबंदी की अवधि को कम करने अथवा क्षमा करने में वह (राज्यपाल) स्वविवेक का उपयोग करे।

## 4. अपराधों की रोकथाम

शान्ति व्यवस्था की यथास्थिति बनाये रखने के पश्चात अपराधों पर नियन्त्रण व अपराधियों पर पैनी-सजग दृष्टि रखना आवश्यक है। इसलिए राजस्थान पुलिस जुए, सट्टे, मटके जैसी प्रवृत्तियों पर सजग दृष्टि रखती है तथा उन्हें नियन्त्रित करने का प्रयास करती है। डाका डाल कर व चोरी करके जीवन यापन करने वाले जरायम पेशा अपराध को जीवन वृत्ति बनाने वाले लोगों पर निरन्तर निगरानी रखना और उन पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है। विष तथा खतरनाक औषधियों के दुष्प्रयोगों की रोकथाम तथा अन्य दायित्वों के लिए केन्द्रीय जाँच ब्यूरो राजस्थान पुलिस की मदद करते हैं।

## 5. शस्त्रों का नियम

ग ह विभाग शस्त्रों के प्रयोग के लिए लाइसेन्स जारी करता है। राज्य के शस्त्रागार की देखरेख आग्नेयास्त्र, गोलाबारूद आदि का नियमन तथा व्यवस्था भी इसी विभाग का दायित्व है। शस्त्र के लाइसेन्स जारी करते समय यह सुनिश्चित किया जाता है कि उनकी आवश्यकता केवल व्यक्तिगत सुरक्षा के लिये ही है, तथा वे किसी प्रकार राज्य की सुरक्षा के लिये खतरे नहीं होंगे।

## 6. अपराधों, कारागार तथा सुधार ग ह संबंधी दायित्व

राज्य की समस्त जेलों की व्यवस्था, कैदियों का एक जेल से दूसरे जेल में स्थानान्तरण, कैदियों का अन्तर्राज्यीय आदान-प्रदान, तथा जेल सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं का समाधान ग ह विभाग द्वारा किया जाता है। महिलाओं तथा बच्चों से सम्बन्धित सुधार ग हों पर भी ग ह विभाग का नियन्त्रण रहता है।

## 7. दण्डादेशों का क्रियान्वयन व तत्सम्बन्धी सलाह

यह विभाग अन्य राज्यों द्वारा दिये गये दीवानी तथा अपराधों से सम्बन्धित आदेशों की तामील करता है तथा राज्यपाल द्वारा दण्ड में कमी या क्षमादान सम्बन्धी मामलों में परामर्श देने का कार्य करता है।

## 8. राज्य सीमा सुरक्षा

लगभग एक हजार किलोमीटर की राज्य से लगने वाली विदेशी सीमाओं पर सुरक्षा व्यवस्था तथा उस पर सतत सजग दृष्टि रखना गृह विभाग का दायित्व है। बीकानेर, श्रीगंगानगर, बाड़मेर तथा जैसलमेर जिलों में इस समस्या का विशेष प्रभाव है। सीमावर्ती शिकायतें व पाकिस्तान सीमा से सम्बन्धित मामले गृह विभाग के नियन्त्रण में आते हैं। सीमा से होने वाली घुसपैठ एवं तस्करी को रोकने का दायित्व इसी विभाग का है। सीमा पर कार्यरत अन्य विभागों तथा संस्थाओं से गृह विभाग को इस सम्बन्ध में निरन्तर समन्वय रखना पड़ता है। ये संगठन हैं- सीमा सुरक्षा बल, भारतीय सेना, केन्द्रीय जाँच ब्यूरो, सीमा शुल्क विभाग, राज्य पुलिस आदि। सरकारी गोपनीयता अधिनियम, सीमा शुल्क अधिनियम आदि के अधीन पकड़े गये अपराधियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का दायित्व गृह विभाग का ही है। सीमा विकास योजना का कार्य भी इसी विभाग के अधीन आता है।

## 9. विदेश यात्रा, पासपोर्ट एवं वीजा सम्बन्धी दायित्व

विदेशी नागरिकों, पर्यटकों तथा तीर्थ यात्रियों से सम्बन्धित निर्णय गृह विभाग ही लेता है। अधिवास, देशीकरण तथा नागरिकता सम्बन्धी मामले, भारत के आप्रवासन, भारत से बाहर उत्प्रवासन सम्बन्धी मामले गृह विभाग के क्षेत्राधिकार में आते हैं।

## 10. मानव अधिकार व क्रूरतानिवारण

बच्चों का संरक्षण, महिलाओं, अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जाति व जनजाति पर हो रहे अत्याचारों की सुनवाई व नियन्त्रण गृह विभाग का दायित्व है। हाल ही में इन दायित्वों पर पहले से काफी अधिक बल दिया गया है। यह विभाग पशुओं से सम्बन्धित क्रूरता की रोकथाम का भी प्रयास करता है।

## 11. मनोरंजन व्यवस्थापन

गृह विभाग द्वारा सिनेमा, रंगमंचों की व्यवस्था तथा उनके लिए लाइसेन्स जारी किया जाता है। विभाग बाहर से आये सांस्कृतिक दलों के कार्यक्रमों के आयोजन की सुरक्षा की दृष्टि से व्यवस्था करता है।

## 12. प्रकाशन तथा संचार माध्यमों का नियमन-नियन्त्रण

गृह विभाग का दायित्व राजपत्र तथा राजकीय पुस्तकों का प्रकाशन तथा वितरण करना है। राजस्थान में सरकारी प्रेसों की व्यवस्था, समाचार एजेन्सियों के कार्य, राज्य के गैर सरकारी प्रकाशनों का पंजीकरण, सरकारी विज्ञापनों की व्यवस्था, प्रेस कानून, कॉपीराइट कानूनों का क्रियान्वयन, समाचार-पत्रों पर नियन्त्रण तथा आवश्यक सूचनाओं का प्रकाशन भी गृह विभाग द्वारा करवाया जाता है।

## 13. विविध कार्य

जमीन से खोद कर निकाले गये खजाने सम्बन्धी मामले, नगरपालिका तथा नगर क्षेत्र से बाहर कब्रिस्तान तथा श्मशान भूमि सम्बन्धी मामले, राजस्व विभाग द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता को छोड़कर नागरिकों को आयात सहायता उपलब्ध कराना, परमवीर, महावीर तथा अशोक चक्र प्राप्त व्यक्तियों को राजकीय अनुदान प्रदान करना गृह विभाग का क्षेत्राधिकार है। गृह विभाग स्वयं के स्टाफ के सेवा सम्बन्धी मामलों को तो निबटाता ही है, साथ ही अपने सम्बद्ध संगठनों के कार्मिक प्रशासन सम्बन्धी उन मामलों पर भी निर्णय लेता है जो इसके क्षेत्राधिकार में आते हैं।

## गृह विभाग के सम्मुख चुनौतियाँ

यह स्पष्ट है कि राजस्थान राज्य की सरकार का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विभाग गृह विभाग ही है। शान्ति व्यवस्था, साम्प्रदायिक एकता, सीमा सुरक्षा, मानव अधिकार आदि संवेदनशील विषयों से अंतरंग रूप से जुड़े गृह विभाग की दृष्टि एवं दक्षता पर निर्भर करता है कि राज्य में सौहार्द्धपूर्ण सहअस्तित्व एवं विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।

मानव अधिकारों के उभरते आन्दोलन ने अब पुलिस के दुष्टिकोण, भूमिका एवं कार्यशैली में बदलाव के लिये दबाव डाला है।

ग ह विभाग की अपेक्षित भूमिका में काफी परिवर्तन आ गया है। अब यथास्थिति बनाये रखना ही काफी नहीं है बल्कि उसे अब विकासकारी भूमिका भी निभानी है। नागरिकों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ क्रियान्वित करनी हैं, उनकी शारीरिक सुरक्षा के साथ-साथ उनके मनोरंजन तथा मानसिक गुणवत्ता में वृद्धि करने में सहायता भी करनी है। सिद्धान्त रूप में तो ये सारे दायित्व स्वीकार कर लिये गये हैं, पर व्यवहारिक रूप में उन्हें क्रियान्वित करने के लिए न तो अधिकारियों को नवीन दृष्टि प्रदान की गई है न पर्याप्त आर्थिक प्रशासनिक संरचना प्रदान की है।

आज ग ह विभाग को कानूनी विशेषज्ञों, पुलिस प्रशासन के ज्ञाताओं, अपराधों को समझने व रोकने के लिए मनोवैज्ञानिक तथा मनोचिकित्सकों की आवश्यकता है। अपराधियों से अपराध उगलवाने के लिए क्रूर पद्धतियाँ ही प्रभावशाली होंगी, इस गलतफहमी को भी दूर करना जरूरी है। मनोवैज्ञानिक दबाव, अपराध स्वीकार करने के पश्चात गलतियों को सुधारने का मौका तथा फिर से जीवन प्रारम्भ करने का अवसर कल्याणकारी राज्य की भावना के अनुकूल हैं। साथ ही पेशेवर अपराधियों से टक्कर लेने के लिए हथियार तथा संयंत्र आवश्यक हैं।

पुलिस प्रशासन में विशेष दृष्टिकोण परिवर्तन की आवश्यकता है। जन सामान्य के साथ सहयोग तथा सहृदयता के व्यवहार के द्वारा वे पुलिस के प्रति विश्वास तथा आस्था जगा सकते हैं। अभी तो जनता के लिए यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि पुलिस उनकी रक्षक है या भक्षक। ऐसे अविश्वास तथा अनास्था के वातावरण को बदलने के लिए योजनाबद्ध प्रयास करने आवश्यक है। पुलिस प्रशासन में विशिष्टीकरण भी बहुत जरूरी है।

ग ह विभाग कई ऐसे दायित्वों के बोझ तले दबा है जिसका सीधा सम्बन्ध इस विभाग से नहीं है, उन्हें ग ह विभाग से अलग कर देना बेहतर होगा, तभी यह विभाग अपनी सम्पूर्ण चेतना, क्षमता तथा ऊर्जा को अपने मूलभूत कर्तव्यों के साथ सम्पादित करने में लगा सकेगा।

विभाग की सक्षमता को बढ़ाने के लिए अधिक वैज्ञानिक पद्धतियों के उपयोग की आवश्यकता है। इसके लिए समय-समय पर नवीन शोध होते रहने चाहिए।

नीति निर्माण के स्तर पर सम्बन्धित विभागों के विशेषज्ञों की राय लेना सार्थक होगा तभी कुछ व्यावहारिक सुझाव तथा कठिनाइयों से उबरने के वास्तविक रास्ते ज्ञात हो सकेंगे।

नीति निर्माण के स्तर पर सम्बन्धित विभागों के विशेषज्ञों की राय लेना सार्थक होगा तभी कुछ व्यावहारिक सुझाव तथा कठिनाइयों से उबरने के वास्तविक रास्ते ज्ञात हो सकेंगे।

संक्षेप में ग ह विभाग को अपनी दक्षता एवं निष्पत्ति सुधार हेतु निम्नलिखित उपायों को प्राथमिकता देनी चाहिए:

- उभरती चुनौतियों को देखते हुए योग्य पुलिस अधिकारियों एवं कर्मचारियों की संख्या में आवश्यक वृद्धि।
- कुशलता-वृद्धि हेतु आवश्यक प्रशिक्षण का प्रबन्ध।
- दृष्टिकोण परिवर्तन एवं पुलिस कर्मियों में मानव अधिकारों के प्रति अधिक संवेदनशीलता हेतु आवश्यक प्रशिक्षण।
- साम्प्रदायिक तनाव को दूर करने एवं पारस्परिक सहिष्णुता के वातावरण को बनाने हेतु सामाजिक, सांस्कृतिक एवं स्थानीय स्थानीय संस्थाओं व समूहों के साथ तालमेल रखना।
- सीमा सुरक्षा हेतु कड़े प्रबन्ध करना तथा इस सम्बन्ध में केन्द्र सरकार की संस्थाओं से पूर्ण सहयोग अर्जित करना।
- घुसपैठियों, अपराधी तत्त्वों तथा राष्ट्र-विरोधी शक्तियों को विवेक एवं बल से नियन्त्रित करना।
- कारागृहों को मानवीय बनाना तथा पूर्व-कैदियों को नवजीवन आरम्भ करने हेतु सुविधाएँ तथा प्रोत्साहन प्रदान करना।
- विभिन्न विकास विभागों के साथ समन्वय स्थापित कर, राज्य के बहुआयामी विकास की प्रक्रिया में योगदान करना।

आवश्यकता है कि ग ह विभाग दूरदर्शितापूर्ण परिवर्तन एवं सार्वजनिक क्षमता का प्रतीक बने।

## अध्याय-23

# श्रम एवं कल्याण विभाग, हरियाणा

## (Labour and Welfare Department, Haryana)

हरियाणा श्रम विभाग की स्थापना नवम्बर, 1966 में, हरियाणा राज्य की स्थापना के साथ ही हुई। इसकी प्रशासनिक संरचना लगभग पूर्ववर्ती राज्य पंजाब के श्रम विभाग के समान ही थी। केन्द्रीय श्रम मंत्रालय के समान ही यह एक त्रि-स्तरीय संगठन है जिसमें रजनीतिक स्तर, सचिवालय एवं श्रम आयुक्त का कार्यालय है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय कार्यालय एवं परामर्श समितियाँ और बोर्ड हैं जिनका निर्माण हरियाणा सरकार द्वारा समय-समय पर किया गया है जिनका कार्य श्रम मुद्दों एवं समस्याओं पर सलाह एवं सुझाव देना है।

राजनीतिक स्तर (The Political Level) श्रम एवं कल्याण मंत्रालय का मुखिया मंत्री होता है जोकि विभाग सम्बन्धी नीति और योजना के निर्माण तथा कार्यान्वयन के विषय में दिशा निर्देश के लिए उत्तरदायी होता है। विभाग पर उसका सम्पूर्ण नियन्त्रण एवं सर्वेक्षण होता है क्योंकि विधान सभा में विभाग की एवं विभाग सम्बन्धी पूछे जानेवाले प्रश्नों के प्रति उत्तरदायी होता है। श्रम मंत्री भारतीय श्रम मंत्री द्वारा बुलाई जानेवाली श्रम सम्मेलनों में भाग लेता है और श्रम नीति एवं समस्याओं सम्बन्धी विचार एवं सुझाव रखता है।

**सचिवालय (The secretariat):** श्रम विभाग को सचिवालय सहायता प्रदान करने हेतु एक सचिवालय होता है जिसका प्रशासनिक मुखिया श्रम सचिव होता है जो कि अखिल भारतीय सेवा का वरिष्ठ सदस्य होता है। उसकी सहायताार्थ एक उपसचिव, सुपरिटेण्डेंट और अन्य स्टाफ होता है सचिव के कार्य:

1. वह श्रम मंत्री का मुख्य सलाहकार होता है।
2. श्रम नीति एवं उच्च वैधानिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति में सलाह एवं परामर्श देता है।
3. श्रम एवं श्रम प्रशासन के मुद्दों पर तथ्य एवं सूचना उपलब्ध कराता है।
4. विभाग के कार्यप्रणाली का निरीक्षण कार्य करता है।

**कार्यपालिका (The executive):** श्रम नीति, श्रम कानून, नियम व विनियमों को लागू करना विभाग के कार्यपालिका अंग का कर्तव्य है। इस अंग का मुखिया श्रम आयुक्त है जो कि अखिल भारतीय सेवा का सदस्य होता है। जिसकी सहायताार्थ संयुक्त श्रम आयुक्त, उप श्रम आयुक्त, अतिरिक्त निदेशक, उप निदेशक, असिस्टेंट निदेशक, प्रशासकीय अधिकारी विधि निरीक्षक होते हैं इनके अतिरिक्त विभागीय स्टाफ एवं क्षेत्रीय स्टाफ भी उपलब्ध होता है।

श्रम आयुक्त का कार्यालय श्रम विंग एवं फैंक्टरी विंग के माध्यम से कार्य संचालन करता है श्रम विंग के छः भाग हैं।

**विवाद भाग (Disput Section)** इस भाग का इंचार्ज संयुक्त श्रम आयुक्त, श्रम विभाग, हरियाणा होता है। यह भाग औद्योगिक विवादों के मामले देखता है। कर्मचारियों एवं श्रम संघों की विभिन्न शिकायतें जैसे अन्यायपूर्ण कार्य से निकालना, धरना, बंद, हड़ताल आदि भी इसी अंग द्वारा देखे जाते हैं।

इस कार्य में क्षेत्रीय स्टाफ की भी सहायता ली जाती है। क्षेत्रीय स्टाफ शिकायत की छान-बीन के पश्चात रिपोर्ट भेजता है यह इकाई रिपोर्ट की निरीक्षण के पश्चात दोषी के विरुद्ध कदम उठाता है। इस प्रकार इस भाग द्वारा औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 तथा बँधुआ श्रम (निवारण) अधिनियम 1976 का कार्यान्वित किया जाता है।

**कार्यान्वयन भाग (Implementation Section) :** इस भाग का प्रमुख उप श्रम आयुक्त होता है। जिसके सहायतार्थ एक सहायक, निरीक्षक और लिपिकीय स्टाफ तथा क्षेत्रीय स्टाफ होता है। इस भाग का मुख्य कार्य समझौतों का सम्बन्धित समूहों (विवादित समूह कार्मिक एवं नियोक्ता उदाहरणस्वरूप कर्मचारी एवं सरकार) द्वारा सही पालन का विश्वास दिलाना है।

यदि ऐसा समझौता विवादित समूहों द्वारा पालन नहीं किया जाता तो सरकार इसे श्रम न्यायलय या औद्योगिक ट्रिब्यूनल में भेज देती है। जिसका फैसला बाध्यकारी होता है समझौतों को न मानने की शिकायतें, आचार संहिता का उल्लंघन, अनुशासहीनता के मामले इस अंग द्वारा देखे जाते हैं जोकि आगे कार्यवाही के लिए अपनी रिपोर्ट सरकार को भेजता है। यह अंग विभिन्न अधिनियम जैसे न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948, पंजाब औद्योगिक ग ह अधिनियम 1956 आदि को कार्यान्वयन भी देखता है।

**बजट और लेखा भाग (Budget and Accounts Section) :** इस भाग का मुखिया एक प्रशासनिक अधिकारी होता है तथा एक मुख्य सहायक, निरीक्षक तथा लिपिकीय स्टाफ सहायतार्थ होते हैं। इस भाग का मुख्य कार्य विभाग का बजट तैयार करना है। साथ ही लेखा तैयार करना भी इस भाग का महत्वपूर्ण कार्य है।

**सांख्यिकी भाग (Statistical Section) :** यह विभाग सांख्यिकी अधिकारी (श्रम) की अध्यक्षता में कार्य करता है जिसके सहायतार्थ मुख्य सांख्यिकी असिस्टेंट, सांख्यिकी असिस्टेंट्स कनिष्ठ सांख्यिकी असिस्टेंट, कम्प्यूटर और इसका स्टाफ होता है। यह अंग श्रम से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं जैसे पंजीकृत ट्रेड यूनियन, उनकी सहायता, औद्योगिक विवादों की संख्या, सुलझे/अनसुलझे विवादों की संख्या, न्याय निर्णय के लिए भेजे विवादों की संख्या, कार्य समितियों की संख्या, दुर्घटनाओं की संख्या, मुआवजे की राशि, श्रम कल्याण केन्द्रों की संख्या आदि के विषय में तथ्य एकत्र करता है। यह अंग अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन से सम्बन्धित कार्यों एवं श्रम कानूनों के कार्यान्वयन के लिए भी उत्तरदायी है।

**स्थापन भाग (Establishment Section) :** इस भाग का प्रमुख एक प्रशासकीय अधिकारी होता है जिसकी सहायता हेतु मुख्य सहायक और लिपिकीय स्टाफ होता है यह अंग श्रमिक भर्ती स्टाफ, नियुक्ति, स्थानांतरण, पदोन्नति, पदावनति, प्रशिक्षण, छुटी, वेतन व द्वि, पेंशन, सेवा नियुक्ति आदि के मामलों से सम्बन्धित है।

**विविध भाग (Miscellaneous Section) :** 1980 में इस नए भाग का गठन किया गया जिससे अन्य भागों के कार्यों पर भी प्रभाव पड़ा। इसका मुखिया संयुक्त श्रम आयुक्त होता है तथा उप श्रम आयुक्त (मुख्य कार्यालय), एक सुपरिटेण्डेंट और अन्य स्टाफ इस की सहायता हेतु होता है। यह भाग का मुख्य निम्न मामलों से सम्बन्धित है:

ट्रेड यूनियन एक्ट, 1926; वेतन भुगतान एक्ट, 1936; श्रमिक मुआवजा अधिनियम, 1923; मोटर ट्रांसपोर्ट अधिनियम, 1961; ग्रेज्यूटी अधिनियम, 1965; जर्नलिस्ट अधिनियम, 1955; चिल्ड्रन एक्ट, 1938; चाइल्ड लेबर (निरोधक एवं नियमन) अधिनियम 1986, समान पारिश्रमिक प्रबन्धन में श्रमिक सहभागिता, बैठकों एवं सम्मेलन, श्रम कल्याण केन्द्र एवं शिशुग ह आदि।

**फैक्टरी भाग (Factory Section) :** श्रम आयुक्त फैक्टरीज का मुख्य निरीक्षक होता है तथापि एक अतिरिक्त निदेशक, औद्योगिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य, इस भाग का इन्चार्ज होता है। इस भाग के अधिकारी में इससे संबंधित अनिवार्य तकनीकी योग्यताएँ होती हैं इसके अतिरिक्त उप निदेशक, औद्योगिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य, सहायक निदेशक, सर्जन और वरिष्ठ सहायक निदेशक एवं अन्य स्टाफ भी सहायतार्थ होता है।

इस भाग का मुख्य कार्य फैक्टरी अधिनियम, 1948 के कार्यान्वयन से है। क्षेत्रीय स्टाफ इस अधिनियम के उपबंधों के अनुकरण को देखता है और यदि इसका उल्लंघन पाया जाता है तो रिपोर्ट इस भाग के पास भेजी जाती हैं। फैक्टरियों का पंजीकरण, लाइसेंस रद्द एवं नवीनीकरण इस भाग का कार्य है। इसी भाग द्वारा प्रसूति अधिनियम, 1961 का कार्यान्वयन भी देखा जाता है।

**एडिटर (Editor) :** इस भागों के अतिरिक्त मुख्य कार्यालय पर एक एडिटर भी नियुक्त किया जाता है जो हरियाणा लेबर जर्नल का प्रकाशन का कार्य देखता है।

**पुस्तकालय (Library) :** विभाग के मुख्य कार्यालय पर एक पुस्तकालय भी होता है जहाँ I.L.O. प्रकाशन, लेबर जर्नल एवं

पुस्तकें उपलब्ध हैं।

ये समस्त भाग मुख्यतया स्टॉफ कार्य करते हैं जैसे रिकार्ड रखना, पत्राचार करना, सांख्यिकी तथ्य संग्रह, बजट तैयार एवं समन्वय, क्षेत्रीय स्टॉफ को सूचना एवं निर्देशन भेजना, नियमों की व्याख्या, क्षेत्रीय स्टॉफ द्वारा भेजी रिपोर्ट का अध्ययन, कार्मिकों नियोक्ताओं एवं जनता की शिकायत प्राप्त करना, विभिन्न श्रम समस्याओं पर नोट तैयार करना ताकि विभाग उन पर विचार कर सके। साथ ही यह विभाग क्षेत्रीय स्टॉफ की भी उनके सुचारु कार्य संचालन में सहायता करता है।

उपरोक्त भागों के अतिरिक्त कुछ क्षेत्रीय संगठन एवं परामर्शदात्री समितियाँ एवं बोर्ड भी कार्य सम्पादन के लिए स्थापित किए गए हैं।

श्रम नीति एवं कानूनों के सही कार्यान्वयन एवं श्रम समस्याओं के समाधान के लिए श्रम भाग एवं फैक्टरी भाग के कार्यान्वित क्षेत्र है जैसे:-

क्षेत्र	सर्किल
फरीदाबाद	फरीदाबाद
पानीपत	पानीपत, करनाल, रोहतक, झज्जर
हिसार	हिसार, सिरसा, भिवानी, रेवाड़ी
गुड़गाँव	गुड़गाँव
हिसार	हिसार, सिरसा, भिवानी, जींद और रोहतक

फैक्टरी भाग भी तीन क्षेत्रों के माध्यम से कार्य करता है।

क्षेत्र	सर्किल
पानीपत	पानीपत, करनाल, अम्बाला, यमुनानगर, सोनीपत
फरीदाबाद	फरीदाबाद
गुड़गाँव	हिसार, रोहतक, झज्जर, भिवानी और गुड़गाँव

### परामर्शदात्री बोर्ड और समितियाँ

#### (Advisory Boards and Committees)

1. राज्य श्रम सलाहकार बोर्ड (State Labour Advisory Board)
2. न्यूनतम वेतन सलाहकार बोर्ड (Minimum Wages Advisory Board)
3. राज्य श्रम परामर्शदात्री बोर्ड (State Labour Advisory Board)
4. राज्य मूल्यांकन एवं कार्यान्वयन समिति (State Evaluation and Implementation Committee)
5. ईंट-भट्टा पर सलाहकार समिति (Advisory Committee on Brick Kiln)
6. राज्य पदामर्शदात्री प्रवासी श्रम बोर्ड (State Advisory Migrant Labour Board)
7. औद्योगिक श्रमिक गृह समिति (Committee on Housing for Industrial Worker)
8. श्रम एवं रोजगार विभाग की विभागीय परामर्शदात्री समिति (Department of consultative Committee for Labour and Employment Department)
9. महिला एवं शिशु सलाहकार समिति (Advisory Board on Women and Child Welfare)
10. समान पारिश्रमिक सलाहकार समिति (Equal Remuneration Advisory Committee)
11. हरियाणा श्रम कल्याण बोर्ड (Haryana Welfare Labour Board)

**हरियाणा सुरक्षा परिषद् (Haryana Safty Council) :** इस परिषद् का मुखिया श्रमायुक्त हरियाणा होता है। इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:-

1. औद्योगिक श्रमिकों के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के साधनों का संगठन एवं मागदर्शन
2. औद्योगिक सुरक्षा के साधनों के विकास व प्रचार के लिए प्रशिक्षण, लेक्चर, सम्मेलनों, संमिनारों का आयोजन

**कार्य (Functions) :** हरियाणा श्रम विभाग के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं:-

1. श्रम नीति का निर्माण,
2. श्रम कानूनो का कार्यान्वयन,
3. औद्योगिक श्रमिकों को कार्य स्थान पर औद्योगिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य का विश्वास दिलाना
4. कार्मिकों के कल्याण के लिए विभाग एवं श्रम कल्याण बोर्ड द्वारा विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं का कार्यान्विति,
5. कार्मिकों का सामाजिक, आर्थिक और नैतिक सुरक्षा प्रदान करना,
6. संगठित एवं असंगठित श्रम का न्यूनतम मूल्य का विश्वास दिलाना,
7. औद्योगिक विवाद निपटाना,
8. उद्योगों में एक संवादी वातावरण तैयार करना, और
9. बालश्रम, बंधुआ मजदूरी जैसी सामाजिक कुरीतियों को दूर करना ।

इस प्रकार श्रम विभाग एवं क्षेत्रीय संस्थाएँ औद्योगिक शांति एवं कल्याण की संवृद्धि के लिए प्रयासरत हैं जिससे श्रमिक एवं प्रबन्धक दोनों के आर्थिक विकास के साथ-साथ हरियाणा प्रांत भी औद्योगिक विकास एवं शांति के मार्ग पर अग्रसर हैं।

# Unit IV

## अध्याय-24

### डिविजनल कमिश्नर

#### (Divisional Commissioner)

जिला भारतीय प्रशासन की प्रमुख इकाई है। इसी स्तर पर जनता का प्रत्यक्ष रूप से सरकार से सम्पर्क होता है और इसी स्तर पर प्रशासन की क्षमता को अनुभव किया जा सकता है। प्रत्येक राज्य के प्रशासन को चलाने के लिए उसे जिलों में विभाजित किया गया है तथा जिला के क्षेत्र में लोक-कार्यों के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व जिला प्रशासन पर होता है।

#### डिवीजनल कमिश्नर (Divisional Commissioner)

जिला तथा राज्य स्तर के मध्य में डिवीजन (Division) की स्थापना की गई है। यद्यपि इस स्तर पर भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रकार की शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई है तथापि अधिकांश राज्यों में जिला प्रशासन में समन्वय और नियन्त्रण करने के लिए राज्यों को डिवीजनों में विभक्त किया गया है। डिवीजन का मुख्य अधिकारी कमिश्नर (Commissioner) होता है। इस पद की सर्वप्रथम व्यवस्था 1829 में की गई जब लार्ड विलियम बेंटिक (Lord William Bentick) के काल में सरकार ने क्लैक्टर, जिला न्यायधीश तथा जिला दण्ड अधिकारी के निरीक्षण के लिए राजस्व कमिश्नर (Commissioner of Revenue) की नियुक्ति की। तभी से यह पद क्षेत्र स्तर पर राज्य सरकार तथा जिला प्रशासन के मध्य में विद्यमान हैं। चाहे इस पद को समाप्त करने तथा बनाए रखने के बारे में समय पर विवाद होता रहा है परन्तु फिर भी तामिलनाडू, आन्ध्र प्रदेश, केरल तथा राजस्थान के राज्यों को छोड़ कर शेष सभी राज्यों में इस पद की व्यवस्था की गई। राजस्थान में इस पद को 1961 में समाप्त किया गया था, परन्तु वहां पर सीमा क्षेत्र (Border Areas) के लिए अभी भी इस पद की व्यवस्था विद्यमान है। इस पद पर पहले भारतीय असैनिक (I.C.S) के पदाधिकारियों को नियुक्त किया जाता था परन्तु अब राज्य में काम करने वाले भारतीय प्रशासकीय सेवाओं (I.A.S) के वरिष्ठ पदाधिकारियों को नियुक्त किया जाता है।

#### डिवीजनल कमिश्नर के कार्य (Functions of the Divisional Commissioner)

डिवीजनल कमिश्नर को प्रशासन में विशेष स्थान प्राप्त है। राजस्व प्रशासन (Revenue Administration) से सम्बन्धित सभी विषयों पर उसका पूर्ण नियन्त्रण होता है और उसे सरकार द्वारा बहुत सी शक्तियां प्रदान की गई हैं। वह जिला प्रशासन में समन्वय करने और सरकार की नीतियों को लागू करने के लिए एक कड़ी के रूप में कार्य करता है। विकेन्द्रीयकरण से सम्बन्धित राजकीय आयोग (Royal Commission on Decentralisation, 1906-09) के अनुसार, "उसे विशेष विभागों के उन कार्यों पर जो सामान्य प्रशासन अथवा लोक कल्याण को प्रभावित करें, नियन्त्रण करने का अधिकार होना चाहिए और उनके सम्बन्ध में उसका परामर्श लेना चाहिए जबकि उसे तकनीकी विवरण में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।" डिवीजनल कमिश्नर के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं-

1. **राजस्व प्रशासन (Revenue Administration)** - डिवीजनल कमिश्नर डिवीजन में राजस्व प्रशासन का मुख्य अधिकारी है। इस स्थिति में वह डिवीजन में राजस्व अधिकारियों का स्थानान्तरण (Transfers) करता है। डिवीजन का मुख्य अधिकारी होने के कारण वह जिलाधीश के आदेशों के विरुद्ध अपील सुनता है। वह भू-राजस्व तथा तकावी



- ऋण को इकट्ठा करता है। वह अपने अधीन ज़िलों के बजटों का निरीक्षण करता है तथा उसे राज्य सरकार को भेजता है।
2. **कानून और व्यवस्था बनाए रखना (Maintenance of Law and Order)** - डिविजनल कमिश्नर डिविजन में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है। इस कार्य के लिए वह ज़िला-दण्ड अधिकारी (District-Magistrate) तथा पुलिस सुपरिण्डेण्ट (Police Superintendent) को आदेश देता है और उन पर नियन्त्रण करता है। वह ज़िलाधीश से उसके ज़िले के सम्बन्ध में अपराधों (Crimes) तथा अव्यवस्था (Disorder) के बारे में रिपोर्ट मांग सकता है। कुछ राज्यों में पुलिस निम्नलिखित रिपोर्ट को डिविजनल कमिश्नर के समक्ष प्रस्तुत करती है-
    - (i) पुलिस सुपरिण्डेण्ट की साप्ताहिक रिपोर्ट, रोजनामचा
    - (ii) मासिक अपराध रिपोर्ट
    - (iii) वार्षिक पुलिस प्रशासन रिपोर्ट
  3. **ज़िला प्रशासन का निरीक्षण (Supervision of District Administration)** - यद्यपि ज़िला प्रशासन पर निरीक्षण एवं नियन्त्रण राज्य सरकार द्वारा किया जाता है परन्तु वास्तव में राज्य सरकार अधिक व्यस्त होने के कारण यह कार्य भली प्रकार से नहीं कर सकती। विशेषकर उत्तर प्रदेश जैसे बड़े-बड़े राज्यों में तो यह और भी कठिन है। ऐसी स्थिति में ज़िला प्रशासन पर निरीक्षण तथा नियन्त्रण करने पर उत्तरदायित्व डिविजनल कमिश्नर पर है। कमिश्नर ज़िलाधीश को कई प्रकार के प्रशासकीय आदेश दे सकता है और उससे प्रशासन के सम्बन्ध में रिपोर्ट मांग सकता है। वास्तव में डिविजनल कमिश्नर का ज़िला प्रशासन पर बहुत नियन्त्रण होता है तथा वह ज़िला प्रशासन और राज्य सरकार के बीच में कड़ी का काम करता है।
  4. **विभागीय समन्वय (Departmental Co-ordination)** - डिविजनल कमिश्नर को विभागीय समन्वय करने का अधिकार भी दिया गया है ताकि वह प्रशासन पर उचित ढंग से नियन्त्रण कर सके। यद्यपि डिविजन के स्तर पर विभिन्न विभागों के अधिकारी तकनीकी तौर पर स्वतन्त्र होते हैं, अपनी शक्ति का प्रयोग स्वतन्त्रापूर्वक करते हैं परन्तु सामान्य मामलों में तो डिविजनल कमिश्नर के निरीक्षण तथा नेतृत्व में काम करते हैं। कई बातों में ज़िला अधिकारी तथा डिविजनल विभागीय अधिकारी में कोई मतभेद हो जाए तो कमिश्नर निर्णय करता है जैसे यदि ज़िलाधीश तथा डिविजनल कमिश्नर निर्णय करता है।
  5. **विकासशील कार्य (Developmental Functions)** - वर्तमान काल में डिविजनल कमिश्नर के कार्यों तथा उत्तरदायित्व में विशेष रूप से वृद्धि हुई है। राज्य द्वारा विकासशील कार्यक्रम अनपाए जाने के कारण उसे इस क्षेत्र में भी दत्तचित होकर भाग लेना पड़ता है। वह इस बात की देखभाल करता है कि किस प्रकार से भिन्न-भिन्न प्रकार की विकासशील इकाइयाँ विकासशील योजनाओं को कार्यान्वित करती हैं। वह सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme) तथा राष्ट्र प्रसार सेवा (National Extension Service) के अन्तर्गत होने वाले कार्यों का निरीक्षण करता है, पंचायती राज को सफल बनाने के लिए प्रयास करता है तथा पदाधिकारी वर्ग और निर्वाचित सदस्यों में सद्भावना बनाए रखने के लिए उचित पग उठाता है। एक लेखक के अनुसार कमिश्नर को स्थानीय स्वशासन को सफल बनाने के लिए यत्नशील होना चाहिए तथा ज़िलाधीश एवं अन्य अधिकारियों और पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों में समतल सम्बन्ध बनाए रखने के लिए प्रयास करना चाहिए।  
इसके अतिरिक्त वह पंचवर्षीय योजनाओं को लागू करने और उन्हें सफल बनाने के लिए कई प्रकार के कार्य करता है।
  6. **नगरपालिका प्रशासन (Municipal Administration)** - राज्य म्युनिसिपल एक्ट के अधीन कमिश्नर को कई प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। इस क्षेत्र में वह निम्न प्रकार के कार्य करता है-
    1. द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी की नगरपालिकाओं के अध्यक्ष का निर्वाचन तथा सचिवों की नियुक्तियों को स्वीकृत करता है।
    2. वह राज्य सरकार के आधार पर नगरपालिका द्वारा नगर की सीमाओं से बाहर व्यय करने के लिए धन राशि

स्वीकृत करता है।

3. नगर प्रशासन के सम्बन्ध में ज़िलाधीश द्वारा दिए गए निर्णयों की अपील सुनता है।
4. यदि दो भिन्न ज़िलों में स्थापित दो नगरपालिकाओं में परस्पर झगड़ा हो जाए तो उसका निर्णय कमिश्नर द्वारा किया जाता है।
5. नगरपालिका में बहुत सी नियुक्तियां करने के लिए कमिश्नर की स्वीकृति लेना आवश्यक है।
6. प्रथम श्रेणी की नगरपालिकाओं के बजट को वह स्वीकृत करता है।  
कई राज्यों में कमिश्नर की नगरपालिका प्रशासन सम्बन्धी शक्तियों को समाप्त किया गया है।
7. **निरीक्षण (Inspection)** - कमिश्नर प्रशासकीय कुशलता बनाए रखने के लिए उपमण्डलों, तहसीलों, ज़िला कार्यालयों, जेलों, खजानों तथा पंचायती राज संस्थाओं का निरीक्षण करता है। कमिश्नर द्वारा निरीक्षण किए जाने के कारण सभी संस्थाएं कुशलता से कार्य करती हैं और प्रशासन में दक्षता बढ़ती है।
8. **विविध कार्य (Miscellaneous Functions)** - उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त कमिश्नर को और भी कई कार्य करने पड़ते हैं जिन में से मुख्य कार्य निम्न प्रकार हैं-
  - (i) वह ज़िलाधीशों उपमण्डल अधिकारियों (S.D.O) तथा तहसीलदारों आदि का वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन (Confidential Report) लिखता है और इन प्रतिवेदनों में अधिकारियों की कुशलता, चलन तथा चरित्र के बारे में अपने विचार प्रकट करता है।
  - (ii) बाढ़, अकाल तथा अन्य प्रकार के संकटकाल के समय वह ज़िलाधीशों की सहायता करता है और उनका नेतृत्व करता है।
  - (iii) बहुत सी समितियों का अध्यक्ष होता है। जैसे -गृह विभाजन समिति (House Allotment Committee), प्रादेशिक परिवहन सत्ता (Regional Transport Authority) आदि।

यदि कमिश्नर के उपरोक्त कार्यों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए तो यह प्रतीत होता है कि वह ज़िला प्रशासन में समन्वय लाने और प्रशासन को कुशल बनाने के लिए महत्वपूर्ण कार्य करता है। विभिन्न ज़िलों के प्रशासन में तालमेल करने का मुख्य साधन है तथा ज़िला प्रशासन और राज्य सरकार में कड़ी के रूप में काम करता है। परन्तु ऐसा होते हुए भी कई बार इस पद को समाप्त करने के बारे में विचार प्रकट किए जाते हैं। कुछ लोग इसे निरर्थक समझते हैं जबकि दूसरे कमिश्नर के निरीक्षण, नेतृत्व तथा समन्वय करने के कार्यों को विशेष महत्व देते हैं। दोनों प्रकार के विचार समय-समय पर प्रकट किए जाते रहे हैं। मध्य प्रदेश में इस पद को 1948 में समाप्त कर दिया गया था और 1956 में फिर से इस पद की स्थापना की गई। तामिलनाडू (Tamil Nadu) में इस पद की आवश्यकता को कभी भी अनुभव नहीं किया गया। बम्बई राज्य में इस पद को भी श्री मोरारजी देसाई ने सन् 1950 में समाप्त कर दिया परन्तु सन् 1958 में फिर से इसकी व्यवस्था की गई। बम्बई राज्य के विभाजन के पश्चात् गुजरात राज्य में सन् 1964 में इस पद को समाप्त कर दिया। सन् 1971 में हरियाणा राज्य में इस पद को समाप्त कर दिया गया। पंजाब सरकार पदाधिकारी एवं प्रशासकीय सुधार विभाग (Department of Personnel and Administrative Reforms) ने भी इसे समाप्त करने का सुझाव दिया। इस पद को समाप्त करने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं-

- (i) सरकार के कार्य में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण यह पद प्रभावशाली नहीं रहा।
- (ii) क्योंकि इस पद पर एक ज्येष्ठ (Senior) पदाधिकारी को नियुक्त करना पड़ता है इसलिए यह बहुत खर्चीला है।
- (iii) यह प्रशासकीय कुशलता के मार्ग में बाधा है और इससे कार्य करने की प्रक्रिया और कठिन हो जाती है।
- (iv) वास्तव में कमिश्नर कोई ठोस कार्य नहीं करता। वह राज्य सरकार तथा ज़िला प्रशासन के मध्य में केवल एक मध्यवर्ती के रूप में कार्य करता है। इससे कार्य करने में देरी होती है और काम की प्रक्रिया जटिल हो जाती है।
- (v) कमिश्नर प्रायः निरीक्षण का कार्य ही करता है यह कार्य विभागीय अधिकारी कुशलता से कर सकते हैं।
- (vi) यह राज्य सरकार और ज़िला प्रशासन तथा जनता के बीच परस्पर सम्बन्ध उत्पन्न होने में बाधा उत्पन्न करता है।

इन कारणों से प्रायः इस पद के विपक्ष में विचार प्रकट किए जाते हैं। परन्तु इन विचारों के होते हुए भी इस पद को बनाये रखने के पक्ष में भी निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं-

- (i) वह राज्य सरकार, जिला प्रशासन तथा जनता के बीच कड़ी का काम करता है।
- (ii) वह अपने लम्बे अनुभव के आधार पर जिलाधीश तथा अन्य जिला स्तर के पदाधिकारियों का मार्ग दर्शन करता है।
- (iii) कमिश्नर जिला प्रशासन में समन्वय करने का मुख्य साधन है। वह अपने अधीन भिन्न-भिन्न जिलों में परस्पर उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान करता है और विभिन्न प्रशासकीय विभागों के कार्यों का समन्वय करता है।
- (vi) उसकी उपस्थिति से प्रशासन में कुशलता उत्पन्न होती है। वह राज्य सरकार के सहायक के रूप में कार्य करता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य सरकार के दायित्व (Burden) को कम किया जाता है। सभी कार्य शीघ्र होते हैं। विकासशील कार्यक्रमों को कुशलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा सकता है।
- (v) राजस्व विभाजन में वह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह जिलाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनता है। जिला प्रशासन का निरीक्षण करता है और अपने अधीन जिलों के कार्यों में समन्वय करता है। यदि इस पद को समाप्त कर दिया जाए तो जिलाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने तथा राजस्व सम्बन्धित अन्य कार्य करने के लिए एक नवीन संस्था की स्थापना करनी पड़ेगी। यदि किसी और संस्था की स्थापना ही करनी है तो क्यों न इसी पद को सुरक्षित रखा जाए। इसी कारण कर्नाटक तथा कुछ अन्य राज्यों ने पहले इस पद को समाप्त कर दिया परन्तु बाद में दोबारा इसकी स्थापना की।

इस प्रकार दोनों प्रकार के तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कमिश्नर का प्रशासन में विशेष महत्त्व है। राजस्थान में चाहे इस पद को समाप्त कर दिया गया है, परन्तु वहां पर भी इसका विभागीय समन्वय के सम्बन्ध में महत्त्व को अभी भी आवश्यक समझा जाता है और इसके अभाव को अनुभव किया जा रहा है। इस पद को महत्त्व को अनुभव करते हुए राजस्थान प्रशासकीय सुधार समिति, 1963 (The Rajasthan Administrative Reforms Committee, 1963) ने कहा है "सरकार के भिन्न-भिन्न विभाग, विशेषकर वे विभाग जो विकासशील कार्यों में लगे हुए हैं, चाहे उनके कार्यों की प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न है, के कार्यों में सुमेल (Interlinked) हैं तथा बहुत सी ऐसी सामान्य समस्याएं हैं जिन की ओर तुरन्त ध्यान देने और उनका समाधान करने की आवश्यकता है.....मण्डलीय स्तर (Regional Level) पर यह तालमेल का काम कमिश्नरों द्वारा किया जाता था और उनके पदों की समाप्ति के कारण इस स्तर पर एक महत्वपूर्ण शून्यता (Vacuum) उत्पन्न हो गई हैं, जिसे अभी तक प्रभावशाली ढंग से भरा नहीं गया.....यह केवल एक अधिकारी (Officer) ही मण्डलीय समस्याओं तथा सरकार के विभिन्न विभागों की मंडल तथा जिला स्तर पर प्रतिवेदन के प्रशासन को समझ सकता है तथा उनकी कार्यप्रणाली में प्रभावशाली ढंग से तालमेल कर सकता है और अन्तर विभागीय समस्याओं का हल (Solution) ढूंढ सकता है।" प्रशासकीय सुधार आयोग (Administration Reforms Commission) ने भी कमिश्नर के पद को बनाए रखने के पक्ष में सुझाव दिया। जिला प्रशासन सम्बन्धी अध्ययन समिति (Study Team of District Administration) के अनुसार कम से कम बड़े राज्यों के लिए कमिश्नर का पद आवश्यक प्रतीत होता है। उसे राज्य के संगठन में विशेष स्थान प्रदान करना चाहिए और उसे पर्याप्त शक्तियां प्रदान करके प्रभावशाली बनाना चाहिए।

## अध्याय-25

# जिलाधीश या कलेक्टर (District Collector)

जिला अधिकारियों में सर्वाधिक शक्तिशाली पद जिलाधीश या कलेक्टर का है। उसे जिले का शीर्षस्थ अधिकारी माना जाता है। उसे जिले में विकास का प्रतीक माना जाता है। वह जिले में बहुमुखी गतिविधियों का संचालन करता है।

### जिलाधीश पद का विकास

जिला अधिकारियों में सर्वाधिक शक्तिशाली अधिकारी जिलाधीश (कलेक्टर) है। वर्तमान में वह जिले का इस प्रकार प्रतिनिधित्व करता है कि जैसे सम्पूर्ण सरकार उसी में समाहित है। मुगलकाल में भी जिलाधीश स्तर का अधिकारी प्रशासन का आधार-स्तम्भ था। ब्रिटिश काल में भी इसका अस्तित्व देखा जा सकता है। इस पद की महत्ता को जानते हुए ही ब्रिटिश प्रशासकों ने समय-समय पर इस पद को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया था। सन् 1770 में रॉबर्ट क्लाइव ने कलेक्टर पद को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया, यद्यपि यह केवल प्रयास ही रहा। सन् 1781 में कंपनी शासन ने फौजदार का पद समाप्त कर उसका कार्यभार कलेक्टर को सौंपकर इस पद को पुनर्गठित किया। सन् 1793 में कार्नवालिस ने इस पद की कुछ शक्तियाँ छीन कर इसे पहले जितना शक्तिशाली न रहने दिया। बाद में 1812 में होल्ड मैकेन्जी ने तथा 1833 में विलियम बैंटिक ने कलेक्टर के पद को फिर से सशक्त बनाने के प्रयास किए। सन् 1880 में फेमिन कमीशन ने कलेक्टर के पद को एक समन्वयकारी शक्ति बनाने हेतु इस संस्था को अधिक शक्तिशाली बनाने की सिफारिश की थी। सन् 1919 में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी यह पद काफी महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली रहा। सन् 1935 के अधिनियम के द्वारा भी कलेक्टर के पद को शक्तिशाली बनाने की सिफारिश की गई। सन् 1944 में रोलेट्स कमेटी द्वारा इस पद को प्रतिष्ठावान बनाने की सिफारिश की गई। सम्पूर्ण अंग्रेजी शासन काल में जिला स्तर पर कलेक्टर केन्द्रीय शक्ति के रूप में कार्यकर्ता रहा जो कि जिले की समस्त क्रियाओं को समन्वित करता था। उसकी महत्ता के लाखों शब्द वायसरायों, गवर्नरों तथा शोधकर्ताओं द्वारा लिखे गए हैं। ब्रिटिश शासन काल में कलेक्टर का पद सत्ता, सम्मान, गौरव एवं भय का पद था। इसकी व्यापक शक्तियों के आतंक के कारण यह जिले की जनता के लिए सर्वोत्तम था। जिला स्तर पर यह सरकार की समस्त शक्तियों का उपयोग किया करता था। साइमन कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया था कि प्रत्येक जिले की शासन व्यवस्था के शीर्ष पर एक अधिकारी होता है जिसे कुछ प्रान्तों में कलेक्टर तथा कुछ प्रान्तों में डिप्टी कलेक्टर के नाम से जाना जाता है। जिले के अधिकांश निवासियों की नजरों में यह सरकारी अधिकारी होता था। ब्रिटिश शासन काल में कलेक्टर की शक्तियाँ पर्याप्त रूप में बदलती रहने के बावजूद भी स्थानीय शासन में उसका योगदान महत्त्वपूर्ण बना रहा।

भारत में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद कलेक्टर के पद के महत्त्व तथा स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है। लोकतान्त्रिक शासन-व्यवस्था में कलेक्टर जनता का सेवक बन गया है। ऐसी स्थिति में कलेक्टर के कार्यों की प्राथमिकताएँ पूर्णरूपेण बदल गई हैं। पहले कानून और व्यवस्था की स्थापना करना उसका प्रमुख कार्य था, किन्तु अब उसके लिए विकास तथा जन-कल्याण से संबंधित कार्य महत्त्वपूर्ण बन गये हैं। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण तथा विकासशील राष्ट्र की अपेक्षाओं ने उसके कार्यों को नई महत्ता प्रदान की है जिससे कलेक्टर का कार्य समन्वय के क्षेत्र में बहुत अधिक बढ़ चुका है वह जिला प्रशासन में मुख्य समन्वयकर्ता की भूमिका का निर्वाह करता है। कलेक्टर की स्थिति में वर्तमान समय में जो परिवर्तन आया है उसके दो रूप हैं - प्रथम, प्रजातन्त्र का विस्तार गाँवों तथा अविकसित क्षेत्रों की ओर हुआ है जिसके कारण निर्णय लेने की प्रक्रिया में

अधिक से अधिक व्यक्ति भाग लेने लगे हैं। प्रजातंत्र में इस प्रकार से प्रशासक वर्ग तथा राजनीतिज्ञों में पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया बढ़ी है। द्वितीय, पंचायती राज तथा विकास प्रशासन को चलाने का नया उत्तरदायित्व जुड़ जाने के कारण जिला प्रशासन में कलेक्टर का नियन्त्रण, पर्यवेक्षण तथा समन्वयक का पद अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है अर्थात् परिवर्तित परिस्थितियों ने कलेक्टर की सत्ता, कर्तव्यों एवं दायित्वों को नई दिशाएँ प्रदान की है।

सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवेश के पर्यावरण में जब परिवर्तन आ रहा है तो जिलाधीश इस परिवर्तन से अछूता नहीं बच सकता है। फिर भी यह निर्विवाद तथ्य है कि जिले में जिलाधीश अपनी पूर्ववर्ती स्थिति को काफी सीमा तक बनाये हुए है, साथ ही नई चुनौतियाँ, नये दायित्व भी उसमें जुड़ गये हैं। ऐसे में जिलाधीश के पद का महत्त्व बढ़ा ही है।

## भूमिका

वर्तमान में जिलाधीश जिन भूमिकाओं का निर्वाह करता है उनका निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचन किया जा सकता है -

1. राजस्व वसूली कार्य
2. न्यायिक अधिकारी के रूप में
3. समन्वयक के रूप में
4. संकटकालीन प्रशासक की भूमिका
5. विकास अधिकारी का दायित्व
6. विविध भूमिकाएँ।

### राजस्व वसूली कार्य

जिलाधीश की प्रमुख भूमिका आज भी संग्रहकर्ता (समाहर्ता) की है, जैसी कि पूर्व में हुआ करती थी। राजस्व तथा अन्य कर जमा करना उसका प्रमुख दायित्व है। वस्तुतः "कलेक्टर" शब्द का निहितार्थ ही है - जमाकर्ता। राजस्व प्रशासन का प्रधान होने के नाते भूमि राजस्व का मूल्यांकन तथा संग्रहण उसी का दायित्व है। साथ ही बकाया राशि की समय रहते वसूली भी आवश्यक है। यदि समय में ढिलाई बरती जाये तो फिर वसूली अत्यधिक कठिन हो जाती है। सरकारी ऋण कई प्रकार के होते हैं जिनकी वसूली का दायित्व जिलाधीश का है। कतिपय ऋण हैं- सिंचाई ऋण, कृषि ऋण, नहर ऋण, तकवी ऋण इत्यादि। सिंचाई विभाग बकाया राशि वसूली के लिए सूची तैयार करता है तथा जिलाधीश को भेजता है ताकि जिलाधीश द्वारा उस राशि की वसूली की जा सके। आयकर यद्यपि केन्द्रीय सरकार का दायित्व है तथापि पिछले बकाया (एरियर्स) की वसूली का कार्य जिलाधीश को सौंपा जा सकता है। बिक्री कर के एरियर्स का संग्रह करना भी उसका काम है। विभिन्न न्यायिक प्रक्रियाओं में न्यायिक दस्तावेजों पर लगने वाले रेवेन्यू स्टाम्प के रूप में शुल्क भी उसी के क्षेत्राधिकार में आता है। इस प्रकार जिला उत्पाद अधिकारी द्वारा पेट्रोल, शराब, नशीले पदार्थ आदि पर कर लगाये जाते हैं। यह उत्पाद अधिकारी जिलाधीश के अधीन ही कार्य करता है। खेती के कार्यों में सहायता के लिए तकवी ऋण दिये जाते हैं जिनकी वसूली जिलाधीश का क्षेत्राधिकार है। कृषि सम्बन्धी कार्यों पर नुकसान का अनुमान लगाना तथा मदद की राशि तय करना आवश्यक है। अन्य अधिकारियों के साथ जिलाधीश भी इस कार्य से जुड़ा होता है। ऊपर जिन ऋणों की चर्चा की गई है वे ऋण कई बार परिस्थितिजन्य कारणों से वसूल नहीं हो पाते। ऐसे में उन ऋणों में छूट के सम्बन्ध में राज्य सरकार से सलाह मशवरा करना उसका दायित्व है। वस्तुतः ग्रामीण विकास के कार्यों को क्रियान्वित करने में वह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तकवी ऋणों का भुगतान, किसानों को बीज बाँटना, पशुओं तथा खेतिहर उपकरणों को मुहैया करना, दुर्भिक्ष जैसी आपात स्थिति में सहायता प्रदान करना सभी जिलाधीश के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। इन सभी कार्यों के सम्पादन में उसकी दक्षता, उसके व्यक्तित्व एवं दृष्टिकोण का परीक्षण हो जाता है।

जिलाधीश का एक और महत्त्वपूर्ण कार्य भूमि अधिग्रहण का है। कई विकास कार्य यथा गृह निर्माण, सड़क निर्माण, रेल पटरियाँ बिछाने आदि के लिए भूमि अधिग्रहण की आवश्यकता होती है। इण्डियन ट्रेजर ट्रॉव एक्ट के अन्तर्गत जिलाधीश इन कार्यों के

लिए भूमि अधिग्रहण के लिए अधिक त है। जिला कोषागार उसी के अधिकार क्षेत्र में आता है तथा कोषाधिकारी उसके अधीन कार्य करता है। जिलाधीश समय-समय पर इनका निरीक्षण करता है तथा एक महालेखापाल को उसकी सूचना देता है। उसी के आधार पर कोषाधिकारी द्वारा दी गई विस्तृत सूचनाओं का मिलान किया जाता है।

भूमि अभिलेखों को तैयार करना तथा आगे के लिए सुरक्षित रखना जिलाधीश के महत्वपूर्ण दायित्वों में से एक है। भूमि परिमाण, भूमि विवादों का निपटारा तथा भूमि सुधार कानूनों को लागू करना तथा नज़ल भूमि का प्रशासन उसके दायित्व क्षेत्र में आते हैं। वह न केवल भूमि सम्बन्धी अभिलेखों तथा सूचनाओं को सुरक्षित रखता है अपितु समय-समय पर उनका पुनरीक्षण करता है। उल्लेखनीय है कि भूमि विवादों को निपटाने के लिए भूमि सम्बन्धी सभी अभिलेखों का निरीक्षण करना आवश्यक होता है। जिलाधीश जिले में भू-सम्पत्ति, जंगल तथा जल संसाधनों का प्रबन्धक है। निचले न्यायालयों से आये राजस्व मामलों के निर्णयों के विरुद्ध सुनवाई का दायित्व भी जिलाधीश का है।

चूंकि राजस्व का कार्य अति विस्तृत है, अतः जिलाधीश की सहायता हेतु बड़ी संख्या में अधिकारियों तथा कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। सामान्यतया यह कार्मिक उप-सम्भागीय अधिकारी, तहसीलदार, नायब तहसीलदार, पटवारी, कानूनगो तथा गिरदावर होते हैं। इस सम्बन्ध में सभी राज्यों में एकरूपता नहीं होती। उदाहरणार्थ, आन्ध्रप्रदेश में जिलाधीश की सहायता के लिए जिला राजस्व अधिकारी भी होते हैं जो कि भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी होते हैं। सिक्किम में उपजिलाधीश एवं राजस्व अधिकारी तथा दो राजस्व निरीक्षक होते हैं जो जिलाधीश को राजस्व सम्बन्धी दायित्वों के निर्वहन में मदद करते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में जनता जिलाधीश को "माई बाप" के रूप में देखती है, और उससे हर प्रकार की सहायता की अपेक्षा करती हैं। अतः जिलाधीश की प्रतिमा एक कल्याणकारी अधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। कीड़ों से खेती को हानि हो, अतिवृष्टि से फसल खराब हो, दुर्भिक्ष हो, या महामारी अन्य कोई संकट हो तो जिलाधीश को संकटमोचन की भूमिका निभानी पड़ती है। इस दृष्टि से ग्रामीण जनता के लिए जिलाधीश एक मसीहा है जो दुख-दर्द में उसका साथ देने वाला अभिभावक एवं संरक्षक है। इन समस्त दायित्वों का निर्वहन करते समय जिलाधीश राष्ट्रीय एवं सरकारी हितों की सुरक्षा का भी पूर्ण ध्यान रखता है।

### न्यायिक अधिकारी के रूप में

जिले के न्यायिक अधिकारी के रूप में जिलाधीश की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। शान्ति व व्यवस्था बनाये रखना जिलाधीश का एक प्रमुख दायित्व है। आज के माहौल में जहाँ आतंकवाद, धार्मिक द्वन्द्व, साम्प्रदायवाद, जातिवाद, अनास्था, अविश्वास, राजनीतिक अवसरवादिता जैसी समस्याएँ मुँह बायें खड़ी हैं, जिलाधीश का दायित्व गम्भीर भी हो जाता है तथा महत्वपूर्ण भी। इस दृष्टि से तीन विभागों या क्षेत्रों का नियन्त्रण आवश्यक है - पुलिस, न्यायिक तथा जेल।

जहाँ तक पुलिस विभाग का सम्बन्ध है उसका अपना एक संरचनात्मक स्वरूप है। पुलिस अधीक्षक जिले के पुलिस प्रशासन के लिए उत्तरदायी हैं, जो कि अपने कार्यों के लिए रेंज के पुलिस उप-महानिरीक्षक के प्रति उत्तरदायी हैं लेकिन कुछ प्रतिबन्धों को छोड़ कर पुलिस अधीक्षक के ऊपर कार्यात्मक नियन्त्रण जिला मजिस्ट्रेट का भी रहता है। व्यवहार में जिला मजिस्ट्रेट तथा पुलिस अधीक्षक दोनों परस्पर सहयोग एवं समन्वय से कार्य करते हैं। उनकी टीम भावना पर ही जिला प्रशासन की प्रभावशीलता निर्भर करती है। किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि संकटपूर्ण अथवा आपातस्थितियों में पुलिस को जिला मजिस्ट्रेट के आदेश पर कार्य करना पड़ता है। पुलिस अधिनियम की धारा 254 के अन्तर्गत जिला पुलिस प्रशासन पुलिस अधीक्षक का दायित्व है। तथापि जिला मजिस्ट्रेट पुलिस डायरी, पुलिस कर्मचारियों तथा पुलिस स्टेशन का निरीक्षण कर सकता है। पुलिस प्रशासन का वार्षिक प्रतिवेदन, जो कि पुलिस अधीक्षक के द्वारा तैयार किया जाता है, भी जिला मजिस्ट्रेट के माध्यम से भेजा जाता है। किन्तु यह व्यवस्था अलग-अलग राज्यों में भिन्न है। राजस्थान में पुलिस अधीक्षक के वार्षिक निष्पत्ति प्रतिवेदन पर अपनी टिप्पणी देने से पूर्व, मुख्य सचिव सम्बन्धित जिला कलक्टर तथा मजिस्ट्रेट से सम्मति मंगवा लेता है।

जिला मजिस्ट्रेट तथा पुलिस अधीक्षक के सम्बन्ध कैसे हों, यह विवाद का विषय रहा है। यह विवाद नया नहीं है बल्कि इसकी जड़ें बहुत पुरानी हैं। यह विवाद का प्रश्न तब उठा जब 19वीं सदी के अन्त में जिला मजिस्ट्रेट के पद का प्रभाव अपने चरमोत्कर्ष

पर था तथा पुलिस अधीक्षक को उसका सहायक मात्र माना जाता था। भारतीय पुलिस आयोग (1902-1905) ने इस नियन्त्रण में थोड़ी ढिलाई की, अनुशांसा की तथा सुझाव दिया कि जिला मजिस्ट्रेट को पुलिस के दैनिक विभागीय प्रबन्ध तथा अनुशासन में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

यह स्वीकार किया जाता है कि जिला मजिस्ट्रेट की स्थिति एक नियन्त्रक की है। उत्तर प्रदेश पुलिस रेगुलेशन के अनुसार जिला मजिस्ट्रेट जिला फौजदारी प्रशासन का प्रमुख है और उस हैसियत के पुलिस के कार्यों को निर्देश देता है तथा नियन्त्रित करता है। पुलिस अधीक्षक जिला मजिस्ट्रेट को गम्भीर अपराधों के बारे में सूचित करता रहता है तथा जिले के अपराधों की सूचना समय-समय पर भेजता है। इस सम्बन्ध में जिला मजिस्ट्रेट पुलिस प्रशासन को समय-समय पर आदेश जारी करता है। त्योंहारों, जुलूसों के सम्बन्ध में भी वह पुलिस प्रशासन को आदेश जारी करता है। जिला मजिस्ट्रेट स्थानीय स्थितियों का जायजा लेता है, तदनुकूल कार्य योजना तथा कार्यनीति तैयार करता है। वह पुलिस अधिकारियों तथा कर्मचारियों के विरुद्ध लगाये गये आरोपों की जानकारी प्राप्त करता है तथा पुलिस द्वारा किये गये "अमानवीय" व्यवहारों की भी जाँच करता है।

उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के अतिरिक्त अन्य राज्यों में जिला मजिस्ट्रेट पुलिस का वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन लिखते हैं तथा अन्य राजपत्रित पुलिस अधिकारियों के गोपनीय प्रतिवेदन पर टिप्पणी लिखता है। कुछ राज्यों में यह व्यवस्था है कि पुलिस अधीक्षक यदि अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करता है तो वहाँ भी कुछ मामलों में जिला मजिस्ट्रेट हस्तक्षेप कर सकता है। कुछ पुलिस अधिकारियों के पदोन्नति के समय उनकी अनुशांसा का ध्यान रखा जाता है।

जब जिला पुलिस कानून व्यवस्था बनाये रखने में असमर्थ होती है तब जिला मजिस्ट्रेट स्पेशल आर्म्ड पुलिस फोर्स की सहायता की मांग करता है। यदि स्थिति ज्यादा विकट हो तो वह सैनिक सहायता की भी मांग कर सकता है।

जिला मजिस्ट्रेट के विस्तृत अधिकारों को देखते हुए यह आशंका बनी रहती है कि कहीं वह पुलिस प्रशासन में अनावश्यक हस्तक्षेप न करे। कई बार उसके नियन्त्रणकारी कार्यों को हस्तक्षेप का नाम दे दिया जाता है। कलकत्ता, मुम्बई, चेन्नई तथा दिल्ली जैसे महानगरों में कानून तथा व्यवस्था का दायित्व पुलिस आयुक्त का है न कि जिला मजिस्ट्रेट का। 1961 ई. में बिहार पुलिस आयोग में भी ऐसा ही एक विवाद उठा था लेकिन आयोग ने उस विवाद को "व्यक्तियों का विवाद" करार दिया न कि व्यवस्था का।

वस्तुतः जिला मजिस्ट्रेट के रूप में जिलाधीश के अधिकारों तथा प्रभाव में कमी आई है। संविधान के अनुच्छेद 50 के तहत राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के अन्तर्गत न्यायपालिका तथा कार्यपालिका को पथक कर दिया गया है। ऐसे में दीवानी तथा फौजदारी सभी मामले न्यायालयों द्वारा सुलझाये जाते हैं। ये न्यायालय उच्च न्यायालय के अधीन कार्य करते हैं। इस प्रक्रिया के अपनाने के पीछे कानून की सर्वोच्चता की भावना रही है। बिहार में मजिस्ट्रेट मुंसिफ मजिस्ट्रेट जो कि फौजदारी मामले की सुनवाई करते हैं, सत्र न्यायालय के मार्फत उच्च न्यायालय के अधीन काम करते हैं। एक बार मामला यदि मुंसिफ या न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास स्थानान्तरित हो गया तो फिर उसके बाद जिलाधीश का उसमें कुछ भी हस्तक्षेप नहीं रहता है। सत्र न्यायाधीश ही न्यायिक क्षेत्र के मजिस्ट्रेटों के वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन लिखता है। उच्च न्यायालय ही मजिस्ट्रेटों के पद स्थापन तथा स्थानान्तरण के लिए उत्तरदायी है।

जिला मजिस्ट्रेट का एक उत्तरदायित्व जेलों के प्रशासन का निरीक्षण भी है। वह यह सुनिश्चित करने का प्रयत्न करता है कि जेल के मामलों का निस्तारण यथाशीघ्र हो तथा कैदियों को बेहतर सुविधाएँ दी जाएँ। कैदियों को पैरोल पर छोड़ने आदि से सम्बन्धित मामलों में जिला मजिस्ट्रेट का हस्तक्षेप रहता है। जब किसी कैदी को फाँसी की सजा दी जा रही हो तब उसकी अथवा उसके द्वारा मनोनीत किसी मजिस्ट्रेट की उपस्थिति आवश्यक है। फाँसी के पश्चात कार्यवाही हो जाने सम्बन्धी प्रमाण पत्र पर जिला मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर होते हैं।

अनुसूचित जातियों के विरुद्ध होने वाले अत्याचारों की जाँच के लिए बनी जिला स्तरीय समिति का अध्यक्ष जिला मजिस्ट्रेट होता है। इस समिति में पुलिस अधीक्षक भी स्थाई सदस्य होता है।

### समन्वयक के रूप में

इस अध्याय के प्रारम्भ में यह स्पष्ट किया गया था कि जिलाधीश पूर्व में सम्पूर्ण जिले का सर्वे-सर्वा हुआ करता था तथा जनता

के समक्ष वही शासन का प्रतीक था। स्वन्त्रता के बाद स्थिति में अन्तर आया। प्रत्येक जिले में कई नियामकीय एवं वैकासिक विभागों की इकाइयाँ होती हैं। इनमें से अधिकांश इकाइयों के प्रमुख विशेषज्ञ होते हैं। जिले में जिन विभागों की इकाइयाँ होती हैं उनमें से कुछ हैं- जन स्वास्थ्य, कृषि, पशुपालन, सिंचाई, शिक्षा, उद्योग, जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी, सार्वजनिक निर्माण आदि। इन विभागों को विभिन्न विकास कार्यक्रमों को लागू करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। तकनीकी दृष्टि से इन विभागों के जिला अधिकारी अपने उच्चतर क्षेत्रीय एवं राज्य-स्तरीय अधिकारियों के अधीन कार्य करते हैं। किन्तु प्रशासनिक दृष्टि से समन्वय हेतु यह जिला कलक्टर के कार्य क्षेत्र में आते हैं। जिले के सर्वांगीण विकास हेतु विभिन्न विभागों का समन्वित रूप से कार्य करना आवश्यक है। स्वर्गीय श्री लाल बहादुर शास्त्री ने अक्टूबर, 1965 में कहा था कि जिले में सम्पूर्ण टीम को उसी तरह काम करना चाहिए जैसे कि जंग के मैदान में सिपाही काम करते हैं। इस प्रकार जिला अधिकारी को एक कमान्डर की भूमिका निभानी पड़ती है।

समन्वय के लिए आवश्यक है कि जिलाधीश सभी जिला विभागाध्यक्षों की बैठक समय-समय पर आयोजित करें। प्रत्येक संस्था एवं कार्यक्रम को उचित समय पर महत्त्व देना आवश्यक है। समन्वय की प्रक्रिया को सुलभ बनाने के लिए जिला स्तर पर अलग-अलग कार्यक्रमों एवं विषय की समन्वय समितियाँ हैं जिनकी अध्यक्षता सामान्यतया जिला कलक्टर करता है। लगभग 80 समितियों की अध्यक्षता करने का दायित्व निभाना कलक्टर के लिए समय-प्रबन्ध की दृष्टि से कठिन भी हो जाता है।

### संकटकालीन प्रशासन

जिन विपदाओं का जिला कलक्टर को सामना करना पड़ता है, वे दो प्रकार की होती हैं -

- (1) प्राकृतिक विपदाएँ
- (2) मानव द्वारा निर्मित विपदाएँ।

दोनों ही प्रकार की स्थितियों में जिलाधीश की चैतन्यता, निर्णय क्षमता, मानवीय व्यवहार एवं प्रबन्धकीय योग्यता का परीक्षण होता है। वुडरफ एक रोचक प्रसंग द्वारा स्वतंत्रता के पूर्व जिलाधीश के संकटकालीन प्रशासक की भूमिका का वर्णन करते हैं। एक ग्रामीण व्यक्ति कचहरी में काम कर रहे एक जिला मजिस्ट्रेट के पास रोता हुआ आया कि उसके बच्चे को चीता उठा ले गया है। जिला मजिस्ट्रेट कचहरी छोड़ कर अपनी बन्दूक उठा कर चीते को मारने उस व्यक्ति के साथ चल दिया। आपात स्थिति में जिलाधीश की भूमिका मसीहा की हो जाती है। प्राकृतिक विपदा यथा बाढ़, महामारी, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्घटनाएँ, भूकम्प आदि में घायलों के उपचार की, मत्कों को परिजनों को सौंपने की, विस्थापितों के खाने, रहने, मुआवजे की राशि देना, उनके पुनर्स्थापना करने आदि की व्यवस्था जिलाधीश के दायित्व क्षेत्र में आती है।

मानव-निर्मित आपदा में भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। हिंसा, लूटमार, हत्या, घण्टा के वातावरण में शांति स्थापना तथा मानवीय मूल्यों के पुनर्स्थापन का कार्य अत्यधिक कठिन कार्य है, जो कि एक विवेकशील, संवेदनशील प्रशासनिक नेता ही कर सकता है। इन स्थितियों से निपटने के लिए कई बार केन्द्रीय सुरक्षा बलों एवं सेना की भी मदद लेनी पड़ती है। बाह्य आक्रमण के समय जिला प्रशासन को समुचित रूप से चलाने के लिए भारत सुरक्षा नियमों के अन्तर्गत उसे कई अधिकार प्राप्त हैं। नागरिक सुरक्षा प्रावधानों को लागू करना तथा जनता के मध्य असुरक्षा की भावना को दूर करना उसका दायित्व हो जाता है। टी. एन. चतुर्वेदी का मत है कि संकटकाल में उसे प्रतिफल या हर्जाना देने की भावना से नहीं बल्कि कर्तव्य की भावना से काम करना चाहिए। इन दायित्वों के निर्वहन में जिलाधीश को कई बार लिखित नियम कानून की सीमा के परे जा कर काम करना होता है। सिर्फ नियमों की व्याख्या नहीं अपितु आकस्मिक घटना का निस्तारण आवश्यक है, जिसमें तुरन्त निर्णय लेना आवश्यक है। एकरूपता अथवा नियमों की कठोरता संकटकालीन प्रशासन में हमेशा सकारात्मक गुण नहीं है। ओ. मोले भी "नेतृत्व के गण" के आधार पर संकटकालीन स्थिति से निपटने की सलाह देते हैं।

### विकास अधिकारी

भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रम की विविध एवं बहु-आयामीय योजनाएँ प्रारम्भ की गई हैं। ये योजनाएँ स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, महिला, बालक एवं युवाओं आदि विषयों से सम्बन्धित हैं। इन योजनाओं एवं कार्यक्रमों का उद्देश्य ग्रामीण जीवन को बेहतर बनाना, अशिक्षा तथा गरीबी को दूर करना है।



इन सभी कार्यक्रमों की क्रियान्विति में जिलाधीश की भूमिका सलाहकार या दर्शक की नहीं रह सकती। आर्थिक-सामाजिक विकास की इन योजनाओं को लागू करने में पहल एवं नेतृत्व की आवश्यकता है।

भारत के सभी राज्यों में जिलाधीश की विकास अधिकारी के रूप में भूमिका समान नहीं है। महाराष्ट्र तथा गुजरात में सभी विकास कार्यक्रम जिला विकास अधिकारी को सौंपे गये हैं। यह विकास अधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है। यहाँ जिलाधीश की भूमिका विकास प्रशासन में प्रत्यक्ष नहीं होती। ऐसी प्रशासनिक द्विभागिता जिला स्तर पर भारत के अधिकांश राज्यों में नहीं है।

राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद् अधिनियम, 1956 की धारा 59 के अन्तर्गत जिलाधीश से जिला विकास अधिकारी के रूप में जो कुछ अपेक्षाएँ की गई हैं, वे इस प्रकार हैं-

- (1) योजनाओं की क्रियान्विति की प्रक्रिया का निर्धारण तथा जिले में चल रही विभिन्न योजनाओं की प्रगति की समीक्षा करना। साथ ही जिला परिषद् के निर्णयों की क्रियान्विति एवं योजनाओं के स्वरूप में सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।
- (2) जिला स्तर पर राज्य के विभिन्न विकास विभागों के कार्यों में सहायता व उनके मध्य सामंजस्य स्थापित करना।
- (3) पंचायत समितियों को उपलब्ध धन राशि के सदुपयोग का निर्धारण करना, साथ ही यह भी देखना कि विकास अधिकारी अपने उत्तरदायित्वों का समुचित निर्वाह कर रहे हैं या नहीं।
- (4) इसी अधिनियम की धारा 84 के अन्तर्गत सौंपे गये अन्य उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना। पंचायत समितियों को कुछ कार्यों को करने के लिए जिलाधीश की स्वीकृति लेनी पड़ती है अथवा जिलाधीश की सिफारिश के साथ राज्य सरकार की स्वीकृति के लिए भेजना पड़ता है। शहरी क्षेत्र में यही व्यवस्था नगरपालिकाओं तथा नगर-परिषदों के लिए है।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के पदेन कार्यकारी निदेशक के रूप में जिलाधीश के विकास प्रशासन में योगदान के महत्त्व को समझा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि राजस्थान में 1999 से जिला ग्रामीण विकास अभिकरण का अध्यक्ष जिला प्रमुख को बनाया गया है। इससे पूर्व इस संस्था का अध्यक्ष जिलाधीश ही था, अब वह इस संस्था का कार्यकारी निदेशक है। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (डी.आर.डी.ए.) एक पंजीकृत सोसाइटी है जो कि भारतीय सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत है। इसका कार्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को समन्वित करना है। इस सोसायटी द्वारा एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत कई प्रकार के कार्यक्रम लागू किये जाते हैं जिन्हें विभिन्न श्रेणियों में रखा जा सकता है-

- (1) क्षेत्र आधारित कार्यक्रम, यथा रेगिस्तान विकास कार्यक्रम तथा सूखा क्षेत्र विकास कार्यक्रम।
- (2) व्यक्ति आधारित कार्यक्रम, जिसका उद्देश्य सबसे निचले तबके के गरीब लोगों को लाभ पहुँचाना है, जैसे ट्राइसम (स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण) एवं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम।
- (3) ग्रामीण महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम।
- (4) कुछ मिश्रित कार्यक्रम हैं यथा- जनजाति विकास कार्यक्रम तथा समग्र ग्राम विकास कार्यक्रम।

इन सभी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए जिला स्तर के अधिकारी के साथ जिलाधीश भी उत्तरदायी है। जिला उद्योग केन्द्र के प्रमुख तथा जिला स्तरीय बैंक समन्वय समिति के अध्यक्ष की हैसियत से भी वह विकास प्रशासक की भूमिका निभाता है। 20-सूत्री कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए जिलाधीश उत्तरदायी है। भूमि एवं राजस्व विवादों के निपटारे के लिए चलाये जाने वाले अभियानों का दक्षतापूर्वक नेतृत्व भी जिलाधीश के उत्तरदायित्वों में आता है।

वस्तुतः ग्रामीण तथा जिला स्तरीय विकास प्रशासन के लागू करने में जिलाधीश की भूमिका को उसके जिला परिषद् के साथ सम्बन्धों के सन्दर्भ में देखना चाहिए। 1959 में बलवन्त राय मेहता समिति की अनुशंसा पर सभी राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था लागू की गई। यह एक त्रिस्तरीय व्यवस्था है जिसमें उच्च स्तर पर जिला परिषद् है, फिर पंचायत समिति, निचले स्तर पर ग्राम पंचायतें हैं। बलवन्त राय मेहता समिति की अनुशंसा को सभी राज्यों ने समान रूप में स्वीकार नहीं किया। कुछ राज्यों में जिलाधीश जिला परिषद् का अध्यक्ष तथा सदस्य बना तो कुछ राज्यों में वह जिला परिषद् का तथा अन्य समितियों का अध्यक्ष बना।

राजस्थान में वह जिला परिषद् का तथा कई समितियों का अध्यक्ष बनाया गया। पर उसे मत देने का अधिकार नहीं था। महाराष्ट्र तथा प. बंगाल जैसे कुछ राज्यों में जिलाधीश का जिला परिषद् में स्थान नहीं था, उसे सिर्फ कुछ सामान्य नियन्त्रणकारी तथा पर्यवेक्षणीय अधिकार प्रदान किये गये।

वे समीक्षक, जो जिलाधीश को जिला परिषद् में सम्मिलित करने के पक्ष में नहीं है, निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैं-

- (1) जिला परिषद् एक चुनी हुई गैर-सरकारी संस्था है। यदि जिलाधीश तथा जिला परिषद् के सदस्यों में मतभेद होता है तो निर्णय प्रक्रिया में कठिनाई होगी।
- (2) यदि जिला परिषद् तथा राज्य सरकार असहमत होते हैं तो जिलाधीश की स्थिति असमंजस की हो जायेगी तथा उसे अपना पक्ष निर्धारण करने में कठिनाई होगी।
- (3) यदि जिलाधीश, जिला परिषद् के साथ अधिक जुड़ता है तो वह अपने मौलिक दायित्व - कानून व व्यवस्था बनाये रखने में सक्षम नहीं होगा और यदि वह उस कार्य में अधिक व्यस्त रहेगा तो जिला परिषद् के साथ न्याय नहीं कर पायेगा। कुछ विचारक ऐसे भी हैं। जो जिलाधीश को जिला परिषद् के साथ जोड़ने के पक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत करते हैं -
- (1) अपनी महत्वपूर्ण पद स्थिति के कारण वह जिला परिषद् के सदस्यों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभा सकता है तथा सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने में योगदान दे सकता है।
- (2) यदि वह जिला परिषद् से दूर रहता है इसका अर्थ है कि वह जिले के विकास और प्रशासन से दूर हो सकता है तथा इससे जन सामान्य की समस्याओं को भी निकट से नहीं समझ सकेगा।
- (3) वह विकास कार्यों के निरूपण एवं निष्पादन में समन्वयक की भूमिका अधिक भली प्रकार निभा सकता है।
- (4) जिलाधीश को जिले के सर्वस्व या कर्ताधर्ता के रूप में देखने की ग्रामीणों में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति रही है। वे अपने चुने हुए प्रतिनिधि से भी ज्यादा उस पर विश्वास रखते हैं।

रिचार्ड पार्क का मानना है कि स्थानीय लोग अभी भी शक्तिशाली जिला मुख्यालय के पक्षधर हैं।

वस्तुतः एक मध्यमार्ग अपनाने की आवश्यकता है। यदि जिलाधीश जिला परिषद् का सदस्य न भी हो तब भी अध्यक्ष को चाहिए कि वह उसे विचार-विमर्श हेतु आमन्त्रित करे तथा उससे सलाह मशवरा करे। वह सरकार की "आँख तथा कान" एवं जिला-स्तरीय संस्थाओं का दोस्त एवं दार्शनिक बन सकता है।

व्यावहारिक रूप से भी जिलाधीश को जिला-परिषद् से बिल्कुल असम्बद्ध रखना उचित नहीं होगा। बिहार में इस प्रकार का प्रयोग किया गया कि जिलाधीश को विकास कार्यों से असम्बद्ध रखा गया, लेकिन कुछ समय बाद ही सरकार को अपनी भूल सुधारनी पड़ी तथा जिलाधीश की भूमिकाओं की पुनर्व्याख्या करनी पड़ी। 1973 ई. में इस स्थिति में परिवर्तन आया। मई 1973 ई. में जिला विकास आयुक्त को जिला परिषद् कर मुख्य कार्यकारी अधिकारी बनाया गया। वह जिलाधीश के समकक्ष अधिकारी था और यह कहा गया कि योजना, विकास तथा कल्याण के सभी कार्यक्रम उसके उत्तरदायित्व होंगे। लेकिन 1975-77 ई. में आपातकाल के समय फिर स्थिति में परिवर्तन आया और जिलाधीश को ससम्मान पुरानी स्थिति में सत्ता प्रदान की गई। वस्तुतः आपात स्थिति में मजबूत प्रशासनिक तंत्र की आवश्यकता थी तथा जिलाधीश को 20-सूत्री कार्यक्रम लागू करने के लिए उत्तरदायी बनाया गया।

1977 ई. में पंचायती राज पर अशोक मेहता समिति गठित की गई। इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को दृढ़ बनाने की अनुशंसा की तथा जिलाधीश के पद को इस व्यवस्था में अप्रासंगिक सा कर दिया। किन्तु अशोक मेहता समिति की द्वि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का निष्पादन कर्नाटक तक सीमित रह गया।

1980 ई. में कांग्रेस सरकार के वापस सत्ता में आने पर जिलाधीश के पद को फिर शक्तिशाली बनाया गया। कई महत्वपूर्ण कार्यक्रम घोषित किये गये, जिनके क्रियान्वयन का दायित्व जिलाधीश को सौंपा गया। बिहार में बीस-सूत्री कार्यक्रम में से 14 कार्यक्रमों का दायित्व जिलाधीश को सौंपा गया यथा एकीकृत ग्रामीण विकास योजना, सिंचाई, पेयजल की आपूर्ति, परिवार

कल्याण इत्यादि।

1985 ई. से 1988 ई. के बीच राजीव गाँधी के प्रधानमंत्रित्व काल में जिलाधीश की भूमिका अत्यधिक बढ़ गई। स्वयं प्रधानमंत्री ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर जिलाधीश के साथ बैठकें की तथा "संवेदनशील प्रशासन" के प्रत्यय को साकार रूप प्रदान करने हेतु इन अधिकारियों का मार्गदर्शन किया। केन्द्र सरकार तथा जिला प्रशासन के बीच ऐसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्वतंत्रता के पश्चात् पहली बार देखने को मिले। विरोधी दलों की राज्य सरकारों को यह अखरा कि इस प्रकार व्यवस्था में राज्य सरकारों का महत्त्व कम कर दिया गया। किन्तु यह आशंका सही नहीं थी क्योंकि राजीव गाँधी का उद्देश्य राज्य सरकारों को निर्बल करना नहीं था। फिर भी जो जिलाधीश के पद से सम्बन्धित सजग सक्रियता की लहर राजीव गाँधी के समय आई वह उनके साथ ही चली गई।

राजीव गाँधी का एक और प्रयास जो पंचायती राज संस्थाओं को सशक्त करने का था, वह उनकी मृत्यु के पश्चात् संविधान के 73 वें संशोधन के रूप में प्रतिफलित हुआ। इस संशोधन का पूर्णरूपेण शासकीय एवं प्रशासकीय स्वरूप निष्पादित नहीं हो पाया, अतः अभी भी भारतीय पंचायती राज व्यवस्था संक्रमणकाल में ही है। यदि यह संशोधन पूर्णतया लागू हो जाता तो निश्चित रूप से ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में जिलाधीशों का वर्चस्व नहीं रहेगा। जिला परिषद् से उस के औपचारिक सम्बन्ध टूट जाने के पश्चात् उसका सम्पर्क इस संस्था से अनौपचारिक रहेगा। चूंकि वह जिले में राज्य सरकार का मुख्य प्रतिनिधि है अतः उसके अस्तित्व एवं प्रभाव को कदापि नहीं नकारा जा सकता।

वर्तमान में राजस्थान में जिला परिषदों की बैठकों में जिलाधीश को आमन्त्रित करने के बारे में किसी परम्परा का विकास नहीं हो पाया है। कभी तो उसे बैठकों में बुला लिया जाता है, तो कभी नहीं। ऐसा देखा गया है कि जब-जब उसे बैठकों में बुलाया जाता है, बैठकें अधिक लक्ष्योन्मुख एवं व्यवस्थित होती हैं।

वैसे अपनी वैकासिक भूमिका का निर्वाह जिलाधीश विभिन्न जिला-स्वरीय अधिकारियों की बैठकें बुला कर करता आया है। यह परम्परा अभी अटूट है।

अन्य राज्यों की भांति राजस्थान में भी 1999 से जिला ग्रामीण विकास अभिकरण का अध्यक्ष जिला प्रमुख तथा कार्यकारी अध्यक्ष जिलाधीश है।

राजस्थान की वर्तमान (दिसम्बर, 2000) की स्थिति के अनुसार 73वें संवैधानिक संशोधन के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं के वास्तविक अधिकारों में बढ़ोत्तरी की जा रही है। तथापि राजस्थान विधान सभा द्वारा इन संस्थाओं के अतिरिक्त कार्यक्षेत्र एवं अधिकारों के बारे में कोई विशिष्ट अधिनियम नहीं बनाया गया है, न ही इन संस्थाओं को विस्तृत वित्तीय शक्तियां एवं साधन प्रदान किये गये हैं। परिणामस्वरूप, वैकल्पिक प्रशासन के क्षेत्र में जो स्थिति 73वें संवैधानिक संशोधन से पूर्व थी, उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ तो हो चुकी है, किन्तु फिर भी धीमी है। इसी कारण विकास प्रशासन के क्षेत्र में जिलाधीश की भूमिका आज भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी पूर्व में थी।

### जिलाधीश के विविध कार्य

जिलाधीश बहुकार्यात्मक अधिकारी है। इसके विविध कार्यों की सूची इस अधिकारी के जिला प्रशासनिक तन्त्र में केन्द्रीय स्थान को दर्शाती है।

- (1) प्रत्येक दस वर्ष के अन्तराल में जनगणना कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए वह जिला जनगणना अधिकारी का कार्य करता है।
- (2) संसदीय तथा राज्य विधानसभा के चुनावों के लिए जिले का मुख्य चुनाव अधिकारी होता है।
- (3) जिले में समारोहों व कार्यक्रमों में सरकार का अधिकारिक प्रतिनिधित्व करता है।
- (4) विशिष्ट अतिथियों के आगमन पर वह कूटनीतिक शिष्ट नीति का निर्वहन करता है।
- (5) जिले में नगरपालिकाओं का पर्यवेक्षण करता है।
- (6) आवश्यक वस्तुओं तथा खाद्य पदार्थों की आपूर्ति सुनिश्चित करता है।

- (7) जिले में सैनिक अधिकारियों के साथ नियमित सम्पर्क बनाये रखता है।
- (8) विभिन्न श्रेणी के सरकारी प्रशिक्षणार्थियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करवाता है।
- (9) जिले का वार्षिक प्रतिवेदन कर प्रस्तुत करता है।
- (10) जिले के कर्मचारियों के कार्मिक मामले देखता है।
- (11) जिले का नियमित दौरा करता है, सुदूर गाँवों में लोगों से मिलता है, उनकी शिकायतें सुनता है तथा सरकार व जन सामान्य के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाता है।

जिलाधीश को जन सामान्य के साथ सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध बनाना आवश्यक है, ताकि उनकी समस्याओं का उचित समाधान प्रदान किया जा सके। महाराष्ट्र के जिलाधीश से अपेक्षा की जाती है कि वह वर्ष में 120 दिन तथा 70 रातों का दौरा करे। एक राजस्व वर्ष में उसे 50 से 60 तक सामान्य निरीक्षण करने चाहिए, 20 गाँवों के विशेष निरीक्षण करने चाहिए तथा एक उप-खण्ड दफ्तर का निरीक्षण करना चाहिए। इन्हीं जन सम्पर्क की आवश्यकताओं को देख कर यह कहा गया है कि "कलम" से "तम्बू" ज्यादा शक्तिशाली है।

### निष्कर्ष

यह निर्विवाद तथ्य है कि जिलाधीश जिले के विभिन्न विभागों के दल का कप्तान है। जिलाधीश का पद भारत में कई अर्थों में विशिष्ट है, इसमें "संस्थागत करिश्मा" है जिसकी आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में समता नहीं है। लेकिन जिलाधीश के पद और दायित्वों का मूल्यांकन करते समय नवीन परिस्थितियों का ध्यान भी रखना आवश्यक है। उसके ऊपर जितने दायित्व रखे गये हैं तथा जो उससे अपेक्षाएँ की गई हैं, वह एक मानव की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं में सम्भव नहीं है। स्वतन्त्रता के पूर्व जिलाधीश के अधिकार व सत्ता ज्यादा थे, पर कार्य सीमित थे। आज कई कारणों से अधिकार तथा सत्ता में कमी आई है, पर दायित्वों में बढ़ोतरी हुई है। एक युवा भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी सम्पूर्ण जिले का नेतृत्व करता है। अपने से उम्र व अनुभव में बड़े जिला पुलिस अधीक्षक पर भी अधिकारों का प्रयोग करता है लेकिन उसका सम्मान प्राप्त नहीं कर पाता।

जिलाधीश से अपेक्षा की जाती है कि वह दौरे करके जनता से निकट सम्पर्क बनाने का प्रयास करे। पहले घोड़े की सवारी व तम्बू गाड़ कर जिलाधीश यह दायित्व निभाते थे। पी.आर. दुभाषी का मानना है कि अब जिलाधीश ऐसे कैम्पस ज्यादा करने में विश्वास नहीं रखते। वे जनता के प्रतिनिधियों के साथ कुछ बैठकें कर लेते हैं तथा यह मान लेते हैं कि अब ग्रामीण जनता के साथ सीधे सम्पर्क की आवश्यकता नहीं है।

एक विकास अधिकारी के रूप में जिलाधीश से जो अपेक्षाएँ की गई हैं वे भी व्यवहारिक पक्ष को नजरअन्दाज करती हैं। एक विकास अधिकारी के लिए सारी बैठकों में भाग लेना सम्भव नहीं है। हर अंचल की अपनी विशिष्ट समस्याएँ होती हैं। पूरी प्रशासनिक व्यवस्था किये बिना जिलाधीश को अत्यधिक कार्यभार से दबाया गया है। इसलिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम वांछित गति प्राप्त नहीं कर पाये हैं।

शक्ति के विकेन्द्रीकरण की भावना से जिले के कार्यों के लिए विभिन्न अधिकारियों की व्यवस्था की गई है, जिन्हें उद्देश्य की एकता के लिए एक टीम के रूप में काम करना चाहिए।

भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने 1969 ई. में यह माना था कि एक व्यक्ति (जिलाधीश) इतने सारे दायित्वों का निर्वहन नहीं कर सकता। अतः वर्तमान दायित्वों को दो भागों में विभाजित कर देना चाहिए- नियामकीय कार्य तथा विकास कार्य। नियामकीय कार्य का दायित्व जिलाधीश का होना चाहिए तथा दूसरा दायित्व पंचायती राज संस्थाओं को निभाने चाहिए।

जिलाधीश के पद अनुभवी तथा अधिक सेवाकाल के अधिकारियों की नियुक्ति की आवश्यकता है। युवा अधिकारी एक तो अपने से अधिक उम्र के जिला अधिकारियों का सम्मान प्राप्त नहीं कर पाते, न ही वे एक अच्छे समन्वयक की भूमिका निभा पाते हैं। अपवाद अवश्य है इस क्षेत्र में।

जिलों के आकार को छोटा करना भी आवश्यक है, ताकि जिले का प्रशासन कुशलता से किया जा सके। अशोक मित्रा समिति, जो कि पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा नियुक्त की गई थी, की अनुशंसा है कि 15 से 20 लाख से ज्यादा जनसंख्या का जिला नहीं होना चाहिए।

अधिक दायित्वों के कारण जिलाधीश का जनता से सम्पर्क कट सा गया है। उसके अन्य दायित्वों में कमी भले ही की जाए पर जनता में सम्पर्क करना आवश्यक है। दौरे तथा जनता से साक्षात्कार के माध्यम से जिलाधीश लोगों की ज्यादा से ज्यादा समस्याएँ समझ सकता है तथा तदनुरूप निर्णय ले कर कार्यवाही कर सकता है।

जिलाधीश को माह में एक बार प्रेस कान्फ्रेंस करनी अपेक्षित है। इसके दो लाभ हो सकते हैं- एक तो सरकारी कल्याण कार्यक्रमों को जनता की जानकारी के लिए प्रचारित व प्रसारित किया जा सकता है, दूसरे, जनता को अपनी कठिनाइयों को सुलझाने का मौका भी मिलता है। साथ ही इन पत्रकार सम्मेलनों से जनता तथा सरकार के बीच गलत धारणाओं को दूर करने का भी मौका मिलता है।

## अध्याय-26

# जिला पुलिस प्रशासन

## (District Police Administration)

राष्ट्र-निर्माण और सामाजिक-आर्थिक उन्नति, ये दो विकास लक्ष्य हैं। इन विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शान्ति और सद्भावना अनिवार्य शर्तें हैं। इसलिए सभी समाजों - विकासशील और विकसित तथा लोकतांत्रिक या अन्यथा दोनों में कानून और व्यवस्था प्रशासन का बहुत महत्व है। जनसंख्या की तेजी से वृद्धि, औद्योगीकरण, शहरीकरण, राजनीतिक जागरूकता में निरंतर वृद्धि से कानून और व्यवस्था की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। कृषकों और जनजातियों के आंदोलनों, राजनीतिक, जातीय और साम्प्रदायिक दंगों, श्रमिक और छात्रों की अशांति तथा आतंकवाद, देश में कानून और व्यवस्था संबंधी समस्याओं के सूचक हैं। सभी समाजों में, खास तौर पर, विकासशील समाज में, ये संघर्ष और तनाव अपरिहार्य हैं और ये भिन्न-भिन्न रूप में उत्पन्न होते हैं। आजादी और स्वतंत्रता का तब तक कोई अर्थ नहीं होता है, जब तक कि इन बुनियादी मुद्दों पर समुचित ढंग से विचार नहीं किया जाता।

पुलिस प्रशासन देश के सामान्य प्रशासन का ही एक अंग है। किन्तु विषय के रूप में इसका अध्ययन, खास तौर पर भारत में, कुछ ही वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ है।

### जिला और उप-जिला स्तर पर संगठन

जिला देश में लोक प्रशासनिक संरचना की महत्वपूर्ण इकाई है। प्रायः राज्य सरकार के सभी कार्यालय जिले में होते हैं। पुलिस प्रशासन में भी जिला महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पुलिस द्वारा पारित सभी कानून और नियम अमल में लाने के लिए इस स्तर पर भेजे जाते हैं। जिला पुलिस संगठन कानून और व्यवस्था प्रभावी ढंग से बनाए रखने और अपराध नियंत्रण के लिए उत्तरदायी है। पुलिस अधीक्षक नाम के जिला पुलिस प्रमुख द्वारा जिला स्तर पर पुलिस प्रशासन चलाया जाता है। वह कानून और व्यवस्था बनाए रखने और अन्य कानूनों के लागू करने संबंधी कार्यों के लिए उत्तरदायी है। पुलिस अधीक्षक तकनीकी रूप से कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट के पूर्ण नियंत्रणाधीन कार्य करता है। व्यावहारिक रूप में उसे और उसके अधीनस्थ अधिकारियों को अपने कार्यों के निर्वहन में पूरी प्रचलानात्मक स्वतंत्रता है। जिला मजिस्ट्रेट के रूप में कलक्टर आम तौर पर निवारक पहलुओं के लिए उत्तरदायी है और पुलिस अपराध नियंत्रण और कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने आदि के लिए उत्तरदायी है। जिला स्तर से निचले स्तर पर पुलिस प्रशासन प्रभागों में और प्रभाग सर्कलों में और सर्कल पुलिस स्टेशनों (थानों) में बंटा होता है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में पुलिस स्टेशनों के गठन और कार्य में बहुत कम अंतर होता है। अब हम जिला स्तर और इससे निचले स्तर पर पुलिस प्रशासन के ढांचे की विवेचना करेंगे।

जिला पुलिस, जैसा कि देखा है, पुलिस अधीक्षक के अधीन कार्य करती है। वह हमेशा भारतीय पुलिस सेवा का सदस्य होता है और जिले में उसे काफी शक्ति और सम्मान प्राप्त है। वह रैंज पुलिस के प्रमुख अर्थात् उप-महानिरीक्षक के प्रति अपने जिले में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है। वह राज्य पुलिस मुख्यालय में पुलिस महानिदेशक के प्रति भी उत्तरदायी है। जिले में पुलिस बल की कार्य-कुशलता, मनोबल और अनुशासन के लिए भी पुलिस अधीक्षक उत्तरदायी है। वह सम्पूर्ण जिले में विभिन्न प्रकार की सूचनाएं एकत्र करता है और उसे अपनी मूल्यांकन रिपोर्ट के साथ राज्य सरकार के पास भेजता है।

पुलिस अधीक्षक, मुख्य रूप से, कानून और व्यवस्था बनाए रखने और अपराधों की रोकथाम के लिए उत्तरदायी है। उसे जिले

में शान्ति बनाए रखने के लिए निवारक उपाय करने की शक्ति भी दी गई है। उसे मेलों और उत्सवों के दौरान तथा चुनाव और आंदोलनों के दौरान भी पर्याप्त पुलिस व्यवस्था रखनी होती है। अगर उसे किसी अप्रिय स्थिति उत्पन्न होने का अंदेश होता है तो वह कलक्टर को निषेधाज्ञा लागू करने और यहां तक कि कर्फ्यू लगाने की भी सलाह दे सकता है। वह निगरानी, अन्वेषण तथा निवारक उपायों द्वारा अपराध नियंत्रित करता है। वह अपने नियंत्रणाधीन अपराधों के अन्वेषण कार्यों तथा विशेष शाखाओं के कार्यकरण का पर्यवेक्षण भी करता है। उसे कार्मिक तथा संगठनात्मक जिम्मेदारियां जैसे हथियारों, वाहनों, वर्दी आदि की पर्याप्त सप्लाई, निभानी होती है। वह स्टाफ के प्रशिक्षण, पदोन्नति और अनुशासन तथा वित्तीय सम्पत्ति आदि का भी उत्तरदायी है। वह जिला स्तर पर पुलिस संगठन और जन-प्रतिनिधियों के बीच सम्पर्क की कड़ी का कार्य भी करता है। वह लोगों के साथ सौहार्दपूर्ण और मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखता है। उन जिलों में, जहां महत्वपूर्ण शहर केन्द्र होते हैं, वहां अति-महत्वपूर्ण व्यक्तियों की अगवानी करने तथा यातायात को नियंत्रित करने की भी उसकी जिम्मेदारी है। इस प्रकार, पुलिस अधीक्षक केवल जिला पुलिस प्रशासन में ही नहीं, बल्कि जिला प्रशासन में भी महत्वपूर्ण और शक्तिशाली स्थिति बनाए रखता है। अपर जिला पुलिस अधीक्षक द्वारा उसके कार्यों में सहायता की जाती है। अपर पुलिस अधीक्षक उसके रोजमर्रा के सामान्य प्रशासन में उसकी सहायता करता है। उप-पुलिस अधीक्षक, सर्कल पुलिस निरीक्षक, पुलिस उप-निरीक्षक, हैड कांस्टेबल और पुलिस कांस्टेबल विभिन्न स्तरों पर कानून और व्यवस्था बनाए रखने में उसकी सहायता करते हैं। व्यावसायिक और तकनीकी इकाइयां भी उसके कार्यों में सहायता के लिए उसके नियंत्रणाधीन होती हैं।

मोटे तौर पर, जिला स्तर पर संगठन के दो विंग होते हैं अर्थात् जिला पुलिस कार्यालय (डी.पी.ओ.) और फील्ड संगठन। जिले में पूरे पुलिस का सामान्य प्रशासन जिला पुलिस कार्यालय (डी.पी.ओ.) द्वारा किया जाता है। वह प्रशासन के प्रभारी पुलिस अधीक्षक या अपर पुलिस अधीक्षक के अधीन काम करता है और सामान्य नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण संबंधी कार्य उसके अधीन रहते हैं। कार्यालय प्रशासन कई अनुभागों, जैसे अपराध और सांख्यिकी, अपराध ब्यूरो, लेखा और लेखा-परीक्षा, उपस्कर और स्टोर आदि द्वारा किया जाता है। जिला पुलिस कार्यालय को पुलिस के सचिवालय और जिले में पुलिस प्रशासन के केन्द्र-बिन्दु के रूप में समझा जाता है। आम तौर पर जिला पुलिस कार्यालय में पर्याप्त आवास और अन्य सुविधाएं नहीं हैं। यहां साज-सज्जा का अभाव, कार्यालय आवास की कमी, प्रकाश और संवतन की कमी आदि दिखाई देती है। पुलिस की भूमिका और कार्यों में, व द्धि से ऐसा प्रतीत होता है कि जिला पुलिस कार्यालय में सुविधाएं देना नितान्त आवश्यक है, अन्यथा संगठन के मनोबल और कार्य-कुशलता पर इसके गंभीर प्रभावा हो सकते हैं।

पुलिस को विशेष सहायता देने के लिए जिला स्तर पर कई फील्ड इकाइयां कार्य करती हैं। जिला सशस्त्र, रिजर्व, होम गार्ड, महिला पुलिस, अपराध ब्यूरो, विशेष शाखा, अंगुली छाप इकाई, डाग स्कवायड, परिवहन इकाई आदि कुछ ऐसी फील्ड इकाइयां हैं, जो जिला पुलिस प्रशासन की सहायता करती हैं।

### **उप-मंडल**

प्रचालनात्मक सुविधा के लिए जिला पुलिस संगठन को कई उप-मंडलों में बांटा गया है। पुलिस उप-मंडल ऐसी इकाई है, जहां पुलिस के कार्य का समन्वय और नियंत्रण किया जाता है। यह पुलिस सर्कलों, पुलिस स्टेशनों और जिला पुलिस कार्यालय के बीच महत्वपूर्ण सम्पर्क माध्यम है। पुलिस उप-मंडल, उप-पुलिस अधीक्षक या अपर पुलिस अधीक्षक के प्रभार में होता है। उन्हें आम तौर पर उप-मंडल पुलिस अधिकारी कहा जाता है। उप-मंडल का मुख्य कार्य कानून और व्यवस्था के मामलों, अपराध, पुलिस बल में अनुशासन और उप-मंडल स्तर पर अन्य संबंधित मामले देखने होते हैं। उप-मंडल कार्यालय में अपराध, सुरक्षा और अन्य प्रशासनिक पहलुओं से संबंधित कई रिपोर्ट और रजिस्टर रखे जाते हैं। उप-मंडल अधिकारी मुख्य रूप से कानून और व्यवस्था बनाए रखने और अपराध नियंत्रण, आसूचना संग्रह करने तथा उसे भेजने और आवधिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी है। उन्हें बहुत महत्वपूर्ण जन-सम्पर्क भूमिका भी निभानी होती है। वे पुलिस अधीक्षक और उप-निरीक्षक तथा निरीक्षकों के बीच सम्पर्क के रूप में कार्य करते हैं।

### **सर्कल**

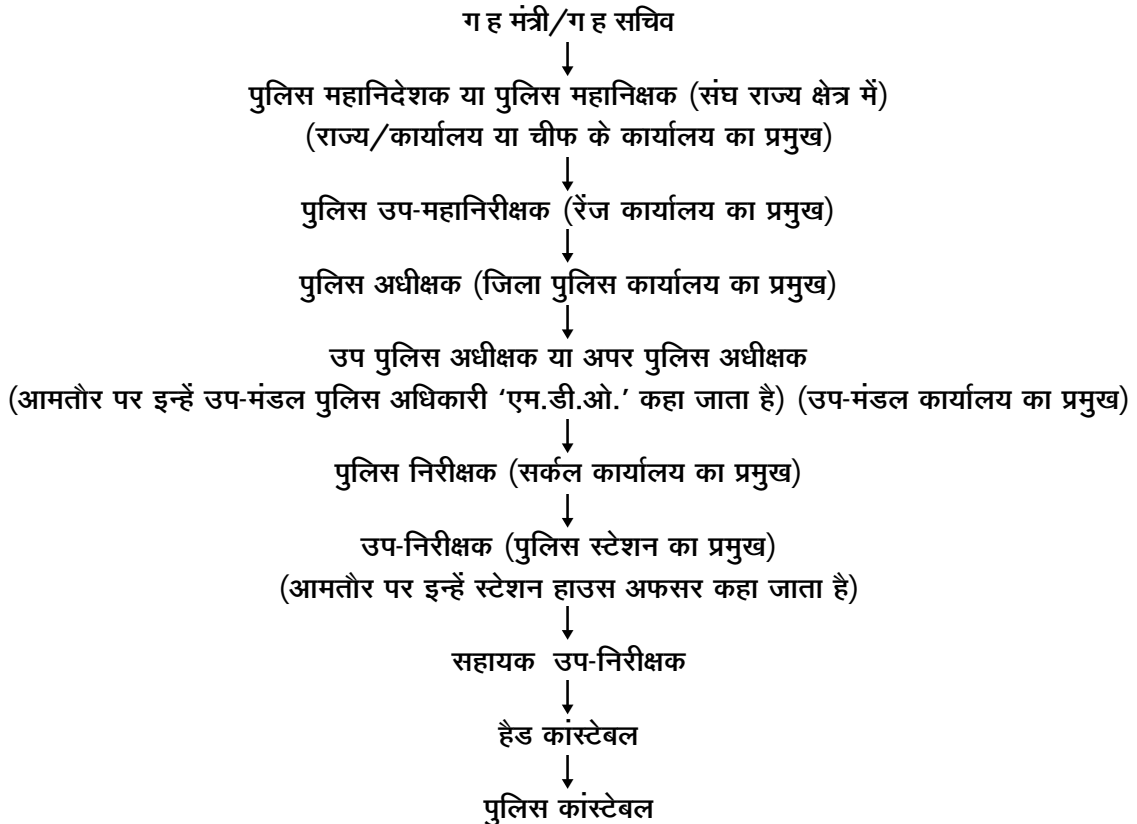
उप-मंडल को आगे पुलिस सर्कल में बांटा गया है, जो पुलिस स्टेशन और उप-मंडल के बीच सम्पर्क का कार्य करते हैं। यह जिला पुलिस संगठन का तीसरा स्तर है। कभी-कभी ताल्लुकों के साथ-साथ पुलिस सर्कल भी समाप्त हो जाते हैं, तो

कभी-कभी खंडो के साथ। कभी-कभी वे इनमें से किसी के साथ सह-समाप्य नहीं होते हैं। चूंकि पुलिस सर्कलों को बनाने के बारे में कोई नियम नहीं है, इसलिए एक राज्य से दूसरे राज्य में उनका आकार भी भिन्न-भिन्न है। यहां तक कि एक ही राज्य में उप-मंडल में एक सर्कल से दूसरे सर्कल के बीच भी विभिन्नताएं हैं। परन्तु पुलिस सर्कल में पुलिस स्टेशनों की संख्या का निर्धारण अपराध, जनसंख्या, क्षेत्रफल, सथलाकृति के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक सर्कल में तीन से दस पुलिस स्टेशन होते हैं। सर्कल कार्यालय से फील्ड स्तर पर प्रशासन में आसानी होती है।

पुलिस सर्कल का प्रमुख पुलिस निरीक्षक होता है। वह कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा अपराधों पर नियंत्रण रखने के लिए उत्तरदायी है। उसे पुलिस कर्मियों में अनुशासन बनाए रखना होता है। वह पुलिस स्टेशनों और उनके काम करने वालों के कार्य के संबंध में मार्ग-निर्देश देता है, सलाह देता है और उनका पर्यवेक्षण करता है। वह सहायक स्टाफ की सहायता से गंभीर अपराधों का अन्वेषण भी करता है। मंडल कार्यालय की तरह, सर्कल स्तर पर भी कई रजिस्टर और रिकॉर्ड रखे जाते हैं। इनमें संचार रजिस्टर, केस डायरी, सर्कल सूचना पुस्तिका, अपराधों की वार्षिक समीक्षा, अपराध चार्ट, अपराध आसूचना मिसिल आदि हैं। पुलिस स्टेशन और मंडल के बीच मध्यवर्ती इकाई के रूप में सर्कल कार्यालय की आवश्यकता और वांछनीयता के बारे में कई प्रश्न उठाए गए हैं। उन्हें बनाए रखने और उन्हें हटाए जाने, दोनों पक्षों में तर्क दिए गए हैं। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यदि सर्कल कार्यालय समाप्त किए जाते हैं तब क्या मंडल कार्यालय इन बहुत से पुलिस स्टेशनों पर सीधे नियंत्रण रख सकेगा? यदि उत्तर हां में है तो सर्कल कार्यालय समाप्त किया जा सकता है और यदि उत्तर नकारात्मक है तो सर्कल कार्यालय बने रहने चाहिए।

पुलिस स्टेशन पुलिस प्रशासन का सबसे निचला स्तर है। यह वह स्थान है, जहां पुलिस का वास्तविक कार्य किया जाता है। यह बेसिक और प्राइमरी इकाई है, जो कानून और व्यवस्था बनाए रखने, अपराधों की रोकथाम तथा नियंत्रण एवं लोगों के जान और माल की हिफाजत करने के लिए उत्तरदायी है। इस इकाई में हम आगे ग्रामीण और शहरी, दोनों के पुलिस स्टेशनों की संरचना के बारे में चर्चा करेंगे।

नीचे दिए गए चार्ट से आप पुलिस संगठन स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे:





## ग्राम-पुलिस

भारत की लगभग पचास करोड़ ग्रामीण जनसंख्या करीब 32.8 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 6 लाख गांवों में रहती है। भारत की ग्रामीण जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या की लगभग तीन-चौथाई है। इसलिए ग्राम-पुलिस स्टेशनों के संगठन और गांवों में पुलिस व्यवस्था के बारे में चर्चा करना आवश्यक है।

### ग्राम पुलिस स्टेशन

पुलिस स्टेशनों की स्थापना कुछ गांवों के समुह के लिए की जाती है। पुलिस स्टेशन स्थापित करने के लिए स्थान, क्षेत्रफल और जनसंख्या के बारे में एक राज्य से दूसरे राज्य में तथा एक ही राज्य के अंतर्गत एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन में काफी विभिन्नताएं होती हैं। तमिलनाडु में प्रत्येक 218.6 वर्ग किलोमीटर के लिए एक पुलिस स्टेशन स्थापित किया गया है, असम में यह 1069.7 वर्ग किलोमीटर है, महाराष्ट्र में 867.7 वर्ग किलोमीटर और उत्तर प्रदेश में 437.1 वर्ग किलोमीटर है। प्रत्येक पुलिस स्टेशन के अंतर्गत आने वाली औसत जनसंख्या में भी काफी भिन्नताएं हैं। मध्य प्रदेश में प्रति स्टेशन 69 हजार जनसंख्या है, असम में 2 लाख से अधिक और उत्तर प्रदेश में लगभग 1.25 लाख है। प्रत्येक पुलिस स्टेशन में पुलिस कर्मियों की स्वीकृत संख्या में भी काफी भिन्नताएं हैं। गुजरात में 47 है तो उड़ीसा में केवल 20 हैं। गुजरात में जनसंख्या और पुलिस का अनुपात 1:1590 है तो असम में 1:5403 है। उड़ीसा में यह 1:4938 और उत्तर प्रदेश में 1:4968 है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में पुलिस व्यवस्था बहुत कम है।

पुलिस स्टेशनों को प्रभावी बनाने के लिए उन्हें एक सुगठित इकाई होना चाहिए। क्षेत्र बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे पुलिस व्यवस्था का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है और यह बहुत छोटा भी नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे भारी व्यय हो सकता है। द्वितीय भारतीय पुलिस आयोग (1902-3) ने सिफारिश की थी कि प्रत्येक 150 वर्ग किलोमीटर के लिए पुलिस स्टेशन स्थापित किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने भी इसका समर्थन किया था। उसने यह भी सिफारिश की थी कि प्रत्येक 10 वर्ष में एक बार पुलिस स्टेशनों के क्षेत्रफल और क्षेत्राधिकार की समीक्षा की जानी चाहिए। इससे पुलिस कार्मिकों की तैनाती समुचित ढंग से हो सकेगी।

आमतौर पर, पुलिस स्टेशन ताल्लुक या खंड मुख्यालय या उसके क्षेत्राधिकार के महत्वपूर्ण गांव में स्थित होते हैं। पुलिस स्टेशन का प्रमुख उप-निरीक्षक होता है, जो स्टेशन हाउस ऑफिसर (एस.एच.ओ.) भी कहलाता है। उसकी सहायता के लिए सहायक उप-निरीक्षक, हवलदार और पुलिस कांस्टेबल होते हैं। इन अधिकारियों की संख्या एक पुलिस स्टेशन से दूसरे पुलिस स्टेशन में अलग-अलग होती है। यह जनसंख्या, क्षेत्रफल और अपराधों की संख्या के आधार पर होती है। एस.एच.ओ. अपने कार्य के निर्वहन में ग्राम अधिकारियों की सहायता करता है। यह सर्कल इंस्पेक्टर के समग्र पर्यवेक्षण के अधीन कार्य करता है।

कानून और व्यवस्था बनाए रखना, अपराध निवारण, अन्वेषण और नियंत्रण, आसूचना संग्रह, पुलिस अभियोजन, यातायात नियंत्रण- ये पुलिस स्टेशनों के कुछ कार्य हैं। यातायात, अपराध तथा कानून और व्यवस्था संबंधी कार्य ग्रामीण पुलिस स्टेशनों को सौंपे गए हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों के पुलिस स्टेशनों को ये कार्य नहीं सौंपे गए हैं।

पुलिस स्टेशनों को अपने काम को सुचारू रूप से चलाने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जैसे भवनों का अभाव, अनिवार्य न्यूनतम आवश्यकताओं की कमी और कर्मचारियों के लिए सुविधाओं का अभाव, उचित उपकरणों का अभाव, स्टाफ के लिए रिहायश की कमी, तीव्र यातायात संचार साधनों की कमी आदि। राष्ट्रीय पुलिस आयोग और विभिन्न राज्य पुलिस आयोगों ने भी पुलिस स्टेशनों को प्रभावकारी बनाने के लिए उन्हें सुदृढ़ करने की सिफारिशों के कार्यान्वयन से पुलिस स्टेशन स्तर पर प्रशासन ठीक हो सकता है।

### गांवों में पुलिस व्यवस्था

यह कहा जाता है कि भारत गांवों में रहता है अर्थात् अधिकांश भारतवासी ग्रामों में ही रहते हैं। इसलिए केवल गांवों के विकास के लिए शांति और सद्भावना बनाए रखना आवश्यक नहीं है बल्कि राष्ट्रीय विकास के लिए भी यह आवश्यक है। गांवों में पुलिस व्यवस्था पिछली कई शताब्दियों से रही है। यह किसी न किसी रूप में रही है चाहे वह गांव के पटेल, गांव के मुखिया या गांव के चौकीदार के रूप में रही हो। अधिकांश राज्यों में ये कायकर्ता पीढ़ी-दर-पीढ़ी होते थे। गांवों में किसी भी महत्वपूर्ण

मामले पर पुलिस का ध्यान आकर्षित करने की जिम्मेदारी इन्हें सौंपी गई थी। वे गांव के अपराध रोकने के लिए भी उत्तरदायी हैं। 1902 के पुलिस आयोग ने इस बात पर बल दिया था कि उन्हें नियमित पुलिस के अधीनस्थ कर्मचारियों के बदले गांवों के सेवक के रूप में कार्य करना चाहिए। ब्रिटिश भारत की सरकार ने इन पुश्तैनी ग्रामीण पुलिस अधिकारियों की आवश्यकता और महत्व को स्वीकार किया था। इसलिए यही व्यवस्था जारी रखी गई थी। इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, समाज द्वारा यह व्यवस्था स्वीकार करने और गांवों में पुलिस व्यवस्था में इसकी भूमिका होने के कारण स्वतंत्र भारत में भी यही व्यवस्था जारी रखी गई। इस प्रकार, ब्रिटिश शासन के दौरान और उसके बाद भी भारत के गांवों में मुखिया और चौकीदार की प्रणाली बनी रही। इन पुश्तैनी कर्मचारियों को पारिश्रमिक के रूप में भूमि दी जाती थी। उन्हें ग्राम स्तर पर एकत्रित किए गए भूमि राजस्व का कुछ भाग भी दिया जाता था। गांवों का मुखिया पुलिस स्टेशनों को अपराध की रिपोर्ट करने तथा अपराध और अपराधियों पर नजर रखने एवं नियमित रूप से पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट करने के लिए जिम्मेदार था। स्वतंत्रता के बाद, निम्न (ग्रास रूट) स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं के उद्भव के कारण ग्रामीण कायकर्ता विकास कार्य की ओर प्रेरित हुए। कुछ राज्यों में उन्हें या तो पूर्णतः या अंशतः पंचायतों के अधीन लाया गया। परन्तु कई पहलुओं से इस प्रणाली के वास्तविक कार्यकरण में कमियां पाई गईं। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने इनमें से कुछ कमियों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं- सावधानी की कमी, सूचना संग्रह करने या रिपोर्ट करने में जिम्मेदारी महसूस करने में कमी, कम वेतन, पुलिस का अत्यधिक नियंत्रण। आयोग ने यह भी नोट किया कि ये कर्मचारी, मात्र नौकर बनते जा रहे हैं।

इन समस्याओं और कमियों को दूर करने के लिए हाल ही के वर्षों में कुछ राज्यों में पुश्तैनी प्रणाली के विकल्प लागू किए गए। उदाहरण के लिए, उड़ीसा में 1963-64 में पुश्तैनी कर्मचारी समाप्त कर दिए गए। उनके स्थान पर बीट कांस्टेबल प्रणाली (System of beat constables) शुरू की गई, जिनमें गांवों का दौरा बार-बार करना पड़ता था और जो ग्रामवासियों के साथ नियमित सम्पर्क बनाए रखते थे। चूंकि यह व्यवस्था भी असफल रही, इसलिए इसे भी बहुत जल्दी समाप्त किया गया और ग्राम राखी व्यवस्था शुरू की गई। लगभग ग्यारह हजार ग्राम राखी नियुक्त किए गए। उन्हें कमोबेश वही काम करने पड़ते हैं, जिन्हें परम्परागत ग्राम-चौकीदार करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह व्यवस्था ठीक ढंग से काम कर रही है, परन्तु मुख्य समस्या यह है कि वे राजस्व विभाग के अधीन काम करते हैं। कर्नाटक में कर्नाटक ग्राम रक्षा दल अधिनियम, 1964 के अधीन ग्राम दलपति और ग्राम रक्षा दल प्रणाली शुरू की गई थी। दलपति, जो ग्राम रक्षा दल का प्रमुख होता है, उससे यह आशा की जाती है कि वह अपने समीपतम मजिस्ट्रेट या पुलिस स्टेशन से नियमित रूप से सम्पर्क बनाए रखे। परन्तु इस प्रणाली का कार्य भी सभी ग्रामों में अपेक्षित स्तर तक नहीं रहा। कुछ जिलों में वे बहुत सक्रिय हैं और कुछ में उन्हें इस स्कीम का समुचित ज्ञान ही नहीं है।

राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने सिफारिश की, कि देश में विद्यमान चौकीदार व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने के लिए इसे कुछ परिवर्तनों के साथ जारी रखा जाए। प्रस्तावित सुझाव में आयु सीमा और शैक्षिक योग्यता निर्धारण, उचित वेतन आदि शामिल हैं। आयोग ने ग्राम रक्षा दल बनाने की भी सिफारिश की, जिसके सदस्यों में से एक को दलपति के रूप में रखने का सुझाव दिया गया। इस प्रकार, राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने यह संकल्पना की कि ग्राम रक्षा दल का दलपति और पूर्व चौकीदार, ये दोनों मिलकर ग्राम पुलिस के ढांचे का काम करेंगे। आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि टेलीफोन और साइकिल व्यवस्था भी होनी चाहिए, ताकि वे पुलिस से नियमित सम्पर्क बनाए रख सकें।

## शहरी पुलिस

हाल ही के वर्षों में, भारत की शहरी आबादी और शहरों की संख्या भी निरंतर बढ़ रही है। आपको शहरी क्षेत्रों और उसके प्रशासन के बारे में और अधिक जानकारी अगली इकाई में मिलेगी। 1901 में भारत में शहरों की संख्या 2,000 से कम थी। 1981 में यह संख्या लगभग 4,000 हो गई। 218 ऐसे शहर हैं, जिनकी जनसंख्या एक लाख से अधिक है। इनमें से 12 शहरों की जनसंख्या 10 लाख से अधिक है। इन शहरों में पुलिस प्रशासन के लिए अनगिनत विकट समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। विजातीय जनसंख्या, संवेदनशील जनता, गंदी बस्तियां, कानून और व्यवस्था में बार-बार गिरावट, अपराधों की अधिक घटनाएं आदि से शहरों तथा कस्बों में पुलिस की समस्याएं कई गुना बढ़ गई हैं। भाषाई वर्ग, मजदूर जनसंख्या, छात्र समुदाय आदि भी शहरों की स्थिति को विकट बनाते हैं। इसलिए शहरी क्षेत्रों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा भिन्न पुलिस व्यवस्था की आवश्यकता होती है। भारत में पिछले कुछ वर्षों में शहरी पुलिस व्यवस्था के दो अलग-अलग पैटर्न विकसित हुए हैं। पहला, उन सभी

महानगरों के लिए जिनकी जनसंख्या 10 लाख से अधिक है, आयुक्त प्रणाली (Commissionary System) है। इस प्रणाली में पुलिस व्यवस्था के सभी पहलुओं की जिम्मेदारी पुलिस आयुक्त पर है। उसे सामान्य पुलिस शक्तियों के अलावा, विनियमन, नियंत्रण, लाइसेंस आदि की शक्तियां दी गई हैं। इस व्यवस्था की सराहना सभी ने की है क्योंकि इस प्रणाली में अपराध और व्यवस्था के मामले निपटाने में तुरंत और समन्वित पुलिस कार्रवाई होती है। इसलिए राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने उन सभी शहरों के लिए, जिनकी आवादी 5 लाख या जो शहरीकरण या औद्योगीकरण की स्थिति से गुजर रहे हैं, इस प्रणाली को लागू करने की सिफारिश की है। बहुधा मुख्य रूप से यह प्रश्न उठाया जाता है कि पुलिस आयुक्त राज्य पुलिस चीफ के अधीन हो या सीधे राज्य सरकार के प्रति उत्तरदायी हो।

कलकत्ता में पुलिस आयुक्त राज्य पुलिस चीफ के अधीन नहीं है, जबकि मुंबई और मद्रास जैसे शहरों में वह राज्य पुलिस चीफ के अधीन है। राज्य पुलिस आयोग सहित कई आयोगों और समितियों ने सुझाव दिया था कि पुलिस आयुक्त को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए राज्य पुलिस चीफ के अधीन लाया जाए और उसे परिचालनात्मक स्वायत्तता और स्वतंत्रता दी जाए। राज्य के अंदर स्वायत्त पुलिस व्यवस्था बनाने से केवल आदेश की एकरूपता को हानि ही नहीं होगी, बल्कि इससे राज्य पुलिस चीफ की स्थिति भी कमजोर होगी। इसलिए पुलिस आयुक्त पर पुलिस महानिदेशक का नियंत्रण होना चाहिए और पुलिस आयुक्त को तुरंत और न्यायिक कार्यकरण में काफी आजादी होनी चाहिए।

दूसरा, प्रमुख शहरी केन्द्र जिला पुलिस अधीक्षक के अधीन काम करते हैं। परंतु कुछ राज्यों जैसे-आंध्र प्रदेश में प्रमुख शहरी केन्द्र, जो आयुक्त प्रणाली के अनुकूल नहीं है, उन्हें पुलिस व्यवस्था के प्रयोजन के लिए शहरी जिलों के रूप में बनाया गया है और शहरी पुलिस जिलों के लिए अलग से पुलिस अधीक्षक नियुक्त किए गए हैं। जिला पुलिस अधीक्षक की तुलना में शहरी जिलों में पुलिस अधीक्षक को अधिक शक्ति मिली होती है। राज्य स्तर के कई प्रमुख पुलिस आयोगों ने इस समस्या की जांच की और सभी बड़े शहरों और कस्बों के लिए आयुक्त प्रणाली की सिफारिश की और शहरों व कस्बों के पुलिस प्रमुख को कार्यकारी मजिस्ट्रेट की शक्तियां देने की भी सिफारिश की। राष्ट्रीय पुलिस आयोग और आंध्र प्रदेश पुलिस आयोग ने सुझाव दिया कि वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के अधीन पथक शहरी पुलिस संगठन बनाया जाए, जो भिन्न-भिन्न प्रकार की और कठिन समस्याओं को निपटाए। शहरी पुलिस को नियंत्रण कक्ष, कानून और व्यवस्था तथा अन्वेषण के लिए अलग स्टाफ, यातायात आदि से निपटने के लिए विशेष शाखाएं जैसे-यातायात, होमगार्ड की आवश्यकता पड़ती है। भिन्न-भिन्न शहरी समस्याओं से निपटने के लिए उन्हें और अधिक सुविधाएं दी जानी चाहिए।

शहरी क्षेत्रों में पुलिस स्टेशन, पुलिस कार्य की प्राथमिक इकाई होते हैं। शहरी पुलिस स्टेशनों के क्षेत्र और जनसंख्या के संबंध में भी राज्यों में काफी विभिन्नताएं हैं। असम के शहरी क्षेत्रों में पुलिस स्टेशन का औसत क्षेत्रफल 7.9 वर्ग किलोमीटर है, गुजरात में यह 38.1 वर्ग किलोमीटर और तमिलनाडु में 22.2 वर्ग किलोमीटर है। उड़ीसा में प्रति स्टेशन औसत जनसंख्या लगभग 20,000 है, गुजरात में 71,013 और महाराष्ट्र में लगभग 50,000 है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में पुलिस स्टेशनों की संगठनात्मक संरचना भिन्न-भिन्न है, क्योंकि उनके कार्य की मात्रा और स्वरूप भी भिन्न-भिन्न है। महत्वपूर्ण शहरी क्षेत्रों में, जिला मुख्यालयों की तरह, शहर कई पुलिस स्टेशनों में विभाजित किया गया है जैसे कानून और व्यवस्था, पुलिस स्टेशन, यातायात पुलिस स्टेशन, केन्द्र अपराध स्टेशन और पुलिस नियंत्रण कक्ष। कानून और व्यवस्था पुलिस स्टेशन शहर में लोगों के जान-माल की हिफाजत करने और शांति बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है। वे सम्पत्ति संबंधी अपराधों दंगों, वर्ग-संघर्ष आदि से संबंधित मामलों की जांच करते हैं। पुलिस स्टेशन में व्यक्तियों को अलग-अलग टुकड़ियों में तैनात जाता है, जिन्हें सामान्य टुकड़ी, बीट टुकड़ी, एवजी टुकड़ी कहा जाता है और जो प्रत्येक नियत कार्य के लिए होते हैं। यातायात पुलिस स्टेशन शहर में यातायात के विनियमन का उत्तरदायी है। बड़े-बड़े शहरों में केन्द्रीय अपराध स्टेशन स्थापित किए गए हैं। इनका काम कानून और व्यवस्था की समीक्षा करना है। वे अपराधों के प्रभावी नियंत्रण के लिए उत्तरदायी हैं। वे सम्पत्ति संबंधी अपराध जैसे-डकैती, चोरी, संधमारी आदि की जांच करते हैं। वे अपराधियों, असामाजिक तत्वों पर नियंत्रण और नजर रखते हैं। पुलिस स्टेशनों की सहायता के लिए पुलिस नियंत्रण कक्ष स्थापित किए गए हैं। उन्हें उच्च आवृत्ति बेतार सेटों से सुसज्जित किया गया है। उनका कार्य ऐसे स्थानों में, जहां गड़बड़ी हो, सूचना मिलते ही पुलिस बल को भेजना है। इसके बाद, वे आगे की कार्रवाई के लिए सूचना पुलिस स्टेशन को भेजते हैं।

## पुलिस प्रशासन के सम्मुख कुछ मद्दे

पुलिस प्रशासन का जो स्वरूप आज है, उसकी स्थापना लगभग 130 वर्ष पहले हुई थी। इन दशाब्दियों के दौरान इस व्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ। 1861 का पुलिस अधिनियम आज भी भारत में पुलिस व्यवस्था का आधार है। नए कानून द्वारा इसे बदलने के बारे में कई सुझाव दिए गए हैं। परन्तु इन पर कोई कार्रवाई नहीं हुई और ये केवल सुझावों के रूप में पड़े रहे। कई ऐसी समस्याएँ हैं जो आज भी देश में पुलिस संगठन और उसके कार्यकरण को प्रभावित कर रही हैं। हम इन समस्याओं में से कुछेक पर चर्चा करेंगे।

हाल ही के वर्षों में पुलिस महानिरीक्षक और पुलिस उप-महानिरीक्षक के पदों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। यद्यपि पुलिस सहित किसी भी संगठन का विस्तार अपरिहार्य है, परन्तु आलोचकों का मत है कि विस्तार इतना अधिक नहीं होना चाहिये था, जितना कि किया गया है। पुलिस प्रशासन पर यह आरोप लगाया जाता है कि शीर्ष स्तर पर अधिकारियों की संख्या अधिक बढ़ी है। इसी प्रकार पुलिस महानिदेशकों या पुलिस महानिरीक्षकों को बहुधा बदला जाता है, जब भी राजनीतिज्ञ नेतृत्व में परिवर्तन आता है। इससे पुलिस में विश्वसनीयता में भारी अंतर आया है। कुछ राज्यों में क्षेत्रीय पार्टियों के उद्भव से यह समस्या और भी बढ़ी है। विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा पुलिस की प्रशंसा और आलोचना की जाती है। इससे पुलिस का राजनीतिकरण हुआ है।

संविधान के अनुसार, कानून और व्यवस्था राज्य का विषय है। पिछले कुछ वर्षों में केन्द्रीय पुलिस संगठनों जैसे-केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल और सीमा सुरक्षा बल में काफी वृद्धि हुई है। कई मौकों पर राज्य सरकारों की जानकारी के बिना राज्यों में पुलिस बल की तैनाती से केन्द्र-राज्य संबंधों में तनाव उत्पन्न हुए हैं। केन्द्रीय जांच ब्यूरो के उपयोग के मामले में भी ऐसा ही हुआ है। कुछ राज्यों ने तो अपने राज्यों में केन्द्रीय जांच ब्यूरो द्वारा अन्वेषण पर रोक तक लगा दी थी। इससे केन्द्र और राज्यों के बीच कटुता उत्पन्न हुई है।

पुलिस की छवि के बारे में किए गए कई अध्ययनों से यह पता चलता है कि पुलिस के कार्यकरण से जनता में काफी अंसतोष और नाराजगी है। पुलिस की उदासीनता, पुलिस की अकार्य-कुशलता और अक्षमता से उसकी खराब छवि प्रस्तुत हुई है। जब तक पुलिस की छवि नहीं सुधरती, तब तक पुलिस की ओर जनता में विश्वास पैदा करना कठिन होगा। ऐसी स्थिति में जनता के लिए विश्वास के साथ पुलिस स्टेशन जाना और उनसे न्याय पाना संभव नहीं होगा।

दूसरा मुद्दा है, पुलिस की जिम्मेदारी। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने उन्हें अधिक उत्तरदायी और जिम्मेदार बनाने के लिए राज्य सुरक्षा बोर्ड बनाने का सुझाव दिया है। दुर्भाग्यवश, इन संस्थाओं का गठन नहीं किया गया और जहाँ कहीं भी बनाए गए हैं, उनका कार्य संतोषजनक नहीं है।

पुलिस बल को अधिक प्रभावी बनाने के लिए पुलिस स्टेशन स्तर पर सुविधाएं मुहैया कराना बहुत महत्वपूर्ण है। आवास सुविधाएं और आधुनिकीकरण ऐसे महत्वपूर्ण विषय हैं, जिनका आलोचनात्मक मूल्यांकन और सुधार भी आवश्यक है। इन सभी मामलों में सुविधाएं अपर्याप्त हैं। इसके फलस्वरूप कुछ पुलिस स्टेशन समाज से नियमित सम्पर्क नहीं रख पाते हैं। इसी प्रकार, वे तुरंत कार्रवाई करने की स्थिति में भी नहीं होते हैं।

पुलिस अधीक्षक और कलेक्टर के बीच संबंध भी एक महत्वपूर्ण विषय है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस अधीक्षकों में कलेक्टर और उसके प्राधिकार को कम आंकने या उसकी उपेक्षा करने की प्रवृत्ति है। इसका प्रभाव न केवल पुलिस पर ही होता है, बल्कि सम्पूर्ण जिला प्रशासन पर भी होता है।

हाल ही के वर्षों में देश के विभिन्न भागों में आतंकवाद और हिंसा की घटनाएं बढ़ रही हैं। समाज यह अपेक्षा करता है कि पुलिस इस समस्या को नियंत्रित करने के उपाय करे। इसमें उनकी असफलता से न केवल कानून और व्यवस्था की स्थिति बिगड़ रही है बल्कि पुलिस बल की बदनामी भी हो रही है। इससे पुलिस में जनता का विश्वास भी भंग हो रहा है।

किसी भी संगठन के लिए भर्ती और प्रशिक्षण महत्वपूर्ण है। पुलिस संगठन इसका अपवाद नहीं है। दुर्भाग्यवश, पुलिस कार्मिकों की भर्ती के तौर-तरीकों और विधि के खिलाफ कई आरोप लगाए गए हैं। लोग यह महसूस करते हैं कि सबसे उत्तम और

योग्यतम को पुलिस में भर्ती नहीं किया जाता है। चयन में पक्षपात के आरोप भी लगाए जाते हैं। भर्ती करने वाले अधिकारियों पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाए जाते हैं। जो भी प्रशिक्षण दिया जाता है, उसे भी पर्याप्त नहीं समझा जा सकता है। प्रशिक्षण पुलिस कर्मियों को प्रेरित नहीं कर सका है। भारत सरकार ने 1973 में पुलिस प्रशिक्षण पर एक समिति का गठन किया था। इस समिति ने पुलिस कर्मियों के प्रशिक्षण में सुधार करने के बारे में कई सिफारिशें की थीं। यद्यपि कर्मियों की भर्ती और प्रशिक्षण की प्रक्रियाओं को तर्कसंगत बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं, फिर भी अभी बहुत कुछ किया जाना है।

पिछली चार दशाब्दियों के दौरान राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर पुलिस आयोगों ने पुलिस को कार्य-कुशल, अनुक्रियाशील और जिम्मेदार बनाने के लिए कई सुझाव दिए हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश, किसी न किसी कारण उन पर गंभीरता से विचार नहीं किया गया। इससे यह प्रतीत होता है कि देश में पुलिस सुधार कम प्राथमिकता का विषय रहा है। जो भी सुधार लागू किए जाते हैं उन्हें जिस सामाजिक-राजनीतिक वातावरण में पुलिस का कार्य होता है, उसे समझे बिना आधे मन से शुरू किया जाता है। सुधारों को तदर्थ आधार पर (प्रायोगिक तौर पर) और थोड़ा-थोड़ा करके शुरू किए जाने के कारण भी उनका वांछित प्रभाव नहीं होता है। सुधार न केवल संगठन, कार्मिक प्रक्रिया में ही आवश्यक हैं, बल्कि लोगों और पुलिस अधिकारियों की मनोवृत्ति में भी आवश्यक हैं। पुलिस कर्मियों में अभी भी उपनिवेशी मानसिकता घर किए हुए है। सुधार एक सतत् प्रक्रिया है, क्योंकि तदर्थ कार्यनीति से वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते हैं।

ऊपर कुछ ऐसे ही मुद्दों का उल्लेख किया गया है, जिनका मूल्यांकन आलोचनात्मक दृष्टि से किया जाना चाहिए और उनका समाधान भी ढूंढा जाना चाहिए। सुझावों की कोई कमी नहीं है, महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके लिए राजनीतिक इच्छा होनी चाहिए। हमें स्मरण रखना चाहिए कि पुलिस सम्पूर्ण समाज का ही एक अंग है। जो भी बुराइयां समाज में विद्यमान हैं, कई अन्य संगठनों की तरह पुलिस संगठन में भी उन्हें देखा सकता है। समग्र सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक गतिशीलता के संदर्भ में पुलिस सुधारों का विश्लेषण किया जाना चाहिए। पुलिस सुधारों को अलग से नहीं देखा जाना चाहिए। संरचनात्मक और संस्थागत परिवर्तनों से पुलिस व्यवस्था के कार्यकरण में केवल थोड़े से सुधार लाए जा सकते हैं। महत्वपूर्ण है अभिवृत्तिक परिवर्तन, यह परिवर्तन पुलिस कर्मियों तथा जनता, दोनों में लाना आवश्यक है। न तो पुलिस स्वयं कानून तोड़ सकती है, न लोगों की स्वतंत्रता को कम कर सकती है और न ही लोग कानून और व्यवस्था बने रहने की आशा तब तक कर सकते हैं, जब तक वे स्वयं पुलिस को अपने कार्यों के निर्वहन में उससे सहयोग नहीं करते।

### सारांश

अतः विकासशील समाज में पुलिस को बहुत महत्वपूर्ण और सकारात्मक भूमिका निभानी पड़ती है। कानून और व्यवस्था बनाए रखने से सामाजिक सुरक्षा तक उसके बहुत और भिन्न-भिन्न कार्य हैं। उसे आधुनिक समाज में परिवर्तन के साधन के रूप में माना जाता है। भारत में पुलिस का बहुत लम्बा इतिहास है, यद्यपि उसका वर्तमान स्वरूप ब्रिटिश शासन के दौरान ही अस्तित्व में आया था। भारत में पुलिस व्यवस्था राज्य का विषय है। फिर भी विधायन के क्षेत्र में और जरूरत के मौकों पर राज्यों की सहायता के लिए पुलिस बल की व्यवस्था करने में भी केन्द्रीय सरकार की कुछ भूमिका होती है।

## अध्याय-27

# लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण

## (Democratic Decentralisation)

भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की मूल भावना पौराणिक युग से वर्तमान तक प्रकारान्तर से कई रूपों में अवस्थित रही है। भारतीय लोकमानस रामराज्य प्रिय विशेषता रखे हुये है, उसे समाज में मनोवैज्ञानिक स्वीकृति एवं मान्यता प्राप्त है। राम ने राजतंत्र में लोकभावना के अनुरूप लोकतंत्रीय दृष्टि के आदर्श प्रस्तुत किये। हम इस सत्य से भी भलीभांति परिचित हैं कि बौद्ध युगीन सत्ता तथा जैन मतावलम्बी भारत में छोटे-छोटे गणतंत्र लोक कल्याण के उज्ज्वल उदाहरण रहे हैं।

महात्मा गान्धी के मस्तिष्क में "ग्राम स्वराज" की परिकल्पना थी, जिसे उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "हिन्द स्वराज" में स्पष्ट किया था। उनकी परिकल्पनानुसार "आत्मनिर्भर गांव को राष्ट्रीय ढांचे की इकाई माना जाये।" गांवों को उचित ढंग से आत्मनिर्भर बनाने का कार्य पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से ही संभव है।

वर्तमान परिपेक्ष्य में विकास का अर्थ विस्तृत रूप से सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्रियाकलापों में बदलाव के साथ खुशनुमा जीवन से है। पंचायती राज का दर्शन यह है कि केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के कार्यक्रमों को पंचायती राजतंत्र में स्थानीय लोगों की भागीदारी से ग्रामीण विकास की ओर अग्रसर होना है। सच तो यह है कि विकेन्द्रीकरण की ओर अग्रसर होना उचित ही है।

भारतीय लोकतंत्र पद्धति का मूल आधार पंचायती राज व्यवस्था रही है। सभ्य समाज की स्थापना के बाद से ही मनुष्य ने जब समूहों में रहना सीखा तभी से पंचायती राज के आदर्श और मूल सिद्धान्त भी उसकी चेतना में विकसित होते आये हैं। विभिन्न कालों में इसके विभिन्न नाम थे। कभी गणराज्य एवम् कभी नगर शासन व्यवस्था, लेकिन इन व्यवस्थाओं में एक दूसरे के साथ रहने और मिल-जुल कर काम करने की प्रवृत्ति निरन्तर विकसित होती रही। इन व्यवस्थाओं का मूलमंत्र आत्मनिर्भरता व स्वावलम्बन रहा है।

### लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा

स्वतंत्र भारत में श्री बलवन्तराय मेहता की संस्तुति में "लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण" का उदय हुआ तथा इसे स्थायित्व प्राप्त हुआ। "लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण" दो शब्दों से मिलकर बना है। लोकतांत्रिक का तात्पर्य एक ऐसी प्रणाली से है जिसमें जनता राज्य के वयस्क प्रत्यक्ष अथवा अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन कार्यों में भाग लेती हों। विकेन्द्रीकरण का अर्थ सत्ता तथा साधनों के बंटवारे से है अर्थात् कुछ गिने चुने व्यक्तियों के हाथों में शक्ति केन्द्रित न होकर नागरिकों के व हृदय समुदाय द्वारा निर्णय लिए जायें।

### पंचायतीराज - स्वराज की उच्चावस्था

गांधी जी की स्वराज की धारणा ही पंचायती राज का मुख्य बिन्दु है। इसी में लोकतंत्र की आत्मा निहित है।

लोकतंत्र के तीन आयाम हैं। पहला कि सरकार लोगों की है, दूसरा लोगों द्वारा ही चुनी हुई है, तीसरा यह लोगों के लिए है। प्रथम दो आयाम लोकतंत्र की कार्यप्रणाली से सम्बन्धित हैं अर्थात् लोकतंत्र वह प्रक्रिया है जिसमें लोग अपने आप को नियन्त्रण करते हैं जो स्वशासन की प्रक्रिया है।

तीसरा आयाम लोकतन्त्र में सरकार लोगों के लिए है। इसके अनिवार्य पक्ष को दर्शाते हैं। लोकतन्त्र सरकार की वह व्यवस्था है जिसमें वह लोगों के हित के लिए कार्य करती है, इसके ढांचे में शक्ति के और किसी स्रोत का समावेश नहीं हो सकता।

लोकतन्त्र का यह दर्शन न केवल बहुमत के शासन को स्वीकार करता है बल्कि हर उस प्रकार की केन्द्रीय व्यवस्था को नहीं अपनाता जिसमें सत्ता शक्ति लोगों के द्वारा प्राप्त नहीं हो। अतः वास्तव में लोकतान्त्रिक प्रक्रिया निचले स्तर से शुरू की जानी चाहिये।

लोकतन्त्र या स्वशासन शासन के सुसंचालन में प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारी की अपेक्षा करता है। यह वह व्यवस्था है जिसमें लोग ही संचालन करते हैं और स्वयं संचालित भी होते हैं।

महात्मा गांधी ने लोकतन्त्र पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि "लोकतन्त्र महज 20 आदमियों द्वारा केन्द्र में बैठकर सफल नहीं बनाया जा सकता इसमें सबसे निचले स्तर गावों के प्रत्येक व्यक्ति को शामिल करना होगा।"

गांधी जी ने स्वराज के बारे में कहा कि जिसमें हम अपने आप को संचालित करना सीख सकें और प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा अनुभव किया जाना चाहिये।

प्रत्येक व्यक्ति द्वारा स्वशासन का अनुभव तभी किया जा सकता है जब सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो। जब तक सामाजिक जीवन धारा का नीचे से उपर की ओर सतत् प्रवाह नहीं होता, स्वराज महज खोखला होकर रह जायेगा। स्वराज पाने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण निचले स्तर पर समुदायों की सबसे छोटी ईकाई तक पहुंचाना होगा। गांधी जी के अनुसार "स्वराज प्रशासन का वह आदेश है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति समुदाय की जिम्मेवारियों से जुड़े और जहां प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता; समुदाय की स्वतंत्रता पर निर्भर है, अतः यह अंतर सम्बन्धों का जाल है, व्यक्ति और समुदाय के बीच बना सम्बन्धों का जाल जिसमें स्वराज का अर्थ निहित है।"

स्वशासन में नागरिकों को स्वतंत्रता दी जाती है अर्थात् वह नागरिकों द्वारा अपनी क्षमता, अपने कर्तव्य व जिम्मेवारी से उपयोग में लाती है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण व्यवस्था में लोगों की बाहरी स्वतंत्रता तथा आन्तरिक स्वतंत्रता में तालमेल होना चाहिये। स्वराज का सम्बन्ध प्रत्येक उस व्यक्ति से है जिसने स्वशासन और आत्मनियंत्रण को पा लिया है।

संक्षेप में स्वराज, स्वशासन, लोकतन्त्र एक ही शब्द के पर्यायवाची हैं। इसमें आत्मनियंत्रण भी निहित है। स्वराज, लोकतंत्र में सभी स्तर पर विकेन्द्रीकरण की मांग करती है। पंचायती राज एकरूप में स्वराज का जीता जागता स्वरूप है, इसलिए पंचायती राज ही स्वराज की श्रेष्ठ अवस्था है।

## लोकतन्त्र

विश्व में धर्म सुधार आन्दोलन तथा औद्योगिक क्रान्ति में प्रजातन्त्र की आवश्यकता महसूस की गई। इसका प्रारंभ फ्रांस की राज्य-क्रान्ति में हुआ। यूरोप ने इसे आगे बढ़ाने में सहयोग दिया तो, इंग्लैण्ड ने इसकी ख्याति को पूरे देश में फैलाया। आज जो देश अणु युद्ध की आंच से गुजर रहा है तो सारा विश्व ही प्रजातन्त्र की छांव ढूंढ रहा है।

प्रजातन्त्र का इतिहास बहुत पुराना है। हमें इसके सर्वप्रथम अंकुर प्राचीन भारत के राजनीतिक साहित्य और संस्थाओं में उपलब्ध होते हैं। प्राचीन भारत में विशेष प्रचलन राजतन्त्र का था, पर उसके इतिहास में गणतन्त्रों की एक अटूट परम्परा भी मिलती है।

प्रजातन्त्र के वर्तमान स्वरूप को स्थिर करने में चार क्रान्तियों का योगदान प्रमुख रूप से रहा-

1. इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण या रक्तहीन क्रान्ति 1688 ई.,
2. अमेरिकी क्रान्ति 1776 ई.,
3. फ्रान्सीसी क्रान्ति 1789 ई., तथा
4. उन्नीसवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति। इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रान्ति ने यह निश्चित कर दिया की शासन के क्षेत्र में संसद की शक्ति सर्वोच्च है, और जनता को अधिकार है कि वह जिस शासन को चाहे चुन सकती है। अमेरिकी

क्रान्ति ने सामाजिक अनुबन्ध, लोक प्रभुसत्ता और क्रान्ति के अधिकार का औचित्य सिद्ध किया। फ्रान्सीसी क्रान्ति ने राष्ट्रीयता, समानता, स्वतन्त्रता और भात त्व के सिद्धान्तों को नया स्वरूप प्रदान किया। फ्रान्सीसी क्रान्ति के पश्चात् प्रजातन्त्र की क्रान्ति पूरे देश में फैलाने लगी। जनता मताधिकार के विस्तार तथा संवैधानिक शासन की मांग करने लगी। औद्योगिक क्रान्ति ने प्रजातन्त्र के सिद्धान्त को आर्थिक क्षेत्र में प्रयुक्त करने की प्रेरणा दी।

प्रजातन्त्र का अंग्रेजी रूपान्तर "DEMOCRACY" दो यूनानी शब्दों 'डिमोस' और 'क्रेटोस' से मिलकर बना है। जिसका अर्थ क्रमशः 'जनता' और 'शक्ति' है। प्रजातन्त्र का तात्पर्य जनशक्ति है, प्रजातन्त्र शासन का वह रूप है जिसमें शासन सत्ता जनता के हाथ में रहती है इसके उपयोग वह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से करती है।

आधुनिक युग लोकतन्त्र का युग माना जाता है। आज प्रत्येक राष्ट्र अपने आप को लोकतान्त्रिक कहने में गर्व अनुभव करता है। विभिन्न विद्वानों ने लोकतन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है। यूनानी लेखकों ने लोकतन्त्र को ऐसी सरकार माना है जिसमें सत्ता बहुत से लोगों के हाथ में हो। लार्ड ब्राइस का कथन है कि "प्रजातन्त्र शासन का वह रूप है जिसमें राज्य के अधिकार किसी विशेष श्रेणी के लोगों को नहीं, बल्कि समूचे समाज के लोगों को प्रदान किये जाते हैं।"

मैजिन के अनुसार "सबसे अच्छे और सबसे अधिक बुद्धिमान व्यक्तियों के द्वारा चलाई जाने वाली और सबकी उन्नति करने वाली सरकार लोकतन्त्र कहलाती है।"

प्रो. सील के अनुसार "लोकतन्त्र उस शासन को कहते हैं जिसमें व्यक्ति का महत्व हो।"

डायसी के अनुसार "प्रजातन्त्र वह शासन व्यवस्था है जिसमें राष्ट्र का अधिकांश भाग शासक हो।"

लिकन ने इसकी अत्यन्त सुन्दर परिभाषा की है "लोकतन्त्र जनता का, जनता के लिए और जनता के द्वारा शासन है।"

### लोकतन्त्र के विभिन्न सोपान

प्रथम, लोकतन्त्र ऐसी सरकार है जिसमें जनता को राजसत्ता का अन्तिम स्रोत समझा जाता हो, और जनता स्वयं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शासन में भाग लेती है। लोकतन्त्र प्रायः बहुमत का शासन होता है यह बहुमत स्वार्थी न होकर सार्वजनिक हित की ओर अधिक ध्यान देता है।

द्वितीय, जहां जनता को सरकार निश्चित करने, उसे नियुक्त करने तथा हटाने की अन्तिम शक्ति प्राप्त हो। जनता कुछ वर्षों के पश्चात् चुनाव के द्वारा नई सरकार की नियुक्ति करती है तथा महत्वपूर्ण विषयों पर समाचार पत्रों तथा अन्य साधनों से अपनी इच्छा समय-समय पर व्यक्त करती है।

तृतीय, लोकतन्त्र केवल सरकार या शासन का स्वरूप नहीं है। यह राज्य का एक प्रकार और समाज की एक व्यवस्था भी है। लोकतन्त्रात्मक सरकार के लिए लोकतन्त्रात्मक राज्य का होना भी अत्यन्त जरूरी है।

चतुर्थ, लोकतन्त्र शासन व सरकार की एक पद्धति है। राज्य का एक प्रकार तथा समाज की एक व्यवस्था होने के अलावा और भी बहुत कुछ है। एक लोकतन्त्रीय समाज वह समाज है जिसमें समानता, स्वतन्त्रता व विश्व बन्धुत्व की भावना प्रधान होती है।

मैक्सी लिखते हैं कि "20वीं शताब्दी में लोकतन्त्र एक राजनैतिक सिद्धान्त, एक शासन पद्धति या एक सामाजिक व्यवस्था मात्र नहीं है, यह एक ऐसे जीवन की खोज है जिसमें न्यूनतम बल प्रयोग या दबाव से व्यक्ति की स्वतः प्रेरित स्वतन्त्र बुद्धि और उसके क्रियाकलापों का मेल बिठाया जा सके और यह पद्धति समूचे मानव जाति के लिए आदर्श पद्धति होगी। ये मनुष्य की प्रगति और विश्व की प्रगति में अधिकतम सामन्जस्य स्थापित करेगी।"

अपने व्यापक अर्थ में लोकतन्त्र एक राजनीतिक व्यवस्था, एक नैतिक धारणा और एक सामाजिक परिस्थिति है। लोकतन्त्र का तात्पर्य सामान्य व्यक्ति में निष्ठा है। व्यक्ति का महत्व, लोकतन्त्र का सार है। परन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि सभी व्यक्ति समान हैं लोकतन्त्र इस बात की कोशिश करता है कि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था कायम हो सके जिसमें व्यक्तित्व के विकास और विचार अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल अवसर मिल सकें। लोकतन्त्र सभी व्यक्तियों को समान मानता है तथा



इसका उपयोग सबसे अच्छे व्यक्तियों की खोज के लिए किया जाता है।

लोकतन्त्र का वास्तविक सार यह है कि कमजोर से कमजोर व्यक्ति को सत्ता में भागीदारी प्राप्त हो। जनता ही शासन सत्ता की स्रोत है तथा जनता ही इससे लाभान्वित होती है। लोकतन्त्र का सार तत्त्व यह है कि छोटे नागरिकों को शासन को प्रभावित करने का अधिकार प्राप्त हो ताकि कमजोर वर्ग के उपेक्षित समूह स्वशासन के निर्माता के रूप में अपनी वास्तविक भूमिका निभा सकें।

लोकतन्त्रात्मक शब्द इस बात का परिचायक है कि देश की सरकार की शक्ति का स्रोत देश की जनता है। लोकतान्त्रिक सरकार जनता की, जनता के लिए तथा जनता के द्वारा स्थापित सरकार हो अर्थात् सरकार जनता के वयस्क मताधिकार के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा चलाई जाती हो।

### विकेन्द्रीकरण

प्रजातन्त्र के अन्तर्गत विकेन्द्रीकरण के होने का सबसे बड़ा फायदा यह है कि इसके द्वारा लोकतन्त्र के द्वार तक पहुंच जाता है। इसलिए स्थानीय स्वशासन को लोकतन्त्र की पाठशाला माना जाता है। नागरिक स्थानीय मामलों में रुचि लेते-लेते देश तथा राष्ट्र के मामलों में भी दिलचस्पी लेने लगता है जैसा की ब्राइस ने लिखा है कि "यह स्वशासन नागरिकों में सामान्य समस्याओं में सामान्य दिलचस्पी तथा अत्यन्त कुशलता और ईमानदारी से उनको सुलझाने की व्यवस्था करने में व्यक्तिगत एवं सामूहिक कर्तव्य भावना उत्पन्न करता है।

गांधीजी प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण का आधार ग्रामीण समुदाय को मानते थे। उनके अनुसार "स्वराज की आधारशिला ग्रामीण समुदाय की राजनीतिक प्रक्रिया और अर्थव्यवस्था में भागीदारी पर निर्भर है।"

विकेन्द्रीकरण का दूसरा नाम स्थानीय स्वशासन है। इसके अन्तर्गत शासन की वही ईकाइयां आती हैं जिसका सम्बन्ध स्थानीय मामलों से है और जिनका संगठन और कार्यक्षेत्र केन्द्रीय कानूनों द्वारा निर्धारित होता है। इस कसौटी के अनुसार किसी संघीय राज्य के संघटक राज्यों की इसमें गिनती नहीं होती। इन राज्यों का कार्यक्षेत्र स्थानीय न होकर अधिक व्यापक होता है और इसका संगठन केन्द्रीय कानूनों द्वारा न होकर संविधान के द्वारा होता है। इन संघटक राज्यों के अन्दर शासन की जो ईकाइयां होती हैं उन्हीं को स्थानीय स्वशासन का नाम दिया गया है।

आजकल सभी देशों में प्रतिनिधि लोकतन्त्र का रिवाज है। ऐसे में प्रत्येक वयस्क नागरिक तीन वर्ष में अथवा पांच वर्ष में केवल एक बार विधानमण्डल के लिए अपने प्रतिनिधि के चुनाव में मतदान करता है। इससे लोकतन्त्र उसके लिए दूर की चीज बन जाती है, और लोकतन्त्र से उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहता। लेकिन यदि वह अपने नगर अथवा ग्राम में निर्वाचित समिति के लिए चुनाव में भाग लेता है अथवा उसकी सदस्यता के लिए स्वयं खड़ा होता है तो लोकतन्त्र उसके लिए निकट की वस्तु बन जाती है तथा चुने हुए सदस्यता वाले व्यक्ति के कार्यों तथा आचरण को स्वयं देख सकता है। और वह उनके अच्छे व बुरे प्रभाव को देखकर समझ कर वोट देने का भागीदार बन जायेगा। साथ ही समस्याओं को हल करने में वह सहायता करेगा तथा लोगों के बीच में सहयोग व आत्मीयता की भावना पैदा करेगा।

केन्द्रीय व्यवस्था प्रजातान्त्रिक व्यवस्था से मेल नहीं खाती, तथा यह स्वायत्तता तथा स्वानुभूति जैसे मूल्यों के विरुद्ध होती है। विकेन्द्रीकरण योजना ग्रामस्तर से लेकर जिला स्तर तक शासन व्यवस्था को अपने ढंग से जीवन बिताने तथा उन्नति का अवसर प्रदान करती है, इसमें नागरिकों को अपनी समस्याओं को सुलझाने का अवसर मिलता है।

लोकतन्त्र को सुरक्षित रखने का सबसे बड़ा उपाय यह है कि इसकी जड़ें गावों में होनी चाहिये। अग्रेंजी में इसे "ग्रास रूट्स डिमाक्रेसी" (घासमूल लोकतन्त्र) कहा जाता है अर्थात् आन्धी व तूफान में प्रायः अनेक बड़े तथा ऊंचे व क्ष टूटकर गिर जाते हैं, किन्तु नीचे की हरी भरी घास ज्यों की त्यों ही लहराती रहती है। स्थानीय स्वशासन का समर्थन करते हुए सुनरो ने लिखा है कि "स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में अधिक स्थायित्व होता है, क्योंकि वे आमतौर पर लम्बे विकास का परिणाम होती हैं और धीरे-धीरे जनता की आवश्यकताओं के अनुरूप एवं सामान्य जीवन का अंग बन जाती है।"

हेनरी मैडिक के अनुसार "स्वशासन लोकतन्त्र और विकास के बीच त्रिपक्षीय सम्बन्ध है।"

दूसरे विश्वयुद्ध के समय स्थानीय स्वशासन का एक गुण प्रकाश में आया। जब नाजी सेनाओं ने फ्रान्स पर आक्रमण किया तथा अपना आधिपत्य जमा लिया तो तीसरे गणतन्त्र की सरकार समाप्त हो गई, किन्तु गांवों तथा छोटे नगरों में जन-जीवन उसी प्रकार चलता रहा क्योंकि वहां लोग एक दूसरे को जानते थे और शत्रु तथा मित्र की सहज ही पहचान हो सकती थी। इसी प्रकार जब हिटलरशाही का अन्त हुआ तो जर्मनी का पुराना सांस्कृतिक जीवन सबसे पहले स्थानीय स्वशासन पर अधिक समर्थ सिद्ध हुआ।

प्रो. रजनी कोठारी के अनुसार "राष्ट्रीय नेतृत्व का एक दूरदर्शितापूर्ण कार्य था पंचायतीराज की स्थापना इसमें भारतीय राज व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण हो रहा है और देश में एक ही स्थानीय संस्था के निर्माण से उसकी एकता भी बढ़ रही है।"

जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था संविधान के अनुच्छेद 40 में संविधान राज्य से यह अपेक्षा करता है कि "वह ग्राम पंचायतों के संगठन के लिए कदम उठायेगा और उन्हें ऐसी शक्तियों और अधिकार सत्ता से विभूषित करेगा कि वे स्वशासित इकाइयों के रूप में कार्य करें।"

### लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का इतिहास पृष्ठभूमि

किसी भी बड़े देश का शासन एक ही स्थान अथवा एक स्तर के अधिकारियों द्वारा चलाना सम्भव नहीं है। प्राचीन यूनानी नगर राज्यों अथवा भारतीय गणराज्यों जैसे छोटे अथवा कम जनसंख्या वाले राज्यों के लिए अपनी मुख्य राजधानी से शासन चलाना सम्भव था। ग्राम सामाजिक जीवन के वास्तविक केन्द्र बिन्दु और देश की अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण इकाई होते थे।

मध्यकाल में भी स्थानीय प्रशासन विद्यमान था ग्राम का श्रेष्ठ व्यक्ति शासक होता था जो न्यासी के रूप में कार्य करता था। मौर्य काल में राजा ग्रामीणों के प्रति अहस्तक्षेप की नीति का पालन करता था।

हमारे देश में सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्था में पंचायतों का स्थान प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण रहा। प्राचीन काल में पंचायत, लोकतन्त्र की धड़कन के रूप में सामाजिक तथा आर्थिक गतिविधियों का संचालन करती थी।

गुप्तकालीन व्यवस्था में पंचायतों का विशेष महत्व था, राजवंशी शासन प्रणाली होने के बावजूद भी शासन का विकेन्द्रीकरण विशेष स्तरों पर किया गया था। ग्रामीक ग्राम की शान्ति एवं सुरक्षा के लिए उत्तरदायी था। उसके इस कार्य के लिए पंच मण्डल या वर्योवद्द सहायता के लिए होते थे। किन्तु जब बड़े राज्यों अथवा साम्राज्यों का युग आया तो इनको यातायात की समस्या तथा विभिन्न प्रदेशों की आवश्यकताओं और केन्द्र शासन का कार्यभार अधिक बढ़ जाने से प्रान्तों का विभाजन किया गया और प्रान्तों को भी छोटे भागों में विभाजित करना पड़ा। मुगलकालीन शासन व्यवस्था में भी पंचायतें ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की ईकाई के रूप में कार्य कर रही थी। अफगान और मुस्लिम शासकों ने किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया, ग्राम पंचायतें पूर्व की भांति ही चल रही थी।

ब्रिटिश शासनकाल में पंचायतों पर विपरीत असर पड़ा। ये मत्प्रायः हो गईं। इसमें विभिन्न प्रान्तों अथवा जिलों के अधिकारी केन्द्रीय शासन के एजेन्टों के रूप में अथवा अधिकारियों के रूप में काम करते थे। जनता के प्रति भी उनका कोई दायित्व नहीं होता था। उनको कभी भी हटाया या बदला जा सकता था। इस प्रकार की व्यवस्था को विकेन्द्रीकरण का नाम न देकर अंग्रेजी में 'डेलीगेशन' का नाम दिया जाता है।

इस प्रकार से अंग्रेज शासक पंचायत व्यवस्था को समाप्त करने के लिए पूर्णतया उत्तरदायी थे। उन्होंने ग्रामीण स्वशासन के स्थान पर अधिकारी तन्त्र को प्रोत्साहन दिया जिसका मुख्य उद्देश्य अपने शासकों को प्रसन्न रख भारतीय जनता का अधिकाधिक शोषण करना था।

लार्ड रिपन ने 1882 में सर्वप्रथम स्थानीय स्तर से चुनी गई "पापुलरली इलेक्टेड इन्स्टीट्यूशन्स" की पॉलिसी की शुरुआत की, जो कि स्थान विशेष के कार्य पूर्ण करने के लिए जिम्मेवार होती थी।

1907 में ब्रिटिश सरकार ने स्थानीय स्वशासन पर अध्ययन कर अपनी संस्तुतियां प्रस्तुत करने के लिए "लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण आयोग" की नियुक्ति की। इस आयोग ने यह सुझाव दिया कि ग्रामीण शासन व्यवस्था के प्रबन्ध एवं विकास के लिए पंचायतों की स्थापना की जाए। इस आयोग के सुझाव के अनुसार ग्राम पंचायतों की स्थापना की गई। यह व्यवस्था

स्वतन्त्रता पूर्व तक अपने इसी रूप में चलती रही। लेकिन ब्रिटिश सरकार द्वारा इस दिशा में कोई कदम न उठाये जाने पर कांग्रेस ने 28वें अधिवेशन में पुनः इस मुद्दे को उठाया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् के शुरुआती दौर में भी पंचायती राज की उपेक्षा की गई। संविधान के प्रथम प्रारूप में इसकी चर्चा तक करने की जरूरत नहीं समझी गई। महात्मा गांधी ने इसका विरोध किया। उन्होंने तत्काल इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए अपने भाषण में कहा कि "इस आजादी में जनता की इच्छा मुखरित होनी चाहिये, अतः पंचायतों को न केवल जीवित करना चाहिये बल्कि इसे ज्यादा से ज्यादा अधिकार भी देने चाहिये तभी हम आम जनता की भावनाओं का आदर कर सकेंगे।" तब संविधान निर्माताओं ने गान्धीजी के 'स्वराज' से प्रेरणा लेकर राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में पंचायती राज को समाहित किया तथा इसे अनुच्छेद 40 के भाग चार में रखा।

### लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और पंचायतीराज

संविधान के चौथे अध्ययन के अनुच्छेद 40 में इन लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना की जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर दे दी गई। समाज के यह प्रभावशाली वर्ग के लोग इस बात से आश्वस्त थे कि सामाजिक आर्थिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण के लक्ष्य ग्रामीण पंचायतों के माध्यम से सम्भव नहीं होंगे। उन्होंने वयस्क मताधिकार को स्वीकार किया लेकिन करोड़ों मतदाताओं की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की समझ पर भरोसा नहीं किया। संविधान की समूची संरचना केन्द्रीय त ही न कि विकेन्द्रीय त। यह व्यवस्था वर्ण और वर्ग दोनों ही दृष्टि से प्रभावशाली वर्ग के अधीन रहे।

इस कथन से भी हम सब सहमत हैं कि पांचवें दशक में सामुदायिक विकास योजना के सुचारु रूप से संचालन के लिये बलवंत राय कमेटी की सिफारिशों के आधार पर सन् 1959 में पंचायती राज शासन व्यवस्था के अन्तर्गत लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की स्थापना की गई। पंडित नेहरू ने राजस्थान से इस व्यवस्था का शुभारम्भ किया। सैद्धान्तिक दृष्टि से इन्हें स्वतंत्र इकाई के रूप में स्थापित किया गया था। सत्ता के इस लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की बात बड़े ही जोश के साथ उभर कर सामने आयी तथा संस्थागत ढांचा भी बन गया। पंचायतों से लेकर जिला परिषद् तक का कामकाज विधिवत शुरु हो गया लेकिन छठवें दशक में इन संस्थाओं की स्वतंत्र कार्यप्रणाली में अचानक बाधा उत्पन्न हो गई। सातवें दशक में यह संस्थाएं समाप्त सी हो गईं। राजनैतिक इच्छा शक्ति और नौकरशाही के तिरस्कारपूर्ण रवैये के कारण सारी व्यवस्था ताश के पत्तों की तरह बिखर गयी। पंचायतों के चुनाव स्थगित कर दिये गये। कई जगह अनेक वर्षों तक इन संस्थाओं के चुनाव नहीं हुए। जो लोग इस व्यवस्था के प्रारम्भ से ही विरोधी थे वे इस व्यवस्था की असफलता के लिये पूरी तरह से आश्वस्त हो गये और असफलता का सम्पूर्ण दोष इन्हीं संस्थाओं और गांवों में उभरती जाति, सम्प्रदाय और दलगत राजनीति के मत्थे मढ़ दी गई। इन संस्थाओं की इस दुर्गती के पीछे हमें दो प्रमुख कारण दिखाई देते हैं।

1. नौकरशाही का शासन व्यवस्था पर बढ़ता हुआ प्रभाव क्योंकि नौकरशाही किसी भी तरह अपने अधिकार और सत्ता पंच, प्रधान और प्रमुख को देने को कभी तैयार नहीं रही। उनकी दृष्टि सदा ही अंग्रेजी शासन काल जैसा रही कि अभी ग्रामीण जनता अनपढ़, निरक्षर, गवार और अनभिज्ञ है। उन्हें सत्ता धीरे-धीरे ही दी जानी चाहिये क्योंकि दुलारी और नौकरशाही गांव के प्रधान अथवा प्रमुख को अपने ऊपर नियंत्रण रखने की शक्ति के रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं थी।
2. दूसरी ओर सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर बैठे राजनेता भी इन संस्थाओं को अपनी इच्छानुसार बनाये रखने के पक्ष में थे। उनकी विचारधारा भी ठीक नहीं थी इस कारण समितियों पर समितियां नियुक्त होने के उपरान्त भी ये संस्थायें निर्मित तो क्या अपना अस्तित्व भी नहीं बचा पाई। इनके पतन के कारणों का संक्षेप में हम विवेचन डॉ. एल. एम. संघवी की व्याख्या से करें तो ज्यादा उत्तम होगा।

डॉ. संघवी का मानना था कि "संसद और विधान सभाओं के प्रतिनिधियों ने इन संस्थाओं पर अपनी बढ़ती हुई निर्भरता को कभी भी स्वीकार नहीं किया। तथा दूसरी ओर जन मानस में इनके प्रति अलगाव, उदासीनता और राजनैतिक इच्छा शक्ति का अभाव सदैव बना रहा। अधिकांशतः ये संस्थाएं सदैव ही अवहेलनाओं की शिकार रहीं क्योंकि नौकरशाही ने भी इन संस्थाओं को नजर अंदाज करना शुरु कर दिया था-और सभी कार्य नौकरशाही के अधीन ही थे"।

तीन दशक के लगातार कार्यों के अनुभव के पश्चात यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो गई कि राजनैतिक अभिजात वर्ग एवं नौकरशाही ने इस देश की समूची शासन व्यवस्था को साधारण रूप में स्वीकार किया है तथा इसके व्यावहारिक पक्ष के अन्तर को पूरी तरह स्पष्ट करना है। सन् 1994 का अधिनियम भी इसी तरह के संदेह को जन्म देता है। अधिनियम के अनुच्छेद पिछली व्यवस्था से कई अर्थों में नवाचार के परिचायक के रूप में दिखाई देते हैं जैसे हम यह कह सकते हैं कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन को संवैधानिक स्तर प्रदान करना, ग्राम सभा की बैठक को वर्ष में दो बार अनिवार्य रूप से आहूत करना, महिलाओं का हर स्तर पर 33 प्रतिशत आरक्षण, अनुसूचित जाति, जनजाति के लिये पंच, सरपंच के पद आरक्षित करना आदि कई प्रावधान हैं जो इस लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण शासन व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन तो ला सकते हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि संस्थागत ढांचा निश्चय ही सत्ता की राजनीतिकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करेगा। आज वर्तमान समय में भले ही महिला प्रतिनिधियों के साथ धीरे-धीरे महिलाओं की भूमिका स्वतंत्र रूप से अपने अस्तित्व को ग्रहण करने का प्रयास अवश्य करेगी। ऐसी आशा की जा सकती है। किन्तु जब तक शिक्षा का हम समुचित प्रचार प्रसार नहीं करेंगे तब तक हमें शासन व्यवस्था से आपेक्षित लाभ की आशा नहीं करनी चाहिये।

यह तर्क पूरी तरह सत्य है कि जब तक सत्ता के शिखर पर बैठे लोग इन संस्थाओं को सम्पूर्ण अधिकार नहीं देते अथवा इन्हें सफल बनाने के लिए सकारात्मक प्रयत्न नहीं करते लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण व्यवस्था का यह प्रयोग पूर्व की भांति असफल हो जायेगा। तथा हमारी नौकरशाही को सवर्णों वाला तिरस्कार पूर्ण रवैया छोड़ना होगा और राजनैतिक स्तर पर भी हमें अधिकार देने होंगे और इन्हें यह कह कर हमें अस्वीकार नहीं करना चाहिये कि निचले स्तर पर रहने वाला आदमी जातिवादी एवं संकीर्ण विचारों वाला है। यदि ईमानदारी के साथ हम यह सोचने का प्रयास करें कि क्या विधानसभाओं एवं संसद की राजनीति करने वाले लोग इन सभी बातों से ऊपर हैं अथवा नहीं? क्या हमारी नौकरशाही इन संकीर्णताओं से ऊपर उठ पाई है? यदि नहीं तो फिर इन संस्थाओं के साथ सौतेला व्यवहार क्यों किया जा रहा है। एक बात निश्चित है कि हम वास्तविकता के धरातल पर आदमी की समझ पर विश्वास नहीं रख सके तो उसके वोटों के आधार पर शासन व्यवस्था का संचालन करने का अधिकार हम अपने पास कैसे रख सकते हैं और वह भी हमारे ऊपर क्यों विश्वास करेगा। उसका हमारी शासन व्यवस्था, नौकरशाही तथा समूची कार्यशैली से मोह भंग हो चुका है और त्रिशंकु विधानमण्डल तथा संसद का वर्तमान स्वरूप भी इसी मोह भंग का परिणाम है।

आज आवश्यकता तो इस बात की है कि राजनैतिक, अकादमिक और नौकरशाही अभिजन इस तथ्य को स्वीकार करने का प्रयास करें और प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिये निचले स्तर की इन संस्थाओं का यथोचित रूप से शक्तिशाली बनाने में सहयोग प्रदान करें।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण में पंचायती राज आज व्यक्ति-व्यक्ति के लिए सुलभ और सार्थक हुआ जिसमें ग्रामीण विकास की एक नयी दिशा प्राप्त हुई है। सर्वांगीण विकास संभव हुआ है। सामंती प्रथा से पीड़ित ग्रामीणों को निजात मिली है और आज ग्रामीण वर्ग चहुंमुखी विकास हेतु उन्मुख है।

## अध्याय-28

# गांधी दर्शन और पंचायती राज

---

गांधी जी के विचारों में ग्राम पंचायत स्वराज्य की कल्पना गांवों की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओं की पुनः रचना थी। इसमें यदि कोई भी एक पक्ष कमजोर हो या अव्यवस्थित हो तो वह सारी व्यवस्था को गड़बड़ा देता है जैसे यदि आर्थिक स्वावलम्बन ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नहीं मिल पाता है तो व्यवस्था में केन्द्रीयकरण के अवसर भी किसी भी तरह से कम नहीं होंगे।

यदि राजनीतिक शक्ति का आधार नैतिक नहीं है, और सत्य व अहिंसा पर आधारित नहीं है तो उसके परिणाम भयावह होंगे। नैतिकता का अभाव गांव तक एक ऐसी राजनीति को जन्म देगा जो किसी गांव को कई आधारों पर बांट देगा फलतः उसकी रचनात्मक उर्जा समाप्त हो जायेगी।

### गांधी जी के ग्राम स्वराज की अवधारणा

स्वराज एक पवित्र वैदिक शब्द है, जिसका तात्पर्य आत्म शासन और आत्म संयम है। अंग्रेजी शब्द 'इंडिपेंडेंस' अक्सर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निरंकुश आजादी का या स्वतन्त्रता का अर्थ देता है, वह अर्थ स्वराज्य शब्द में नहीं है।

गांधी जी के अनुसार "ग्राम स्वराज की मेरी कल्पना यह है कि ग्राम एक ऐसा पूर्ण गणतन्त्र हो, जो अपनी मुख्य जरूरतों के लिए अपने पड़ोसियों पर भी निर्भर न हो और फिर भी दूसरी बहुतेरी जरूरतों के लिए एक दूसरे पर निर्भर हो, जिनमें दूसरों पर निर्भरता जरूरी है। इस तरह हर एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास अपने पशुओं के लिए चारागाह और गांव के वयस्क व्यक्तियों व बच्चों के लिए मन बहलाव और खेलकूद के मैदान होने चाहिये। इसके बाद यदि जमीन और हो तो उसमें वह उपयोगी व्यावसायिक फसलें बोएगा, लेकिन उनमें गांजा, तम्बाकू, अफीम आदि की खेती नहीं होनी चाहिये। हर एक गांव में, गांव का अपना एक नाटकघर, एक पाठशाला और एक सभा भवन होगा। पानी के लिए उसका अपना इन्तजाम होगा-पानी के नल होंगे-जिसमें गांव के सभी लोगों को पीने का शुद्ध पानी मिलेगा। कुओं और तालाबों पर गांव का पूरा नियन्त्रण रख कर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके लिए लाजमी होगी। जहां तक सम्भव हो सकेगा, गांव के सारे काम सहकारिता के आधार पर किये जायेंगे। आजकल जैसी जात-पात दिखाई देती है वैसी जात-पात या किसी प्रकार की छुआछूत उसमें नहीं होगी। अहिंसा के आधार पर, जिसके सत्याग्रह और असहयोग, ये दो शस्त्र हैं, ग्रामीण समाज का शासन चलेगा। गांव की रक्षा के लिए ग्रामीण रक्षक होंगे जिन्हें लाजमी तौर पर गांव के चौकीदारों का काम करना होगा। इसके लिए गांव के रजिस्टर से बारी-बारी लोगों का चुनाव किया जायेगा। गांव का शासन चलाने के लिए हर साल गांव के पांच आदमियों की पंचायत चुनी जायेगी। निर्धारित योग्यता वाले ग्रामीण बालिग स्त्री पुरुषों को इस पंचायत को चुनने का अधिकार होगा।"

"इस ग्राम स्वराज में आज के प्रचलित अर्थों में सजा या दण्ड का कोई रिवाज नहीं रहेगा, इसलिए यह पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल स्वयं ही धारा सभा, न्याय सभा और कारोबारी सभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी। आज भी अगर गांव चाहे तो अपने यहां इस तरह का प्रजातंत्र कायम कर सकता है। उसके इस काम में मौजूदा सरकार भी ज्यादा दखलंदाजी नहीं करेगी, क्योंकि उसका गांव से जो भी कारगर सम्बन्ध है, वह सिर्फ मालगुजारी वसूल करने तक ही सीमित है। इस ग्राम शासन में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर आधार रखने वाला सम्पूर्ण प्रजातन्त्र काम करेगा। व्यक्ति ही अपनी इस सरकार का निर्माता

होगा, उसकी सरकार और वह दोनों ही अहिंसा के नियम के वश होकर चलेंगे। अपने गांव के साथ वह सारी दुनिया की शक्ति का मुकाबला कर सकेंगे, क्योंकि हर गांव वासी के लिए सबसे बड़ा नियम यह होगा कि वह अपने गांव की इज्जत की रक्षा के लिए मर मिटे।”

गांधी जी की योजना में गांवों के पुनःनिर्माण का सर्वप्रथम स्थान है। बिना गांवों के विकास के भारत का विकास सम्भव नहीं है। उनका विश्वास था कि गांव नष्ट हो गए तो भारत नष्ट हो जाएगा।

गांधी जी के ग्राम स्वराज्य की परिकल्पना के अनुसार, स्वतन्त्र भारत का जो ढांचा बने उसमें विकास की योजना निचले स्तर पर तैयार की जाए। गांव का हर व्यक्ति अपनी जरूरत के अनुसार अपनी योजना बनाए तो योजना सफल होगी तथा उसके आधार पर बनने वाली निचले स्तर की, प्रान्त स्तर की और राष्ट्रीय स्तर की योजनाएं भी सटीक, श्रम प्रधान और प्रभावशाली होगी। गांधी जी की ग्राम स्वराज्य अवधारणा का आर्थिक लक्ष्य जितना बड़ा था, उससे भी बड़ा और महान था उनका सामाजिक लक्ष्य।

गांधी जी की उपरोक्त योजना स्वप्नलोकी भले ही कहा जाए किन्तु युक्लिड के बिन्दु के समान इस योजना का भी अस्तित्व है। भारत को इसके अनुरूप रहने की आवश्यकता है। यद्यपि गांधी जी के द्वारा बनाई योजना पूर्णतः प्राप्त नहीं की जा सकती फिर भी साध्य वस्तु की तस्वीर सामने रखने से उससे मिलता-जुलता लक्ष्य तो प्राप्त हो सकता है। भारत के गणराज्य बनने पर यह लक्ष्य सामने आएगा। जिससे अन्तिम तथा प्रथम सभी समान होगा अथवा न कोई प्रथम रहेगा न कोई अन्तिम होगा। उनका पंचायती राज पर अटूट विश्वास था हरिजन पत्रिका में उन्होंने लिखा है कि गांव का शासन पांच लोगों की पंचायत के द्वारा संचालित होगा। इन पांच लोगों की पंचायत का प्रतिवर्ष चुनाव वयस्क ग्रामीणों के द्वारा पुरुषों एवं स्त्रियों के द्वारा होगा और जिनकी न्यूनतम योग्यता निर्धारित तथा उनको सम्पूर्ण सत्ता तथा आवश्यक क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा।”

जब पंचायत राज स्थापित हो जायेगा, तब लोकमत ऐसे भी अनेक काम कर दिखायेगा जो हिंसा कभी नहीं कर सकता। जमींदार, पूंजीपतियों, और राजाओं की मौजूदा सत्ता तभी तक चल सकती है, जब तक कि सामान्य जनता को अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं होता, यदि लोग जमींदारी तथा पूंजीवाद की बुराई से सहयोग करना बन्द कर दें तो यह पोषण अभाव में खुद ही मर जाएगी। पंचायत राज में केवल पंचायत की आज्ञा मानी जाएगी और पंचायत अपने बनाये कानून के द्वारा कार्य करेगी।

गांधी जी का मानना था कि जब भारत स्वावलम्बी और स्वाश्रयी बन जायेगा तब न तो खुद किसी की सम्पत्ति का लोभ करेगा और न अपनी सम्पत्ति का शोषण होने देगा। तब वह पश्चिम या पूर्व के किसी भी देश के लिए उसकी शान्ति कितनी भी प्रबल क्यों न हो, लालच का विषय नहीं रह जाएगा और तब वह खर्चीले अस्त्र शस्त्रों को उठाये बिना ही अपने को सुरक्षित अनुभव करेगा। उसकी यह भीतरी स्वाश्रयी अर्थव्यवस्था बाहरी आक्रमण के खिलाफ सुदृढतम ढाल होगी।

उनका मत था कि “ग्राम पंचायतें अधिकतम कार्य अपने हाथ में लेगी। ग्राम पंचायतों का मुख्य कार्य लोगों में इमानदारी तथा परिश्रम की प्रवृत्ति उत्पन्न करना है तथा उन्हें विवादों से दूर रहने की शिक्षा प्रदान करना है। इसके साथ ही पंचायतों को कई कार्यों में योगदान देना है जैसे दुग्ध उत्पादन सुधार, खाद्य पदार्थों में वृद्धि, गांवों तथा ग्रामीणों को स्वच्छता तथा सफाई का ध्यान रखना, पशुओं की स्थिति को सुधारना, नशीले पदार्थों के निषेध तथा अस्पृश्यता निवारण पर अपना योगदान प्रदान करेगा।”

पूर्ण स्वराज्य के ध्येय की प्राप्ति के लिए जनसंप्रभुता का नैतिक सत्ता पर आधारित होना आवश्यक है। गांधी जी द्वारा आदर्श राज्य व्यवस्था को “राम राज्य” शब्द से सम्बोधित किया गया। उनके अनुसार रामराज्य का तात्पर्य पृथ्वी पर भगवान का राज्य, राजनीतिक दृष्टि से यह पूर्ण प्रजातन्त्र है। एक ऐसा भारत जिसमें जनता का कोई उच्च वर्ग और नीच वर्ग नहीं होगा, ऐसा भारत जिसमें सभी जातियां पारस्परिक एकता तथा सद्भावना से स्नेह बन्धन में बन्धी हुई हो।

### **लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और गांधीवादी मार्ग**

गांधी जी के अनुसार स्वतन्त्रता की पहली सीढ़ी नीचे से होनी चाहिये। इससे प्रत्येक गांव एक गणतन्त्र या पंचायत बन सकेगा, जिनके पास पूर्ण अधिकार होंगे। अर्थात् प्रत्येक गांव आत्मनिर्भर होने के साथ कार्य को सही ढंग से संभालने का उत्तरदायित्व ले।

पंचायती राज संस्थाओं के पीछे मूलभूत दर्शन यह रहा है कि सत्ता में लोगों की भागीदारी की जाये, जब तक हमारी राजनीतिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर आम लोगों की भागीदारी निश्चित नहीं होगी तब तक वास्तविक लोकतन्त्र की बात सोची नहीं जा-सकती।

उनका मानना था कि व्यक्ति को आत्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक सुख विकेन्द्रीकरण से ही मिल सकता है। विकेन्द्रीकरण के फलस्वरूप सत्ता कुछ विशेष व्यक्तियों के हाथ में आ जाने से राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सिद्धान्तों की उपेक्षा हो जाती है तथा समाज में विषमता, स्वार्थी तथा झगड़ों का विकास होता है।

वर्तमान सन्दर्भ में आवश्यकता इस बात की है कि मध्य वर्गीय संसदीय प्रणाली के स्थान पर लोकतान्त्रिक संस्थाओं की स्थापना की जाए, जिनका उदय निचले स्तर से हो। पंचायती राज संस्थाओं को परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में देखा जाए, उन्हें हमारे ग्रामीण जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक सभी क्षेत्रों में बिना किसी नियन्त्रण के काम करने की अनुमति दी जाए, इससे ग्रामीण समाज का उत्थान हो सकेगा। गांधी जी की यह दृढ़ धारणा थी कि लोकतन्त्र को जबरन विकसित नहीं किया जा सकता। लोकतन्त्र की भावना बाहर से थोपी नहीं जा सकती। इसे अन्तराल से बाहर आना है। गांवों के सर्वांगीण विकास के लिए तथा ग्रामीणों को राष्ट्रीय विकास से जोड़ने के लिए पंचायती राज के अलावा दूसरा विकल्प नहीं है। इसलिए सत्ता के विकेन्द्रीकरण के द्वारा ही ग्रामीण समुदाय को विकास की ओर ले जाया जा सकता है। केन्द्रीकरण के द्वारा हिंसा होती है। राज्य सर्वशक्तिमान है तो पुलिस दल स्वतन्त्रता को रोंदने से नहीं हिचकिचाती, इसलिए ग्रामीणों को स्वावलम्बी बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण ही सबसे उचित विकल्प है।

“हरिजन” में उन्होंने लिखा था कि “प्रत्येक गांव गणराज्य अथवा पंचायत का राज होगा, शासन व्यवस्था इस सीमा तक विकेन्द्रीत होगी कि समाज के एक छोटे से अंग के रूप में राज्य कहीं न कहीं और कभी न कभी नजर आएगा।”

उन्होंने जब ग्राम स्वराज की बात कही थी, तब उनके मन में राजनीतिक तथा आर्थिक दोनों शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के विचार थे। विकेन्द्रीकरण के बिना ग्रामस्वराज संभव नहीं है। पंचायती राज भी विकेन्द्रीकरण के बिना कैसे चलेगा? इस युग में जैसे-जैसे विज्ञान का विकास हो रहा है, विकेन्द्रीकरण आसान होता जा रहा है। मशीनें दिनोंदिन छोटी किन्तु अधिक सक्षम होती जा रही हैं और उर्जा के नए स्रोत निकलते जा रहे हैं। योजना और नित्य बदलती हुई तकनीक के इस युग में विकेन्द्रीकरण द्वारा विज्ञान के साधनों तथा लोकतन्त्र के अवसरों का जन-जन के लिए उपयोग किया जा सकता है। उसके लिए अनुकूल अर्थनीति, विकास नीति और शिक्षा नीति बनानी चाहिये। वे लोकतन्त्र को “मिलावट विहीन अहिंसा का शासन” मानते हैं। लोकतन्त्र अर्थात् अहिंसा व्यक्ति की आत्मशुद्धि या नैतिक उत्थान के लिए होती है। गांधी जी ने लोकतन्त्र के सामाजिक उत्थान के पक्ष को महत्व दिया है। उनके लोकतन्त्र में एक ओर समाज के दलित वर्गों द्वारा कुलीन तथा पूंजीपति वर्गों के नियंत्रण के विरुद्ध राजनीतिक आन्दोलन की प्रेरणा मिलती है तो दूसरी ओर ऐसे आदर्श समाज की मांग जिसमें व्यक्ति को स्वशासन का पूर्ण अवसर प्राप्त हो सके। सविनय अवज्ञा तथा सत्याग्रह के द्वारा लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षा करते हुए गांधी जी ने राजनीतिक गठबन्धनों एवं जोड़तोड़ की सौदेबाजी को समाप्त कर वैयक्तिक निर्णयों की शुद्धता एवं विवेक युक्त तथा सत्य निष्ठा को महत्व दिया। उन्हें उस उत्पीड़न की जानकारी थी, जो कि एक केन्द्रीकृत सत्ता वाले राष्ट्र निर्माण से उभरता है। ऐसा राष्ट्र आधुनिक टेक्नोलोजी, उद्योग, युद्ध सामग्री पर निर्भर है अतः उन्होंने इस बात पर बल दिया कि भारत के भिन्न मार्ग अपनाए जाने चाहिये तथा पंचायतों के जरिये स्वशासन की कार्यप्रणाली का अनुसरण करना चाहिये।

गांधी जी ने कहा था “मैं नहीं जानता कि उद्योगीकरण हर हालत में किसी भी देश के लिए जरूरी ही है। भारत के लिए तो वह उससे भी कम जरूरी है। मेरा यह विश्वास है कि आजाद भारत दुःख से कराहती हुई दुनिया के प्रति अपने कर्तव्य का ऋण अपने गांवों का विकास करके और दुनिया के साथ मित्रता का व्यवहार करके और इस तरह से सादा परन्तु उदान्त जीवन अपनाकर ही चुका सकता है। धन की पूजा ने हमारे ऊपर भौतिक समृद्धि के जिस जटिल और शीघ्रगामी जीवन को लाद दिया है, उसके साथ ‘उच्च चिन्तन’ का मेल नहीं बैठता। जीवन का सम्पूर्ण सौन्दर्य तभी खिल सकता है जब हम उच्च कोटि का जीवन जीना सीखें।”

चार्ल्स मेटकाफ ने लिखा था “ऐसा लगता है, जहाँ हर वस्तु समाप्त हो जाती है, वहाँ भी उनका (पंचायतों का) अस्तित्व बना रहता है।” सर पर सिवल ग्रिफथ ने भारतीय लोक जीवन में पंचायतों के गरिमापूर्ण स्थान पर टिप्पणी करते हुए अपनी पुस्तक

“ब्रिटिश इम्पेक्स ऑन इण्डिया” में लिखा है कि “इन लघु स्वशासी गणराज्यों के कारण ग्रामीण भारत में नागरिक चेतना स द ढ है और जनजीवन में शालीनता दिखाई देती है।”

विकेन्द्रीकरण का स्वरूप रहे, इसके लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय स्तर के नेता आधुनिक पोपुलिज्म का प्रयोग न करें। राजनैतिक संस्थाओं के सबसे निचले स्तर में हस्तक्षेप न के बराबर हो, जिसमें उन्हें स्वाभाविक नेतृत्व के विकास करने का अवसर प्रदान हो सके।

हमारी राजनीतिक व्यवस्था के गतिशील न हो पाने का एक प्रमुख कारण इसका केन्द्रित होना भी है। इसलिए निम्न स्तर को प्रजातान्त्रिक प्रणाली के द्वारा अधिकार देना चाहिये। देश में व्याप्त गरीबी को दूर करने के लिए केन्द्र ही योजनाएँ बनाता है तथा इसे लागू भी करवाता है। योजनाओं को सम्पूर्ण सफलता न मिलने पर दोष मढ़ा जाता है। सच्चाई यह है कि योजनाओं का वांछित लक्ष्य अधूरा रह जाता है। इस तरह की समस्याओं को राजनैतिक प्रक्रिया (विकेन्द्रीकरण) द्वारा ही हल किया जा सकता है।

देश में लोकतन्त्र की स्थापना का स्वाभाविक अर्थ यह था कि ग्रामवासियों को भी लोकतन्त्र का पूरा-पूरा अवसर मिले। नगरों में नगरपालिका का प्रचलन पहले ही हो चुका था, अतः स्वतन्त्रता मिलने पर देश के नायाब लोगों ने ग्राम स्वराज की दिशा में चिन्तन शुरू कर दिया। इस लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रेरणा भी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने दी थी। उन्होंने अपनी ग्राम स्वराज्य की अवधारणा को अपने पत्र “हरिजन” में अभिव्यक्ति दी।

देश के प्रथम प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने इस कार्य को आगे बढ़ाया। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण कार्यक्रम पचास के दशक से शुरू हुआ। यह कार्यक्रम बलवन्तराय मेहता समिति पर आधारित था, समिति के सदस्यों के साथ श्री मेहता ने भारत के विभिन्न गांवों का दौरा किया और ग्रामीण कार्यकर्ताओं, किसानों व सरपंचों के साथ व्यापक विचार विमर्श करके सरकार को त्रिस्तरीय पंचायती राज का सुझाव प्रस्तुत किया।

यद्यपि पंचायती राज संस्थाएँ शासन के समस्त कार्यों का सम्पादन करने में सक्षम नहीं हो पाई हैं। किन्तु विकेन्द्रीकृत नियोजन तथा उनको प्रदान किये गए अधिकारों के आधार पर जीर्ण-शीर्ण ढांचे को पुनर्स्थापित करने का प्रयास निःसन्देह गांधी जी के विचारों से मेल खाता है।

ग्राम विकास राज्य मन्त्री श्री रामेश्वर ठाकुर ने 23 अप्रैल को “अविस्मरणीय दिवस” बताया। उन्होंने कहा कि “लोगों के हाथ में शक्ति को हस्तान्तरित करने का महात्मा गांधी का सपना साकार हो गया है। केन्द्र व राज्यों में सरकार चलाने वाले पांच हजार निर्वाचित प्रतिनिधियों के स्थान पर हमारे पास राष्ट्र के प्रशासन हेतु 22.5 लाख निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे।

इन सभी बातों से यह पता चलता है कि “लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण”, ‘ग्रामस्वराज’ या ‘ग्राम विकास’-ग्राम के द्वारा यह सभी उद्देश्य पंचायती राज संस्थानों के सही संचालन से ही पूरे हो सकते हैं। ये कार्य तभी पूरे होंगे जब पंचायती राज पर हमारा विश्वास पक्का होगा।

### गांधीजी का अर्थ दर्शन और ग्राम विकास

गांधी जी के आर्थिक विचारों का आधार रोजी-रोटी सिद्धान्त है। उनके आर्थिक विचार टालस्टाय, कारपेन्टर, बोन्डारेफ आदि पाश्चात्य लेखकों तथा विद्वानों से प्रभावित हुए हैं। टालस्टाय से गांधी जी ने यह प्रेरणा ली कि जीवित रहने के लिए मनुष्य को कार्य करना चाहिये। रूसी लेखक बोन्डारेफ ने सर्वप्रथम यह विचार प्रस्तुत किया कि मनुष्य अपनी रोटी स्वयं काम करके कमाए। गांधी जी ने अर्थ-रचना का ढांचा जो सुझाया था, उसमें सामान्य जनता तथा गरीब से गरीब आदमी को रखा गया। श्रम के बिना व्यक्ति को भोजन करने का अधिकार नहीं, यही गांधी जी का मूल लक्ष्य था। आर्थिक विचारों में भौतिकतावाद की तुलना में मानवीय मूल्यों को अत्यधिक बल देते थे।

उनका यह मानना था कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था शोषण का पूरा बहिष्कार करती है और शोषण ही हिंसा का सार तत्व है। इसलिए अहिंसक बनने के लिए गांवों का विकास करना होगा, तथा अपना मानस ऐसा ही बनाना होगा कि जो हर सवाल पर गांवों के हित की दृष्टि से विचार करे। यदि देखा जाए थोड़ी हिंसा के बिना कोई भी कार्य सम्भव नहीं है, परन्तु हम इसे घटा कर



कम कर सकते हैं। इसलिए अहिंसा से जिसकी श्रद्धा है वह ऐसे ही उद्योग धंधों में लगेगा जिससे कम से कम हिंसा होगी। गांधी जी श्रम को गौरवपूर्ण स्थान देते थे। उनका मानना था कि श्रम सुख तथा सन्तोष का स्रोत है। निःसन्देह व्यक्ति का वह क्षण बड़ा ही सुखकारी होता है, जब उसके श्रम का प्रत्यक्ष फल उसके सामने होता है।

वे उद्योगों के केन्द्रीयकरण के खतरों से पूर्णतः परिचित थे। इसलिए उन्होंने विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए विकेन्द्रीकरण सहायक होता है। उद्योगों का विकेन्द्रीकरण आधुनिक समय की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। सामाजिक अन्याय को रोकने के लिए तथा पूंजी के एकाधिकार एवं संग्रह को केवल गिनेचुने लोगों में सीमित होने से बचाने के लिए औद्योगिक विकेन्द्रीकरण ही एक मात्र उपाय दिखाई देता है। इसका उदाहरण जापान है, वहां लोहा, ईस्पात, रूई, कोयला तथा अन्य वस्तुओं का अभाव होते हुए भी इन सभी वस्तुओं का आयात कर उद्योगों का विकास किया है। वही उदाहरण भारत के पंजाब के कुछ भागों में प्रयुक्त हुआ है।

गांधी जी ग्रामीण उद्योगों के प्रबल समर्थक थे। बेरोजगारी, गरीबी, आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए वे लघु उद्योग तथा कुटीर उद्योगों के समर्थक थे। उन्होंने कहा था "मे यन्त्रों के विरुद्ध नहीं हूँ, किन्तु यन्त्रों के दीवानेपन के खिलाफ हूँ। यन्त्रों से काम लेना उसी समय अच्छा होता है जब किसी निर्धारित काम को पूरा करने के लिए आदमी बहुत ही कम हो।"

हमारे देश में लाखों-करोड़ों लोग बेरोजगार हैं। ऐसी दशा में अमर्यादित और अनियन्त्रित यन्त्रीकरण से बेरोजगारी और बढ़ेगी। विदेशों में घर बैठे बेरोजगारी भत्ता मिलता है। लेकिन भारत जैसे गरीब देश में न तो यह संभव है न ही न्यायोचित। ऐसी दशा में लोगों को विकेन्द्रित उद्योगों द्वारा काम देकर बेरोजगारी की समस्या को दूर किया जा सकता है।

गुन्नार मिरडल ने "एशियन ड्रामा" में ठीक ही लिखा है कि "दक्षिण एशियाई देश पश्चिमी ढंग के उच्च संगठित उद्यमों के लघु दीपों को खड़ा करने का खतरा उठा रहे हैं जो कि अवरोध के समुद्र में घिरे रहेंगे।"

गांधी जी यह मानते थे कि भारत के आर्थिक नियोजन में कुछ बड़े पैमाने के उद्योगों को स्थान देना होगा। किन्तु वे राज्य के स्वामित्व में हो, न कि निजी स्वामित्व में। गांधी जी के विचारों का वास्तविक अर्थशास्त्र यह है कि धन संग्रह प्रगति के मार्ग में बाधक है। वे अर्थशास्त्र की आधुनिक पाठ्य-पुस्तकों की तुलना में विश्व की धार्मिक कृतियों को अर्थशास्त्र के नियमों की अधिक सुरक्षा पूर्ण तथा ठोस कृतियां मानते हैं।

बापू का सम्पूर्ण आर्थिक विचार गांव के सर्वांगीण विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वह गांवों में शान्ति, प्रेम, सुख समृद्धि की स्थापना करना चाहते थे। उनके अनुसार, ग्रामवासियों का उनके संसाधनों और आर्थिक स्त्रोंतो पर नियन्त्रण होना चाहिये। ग्राम के स्तर पर ही साधनों तथा आवश्यकताओं को देखते हुए उत्पादन व विकास की "योजनाएँ बनाई जानी चाहियें, वह ग्रामीण जनता को हस्तकला, ग्रामोद्योग के जरिये स्वरोजगार पर बल देते थे।"

उनका मानना था कि "शहरों को उन चीजों का उत्पादन नहीं करने दिया जाएगा, जिन्हें गांव उतने ही अच्छे ढंग से उत्पादित कर सकता है। शहरों का उचित कार्य यह होता है कि वे गाँवों द्वारा उत्पादित माल को उठाने का कार्य करें।"

गांधी जी आर्थिक व्यवस्था को विकेन्द्रीकरण के आधार पर पुर्नगठन करना चाहते थे। गांधी जी उत्पादन, वितरण तथा सत्ता के विकेन्द्रीकरण को आर्थिक नीतियों का मुख्य आधार मानते थे। उनका मत था कि विकेन्द्रित उत्पादन द्वारा ही मानव शक्ति का पूरा उपयोग किया जा सकता है। अतः ग्रामों के विकास से ही भारत का विकास सम्भव है। अतः जो भी उत्पादन की योजना बनाई जाए, गांवों को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिये।

वे पूंजीपतियों को गरीबों का संरक्षक मानते थे। गांधी जी ये मानते थे कि पूंजीपति यह सोचे कि उनके पास जो सम्पत्ति है वह उन्हें समाज से प्राप्त हुई है। इसलिये वे उस सम्पत्ति का उपभोग सारे समाज के लिए करें। खासकर पिछड़े वर्गों के लिए करें। इस तरह की भावना होगी तो आर्थिक लक्ष्य पूरा हो सकता है। व्यक्तिगत स्वामित्व बल के स्थान पर सामाजिक स्वामित्व पर अधिक बल देते थे।

गांधी जी के अनुसार, "समाज में अमीर धन का संचय गरीब के बिना नहीं कर सकता अर्थात् निर्धन के सहयोग से ही वह धन का संचय करता है। श्रम स्वयं अपनी विक्रय पूंजी रखता है जो कि पूंजीपति कभी नहीं रखता है। श्रम पूंजी से मुक्त है

और पूंजी को श्रम के प्रति प्रेम रखना ही पड़ेगा।”

गांधी जी का मानना था कि आर्थिक समानता का लक्ष्य तभी पूरा हो सकता है जब पूंजीपति इस उत्तरदायित्व को समझ ले कि जो पूंजी हमारे पास है वह हमें समाज से ही प्राप्त हुई है और इसका उपयोग समाज के व्यापक कार्यों तथा पिछड़े वर्गों की उन्नति के लिये ही है।

वे मानते थे कि केवल आर्थिक विकास से मानव जीवन पूर्ण सुखी एवं सन्तुलित नहीं हो सकता। पड़ौसी का अधिकार छीनकर सम्पन्न जीवन अशान्ति पैदा करेगा तथा समाज कई बुराईयों से ग्रस्त हो जायेगा। इसलिये उन्होंने अपने जीवन मान को उँचा उठाने वाले आदर्शों एवं मूल्यों पर आधारित अर्थतन्त्र की स्थापना का समर्थन किया।

गांधी जी ने ग्राम के विकास व ग्रामीण स्वराज के लिये कार्यक्रम प्रस्तुत किये। उनके अनुसार चरखा, कुटीर उद्योग, सहकारी खेती, ग्राम पंचायत एवं सहकारी संस्थाएँ, राजनैतिक तथा आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण तथा शिक्षा व महिलाओं का उत्थान आदि महत्वपूर्ण थे।

### गांधी जी और ग्राम पंचायतों के कार्य

गांधी जी का मानना था कि गांवों को इतना स्वावलम्बी बनाया जाए कि वे आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन स्वयं कर सकें। ग्राम पंचायतों के क्रिया कलापों में समन्वय स्थापित करने के लिए जिला पंचायत होगी जो आदेशात्मक संस्थाएँ न होकर पूर्णतः परामर्शदात्री होंगी। इसके अतिरिक्त ग्रामीण समुदायों के द्वारा जिला पंचायतों का चुनाव कराया जायेगा।

उनके अनुसार “ग्राम पंचायतें अधिकतम कार्य अपने हाथ में लेगी। ग्राम पंचायतों का मुख्य कार्य लोगों में ईमानदारी तथा परिश्रम की प्रवृत्ति उत्पन्न करना है तथा विवादों को दूर करना है। खाद्य पदार्थों में वृद्धि, दुग्ध उत्पादन ग्रामीणों की स्वच्छता व सफाई, नशीले पदार्थों पर निषेध, अस्पृश्यता निवारण, पशुओं की स्थिति में सुधार आदि बातों का सही ढंग से ध्यान रखा जाए तो सच्चे लोकतन्त्र का निर्माण होगा।”

गांधी जी का मानना था कि पंचायतों को अधिक से अधिक अधिकार मिलने चाहियें जिससे उनकी स्वतन्त्रता बनी रहे, तथा वे ग्रामीण समाज के विकास में अपेक्षित योगदान कर सकें। उनका मत था कि “पंचायतों को जितने अधिकार मिलेंगे लोगों के लिए उतना ही बेहतर होगा।” पंचायती व्यवस्था को सफल बनाने के लिए जहां जनसहयोग की आवश्यकता होती है उसी तरह उनके अधिकार दिये जाने की भी होती है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद महात्मा गांधी और नेहरू जी ने इस संस्था को पुनर्जीवित करने का अत्यधिक प्रयास किया। गांधी जी का मानना था कि ग्राम की सबसे छोटी ईकाई के रूप में पंचायत को विकसित किया जाए। ग्रामवासी अपने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास में योगदान दें।

गांधी जी का मानना था “पंचायत भारत की प्राचीनतम संस्था है, इसलिए उसका फिर से प्रचलन कोई नई बात नहीं होगी। गांव का शासन चलाने के लिए गांव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जायेगी। इसके लिए खास निर्धारित नियमानुसार पंचायत चुने। इन चुने हुए पंचों को पर्याप्त मात्रा में अधिकार दिया जायेगा।” हाल ही में संविधान संशोधन किया गया। इन पंचायतों के माध्यम से ग्रामीण विकास के कार्य आरम्भ किये गए हैं। निश्चित ही इन कार्यक्रमों से गांधी जी का ग्रामीण विकास का सपना पूर्ण होगा।

गांधी जी के अनुसार “इन विकास कार्यों को पूरा कर पाना कोई असम्भव नहीं है। सच्चे प्रजातन्त्र और ग्राम जीवन का कोई भी एक गांव को लेकर बैठ सकता है, और उसी को सारी दुनियां मानकर उसके काम में जुट सकता है, निश्चय ही उसे इसका फल मिलेगा। वह गांव में बैठते ही एक साथ गांव के चौकीदार, वैद्य, सफाई व शिक्षक का कार्य शुरू कर दे। यदि कोई उसकी सहायता के लिए न आए तो भी वह अपने काम में जुटा रहे।” उनका मानना था कि गांवों का कार्य कामचलाऊ नहीं अपितु स्थायी होना चाहिये। ग्राम शासन में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का आधार रखने वाला सम्पूर्ण प्रजातन्त्र काम करेगा। गांधी जी का स्पष्ट मत था कि “पंचायतों को प्रभावी और सक्षम बनाने के लिए लोगों में शिक्षा के स्तर में पर्याप्त वृद्धि करनी होगी।”

लोकसेवक संघ - 29 जनवरी 1948 के दिन यानि अपनी मृत्यु से एक दिन पूर्व गांधी जी ने लोक सेवक संघ के विधान का

मसौदा तैयार किया था। वे चाहते थे कि कांग्रेस देश की आजादी के बाद लोक सेवक संघ का रूप ले ले। उन्होंने अन्य योग्यता के साथ नीचे की योग्यता तय की थी।

1. हर सेवक अपने हाथों से कते हुए सूत की खादी या चरखा संघ द्वारा प्रमाणित खादी हमेशा पहनने वाला और नशीली चीजों से दूर रहने वाला होना चाहिये। अगर वह हिन्दू है तो अपने परिवार में से हर प्रकार की छुआछुत दूर करनी चाहिये। स्त्री पुरुष को किसी भेदभाव के बिना धर्मों का पालन तथा विश्वास रखने वाला होना चाहिये।
2. अपने कार्यक्षेत्र में उसे हर एक गांव वाले के निजी सम्पर्क में रहना चाहिये।
3. गांव वालों में से वह कार्यकर्ताओं को चुनेगा और उन्हें तालिम देगा। इन सबका एक रजिस्टर रखेगा।
4. वह अपने रोजाना के काम का रिकॉर्ड रखेगा।
5. वह गांवों को इस प्रकार संगठित करेगा कि वे अपनी खेती और गह उद्योगों द्वारा स्वयं स्वावलम्बी बन जाए।
6. गांव वालों की पैदा होने से मरने तक शिक्षा का प्रबन्ध करेगा।

### वर्तमान संदर्भ में गांधी दर्शन की सार्थकता

महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज्य तथा स्वावलम्बन के लिए पंचायती राज पर प्रबल विश्वास तथा समर्थन किया है। भारत पांच लाख गांवों का देश है, और भारत की जनशक्ति पर अत्यधिक विश्वास करने वाले गांधी जी का मानना था कि देश का हर नागरिक अपने स्तर पर सत्ता में भागीदार हो। यही लक्ष्य पंचायती राज संस्थाओं को साकार कर सकता है। यदि वर्तमान पंचायती राज का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे की सत्ता का वास्तविक हस्तान्तरण नहीं है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें पंचायती राज संस्थाओं को सत्ता में वास्तविक हस्तान्तरण नहीं देना चाहती है।

गांधी जी ने जहां आत्मनिर्भर गांव की कल्पना की थी, वहीं हमारे गांव, अर्थव्यवस्था के इस युग में अधिकतर आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर हो गए। हमारी पंचायती राज की योजना गांधी की योजना से इसलिए मेल नहीं खाती क्योंकि पंचायती राज योजना में सत्ता उपर से नीचे की ओर विकेन्द्रित होती दिखाई देती है।

भारत सरकार ने पंचायती राज के लिए संविधान का जो संशोधन किया है और जिसके अनुसार राज्यों में पंचायती राज कानून बनाए गए हैं, उनमें साफ-साफ यह कहा गया है कि पंचायतें "स्वशासन" की ईकाइयां होंगी। पंचायती राज की पहचान गांधी जी ने भी की थी तथा उन्होंने यह कहा था कि पंचायती राज में वे गुण होने चाहिये जो भारत के गणराज्य में है यानि गांव में गांव का राज होना चाहिये। पंचायती राज तभी स्वशासन की कसौटी पर खरा उतरेगा।

गांधी जी का मानना था कि प्रत्येक देश को दूसरे देश, प्रत्येक गांव, दूसरे गांव पर कम से कम आश्रित होना चाहिये। अपने उपभोग की वस्तु व्यक्ति को स्वयं बनानी चाहिये। गांधी जी ने कुटीर तथा लघु उद्योगों पर भी विशेष बल दिया था।

वर्तमान में आवश्यकता इतनी बढ़ गई है कि कोई भी देश या ग्राम दूसरे देश अथवा गांव की सहायता के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। प्रत्येक राष्ट्र किसी न किसी वस्तु के लिए दूसरे राष्ट्र पर निर्भर है। इस स्थिति में गांधी जी का आत्मनिर्भरता का सिद्धान्त बहुत संकुचित लगता है। लेकिन यदि हम देखें की कृषि के द्वारा आत्मनिर्भरता प्राप्त करना प्रेरणादायक है। लघु तथा कुटीर उद्योगों द्वारा रोजगार के अवसर तो मिल सकते हैं, लेकिन राष्ट्र को विकास की ओर नहीं ले जाया जा सकता है। लेकिन यदि गांधी जी के अनुसार हम स्वदेशी उद्योगों को बढ़ावा दें तो विदेशी कर्ज से मुक्ति और बेरोजगारी जैसी समस्याओं को सुलझा सकते हैं। पश्चिम की संस्कृति तथा तड़क-भड़क, फिजूल-खर्ची से बचने के लिए गांधी वादी मार्ग ही उचित है। स्वदेशी संसाधनों का उपयोग समुचित करके विदेशी पराश्रितता से मुक्त हो सकते हैं।

गांधी जी ने शारीरिक श्रम को अत्यधिक महत्ता दी है। वर्तमान भारत की सरकारों ने भारी उद्योगों तथा मशीनीकरण को प्राथमिकता दी तथा कुटीर तथा लघु उद्योगों की उपेक्षा की। इससे देश में बेरोजगारी को बढ़ावा मिला। ग्रामीण श्रम का पलायन कर शहरों की ओर चल पड़े। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि बड़े उद्योग चन्द लोगों के हाथों में सिमट कर रह गये व शारीरिक श्रम को सोचनीय माना गया।

वर्तमान पंचायती राज गांधी के स्वराज की अवधारणा पर भी खरा नहीं उतरा है। स्वराज का निर्माण लोकसमिति के अनुसार

होना चाहिये, और इस लोक समिति का निश्चय बालिग मताधिकार से अधिकतम लोगों द्वारा किया जाना चाहिये। यदि इस कसौटी पर हम आज के पंचायती राज को देखना चाहें तो हाल ही में पंचायती राज के चुनाव तक के आंकड़े यह बताते हैं कि केवल 45 प्रतिशत से अधिक 65 प्रतिशत मतदाता द्वारा चुनी हुई पंचायतें कितनी लोक समिति पर आधारित हैं। गांधी जी ने अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सत्य अहिंसा के साधनों को अपनाने की बात कही थी। किन्तु अब जो स्थितियां हैं उन्हें कौन नहीं जानता?

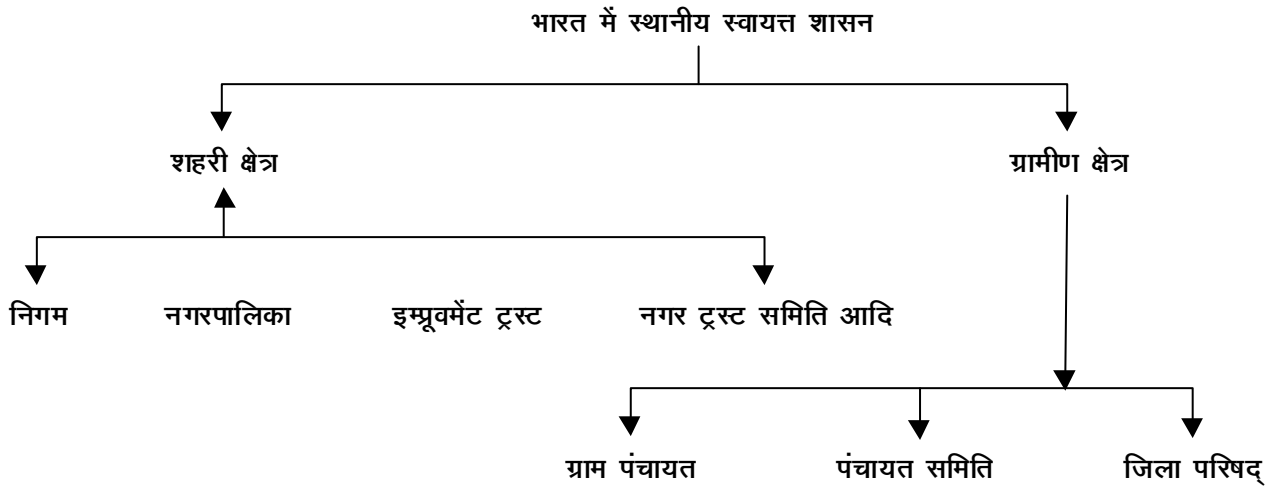
महात्मा गांधी ने विचार दिया था कि जब सत्ता का दुरुपयोग हो तो उसका प्रतिकार करने की क्षमता का विकास ग्राम स्वराज के अन्तर्गत होना चाहिये और ग्राम स्वराज्य में जनता का सार्वभौमिक सत्ता शुद्ध नैतिक सत्ता के आधार पर स्थापित होनी चाहिये।

## अध्याय-29

# नगरीय स्थानीय सरकार

## (Urban Local Government)

भारत में स्थानीय शासन का वर्तमान स्वरूप ब्रिटिश शासन की देन है। यहाँ भी स्वायत्त शासन को बहुत कुछ वही रूप दिया गया जो ब्रिटेन में प्राप्त है। ब्रिटेन में स्थानीय स्वशासन के दो क्षेत्र हैं- शहरी (Urban) एवं ग्रामीण (Rural)। भारत में तदानुसार स्थानीय स्वायत्त-शासी संस्थाएँ दो वर्गों में बाँटी जा सकती हैं-शहरी और ग्रामीण। बड़े नगरों में इन्हें निगम कहा जाता है और मध्यम तथा छोटे शहरों में नगरपालिका। कई राज्यों में ग्रामीण क्षेत्रों में त्रि-स्तरीय प्रशासन को लागू किया गया है जिसे 'पंचायती राज' कहते हैं। देश के स्थानीय स्वायत्त शासन के ढाँचे को तालिका रूप में हम निम्नानुसार रख सकते हैं-



### महानगर

### (Metropolitan City)

शहरी इलाकों के किन क्षेत्रों को महानगर माना जाए और किन को नहीं, यह एक विचारणीय प्रश्न रहा है। एक महानगर क्षेत्र केवल बड़े आकार के नगर का ही द्योतक नहीं है वरन् इससे कुछ अधिक है। महानगर क्षेत्र की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जैसे - अत्यधिक भीड़भाड़, अस्थिर निवास, व्यापक दृष्टिकोण आदि; जहाँ के निवासियों में धर्म, जाति विश्वास, रंग, रुचि, व्यवसाय आदि के आधार पर अनेक विभिन्नताएँ होती हैं। यही कारण है कि ऐसे क्षेत्रों में प्रशासनिक समस्याएँ अत्यन्त जटिल होती हैं। अत्यधिक समस्याएँ होने के कारण सरकार के संचालन का प्रतिव्यक्ति व्यय भी अधिक होता है। इस क्षेत्र में प्रशासनिक निकायों के बीच समन्वय की समस्या भी अत्यन्त गम्भीर होती है।

भारत में बड़े-बड़े नगरों में इसी को अपनाया जा रहा है। वैसे तो भारत में बड़े नगरों में प्रशासन नगर निगमों द्वारा चलाया जाता है, किन्तु इनमें दिल्ली, कलकत्ता, चेन्नई और मुम्बई का विशेष स्थान है। इन चारों को महानगर क्षेत्र कहा जा सकता है। इन चारों का प्रशासकीय ढाँचा उनके अपने अधिनियमों पर आधारित है। देहली नगर निगम अधिनियम 1957 में बना था।

कलकत्ता नगरपालिका अधिनियम 1952 में, चेन्नई नगरपालिका अधिनियम 1919 में (1951 में संशोधित) तथा मुम्बई नगरपालिका अधिनियम 1888 में (यह 1955 में परिवर्तित किया गया) पास किए गए। इन अधिनियमों में चेन्नई तथा मुम्बई के अधिनियम अपेक्षाकृत अधिक पुराने हैं और इनमें समय-समय पर संशोधन किए जाते रहे हैं। दिल्ली नगर निगम का अधिनियम भारतीय संसद् द्वारा प्रशासित होता है जबकि अन्य तीनों ही अधिनियम अपनी-अपनी व्यवस्थापिका सभा द्वारा प्रशासित होते हैं।

## नगर निगम (Municipal Corporation)

नगर निगम शहरी क्षेत्र में प्रशासन की सर्वोच्च इकाई है। उसके सर्वोच्च अथवा शीर्षस्थ होने का आशय है कि यह अन्य प्रकार के नगर-शासनों पर अपनी सत्ता का प्रयोग करता है। नगर निगमों की स्थापना राज्यों में राज्य सरकार के तथा केन्द्र-शासित प्रदेशों में केन्द्र सरकार के विशेष नियम के अन्तर्गत की जाती है, उनका अस्तित्व एवं अधिकार राज्य या केन्द्र सरकार पर निर्भर करता है।

### नगर निगम के लक्षण

नगर निगम के कुछ मुख्य लक्षण निम्नानुसार हैं-

1. नगर निगम संविधान अथवा विधान के औपचारिक अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित किए जाते हैं।
2. नगर निगम को चार्टर के रूप में स्थानीय जनता पर शासन करने का अधिकार होता है।
3. नगर निगम के कार्यों की प्रामाणिकता के लिए कारपोरेट नाम एवं मोहर होती है।
4. नगर निगम को स्थानीय कार्यों के उत्तरदायित्वों के निर्वाह के लिए स्वायत्तता का अधिकार होता है।
5. नगर निगम एक वैधानिक संस्था है और नगर निगम अधिनियम में सामान्यतः निम्नलिखित तथ्यों का उल्लेख रहता है -
  - (i) नगर निगम की संरचना और उसकी शक्तियों का विवरण,
  - (ii) निगम के विभिन्न अधिकारियों और विभागों के मध्य शक्तियों का विवरण,
  - (iii) निगम के भौगोलिक क्षेत्र की सीमाओं का विवरण; एवं
  - (iv) मतदाताओं की योग्यता एवं मतदान करने की प्रक्रिया का विवरण।
6. राज्य सरकारों अथवा केन्द्र सरकारों द्वारा स्थापित किये जाने के कारण नगर निगमों की स्थिति 'सम्प्रभु संस्था' की नहीं होती है। इन्हें राज्य सरकारों अथवा केन्द्र सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है।
7. सामान्यतः बड़े-बड़े शहरों में ही नगर-निगमों की स्थापना की जाती है।
8. नगर-निगमों की स्थापना का अभी कोई निश्चित मापदण्ड निर्धारित नहीं किया जा सकता है। किन्तु बड़े शहरों में नगर निगम स्थापित किए जाएँ यह मुख्यतः एक नीति सम्बन्धी प्रश्न है जिसका समाधान जनसंख्या या आकार-क्षेत्र तथा साधन-स्रोतों की उपलब्धता इत्यादि पर निर्भर करता है।

डॉ. श्रीराम माहेश्वरी ने नगर निगमों के सामान्य लक्षणों का निम्नानुसार उल्लेख किया है-

1. कोई भी निगम राज्य के विधानाग द्वारा पारित संविधि के परिणामस्वरूप ही स्थापित किया जाता है।
2. निगमाध्यक्ष निगम का प्रमुख होता है, उसका कार्यकाल एक वर्ष होता है, किन्तु उसे दुबारा भी चुना जा सकता है।
3. नगरीय शासन का निगमात्मक रूप सामान्यतः विचारात्मक तथा कार्यकारी कार्यों के पथक्करण पर आधारित होता है।
4. राज्य-सरकार नियन्त्रण तथा परिवीक्षण की शक्तियाँ अपने हाथों में बनाए रखती हैं, यहाँ तक कि निगम को भंग करके प्रशासन को अपने हाथों में भी ले सकती है।

## नगर निगम की स्थापना का आधार

नगर निगम बनाने से पूर्व प्रायः उस स्थान से प्राप्त वार्षिक आय, स्थानीय जनता को अधिक सुविधाएँ देने की क्षमता आदि का आंकलन किया जाता है। नगर निगम स्थापित करने के निम्नलिखित सिद्धान्त निर्धारित किए जा सकते हैं-

1. घना बसा हुआ क्षेत्र
2. नगरपालिका का वर्तमान विकास और उसके भावी विकास की सम्भावनाएँ
3. नगरपालिका की वर्तमान और सम्भावित वित्तीय स्थिति
4. बढ़े हुए करों को वहन करने की जनता की क्षमता और आकाँक्षा
5. निगम के पक्ष में जनमत
6. क्षेत्र विशेष की महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों का आंकलन।

डॉ. श्रीराम माहेश्वरी ने लिखा है-ये सिद्धान्त वस्तुतः सुनिश्चित नहीं है। इन्हें तो किसी क्षेत्र में किसी प्रकार का नगरीय शासन स्थापित करने के लिए ध्यान में रखना पड़ेगा। सत्य यह है कि इस बात की एकमात्र निर्णायक राज्य सरकार ही है कि किस नगर को नगर का दर्जा दिया जाना चाहिए। समान्यतः जो नगर बड़ा होता है और जहाँ लोकमत निरन्तर नगर-निगम की माँग करता है उसे राज्य-सरकार नगर का दर्जा देने के लिए तैयार हो जाती है। जनसंख्या तथा राजस्व की कसौटी वास्तव में समय सापेक्ष होती है इसलिए समय के परिवर्तन के साथ-साथ सार्थकता कम होती रहती है।

## भारत में मुख्य नगर निगम

जनसंख्या, जन-घनत्व तथा वित्तीय अवस्था की दृष्टि से नगर निगमों में अन्तर किया जा सकता है। चेन्नई, मुम्बई और कलकत्ता देश के सबसे पुराने नगर निगम हैं। हैदराबाद, पटना, अहमदाबाद, बड़ौदा, सूरत, त्रिवेन्द्रम, कालीकट, कोचीन, मदुराई, पूना, नागपुर, शोलापुर, बंगलौर, कानपुर, आगरा, इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ, कलकत्ता, दिल्ली, जयपुर, जोधपुर तथा कोटा अन्य बड़े नगर निगम हैं।

### नगर निगम का संगठन (Organisation)

भारत में नगर निगम में ये सत्ताएँ या घटक सम्मिलित हैं- 1. परिषद् (Council), 2. मेयर या महापौर (Mayor), 3. समितियाँ (Committees), एवं 4. नगर आयुक्त (Municipal Commissioner)।

1. **परिषद् (Council)** - परिषद् नगर निगम का एक अंग होता है तथापि इसकी शक्तियाँ और गरिमा इतनी व्यापक होती है कि प्रायः इसको ही नगर निगम के नाम से जाना जाता है। परिषद् एक प्रकार से स्थानीय विधानसभा है जो स्थानीय शासन के सम्बन्ध में जनता की इच्छा को प्रकट करती है और फलस्वरूप नगरीय कानून का रूप धारण कर लेती है। परिषद् में नगर के जो चुने हुए सदस्य होते हैं उन्हें पार्षद कहा जाता है। वे वयस्क मताधिकार के आधार पर तीन से पाँच वर्ष की अवधि के लिए चुने जाते हैं। चुनाव के लिए नगर को उतने ही क्षेत्रों (Wards) में विभाजित किया जाता है जितने स्थान परिषद् में होते हैं। अनेक विद्वानों का अभिमत है कि परिषद् का तीन वर्ष का कार्यकाल बहुत छोटा होता है। उचित यही है कि परिषद् का कार्यकाल पाँच वर्ष का हो। परिषद् में निर्वाचित सदस्य तो होते ही हैं उनके अतिरिक्त कुछ सदस्य निर्वाचित पार्षदों द्वारा नगर के वयोवद्ध अनुभवी व्यक्तियों, महिलाओं और अन्य वर्गों में से चयनित किए जाते हैं जिन्हें एल्डरमैन (Aldermen) कहा जाता है। पार्षदों द्वारा इन नगर-वद्वों (Aldermen) का चयन लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण ही है।

इस प्रकार नगर निगम की परिषद् में दो प्रकार के सदस्य होते हैं-(क) वे पार्षद जो सीधे जनता द्वारा विभिन्न नगरीय क्षेत्रों (Wards) से चुने जाते हैं एवं (ख) वे सदस्य जो निर्वाचित पार्षदों द्वारा नगरवद्व (Aldermen) के नाम से परिषद् में लिए जाते हैं। उल्लेखनीय है कि प्रत्येक निगम में दोनों प्रकार के सदस्यों का होना अनिवार्य नहीं है। "मुम्बई जैसे कुछ निगमों की परिषदों में केवल निर्वाचित सदस्य सम्मिलित होते हैं, किन्तु अन्य निगमों में नगरवद्वों को भी परिषद्

में स्थान प्राप्त होता है।" नगरव द्वाँ को वे सभी अधिकार प्राप्त होते हैं जो निर्वाचित पार्षदों को होते हैं। निगम परिषदों में पिछड़े वर्ग और जनजातियों के लिए भी कुछ स्थान आरक्षित किए जाते हैं, लेकिन यह अनिवार्य नहीं है। मुम्बई नगर निगम में स्थानों के आरक्षण की परिपाटी कभी नहीं रही है।

देश के नगर निगमों के परिषदों के आकार में कोई एकरूपता नहीं है। परिषद् का आकार यदि छोटा होता है तो वह अधिक सुसंगठित और व्यवहार कुशल होती है। आकार बड़ा होने से प्रभावकारी ढंग से कम नहीं हो पाता है और पार्षदों की कर्तव्यपरायणता प्रायः अपेक्षित स्तर की नहीं रह पाती। नगर परिषद् के आकार के बारे में कहा जाता है कि स्थानीय क्षेत्र के अनुरूप चालीस से सौ सदस्यों वाली परिषद् उपयुक्त होती है।

2. **महापौर या मेयर (Mayor)** - नगर निगम में कार्यपालिका शक्तियाँ महापौर अथवा मेयर को सौंपी जाती हैं जो नगर का प्रथम नागरिक होता है। मेयर या महापौर नगर की प्रतिष्ठा और गरिमा का प्रतिनिधित्व करता है। मेयर का चुनाव निगम के निर्वाचित पार्षदों और नगरव द्वाँ द्वारा उन्हीं में से एक वर्ष के लिए किया जाता है। यदि निगम के सदस्य चाहें तो अगले वर्ष उसी व्यक्ति को पुनः मेयर चुन सकते हैं। मेयर के चुनाव की स्थिति सभी निगमों में एक जैसी नहीं है।

मेयर परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है, उसका परिषद् के कार्यालय पर प्रशासनिक नियन्त्रण होता है। दिल्ली आदि कुछ नगरों में मेयर को निगम के सभी अभिलेखों को देखने का अधिकार है। मेयर नगर के नागरिक प्रशासन के बारे में किसी भी नगरपाल से जानकारी प्राप्त कर सकता है। कुछ संविधियों के अनुसार मेयर को अधिकार दिया गया है कि संकटकाल में वह किसी काम को करने या रोकने का आदेश दे सकता है। आवश्यकता पड़ने पर मेयर परिषद् की विशेष बैठकें आमन्त्रित कर सकता है। यदि एक निश्चित संख्या में सदस्य माँग करें तो मेयर परिषद् की विशेष बैठक बुलानी पड़ती है। चेन्नई, बंगलौर, त्रिवेन्द्रम तथा कालीकट के नगर निगमों में यह व्यवस्था है कि निगम और राज्य सरकार के बीच सभी पत्र-व्यवहार मेयर के माध्यम से होगा, लेकिन मेयर किसी पत्र-व्यवहार को रोक कर नहीं रख सकता। मेयर पत्र-व्यवहार के समय अपनी टिप्पणी लिख सकता है। मध्य प्रदेश में यद्यपि मेयर को आपातकालीन मामलों में क्रियान्वयन करने या क्रियान्वयन को रोकने के लिए निर्देश देने का अधिकार है, लेकिन यह निर्देश उसे निगम परिषद् की अगली बैठक में कारण सहित रखने होते हैं जिसमें परिषद् का निर्णय ही मान्य समझा जाता है। उत्तर प्रदेश में मेयर को वरिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति सम्बन्धी शक्तियाँ सौंपी गई हैं, किन्तु ये सभी नियुक्तियाँ राज्य लोक सेवा आयोग के परामर्श से की जाती हैं। यद्यपि मेयर निगम का अध्यक्ष होता है और निगम में कार्यपालिका शक्तियाँ उसे सौंपी जाती हैं तथापि अपनी कुछ परिस्थितियों के कारण मेयर 'वास्तविक कार्यपालिका' नहीं है। मेयर निगम का प्रभावी नेता ने होकर औपचारिक अध्यक्ष ही रह जाता है।

मेयर की स्थिति का मूल्यांकन करते हुए डॉ. श्रीराम माहेश्वरी ने लिखा है-"अप्रत्यक्ष निर्वाचन तथा एक वर्ष के अल्प कार्यकाल के कारण निगमाध्यक्ष सक्रिय कर्मचारी नहीं है, बल्कि एक कठपुतली मात्र है। जिसका निर्वाचन पार्षदों द्वारा किया जाता है न कि प्रत्यक्ष जनता द्वारा। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि उसे जनता का आदेश प्राप्त है। अतः वह जनता के नाम न बोल सकता है और न अपना अधिकार जता सकता है क्योंकि प्रश्न उठ खड़ा होता है कि जनता का प्रतिनिधि कौन है-जनता द्वारा निर्वाचित पार्षद अथवा पार्षदों द्वारा निर्वाचित निगमाध्यक्ष? इसलिए माँग की गई है कि विशेषकर स्वयं निगमाध्यक्षों द्वारा वर्तमान स्थिति में परिवर्तन किया जाए और निगमाध्यक्ष का निर्वाचन जनता द्वारा किए जाने की व्यवस्था की जाए, किन्तु जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन में दो खतरें हैं-प्रश्न, इस प्रकार निर्वाचित निगमाध्यक्षों को समुचित अधिकारों और शक्तियों से विभूषित करना होगा क्योंकि जनता द्वारा निर्वाचित निगमाध्यक्ष को एक कठपुतली मात्र बनाकर रखना सर्वथा नीति विरुद्ध होगा। इससे उसके तथा परिषद् के बीच टकराव होने का डर रहेगा। द्वितीय, प्रत्यक्ष निर्वाचन में निगमाध्यक्ष तथा परिषद् के बीच आसमंजस्य के बीज निहित होते हैं क्योंकि यह निश्चित नहीं रहता है कि इस प्रणाली से जो व्यक्ति निगमाध्यक्ष चुना जाएगा वह पार्षदों को स्वीकार होगा ही, इससे फूट, कलह आदि उत्पन्न होंगे।"

निगमों में मेयर या महापौर के नीचे उपमहापौर (Deputy Mayor) होता है। उसके लिए परिषद् का सदस्य होना अनिवार्य है और उसका निर्वाचन पाँच वर्ष के लिए किया जाता है। उपमहापौर, महापौर के कार्यों और उत्तरदायित्वों की पूर्ति में सहायता करता है।



3. **समितियाँ (Committees)** - जिन कारणों से केन्द्रीय एवं राज्य व्यवस्थापिका को विभिन्न कार्यों की देखभाल के लिए अपने सदस्यों की समितियाँ बनानी पड़ती हैं वे कारण स्थानीय स्तर पर भी विद्यमान रहते हैं। नगर निगम परिषद् की बैठकें महीने में प्रायः एक या दो बार से अधिक नहीं हो पाती अतः निगम के लिए यह सम्भव नहीं होता कि वह स्वयं अपने सभी कार्य भली-भांति सम्पन्न करे। निगम परिषद् अपने बड़े आकार के कारण अपने उत्तरदायित्वों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने में प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर पाती। ऐसी स्थिति में परिषद् लोकतन्त्रीय पद्धति के अनुरूप अपनी नीतियों के सफल संचालन और क्रियान्वयन व पर्यवेक्षण के लिए कुछ समितियों का गठन करती है। समितियों के निर्माण से व्यक्तिगत शक्ति दुरुपयोग की सम्भावना कम हो जाती है। निगम परिषद् द्वारा नियुक्त समितियाँ दो प्रकार की होती हैं-

(i) सांविधिक समितियाँ (Statutory Committees)

(ii) गैर-सांविधिक समितियाँ (Non-Statutory Committees)

(i) **सांविधिक समितियाँ** - सांविधिक समिति वह है जिसकी रचना उस संविधि द्वारा की जाती है जिसके द्वारा निगम का निर्माण होता है। सांविधिक समितियाँ प्रत्येक नगर निगम में बनाया जाना आवश्यक है क्योंकि इनका उल्लेख अधिनियम के अन्तर्गत होता है। ये समितियाँ सीधे नगर-निगम संविधि या अधिनियम से सत्ता प्राप्त करती हैं। इनके गठन, शक्तियों, कार्यों और अधिकारों की रूपरेखा अधिनियम में दी जाती है।

शक्तियों और कार्यों की व्यापकता की दृष्टि से परिषद् की स्थाई समिति सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। स्थाई समिति एक मार्गदर्शक समिति के रूप में कार्य करती है जिसके हाथों में कार्यकारी, पर्यवेक्षणीय, वित्तीय एवं कर्मचारी वर्ग से सम्बन्धित शक्तियाँ होती हैं। वास्तव में स्थाई समिति निगम की कार्यकारी समिति के रूप में कार्य करती है। इस समिति का महत्वपूर्ण कार्य सम्पूर्ण नगर प्रशासन पर निगाह रखना है। स्थानीय समिति उन सभी शक्तियों का प्रयोग करती है जो अधिनियम द्वारा उसे सौंपे गए हैं। स्थानीय समिति परिषद् और नगरपाल के बीच की कड़ी है। वह दोनों की प्रभावकारिता को नियन्त्रित और प्रभावित करती है। यद्यपि स्थाई समिति अनेक मामलों में अपने निर्णयों के लिए परिषद् की स्वीकृति लेती है, लेकिन यह स्वीकृति सामान्यतः औपचारिकता मात्र होती है।

(ii) **गैर-सांविधिक समितियाँ** - इन समितियों का गठन परिषद् द्वारा अपने उपनियमों के अन्तर्गत किया जाता है। परिषद् अपने कार्यों के सुचारु एवं सफल क्रियान्वयन के लिए इन समितियों का निर्माण करती है। ये समितियाँ भिन्न-भिन्न विषयों और कार्यों में परिषद् की सहायता करती हैं।

सभी नगर निगमों में समितियों का गठन किया गया है, लेकिन उनकी संख्या, संगठन और कार्यों में एकरूपता नहीं है। प थक-प थक निगमों में उनका स्वरूप देखने को मिलता है। इन प्रमुख समितियों में इसके पहले वहाँ 1. वित्तीय एवं स्थापना समिति, 2. शिक्षा समिति, 3. स्वास्थ्य एवं बस्ती विकास समिति, 4. जलापूर्ति एवं सफाई समिति, तथा 5. निर्माण एवं कस्बा समिति को शामिल किया जाता है। सांविधिक एवं स्थाई समितियों के अतिरिक्त निगमों में सामान्य नियमों और प्रक्रियाओं के अन्तर्गत विशिष्ट समितियाँ तथा अस्थायी समितियों का भी गठन किया जाता है। अस्थायी समितियाँ उद्देश्य-विशेष के लिए बनाई जाती हैं और निगम द्वारा प्रदत्त कार्य का सम्पादन करती हैं। कुछ निगम अपने कार्य को अधिक सरल और सुगम बनाने के लिए क्षेत्रीय समितियों का गठन करते हैं। कतिपय समितियों में क्षेत्रीय समितियों का गठन किया जाता है। कुछ नगर निगमों ने अपने सम्पूर्ण क्षेत्र को अनेक छोटे-छोटे उपक्षेत्रों में विभाजित कर दिया है ताकि जनता को सामान्य सुविधाएँ आसानी से उपलब्ध कराई जा सकें। प्रत्येक क्षेत्र के स्थानीय शासन के लिए एक क्षेत्रीय समिति गठित की जाती है जो उस क्षेत्र के निवासियों की समस्याओं का समाधान करती है।

4. **नगर आयुक्त (Municipal Commissioner)** - नगर आयुक्त अथवा नगरपाल निगम का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है। वास्तव में उसे निगम का प्रमुख प्रशासनिक कार्यकर्ता समझना चाहिए। नगर आयुक्त उन कर्तव्यों का निर्वाह करता है जो अधिनियम द्वारा उसे सौंपे गए हैं। संकटकाल में वह कोई भी ऐसा काम कर सकता है जिसे वह आवश्यक समझता हो। नगर परिषद् की नीतियों को और संविधि के प्रावधानों को कार्यान्वित करना नगर आयुक्त का उत्तरदायित्व है।

नगर आयुक्त की नियुक्ति राज्य लोक सेवा आयोग के परामर्श से राज्य सरकार द्वारा की जाती है। वह प्रायः उच्च स्तर पर पेशेवर प्रशासक होता है जिसे राज्य सरकार नगर का प्रशासन करने के लिए नियुक्त करती है। वह अपना वेतन निगम से प्राप्त करता है। नगर आयुक्त का कार्यकाल भिन्न-भिन्न नगर निगमों में भिन्न है। चेन्नई और मुंबई नगर निगमों में उसका कार्यकाल तीन वर्ष का है तो कलकत्ता और दिल्ली नगर निगमों में यह पाँच वर्ष है। राज्य सरकार को अधिकार है कि वह उसके कार्यकाल में वृद्धि कर दे। निगम के पार्षदों की शिकायत अथवा उसके अयोग्य सिद्ध होने पर राज्य सरकार नगर आयुक्त को अपने पद से हटा सकती है। यद्यपि गैर-सरकारी व्यक्ति को नगर आयुक्त पद पर नियुक्त करने पर कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं है तथापि सरकार प्रायः सेवारत लोक सेवक को ही इस पद पर नियुक्त करती आई है। नगर आयुक्त की नियुक्ति की अवधि का प्रायः संविधि या अधिनियम में उल्लेख रहता है। नगर आयुक्त की शक्तियों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

- (i) वे शक्तियाँ जो उसे नगर निगम अधिनियम द्वारा प्राप्त होती है एवं
- (ii) वे शक्तियाँ जो उसे नगर निगम परिषद् अथवा उसकी स्थाई समिति द्वारा प्रदान की जाती है।

नगर आयुक्त को विविध प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। प्रशासनिक, वित्तीय और निर्वाचन सम्बन्धी क्षेत्रों में उसके विभिन्न उत्तरदायित्व हैं। निगम के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में उसे निगम परिषद् तथा उसकी समितियों की बैठकों में बोलने का अधिकार है, किन्तु वह मतदान नहीं कर सकता। निगम के सभी कर्मचारी नगर आयुक्त के नियन्त्रण और पर्यवेक्षण में कार्य करते हैं तथापि नियुक्ति, पदोन्नति एवं अनुशासन के मामलों में परिषद् तथा उसकी समिति भी नगर आयुक्त की शक्ति में भागीदार होती है। यह स्थिति निगम कर्मचारियों के सम्बन्ध में नगर आयुक्त की स्थिति को निश्चय ही कमजोर करने वाली है। नगर परिषद् कर्मचारियों पर इस प्रकार का दोहरा नियन्त्रण अनुशासन को क्षीण करता है। नगर आयुक्त निगम और स्थाई समितियों के निर्णय के लिए नीति-प्रारूप तैयार करता है। कुछ नगर निगम अधिनियमों में नगर आयुक्त को अन्तिम अधिकार दिए गए हैं।

नगर आयुक्त को पर्याप्त वित्तीय शक्तियाँ प्राप्त हैं। विधि के अनुसार यद्यपि निगम का बजट पहले स्थाई समिति द्वारा स्वीकृत एवं बाद में परिषद् द्वारा पारित किया जाता है, लेकिन बजट तैयार करने का उत्तरदायित्व नगर आयुक्त का ही है। व्यवहार में नये करों के प्रस्तावों के सम्बन्ध में अभिक्रम वही करता है। परिषद् द्वारा बजट पारित कर देने के उपरान्त नगर आयुक्त स्थाई समिति के पास यह अधिकार प्राप्त करने के लिए जा सकता है कि वह बजट अनुदानों के अन्तर्गत किसी राशि को एक छोटी मद में से दूसरी में अन्तरित कर सके। कुछ छोटे कर्मचारियों की नियुक्ति का भी उसे अधिकार है। वह निगम के सभी दस्तावेजों और कागजातों का प्रभारी अधिकारी होता है। आपातकाल में नगर आयुक्त को अधिनियम की विशिष्ट और असामान्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

नगर आयुक्त नगर परिषद् के प्रति उत्तरदायी होता है। वह परिषद् की बैठकों में भाग लेता है और पार्षदों के प्रश्नों के जवाब उसे ही देने होते हैं। वह परिषद् के प्रस्तावों का क्रियान्वयन करता है। नगरीय सेवाओं के अधिनियम, नियमों, उपनियमों के प्रावधानों के निष्पादन का उत्तरदायित्व नगर आयुक्त का है। परिषद् और नगर आयुक्त के बीच सम्बन्ध कुछ इस प्रकार के हैं जैसे कि एक प्रमुख तथा उसके अभिकर्ता के बीच हुआ करते हैं। परिषद् का उस पर नियन्त्रण रहता है। परिषद् यह निर्धारित करती है कि नगर आयुक्त अपनी शक्तियों का प्रयोग किस प्रकार करेगा। वह प्रस्ताव पारित करके राज्य सरकार से उसे वापस बुलाने की माँग भी कर सकती है।

## नगर निगम के कार्य

### (Functions)

स्थानीय नागरिकों की समस्याओं को दूर करने और उन्हें अधिकाधिक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए नगर निगम को अनेक कार्य करने होते हैं -

### अनिवार्य कार्य (Obligatory Functions)

1. पीने योग्य जल की व्यवस्था और उसका वितरण करना।
2. नालियाँ एवं ऐसी ही अन्य सार्वजनिक सुविधाओं का निर्माण तथा सफाई व्यवस्था करना।

3. बिजली का वितरण करना।
4. सड़क परिवहन सेवाओं की व्यवस्था करना।
5. कीचड़ तथा मल को इकट्ठा करना और हटाना।
6. गन्दी बस्तियों की सफाई करना।
7. मुर्दों का अन्तिम संस्कार करने के लिए श्मशान भूमि का नियमन एवं देखभाल करना।
8. जन्म तथा मृत्यु को पंजीकृत करना।
9. बीमारियों की रोकथाम के लिए जनता के टीका लगवाना।
10. खतरनाक बीमारियों को रोकना।
11. अस्पताल, डिस्पेन्सरी तथा अनार्थों के लिए कल्याण केन्द्र खोलना।
12. अग्नि-शमन सेवा की व्यवस्था करना।
13. खतरनाक एवं घातक व्यापारों पर नियन्त्रण रखना।
14. खतरनाक भवनों को हटा देना।
15. सार्वजनिक सड़कें, गालियाँ एवं पुलिया बनवाना।
16. खाद्य पदार्थों तथा भोजनालयों का नियमन तथा नियन्त्रण करना।
17. सार्वजनिक गलियों में प्रकाश एवं सफाई का प्रबन्ध करना।
18. गलियों एवं पुलियाओं पर से बेकार चीजों को हटाना।
19. गलियों एवं मकानों के नम्बर लगाना तथा गलियों एवं रास्तों के नाम रखना।
20. प्राथमिक शिक्षा के लिए स्कूल खोलना।
21. बिजली वितरण, सड़क यातायात एवं जल-वितरण सेवाओं के लिए उद्यमों की रचना, स्थापना एवं प्रबन्ध करना।
22. नगरपालिका कार्यालय एवं निगम की अन्य सम्पत्ति की रचना एवं मरम्मत।
23. गृह कर एकत्रित करना।
24. सार्वजनिक शौचालयों की व्यवस्था करना।
25. सड़कों एवं फुटपाटों से अतिक्रमण हटाना।

#### **ऐच्छिक कार्य (Discretionary Functions)**

1. अन्य साधनों द्वारा प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देना।
2. पुस्तकालयों, अजायबघरों, कला-प्रदर्शनियों आदि का आयोजन करना।
3. सार्वजनिक पार्क, बगीचे, अखाड़े तथा मनोरंजन-गृह बनाना।
4. जनता के लिए घरों का निर्माण करना।
5. भवनों एवं भूमि का सर्वेक्षण करना।
6. शादियों का पंजीकरण करना।
7. आराम-गृह, गरीब गृह, बालक गृह, वृद्ध गृह, रेन बसेरा आदि का प्रबन्ध करना।
8. आवारा पशुओं को पकड़ना।

उपर्युक्त अनिवार्य तथा ऐच्छिक कार्यों का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि नगर निगम लोक-निर्माण, जन-स्वास्थ्य, जन-सुरक्षा तथा सुविधाएँ और चिकित्सीय सहायता और राहत जैसे महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित करता है।

अगर देश के नगर निगमों के कार्यों का मूल्यांकन किया जाये तो कहा जा सकता है कि उनके द्वारा अनिवार्य कार्यों का सम्पादन न तो प्रभावशाली ढंग से किया गया है और न ही संतोषजनक रूप से। फलस्वरूप महानगरों में गंदगी का साम्राज्य रहता है और जीवनोपयोगी सुविधाओं का अभाव रहता है। जल निकासी की समुचित व्यवस्था का अभाव, सर्वत्र टूटी-फूटी सड़कें, पेयजल की समुचित व्यवस्था का अभाव, चिकित्सा सेवाओं का अभाव तथा मल-निकासी की समुचित व्यवस्था का अभाव जैसे पहलू नगर निगमों की असफलताओं का परिचय देते हैं। इन अभावों और कमियों के बावजूद नगर निगम नागरिकों को महत्त्वपूर्ण सुविधाएँ और राहत पहुँचाता है अतः इनकी उपयोगिता निर्विवाद है।

### **नगर निगम की आय के साधन (Income Resources)**

नगर निगम की आय के प्रमुख साधनों में राज्य सरकारों द्वारा प्राप्त अनुदान, व्यापारिक प्रतिष्ठानों से प्राप्त आय, फीस द्वारा प्राप्त आय, करों द्वारा प्राप्त आय तथा ऋण हैं।

### **नगर निगम पर नियन्त्रण (Control)**

केन्द्र-शासित प्रदेशों वाले नगर निगमों पर केन्द्र सरकार तथा राज्यों में विद्यमान नगर निगमों पर राज्य सरकारों का नियन्त्रण रहता है। निगमों को उन्हीं कार्यों को सम्पादित करने की स्वतन्त्रता होती है जिनके लिए केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा निर्मित अधिनियमों के अन्तर्गत उन्हें अधिक त किया गया है। नगर निगमों के कार्य-कलापों को न्यायपालिका में चुनौती दी जा सकती है।

## **नगरपालिका (Municipality)**

भारत के विभिन्न नगरों में नगरपालिकाओं का प्रारम्भ किसी न किसी रूप में ब्रिटिश शासनकाल में ही हो चुका था। देश में कोई ऐसा राज्य नहीं है, जहाँ ऐसा निकाय न हो। राजस्थान में मुख्य शहरों में नगरपालिका को नगर परिषद् कहा जाता है, जबकि साधारणतः छोटे-शहरों अथवा कस्बों में इन्हें नगरपालिकाएँ या म्युनिसिपल बोर्ड कहा जाता है। नगर परिषद् और नगरपालिका के संगठन, कार्यों तथा अधिकारों में कोई आधारभूत अन्तर नहीं पाया जाता है। नगरीय स्थानीय स्वायत्त शासन की इन संस्थाओं का नामकरण नगर की जनसंख्या पर निर्भर करता है।

नगरीय स्थानीय स्वशासन के इतिहास में उस समय एक महत्त्वपूर्ण पष्ठ जुड़ गया, जबकि भारतीय संसद ने 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 पारित किया, इसे 74वाँ संविधान संशोधन का नाम दिया जाता है। इस संविधान संशोधन द्वारा संविधान में 12वीं अनुसूची जोड़कर शहरी या नगरीय क्षेत्र की स्वशासन की संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। इस संविधान संशोधन के मुख्य प्रावधानों में-सभी संस्थाओं का कार्यकाल ५ वर्ष किये जाने, मुख्य निर्वाचन अधिकारी के पर्यवेक्षण तथा निर्देशन में प्रति 5 वर्ष बाद इन संस्थाओं के निर्वाचन सम्पन्न कराये जाने, महिलाओं, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए इन संस्थाओं में स्थानों को आरक्षित किये जाने तथा जनसंख्या के अनुपात में तीन प्रकार की नगरपालिकाओं के गठन करने जैसे पहलू गिनाये जा सकते हैं। निस्सन्देह, नगरीय क्षेत्र की स्वशासन की संस्थाओं के संवैधानिक दर्जा प्रदान किया जाना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इससे जहाँ इन संस्थाओं को एक नई शक्ति प्राप्त होगी वहीं दूसरी ओर सारे देश में एकरूपता की स्थिति बनेगी। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं की इन संस्थाओं में प्रभावशाली साझेदारी होगी। इस संविधान संशोधन के पारित होने के बाद अनेक राज्यों ने इसका अनुसरण किया है। इससे देश में एकरूपता की स्थिति बनी है।

### **नगरपालिकाओं की स्थापना**

नगरपालिकाओं का गठन ऐसे नगरों में किया जाता है जहाँ शहर में रहने वाले लोगों के लिए जन-सुविधाओं की व्यवस्था करना बहुत आवश्यक हो जाता है, किन्तु ऐसे शहरों की समस्याएँ इतनी गम्भीर नहीं होती हैं कि उनके लिए नगर निगम का गठन करना पड़े। फिर भी नगरपालिका के गठन के लिए आबादी की एक सीमा का निश्चित होना आवश्यक है।

कुछ राज्यों ने नगरपालिका की स्थापना के लिये जनसंख्या एवं आय दोनों ही कसौटियाँ निर्धारित की हैं। आय की शर्त को

गैर-मुनासिब या अनुचित नहीं कहा जा सकता। नगरवासियों से अपेक्षित है कि वे नगरपालिका की स्थापना तथा रख-रखाव के लिए आवश्यक साधन भी जुटाएँ। नगरपालिका की स्थापना तभी किया जाना उचित है जब वहाँ की जनता उसके लिए समुचित साधन जुटाने के योग्य और इच्छुक हो। आय की कसौटी तब महत्त्वपूर्ण समस्या बन जाती है जबकि कम जनसंख्या वाले स्थान में नगरपालिका बना दी जाती है। ऐसी स्थिति में नगरपालिका की आय के स्रोतों का बड़ा भाग राज्य सरकार से अनुदान के रूप में प्राप्त होता है।

राज्य सरकार को यह अधिकार होता है कि वह नगरपालिका के अधिकार क्षेत्र के प्रदेश को परिभाषित कर सके। कानून द्वारा राज्य सरकार को यह शक्ति है कि वह नगरपालिकाओं को अधिनियम के उन उपबन्धों से मुक्ति प्रदान कर दे जो उसके लिए अनावश्यक हैं। कुछ नगरपालिकाएँ अवर्गीक त भी हैं। सरकार कभी भी आदेश निकाल कर उन्हें किसी श्रेणी की नगरपालिका घोषित कर सकती है।

किसी भी क्षेत्र में नगरपालिका बनाने या किसी क्षेत्र में नगरपालिका समाप्त कर देने का अधिकार राज्य सरकार को होता है। राजस्थान प्रान्त में राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 की धारा 5 और 6 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए राज्य सरकार समय-समय पर गजट में विज्ञप्ति निकाल कर-

1. किसी भी स्थानीय क्षेत्र को नगरपालिका घोषित कर सकती है।
2. किसी भी नगरपालिका की सीमाएँ निर्धारित कर सकती है।
3. किसी भी नगरपालिका में कोई भी क्षेत्र शामिल कर सकती है या उससे पूर्णतः अलग कर सकती है।
4. अन्य प्रकार से किसी भी नगरपालिका की सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है।
5. यह घोषित कर सकती है कि किसी भी नियत तिथि से किसी स्थानीय क्षेत्र में नगरपालिका नहीं रहेगी।

### **नगरपालिकाओं का संगठन (Organisation)**

नगरपालिका जनता की सभा है जो नगरपालिका अधिनियम द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर नगर-शासन के लिए नियमों-उपनियमों का निर्माण करती है। प्रत्येक नगरपालिका में एक परिषद् होती है जिसमें वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित सदस्य (पार्षद) सम्मिलित होते हैं। परिषद् वह सर्वोच्च सत्ता है जो उन सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी है, जो नगरपालिका को सौंपे गए हैं। देश के विभिन्न राज्यों में नगरपालिकाओं के संगठन, कार्यकाल आदि में भिन्नता देखने को मिलती है तथापि सामान्य रूपरेखा मिलती-जुलती है। राजस्थान राज्य में नगरपालिकाओं के संगठन, कार्यकाल आदि पर प्रकाश डालें तो एक सामान्य चित्र हमारे सामने स्पष्ट हो जाएगा।

1. **नगरपालिकाओं का निर्वाचन** - राजस्थान में नगर परिषद् या नगरपालिका मण्डल के सदस्यों की संख्या का निश्चय सरकार द्वारा किया जाता है। चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रति तीसरे वर्ष किए जाते हैं। चुनाव गुप्त मतदान द्वारा होते हैं। चुनाव के लिए कस्बे या नगर को विभिन्न क्षेत्रों अथवा वार्डों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक वार्ड से एक प्रतिनिध चुना जाता है। सीटों तथा वार्डों के निर्धारण के सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर विज्ञप्तियाँ जारी होती रहती हैं। नगर परिषद् नगरपालिका-मण्डल में स्त्रियों और पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को प्रतिनिधत्व दिया जाता है। जिस क्षेत्र में अनुसूचित जातियों या जनजातियों का बहुमत होता है, उस क्षेत्र को प्रायः इन जातियों के लिए सुरक्षित कर दिया जाता है अर्थात् ऐसे क्षेत्रों में केवल इन जातियों के प्रतिनिधि ही चुनाव लड़ सकते हैं। यदि कोई स्त्री चुनाव जीत कर नहीं आई हो तो स्त्रियों को प्रतिनिधित्व देने की दृष्टि से नगरपालिका के निर्वाचित सदस्य अपने बहुमत से दो स्त्री सदस्यों को मनोनीत करते हैं। स्पष्ट है कि नगरपालिका (चाहे नगर परिषद् हो या नगरपालिका मण्डल) का संगठन निर्वाचित और मनोनीत सदस्यों से होता है।
2. **सदस्यों के लिए योग्यताएँ** - राजस्थान में नगरपालिका (अर्थात् नगर परिषद् हो या नगरपालिका मण्डल) के सदस्य होने के लिए किसी व्यक्ति में निम्नांकित योग्यताओं का होना जरूरी है-
  - (i) वह व्यक्ति उस पालिका के क्षेत्र में मतदाता हो।
  - (ii) वह फौजदारी अदालत से एक वर्ष से अधिक सजा पाया हुआ न हो। (ऐसी सजा पाया हुआ व्यक्ति तीन वर्ष

- समाप्त होने के बाद चुनाव लड़ सकता है।)
- (iii) वह व्यक्ति राज्य या स्थानीय संस्था की नौकरी में न हो अथवा कदाचार के आरोप में नौकरी से निकाला न गया हो। (पदच्युत व्यक्ति तीन वर्ष बाद चुनाव लड़ सकता है।)
- (iv) वह व्यक्ति दिवालिया अथवा पागल न हो।
- (v) वह व्यक्ति नगरपालिका की ओर से या उसके विरुद्ध किसी मामले में वकील न हो अथवा नगरपालिका से किसी रूप में ठेके या व्यापार आदि से सम्बन्धित न हो।

सदस्य चुन लिए जाने के बाद किसी प्रकार की अयोग्यताएँ पाई जाएँ तो निर्वाचित सदस्य को अपना पद त्याग करना पड़ता है।

3. **पदावधि** - नगरपालिकाओं का कार्यकाल 5 वर्ष का है, सरकार को यह भी अधिकार है कि वह किसी नगरपालिका को अवधि से पूर्व ही भंग करके प्रशासक नियुक्त कर दे।
4. **एक वार्ड से अधिक के लिए निर्वाचन में खड़े होने पर प्रतिबन्ध** - राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 की धारा 25 में व्यवस्था है कि कोई भी व्यक्ति एक से अधिक वार्डों से चुनाव नहीं लड़ सकता। यदि उसने अपना नामांकन पत्र एक से अधिक वार्डों के लिए प्रस्तुत किया है जो उसे निर्वाचन के लिए निश्चित तिथि से पूर्व सिवाय एक वार्ड के अन्य समस्त वार्डों से अपना नामांकन पत्र वापस ले लेना आवश्यक है।
5. **पद की शपथ और त्यागपत्र** - अधिनियम के अनुसार नगरपालिका के प्रत्येक सदस्य को अपने कर्तव्यों को सम्भालने से पूर्व जिलाधीश अथवा सरकार द्वारा मनोनीत किसी अन्य व्यक्ति के समक्ष निर्धारित प्रपत्र में शपथ लेनी होती है और उस पर अपने हस्ताक्षर करने होते हैं। यह व्यवस्था भी है कि कोई सदस्य नगरपालिका की प्रथम बैठक की तिथि से तीन मास की अवधि में शपथ ग्रहण नहीं कर पाता तो उसका स्थान रिक्त समझा जाएगा। अधिनियम के अनुसार, कोई भी सदस्य लिखित रूप में अपनी सदस्यता से त्यागपत्र का नोटिस अध्यक्ष को दे सकेगा और ऐसा त्याग-पत्र नोटिस के 15 दिन बाद प्रभावशाली होगा। यह आवश्यक है कि नोटिस प्रथम अथवा द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा उचित रूप में प्रमाणीकृत हो। राजस्थान उच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयानुसार ऐसा त्याग-पत्र उसके प्रभावशाली होने से पूर्व वापस लिया जा सकता है। अधिनियम में दिए गए कुछ प्रावधानों के अधीन रहते हुए राज्य सरकार समुचित आधारों पर किसी सदस्य को हटा भी सकती है।
6. **पदाधिकारी** - अधिनियम की धारा 65 में व्यवस्था है कि प्रत्येक नगरपालिका मण्डल के लिए एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष होगा जिनका चुनाव निगमों के अनुसार, मण्डल के सदस्यों द्वारा अपने स्वयं में से ही किया जाएगा। इसी प्रकार प्रत्येक नगर परिषद् के लिए एक सभापति और एक उप-सभापति होगा जिनका चुनाव नियमों के अनुसार, परिषद् के पार्षदों द्वारा अपने स्वयं में से ही किया जाएगा। ये पदाधिकारी नगरपालिका के कार्यकाल और अपनी सदस्यता-पर्यन्त अपने पद पर काम करते हैं। दो-तिहाई बहुमत से अविश्वास प्रस्ताव द्वारा सदस्य उन्हें हटा सकते हैं। वे स्वयं भी त्याग-पत्र दे सकते हैं और सरकार अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार अपने कार्य की लापरवाही के लिए उन्हें हटा सकती है। बड़ी नगरपालिकाओं में एक कर्मचारी, ऑफिसर अथवा सचिव भी होता है। इसकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। नगरपालिका की आवश्यकतानुसार अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी, इन्जीनियर, ओवरसियर, स्वास्थ्य अधिकारी, सैनेटरी इन्स्पेक्टर आदि होते हैं। इनकी नियुक्ति बोर्ड करता है।
7. **समितियाँ** - कार्य की सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक नगरपालिका में विभिन्न समितियों का निर्माण किया जाता है। प्रत्येक समिति को अलग-अलग कार्य सौंपा जाता है। सभी समितियाँ बोर्ड अथवा कौन्सिल के नियन्त्रण में और उसके आदेशानुसार अपना कार्य करती हैं। बोर्ड अथवा कौन्सिल को यह पूरा अधिकार होता है कि वह उनके निर्णयों में परिवर्तन या संशोधन कर दे।

अधिनियम की धारा 73 में व्यवस्था है कि प्रत्येक कौन्सिल अर्थात् नगर परिषद् की कार्यकारिणी समिति होगी जिसमें ये सदस्य सम्मिलित होंगे - (i) परिषद् का सभापति, (ii) परिषद् का उप-सभापति, (iii) परिषद् द्वारा निर्वाचित परिषद् के 7 सदस्य (पार्षद) तथा परिषद् द्वारा निर्मित समितियों के अध्यक्ष। परिषद् का नगरपालिका आयुक्त कार्यकारिणी समिति का पदेन सचिव होता है।

कार्यकारिणी समिति के अतिरिक्त प्रत्येक परिषद् धारा 73(3) के अनुसार निम्नलिखित समितियों का निर्माण भी करता है - (i) वित्त समिति, (ii) स्वास्थ्य और सफाई समिति, (iii) भवन तथा निर्माण समिति, (iv) नियम तथा उप-नियम समिति, (v) सार्वजनिक वाहन समिति।

कार्यकारिणी समिति और ऊपर वर्णित अन्य समितियाँ ऐसी शक्तियों, कर्तव्यों और कृत्यों को प्रयोग में ला सकेंगी और उनका पालन तथा निष्पादन करेंगी जो परिषद् द्वारा उन्हें प्रदान किए जाएँ। उल्लेखनीय है कि कार्यकारिणी समिति का गठन केवल शहरी नगरपालिकाओं अर्थात् नगर परिषदों की अवस्था में ही अनिवार्य है, नगरपालिका मण्डलों में नहीं। उपर्युक्त पाँचों समितियों का शहरी नगरपालिकाओं अर्थात् नगर परिषदों में होना अनिवार्य है। साथ ही अन्य समितियाँ नगर परिषदों की सुविधानुसार गठित की जा सकती हैं।

8. **नगरपालिका की बैठकें** - अधिनियम की धारा 70 के अनुसार, सामान्य कार्य निपटाने के लिए प्रत्येक माह में नगरपालिका की कम से कम एक साधारण बैठक होनी चाहिए। अध्यक्ष का कर्तव्य है कि वह सब सामान्य बैठकों के लिए तिथियाँ नियम करे। अध्यक्ष, जब भी यह उचित समझे, एक विशेष सामान्य बैठक आमन्त्रित कर सकता है। ऐसी विशेष सामान्य बैठक अध्यक्ष द्वारा सदस्यों की कुल संख्या के कम से कम एक-तिहाई सदस्यों की लिखित प्रार्थना पर आमन्त्रित की जाती है। प्रत्येक बैठक की अध्यक्षता, अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में, उस समय उपस्थित सदस्यों में से किसी एक ऐसे सदस्य द्वारा की जाती है जिसे बैठक में उस अवसर पर अध्यक्ष चुन लिया जाए। समस्त प्रश्नों का निर्णय उपस्थित या मत देने वाले सदस्यों (अध्यक्ष सहित) के बहुमत से किया जाता है। बराबर मत होने की स्थिति में अध्यक्ष को द्वितीय मत देने का अधिकार होता है। बैठक की गणपूर्ति के लिए सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या के एक-तिहाई सदस्यों का उपस्थित होना आवश्यक है।

## नगरपालिका की शक्तियाँ

### (Powers)

सभी राज्यों में नगरपालिकाओं की शक्तियाँ और अधिकार एक जैसे हैं। राजस्थान राज्य में नगरपालिकाओं की शक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

1. **नियम बनाने की शक्ति** - प्रत्येक नगरपालिका को ऐसे नियम बनाने का अधिकार है जो राजस्थान नगरपालिका अधिनियम अथवा राज्य सरकार द्वारा धारा 297 के अन्तर्गत बनाए गए नियमों के विरुद्ध नहीं होंगे। नगरपालिका को अपने कार्य संचालन के बारे में तथा अपनी शक्तियों या कर्तव्यों को सौंपने के सम्बन्ध में और समितियों की नियुक्तियों एवं निर्माण के सम्बन्ध में भी अनेक अधिकार हैं। नगरपालिका सामान्यतः अपने पदाधिकारियों तथा कर्मचारियों के पथ-प्रदर्शन के लिए नगरपालिका के प्रशासन से सम्बन्धित समस्त विषयों पर नियम बना सकती है। किसी पदाधिकारी अथवा कर्मचारी, जिससे प्रतिभूति लेना उचित समझा जाए, द्वारा दी जाने वाली प्रतिभूति (सिक्वोरिटी) की राशि तथा आकृति का निश्चय भी नगरपालिका द्वारा किया जा सकता है। किसी पदाधिकारी अथवा कर्मचारी को नियुक्त करने, दण्ड देने या विमुक्त करने के तरीकों और शर्तों का निश्चय किया जा सकता है। ये सभी शक्तियाँ नगरपालिका को (चाहे म्युनिसिपल बोर्ड हो या म्युनिसिपल काउंसिल हो) अधिनियम की धारा 88 के अन्तर्गत प्राप्त हैं, लेकिन यह है कि इस धारा के अन्तर्गत किसी नगरपालिका द्वारा बनाया गया नियम तब तक प्रभाव में नहीं आएगा जब तक कि राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित न हो जाए।

प्रत्येक नगरपालिका का समय-समय पर ऐसी उपविधियाँ बनाने का अधिकार है जो राजस्थान नगरपालिका अधिनियम के प्रतिकूल नहीं हों। अधिनियम की धारा 90 में उन विषयों को विस्तार से बताया गया है जिसके सम्बन्ध में नगरपालिका को सामान्यतः उपविधियाँ बनाने की शक्ति है, परन्तु नगरपालिका द्वारा बनाई गई कोई भी उपविधि तब तक प्रभावशील नहीं होगी जब तक कि वह राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं कर दी जाए।

राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 की धारा 91 में वह व्यवस्था दी गई है कि उपर्युक्त नियम और उपविधियाँ मुद्रित होंगे तथा सर्वसाधारण के निरीक्षण के लिए नगरपालिका कार्यालय में खुले रखे जाएँगे और उनकी मुद्रित प्रतियाँ लागत मूल्य पर विक्रय के लिए रखी जाएँगी।

2. **सम्पत्ति को अवाप्त और धारण करने की शक्ति** - अधिनियम की धारा 92 के अनुसार प्रत्येक नगरपालिका चल

और अचल दोनों प्रकार की सम्पत्ति अवाप्त और धारण कर सकती है चाहे वह नगरपालिका की सीमाओं के अन्दर हो या बाहर।

नगरपालिका को प्राप्त अथवा नगरपालिका के निमित्त की गई समस्त धनराशियाँ नगरपालिका कोष का अंग होंगी अर्थात् राजस्थान नगरपालिका अधिनियम के अन्तर्गत दिए गए अथवा लगाए गए समस्त कर, मार्ग कर तथा अन्य कर, जुर्माने, शुल्क, नगरपालिका द्वारा बेची गई भूमि या अन्य सम्पत्ति से प्राप्त रकम तथा उससे प्राप्त होने वाला सम्पूर्ण किराया आदि नगरपालिका निधि का अंग होती है, परन्तु शर्त यह है कि कोई भी बात राज्य सरकार द्वारा तय की गई किसी योजना द्वारा स्वीकृत या आरोपित किसी दायित्व पर किसी प्रकार से प्रभाव न डाले। नगरपालिका अपनी निधि तथा सम्पत्ति का प्रयोग राज्य सरकार की पूर्व-स्वीकृति से ऐसे काम में ला सकती है जो सार्वजनिक हित में हो तथापि इस सम्बन्ध में कुछ शर्तें धारा 94 में निर्धारित की गई हैं। धारा 96 के अन्तर्गत नगरपालिका को अतिरिक्त कोषों को जमा करने अथवा उनका विनियोग करने की शक्ति दी गई है और धारा 97 के अनुसार अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, नगरपालिका को रकम उधार लेने की शक्ति भी प्राप्त है।

### नगरपालिकाओं के कार्य (Functions)

**प्राथमिक एवं अनिवार्य कार्य** - अधिनियम की धारा 98 के अनुसार प्राथमिक कार्य निम्नानुसार हैं-

1. सार्वजनिक स्थानों और भवनों में प्रकाश की व्यवस्था करना, पानी तथा सफाई का प्रबन्ध करना और गन्दगी दूर करना।
2. सार्वजनिक मार्गों और स्थानों पर जल छिड़कना।
3. हानिकारक वनस्पति को हटाना और समस्त सार्वजनिक बाधाओं को कम करना।
4. आग बुझाना और आग से नागरिकों की जान-माल की रक्षा करना।
5. उद्वेगकारी अथवा खतरनाक व्यापारों या वस्तुओं का नियमन करना।
6. सार्वजनिक गलियों, बाजारों, नालियों, स्नान-घरों, बूचड़खानों, तालाबों, कुओं, धोने के स्थानों आदि का निर्माण और उनकी व्यवस्था करना।
7. सार्वजनिक शौचालयों और मूत्रालयों का प्रबन्ध करना।
8. सार्वजनिक मार्गों अथवा स्थानों और ऐसे स्थानों से, जो निजी सम्पत्ति नहीं हैं, जो जनता के उपभोग के लिए मुक्त हैं, रुकावटों और आगे निकल हुए भागों को हटाना।
9. खतरनाक भवनों को सुरक्षित करना या हटाना तथा अस्वास्थ्यकर बस्तियों या स्थानों का उद्धार करना।
10. मुर्दों को जलाने या गाड़ने के स्थानों का प्रबन्ध करना।
11. जन्म और मरण का हिसाब रखना।
12. अनाथों और असहायों के निवास का प्रबन्ध करना।
13. सार्वजनिक औषधालयों की स्थापना और व्यवस्था करना और जनसाधारण को चिकित्सा सम्बन्धी सहायता देना।
14. सार्वजनिक टीकों का प्रबन्ध करना।
15. पागल कुत्तों को पकड़ने और ऐसे कुत्तों द्वारा काटे गए लोगों की चिकित्सा का प्रबन्ध करना।
16. मल और कूड़े-कचरे से मिश्रित खाद तैयार करने के लिए प्रबन्ध करना।
17. सार्वजनिक वाचनालयों की स्थापना आदि।

**विशेष कार्य** - प्रत्येक नगरपालिका को दो विशेष कर्तव्य निभाने पड़ते हैं-

- (क) भयंकर बीमारी की अवस्था में विशेष चिकित्सा की व्यवस्था करना और बीमारी की रोकथाम के लिए आवश्यक कदम उठाना।



(ख) अकाल या अतिवृष्टि के समय असहाय लोगों की सहायता करना।

**गौण या ऐच्छिक कार्य** - प्रायः प्रत्येक नगरपालिका के मुख्यतया ऐच्छिक या गौण कार्य निम्नलिखित हैं-

1. नई सड़कों एवं गालियों का निर्माण करना तथा सड़कों पर वृक्ष लगवाना।
2. सार्वजनिक पार्कों, बगीचों, पुस्तकालयों, अजायबघरों, धर्मशालाओं, विश्राम-गृहों आदि का निर्माण एवं प्रबन्ध करना।
3. गन्दी बस्तियों को समाप्त करना तथा ऐसे कार्य करना जो जनता के स्वास्थ्य, शिक्षा या सुविधा के लिए आवश्यक हों।
4. प्राथमिक पाठशालाओं की स्थापना करना और व्यवस्था करना।
5. पशु-घरों की स्थापना करना।
6. मेले और प्रदर्शनियों को लगाना।
7. सार्वजनिक स्वागत समारोह, सांस्कृतिक कार्यक्रमों आदि का प्रबन्ध करना।
8. स्थानीय कला और उद्योग-धन्धों के लिए कर्ज देना, आदि।

उल्लेखनीय है कि राज्य सरकार अधिनियम की धारा 100 के अनुसार, किसी भी नगरपालिका को प्राथमिक और विशेष कर्तव्य सम्बन्धी प्रावधानों से मुक्त कर सकती है कि अमुक प्राथमिक या विशेष कार्य नगरपालिका के विवेकानुसार किया जाने वाला कार्य समझा जाएगा।

### **आय के साधन**

#### **(Income Sources)**

नगरपालिकाओं को अपना कार्य ठीक ढंग से चलाने के लिए विभिन्न प्रकार के कर लगाने का अधिकार है, जैसे-मकान एवं जमीन पर कर, सवारी ताँगे, नाव, टैले, साइकिल आदि पर कर, सीमा में आने वाली वस्तुओं और पशुओं पर चुंगी कर, सार्वजनिक सफाई कर, सार्वजनिक रोशनी कर, सार्वजनिक जल-व्यवस्था कर, व्यापार एवं पेशा कर, आमोद-प्रमोद कर, दुकानों और व्यापारिक संस्थानों पर कर आदि। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि नगरपालिका उपर्युक्त सभी करों को लगाए। मकान कर, समाज के आवागमन पर कर, व्यवसाय एवं पेशा कर आदि करों को लगाना तो आवश्यक है, किन्तु कुछ कर ऐसे हैं कि जिन्हें लगाना अनिवार्य नहीं है। उदाहरण के लिए, नगरपालिका चाहे तो मोटरों पर कर, नावों पर कर एवं आवागमन के अन्याय साधनों पर कर लगा सकती है। कर लगाने से पूर्व बोर्ड को उसके सम्बन्ध में आवश्यक नियम आदि बनाने पड़ते हैं और सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती है। नगरपालिकाओं को कुछ खाद्य सामग्री के विक्रय का लाइसेन्स देने का अधिकार होता है।

इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा समय-समय पर सहायता दी जाती है। नगरपालिकाएँ सरकार की मंजूरी से ऋण ले सकती हैं। लाइसेन्स फीस, जुर्माना आदि से भी नगरपालिकाओं को आय होती है।

### **नगरपालिकाओं पर नियन्त्रण**

#### **(Control)**

यद्यपि नगरपालिकाएँ बहुत कुछ स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करती हैं, किन्तु इन पर राज्य सरकार का काफी नियन्त्रण रहता है। सरकार इन्हें सहायता, अनुदान और ऋण आदि देती है अतः सरकार के लेखा परीक्षक इन संस्थानों के हिसाब-किताब की जाँच-पड़ताल करते हैं। राज्य सरकार को यह अधिकार है कि नगरपालिका द्वारा अपने अधिकारों का दुरुपयोग किए जाने पर या अपना कार्य ठीक ढंग से न करने पर वह उसे भंग कर दे और उसकी जगह प्रशासक नियुक्त कर दे। राज्य सरकार नगरपालिका के पदाधिकारियों को हटा सकती है, यदि वे अपने पदों का दुरुपयोग करें अथवा नगरपालिकाओं के कार्य में गड़बड़ी करें।

नगरपालिकाओं जैसी स्वायत्त शासन संस्थाओं पर सरकारी नियन्त्रण रखे जाने पर आपत्ति की जाती है, लेकिन हमारे देश में प्रणाली अभी अपनी जड़ें जमा रही है, अतः प्रारम्भिक अवस्था में इन संस्थाओं पर कुछ सरकारी नियन्त्रण की अनिवार्य

आवश्यकता है।

## **अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ एवं नगर क्षेत्र समितियाँ** (Notified Area Committees & Town Area Committees)

नगरीय स्थानीय स्वशासन में जहाँ नगरपालिकाओं की व्यवस्था नहीं हो पाती है वहाँ 'अधिसूचित क्षेत्र समिति' एवं 'नगर क्षेत्र समिति' बनाई जाती है।

### **अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ**

कुछ बड़े कस्बों और उन नगरों में, जहाँ नगरपालिकाएँ स्थापित नहीं की जा सकती, अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ स्थानीय प्रबन्ध का कार्य करती हैं। अधिसूचित क्षेत्र समिति का निर्माण नए विकासशील नगर के लिए किया जाता है। समिति के निर्माण की सूचना राज्य सरकार द्वारा सरकारी गजट में अधिसूचित कर दी जाती है, इसलिए इसको 'अधिसूचित क्षेत्र समिति' कहते हैं। यह समिति राज्य नगरपालिका अधिनियम द्वारा निर्धारित ढाँचे के अन्तर्गत कार्य करती है, किन्तु इन पर अधिनियम के केवल वे प्रावधान ही लागू होते हैं जो गजट में अधिसूचित कर दिये जाते हैं। सरकार को अधिकार है कि वह समिति को ऐसी शक्तियाँ सौंपे जिनका प्रयोग किसी अन्य अधिनियम के अन्तर्गत किया जा सकता हो। अधिसूचित क्षेत्र समितियों के सदस्य निर्वाचित और मनोनीत दोनों प्रकार के होते हैं। प्रायः राज्य सरकार ही उसके सदस्यों तथा अध्यक्ष को नामित या मनोनीत करती है, इस प्रकार यह पूर्णतः एक सीमित संस्था होती है। इन समितियों के कार्य, अधिकार, आय स्रोत आदि लगभग उसी प्रकार के होते हैं जैसे नगर पालिकाओं के। बिहार, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, आदि राज्यों में अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ विद्यमान हैं। प्रायः इनकी संख्या घटती-बढ़ती रहती है।

### **नगर क्षेत्र समितियाँ**

छोटी जनसंख्या के शहरी क्षेत्रों में अर्थात् छोटे कस्बों में नगर क्षेत्र समितियाँ स्थापित की जाती हैं। भारत में असम, केरल, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल, जम्मू-कश्मीर आदि राज्यों में नगर क्षेत्र समितियाँ हैं। नगर क्षेत्र समितियों का सबसे अधिक प्रचलन उत्तर प्रदेश में है। इन समितियों का शासन राज्य सरकार द्वारा पारित पथक् अधिनियमों के अन्तर्गत चलता है। जिलाधीश को नगर क्षेत्र समिति के सम्बन्ध में नियन्त्रण की पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इनके सदस्यों की संख्या प्रायः कम होती है। इन समितियों के कार्य-क्षेत्र और आय स्रोत नगरपालिकाओं की तुलना में सीमित होते हैं। इन्हें एक प्रकार से छोटी नगरपालिका कहा जा सकता है।

## **इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, पोर्ट ट्रस्ट एवं छावनी बोर्ड** (Improvement Trust, Post Trust and Cantonment Boards)

### **इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट**

बड़े नगरों की सफाई और अन्य व्यवस्थाओं के लिए नगरपालिका के साथ-साथ इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट स्थापित किए गए हैं। इनके कार्य नगरपालिकाओं के कार्यों के कुछ भिन्न होते हैं। ये ट्रस्ट इमारतों को अव्यवस्थिति रूप से बनने से रोककर, नगर का व्यवस्थित रूप से विकास करते हैं। नगरों में खुले स्थानों, पार्कों, चौड़ी सड़कों, बाजारों, सार्वजनिक शौचालयों आदि की व्यवस्था करना इन ट्रस्टों का काम है। इन ट्रस्टों में कुछ सदस्य निर्वाचित और कुछ मनोनीत होते हैं। जिन नगरों में ये ट्रस्ट नहीं होते, उनके द्वारा किए जाने वाला कार्य नगरपालिकाएँ ही करती हैं।

### **पोर्ट ट्रस्ट**

बड़े-बड़े बन्दरगाहों तथा कलकत्ता, मुम्बई, चेन्नई, विशाखापट्टनम, कोचीन आदि स्थानों पर स्थानीय संस्थाओं के रूप में पोर्ट ट्रस्ट हैं। इसके सदस्य वाणिज्य और व्यापार संस्थाओं द्वारा चुने जाते हैं। सरकार भी सदस्य मनोनीत करती है। इनका संविधान भारत सरकार के बनाए कानूनों पर आधारित होता है। इनका सभापति कोई सरकारी आदमी होता है। इनके मुख्य कार्य हैं - बन्दरगाह से सम्बद्ध मामलों का प्रबन्ध, बन्दरगाह की रक्षा, माल का प्रबन्ध, सामान उतारना एवं चढ़ाना, यात्रियों

को सुविधाएँ प्रदान करना आदि।

### छावनी बोर्ड

छावनी क्षेत्रों में छावनी बोर्ड स्थापित किए गए हैं। इनका उद्देश्य इन क्षेत्रों के निवासियों को नागरिक सुविधाएँ और कल्याण सेवाएँ प्रदान करना है। सम्बद्ध कमान के जनरल आफिसर इन-चीफ और केन्द्रीय सरकार की देख-रेख और नियन्त्रण में ये बोर्ड स्वायत्तशासी निकाय के रूप में कार्य करते हैं। इन बोर्डों में निर्वाचित और नामजद सदस्यों की संख्या, जो 1 से लेकर 7 तक होती है, समान रखी जाती है तथापि कानूनी प्रावधानों के अनुसार सदस्यों की संख्या निर्वाचित सदस्यों की संख्या से एक अधिक हो सकती है। इन बोर्डों को कर लगाने का अधिकार है जो इनके राजस्व का मुख्य स्रोत है। बोर्डों के द्वारा तैयार किए गए बजट अनुमानों की जाँच-पड़ताल और उनकी स्वीकृति सम्बद्ध कमान के जनरल आफिसर कमान्डिंग-इन-चीफ द्वारा होती है।

छावनी बोर्ड तीन श्रेणियों में संगठित हैं -

1. प्रथम श्रेणी की छावनियाँ - इनकी असैनिक जनसंख्या 10,000 से अधिक है। ये संख्या में 30 हैं।
2. द्वितीय श्रेणी की छावनियाँ - इनकी असैनिक जनसंख्या 2500 और 10,000 के बीच में है। ये संख्या में 19 हैं।
3. तृतीय श्रेणी की छावनियाँ - इनकी असैनिक जनसंख्या 2500 से कम है। ये संख्या में 13 हैं।

कार्यों की दृष्टि से छावनी बोर्ड नगरपालिका जैसा ही होता है, किन्तु इन्हें कुछ अतिरिक्त शक्तियाँ भी प्रदान की जाती हैं। छावनी क्षेत्र में सफाई एवं यौन दुराचार के दमन पर विशेष बल दिया जाता है। छावनी बोर्ड के कार्य अनिवार्य और ऐच्छिक दोनों प्रकार के हैं।

श्रीराम माहेश्वरी ने छावनी बोर्ड के अनिवार्य कार्यों का उल्लेख निम्नानुसार किया है -

1. मार्गों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में प्रकाश की व्यवस्था।
2. मार्गों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों पर छिड़काव।
3. मार्गों, नालियों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों की सफाई।
4. घातक तथा खतरनाक व्यवसायों, उद्यमों एवं परिपाटियों का नियमन।
5. लोक-सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा सुविधा के आधार पर मार्गों तथा अन्य स्थानों से अवरोधकों एवं प्रक्षेपों को हटाना।
6. खतरनाक इमारतों एवं स्थानों को सुरक्षित बनाना अथवा हटाना।
7. मत्क-क्रिया के स्थलों का अनुरक्षण एवं नियमन।
8. मार्गों, पुलियों, हाटों, कच्चीखानों, जल निकास व्यवस्था, नालियों का निर्माण तथा मल निस्तारण की व्यवस्था तथा अनुरक्षण।
9. सड़कों के किनारे वृक्ष लगवाना एवं उनका अनुरक्षण करना।
10. शुद्ध पेयजल की व्यवस्था।
11. जन्म एवं मरण का पंजीकरण।
12. सार्वजनिक टीकों की व्यवस्था तथा सार्वजनिक चिकित्सालयों की स्थापना।
13. प्राथमिक पाठशालाओं की स्थापना।
14. अग्नि से बचाव।

छावनी बोर्ड के ऐच्छिक कार्य इस प्रकार हैं - 1. सार्वजनिक उपयोगिता की चीजों, तालाबों तथा कुँओं का निर्माण। 2. अस्वास्थ्यकर स्थानों को निकास योग्य बनाना। 3. जनगणना करना। 4. सर्वेक्षण करना। 5. बिजली का प्रबन्ध करना। 6. सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था का प्रबन्ध।

छावनी बोर्डों के प्रशासन का रूप यद्यपि बुनियादी तौर पर सैनिक ही बना हुआ है अर्थात् निर्वाचित तत्त्वों को शक्तिशाली बनाने के लिए अनेक परिवर्तन कर दिए गए हैं, जैसे - (i) प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी के छावनी बोर्डों में निर्वाचित और मनोनीत सदस्यों की संख्या बराबर कर दी गई है, (ii) तृतीय श्रेणी के छावनी बोर्डों में प्रायः एक निर्वाचित और एक मनोनीत सदस्य होता है, (iii) भवन-कर निर्धारण समिति में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा गया है, (iv) इमारतों और सीमा दीवारों पर नियन्त्रण रखने एवं लाइसेन्स के सम्बन्ध में असैनिक क्षेत्र समिति के अधिकारों में वृद्धि की गई है आदि।

नगरीय शासन व्यवस्था में छावनी बोर्डों की उपस्थिति लोकतान्त्रिक व्यवस्था से मेल नहीं खाती है। इसे एक लोकतान्त्रिक देश में स्थानीय स्तर पर सैनिक शासन का ही प्रच्छन्न रूप कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त अधिक त छावनियाँ बड़े नगरों के निकट स्थित हैं और इतने निकट स्थानीय शासन के दो रूपों का चलना उचित प्रतीत नहीं होता है।

## भारत में नगरीय स्वशासन की प्रमुख समस्याएँ

भारत में नगरीय स्वशासन की संस्थाओं को विविध चुनौतियों या समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। डॉ. वी. एम. सिन्हा ने भारत में स्थानीय शासन संस्थाओं की प्रमुख समस्याओं को इस प्रकार बताया है -

1. इन संस्थाओं को जनसाधारण से जो सम्मान मिलना चाहिए था वह नहीं मिल पाता। जनसाधारण ने इनके प्रति उदासीनता का दृष्टिकोण अपना लिया है। इसका कारण इनकी अक्षमता, अकार्यकुशलता तथा ईमानदारी की कमी है।
2. बड़े शहरों में जनता की उदासीनता तथा फलतः पेशेवर राजनीतिज्ञों की मनमानियों का एक कारण यह है कि इन शहरों में बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो बाहर से आए हैं, जिनका स्थानीय जनता तथा शहर से कोई प्रेम नहीं है। शहर को अच्छा बनाने की भावना इनके मस्तिष्क में आती ही नहीं है।
3. जनसाधारण का काफी बड़ा भाग अशिक्षित है। अपने अधिकार तथा कर्तव्यों के विषय में जागरूक नहीं है। पढ़ा-लिखा वर्ग शायद बाहर से आया हुआ होने के कारण अथवा अपनी ही समस्याओं में उलझे रहने के कारण नगर प्रशासन की समस्याओं की ओर से उदासीन रहता है। फलतः वहाँ ऐसा कोई प्रभावशाली वर्ग नहीं होता जो नगर प्रशासन में सुधार के लिए सक्रिय होकर प्रयत्न करे।
4. निर्वाचित पदाधिकारी अपना अधिकांश समय अपने व्यक्तिगत तथा दलगत लाभ के लिए दांव-पेचों तथा अखाड़ेबाजी में व्यतीत करते हैं जिससे नगर प्रशासन का हित तथा जनता का हित गौण हो जाता है।
5. इन संस्थाओं का प्रशासन दलगत राजनीति का शिकार हो गया है। व्यक्तिगत, दलगत तथा राजनैतिक कारणों से विकास कार्यक्रमों की अवहेलना की जाती है। दिन-प्रतिदिन के प्रशासन पर जैसे-करों की वसूली, लाइसेंस जारी करना, संस्था के उपनियमों को लागू करना आदि पर राजनीति हावी रहती है।
6. जनसाधारण की उदासीनता तथा पेशेवर राजनीतिज्ञों की मनमानियों के कारण अच्छे ईमानदार व्यक्ति इन संस्थाओं की ओर आकर्षित नहीं होते। परिणामस्वरूप इन संस्थाओं की बागडोर क्षेत्र के अच्छे ईमानदार व्यक्तियों के हाथों में न होकर पेशेवर राजनीतिज्ञों के हाथों में होती है।
7. इन संस्थाओं की वित्तीय स्थिति असन्तोषजनक है जिसके मुख्य कारण हैं - (क) मुद्रा-स्फीति तथा फलस्वरूप मूल्यों में वृद्धि। (ख) केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को सम्पत्ति एवं वाहन कर से छूट। (ग) सम्पत्ति कर का आधार वार्षिक किराया है। किराया नियन्त्रण वाले क्षेत्रों में किराया नहीं बढ़ाया जा सकता अतः इन संस्थाओं को आर्थिक स्थिति का सामना करना होता है। (घ) कर्मचारियों के वेतनमान में वृद्धि। (ङ) प्रशासकीय व्यय का विस्तार। (च) कर बढ़ाने सम्बन्धी आय के साधन न होना। (छ) करों की वसूरी में ढील तथा फलस्वरूप बढ़ती हुई बकाया राशि। (ज) इन संस्थाओं द्वारा धन का अपव्यय।
8. इन संस्थाओं ने अपनी वित्तीय स्थिति सुधारने की दिशा में कोई विशेष कदम नहीं उठाया है। नए कर लगाने अथवा चालू करों में बढ़ोतरी करने में कोई उत्साह नहीं दिखाया गया है। निर्वाचित सदस्यों को यह डर बना रहता है कि इससे उनकी लोकप्रियता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। फलतः इन संस्थाओं का सतत् प्रयास यह रहता है कि राज्य सरकारों से अनुदान अथवा ऋण के रूप में अधिक से अधिक सहायता प्राप्त कर ली जाए।

9. करों के विषय में स्थानीय जनता का दृष्टिकोण गलत है। यदि नगर प्रशासन में सुधार लाना है, नयी सेवाएँ उपलब्ध करवानी हैं तो इनका व्यय भार नगर निवासियों को उठाना ही होगा। नगर निवासी नयी सेवाओं की तथा चालू सेवाओं की माँग करते हैं पर इससे व्यय के लिए करारोपण अथवा करों की दर में वृद्धि का विरोध करते हैं।
10. सार्वजनिक सम्पत्ति, सेवाओं एवं सुविधाओं को हम बुरी तरह उपयोग में लाने के आदी हो गए हैं। उदाहरण के लिए सड़क पर कूड़ा-कचरा फेंक देना, जहाँ-तहाँ थूक देना, नल के उपयोग के बाद बन्द न करना, सड़क के किनारे बच्चों को मलमूत्र त्याग के लिए बैठाना आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इससे एक ओर तो गन्दगी फैलती है तथा दूसरी ओर इन सेवाओं पर इन संस्थाओं का व्यय-भार बढ़ता है।
11. बड़े शहरों में आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों का बड़ा दबाव रहता है। ये लोग नगरपालिका की आय में कोई योगदान नहीं करते पर नगरपालिका की सेवाओं तथा यातायात, बाजार, अस्पताल तथा शिक्षण संस्थाओं आदि का लाभ अवश्य उठाते हैं।
12. राज्य सरकारों द्वारा नियन्त्रण के अधिकारों का उपयोग कई बार राजनीतिक आधारों पर किया जाता है। विरोधी दलों द्वारा प्रशासित संस्थाओं को अतिक्रमित अथवा भंग कर दिया जाता है। विरोधी दल के चेयरमैन को पद से हटा दिया जाता है अथवा उसे अधिकार विहीन बना दिया जाता है। अनेक बार न्यायालयों ने इस प्रकार के आदेशों को अवैध ठहराया है।
13. राज्य सरकारें कई बार अपने नियन्त्रण के अधिकारों का समय रहते उचित रूप से उपयोग नहीं करती हैं। यदि समय पर उचित मार्गदर्शन हो जाए तो कई अवसरों पर संस्था को अतिक्रमित अथवा भंग करने की स्थिति उत्पन्न ही न हो। यदि पश्चिम बंगाल सरकार ने कलकत्ता नगर प्रशासन पर उचित नियन्त्रण रखा होता तो 1948 में निगम कर का प्रशासकीय समाप्तीकरण नहीं होता।
14. लेखा-परीक्षण के फलस्वरूप इन संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन में साधारणतः कई त्रुटियाँ पाई गई हैं, जैसे - (क) समय पर करों का वसूल न होना तथा बकाया कर की राशि एकत्रित न होना। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस दिशा में काफी ढिलाई आई है तथा बकाया राशियाँ प्रभूत मात्रा में बढ़ी हैं। (ख) बजट की निर्धारित राशि से अधिक व्यय की प्रवृत्ति। (ग) आय के स्रोतों के अनुमान से कम आय की प्राप्ति। (घ) भुगतान में अनियमितताएँ तथा दुबारा भुगतान, बिना यथेष्ट जाँच-पड़ताल के भुगतान, झूठे यात्रा बिलों के भुगतान आदि। (ङ) स्टॉक रजिस्टर में अनियमितताएँ। (च) अनुदानों का दुरुपयोग : जिस उद्देश्य के लिए अनुदान प्राप्त किए गए हों उस पर व्यय न करके अन्य मदों पर व्यय करना। (छ) टेण्डर स्वीकार करने के नियमों का उल्लंघन तथा कम दर वाले टेण्डरों को बिना उचित कारण के रद्द कर देना। (ज) निर्वाचित अधिकारियों द्वारा बिना किसी प्रशासकीय औचित्य के दौरे करना। (झ) स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के वर्षों में इन संस्थाओं ने अधिक से अधिक राज्य सरकार के अनुदानों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति का परिचय दिया है। योजनाबद्ध विकास के लिए उपलब्ध धनराशि में से इन संस्थाओं को अनुदान आदि दिए गए। फलतः इन संस्थाओं ने धीरे-धीरे स्वावलम्बन की भावना को एकदम भुला दिया है और आज अपने सभी कार्यक्रमों के व्यय के लिए वे राज्य सरकार से सहायता की अपेक्षा करती हैं।
15. इन संस्थाओं में प्रशासकीय कुशलता का स्तर अत्यन्त निम्न कोटि का रहा है। इन संस्थाओं में अच्छे कर्मचारियों का अभाव है। वैसे ही प्रत्याशी इन संस्थाओं की ओर आकर्षित होते हैं, जो केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों तथा निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के अच्छे प्रतिष्ठानों द्वारा छॉट दिए गए हैं।
16. कर्मचारियों में ईमानदारी तथा कर्तव्य-पालन की भावना की प्रायः कमी पाई जाती है। अधिकतर कर्मचारी किसी तरह राजनीतिज्ञों के सम्पर्क में आकर अपना उल्लू सीधा करने के प्रयास में लगे रहते हैं। उन्हें कार्यालय में आकर ईमानदारी से काम करने का न तो अवसर मिलता है और न इसमें उनकी रूचि ही होती है। इन संस्थाओं के कर्मचारियों का वेतनमान बहुत कम होता है अतः रिश्वत, दस्तूरी आदि का बड़ा जोर रहता है।

## **भारत में नगरीय स्थानीय प्रशासन में सुधार हेतु सुझाव**

डॉ. सिन्हा ने नगरीय स्थानीय प्रशासन में सुधार के लिए कतिपय महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. इन संस्थाओं को उचित रूप से चलाने के लिए आवश्यक है कि उचित एवं ईमानदार नेता तथा कर्मचारी इन संस्थाओं की ओर आकर्षित हों और यह तभी सम्भव है जबकि इन संस्थाओं के प्रति जनता की सम्मान भावना बढ़े तथा सरकार का रवैया पक्षपातपूर्ण न हो। यदि अच्छे लोग इन संस्थाओं की ओर आकर्षित होंगे तो निम्न श्रेणी के राजनीतिक नेता अपनी मनमानी नहीं कर सकेंगे।
2. इन संस्थाओं के कर्मचारियों का वेतनमान तथा सेवा शर्तें राज्य सरकार के कर्मचारियों की सेवा शर्तों के समकक्ष होनी चाहिए। यदि राजकीय स्तर पर इनकी सभी सेवाओं को एकीकृत करने की अथवा समकालित सेवाओं की व्यवस्था हो जाए तो इस दिशा में अच्छी प्रगति हो सकती।
3. कोई भी संस्था बिना उचित प्रकार के नेतृत्व तथा अच्छे कार्मिकों के सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती। वर्तमान स्थिति अत्यन्त ही असन्तोषजनक है। इस दिशा में सुधार के बिना इन संस्थाओं का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता।
4. इन संस्थाओं के निर्वाचनों को यदि दलगत राजनीति से परे रखने का प्रयास किया जाए तो अच्छा हो। स्थानीय संस्थाओं के प्रशासन में दलगत राजनीति का स्थान नहीं होना चाहिए। इन संस्थाओं का निर्वाचन निर्दलीय आधार पर किया जाना चाहिए। सभी राजनीतिक दलों में यह समझौता किया जा सकता है कि वे स्थानीय संस्थाओं के निर्वाचनों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। ऐसी स्थिति में स्थानीय जनता प्रत्याशियों का चुनाव उनकी योग्यता के आधार पर कर सकेंगी तथा इन संस्थाओं को उचित प्रकार का नेतृत्व प्राप्त हो सकेगा। इसके साथ ही इन संस्थाओं के निर्वाचन व्यय को सीमित करने का प्रयास किया जाना चाहिए जिससे कि योग्य प्रत्याशी धनाभाव के कारण चुनाव में भाग लेने से वंचित न रह जाएँ।
5. यह आवश्यक है कि निर्वाचित नेताओं तथा अन्य राजनीतिज्ञों के लिए एक आचरण संहिता बनाएँ और फिर उस आचरण संहिता का कठोरता के साथ पालन किया जाना चाहिए।
6. इन संस्थाओं की आय बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए।
7. यह निरन्तर प्रयास किया जाना चाहिए कि नगर सुन्दर एवं योजनाबद्ध रूप से विकसित हो। नगरों के बहुमुखी विकास के लिए मास्टर प्लान का निर्माण किया जाना चाहिए और भूमि का उपयोग उसी के अनुसार किया जाना चाहिए। यद्यपि शहरों के पुराने बसे हुए भागों में अब शायद मूलभूत सुधार सम्भव न हों, पर नए नगर बसने वाले भागों को पूर्णतया नियन्त्रित किया जाना चाहिए।
8. नगर निगम तथा नगरपालिका प्रशासनों को औद्योगीकरण तथा उससे उत्पन्न शहरीकरण की समस्याओं से निबटने के लिए तैयार किया जाना चाहिए। शहरों की प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़ किया जाए ताकि वह शहरीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि के द्वारा उत्पन्न समस्याओं का मुकाबला कर सके।
9. देहातों की भाँति शहरी क्षेत्रों में भी शहरी सामुदायिक विकास योजनाएँ लागू करने का प्रयास किया जाना चाहिए। इस प्रकार की योजनाओं का उद्देश्य स्थानीय जनता के सहयोग से शहर में रहन-सहन की स्थिति में सुधार लाना होना चाहिए। ऐसी योजनाओं से लोगों का नगर-प्रशासन से निकटतम सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा तथा वे प्रशासन के कार्यक्रमों में रुचि ले सकेंगे। उस स्थिति में प्रशासन द्वारा संचालित कार्यक्रम उनके कार्यक्रम होंगे।
10. जनता से निकट सम्पर्क के लिए यह आवश्यक है कि बड़े निगमों एवं नगरपालिकाओं के प्रशासन को क्षेत्रीय स्तर पर विकेंद्रित किया जाए।
11. इन संस्थाओं के प्रशासन के प्रति जनता बड़ी उदासीन है अतः जनसाधारण का सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि निर्वाचित प्रतिनिधि वार्डों में जाकर लोगों से मिले, उनकी समस्याओं को समझें तथा उनके निराकरण का प्रयास करें, जिससे लोगों को विश्वास हो कि नगर प्रशासन मात्र कर वसूल करने वाली संस्था ही नहीं है, वरन् उनके सुख-दुःख के समय काम आने वाली संस्था है। यदि ऐसी सभाओं का गठन हो सके जिनमें नगर प्रशासन तथा निर्वाचित सदस्य जनसाधारण से मिल सकें तो इस दिशा में प्रगति हो सकती है।
12. कई बार नगर प्रशासन में असुविधा तथा समन्वय सम्बन्धी कठिनाइयाँ इस कारण उत्पन्न हो जाती हैं कि शहर का प्रशासकीय उत्तरदायित्व अनेक संस्थाओं के बीच विभाजित रहता है। नगरपालिका नगर का प्रशासन सम्भालती है। नगर विकास न्यास शहर के आसपास अविकसित क्षेत्रों को विकसित करता है। जलदाय एवं मलमूत्र निस्तारण बोर्ड

- जलदाय एवं मलमूत्र निस्तारण का काम सम्भालता है। कई संस्थाओं के होने से प्रशासकीय समन्वय में कठिनाई होती है। यह अधिक उचित होगा कि शहर का सारा प्रशासकीय उत्तरदायित्व एक ही संस्था के हाथ में हो।
13. नगरपालिकाओं एवं निगमों की स्थापना एवं वर्गीकरण अधिक वस्तुनिष्ठ मापदण्ड से किया जाना चाहिए। सारे देश में इस सम्बन्ध में एक ही मापदण्ड की स्थापना होनी चाहिए। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद कुछ राज्यों में निगमों तथा नगरपालिकाओं की स्थापना की होड़-सी लग गई है। नगरपालिका या निगम शहर की प्रतिष्ठा का मापदण्ड बन गया है, यह अनुचित है।
  14. अनेक शहरों में नगर प्रशासन का उत्तरदायित्व अनेक संस्थाओं के बीच विभाजित है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि उनमें पारस्परिक समन्वय तथा उनके सन्तुलित विकास के लिए प्रयास किए जाएँ। इसके अतिरिक्त इस बात की आवश्यकता है कि नगर प्रशासन से सम्बन्धित राज्य की सभी संस्थाओं में समन्वय हो अतः राज्य स्तर पर एक उच्च शक्ति प्राप्त शहरी विकास बोर्ड अधिकरण की स्थापना की जाए जो विभिन्न संस्थाओं में समन्वय स्थापति कर सके।
  15. राज्य सरकारों को अपने नियन्त्रण के अधिकार को निष्पक्ष रूप से उपयोग में लाना चाहिए। प्रजातन्त्र में निर्वाचित सदस्यों को बिना उचित कारण के केवल दलगत आधार पर हटा देना या पदच्युत कर देना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।
  16. नगर प्रशासन के लिए जनता को अपना उत्तरदायित्व निभाना होगा। यदि नगर प्रशासन अकार्यकुशल, भ्रष्ट और अक्षम है तो यह जनता का उत्तरदायित्व है कि वह उसे सुधारे। यह कार्य दो प्रकार से किया जा सकता है-एक ओर जनता स्वयं नियमानुसार ईमानदारी से काम करे, अपने लिए किसी ऐसे लाभ के लिए प्रयास न करे जो नियमानुसार उसे नहीं मिलना चाहिए; दूसरी ओर जहाँ कहीं निर्वाचित सदस्य, प्रशासक, राजनीतिक दल अथवा अन्य कोई व्यक्ति निगमों के विरुद्ध अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए कार्य करे तो उसे चैलेन्ज किया जाना चाहिए। लेकिन जनता जागरूक नहीं है अतः स्वार्थी तत्त्व सक्रिय हो जाते हैं। यदि स्वार्थी तत्त्वों को यह पता लग जाए कि अब जनता जागरूक हो गई है तथा उनकी अपनी सफलता की सम्भावनाएँ घट रही हैं तो वे स्वयं ऐसा करना बन्द कर देंगे। अन्ततः नगर प्रशासन का वही रूप होगा जो जनता उसे देगी।
  17. इन संस्थाओं की वर्तमान बिगड़ी स्थिति का एक कारण यह भी है कि निर्वाचन के बाद सदस्यों से जनता का न कोई सम्पर्क रहता है और न उस पर कोई नियन्त्रण ही रहता है। जनता के सदस्यों द्वारा निरन्तर सम्पर्क बनाए रखने के लिए दो प्रकार के सुझाव दिए जा सकते हैं। पहला यह कि सदस्यों का निर्वाचन तीन वर्षों के लिए हो तथा 1/3 सदस्यों का निर्वाचन प्रतिवर्ष किया जाए। इस प्रकार की पद्धति से लाभ यह होगा कि बदलते हुए लोकमत को प्रतिनिधित्व मिल सकेगा। नगरपालिका क्षेत्र को तीन सदस्यों वाले निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाना चाहिए तथा प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से प्रतिवर्ष एक सदस्य निर्वाचित किया जाना चाहिए। दूसरा विकल्प इस दिशा में यह हो सकता है कि निर्वाचित सदस्यों को वापस बुलाने की व्यवस्था होनी चाहिए (जैसा कि 1999 में मध्य प्रदेश सरकार ने प्रथम बार ऐसा प्रयास किया)। यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र के 1/10 मतदाता प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करें कि सम्बन्धित सदस्य का 'रिकाल' होना चाहिए तो इस सम्बन्ध में मतदान किया जाना चाहिए। यदि मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों का बहुमत उस निर्वाचित सदस्य के विरुद्ध हो तो उसे सदस्यता से हटा दिया जाना चाहिए।
  18. इन संस्थाओं की समिति-पद्धति को अधिक शक्तिशाली बनाया जाना चाहिए।
  19. कुछ प्रकार की सेवाओं के लिए म्युनिसिपल कौंसिल, बोर्ड अथवा निगम का क्षेत्र शायद छोटा पड़े। उदाहरण के लिए बस सेवा, होटल, सिनेमाग ह आदि। अतः यह किया जा सकता है कि एक क्षेत्र की सभी संस्थाएँ मिलकर अपना क्षेत्रीय संगठन बना लें ताकि इन सेवाओं की व्यवस्था क्षेत्रीय स्तर पर की जा सके। इससे दो लाभ होने की सम्भावना है-प्रथम, यह कि इससे क्षेत्र की संस्थाओं के कार्यक्रमों में परस्पर व्यापकता नहीं होगी तथा उनमें पारस्परिक होड़ के स्थान पर एक-दूसरे से मिलजुल कर काम करने की भावना का विकास होगा। द्वितीय, यदि कई संस्थाएँ मिलकर काम करेंगी तो कुछ हद तक पूँजीगत धन की समस्या हल हो सकती है। ऐसी स्थिति में दो या तीन संस्थाएँ निर्धारित अनुपात में पूँजी लगाकर औद्योगिक प्रतिष्ठान, बाजार आदि की स्थापना कर सकती हैं।

20. इन संस्थाओं में नीति-निर्धारण तथा कार्यकारी उत्तरदायित्वों के बीच सीमा रेखा खींची जानी चाहिए।
21. इन संस्थाओं के शासन-संचालन से सम्बन्धित सभी लोग यथा निर्वाचित सदस्य, इन संस्थाओं के कर्मचारी, राज्य सरकार तथा राजनीतिक दल सभी को यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि इनका प्रशासन सर्वसाधारण के हित में चलाया जाना है अतः इन्हें इस प्रकार का कोई कदम नहीं उठाना चाहिए जिससे जनसाधारण के हितों की उपेक्षा हो।

## नगरीय स्थानीय संस्थाओं पर राज्य सरकार का नियन्त्रण (State Control over Urban Local Bodies)

भारत में विभिन्न राज्यों के नगरीय स्थानीय निकायों का राज्य सरकार द्वारा नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण रखा जाता है। इस नियंत्रण की मात्रा एवं प्रकृति प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न है तथापि सामान्य रूप से जिन क्षेत्रों में और जिन तरीकों से यह नियंत्रण रखा जाता है उसमें बहुत कुछ एकरूपता परिलक्षित होती है।

### नियन्त्रण की विधियाँ

राज्य सरकार नगरीय स्थानीय निकायों पर प्रायः निम्नलिखित विधियों से नियन्त्रण रखती है-

1. **संरक्षण प्रदान करना** - स्थानीय संस्थाएँ राज्य सरकार का एक अविभाज्य अंग हैं तथा उसके द्वारा हस्तान्तरित शक्तियों का प्रयोग स्थानीय संस्थाएँ करती हैं अतः यह आवश्यक हो जाता है कि जब कोई स्थानीय निकाय प्रशासन की मौलिकता की अवहेलना करे या जनता के हितों का किसी प्रकार बलिदान करे तो कोई उच्च सत्ता आकर निष्पक्षतापूर्वक उसमें हस्तक्षेप करे। पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण की सामान्य शक्तियाँ राज्य कार्यपालिका में निहित रहती हैं। कार्यपालिका स्थानीय शक्तियों की क्रियान्विति के लिए उत्तरदायी सत्ताओं के मित्र, निर्देशक, दार्शनिक, उत्साहवर्धक एवं उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती हैं। यह तुलनात्मक अध्ययन, आलोचना एवं स्पष्टीकरण, वार्षिक प्रतिवेदन, प्रस्ताव, सामान्य एवं विशेष स्मृति-पत्र आदि के माध्यम से विभिन्न नगरपालिका परिषदों को विशेषज्ञतापूर्ण परामर्श प्रदान करती है। विभिन्न आयोगों, समितियों एवं जाँचों के माध्यम से नवीन व्यवस्थापन के अभावों का अध्ययन करने के बाद राज्य सरकार कार्यों एवं शक्तियों के सम्बन्ध में नई नीतियाँ सुझाने में समर्थ होती है। नगरपालिका प्रशासन के सभी पहलुओं की कार्यपालिका के पास पूरी सूचना रहती है इसीलिए नगरपालिका परिषदों को अप्रत्यक्ष एवं सामूहिक रूप से कभी भी निर्देशित कर सकती है। स्थानीय निकायों के सम्बन्ध में राज्य सरकार की ये शक्तियाँ संरक्षण शक्तियाँ कहलाती हैं।
2. **कानून को लागू करना** - अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकार को अधिकार प्राप्त होता है कि वह अधिनियम लागू करने के सम्बन्ध में आदेश सभी नगरपालिकाओं अथवा कुछ विशेष नगरपालिकाओं के लिए जारी किए जा सकते हैं। नियम और आदेश राजपत्र में प्रकाशित किए जाते हैं और प्रकाश-तिथि के उपरान्त एक निश्चित अवधि के बाद लागू कर दिए जाते हैं। राज्य सरकार स्थानीय निकायों द्वारा बनाए गए उपनियम आदि तभी लागू समझे जाते हैं जब राज्य सरकार द्वारा उनका अनुमोदन कर दिया जाए। किसी उपनियम में कोई परिवर्तन राज्य सरकार की सहमति से ही किया जा सकता है।

राज्य सरकार को विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में नियम बनाने की शक्ति प्राप्त होती है। नगरपालिका या नगर परिषद् द्वारा सम्पत्ति प्राप्त एवं स्थानान्तरित किए जाने की शर्तों में भविष्य-निधि की क्रियान्विति में कर लगाने, वित्त एवं अनुमोदन से सम्बन्धित विषयों में राज्य एवं नगरपालिका सत्ताओं के बीच सम्पर्क रखने वाले कार्यालय के सम्बन्ध में; परिषद् द्वारा कार्य करने के लिए तैयार की गई योग्यताओं एवं अनुमानों में; नगरपालिका परिषदों द्वारा रखे जाने वाले लेखों में, जिस ढंग से राज्य सरकार के अधिकारी नगरपालिका परिषद् को अधिनियम के लक्ष्यों के संचालन में सहायता, परामर्श एवं सहयोग प्रदान करेंगे, उसके बारे में परिषद् की बैठकों इत्यादि के व्यवहार में तथा इसी प्रकार के अन्य बहुत से विषयों में राज्य सरकार को नियम बनाने का अधिकार है। ये विभिन्न विषय स्पष्ट रूप से अधिनियम में दिए होते हैं, किन्तु राज्य सरकार चुनाव, पार्षद के चयन एवं नामजदगी, अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष खड़े होने वाले उम्मीदवारों द्वारा जमा किए जाने वाले धन आदि ऐसे विषयों पर नियम बना सकती है जो अधिनियम में नहीं दिए



गए हों।

सरकार की नियम बनाने की शक्ति नगरीय स्थानीय प्रशासन में एकरूपता लाती है। यह लोक सेवकों को, इनके उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में सहयोग देती है। अंकेक्षकों को लेखों की परीक्षा करने में मदद करती है और स्थानीय स्वायत्त सरकार विधान को उसके प्रतिवेदन तैयार करने तथा नगर-परिषद् कार्यों में पुनरीक्षा करने में सहायता करती है। राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियम एवं उपनियम प्रायः राज्य के स्थानीय स्वायत्त शासन विभाग द्वारा प्रसारित किए जाते हैं।

3. **निरीक्षण करना** - राज्य सरकार के विभिन्न अधिकारी नगरीय स्थानीय शासन निकायों का निरीक्षण करते हैं। वे इन निकायों या संस्थाओं की सम्पत्ति, निर्माण कार्य, रिकार्ड आदि का निरीक्षण करते हैं। निरीक्षण त्रुटियों की ओर स्थानीय शासन अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करते हैं और त्रुटियों को दूर करने के उपाय सुझाये जाते हैं। निरीक्षण का अधिकार मुख्य रूप से जिलाधीश एवं संभागीय आयुक्त को प्राप्त रहता है, लेकिन राज्य सरकार द्वारा अधिकृत कोई अधिकारी नगरपालिका या अन्य स्थानीय शासन निकाय के कार्यालय का निरीक्षण कर सकता है और रिकार्ड आदि को अपने समक्ष पेश किए जाने का आदेश दे सकता है। जिलाधीश की शक्तियाँ व्यापक होती हैं। यदि उसका अभिमत होता है कि नगरपालिका या परिषद् की किसी आज्ञा, प्रस्ताव या कार्य की क्रियान्वित से जिले की शान्ति को खतरा है तो वह उस पर रोक लगा सकता है। नगरपालिका द्वारा संचालित विद्यालयों के पाठ्यक्रम एवं शिक्षा सम्बन्धी सामान्य नीति पर शिक्षा विभाग का पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण रहता है। सफाई से सम्बन्धित विषयों का निरीक्षण करने के लिए जिले का सिविल सर्जन होता है और जन-स्वास्थ्य विभाग का संचालक वार्षिक निरीक्षण करता है। अभिप्राय यह हुआ कि राज्य सरकार के विभिन्न विभागों के विभिन्न अधिकारी जन कार्य, नियोजन, पशु-चिकित्सा सेवा, अस्पताल से सम्बन्धित निरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग करते हैं।
4. **सूचना प्राप्त करना** - राज्य सरकार को नगरीय स्थानीय शासन निकायों से सूचना प्राप्त करने का अधिकार है। अधिनियम और नियमों के अन्तर्गत आवश्यक विभिन्न प्रकार के प्रतिवेदन और विवरण राज्य सरकार को नियमित रूप से भेजना स्थानीय संस्थाओं का कर्तव्य है। राज्य सरकार जो सूचना आवश्यक समझे, वह उपलब्ध कराने का आदेश किसी स्थानीय निकाय को दे सकती है। जाँच अधिकारी किसी व्यक्ति को, जो उसकी राय में आवश्यक हो, अपने समक्ष उपस्थित होने, बयान देने तथा दस्तावेज आदि प्रस्तुत करने का आदेश दे सकता है।
5. **स्वीकृति देने का अधिकार** - अनेक ऐसे कार्य हैं जो स्थानीय निकाय राज्य सरकार की स्वीकृति से ही वैध रूप से कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, राजस्थान नगरपालिका अधिनियम के अन्तर्गत कोई ऐच्छिक कर राज्य सरकार की स्वीकृति के बिना नहीं लगाया जा सकता। स्थानीय निकायों के उपनियम तभी लागू हो सकते हैं जब राज्य सरकार स्वीकृति प्रदान कर देती है।
6. **वित्तीय नियन्त्रण** - राज्य सरकार स्थानीय शासन निकायों पर वित्तीय नियन्त्रण रखती है। सभी नगरपालिकाओं से अपेक्षित है कि वे अपने आय-व्यय का वार्षिक बजट प्रस्तुत करें। राज्य सरकार नगरपालिका के कोष को लागू और नियमित करने सम्बन्धी नियम बनाती है। नियमों के आधार पर वह तय करती है कि कितनी लागत वाले अनुमान एवं योजनाएँ किसके द्वारा तय होंगे, नगरपालिका के खर्च एवं भुगतान की आज्ञाओं पर किस हस्ताक्षर होंगे तथा यह भुगतान किस प्रकार किए जाएँगे आदि-आदि। नगरपालिका द्वारा किसी भी रूप से सरकार की स्वीकृति के बिना कोई धन व्यय नहीं किया जा सकता। नगरपालिका के कोष को किसी ऐसे बैंक में नहीं रखा जा सकता जो राज्य सरकार द्वारा मान्य नहीं है। नगरपालिका अपनी सीमाओं से बाहर खर्च केवल तभी कर सकती है जबकि राज्य सरकार से पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर ले। उसकी सीमाओं के खर्च पर राज्य सरकार निर्देश दे सकती है। राज्यों की व्यवस्थापिका द्वारा नगरपालिका के कर निर्धारित किए जाते हैं। राज्य सरकार कर लगाने तथा उसकी अधिक से अधिक मात्रा निश्चित करने के नियम बना सकती है। कर लगाते समय राज्य सरकारों की स्वीकृति लेनी होती है। कई बार अनिवार्य करों की दरें, वसूली की तिथि आदि राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाती हैं। वसूली के नियम भी राज्य सरकार ही बनाती है। राज्य सरकार स्थानीय निकायों को ऋण देती है। ऋण राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार कुछ निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही दिये जा सकते हैं। ऋण से सम्बन्धित कार्यों एवं लेखाओं का परीक्षण करने की शक्ति राज्य सरकार को है। जब ऋण के रूप में कोई धन नगरपालिका को दिया

जाता है तो राज्य सरकार उससे सम्बन्धित कार्य पर पर्यवेक्षण रखती है। यदि कार्य पूरा हो जाने के बाद ऋण में से कोई धन बच जाता है तो उसे राज्य सरकार को लौटा दिया जाता है। गैर-सरकारी ऋण के सम्बन्ध में राज्य सरकार यह निर्देशित कर सकती है कि खर्च न किए गए धन को ऋण कम करने के काम में लाया जाए।

राज्य सरकार द्वारा नगरपालिका के लेखों का अंकेक्षण करने के लिए अंकेक्षक नियुक्त किए जाते हैं। राज्य सरकार लेखों को उचित रूप से रखने के नियम बना सकती है और परिषद् द्वारा रखे जाने वाले विभिन्न रजिस्ट्रों के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत कर सकती है।

7. यदि नगरपालिका या अन्य नगरीय स्थानीय निकाय अपना कार्य न करें तो राज्य सरकारों को अधिकार होता है कि अपने अधिकारियों से यह कार्य करवा ले और कार्य-व्यय स्थानीय निकायों से वसूल कर ले। व्यय वसूल करना या न करना राज्य सरकार की इच्छा पर है। कुछ अधिनियमों के द्वारा राज्य सरकार को यह अधिकार दे दिया जाता है कि वह स्थानीय निकायों को जनहित में कुछ कार्य करने के लिए निर्देश दे सके। ऐसे निर्देशों का पालन किया जाना अनिवार्य होता है।
8. अनेक अवसरों पर नगरपालिका के अधिकारियों के निर्णय एवं आदेश विरोध का कारण बन जाते हैं। इनके विरुद्ध की गई अपीलें राज्य सरकार को प्रस्तुत की जाती हैं। यदि कानून का संचालन सही ढंग से न किया जाए और नगरपालिका परिषदें उनकी अवहेलना करें तो राज्य सरकार से इसकी अपील की जा सकती है। विभिन्न राज्यों में ऐसे अनेक विषयों का उल्लेख कर दिया गया है कि जिन पर दी गई आज्ञाएँ अपील का विषय बन सकती हैं। सामान्य रूप से परिषद् की आज्ञाओं के विरुद्ध की गई अपील तथ्य के विषयों से सम्बन्ध रखती है न कि कानून के विषयों से। अपील सुनने वाली सत्ता का निर्णय प्रत्येक स्थिति में अन्तिम माना जाता है तथा कोई न्यायालय इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता और विषय को पुनरीक्षा या पुनरावलोकन के लिए नहीं मँगा सकता है। साधारणतः लाइसेन्स देने या न देने या रद्द करने, भवन निर्माण सम्बन्धी उपनियमों को लागू करने में एवं कर्मचारियों के विरुद्ध की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही के विरुद्ध राज्य सरकार से अपील की जा सकती है।
9. अधिनियमों के अन्तर्गत राज्य सरकारों को यह अधिकार प्राप्त होता है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में नगरपालिका अथवा नगर परिषद् को भंग कर दे या उसका अतिक्रमण कर दे। यदि परिषद् अपने कर्तव्यों की पूरी तरह अवहेलना करती है या मतभेद के कारण प्रशासनिक कार्य अवरुद्ध हो जाता है या परिषद् अपनी शक्तियों का उल्लंघन या दुरुपयोग करने लगती है तो राज्य सरकार को अधिकार है कि परिषद् को भंग करके नए निर्वाचन की आज्ञा जारी कर दे। इस प्रकार की आज्ञा प्रसारित करने के पहले साधारणतः संस्था को आरोप पत्र दिया जाता है, जाँच समिति द्वारा आरोप की जाँच कराई जाती है और संस्था को अवसर दिया जाता है कि वह जाँच समिति के समक्ष अपनी सफाई पेश करे। कुछ अधिनियमों के अन्तर्गत जाँच समिति की राय मानना अनिवार्य होता है। उदाहरणार्थ राजस्थान में जाँच समिति के निर्णयों के विरुद्ध कोई आदेश जारी नहीं किया जा सकता है। अतिक्रमण या भंग किये जाने का आदेश अधिनियम द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार लिया जाना चाहिए अन्यथा सम्बन्धित संस्थान ऐसे आदेश को न्यायालय में चुनौती दे सकती है। न्यायपालिका राज्यादेश को आवश्यक सुनवाई के बाद वैध या अवैध घोषित कर सकती है।
10. **सेवीवर्ग पर शक्तियाँ** - नगरपालिका स्तर पर अधिकारी एवं गैर-अधिकारी दोनों प्रकार के सदस्य कार्य करते हैं। जहाँ तक गैर-अधिकारी सदस्यों का प्रश्न है राज्य सरकार पार्षदों की संख्या निश्चित करती है, परिषद् में निर्वाचित, चयन किए हुए एवं मनोनीत सदस्यों का अनुपात निश्चित करती है और उनके चुनाव का नियमन करने के लिए नियम बनाती है। जहाँ सदस्यों को मनोनीत करने का प्रावधान होता है वहाँ पार्षदों की कुल संख्या को सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता है। पंजाब में सरकार को यह अधिकार है कि वह किसी निर्वाचित सदस्य का पद खाली होने पर उस पद को खाली रखने या नियुक्ति द्वारा भरने के लिए निर्देशित करे। वह निर्वाचित या नियुक्त किसी विशेष सदस्य की सीट को खाली करा सकती है। राज्य सरकार को यद्यपि यह शक्ति है कि वह परिषद् के किसी सदस्य को हटा सके, किन्तु इस शक्ति का प्रयोग तब तक नहीं किया जाएगा, जब तक कि सम्बन्धित पार्षद को स्पष्टीकरण का अवसर न दे दिया जाए। यदि किसी नगरपालिका के सदस्य को कार्यालय से गलती से हटा दिया जाए तो वह सरकार के विरुद्ध मुकदमा लड़ सकता है। ऐसी स्थिति में हटाने वाले को यह सिद्ध करना होगा कि वह उचित कारणों से ही

हटाया गया है। चेन्नई, आन्ध्र, पंजाब और केरल राज्य में सरकार अध्यक्ष को शक्ति के दुरुपयोग या कर्तव्यों के पालन में स्वभावगत असफलता के लिए हटा सकती है। राज्य सरकार शिक्षा, जन कार्य, मेडिकल, स्वास्थ्य एवं अन्य तकनीकी विभागों के लोगों को समिति की बैठकों में भाग लेने के लिए तथा उनके विभाग को प्रभावित करने वाले विषयों पर बोलने के लिए आमन्त्रित कर सकती है।

नगरपालिका के लोक सेवकों की दृष्टि से राज्य सरकार को विभिन्न शक्तियाँ सौंपी गई हैं। उसे अधिकार होता है कि सचिव, अभियन्ता, स्वास्थ्य अधिकारी, सफाई निरीक्षक, लेखाधिकारी, ओवरसीयर, नर्स आदि की नियुक्ति के सम्बन्ध में नियम बना सके।

11. **न्यायिक नियन्त्रण** - राज्य सरकार का एक प्रमुख अंग न्यायपालिका है जो स्थानीय निकायों पर न्यायि नियन्त्रण की भूमिका निभाता है। न्यायिक नियन्त्रण प्रशासनिक नियन्त्रण से भिन्न होता है। कोई न्यायालय तब तक स्थानीय निकायों की शक्तियों में हस्तक्षेप नहीं करता जब तक कि उनके द्वारा अपनी शक्तियों को घातक रूप में अधिनियम के प्रतिकूल और बुरे विश्वास के साथ न अपनाया गया हो। न्यायाधीश स्वयं अपनी तरफ से पहल करके कदम नहीं उठा सकता, पहल अन्य पक्षों द्वारा होनी चाहिए। न्यायिक नियन्त्रण स्थानीय सत्ताओं को सीमा में रखता है इसलिए नागरिकों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। नगरपालिकाओं पर न्यायालय का नियन्त्रण तीन प्रकार से प्रयुक्त किया जाता है। प्रथम, न्यायालय अधिनियम और कानूनों की व्याख्या करता है और उन्हें कानून का स्तर देता है। द्वितीय, न्यायालय नगरपालिका की सत्ताओं को गैर-कानूनी कार्य करने से मना करता है। तृतीय, अधिनियम के अधीन न्यायालयों को नगरपालिका के कार्यों एवं प्रशासन पर अपील सुनने का अधिकार होता है।

दोष-उपर्युक्त विवेचन से यह प्रकट होता है कि नगरीय स्थानीय निकायों पर राज्य सरकार की नियन्त्रणकारी शक्तियाँ विस्तृत और व्यापक हैं, पर व्यवहार में वर्तमान नियन्त्रण व्यवस्था प्रभावकारी प्रतीत नहीं होती है। राज्य सरकार का नियन्त्रण कुल मिलाकर स्थानीय शासन निकायों की कार्यक्षमता बढ़ाने में सफल नहीं हुआ है। इस नियन्त्रण व्यवस्था के मुख्य दोषों को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है-

1. नियन्त्रण के साधन नकारात्मक हैं। नियन्त्रण का उद्देश्य समुचित मार्गदर्शन न होकर दण्डात्मक प्रतीत होता है। राज्य सरकार को नगरपालिका एवं नगरपरिषद् को भंग करके नए निर्वाचन का आदेश देने का अधिकार है, लेकिन इसे सुधारात्मक उपाय नहीं कहा जा सकता है। उचित तो यह है कि सरकारी विभाग की देख-रेख में प्रभावी निर्देश देकर स्थानीय सत्ता को अपने को सुधारने का अवसर दिया जाए।
2. स्थानीय शासन संस्थाओं को बार-बार भंग करने, अतिक्रमण करने, सदस्यों एवं चेयरमैन को निष्कासित करने से न केवल सार्वजनिक धन और शक्ति का अपव्यय होता है, बल्कि स्थानीय संस्थाओं से जनता का विश्वास उठने लगता है।
3. ऐसे अनेक अधिकरण हैं जिनके द्वारा परिषदों पर राज्य का नियन्त्रण लागू किया जाता है। शिक्षा एवं स्वास्थ्य, सफाई, पशु चिकित्सालय आदि पर विभिन्न सरकारी, तकनीकी विभाग अपने कार्यालयों द्वारा प्रत्यक्ष नियन्त्रण रखते हैं। सामान्य प्रशासन एवं वित्त के क्षेत्र में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं पर सरकार मंत्रालय आयुक्तों एवं जिला अधिकारियों के माध्यम से नियन्त्रण रखती है, किन्तु ये अधिकारी राजस्व विभाग के अधिकारी होते हैं और इनको स्थानीय प्रशासन पर पर्यवेक्षण रखने के लिए कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं मिलता है। वे अन्य कार्यों में अत्यन्त व्यस्त रहने के कारण स्थानीय निकायों में अधिक समय नहीं दे पाते, फलतः स्थानीय निकायों पर पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण अत्यन्त अपर्याप्त रहता है। उत्तर प्रदेश की स्थानीय स्वायत्त सरकार समिति ने बताया था कि जिला अधिकारियों एवं आयुक्तों द्वारा सरकार की ओर से स्थानीय निकायों पर जो नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण रखा जाता है उसमें पर्याप्त रुचि नहीं लेते क्योंकि उन पर उनके अपने ही कार्यों का भार काफी रहता है।
4. कई बार नियन्त्रण की कठोरता से स्थानीय पहल को ठेस पहुँचती है। राजस्थान में वित्तीय सहायता और ऋण प्राप्त के नियम काफी कठोर और जटिल हैं।
5. ऐसी शिकायतें प्रायः सुनने में आती हैं कि नियन्त्रण-शक्तियों का प्रयोग दलगत राजनीति के व्यक्तिगत लाभ अथवा बदले की भावना से किया जाता है। एक ही आधार की परिस्थितियों में कुछ नगरपालिकाएँ भंग कर दी जाती हैं जबकि

अन्य को कुछ नहीं कहा जाता है।

6. कई बार स्थानीय शासन संस्थाओं का अधिक्रमण वर्षों तक चलता रहता है जिसे उचित नहीं कहा जा सकता। यह आवश्यक है कि अधिनियम के अन्तर्गत अधिक्रमण की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी जाए।
7. प्रायः देखा गया है कि राज्य सरकार और स्थानीय शासन संस्थाओं के बीच खींचतान चलती रहती है। अधिकारी-अधीनस्थ सम्बन्ध का स्वरूप वर्तमान बदली हुई परिस्थितियों में ठीक नहीं है। दोनों ही सत्ताओं को पारस्परिक सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिए ताकि जनता का अधिकतम हित हो सके।
8. नियन्त्रण की वर्तमान व्यवस्था में रचनात्मकता की कमी है। प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों की भाँति यहाँ भी नौकरशाही का बोलबाला है।

वर्तमान नियन्त्रण की व्यवस्था को सुधारने के लिए क्या किया जाए यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिस पर समय-समय पर विचार किया जाता रहा है। यह आवश्यक है कि पर्यवेक्षण और नियन्त्रण का काम ऐसे अधिकारियों को सौंपा जाए जो स्थानीय समस्याओं को समझते हैं और स्थानीय निकायों की परेशानियों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने में सक्षम हों। उन्हें स्थानीय प्रशासन पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण रखने का समुचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इस मनोवृत्ति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि स्थानीय सत्ता के कार्यों में आए दिन हस्तक्षेप न किया जाए। निरीक्षकों को केवल परामर्शदात्री शक्तियाँ प्राप्त हैं, जो पर्याप्त नहीं हैं। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि स्थानीय निकाय निरीक्षकों के परामर्श की अवहेलना न करे। राज्य सरकार की हस्तक्षेप करने की शक्तियाँ सुधारात्मक के साथ-साथ दण्डात्मक भी होनी चाहिए।

## अध्याय-30

# पंचायती राज

### (Panchayati Raj)

---

पंचायती राज की घोषणा स्वतंत्र भारत में सबसे अधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन में से एक है। इसे क्रांतिकारी कदम कहा जा सकता है। पंचायती राज स्थानीय स्वशासन की एक ऐसी प्रणाली है जिसमें लोग विकास की जिम्मेदारी स्वयं लेते हैं। यह लोगों की पहल और साझेदारी द्वारा ग्राम विकास की संस्थागत व्यवस्था की प्रणाली भी है। विकास कार्यक्रमों के उपयोग का उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास करना तथा सामुदायिक और कल्याण सेवाओं की व्यवस्था करना है। ये कार्य इन स्थानीय स्वशासी संस्थाओं को सौंपे गए हैं। पंचायती राज में जिला, खंड और ग्राम स्तरों पर लोकतांत्रिक संस्थाओं की तीन स्तरीय संरचना अर्थात् क्रमशः जिला परिषद्, पंचायत समिति और ग्राम पंचायत शामिल की गई है। इन संस्थाओं को लोकतंत्र का प्रशिक्षण क्षेत्र और राजनीतिक शिक्षा की संस्था भी माना गया है। ग्राम विकास योजनाएं और कार्यक्रम इस स्तर पर कार्यान्वित किए जाते हैं ताकि विकास के लाभ सीधे ही समाज को मिल सकें। इन संस्थाओं की स्थापना 1959 में विकेंद्रीकरण और ग्राम स्वराज दर्शन के आधार पर की गई थी। इस इकाई में हम बलवन्त राय मेहता समिति और अशोक मेहता समिति की सिफारिशों, पंचायती राज संस्थाओं की संरचना, नौकरशाही की भूमिका, वित्तीय संसाधन और उनके कार्यकरण में हाल ही में हुए विकास का अध्ययन करेंगे।

पंचायती राज की स्थापना योजना आयोग (Planning Commission) द्वारा नियुक्त की गई बलवन्त राय मेहता समिति (Balwant Rai Mehta Committee) के सुझाव के अनुसार की गई है। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 1957 में पेश की, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र को लोकतन्त्रीय विकेंद्रीकरण के सिद्धान्त पर पुनर्गठन करके गांव, खण्ड तथा जिले के स्तर पर त्रिस्तरीय प्रजातन्त्रीय संस्थाओं के निर्माण करने का सुझाव दिया गया। समिति के सुझाव को राष्ट्रीय विकास समिति (National Development Council) ने 1958 में स्वीकार किया तथा इसके अनुसार राज्य सरकारों को अपनी स्थानीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए पंचायती राज संस्थाओं के निर्माण करने का आदेश दिया। राजस्थान पहला राज्य था जिसमें 2 अक्टूबर, सन् 1959 को पंचायती राज की स्थापना की गई। इसके पश्चात् आंध्र प्रदेश (Andhra Pradesh), असम (Assam), मद्रास (Madras), महाराष्ट्र (Maharashtra), मैसूर (Mysore), उड़ीसा (Orissa), पंजाब (Punjab), उत्तर प्रदेश (U.P.), बिहार (Bihar), गुजरात (Gujarat) तथा मध्यप्रदेश (M.P.) आदि सभी राज्यों तथा केन्द्रीय क्षेत्रों ने इसे अपना लिया। तत्पश्चात् पंचायती राज को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए कई प्रयास किए गए परन्तु कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में अप्रैल, 1993 में 73वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1992 पारित किया गया। जिसके अनुसार पंचायती राज संस्थाओं को न केवल संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई बल्कि इनके संगठन, कार्य क्षेत्र तथा वित्तीय क्षेत्र में भी सुधार एवं विस्तार किया गया। इस संशोधन की धाराओं के अन्तर्गत सभी राज्यों में अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुकूल पंचायती राज अधिनियम पारित करने का निर्देश दिया गया। परिणामस्वरूप लगभग सभी राज्य सरकारों ने नवीन पंचायती राज अधिनियम पारित किए जैसे पंजाब पंचायती राज अधिनियम - 1994, हिमाचल प्रदेश पंचायती राज अधिनियम-1994, हरियाण पंचायती राज अधिनियम-1994, आदि। इस समय जम्मू-कश्मीर, लक्षद्वीप, मिजोरम तथा अन्य कुछ क्षेत्रों को छोड़ कर लगभग सभी राज्यों में इस की व्यवस्था की गई है। इस समय देश में लगभग 2.20 लाख ग्राम पंचायतें, 5.5 हजार पंचायत समितियां तथा 371 जिला परिषदें स्थापित हैं।

यद्यपि विभिन्न राज्यों में अपनी स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार पंचायती राज के संगठन में कुछ परिवर्तन किए गए हैं तथापि

उन सब का मूल आधार समान है। इस के अनुसार प्रायः त्रिस्तरीय प्रणाली (Three Tier System) को अपनाया गया तथा निम्न तीन प्रकार की संस्थाओं की स्थापना की गई -

- (i) ग्राम स्तर पर पंचायत।
- (ii) खंड (Block) स्तर पर समिति।
- (iii) जिला स्तर पर जिला परिषद्।

### **ग्राम सभा (Gram Sabha)**

ग्राम सभा पंचायती राज की प्राथमिक इकाई है, जिसके आधार पर ग्राम पंचायत कार्यपालिका के रूप में कार्य करती है। बलवन्त राय समिति ने पंचायती राज का सुझाव देते हुए केवल त्रिस्तरीय व्यवस्था की कल्पना की थी, जिसमें सब से नीचे गांव स्तर पर पंचायत थी। इस समिति ने यह नहीं सोचा था कि गांव के स्तर पर प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की स्थापना करने के लिए गांव के सभी निवासियों की एक संस्था भी होनी चाहिए, जिस के प्रति पंचायत को उत्तरदायी बनाया जा सके। इस आवश्यकता को अनुभव करते हुए जब पंचायती राज प्रणाली को लागू किया गया, तो विभिन्न राज्यों में ग्राम सभा को पंचायती राज की मौलिक इकाई (Basic Unit) के रूप में स्वीकार किया गया। ग्राम सभा सही अर्थों में जनमूलक संस्था है, जिसमें जनता के प्रतिनिधि ही नहीं, बल्कि जनता स्वयं सम्मिलित होती है। यह भारत में केवल एकमात्र राजनीतिक संस्था है, जिसमें प्रत्यक्ष लोकतन्त्र विद्यमान है। ग्राम सभा अपने सदस्यों में से पंचायत के सदस्यों (पंचों एवं सरपंचों) का चुनाव करती है। इसलिए पंचायत इसके प्रति उत्तरदायी है। पहले केरल तथा तमिलनाडू के राज्यों को छोड़कर शेष सभी राज्यों में ग्राम सभा को वैधानिक संस्था (Statutory Body) का रूप दिया गया था। इन राज्यों में इसे Corporate का रूप दिया गया था। अब सभी राज्यों में इसे वैधानिक संस्था का रूप दिया गया है।

**रचना (Composition)** - ग्राम सभा की रचना सभी राज्यों में पूर्णतया एक जैसी नहीं है। बिहार, उड़ीसा तथा राजस्थान में गांव अथवा समीपस्थ गांवों के समूह के वयस्क निवासी इसके सदस्य होते हैं। दूसरे राज्यों में ग्राम क्षेत्र के सभी मतदाता अर्थात् वे लोग जिनके नाम राज्य की विधानसभा के चुनाव की मतदाता सूची में लिखे होते हैं, ग्राम सभा के सदस्य होते हैं। इस प्रकार गांव का प्रत्येक स्त्री और पुरुष जिसकी आयु 18 वर्ष या इससे अधिक हो ग्राम सभा का सदस्य होता है। ग्राम सभा का आकार सभी राज्यों में भिन्न है। साधारणतः उसमें 250 से 500 तक सदस्य होते हैं। जैसे पंजाब में जब पंचायती राज की स्थापना की गई थी तो किसी भी गांव में जिनकी जनसंख्या 500 या इससे अधिक है वहां पर ग्राम सभा की व्यवस्था की जाती है। यदि किसी गांव की जनसंख्या 500 से कम हो तो उसके समीप के छोटे-छोटे गांवों को मिलाकर ग्रामसभा की स्थापना की जाती थी, परन्तु 27 जनवरी, 1971 को राज्य सरकार ने ग्राम पंचायत एक्ट, 1952 में संशोधन करके ग्राम सभा के निर्माण के लिये कम से कम जनसंख्या 200 निश्चित की है। जम्मू व कश्मीर, मैसूर (कर्नाटक) तथा राजस्थान के पंचायत अधिनियमों (Panchayat Acts) द्वारा ग्राम पंचायत के क्षेत्र में रहने वाले सभी वयस्कों के अधिवेशनों की व्यवस्था की गई है।

**अधिवेशन (Session)** - ग्राम सभा के अधिवेशन के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रणाली विद्यमान है। ग्राम सभा का अधिवेशन अधिकांश राज्यों में प्रति वर्ष दो बार होता है परन्तु तमिलनाडू में एक वर्ष में तीन बार तथा असम एवं बिहार में प्रतिवर्ष चार बार होता है। इसकी कार्यवाही संस्था (Quorum) ग्राम सभा के सदस्यों का पांचवां भाग होती है। 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम द्वारा ग्राम सभा को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई है तथा इस एक्ट के प्रभावधीन सभी राज्यों द्वारा पारित किए गए पंचायती राज अधिनियमों द्वारा ग्राम स्तर पर सभा की स्थापना करना अनिवार्य है तथा सभी राज्यों में इसे वैधानिक संस्था (Statutory Body) की स्थिति (Status) प्रदान की गई है। इसकी कार्यवाही संस्था (Quorum) ग्राम सभा के सदस्यों का पांचवां भाग होती है।

ग्राम सभा की बैठक की अध्यक्षता सरपंच (प्रधान) और सरपंच की अनुपस्थिति में उपसरपंच (उप-प्रधान) द्वारा की जाती है। उन दोनों की अनुपस्थिति की दशा में ग्राम सभा की बैठक की अध्यक्षता, बैठक में उपस्थित सदस्यों के बहुमत द्वारा इस प्रयोजन के लिए निर्वाचित सदस्य द्वारा की जाती है।

केरल जैसे राज्य में जहां पर प्रत्येक ग्राम पंचायत की जनसंख्या 2000 है। ग्राम सभा की बैठक बुलाना कठिन है। इस समस्या का समाधान करने के लिए वहां पर क्षेत्रीय बैठक होती है। गांव के क्षेत्रों में बांटा गया है तथा प्रत्येक क्षेत्र की अलग बैठक होती है जिसमें ग्राम पंचायत का सरपंच अध्यक्षता करता है। बिहार, गोवा, त्रिपुरा, राजस्थान तथा मणिपुर में प्रत्येक ग्राम सभा के लिए एक चौकसी समिति (Vigilance Committee) की व्यवस्था की गई है।

**कार्य (Functions)** - ग्राम सभा का प्रमुख कार्य पंचायत के सदस्यों का चुनाव कराना है। इसके अतिरिक्त वह पंचायत द्वारा किए गए कार्यों का पुनर्निरीक्षण करती है वह पंचायत के वार्षिक बजट तथा लेखा परीक्षण की रिपोर्ट पर विचार करती है तथा उसका अनुमोदन करती है। यह सभा क्षेत्र के विकास के लिए योजनाएँ बनाने के लिए सुझाव देती है। ग्राम सभा क्षेत्र के विकास के लिए पंचायत द्वारा किए गए कार्यों का मूल्यांकन करती है और पंचायत की गतिविधियों तथा कार्यक्रमों को कुशलतापूर्वक लागू करने के लिए सहयोग देती है। किसी विशेष योजना, कार्यविधि, आय तथा व्यय के बारे में सरपंच तथा पंचों से जानकारी प्राप्त कर सकती है।

उड़ीसा में ग्राम सभा को श्रम कर तथा दूसरे विकास सम्बन्धी विषयों के सम्बन्ध में सुझाव या संकेत देने की शक्ति प्रदान की गई है। उत्तर प्रदेश के खरीफ की फसल के पश्चात् ग्राम सभा की बैठक में वार्षिक बजट पर विचार किया जाता है और रबी की फसल के पश्चात् होने वाले अधिवेशन में इस बात पर विचार किया जाता है कि व्यय ठीक प्रकार से किया जाता है या नहीं।

ग्राम सभा को पंचायती राज में विशेष स्थान प्राप्त है। इसे पंचायती राज का आधार कहा जा सकता है। इसका उत्तरदायित्व बड़ा विस्तृत है तथा यह ग्राम पंचायत पर सम्पूर्ण नियन्त्रण कर सकती है। परन्तु व्यवहार में इसे कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। इसके अधिवेशन समय पर नहीं बुलाये जाते और न ही विभिन्न प्रकार के विषयों पर इसमें विचार-विमर्श किया जाता है। यह केवल एक नाममात्र संस्था के रूप में कार्य करती है। श्री आर. आर. दिवाकर (R.R. Dewakar) की अध्यक्षता में केन्द्रीय सरकार ने सन् 1962 में एक कमेटी नियुक्त की और इसे पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत ग्राम सभा की स्थिति की जांच करके ऐसे उपाय सुझाने के लिए कहा गया जिससे यह पंचायती राज व्यवस्था का मजबूत आधार बनाई जा सके। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि "यह आवश्यक है कि ग्रामसभा को महत्त्व दिया जाए और धीरे-धीरे उसके शक्ति प्रदान की जाए।" ग्राम सभा को पंचायती राज का वास्तविक आधार बनाने तथा इसे प्रभावशाली संस्था बनाने के लिए सुझाव देते हुए इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि "हमारा विचार है कि ग्राम सभा को जो ग्राम समुदाय में प्रभावकारी स्थिति प्रदान करने के उपाय ये हैं कि पंचायत की संस्था को जो ग्राम सभा की कार्यपालिका है और ऐसा प्रशासनिक अंग है, जिसके द्वारा स्थानीय शासन उच्च स्तर के कार्य करता है, शक्तिशाली बनाया जाये।" दिवाकर समिति के सुझावों के बावजूद भी ग्राम सभा की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ तथा इसे एक औपचारिक संस्था समझा जाता है। इसके अधिवेशनों में बहुत कम लोग उपस्थित होते हैं। परन्तु अब आशा है कि 63वें संशोधन द्वारा इसे संवैधानिक मान्यता प्रदान किए जाने के कारण इस की स्थिति में विशेष अन्तर होगा और यह एक प्रभावशाली संस्था के रूप में कार्य करेगी।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित स्थानीय शासन प्रणाली को सफल बनाने में ग्राम सभा को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। इसके लिए अति आवश्यक है कि इसे शक्तिशाली तथा सक्रिय बनाया जाए। इससे पंचायत अपना कार्य और अच्छी तरह से कर सकेगी। फलस्वरूप ग्रामीण भारत का नव-निर्माण अधिक तीव्र गति से होगा।

## पंचायत (Panchayat)

पंचायत भारत में स्थानीय स्वशासन की प्राचीन संस्था है जो देश में बहुत-सी सामाजिक तथा राजनीतिक क्रान्तियों एवं परिवर्तन के होते हुए भी स्थिर रही है। श्री चार्ल्स मेटकॉफ (Charles Matcalf) के शब्दों में, "ग्रामीण समुदाय छोटे गणतन्त्र होते हैं जो अपनी सीमाओं में रहते हुए, अपनी इच्छानुसार जो चाहे कर सकते हैं तथा बाह्य हस्तक्षेप से स्वतन्त्र होते हैं। वे निरन्तर स्थिर चले आ रहे हैं। वंश के पश्चात् वंश की समाप्ति हुई, क्रान्ति के पश्चात् क्रान्तियाँ आई परन्तु ग्रामीण समुदायों ने अपने पथक

राज्य के रूप, समाज तथा संस्कृति को बनाए रखने में देश को साहित्यिक सहायता दी है।”

**नामावली (Nomenclature)** - पंचायत को भिन्न-भिन्न राज्यों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। कुछ राज्यों में ग्राम पंचायत, कुछ में विलेज पंचायत आदि का नाम दिया जाता है। प्रत्येक राज्य के नवीन पंचायती राज अधिनियम द्वारा ग्राम पंचायत की स्थापना करने के लिए गांव की जनसंख्या भिन्न-भिन्न निश्चित की गई है। कर्नाटक में एक गांव या गांव समूह जिसकी जनसंख्या 5,000-7,000 तक हो गाम पंचायत की स्थापना की जा सकती है। बिहार में ग्राम पंचायत की स्थापना के लिए गांव की जनसंख्या 7,000 निर्धारित की गई है। असम में यह जनसंख्या 6,000-10,000 होनी चाहिए। अरुणाचल में जिस गांव की जनसंख्या 3,000 हो वहां पंचायत की स्थापना की जा सकती है। हरियाणा में ग्राम पंचायत की स्थापना के लिए ग्राम सभा की जनसंख्या 500 होना जरूरी है। पंजाब में पहले 500 जनसंख्या होना आवश्यक था बाद में इसे कम करके 200 कर दिया। परन्तु पंजाब पंचायती राज एक्ट, 1994 के अनुसार किसी प्रकार की जनसंख्या निर्धारित नहीं की गई। इस तरह आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, केरल, तमिलनाडू, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात, त्रिपुरा, मणिपुर, गोआ, मध्य प्रदेश, सिक्किम तथा हिमाचल के राज्यों में जनसंख्या की कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई। इस समय भारत में लगभग 2.20 लाख ग्राम पंचायतें हैं।

**पंचायत के सदस्यों की संख्या एवं चुनाव (Number and Election of Members of Panchayat)** - सभी राज्यों में पंचायत के सदस्यों को प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुनने की व्यवस्था की गई है क्योंकि सदस्यों की संख्या जनसंख्या पर निर्भर है। इसलिए प्रत्येक राज्य में पंचायत के सदस्यों की संख्या राज्य अधिनियम द्वारा निर्धारित ग्राम पंचायत की जनसंख्या पर निर्भर करती है। भिन्न-भिन्न राज्यों में ग्राम पंचायत के सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न है।

**आरक्षण (Reservation)** - 73वें संवैधानिक संशोधन एक्ट, 1992 के प्रभावाधीन सभी राज्य पंचायती राज अधिनियमों द्वारा अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के आरक्षित स्थानों की संख्या ग्राम पंचायत के कुल स्थानों की संख्या का अनुपात वही होगा जो ग्राम सभा क्षेत्र में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या ग्राम सभा क्षेत्र की कुल जनसंख्या से है। आरक्षण को वास्तविक बनाने के लिए कई राज्यों में यह भी व्यवस्था की गई है कि यदि इन वर्गों के लोगों की जनसंख्या बहुत कम हो तो उन का कम से कम एक सदस्य ग्राम सभा का सदस्य हो। जैसे पंजाब, हरियाणा तथा हिमाचल में यह व्यवस्था की गई है कि “यदि अनुसूचित जाति की कम संख्या के कारण यथा पूर्वोक्त स्थानों का आरक्षण सम्भव न हो और सभा क्षेत्र में अनुसूचित जाति की जनसंख्या सभा क्षेत्र की कुल संख्या का कम से कम पांच प्रतिशत हो तो ग्राम पंचायत में एक स्थान अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित किया जाए।”

अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित कबीलों की भान्ति एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। संशोधन एक्ट, 1992 के अनुसार ग्राम पंचायत में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के प्रत्येक वर्ग के लिए आरक्षित स्थानों और अनारक्षित स्थानों के एक तिहाई से अन्यून स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।

इस तरह इस नवीन एक्ट द्वारा अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं को विशेष रूप से प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई है। इन के अतिरिक्त कुछ राज्यों के पिछड़े वर्ग के लोगों को आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

**पंचायतों के सदस्यों की योग्यताएं (Qualifications for the Members of the Panchayat)** -

1. वह भारत का नागरिक हो तथा उसे विधान-सभा का सदस्य चुने जाने की सभी योग्यताएं प्राप्त हों।
2. वह उस गांव क्षेत्र (पंचायत क्षेत्र) का निवासी हो।
3. उसकी आयु 21 वर्ष से कम न हो।
4. वह स्थानीय सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार का कर्मचारी न हो।
5. उसे किसी न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित न किया गया हो।
6. वह किसी अपराध में दण्ड न पा चुका हो या जिसके दण्ड को समाप्त हुए 5 साल की अवधि हो चुकी हो।



**सरपंच अथवा अध्यक्ष (Sarpanch or Chairperson)** - अध्यक्ष के चुनाव की विधि भी समान नहीं है। बिहार, गुजरात, गोआ, मध्य प्रदेश, असम, मणिपुर, तमिलनाडू, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा तथा पंजाब में पंचायत के अध्यक्ष को प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुना जाता है। इस तरह हिमाचल में प्रधान तथा उप प्रधान को ग्राम सभा के मताधिकारियों द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुना जाता है। अन्य राज्यों, कर्नाटक, केरल, सिक्किम, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा, उड़ीसा तथा अरुणाचल प्रदेश में अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष को पंचायत के सदस्यों द्वारा अपने में से चुना जाता है। अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के पद के लिए भी अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए उन की राज्य में जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। इस के अतिरिक्त एक तिहाई अध्यक्षों के स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। कुछ राज्यों में अध्यक्ष के पदों में पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

**अवधि (Term)** - सभी राज्यों में पंचायत का कार्यकाल पांच वर्ष निर्धारित किया गया है। यदि कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व किसी पंचायत का विघटन हो तो विघटन के छः महीने के अन्दर निर्वाचन करवाना अनिवार्य है।

**अधिवेशन (Session) एवं गणपूर्ति संख्या (Quorum)** - ग्राम पंचायतों की बैठकों तथा गणपूर्ति के सम्बन्ध में एकरूपता नहीं है। ये भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न हैं। किसी राज्य में प्रति महीने में एक बैठक बुलाई जाती है तो किसी में दो बार। कुछ राज्यों में दो महीने में केवल एक बार पंचायत का अधिवेशन होता है।

## ग्राम पंचायत के कार्य (Functions of Gram Panchayat)

ग्राम पंचायत के बहुमुखी कार्य हैं जिनका विवरण निम्नलिखित हैं -

1. **सार्वजनिक कार्य (Public Functions)** - पंचायत के सार्वजनिक कार्य इस प्रकार हैं -

- (i) अपने क्षेत्र की सड़कों की देखभाल करना, उनकी मरम्मत करना।
- (ii) ग्राम की सफाई करना।
- (iii) कुओं, नलों तथा तालाबों आदि की व्यवस्था तथा देखभाल करना।
- (iv) गलियों तथा बाजारों में रोशनी का प्रबन्ध करना।
- (v) श्मशानों तथा कब्रिस्तानों की निगरानी करना।
- (vi) जन्म एवं मृत्यु का लेखा करना।
- (vii) प्राथमिक शिक्षा के प्रयत्न करना।
- (viii) पशुओं की मंडियां लगवाना तथा पशुओं की नस्ल में सुधार करना।
- (ix) ग्राम सभा से सम्बन्धित किसी भी भवन की सुरक्षा करना।
- (x) मेलों तथा उत्सवों के अतिरिक्त सामाजिक उत्सवों को मनाना।
- (xi) नये मकानों का निर्माण तथा बनी हुई इमारतों में परिवर्तन अथवा विस्तार करने पर नियन्त्रण रखना।
- (xii) कृषि, व्यापार तथा ग्राम उद्योग के विकास में सहायता देना।
- (xiii) सार्वजनिक इमारतों की स्थापना तथा उनकी देखभाल एवं मरम्मत करवाना।
- (xiv) मातृ तथा शिशु कल्याण केन्द्रों की स्थापना करना।
- (xv) पशु चिकित्सालय की स्थापना करना।
- (xvi) खाद एकत्र करने के लिए स्थान निश्चित करना।
- (xvii) आग बुझाने में सहायता करना तथा आग लग जाने पर जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करने का प्रयत्न करना।

- (xviii) पुस्तकालयों, वाचनालयों तथा खेल मैदानों की व्यवस्था करना।
- (xix) सड़कों के किनारे व क्ष लगवाना।
- (xx) आवश्यकतानुसार पुलों की स्थापना करना।
- (xxi) गरीबों को सहायता (Relief) देना।
2. **प्रशासकीय कार्य (Administrative Functions)** - प्रशासकीय क्षेत्र में ग्राम पंचायत का कर्तव्य है कि वह -
- अपने क्षेत्र में अपराधों की रोकथाम तथा अपराधियों की खोज में पुलिस की सहायता करे।
  - यदि ग्रामीण क्षेत्र में काम करने वाले किसी सरकारी कर्मचारी, सिपाही, पटवारी, वन विभाग के व्यक्ति, चौकीदार, चपरासी आदि के विरुद्ध कोई शिकायत हो तो जिलाधीश अथवा किसी अन्य अधिकारी को सूचित करे। पंचायत की रिपोर्ट के अनुसार जिलाधीश या किसी अन्य अधिकारी द्वारा जो कार्यवाही की गई हो, उसकी सूचना लिखित रूप में ग्राम पंचायत को भेजे।
  - ग्रामों में शराब के ठेके और शराब बेचने का विरोध करे।
  - असम, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा उड़ीसा में ग्राम पंचायतों को चौकीदारों (Watch and Wards) का प्रबन्ध करने की शक्ति भी प्रदान की गई है।
3. **विकासवादी कार्य (Development Functions)** - क्योंकि ग्रामीण क्षेत्र के विकास का उत्तरदायित्व पंचायतों पर है, इसलिए इसे कुछ विकासवादी कार्य भी दिए गए हैं। यह विकासवादी योजनाओं को लागू करती हैं तथा पंचवर्षीय योजनाओं को लागू करने में सहयोग देती हैं। यह कृषि तथा उद्योग के विकास के लिए प्रयत्न करती हैं।
4. **न्यायिक कार्य (Judicial Functions)** - पंचायतों को दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमों को सुनने का अधिकार दिया गया है। फौजदारी मुकद्दमों में गाली गलौच, 50 रु. तक चोरी, मारपीट तथा स्त्री तथा सरकारी कर्मचारी का अपमान, पशुओं को अत्यन्त निर्दयतापूर्वक पीटा जाना, इमारतों, तालाबों, जलाशयों तथा मार्गों को हानि पहुंचाना आदि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ राज्यों में कुछ पंचायतों को विशेष अधिकार प्राप्त हैं। वह आक्रमण, राज्य कर्मचारी का अपमान, दूसरों के माल पर कब्जा करने आदि के विषयों के सम्बन्ध में मुकद्दमा सुन सकती हैं। इन मुकद्दमों में साधारण अधिकारों वाली पंचायतों को 100 रूपए तथा विशेष अधिकारों वाली पंचायतों को 200 रु. तक जुर्माना करने का अधिकार प्राप्त है। कुछ राज्यों में विशेष अधिकार वाली पंचायतों को साधारण कैद देने की शक्ति भी दी गई है। पंचायतें किसी अपराधी को दंड भी दे सकती हैं तथा चेतावनी देकर या जमानत लेकर छोड़ भी सकती हैं। पंचायतों के निर्णयों के विरुद्ध जिला न्यायालय में अपील की जा सकती है।
- दीवानी** - साधारण पंचायतें 200 रु. की राशि तक तथा विशेष अधिकारों वाली पंचायतें 500 रु. की राशि तक मुकद्दमा सुन सकती हैं, परन्तु वह निम्नलिखित मुकद्दमों नहीं सुन सकती -
- सांझीदारी के मुकद्दमे।
  - वसीयत सम्बन्धी मुकद्दमे।
  - नाबालिग तथा पागल व्यक्ति के विरुद्ध मुकद्दमा।
  - राज्य एवं केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के विरुद्ध मुकद्दमा।
  - दिवालियापन के विरुद्ध मुकद्दमा।
  - न्यायालय में विचाराधीन मुकद्दमों आदि।

पंचायत के निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकती है। पंचायत के समक्ष किसी भी वकील को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

पंचायत की न्याय शक्तियों की प्रायः आलोचना की जाती है। आलोचकों का विचार है कि पंचायतों के सदस्य प्रायः अनपढ़ होते हैं तथा उन्हें कानून का ज्ञान नहीं होता और न ही उन्हें कानून के क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जा सकता है; इसलिए वे कोई भी निर्णय कानून के आधार पर नहीं कर सकते। दूसरे, पंचायतों में दलीय भावना उपस्थित होने के कारण

पंचायत के सदस्य निष्पक्ष होकर निर्णय नहीं करते। वे सदैव कानून की अपेक्षा दलीय भावना के आधार पर निर्णय देते हैं। यद्यपि पंचायतों की इन शक्तियों का दुरुपयोग होता है तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें ये न्यायिक शक्तियां ही न दी जाएं। वास्तव में इन शक्तियों को दिये जाने का मुख्य उद्देश्य गांव के स्तर पर पारस्परिक झगड़ों को समाप्त करना है। इसलिए निर्णय देने की अपेक्षा पंचायतों को सर्वदा समझौता करवाने का प्रयत्न करना चाहिए। डॉ. एम. पी. शर्मा (Dr. M.P. Sharma) के अनुसार, "पंचायतों का उचित न्यायिक कार्य निर्णय की अपेक्षा समझौता करवाना तथा मध्यस्थ के रूप में कार्य होना चाहिए।" इन उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त राज्य सरकार पंचायतों को कई और अतिरिक्त कार्य करने की शक्ति प्रदान कर सकती है तथा इन कार्यों को करने के लिए विशेष वित्तीय सहायता या अनुदान दे सकती है। पंचायतें इन कार्यों को सरकार द्वारा निश्चित किए गए नियमों तथा प्रतिबन्धों के अनुसार करती हैं।

## आय के साधन (Sources of Income)

पंचायतों की आय के साधन निम्नलिखित हैं -

1. **कर (Taxes)** - पंचायत की आय का प्रथम साधन कर है। पंचायत राज्य सरकार द्वारा या पंचायती राज द्वारा स्वीकृत किये गये कर लगा सकती है। जैसे सम्पत्ति कर, पशु कर, व्यवसाय कर, टोकन कर, मार्ग कर, चुंगी कर आदि।
2. **फीस और जुर्माना (Fees and Fines)** - पंचायत की आय का दूसरा साधन इसके द्वारा किये गए जुर्माने तथा अन्य प्रकार के शुल्क (fees) हैं जैसे पंचायती विश्राम घर के प्रयोग के लिए फीस, गली तथा बाजारों में रोशनी करने का कर, पानी कर आदि। इन करों का प्रयोग केवल उन्हीं पंचायतों द्वारा किया जाता है जो ये सुविधाएं प्रदान करती हैं।
3. **सरकारी अनुदान (Government Grants)** - पंचायत की आय का मुख्य साधन सरकारी अनुदान है। सरकार पंचायतों की विकास-सम्बन्धी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए विभिन्न प्रकार के अनुदान देती है। साधारणतया प्रत्येक राज्य के क्षेत्र से इकट्ठा होने वाले भू-राजस्व का कुछ भाग पंचायतों को दिया जाता है। जैसे पंजाब में 15%, उ. प्र. में 12½%, आदि। बिहार, महाराष्ट्र तथा गुजरात में पंचायतें ही सरकार के आधार पर भू-राजस्व इकट्ठा करती हैं।
4. **मिश्रित साधन (Other Sources)** - पंचायतों के आय के और भी साधन हैं जैसे पंचायत की सीमा में कूड़ा-ककट, गोबर, गन्दगी आदि को बेचने से आय, शामलाट से आय, मेलों आदि से आय, पंचायत की सम्पत्ति से आय आदि। आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा तथा पंजाब में पंचायतों को मछली पालने तथा बेचने से विशेष आय होती है।
5. **ऋण (Borrowings)** - उपरोक्त साधनों के अतिरिक्त राज्य सरकार की स्वीकृति से पंचायत ऋण भी ले सकती है।

## पंचायत कर्मचारी (Personnel of Panchayat)

पंचायत के स्तर पर निम्नलिखित कर्मचारी कार्य करते हैं -

1. **पंचायत सचिव (Panchayat Secretary)** - पंचायत की सहायता के लिए एक पंचायत सचिव होता है। उसे एक से अधिक पंचायतों की सहायता के लिए भी कार्य करना पड़ता है। पंचायत सचिव की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। उसमें मुख्य कार्य पंचायत सम्बन्धी सभी प्रकार का हिसाब-किताब रखना, बजट बनाने में सरपंच की सहायता करना, आय और व्यय का ब्यौरा रखना तथा पंचायत की ओर से सरकार के साथ पत्र-व्यवहार करना है। व्यावहारिक रूप में एक सचिव को कई पंचायतों का कार्य करना पड़ता है।

2. **ग्राम सेवक (Gram Sewak)** - विकासवादी कार्यों में पंचायत की सहायता के लिए राज्य सरकार ग्राम सेवक की नियुक्ति करती है। वह कई पंचायतों के लिए कार्य करता है। वह पंचायत की उद्योग, कृषि तथा विकासवादी कार्यों के लिए सहायता करता है और उसे परामर्श देता है।
3. **चौकीदार (Watchman)** - गांव में लोगों की सम्पत्ति की देखभाल तथा रक्षा के लिए चौकीदार की नियुक्ति की जाती है। वह रात के समय पहरा देता है तथा गांव में शान्ति की व्यवस्था बनाए रखने के लिए पंचायत तथा सरकारी कर्मचारियों की सहायता करता है।

## पंचायत समिति (Panchayat Samiti)

पंचायत समिति पंचायती राज की सब से महत्वपूर्ण संस्था है। यह पंचायती राज की त्रिस्तरीय प्रणाली का मध्यवर्ती स्तर (Intermediate Tier) है। इसकी स्थापना खण्ड (Block), तालुक (Taluk) या मंडल (Mandal) स्तर पर की गई है और यह पंचायत तथा जिला परिषद् में कड़ी के रूप में कार्य करती है। गुजरात तथा कर्नाटक में इसकी व्यवस्था तालुक (Taluk) स्तर पर की गई है। जबकि बिहार, त्रिपुरा, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, केरल, असम, पंजाब, हरियाणा, तमिलनाडू तथा पश्चिम बंगाल के ब्लॉक स्तर पर इसकी स्थापना की गई है। आन्ध्र प्रदेश में इस की स्थापना मंडल स्तर पर की गई है। विभिन्न राज्यों में इसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। बिहार, त्रिपुरा, हरियाणा, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, पंजाब, राजस्थान तथा हिमाचल प्रदेश में इसे पंचायत समिति कहते हैं जबकि कर्नाटक तथा गुजरात में इसे तालुक पंचायत के नाम से पुकारा जाता है। मध्य प्रदेश में जनपद पंचायत, केरल में ब्लॉक पंचायत, असम में आंचलिक पंचायत, आन्ध्र प्रदेश में मंडल पंचायत, तमिलनाडू में पंचायत यूनियन कौंसिल, उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय पंचायत तथा अरुणाचल प्रदेश में इसे आंचल समिति के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

इसी प्रकार पंचायत समिति के अध्यक्ष को भी भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। आन्ध्र प्रदेश, असम, गुजरात, मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक में प्रेजिडेंट (President), महाराष्ट्र, तमिलनाडू, उड़ीसा, हरियाणा, हिमाचल, पंजाब तथा त्रिपुरा में अध्यक्ष (Chairman), राजस्थान में प्रधान (Pradhan) तथा उत्तर प्रदेश और बिहार में प्रमुख (Pramukh) कहते हैं।

### रचना

#### (Composition)

**निर्वाचित सदस्य (Elected Members)** - पंचायत समिति के सदस्य इस के क्षेत्र के मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाते हैं। पंचायत समिति के सदस्यों की संख्या इसके क्षेत्र की जनसंख्या पर निर्भर करती है तथा यह भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न होती है। कुछ राज्यों में सदस्यों की संख्या निश्चित है जबकि अन्य राज्यों में ऐसा नहीं है।

**अन्य सदस्य (Other Members)** - पंचायत राज संस्थाओं के निम्न तथा मध्यवर्ती स्तर की संस्थाओं में सुमेल बनाए रखने के लिए पंचायत के सरपंच को पंचायत समिति में प्रतिनिधित्व दिया जाता है। बिहार, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, केरल, अरुणाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा असम में पंचायत का सरपंच पंचायत समिति का पदेन सदस्य होता है परन्तु कर्नाटक, पंजाब तथा हरियाणा में पंचायत समिति के क्षेत्र में सरपंचों में से पांचवां भाग प्रक्रमण से प्रतिवर्ष पंचायत समिति के सदस्य होंगे। तमिलनाडू में ग्राम पंचायतों के अध्यक्षों का पांचवां भाग पंचायत समिति (पंचायत यूनियन कौंसिल) के सदस्य होते हैं जिन्हें क्षेत्र की पंचायतों के अध्यक्षों द्वारा चुना जाता है।

संसद सदस्य तथा विधान पालिका के सदस्यों को पंचायत समिति के पदेन सदस्य होने की व्यवस्था की गई है। चाहे विभिन्न राज्यों में स्थिति भिन्न-भिन्न है। हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, बिहार तथा असम में समिति के क्षेत्र में निर्वाचित संसद सदस्य तथा राज्य विधान सभा के सदस्य पंचायत समिति के पदेन सदस्य होते हैं। त्रिपुरा, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा केरल में केवल समिति के क्षेत्र के विधान सभा के सदस्य ही पंचायत समिति के सदस्य होते हैं। महाराष्ट्र में संसद सदस्य तथा विधान सभा के सदस्य पंचायत समिति के सदस्य नहीं होते जबकि गुजरात में केवल क्षेत्रीय विधानसभा के

सदस्य पंचायत समिति के सदस्य होते हैं, परन्तु उन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता।

**आरक्षित स्थान (Reserved Seats)** - प्रत्येक राज्य में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित रखे जाते हैं। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान उन की कुल जनसंख्या के अनुपात में रखे जाते हैं जबकि पंचायत समिति में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के प्रत्येक वर्ग के लिए आरक्षित स्थानों और आरक्षित स्थानों के लिए एक तिहाई से न्यून स्थान, महिलाओं के लिए आरक्षित रखे जाते हैं। इनके अतिरिक्त अधिकांश राज्यों में पिछड़े वर्ग के लोगों को प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई है और उनके विभिन्न राज्यों में स्थान आरक्षित करने की विधि भिन्न-भिन्न है। जैसे पंजाब में यदि पिछड़े वर्ग के लोगों की जनसंख्या कुल जनसंख्या के 20 प्रतिशत के कम न हो तो उन के लिए एक स्थान आरक्षित किया जाता है। इसी प्रकार हरियाणा में कम से कम एक स्थान पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है।

**अध्यक्ष (Chariman)** - पंचायत समिति के निर्वाचित सदस्य अपने में से अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष को चुनते हैं। प्रत्येक समिति के निर्वाचन के पश्चात् जिला आयुक्त या उसके द्वारा नियुक्त किया गया अधिकारी पंचायत समिति की बैठक बुलाता है। जिस बैठक में समिति के निर्वाचित सदस्य अपने में से एक अध्यक्ष तथा एक उपाध्यक्ष चुनते हैं क्योंकि समिति की अवधि 5 वर्ष होती है। इसलिए अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष को 5 वर्षों के लिए चुना जाता है। पंचायत समिति के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसे अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष, प्रमुख एवं उप प्रमुख, चेयरमैन एवं वाईस चेयरमैन, प्रैजीडेंट एवं वाइस प्रैजीडेंट, सभापति एवं सहकारी सभापति, प्रधान एवं उप प्रधान तथा चेयरपर्सन।

पंचायत समिति के अध्यक्षों में भी जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लिए स्थान आरक्षित किए जाते हैं तथा कुल स्थानों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होते हैं।

पंचायत समिति के अध्यक्ष को अविश्वास का प्रस्ताव पास करके पदच्युत किया जा सकता है परन्तु प्रस्ताव पारित करने के लिए भिन्न-भिन्न राज्यों में सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न है, जैसे निर्वाचित सदस्यों का बहुमत, निर्वाचित सदस्यों का तीन चौथाई, निर्वाचित सदस्यों का दो तिहाई या निर्वाचित सदस्यों का आधा (Half)।

**अवधि (Term)** - पंचायत की भान्ति पंचायत समिति का कार्यकाल भी पांच वर्ष है। यदि कार्यकाल की समाप्ति से पहले किसी पंचायत समिति को भंग किया जाए तो छः महीने के अन्दर-अन्दर पुनः निर्वाचन करवाना अनिवार्य है।

**अधिवेशन एवं गणपूर्ति (Meetings and Quorum)** - पंचायत समितियों की बैठक का कार्यकाल भिन्न-भिन्न है। कुछ राज्यों में दो महीने पश्चात्, कुछ में तीन महीने पश्चात् तथा कुछ में प्रतिवर्ष पंचायत की बैठक बुलाई जाती है। विभिन्न राज्यों में पंचायत समिति की बैठकों की स्थिति निम्न प्रकार है, जैसे दो महीने में एक बार, तीन महीनों में एक बार या एक वर्ष में एक बार। केरल, अरुणाचल प्रदेश तथा आन्ध्र प्रदेश में एक वर्ष में कितनी बैठकें बुलाई जाएं की कोई व्यवस्था नहीं की गई जबकि महाराष्ट्र तथा तमिलनाडू में पंचायत समिति जब चाहे बैठक बुला सकती है। परन्तु दो बैठकों में क्रमानुसार 3 दिन तथा 60 दिन का अन्तर अवश्य होना चाहिए।

बैठकों की भान्ति गणपूर्ति में भिन्नता पाई जाती है तथा बैठक बुलाने के लिए गणपूर्ति भिन्न-भिन्न है, जैसे कुल सदस्यों का एक तिहाई, कुल सदस्यों का आधा, कुल सदस्यों का बहुमत या कुल सदस्यों का एक चौथाई।

तमिलनाडू, अरुणाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, केरल, महाराष्ट्र तथा उड़ीसा के अधिनियमों द्वारा पंचायत समिति की बैठक बुलाने के लिए कोई गणपूर्ति निर्धारित नहीं की गई है।

प्रत्येक समिति के निर्वाचन के पश्चात् जिलाधीश या उसके द्वारा नियुक्त किया गया अधिकारी पंचायत समिति की बैठक बुलाता है। उस बैठक में समिति के सदस्य अपने में से एक अध्यक्ष तथा एक उपाध्यक्ष चुनते हैं। इस निर्वाचन में केवल प्रारम्भिक तथा सहवत्त सदस्य ही भाग लेते हैं क्योंकि पंचायत समिति की अवधि 5 वर्ष होती है। इसलिए अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष 5 वर्षों के लिए चुने जाते हैं।

परन्तु वे अपना कार्यकाल समाप्त होने से पहले त्यागपत्र दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त यदि अध्यक्ष या उपाध्यक्ष किसी कारण

से पंचायत समिति का सदस्य रहने की किसी योग्यता से वंचित हो जाता है या वह समिति की निरन्तर तीन बैठकों में अनुपस्थित रहता है तो उसे अपना पद छोड़ना पड़ता है। इन परिस्थितियों में पंचायत समिति किसी अन्य सदस्य को इस पद के लिए चुनती है।

पंजाब तथा अन्य राज्यों में पंचायत समिति के सदस्य अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को 2/3 बहुमत से उन के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके पद से हटा सकते हैं। ऐसी दशा में समिति को उस बैठक में जिसमें अविश्वास का प्रस्ताव पास किया गया हो, किसी अन्य सदस्य को उस पद के लिए चुनना पड़ता है।

आन्ध्र प्रदेश, असम, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उड़ीसा, राजस्थान तथा गुजरात में पंचायत समिति के अध्यक्ष को वेतन दिया जाता है।

अध्यक्ष के कार्य (Functions of the Chairman) - पंचायत समिति के अध्यक्ष को समिति के क्षेत्र तथा प्रशासन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। वास्तव में पंचायत समिति की सफलता उसकी क्षमता एवं कार्य दक्षता पर निर्भर करती है। इसके मुख्य कार्य निम्न प्रकार हैं-

1. वह समिति की बैठकें बुलाता है और उनके लिए कार्यसूची तैयार करवाता है।
2. वह समिति की बैठकों की अध्यक्षता करता है और बैठकों में अनुशासन बनाए रखता है।
3. वह समिति की बैठकों में विभिन्न मामलों के बारे में प्रस्ताव पेश करने की स्वीकृति देता है और उन पर वाद-विवाद के बाद समिति का निर्णय लेता है।
4. समिति के अधिकारियों की सहायता से समिति का बजट तैयार करवाता है और उसे समिति में पेश करवाता है।
5. समिति द्वारा किए गए निर्णयों के बारे में सरकार की अनुमति प्राप्त करता है और उन्हें कार्यान्वित करता है।
6. वह पंचायत समिति के अधीन काम करने वाले अधिकारियों तथा कर्मचारियों पर नियन्त्रण तथा निरीक्षण करता है। कई राज्यों में वह खंड विकास अधिकारी (B.D.O.) की गोपनीय प्रतिवेदन (Confidential Report) भी लिखता है। वह समिति के कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनीय कार्यवाही भी कर सकता है और समिति के क्षेत्र में काम करने वाले सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध सरकार को लिख सकता है।
7. वह समिति के आधार पर पंचायत समिति या किसी अन्य संस्था में राज्य सरकार द्वारा बुलाई गई बैठकों में प्रतिनिधित्व करता है।

इस प्रकार पंचायत समिति के अध्यक्ष की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। वह पंचायत समिति का केन्द्र बिन्दु है परन्तु इस पद के लिए बड़े अनुभवी, संतुलित, ईमानदार तथा परिश्रमी व्यक्ति की आवश्यकता होती है, जो अपने व्यक्तित्व के आधार पर समिति तथा खंड के लोगों का सहयोग प्राप्त कर सके और भिन्न-भिन्न विचार रखने वाले व्यक्तियों को एक सूत्र से बांध कर एक मंच पर ला सके तथा उनका सहयोग प्राप्त करके अपने उत्तरदायित्व को निभा सके। उसे सदैव एक सहायक, मित्र तथा मार्ग दर्शक के रूप में काम करना चाहिए तथा किसी राजनीतिक या सामाजिक पक्षपात से ऊपर उठकर कार्य करना चाहिए।

## पंचायत समिति के कार्य (Functions of the Panchayat Samiti)

पंचायत समिति के कार्य और शक्तियां बहुमुखी हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है-

1. **सामुदायिक विकास (Community Development)** - सभी राज्यों में पंचायत समितियों को विकासवादी कार्यों का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। यह सामुदायिक विकास योजना को कार्यान्वित करती है, खण्ड स्तर की योजना को तैयार करती है तथा उन्हें लागू करती है।
2. **कृषि तथा सिंचाई सम्बन्धी कार्य (Functions regarding Irrigation and Agriculture)** - आंध्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा राजस्थान आदि सभी राज्यों में कृषि विकास के सम्बन्ध में पंचायती समिति को विशेष उत्तरदायित्व सौंपा गया है। इस उद्देश्य से वह अच्छे बीज बांटती है। कृषि के वैज्ञानिक तरीकों को सर्वप्रिय बनाने का प्रयत्न करती है। भूमि संरक्षण (Soil Conservation), भूमि पुनःरुद्धार (Land Reclamation)

- का प्रबन्ध करती है। हरी खाद तथा अन्य खादों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। सब्जियों और फलों को अधिक उगाने के लिए प्रोत्साहन देती है। सिंचाई के लिए कुओं, तालाबों तथा सिंचाई के अन्य छोटे साधनों की व्यवस्था करती है।
3. **पशुपालन एवं मछली पालन (Animal Husbandry and Fisheries)** - पंचायत समिति पशुपालन के अच्छे ढंगों का प्रचार तथा उनकी बीमारियों से रक्षा करने के लिए पशु चिकित्सा की व्यवस्था करती है। पशुओं की नस्ल-सुधार का प्रयत्न करती है, खंड में मछली पालन का प्रसार करती है तथा मछली पालन के लिए स्थान निश्चित करती है।
  4. **प्रारम्भिक शिक्षा (Primary Education)** - आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, मद्रास, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान आदि राज्यों में प्रारम्भिक शिक्षा का उत्तरदायित्व पंचायत समिति को सौंपा गया है। असम में अंग्रेजी तथा विदेशी माध्यम से शिक्षा का प्रबन्ध पंचायत समिति द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त पंचायत समिति सूचना केन्द्र (Information Centre), आमोद-प्रमोद तथा मनोरंजन, युवक संगठन, स्त्रीमण्डल, कृषक संघ, प्रदर्शनी, औद्योगिक उत्सवों आदि का प्रबन्ध करती है।
  5. **स्वास्थ्य तथा सफाई सम्बन्धी कार्य (Functions regarding Health and Sanitation)** - साधारणतया सभी राज्यों में स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य पंचायत समितियों को सौंपे गए हैं। यह छूत-छात की बीमारियों की रोकथाम के उपाय करती है। चेचक, हैजे, मलेरिया आदि के टीके लगाने का प्रबन्ध करती है। खंड में औषधालय, मात तथा शिशु कल्याण केन्द्रों आदि की स्थापना की देखभाल करती है। पीने के लिए पानी, गन्दे नाले की सफाई आदि का प्रबन्ध करती है। टिड्डी, चूहे तथा अन्य कीटाणुओं के नाश करने के उपाय करती है।
  6. **म्युनिसिपल कार्य (Municipal Functions)** - पंचायत समिति खण्ड में सड़कों का निर्माण, मरम्मत तथा देखभाल करती है। पीने के पानी, जल निकास, सफाई आदि का प्रबन्ध करती है।
  7. **सहकारिता (Co-operation)** - पंचायत समिति औद्योगिक तथा कृषि में सहकारी (Co-operative) समितियों की स्थापना करने में प्रोत्साहन तथा सहायता देती है।
  8. **नियोजन तथा उद्योग (Planning and Industries)** - कुछ राज्यों में पंचायत समिति के खण्ड स्तर पर नियोजन का अधिकार दिया गया है। वह कुटीर तथा लघु उद्योगों की स्थापना में सहायता देती है।
  9. **प्रशासकीय कार्य (Administrative Functions)** - पंचायत समिति के प्रशासकीय कार्य निम्न प्रकार हैं-
    1. यह पंचायतों पर नियन्त्रण करती है तथा उन्हें विभिन्न प्रकार के आदेश दे सकती है, असम, उड़ीसा, राजस्थान में यह पंचायतों के बजट स्वीकृत करती है। आन्ध्र प्रदेश, बिहार और गुजरात में पंचायतों के बजट का निरीक्षण करती है तथा उसके सम्बन्ध में परामर्श देती है।
    2. यह पंजाब पंचायत समिति एवं जिला परिषद् एक्ट, 1961 की धाराओं के अन्तर्गत उपनियम (Bye-Laws) बना सकती है तथा उन्हें कार्यान्वित कर सकती है। सार्वजनिक हित के लिए सम्पत्ति का अधिग्रहण (Acquire) कर सकती है।
    3. राज्य सरकार पंचायत समिति को अधिसूचना द्वारा प्रशासकीय, म्युनिसिपल तथा विकास कार्यों के अधिकार सम्पूर्ण कर सकती है।
  10. **फुटकर (Miscellaneous)** - पंचायत समिति उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त और भी कार्य कर सकती है जैसे मनोरंजन केन्द्र पुस्तकालय एवं वाचनालय (Reading Room) स्थापित करना, नवयुवक तथा महिला मण्डलों की स्थापना करना, खेलों को प्रोत्साहन देना, मृत्यु तथा जन्म के आंकड़ों का हिसाब-किताब रखना, सार्वजनिक शिक्षा तथा समाज कल्याण का प्रबन्ध करना, प्रत्यासों (Trusts) तथा सरकारी सम्पत्ति का प्रबन्ध करना, रोजगार की सुविधाएं प्रदान करना, गांवों को आत्मनिर्भर बनाना, सरायों, विश्रामघरों, पार्कों (Parks), की देखभाल, बाढ़ तथा दूसरी प्राकृतिक विपत्तियों से सुरक्षा के प्रबन्ध करना आदि अन्य कार्य भी पंचायत समिति को सौंपे गए हैं। पंचायत समिति इन कार्यों को करने का उत्तरदायित्व विशेष प्रस्ताव द्वारा अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कार्यकारी अधिकारी या पंचायत समिति अथवा सरकार के किसी कर्मचारी को सौंप सकती है।

**पंचायत समिति की शक्तियां (Powers of the Panchayat Samiti)** - पंचायत समिति की निम्नलिखित शक्तियां हैं-

1. **उपनियम बनाने का अधिकार (Right to make Bye-Laws)** - पंचायत समिति को कई प्रकार के उपनियम बनाने का अधिकार प्राप्त है, परन्तु ये उपनियम उचित, निश्चित, स्पष्ट तथा सामान्य कानून के अनुसार होने चाहिए। पंचायत समिति कोई भी ऐसा उपनियम नहीं बना सकती, जो किसी राज्य सरकार द्वारा बनाए गए कानून या देश के संविधान के प्रतिकूल हो।
2. **भूमि तथा अन्य सम्पत्ति का अधिकार (Power to Acquire Land or Other Immovable Property)** - सार्वजनिक कार्यों के लिए पंचायत समिति किसी भी प्रकार की निजी भूमि या अन्य अचल सम्पत्ति की प्राप्ति का अधिकार रखती है, परन्तु इसके लिए उसे उचित मुआवज़ा देना पड़ता है।
3. **अधिकार प्रदत्त करने का अधिकार (Power to Delegate Power)** - पंचायत समिति उपनियम बनाने की शक्ति के अतिरिक्त अपने किसी अधिकार या शक्ति को अपने अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या किसी अधिकारी को प्रदत्त कर सकती है और जब चाहे वापस ले सकती है।
4. **निरीक्षणीय शक्ति (Supervisory Powers)** - पंचायत समिति को अपने क्षेत्र की पंचायतों के निरीक्षण तथा नियन्त्रण का अधिकार प्राप्त है। पंचायतें सभी प्रकार के विकास सम्बन्धी कार्य पंचायत समिति की देख-रेख में करती हैं। पंचायत समिति पंचायतों को तकनीकी एवं वित्तीय सहायता देती है और उन पर नियन्त्रण करती है।

**पंचायत समिति की समितियां (Committee System)** - पंचायत समिति सभी राज्यों में स्थायी समितियों (Standing Committees) द्वारा कार्य करती है। जिनकी स्थापना उपज, समाज कल्याण, वित्त एवं कर, कृषि, सिंचाई, कुटीर उद्योग, सहकारिता आदि की देखभाल के लिए की जाती है। प्रायः पंचायत समिति में निम्नलिखित स्थायी समितियां होती हैं-

1. वित्त तथा कर समिति (Finance and Taxation Committee)
2. कृषि उत्पादन, पशुपालन तथा लघु सिंचाई समिति।
3. शिक्षा तथा समाज कल्याण समिति।
4. जनस्वास्थ्य तथा सफाई समिति।
5. संचार साधन तथा निर्माण समिति।

इन स्थायी समितियों के अतिरिक्त पंजाब तथा कुछ और राज्यों में पंचायत समिति कुछ सलाहकार समितियों (Consultative Committees) की भी नियुक्ति करती है। इन समितियों को विशेष विषयों के सम्बन्ध में विचार करने, जांच पड़ताल करने तथा सलाह देने का कार्य पंचायत समिति द्वारा सौंपा जाता है।

पंचायत समिति की समितियों के सदस्यों का चुनाव पंचायत समिति द्वारा ही किया जाता है। लगभग सभी राज्यों में पंचायत समिति का अध्यक्ष कुछ महत्वपूर्ण स्थायी समितियों का पदेन अध्यक्ष होता है। वह वित्त तथा कर समिति का अध्यक्ष तो जरूर होता है। खण्ड विकास अधिकारी (B.D.O.) भी स्थायी समितियों का पदेन सदस्य होता है क्योंकि इन समितियों की नियुक्ति पंचायत समिति द्वारा की जाती है। इसलिए वे उन्हीं शक्तियों का प्रयोग करती हैं तथा उन्हीं कार्यों को कराती हैं जिन्हें पंचायत समिति उन्हें सौंपे। इन समितियों द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट पंचायत समिति में प्रस्तुत की जाती है। पंचायत समिति उन पर विचार-विमर्श करने के बाद उनकी सिफारिशों तथा सुझावों को लागू करती है।

पंचायत समिति का शासन संचालन खण्ड विकास अधिकारी (B.D.O.) द्वारा किया जाता है तथा वह समिति के कार्यकारी अधिकारी (Executive Officer) के रूप में कार्य करता है। इसकी सहायता के लिए अन्य प्रसार अधिकारी (Extension Officer), ग्राम सेवक आदि नियुक्त किए जाते हैं। पंचायत समिति का खण्ड विकास अधिकारी तथा दूसरे अधिकारियों पर पूरा नियन्त्रण होता है।

**आय के साधन (Sources of Income)** - पंचायत समिति के आय के साधन निम्नलिखित हैं-

1. **पंचायत समिति द्वारा लगाए गए कर** - पंचायत समिति एवं जिला परिषद् एक्ट की धाराओं के अन्तर्गत विभिन्न



- प्रकार के कर लगा सकती है। व्यवसाय कर, आय कर, सम्पत्ति कर, मार्ग कर (Toll Tax), टोकन टैक्स आदि से होने वाली आय।
2. **सम्पत्ति से आय** - पंचायत समिति के अधिकार में रखी गई सम्पत्ति से आय।
  3. **शुल्क** - पंचायत समिति द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के शुल्क से आय। पंचायत समिति जिला परिषद् की स्वीकृति से कई प्रकार के शुल्क लगा सकती है जैसे उत्सवों, कृषि प्रदर्शनियों पर शुल्क आदि।
  4. **सरकारी अनुदान** - राज्य सरकार पंचायत समिति को सामुदायिक विकास योजना तथा अन्य कार्यों के लिए कई प्रकार के अनुदान देती है।
  5. **भू-राजस्व से आय** - लगभग सभी राज्यों में खण्ड क्षेत्र से प्राप्त होने वाले भू-राजस्व का कुछ भाग पंचायत समिति को दिया जाता है जैसे पंजाब में सरकार द्वारा भू-राजस्व का 10% भाग पंचायत समिति को दिया जाता है।
  6. **ऋण (Loans)** - पंचायत समिति जिला परिषद् तथा सरकार की स्वीकृति से सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं से ऋण ले सकती है। गैर-सरकारी संस्थाओं से 5 लाख रु. से अधिक ऋण नहीं लिया जा सकता।

## पंचायत समिति के सदस्य (Personnel of Panchayat Samiti)

पंचायत समिति के स्तर पर अग्रलिखित कर्मचारी काम करते हैं-

1. **खण्ड विकास अधिकारी (Block Development Officer)** - नगरपालिका की भांति पंचायत समिति के शासन संचालन के लिए खण्ड विकास अधिकारी की व्यवस्था की गई है। वह पंचायत समिति के कार्यकारी अधिकारी (Executive Officer) के रूप में कार्य करता है। खण्ड प्रशासन का वह केन्द्र है तथा पंचायत समिति के प्रशासन की सफलता उस पर निर्भर है। वह अपने अधीन प्रसार अधिकारियों (Extension Officers) तथा अन्य अधिकारियों की सहायता से पंचायत समिति के निर्णयों को कार्यान्वित करता है तथा समिति के दिन-प्रतिदिन के कार्यों का संचालन करता है। वह पंचायत समिति के अध्यक्ष के नियन्त्रण में कार्य करता है।

**नियुक्ति (Appointment)** - प्रारम्भ में खण्ड विकास अधिकारी की नियुक्ति केवल सामुदायिक विकास प्रोग्राम को कार्यान्वित करने के लिए खण्ड के स्तर पर की जाती थी तथा उसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती थी। पंचायती राज की स्थापना के कारण क्योंकि उसके कर्तव्य तथा अधिकार क्षेत्र में विशेष परिवर्तन हुआ, इसलिए इस पद पर अनुभवी, योग्य तथा उच्चकोटि के शिक्षित व्यक्तियों को नियुक्त करना आवश्यक है। लगभग सभी राज्यों में उसकी नियुक्ति राज्य सरकार राज्य लोक सेवा आयोग की सहायता से करती है। पंजाब में 55% खण्ड विकास अधिकारियों को लोक सेवा आयोग द्वारा, 30% निम्न वर्ग के अधिकारियों को पदोन्नत करके तथा 15% राजनीतिक पीड़ित एवं समाज सुधारक कार्यकर्ताओं में से नियुक्त किए जाते हैं, परन्तु वास्तव में सभी नियुक्तियां लोक सेवा आयोग की स्वीकृति से की जाती थीं।

**कार्य (Functions)** - खण्ड विकास अधिकारी के निम्नलिखित कार्य हैं-

1. वह समिति द्वारा पारित किए गए प्रस्तावों तथा निर्णयों को कार्यान्वित करता है।
2. वह पंचायत समिति के सचिव के रूप में कार्य करता है तथा इसे विभिन्न क्षेत्रों में कार्यों की समय-समय पर सूचना देता है। वह पंचायत समिति की बैठक बुलाता है, विचार विमर्श में भाग लेता है। सदस्यों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देता है और विभिन्न प्रकार की समस्याओं के बारे में परामर्श देता है, परन्तु उसे मत देने का अधिकार नहीं है।
3. वह पंचायत समिति द्वारा पूछे गए विषयों के सम्बन्ध में सूचना देता है। पंचायत समिति के आधार पर अध्यक्ष की स्वीकृति से नोटिस (Notice) जारी करता है।
4. वह पंचायत की सम्पत्ति की देखभाल करता है तथा समिति की स्वीकृति से उसकी मरम्मत आदि करवाता है।
5. पंचायत समिति के अधिकार पर अचल सम्पत्ति का अभिग्रहण करता है अथवा इसके सम्बन्ध में सन्धि करता

- है।
6. पंचायत समिति द्वारा लगाए करों को एकत्र करता है तथा कर सम्बन्धी नियमों की उल्लंघना करने वालों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही करता है।
  7. वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की सहायता से पंचायत समिति का बजट तैयार करवाता है तथा उसे पंचायत समिति में प्रस्तुत करता है।
  8. समिति की मोहर पर नियन्त्रण रखता है तथा इसका प्रयोग करता है।
  9. सरकार को पंचायत समिति द्वारा किए गए निर्णयों की सूचना देता है तथा पंचायत समिति को सरकार अथवा जिला परिषद् द्वारा दिए गए आदेशों के बारे में सूचित करता है।
  10. खण्ड के क्षेत्र में विकास सम्बन्धी योजनाओं का निर्माण करता है तथा पंचायत समिति की स्वीकृति से उन्हें कार्यान्वित कर सकता है।

खण्ड विकास अधिकारी की शक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह पंचायत समिति के प्रशासन का केन्द्र है। वह खण्ड अधिकारियों का अध्यक्ष होता है तथा प्रशासन एवं विकास के कार्यों के लिए उनका नेतृत्व करता है। वह पंचायत समिति के स्तर पर कार्य करने वाले प्रसार अधिकारियों तथा अन्य संस्थाओं के कार्यों का समन्वय करता है। पंचायत समिति की सफलता उस पर निर्भर है। इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस पद पर सुयोग्य तथा निपुण व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिए जो जनता में आत्मनिर्भरता तथा स्वतः विकास के लिए प्रोत्साहन उत्पन्न कर सकें।

2. **उपमण्डल अधिकारी सिविल** [Sub-Divisional Officer Civil (S.D.O.)] - उप-मण्डल अधिकारी पंचायत समिति का पदेन सदस्य होता है। यह पंचायत की बैठकों में भाग लेता है और अपनी विशेषज्ञ राय उसे देता है जिससे पंचायत समिति को अपनी योजनाएं सफलतापूर्वक लागू करने में सुगमता हो जाती है। जिलाधीश पंचायत समिति पर निरीक्षण तथा नियन्त्रण की अपनी शक्तियों का प्रयोग प्रायः उपमण्डल अधिकारी के माध्यम से ही करता है। इसलिए यह अधिकारी खण्ड स्तर पर प्रभावशाली स्थान रखता है और पंचायत समिति को इसके आदेशों तथा निर्देशों की पालना करनी पड़ती है।
3. **खण्ड प्रसार अधिकारी** (Block Extension Officer) - खण्ड प्रसार अधिकारी भी पंचायती राज व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रत्येक खण्ड में लगभग 6 या 7 खण्ड प्रसार अधिकारी होते हैं। प्रायः वे कृषि, पशुपालन, सहकारिता, सामाजिक शिक्षा, ग्रामीण उद्योग, बागवानी, आदि क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते हैं, इसलिये वे खण्ड में रहने वाले लोगों को अपनी विशेषज्ञ तथा तकनीकी सलाह देते हैं और उन्हें बढ़ाने के लिए प्रेरित करते हैं। वे गांव में जाकर किसानों को अच्छे बीजों, खादों और खेती के नये-नये तरीके बताते हैं जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। इसी तरह ग्रामीण उद्योगों, पशुपालन, सामाजिक शिक्षा तथा सहकारिता के क्षेत्रों में वे ग्रामीण लोगों को योग्य नेतृत्व प्रदान करते हैं। वे खण्ड विकास अधिकारी के निर्देशन तथा नियन्त्रण में अपना कार्य करते हैं।

इन अधिकारियों के अतिरिक्त पंचायत समिति को अपने कार्यालय का संचालन करने के लिए कुछ क्लर्कों, लेखाकारों, टाइपिस्टों तथा चौथे दर्जे के कर्मचारियों जैसे चपड़ासी आदि की सेवाओं की भी ज़रूरत होती है। ऐसे कर्मचारी पंचायत समिति के निर्देशन तथा नियन्त्रण में कार्य करते हैं।

पंचायत समिति को विकासवादी विभागों के उन अधिकारियों को जो खण्ड तथा तहसील के कार्य कर रहे हों, नियन्त्रण करने की भी शक्ति प्राप्त है। पंचायत समिति प्रायः लोकनिर्माण, शिक्षा, पशुपालन, कृषि, स्वास्थ्य, सहकारिता तथा उद्योग विभागों के अधिकारियों को नियन्त्रित करती है और योजनाओं को सफल बनाने के लिए उनकी विशेषज्ञ तथा तकनीकी सलाह प्राप्त करती है। जिलाधीश की पूर्व स्वीकृति से पंचायत समिति जिले के स्तर पर कार्य कर रहे विकासवादी विभागों के अधिकारियों को भी परामर्श देने के लिए नियन्त्रित कर सकती है।

उपरोक्त सभी अधिकारियों तथा कर्मचारियों के अतिरिक्त जिलाधीश का पंचायत समिति के संचालन में महत्वपूर्ण स्थान है। उसे पंचायत-समिति पर निरीक्षण तथा नियन्त्रण रखने का भी अधिकार प्राप्त है। वह स्वयं या अपने अधीनस्थ किसी अन्य अधिकारी को पंचायत समिति की अचल सम्पत्ति का निरीक्षण करने के लिए आदेश दे सकता

है। वह लिखित आदेशों द्वारा पंचायत समिति के अधीन किसी रिकार्ड की जांच करवा सकता है। वह किसी भी पंचायत समिति से उसकी लेखकार रिपोर्ट, प्रगति सम्बन्धी रिपोर्ट अथवा कोई और सूचना मंगवा सकता है। पंचायत समिति द्वारा पास किया गया प्रत्येक प्रस्ताव पंचायत समिति की बैठक के तीन दिन के अन्दर-अन्दर जिलाधीश के पास पहुंचना आवश्यक होता है। जिलाधीश पंचायत वही उस समिति का पदेन अध्यक्ष भी होगा, किन्तु आन्ध्र प्रदेश में जिला परिषद् का अध्यक्ष हर स्थायी समिति का सदस्य है। फिर भी प्रत्येक समिति का अध्यक्ष जिलाधीश ही होता है। स्थायी समितियों के सदस्यों का कार्यकाल वही होता है जो जिला परिषद् के सदस्यों के रूप में उनका कार्यकाल होता है।

**महाराष्ट्र प्रणाली (The Maharashtra Pattern)** - महाराष्ट्र में पंचायती राज निकायों में जिला परिषद् सबसे अधिक शक्तिशाली निकाय है। वहां पर इसे बहुत से क्षेत्रों में कार्यकारी कार्य करने की शक्ति प्रदान की गई है। इसे नियोजन तथा विकास के क्षेत्र से सम्बन्धित राज्य सरकार को सलाह देने की शक्ति प्राप्त है। महाराष्ट्र में जिला परिषद् शान्ति एवं व्यवस्था, न्याय, राष्ट्रीय एवं राजकीय मार्गों, कालिज एवं विश्वविद्यालयों की शिक्षा तथा सम्पूर्ण राज्य के महत्त्व की संस्थाओं को छोड़ कर जिला स्तर पर राज्य सरकार के सभी कार्यों को अपने क्षेत्राधिकार में ले रही है। वहां पर पंचायत समिति जिला परिषद् की एक इकाई (Agency) के रूप में काम करती है तथा वह सामुदायिक विकास की योजनाओं को लागू करती है। इसके पास अपना कोई अलग फण्ड नहीं होता और इसमें कार्य करने वाले सभी कर्मचारी जिला परिषद् के अधिकारी होते हैं। लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की नायक समिति, महाराष्ट्र (The Naik Committee on Democratic Decentralization, Maharashtra) ने जिला परिषद् की शक्तिशाली स्थिति का समर्थन करते हुए अपनी रिपोर्ट में कहा है, "स्थानीय प्रशासन की सर्वोत्तम क्रियाशील इकाई जिला निकाय है, क्योंकि जिले के समन्वित विकास के लिए सही रूप में पर्याप्त स्रोतों, प्रशासकीय एवं तकनीकी कर्मचारी वर्ग तथा मशीनरी को केवल यही प्रदान करने के योग्य हो सकेगी। इस बात को ध्यान में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यदि विकेन्द्रीकरण को वास्तविक तथा प्रभावशाली बनाना है जो जिला स्तर पर एक शक्तिशाली कार्यकारी निकाय की स्थापना करना आवश्यक है। इसका नाम जिला परिषद् (District Council) रखा जा सकता है।"

## **जिला परिषद् के कर्मचारी** (Personnel of Zila Parishad)

जिलाधीश, जिला परिषद् का सचिव, जिला स्तर पर नियुक्त विकासशील विभागों के अधिकारी तथा जिला परिषद् के कार्यालय का संचालन करने वाले कर्मचारी आदि जिला परिषदों के मुख्य अधिकारी होते हैं। जिलाधीश की जिला परिषद् में बहुत प्रभावशाली स्थिति होती है। वह जिला परिषद् का पदेन सदस्य होता है। वह इसकी बैठकों में भाग लेता है और अपने अनुभवी परामर्श द्वारा जिला परिषद् का मार्गदर्शन करता है। जिला परिषद् का चुनाव, इसके सदस्यों को सहवत्त करना, सदस्यों के त्यागपत्र सम्बन्धी कार्यवाही, रिक्त स्थानों की पूर्ति, अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का चुनाव आदि जिलाधीश की देखरेख में होते हैं। वह जिला परिषद् तथा राज्य सरकार के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में भी कार्य करता है। जिलाधीश को जिला परिषद् पर निरीक्षण तथा नियन्त्रण की वैसी ही शक्तियां प्राप्त हैं जैसी कि उसे जिले की पंचायत समितियों के सम्बन्ध में प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त जिलाधीश जिला परिषद् के न्यायाधिकरण (Zila Parishad's Tribunal) में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस न्यायाधिकरण में जिलाधीश के अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा मनोनीत किए गए कुछ और सदस्य भी होते हैं। यह न्यायाधिकरण पंचायती राज व्यवस्था में कार्य कर रहे कर्मचारियों के कार्यों की जांच-पड़ताल कर सकता है तथा उन्हें सजा के रूप में जुर्माना कर सकता है तथा उन्हें निलम्बित कर सकता है अथवा सेवा से निकाल भी सकता है।

जिला परिषद् का प्रमुख अधिकारी इसका सचिव (Secretary) होता है जिसकी नियुक्ति साधारणतया राज्य सेवा आयोग द्वारा की जाती है। कुछ राज्यों में प्रशासकीय सेवा के किसी अधिकारी को इस पद पर नियुक्त किया जाता है। यह अधिकारी जिला परिषद् के कार्यकारी अधिकारी के रूप में कार्य करता है। जिला परिषद् का अपना भी एक कार्यालय होता है जिसमें परिषद् के प्रतिदिन का प्रशासन चलाने के लिए कुछ क्लर्क, टाईपिस्ट, लेखाकार तथा चपरासी आदि होते हैं। यह सभी कर्मचारी जिला परिषद् का प्रशासन चलाते हैं।

जिला स्तर पर विकासशील विभागों के अधिकारियों को नियन्त्रित करने का अधिकार भी जिला परिषद् को प्राप्त है; इसलिए

वह अपनी योजनाओं में पेश आ रही अड़चनों को दूर करने के लिए ज़िला स्तर पर कार्य कर रहे विकासशील विभागों के अधिकारियों का सहयोग प्राप्त करती है। ज़िला स्तर के अधिकारियों को निमन्त्रित करने से पूर्व ज़िलाधीश की स्वीकृति लेनी पड़ती है। यह अधिकारी ज़िला परिषद् की बैठकों में भी भाग लेते हैं और अपनी अनुभवी तथा तकनीकी राय ज़िला परिषद् को प्रदान करते हैं। इसके फलस्वरूप ज़िला परिषद् को अपनी कार्यवाहियों को लागू करने में सुगमता हो जाती है।

पंचायती राज व्यवस्था की गतिविधियों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि इसमें कुछ अधिकारियों का इतना महत्त्व है कि यदि वे अपनी शक्तियों तथा स्थिति का प्रयोग सही ढंग से करें तो पंचायती राज की सफलता में कोई भी ऐसी कठिनाई नहीं होगी जिसे दूर न किया जा सके। सरकारी अधिकारियों को पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों को पूरा सहयोग देना चाहिए और उनका मार्गदर्शन करना चाहिए। सरकारी अधिकारियों को अपना नौकरशाही वाला व्यवहार बदल कर प्रशासन की मानवीय पद्धति (Humanistic Approach) को अपनाना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वह आपसी सहयोग, परस्पर विश्वास तथा भाईचारे का एक ऐसा वातावरण पैदा करें जिसमें सरकारी अधिकारी तथा पंचायती राज संस्थाओं के सदस्य मिल कर एक टीम की भांति कार्य कर सकें। उन्हें ग्रामीण लोगों तथा पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों की कठिनाइयों को समझना चाहिए और उनके समाधान के लिए हर सम्भव प्रयत्न करना चाहिए। उनके कंधों पर ग्रामीण भारत के विकास के लिए बड़ी भारी ज़िम्मेदारी डाल दी गई है; इसलिए उनको चाहिए कि वे अपनी योग्यता, कार्यकुशलता तथा कर्तव्य परायणता का प्रमाण दें और पंचायती राज को हर क्षेत्र में सफल बनाएं।

## पंचायती राज संस्थाओं पर सरकार का नियन्त्रण

### (Government Control over Panchayati Raj Institutions)

पंचायती राज की संस्थाओं को बहुत सी शक्तियां तथा उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं ताकि यह ग्रामीण भारत का नव-निर्माण कर सकें। पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण क्षेत्रों के विकास, जन कल्याण तथा स्थानीय शासन का प्रबन्ध चलाने की शक्तियां राज्य सरकार द्वारा हस्तांतरित की जाती हैं।

## ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण

### (State Control over Rural Local Bodies)

ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करने वाले स्थानीय निकायों पर पर्याप्त पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है ताकि आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करके इन्हें कुशल एवं प्रभावशाली व्यवस्था की जा सके। पंचायती राज संस्थाओं के क्षेत्र में नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण की व्यवस्था का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व है। कारण यह है कि ग्राम्य स्तर पर स्थानीय जनता को जो शक्ति सौंपी गई है उसका प्रयोग करने वाले लोग प्रशिक्षित एवं पर्याप्त योग्य नहीं हैं और उनके द्वारा सत्ता के दुरुपयोग की सम्भावनाएँ प्रायः अधिक रहती हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय प्रशासकीय संस्थाओं को शक्ति हस्तान्तरित करने के बाद सरकार जनता के विकास एवं कल्याण के उत्तरदायित्वों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाती। यह राज्य का एक स्वभाविक अधिकार एवं सक्रिय उत्तरदायित्व है। राज्य सरकार को यह देखना पड़ता है कि ये स्थानीय संस्थाएँ एक निश्चित स्तर के अनुसार कार्य करती रहें। पंचायती राज इकाइयों प्रशासन के एकीकृत भाग के रूप में विकसित होती हैं तथा ये राष्ट्रीय नीतियों एवं राज्य के संवैधानिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में सहयोग देती हैं। जब इन संस्थाओं पर नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण की एक विकसित व्यवस्था लागू की जाती है तो वे स्वयं लाभान्वित होती हैं और नागरिकों को अधिकाधिक लाभ प्राप्त होते हैं।

### नियन्त्रण की विधियाँ

ग्रामीण स्थानीय निकायों पर राज्य सरकार द्वारा निम्नानुसार नियन्त्रण स्थापित किया जाता है -

1. राज्य सरकार के विभिन्न अधिकारी वर्ग पंचायती राज संस्थाओं के निरीक्षण का कार्य करते हैं। यदि कोई संस्था ठीक प्रकार से काम नहीं कर रही है तो निरीक्षक का कर्तव्य है कि वह उसे उचित प्रकार से कार्य करना सिखाए। निरीक्षक स्थानीय निकायों की सम्पत्ति, निर्माण कार्य, कार्यालय, स्टोर आदि का निरीक्षण करते हैं। इन्हें अधिकार होता है कि रिकार्ड, लेख-पत्रों आदि की जाँच-पड़ताल करें। निरीक्षक अपनी रिपोर्ट निर्धारित प्रपत्र में अपने विभाग को

- देते हैं। राज्य स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं के निरीक्षण और पर्यवेक्षण के लिए कहीं तो स्थानीय स्वायत्त शासन विभाग है और कहीं पंचायत विभाग या पंचायती राज विभाग है। कहीं-कहीं पर इसे पंचायती राज निदेशालय कहा जाता है। निदेशालय की सहायता के लिए कहीं-कहीं परामर्शदात्री बोर्ड हैं जो पंचायतों की प्रगति की समीक्षा करते हैं। राज्य सरकार को पंचायतों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण नियुक्तियों पर परामर्श देते हैं एवं पंचायतों को उनके महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों की सलाह देते हैं आदि।
2. राज्य सरकार पंचायती राज संस्थाओं से रिपोर्ट माँगती हैं। प्रशासकीय विभाग द्वारा अनेक प्रकार के विवरण-पत्र और प्रतिज्ञा-पत्र माँगे जाते हैं और संस्थाओं का कर्तव्य है कि वे निर्धारित प्रपत्रों में लेख प्रस्तुत करें। विभाग आवश्यक अध्ययन के बाद त्रुटियों की ओर स्थानीय निकायों का ध्यान आकर्षित करता है और त्रुटियों को ठीक करने के लिए समुचित निर्देश भेजता है। कुछ रिपोर्टें ऐसी हैं जो नियमानुसार समय-समय पर भेजी जाती रहती हैं, किन्तु विभाग को अधिकार है कि वह आवश्यकतानुसार अन्य रिपोर्ट और सूचना की माँग अवश्य करे।
  3. ऐसे मामलों में जहाँ अधिनियम के अधीन राज्य सरकार की स्वीकृति, सहमति या अनुमोदन आवश्यक हों, राज्य सरकार उचित जाँच का आदेश दे सकती है। राज्य सरकार को अधिकार है कि वह आवश्यक समझने पर अन्य किसी मामले में जाँच का आदेश दे। जाँच अधिकारी को यह अधिकार होता है कि वह आवश्यक समझने पर किसी व्यक्ति को अपने सामने पेश होकर बयान देने का आदेश दे। जाँच अधिकारी की रिपोर्ट पर विचार करके निर्णय देना सरकार का काम है।
  4. राज्य सरकारों को अधिकार है कि वह पंचायत समितियों के निर्णयों, प्रस्तावों या आज्ञाओं को अनुचित समझने पर रद्द कर दे, लेकिन ऐसा करने से पूर्व यह आवश्यक है कि राज्य सरकार पंचायत समिति को उत्तर में अपनी सफाई देने का उचित अवसर दे। राज्य सरकार की ओर से अधिकार का प्रयोग जिलाधीश भी कर सकता है, यदि वह आवश्यक समझे कि जनहित और शान्ति की दृष्टि से अविलम्ब कार्यवाही अनिवार्य है। जिलाधीश को अपने कार्य की रिपोर्ट शीघ्र ही राज्य सरकार को भेजनी होती है और राज्य सरकार का निर्णय ही अन्तिम रूप से मान्य होता है।
  5. राज्य सरकार जिला परिषद् व पंचायत समितियों के निर्णय में परिवर्तन कर सकती है। यह पंचायत समिति या जिला परिषद् के किसी निर्णय या आदेश सम्बन्धी कागजों को मंगाकर देख सकती है और अपना निर्णय दे सकती है। निर्णय देने से पूर्व जिला परिषद् या पंचायत को अपनी स्थिति स्पष्ट करने के समुचित अवसर दिए जाते हैं।
  6. जिलाधीश को यह अधिकार होता है कि वह पंचायत समिति की अचत सम्पत्ति और उसके कार्यों आदि का निरीक्षण करे। पंचायत समिति के नियन्त्रण में चलने वाली किसी संस्था के कागजात आदि के निरीक्षण करने का उसे अधिकार है।
  7. कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें पंचायत या पंचायत समिति राज्य सरकार की स्वीकृति से ही कर सकती है। राज्य सरकार की सहमति के अभाव में किए गए ऐसे कार्यों को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। राज्य सरकार को अधिकार होता है कि वह प्रशासकीय आदेशों द्वारा ऐसे कार्यों के क्रियान्वयन पर रोक लगा दे।
  8. महाराष्ट्र, राजस्थान और तमिलनाडु राज्यों में अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को अधिकार है कि यदि पंचायती राज संस्थाएँ अपना कार्य न करें तो राज्य सरकारें अपने अधिकारियों से वह कार्य करवा लें। राज्य सरकार कार्य-व्यय इन संस्थाओं से वसूल कर सकती है। प्रायः इस प्रकार का कदम तभी उठाया जाता है जबकि पंचायती राज संस्थाएँ निरन्तर गलती करती रहें और राज्य सरकार के निर्देशों के बावजूद कार्य पूरा न करें अथवा निर्धारित समय के भीतर अपनी गलती न सुधारें।
  9. यदि राज्य सरकार समझे कि कोई समिति या परिषद् अपने कार्य ठीक ढंग से नहीं कर रही है तो वह उसे भंग करके प्रशासक की नियुक्ति कर सकती है। चेन्नई, राजस्थान और तमिलनाडु राज्यों के अधिनियमों में इस प्रकार की व्यवस्था है। राज्य सरकार को यह अधिकार है कि वह समिति या परिषद् को भंग करने के बजाय उसे तुरन्त नए चुनाव की आज्ञा दे।
  10. यदि पंचायती राज संस्थाएँ, नियमों और उपनियमों का समुचित रूप से पालन न करें तो राज्य सरकार को अपीलें सुनने का अधिकार है। ऐसी अपीलों पर राज्य सरकार का निर्णय अन्तिम होता है। ये निर्णय न्यायालयों की अधिकारी

सीमा से परे होते हैं।

11. पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य सरकार का पर्याप्त वित्तीय नियन्त्रण रहता है। इन संस्थाओं की आय का अधिकांश भाग राज्य सरकारें अनुदान के रूप में उपलब्ध कराती हैं, अतः संस्थाओं का कर्तव्य है कि वे राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों और निर्धारित प्रक्रियाओं के अनुसार आचरण करें। राजस्थान राज्य को लें तो राज्य सरकार के निरीक्षक प्रतिवर्ष उनके हिसाब-किताब की जाँच करते हैं। पंचायत को अपने वार्षिक बजट पर मुख्य पंचायत अधिकारी की मंजूरी लेनी पड़ती है। इस अधिकारी को बजट में संशोधन करने का अधिकार है। बजट के अलावा कोई धन राशि इस अधिकारी की पूर्व अनुमति के बिना व्यय नहीं की जा सकती। राज्य सरकार के नियमों का अनुपालन न करने या राज्य सरकार को संतोष न होने की स्थिति में सरकारी अनुदान रोका जा सकता है। सरकारी अनुदान के बिना पंचायती राज संस्थाओं का काम चल नहीं सकता अतः वित्तीय नियन्त्रण व्यवहार में काफी प्रभावी होता है। राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं के बजट निर्माण, करारोपण, ऋण सम्बन्धी शक्तियों आदि पर नियन्त्रण रखा जाता है। करों की दर और उनकी वसूली के नियम राज्य सरकार द्वारा बनाए जाते हैं।
12. मुख्य पंचायत अधिकारी पंचायत के किसी आदेश या प्रस्ताव को रोक सकता है। इस अधिकारी की आज्ञा में आवश्यक संशोधन या परिवर्तन राज्य सरकार कर सकती है।
13. राजस्थान, महाराष्ट्र और तमिलनाडु के अधिनियमों में राज्य सरकार को अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे निर्वाचित सदस्यों और पदाधिकारियों को हटा दे जो पंचायती राज व्यवस्था के कानून और नियमों का उल्लंघन करते हों। स्पष्टता के लिए हम राजस्थान राज्य की व्यवस्था को लें। राज्य सरकार को पंच, सरपंच, पंचायत समिति के सदस्य, न्याय पंचायतों के सदस्यों और अध्यक्ष तथा पंचायत समिति के प्रधान को कतिपय परिस्थितियों में हटाने का अधिकार है। राज्य सरकार ऐसा कदम प्रायः तभी उठाती है जब शक्तियों के दुरुपयोग, अधिकार-सीमा का उल्लंघन, कदाचार आदि के स्पष्ट आरोप हों।

स्पष्ट है कि राज्य सरकारों को पंचायती राज संस्थाओं के नियन्त्रण की पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त हैं। राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद् अधिनियम, 1959 तथा राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1963 में इन संस्थाओं के सम्बन्ध में सुरक्षात्मक उपायों, नियन्त्रण और देख-रेख के प्रावधान हैं। आन्तरिक देख-रेख की प्रणाली में पंचायतों का विकास अधिकारी द्वारा निरीक्षण और योजनाओं के क्रियान्वयन का जिला स्तर के अधिकारियों द्वारा पर्यवेक्षण सम्मिलित है। राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 में विभिन्न ऐसे प्रावधान रखे गये हैं जो राज्य सरकार को पंचायती राज संस्थाओं के कार्य-कलापों पर हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण स्थापित करने की स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं।

### नियन्त्रण व्यवस्था का मूल्यांकन

ग्रामीण स्थानीय शासन निकायों पर नियन्त्रण के विभिन्न साधनों की सूची पर्याप्त लम्बी और प्रभावोत्पादक है तथापि व्यवस्था में नियन्त्रण के साधन इन संस्थाओं को वांछित रूप में कार्यकुशल और प्रभावकारी नहीं बना पाए हैं। सादिक अली समिति ने स्थानीय शासन निकायों और अन्य क्षेत्रों की नियन्त्रण व्यवस्था में जिन दोषों की ओर संकेत किया है वे मुख्यतः निम्नानुसार हैं -

1. पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण की शक्तियाँ राज्य स्तर पर केन्द्रीकृत कर दी गई हैं, अतः तुरन्त कार्यवाही करना प्रायः असम्भव हो गया है। जब तक कार्यवाही की जाती है उस समय तक स्थिति पूरी तरह बदल जाती है और किए गए कार्य का परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहता।
2. निर्वाचित प्रतिनिधियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की शक्ति राज्य सरकार में निहित है। राज्य सरकार के पास कार्य अधिक होता है। इसके अतिरिक्त वह स्थानीय निकायों से दूर रहती है अतः आवश्यक कदम तुरन्त नहीं उठा पाती।
3. अंकेक्षण का यन्त्र निरन्तर निर्देशन एवं रोकथाम करने के लिए पर्याप्त सिद्ध नहीं हुआ है। अंकेक्षण के ऐतराजों को पूरा करने तथा अनियमितताओं के सम्बन्ध में कार्यवाही करने की गति धीमी रहती है।
4. दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही का अधिकार निर्वाचित अधिकारियों को दिया गया है। कभी-कभी इस

अधिकार का दुरुपयोग होता है जिससे अव्यवस्था फैलती है।

5. कई बार राज्य सरकार अपने वैधानिक अधिकारों का प्रयोग राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करती है।
6. नियन्त्रण के साधन रचनात्मक और सुधारात्मक नहीं माने जा सकते। कितनी ही बार नियन्त्रण की कठोरता पंचायती राज संस्थाओं के उत्साह का ठण्डा कर देती है।
7. राज्य स्तर पर ऐसी संस्था का अभाव है जो ग्रामीण स्थानीय स्वायत्त शासन निकायों की समस्याओं पर विचार कर उन्हें उचित परामर्श दे।

### सुझाव

उपर्युक्त दोषों को दूर करने के उचित प्रयास किए जाने चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं के सम्बन्ध में नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो कि एक ओर तो निरन्तरता ला सके और दूसरी ओर शीघ्रतापूर्ण कार्यवाही की व्यवस्था कर सके। अनुशासनात्मक शक्तियाँ एवं नियन्त्रण की शक्तियाँ स्वतन्त्र निकायों द्वारा प्रस्तुत की जानी चाहिए और तुरन्त कार्यवाही के लिए उचित स्तर पर सत्ता हस्तान्तरित की जानी चाहिए। सादिक अली समिति ने एक जिला एवं राज्य पंचायत के संगठन का सुझाव रखा था जो कि पंचायती राज संस्थाओं के नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण की संस्थाओं पर विचार कर सके। इस प्रकार का अधिकरण (Tribunal) इन संस्थाओं के कार्य की लगातार देखभाल रखेगा तथा उनके औचित्य एवं वैधानिकताओं की रक्षा करेगा, वह जनता और निर्वाचित प्रतिनिधियों में समान रूप से विश्वास की प्रेरणा देगा। राज्य स्तर पर पंचायती राज के लिए राज्य पंचायत बनायी जानी चाहिए। इसमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीश स्तर का एक न्यायिक सदस्य होगा, विकास आयुक्त होगा तथा राज्य की पंचायती राज परामर्शदाता परिषद् द्वारा नियुक्त एक सदस्य होगा, जो राज्य अधिकारी नहीं होगा। राज्य सरकार द्वारा वरिष्ठ स्तर के आर. ए. एस. अधिकारी राज्य पंचायत के सचिव का कार्य करने के लिए नियुक्त किया जा सकता है। पंचायत समिति एवं जिला परिषद् के प्रस्तावों की परीक्षा करने के लिए और अभिलेख रखने के लिए क्रमशः जिला एवं राज्य पंचायत के सचिव के नियन्त्रण में एक नियमित स्टाफ होना चाहिए।

पंचायती राज के सम्बन्ध में जो अंकेक्षण संगठन कार्य कर रहे हैं वे अधिक सशक्त नहीं हैं। सादिक अली समिति ने सशक्त बनाने की सिफारिश की थी। समिति ने बताया है कि इन संगठनों को न केवल अंकेक्षण करना चाहिए वरन् लेखा संधारण में सहायता एवं निर्देशन तथा अनियमितताओं को रोकने में सहयोग करना चाहिए। स्थानीय फण्ड अंकेक्षण के परीक्षकों द्वारा जो कार्य किया जाता है वह सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि उनका अधिकार क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। इसे जितना विकेन्द्रित किया जाए उतना ही उपयोगी रहेगा। एक या कुछ जिलों के लिए एक स्थानीय फण्ड अंकेक्षण का सहायक परीक्षक होना चाहिए। इसको जिलाधीश के साथ निकट संपर्क बनाए रखना चाहिए। अंकेक्षण प्रतिवेदन को पूरा करने की शक्तियाँ एवं कार्य विकेन्द्रित कर देने चाहिए। पंचायत एवं पंचायत समितियों को अंकेक्षण करने की शक्ति जिलाधीश को होनी चाहिए।

सारांशतः ग्रामीण स्थानीय स्वशासन संस्थाओं पर राज्य सरकार का नियंत्रण तो आवश्यक है, लेकिन यह नियंत्रण उद्देश्यपरक और सार्थकता लिये हुए होना चाहिए।

## पंचायती राज की प्रमुख समस्याएँ

पंचायती राज के उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में अनेक सामाजिक और प्रशासनिक समस्याएँ विद्यमान हैं, जिन्हें डॉ. चन्द्र प्रकाश भाभरी ने निम्नलिखित रूप में व्यक्ति किया है।

### सामाजिक समस्याएँ

1. जनता में साक्षरता का अभाव।
2. राजनीतिक चेतना का अभाव।
3. निःस्वार्थ नेतृत्व का अभाव।
4. जनता का आलस्य तथा उसकी क्रियाहीनता।
5. भारत का अलोकतन्त्रीय सामाजिक तथा पारिवारिक ढाँचा।

6. जातीय, धार्मिक तथा साम्प्रदायिक निष्ठाएँ।
7. ग्राम समुदाय में शक्तिशाली वर्गों का कमजोर वर्गों जैसे - अनुसूचित जातियों पर दृढ़ प्रभुत्व इत्यादि।

### प्रशासनिक समस्याएँ

1. विकास सम्बन्धी गतिविधियों की आधारभूत इकाई क्या हो - खण्ड या जिला?
2. पंचायती राज के कार्यों में अधिकारियों या कर्मचारी वर्ग का क्या स्थान तथा दायित्व हो?
3. विकास कार्यों में जिला अधिकारियों का क्या स्थान तथा दायित्व हो?
4. पंचायती राज संस्थाओं तथा राज्य सरकारों में क्या सम्बन्ध हो?
5. क्या पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों के मूल्यांकन के लिए कुछ विश्वसनीय कसौटियाँ हो सकती हैं?
6. पंचायती राज के अन्तर्गत विभिन्न सेवाओं के पदाधिकारियों की नियुक्ति किस प्रकार हो सकती है?
7. पंचायती राज सम्बन्धी चुनावों में राजनीतिक दलों का व्यवहार कैसा हो?

उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की समस्याएँ इन संस्थाओं के महत्त्व और उपयोगिता के आगे प्रश्न चिन्ह लगाती हैं। पंचायती राज संस्थाएँ अभी तक विकास-अभिकरण के रूप में इतनी विकसित नहीं हुई हैं जितनी शक्ति एवं सत्ता हथियाने के रूप में। नेतृत्व में सत्ता के लिए अन्धी दौड़ पंचायती राज संस्थाओं के भविष्य के लिए अहितकर है।

सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों का पारस्परिक सम्बन्ध एक महत्त्वपूर्ण समस्या बना हुआ है। जिला-स्तरीय अधिकारियों से अपेक्षा की जाती है कि वे मित्र, दार्शनिक एवं सलाहकार के रूप में ग्रामवासियों के साथ कार्य करेंगे, किन्तु वास्तविकता यह है कि ये अधिकारीगण ग्रामवासियों पर अपनी राय थोपने का प्रयास करते हैं। पंचायती राज व्यवस्था में दलगत राजनीति का प्रवेश, चुनाव पर होने वाले भारी व्यय और कटुता का वातावरण तथा पंचायतों की धनराशि के दुरुपयोग ने भी इन संस्थाओं की स्थिति को कमजोर किया है। राज्य सरकारों द्वारा इनके चुनाव नियमित समय पर नहीं कराने तथा राजनीतिक कारणों से इन संस्थाओं को भंग करने के निर्णय भी पंचायती राज संस्थाओं को कमजोर बनाते हैं। पंचायती राज संस्थाओं द्वारा घटिया निर्माण कार्य तथा सार्वजनिक धन का दुरुपयोग भी इनकी स्थिति को कमजोर बनाता है।

## पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी और व्यावहारिक बनाने के सुझाव

पंचायती राज संस्थाओं को अधिक शक्तिशाली बनाने की दिशा में निम्नलिखित सुझाव कारगर सिद्ध हो सकते हैं -

1. पंचायती राज संस्थाओं को प्राणवान बनाने और प्रोत्साहित करने के लिए उन्हें अधिक कार्यकारी अधिकार दिए जाने चाहिए।
2. वे परियोजनाएँ और कार्य जो जिला परिषद् को सौंपे जा सकते हैं, राज्य स्तर के जिला परिषद् को सौंप दिए जाने चाहिए। पंचायत समितियों से वे परियोजनाएँ वापस ली जानी चाहिए जो जिला परिषद् स्तर पर अधिक कुशलता के साथ कार्यान्वित की जा सकती हैं।
3. जिला परिषद् के मुख्य कार्यपालक अधिकारी को कर्मचारियों में अनुशासन स्थापित करने और उनसे काम लेने के लिए प्रभावपूर्ण शक्तियाँ दी जानी चाहिए। कर्मचारियों की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट उसके ठीक ऊपर के उस अधिकारी द्वारा लिखी जानी चाहिए जिसके अधीन वे कर्मचारी कार्य कर रहे हों। इस रिपोर्ट को मुख्य कार्यपालक अधिकारी को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
4. जिला स्तर के अधिकारियों को समूह भाव से काम करना चाहिए। उनका प्रमुख दायित्व जिला परिषद्, पंचायत समितियों, खण्ड विकास अधिकारियों तथा विस्तार अधिकारियों को सरकारी नीतियों और निर्देशों के अनुसार तकनीकी दृष्टि से सुव्यवस्थित योजनाएँ बनाने तथा उन्हें क्रियान्वित करने में सहायता देना है।
5. लोगों की आम समस्याओं को हल करने के लिए पंचायतों को अधिकार और साधन प्रदान किए जाएँ। लोगों की अधिक से अधिक समस्याएँ पंचायत के क्षेत्राधिकार में लाई जाएँ ताकि लोग अपनी कठिनाइयों को दूर करा सकें तथा समस्याओं का समाधान पा सकें।



6. नियम और कार्यवाहियाँ सुगम बनाई जाएँ। नियम ऐसे होने चाहिए जो आम आदमी भली-भाँति समझ सके।
7. राजस्व और पुलिस सेवाओं का सहयोग सुनिश्चित किया जाए।
8. ग्राम सभा को वैधानिक मान्यता प्राप्त होनी चाहिए। ग्राम सभा की कार्यवाही जनता की भावना के अनुसार चलाई जानी चाहिए। ग्राम जीवन को प्रभावित करने वाले सभी महत्वपूर्ण मुद्दों पर ग्राम सभा में विचार-विमर्श होने चाहिए। ग्राम सभा के विचारणीय विषयों में पंचायत का बजट, पंचायत के काम का विवरण, योजनाओं की प्रगति, ऋण और अनुदानों का उपयोग, स्कूल और सहकारी समितियों की व्यवस्था, लेखा परीक्षण की रिपोर्ट आदि शामिल की जानी चाहिए।
9. पंचायती राज में संस्थाओं के मार्ग-निर्देशन, देख-रेख और नियन्त्रण का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। राज्य सरकारों, उनके तकनीकी अभिकरणों और जिला अधिकारियों को पंचायती राज संस्थाओं का समुचित एवं उदार ढंग से मार्ग-निर्देशन कर उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। प्रशासनिक अधिकारियों को विकेन्द्रीकृत लोकतन्त्रीय संस्थाओं के मित्र, दार्शनिक तथा पथ-प्रदर्शक के रूप में आगे आना चाहिए। उनका कार्य सही ढंग से सकारात्मक प्रवृत्ति का होना चाहिए।
10. राजनीतिक दलों की पंचायती राज के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए तथा इन संस्थाओं के चुनाव सर्वसम्मति के आधार पर हों।
11. पंचायती राज संस्थाओं को कर लगाने के कुछ व्यापक अधिकार दिए जाने चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं के पास अपने स्वयं के साधन विकसित किए जाने चाहिए ताकि वे अपने वित्तीय साधनों में वृद्धि कर अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विवेक के अनुसार कर्तव्यों का पालन कर सकें। राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं को दिए जाने वाले अनुदानों में वृद्धि करनी चाहिए। राज्य सरकार को पंचायती राज संस्थाओं को ब्याज रहित भारी ऋण देकर अपने खुद के लाभकारी व्यवसाय चलाने के लिए अभिप्रेरित करना चाहिए। कर वसूल करने वाली मशीनरी को प्रभावशाली बनाया जाना चाहिए।
12. प्रशासनिक व्यय में हर स्तर पर मितव्ययिता बरतनी चाहिए।
13. पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन नियत समय पर कराये जाने चाहिए।
14. राज्य सरकारों द्वारा अकारण पंचायती राज संस्थाओं को इनकी समयावधि के पूर्व ही भंग करने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए।

## पंचायती राज की उपलब्धियाँ

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् नीति-निर्देशक सिद्धान्तों की भावना को साकार करने के लिए पंचायती राज को अपनाया गया। देश में इस व्यवस्था का सफल परीक्षण हुआ है। पंचायती राज, अपनी कमियों और दुर्बलताओं के बावजूद ग्रामवासियों की जीवन पद्धति बनता जा रहा है। अशिक्षित जनता, जातिगत और धर्मगत अन्धविश्वास, परम्परागत अलोकतान्त्रिक, सामाजिक और पारिवारिक ढाँचे, परिपक्व राजनीतिक प्रबुद्धता की कमी आदि के कारण पंचायती राज की उपलब्धियों का मूल्यांकन करने अथवा पंचायती राज की आलोचना करने की एक सामान्य प्रवृत्ति विकसित हो गई है अन्यथा इस बात से इंकार करना कठिन है कि पंचायती राज व्यवस्था ने देश के राजनीतिकरण तथा आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पंचायत चुनाव के और पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकलापों ने ग्राम्य-जीवन में एक नया जागरण पैदा किया है। अब गाँव वालों का उस तरह शोषण नहीं किया जा सकता जिस प्रकार पहले महाजन और जमींदार वर्ग करता था। वोट की कीमत समझी जाने लगी है। ग्रामीण जनता की राजनीतिक हिस्सेदारी बढ़ी है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकृत संस्थाएँ स्वशासन की इकाइयों के रूप में विकसित हो रही हैं। ग्राम नेतृत्व पनपता जा रहा है। गाँवों की स्त्रियाँ भी राजनीतिक कार्यकलापों में भाग लेने लगी हैं। राजनीतिक जागृति के साथ सामाजिक चेतना बढ़ी है। छुआछुत, अस्पृश्यता और भेदभाव की दीवारों को पंचायती राज ने जबरदस्त धक्का पहुँचाया है।

## अध्याय-31

# नगर एवं ग्रामीण नियोजन (Town and Country Planning)

---

नियोजन का अर्थ किसी कार्य को क्रमानुसार करने के लिए तैयारी करना है। यह प्रत्येक मानवीय कार्य की ओर प्रथम पग है। फिफनर (Pfiffner) के शब्दों में "नियोजन समस्त मानवीय व्यवहार की विचार युक्त प्रक्रिया है।" एम. जॉन. डी. मिलेट (M. John, D. Millett) के विचारानुसार, "प्रशासकीय कार्य के उद्देश्य को निर्धारित करना तथा उनकी प्राप्ति के लिए साधनों पर विचार नियोजन कहलाता है। 'नियोजन' किसी काम की तैयारी है। नियोजन का अर्थ मानव कार्य की दूरदर्शिता से है। नियोजन संभावित परिणामों की ओर संकेत करता है और परिणामों की प्राप्ति के लिए आवश्यक साधनों के लिए तैयार करता है। उरविक (Urwick) ने नियोजन की व्याख्या करते हुए कहा है, "नियोजन एक बौद्धिक प्रक्रिया है इसका अर्थ कार्यों को व्यवस्थित रूप में करने के लिए पहले से तैयार करना, कार्य करने से पहले उस पर विचार करना, अनुमानों के स्थान पर तथ्यों के प्रकाश में काम करना है। यह किसी प्रकार के जुए या सट्टे से उल्टी क्रिया है। इन सभी परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नियोजन निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए क्रमबद्ध तैयारी करने की प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में यह आरम्भ (Beginning) से अन्त (End) की ओर देखने की प्रक्रिया है। इस प्रकार नियोजन का विस्तृत रूप में अर्थ भविष्य की ओर देखते हुए उद्देश्यों को निर्धारित करना तथा पर्याप्त साधनों से उन्हें धीरे-धीरे प्राप्त करना है। क्योंकि नियोजन की आवश्यकता व्यक्ति तथा समाज के सभी कार्यों के लिए है इसलिए इसकी मानवीय जीवन के सभी पहलुओं में जरूरत है। क्योंकि मनुष्य को खुराक के बाद सर्वप्रथम आवश्यकता निवास स्थान की होती है इसलिए उसे उचित निवास स्थान तथा भौतिक वातावरण प्रदान करने के लिए नियोजन की आवश्यकता है। थामस शार्प (Thomas Sharp) के शब्दों में, "एक नागरिक को सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करने के लिए घर के भीतर तथा बाहर प्रसन्नचित वातावरण चाहिए। उसे घर के बाहर शिक्षा, मनोरंजन, प्रसन्नता तथा सामाजिक पारस्परिक व्यवहार की सुविधाएं चाहिए। मनुष्य तथा समाज की इस जरूरत ने नियोजन की नवीन धारणा जिसे "नगर तथा ग्रामीण नियोजन" (Town and Country Planning) कहते हैं, को जन्म दिया है। नगर एवं ग्रामीण नियोजन इस प्रकार भौतिक वातावरण के क्षेत्र में कार्य तथा प्रक्रिया है। यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत भूमि का इस प्रकार प्रयोग किया जाए कि इसका सौन्दर्य पूर्ण एवं वैज्ञानिक विकास हो।

### नगर एवं ग्रामीण नियोजन का अर्थ (Meaning of Town and Country Planning)

"नगर एवं ग्रामीण नियोजन का साधारण रूप में संकुचित तथा विस्तृत दोनों प्रकार से प्रयोग किया जाता है। संकुचित रूप में इसकी परिभाषा केवल नगरों तक ही सीमित है। इसी कारण कभी-कभी नगर एवं ग्रामीण नियोजन के स्थान पर नगर नियोजन (Urban Planning) या शहर-नियोजन (City Planning) या नगर नियोजन (Town Planning) के शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बहुत से लेखकों ने इसकी परिभाषा संकुचित रूप में की है। थामस ऐडमज (Thomas Adams) के अनुसार, "नगर नियोजन शहरी समुदायों के भौतिक विकास की एक कला है जिसका उद्देश्य स्वास्थ्य और सुरक्षित कार्य करने की शर्तें, कुशल एवं सुविधाजनक भ्रमण (Circulation) तथा सार्वजनिक कल्याण की पूर्ति करना है। इस का उद्देश्य प्राकृतिक सुन्दरता की स्वस्थ रहने की शर्तों के रूप में सुरक्षित रखने और सामाजिक एवं आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप भवन निर्माण को सुन्दरता प्रदान करना है।"

इस प्रकार जॉन एफ. होवर्ड (John F. Howard) के अनुसार, "नगर नियोजन शहरी क्षेत्र के विकास तथा परिवर्तन का मार्गदर्शन है। इसका उद्देश्य उन सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्य की पूर्ति करना है जो भवनों के भौतिक रूप तथा प्रबन्ध, गलियों, पार्को (Parks), उपयोगों तथा शहरी वातावरण के दूसरे भागों के अतिरिक्त होते हैं।" भारतीय नगर एवं ग्रामीण संगठन (Town and Country Planning Organisation in India.) के अनुसार, "नगर एवं ग्रामीण नियोजन का सम्बन्ध शहरी वातावरण का पुर्ननिर्माण करने से है ताकि उसमें उद्योगीकरण तथा समाज की जटिलताओं की उत्पत्ति के कारण जो बुराईयां उत्पन्न हो गई हैं उन को दूर करके पुरातन मूल्यों का संग्रह किया जा सके। इस प्रक्रिया में दूसरी वस्तुओं के अतिरिक्त उन सेवाओं तथा सुविधाओं की व्यवस्था करना शामिल है जो मनुष्य के शरीर तथा दिमाग के विकास के लिए स्वास्थ्य वातावरण का निर्माण कर सके।" यद्यपि ये सभी परिभाषाएं नगर एवं ग्रामीण नियोजन की संकुचित रूप में व्याख्या करती हैं तथापि इसके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत ग्रामीण विकास का अध्ययन किया जा सकता है और इसी विस्तृत रूप में नगर एवं ग्राम नियोजन का अध्ययन किया जाता है। विस्तृत रूप में इसकी परिभाषा के अन्तर्गत शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के विकास आ जाते हैं। ऐसा करना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि आधुनिक काल में समस्त वातावरण (ग्रामीण एवं नगरीय) के विकास की आवश्यकता को अनुभव किया जाता है। इसी कारण ब्रिटेन (Britain) जैसे देशों में यहां पर नियोजन के अन्तर्गत समस्त देश आ जाता है नगर एवं ग्रामीण नियोजन शब्द का प्रयोग किया जाता है। अमेरिका (America) में इसे नगर एवं क्षेत्रीय नियोजन (Town and Regional Committee) कहा जाता है। भारत में भी इसका प्रयोग विस्तृत रूप में किया जाता है। जैसे कि स्वास्थ्य सर्वेक्षण एवं विकास समिति (Healthy Survey and Development Committee) ने जिसे उसके अध्यक्ष के नाम पर भोर समिति (Bhore Committee) भी कहते हैं अपनी रिपोर्ट जो 1946 में पेश की गई, कहा है, "नगर एवं ग्राम नियोजन का उद्देश्य उपयुक्त भूमि को समाज के अधिक से अधिक लाभ के लिए, इसकी बहुत सी आवश्यकताओं जैसे भवन निर्माण सम्बन्धी कार्य, कृषि एवं उद्योग विकास मनोरंजन, की व्यवस्था आदि की पूर्ति ध्यान में रखते हुए प्रयोग करना है।" इस प्रकार नगर एवं ग्राम नियोजन शहरों एवं दूसरे क्षेत्रों के इस प्रकार के विकसित करने का आन्दोलन है जिससे भूमि का उचित प्रयोग लोगों के अधिक से अधिक लाभ के लिए किया जा सके और सभी प्रकार की सुविधाएं जैसे अच्छा घर, परनालियां (Sewerage), खुली सड़कें तथा गलियां, मनोरंजन के केन्द्र, जो कि मनुष्य तथा समाज के विकास के लिए स्वस्थ वातावरण प्रदान करने के लिए आवश्यक हैं, प्रदान की जा सकें।

### नगर एवं ग्रामीण नियोजन का उद्देश्य (Objects of Town and Country Planning)

नगर एवं ग्रामीण नियोजन का वास्तविक अर्थ तथा मूल्य (Value) इसके उद्देश्यों पर निर्भर है। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. नगर के भावों का नियमानुसार प्रबन्ध करना - निवास स्थान, व्यापारिक क्षेत्र, उद्योगिक क्षेत्र आदि-ताकि प्रत्येक भाग कम से कम कीमत तथा झगड़े से अधिक से अधिक अपना-अपना कार्य कर सकें।
2. परिवहन के सभी साधनों को अधिक से अधिक प्रयोग करके सकुशल परिभ्रमण प्रणाली की व्यवस्था करना।
3. नगर में प्रत्येक विभाग का उच्चतम स्तर तक विकास करना, निवास स्थान वाले क्षेत्रों में सूर्य की रोशनी और हरे स्थानों की व्यवस्था तथा व्यापारिक क्षेत्रों में गाड़ियों को खड़े करने और भवन निर्माण के स्थानों की व्यवस्था करना।
4. सभी परिवारों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सुरक्षित, साफ तथा सुविधाजनक घरों की व्यवस्था करना।
5. मनोरंजन, स्कूलों, चिकित्सालयों और सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था करना।
6. पानी सप्लाई, प्रणालियों तथा लोक सेवाओं की व्यवस्था करना।

## नगर एवं ग्रामीण नियोजन की विशेषताएं

### (Characteristics of Town and Country Planning Process)

नगर एवं ग्रामीण प्रक्रिया की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. **विस्तृत क्षेत्र (Comprehensive Scope)** - नगर एवं ग्रामीण नियोजन का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। इसका सम्बन्ध केवल भूमि के उचित प्रयोग से ही नहीं परन्तु इस का सम्बन्ध आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक, औद्योगिक, कृषि, शिक्षा, निवास सम्बन्धी, मनोरंजक, नगरीय तथा वास्तव में सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू से है। इसका उद्देश्य नगर तथा

गांवों को इस प्रकार से नियोजित करना है जिसके द्वारा वर्तमान तथा भविष्य की मानवीय निवास स्थानों को सकारात्मक रूप से आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। लेविस ममफोर्ड (Lewis Mumford) के शब्दों में, "नगर नियोजन में मानवीय क्रियाओं का समन्वय होता है। यह समन्वय स्थान, कार्य एवं लोगों के बारे में ज्ञात तथ्यों के आधार पर समय एवं स्थान में होता है। इसमें समाज के लिए अधिक सेवाएं प्रदान करने की दृष्टि से कुल वातावरण में विभिन्न तत्वों का परिवर्धन एवं पुनर्स्थानीयकरण किया जाता है। इसमें घरों, औद्योगिक भवनों, बाजारों, जलदाय भवनों, बांधों, पुलों, गांवों, नगरों आदि को उचित बनावट दी जाती है। समाज के सभी आवश्यक कार्यों को उचित रूप में तथा व्यवस्थित ढंग से सम्पन्न करने के लिए इसमें सहयोग प्रदान करने का प्रावधान रहता है।" इसी प्रकार आई.आई.पी.ए. (I.I.P.A.) के एक सैमीनार में कहा गया है, "नगर विकास में आने वाली मूल बातें हैं- व्यवस्थित रूप से नियोजन एवं समन्वित विस्तार, गन्दी बस्तियों की रोकथाम भावी जनसंख्या का निश्चितीकरण एवं प्रसार, मास्टर प्लान (Master Plan), उद्योगों के लिए भूमि का निर्धारण, व्यापार, मनोरंजन एवं अन्य उपयोगी कार्य, संचार के साधन, पर्याप्त जल वितरण, विद्युत, यातायात एवं नगर सुविधाएं आदि।"

इस प्रकार नगर एवं ग्रामीण एक विस्तृत कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य केवल भूमि का उचित प्रयोग ही नहीं बल्कि एक ऐसा वातावरण रखना है जिसमें मनुष्य तथा समाज स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सके।

2. **साकारात्मक उपागम (Positive Approach)** - नगर एवं ग्रामीण नियोजन पुरातन उपायों के विपरीत एक साकारात्मक उपागम है। पुरातन उपाय केवल नागरिक उपनियमों (Municipal Regulation) द्वारा भूमि के प्रयोग पर नियन्त्रण करने के साधन तथा उपनियमों द्वारा भवन निर्माण, सड़कों एवं गलियों की चौड़ाई, गन्दगी को समाप्त करना, पानी का प्रबन्ध, नालियों आदि को नियमित किया जाता था। ये नियम नकारात्मक थे जो किसी काम को करने के लिए बाध्य करने की शक्ति रखते हैं उनकी उल्लंघना करने पर सज़ा दी जाती है। वे लोगों को अपना कार्य विशेष नियमों के अनुसार करने के लिए बाध्य करते हैं। नगर एवं ग्रामीण नियोजन इनके विपरीत साकारात्मक उपागम है। इसका उद्देश्य लोगों के कार्यों को निश्चित नियमों के अनुसार नियमित करना नहीं है बल्कि उन्हें एक स्वस्थ उत्तेजना वाला वातावरण प्रदान करना है जिसमें समस्त समाज का विकास हो सके। यह समस्त समाज के कल्याण की एक सामाजिक प्रक्रिया है।
3. **प्रगतिशील उपागम (Dynamic Approach)** - यह एक स्थायी (Static) उपागम की अपेक्षा गतिशील उपागम है। जिस प्रकार सामाजिक जीवन के उद्देश्य समय-समय पर सामाजिक भलाई के लिए बदलते रहते हैं उसी तरह नगर एवं ग्रामीण नियोजन के उद्देश्य भी बदलते हैं। क्योंकि इसका उद्देश्य नियोजित भौतिक वातावरण द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है, इसलिए मानवीय आवश्यकताओं एवं हालातों में परिवर्तन के साथ-साथ व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार बड़ी तेजी से बदल रहे इस संसार में नियोजन को बड़ी सावधानी से नियोजित करना, नई परिस्थितियों का अध्ययन करना तथा नए विचारों का सावधानी से विकास करना बड़ा आवश्यक है। नगर एवं ग्रामीण नियोजन की विचारधारा भी समय तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुसार बदलती रहती है। जैसे भारत में पहले यह आन्दोलन केवल शहरों तक ही सीमित था परन्तु ग्रामीण विकास तथा ग्रामीण उन्नति की विचारधारा की उत्पत्ति के साथ-साथ इसमें भी परिवर्तन हो गया है तथा इसके कार्य क्षेत्र में वृद्धि हुई है। अब हम केवल नगरों के विकास की बात ही नहीं करते बल्कि गांवों के विकास की चर्चा भी करते हैं। बदलती हुई आवश्यकताओं के साथ-साथ इस उपागम में परिवर्तन होने के कारण इस उपागम में नए प्रगतिशील आन्दोलन का रूप धारण किया है। इसलिए नगर एवं ग्रामीण नियोजन को गतिशील विचारधारा माना जाता है।
4. **बहु-अनुशासनिक उपागम (A Multi-disciplinary Approach)** - नगर एवं ग्रामीण प्रक्रिया एक-दिशायी नहीं है बल्कि बहुदिशायी प्रक्रिया है। यह केवल भूमि के प्रयोग की समस्या के यन्त्रकारी (Engineering) तथा गृहनिर्माण (Architectural) सम्बन्धी उपागम तक ही सीमित नहीं परन्तु और भी राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक बातों से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत सभी योजनाएं आवश्यकताओं, साधनों, सामाजिक एवं आर्थिक परिणामों को ध्यान में रख कर बनाई जाती है। डॉ. महेश्वरी (Dr. Mehashwari) के अनुसार, "नगर एवं ग्रामीण नियोजन केवल वैज्ञानिक कार्य ही नहीं इसे समाज में विद्यमान राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक तत्वों की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए।" कागल के शब्दों में, "नगर नियोजन उद्देश्य की दृष्टि से सामाजिक विज्ञान है जिनकी विचार कुशलता तथा खर्च की दृष्टि से आर्थिक है। भौतिक नियोजन के अन्तर्गत यान्त्रिक (Engineering) तथा गृह-निर्माण (Architectural) समस्याएं आती हैं। इसके उद्देश्यों को समाज की सत्ता द्वारा निर्धारित किया जाता है।"

5. **स्थानीय प्रकृति (Local Nature)** - नगर एवं ग्रामीण नियोजन का मुख्य रूप में सम्बन्ध स्थानीय समस्याओं तथा स्थानीय क्षेत्र के विकास से होता है। इसका उद्देश्य किसी विशेष नगर, शहर या गांव का बहुमुखी विकास करना होता है ताकि वहां के लोगों को सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान करके ऐसा वातावरण मिल सके जिसमें वे व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से अपना विकास कर सकें। आधुनिक सुविधाओं में प्रायः खुली सड़कें, गलियां, प्रणालियां, जलदाय भवनों (Water Works), पार्कस (Parks), मनोरंजन केन्द्र आदि सम्मिलित हैं जिनके बिना आधुनिक काल में मनुष्य अपना जीवन सभ्य रूप में व्यतीत नहीं कर सकता। इस उपागम का मुख्य सिद्धान्त यह है कि किसी नगर या गांव के लोगों को ऐसा भौतिक वातावरण मिल सके जिसमें सभी सुविधाओं को प्राप्त करते हुए अपने जीवन का विकास कर सकें। क्योंकि अच्छे जीवन के लिए अच्छा निवास स्थान अच्छे वातावरण का होना आवश्यक है। इसलिए नगर एवं ग्रामीण नियोजन जो ऐसा वातावरण प्रदान करना मानवीय जीवन में अति आवश्यक है।

## भारत में नगर एवं ग्राम नियोजन (Town and Country Planning in India)

यद्यपि आधुनिक लेखकों के अनुसार नगर एवं ग्राम नियोजन की उत्पत्ति पश्चिमी देशों विशेषकर इंग्लैंड में हुई जहां पर 1909 में नगर विकास के लिए गृह एवं नगर नियोजन अधिनियम (Housing and Town Planning Act, 1909) पास किया गया तथापि इस प्रक्रिया के उदाहरण प्राचीनकाल में बहुत से देशों, चीन, भारत, मिस्र, रोम आदि में मिलते हैं। भारत में नगरों, गांवों तथा शहरों के नियोजन का काम वैदिक काल से विद्यमान है। यदि हम नगर प्रशासन से सम्बन्धित वस्तु शास्त्र (Vastu Shastra), मनसरा (Manasara) तथा कौटिल्य का अर्थशास्त्र आदि पुस्तकों का अध्ययन करें तो प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में भी इस प्रकार वैज्ञानिक ढंग से नगर नियोजन की समस्याओं का अध्ययन किया जाता था। "भारत में नगर नियोजन का ज्ञान बहुत विस्तृत एवं गहन था। जहां तक कि साधारण व्यक्ति भी इस विषय के बारे में कुछ ज्ञान रखता था जैसा कि प्राचीन साहित्य में नगरों के सम्बन्धित व्याख्या से प्रतीत होता है। उस समय प्रवल नगर सम्मान तथा अत्यधिक विकसित नगरीय जागृति थी। नगरीय गृहनिर्माण विशेषज्ञ का सामाजिक स्तर ऊंचा था।" भारतीय नगर नियोजन के अन्तर्गत मार्किट, गलियां, मन्दिर, शाही महल एवं सरकारी भवन (Public Buildings), नागरिकों के लिए निवास स्थान, मनोरंजन केन्द्र, मनुष्यों तथा पशुओं के लिए पीने के पानी का प्रबन्ध, बाग आदि आ जाते थे। हमारी साहित्यिक पुस्तकों में अयोध्या (Ayodhya), इन्द्रप्रस्थ (Indraprastha), पाटलीपुत्र (Patliputra), मादुरा (Madura), वाम्जी (Vamji), कच्चीपुरम (Kanchipuram) आदि शहरों का वर्णन आता है जो वैज्ञानिक ढंग से नियोजित थे।"

पूर्व मुगल तथा मुगल काल में मुस्लिम शासकों ने कुछ नगरों का निर्माण किया। इनमें बहुत से नगरों को प्राचीन नगर नियोजन प्रणाली के आधार पर स्थापित किया गया। इस काल में नगर नियोजन के विज्ञान में कोई प्रगति नहीं सिवाय इस बात के कि इस काल में भवन निर्माण की प्रक्रिया में सजावट तथा कला को अधिक महत्त्व दिया गया। इस काल में देहली, लखनऊ, तथा लाहौर जैसे शहरों को स्थापित किया गया और इनमें शाही दरबारों, शाही बागों, फुव्वारे तथा शाही सजावट तथा कला का महत्त्व दिया गया।

मुगल काल के बाद भारत की राजनीतिक स्थिति के अस्थिर रहने के कारण इस ओर विशेष पग नहीं उठाया गया परन्तु कुछ देसी रियासतों (Indian States) में वहां के शासकों के अपनी-अपनी राजधानियों को नगर नियोजन के अनुसार नियोजित करने का प्रयास किया। जैसे जयपुर को महाराज जयसिंह द्वितीय ने बड़े नियोजित ढंग से स्थापित किया।

आधुनिक काल में यद्यपि नगर एवं ग्रामीण नियोजन का आरम्भ 1912 से माना जाता है जबकि नई दिल्ली को भारत की नई राजधानी बनाने का निर्माण किया परन्तु वास्तव में इसकी उत्पत्ति 1864 में हुई। जबकि मद्रास, बंगाल तथा बम्बई के प्रान्तों के लिए शाही आरोग्य रक्षा आयोगों (Royal Sanitary Commissions) के आदेश अनुसार आरोग्य रक्षा आयोगों (Sanitary Commissions) की स्थापना की गई। "इन आयोगों का काम जन-स्वास्थ्य तथा सफाई से सम्बन्धित सभी मामलों के बारे में सहायता करना, नगरों में आरोग्य रक्षा के लिए सुधार तथा व्यापक रोगों की रोकथाम के लिए सलाह देना था।" इन आरोग्य रक्षा आयोगों के कार्य को बाद में प्रान्तों के सैनिटरी इंजीनियरिंग एवं हैल्थ विभागों (Sanitary Engineering and Health Departments) ने सम्भाल लिया। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में नगर नियोजन सुधार नगरपालिकाओं के हाथ में था, परन्तु वे

इस कुशलतापूर्वक ढंग से वित्तीय एवं प्रशासकीय कठिनाइयों के कारण न कर सकी। ऐसी समस्या में इस काम को कुशलता से करने के लिए सुधार प्रत्यासों का निर्माण किया गया। सुधार प्रत्यासों (Improvement Trusts) को अपने कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए वित्तीय संस्थान प्रदान किए।

भारत में सर्वप्रथम सुधार प्रत्यास बम्बई सुधार प्रत्यास (Bombay Improvement Trust) सन् 1898 में स्थापित किया गया। इसके बाद और कई सुधार प्रत्यास भिन्न-भिन्न शहरों में स्थापित किए गए, जैसे मैसूर नगर सुधार प्रत्यास (Mysore City Improvement Trust) 1939 में, कलकत्ता सुधार प्रत्यास (Calcutta Improvement Trust, 1911) आदि स्थापित किए गए। संयुक्त प्रान्त नगर अधिनियम (The United Provinces Town Improvement Act), 1919 में पास किया गया जिसके अन्तर्गत लखनऊ (1919) तथा इलाहाबाद (1920) में सुधार प्रत्यासों का निर्माण किया गया। पंजाब से नगर सुधार प्रत्यास अधिनियम (Punjab Improvement Trust Act), 1920 में स्थापित किया गया। 1937 में नागपुर में सुधार प्रत्यास अधिनियम के अधीन नागपुर नगर सुधार प्रत्यास (Improvement Trust Nagpur) स्थापित किया गया। इस वर्ष उत्तर प्रदेश के अधिनियम को देहली में लागू करके वहां पर भी देहली सुधार प्रत्यास (Delhi Improvement Trust) की स्थापना की गई। बंगाल तथा मद्रास में भी सुधार प्रत्यासों की स्थापना 1945 तथा 1946 में की गई। यद्यपि बहुत से शहरों में भी सुधार प्रत्यासों की स्थापना की गई और नगर नियोजन से सम्बन्धित योजनाओं को अपनाया गया। परन्तु इस दशा में कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई और नगरों की स्थिति बड़ी दर्दनाक बनी रही।

इसी काल में जब 1939 में दूसरा विश्व युद्ध आरम्भ हुआ तो जो प्रयास इस ओर किए जा रहे थे वे भी बन्द हो गए। नगर तथा शहर बिना किसी योजना के फैलते चले गए और उनकी सफाई तथा आरोग्य रक्षा की स्थिति दिन-प्रतिदिन खराब होती चली गई। जनसंख्या आयुक्त (Census Commissioner) ने भारत के नगरों की दशा को देखते हुए 1941 में यह कहा है कि "भारत को प्रायः इस प्रकार गांवों का देश कहा जाता है कि इसके नगरीय तत्त्व को भूला जा सकता है या कदाचित अनुभव ही नहीं किया जा सकता और फिर भी नगरीय तत्त्वों के परिवर्तन की बड़ी गति है। वह गति बड़ी तेज़ है और यह बढ़ती जा रही है और मैं सोचता हूँ कि यह अनुभव करने का समय है कि भारत चिरकाल से ही बड़ी तेज़ गति से नगरीकरण (Urbanisation) की ओर बढ़ता जा रहा है और यह निश्चित रूप में छोटे नगरों की तुलना में बड़े नगरों को प्रभावित करेगा। इस नगरीकरण में नियन्त्रण का अभाव, भूमि पर गैर-कानूनी अधिकार की स्वतन्त्रता तथा सामान्य गन्दगी जैसे दोष हैं।" 1943 में केन्द्रीय सरकार ने सर जोसफ, डब्ल्यू. भोर (Sir Joseph W. Bhoire) की अध्यक्षता के स्वास्थ्य सर्वेक्षण एवं विकास समिति (Healthy Survey and Development Committee) की स्थापना की। इस समिति ने देश में नगर नियोजन की दशा के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट, जो 1946 में पेश की गई कहा "नगर नियोजन की प्रगति बहुत धीमी है। चाहे पिछले 20 या 25 वर्षों में कुछ प्रसिद्ध नगर नियोजक (Town Planners) भारत में आए और उन्होंने प्रान्तीय सरकारों को सुझाव दिए और कुछ मामलों में कुछ शहरों के लिए योजनाएं भी पेश कीं परन्तु इस ओर बहुत ही कम काम हुआ है। देश में कुछ बड़े शहरों में सुधार प्रत्यास (Improvement Trusts) काम कर रहे हैं और यद्यपि उनका मुख्य उद्देश्य इन नगरों के नियोजक में सहायता देना है। परन्तु उन द्वारा बहुत कम है।" इस समिति ने आगे चल कर फिर कहा है, "नगर नियोजन की तुलना में और भी कम ध्यान दिया गया। कई गांवों का अनियमित रूप में ऐसा विकास हुआ है कि उनमें सुधार करना नियोजन की योग्यता से बाहर है।"

1947 में भारत स्वतन्त्र हुआ परन्तु स्वतन्त्रता के साथ हमारी मातृभूमि का विभाजन हुआ जिसके कारण लाखों लोगों को पश्चिमी पंजाब तथा पूर्वी बंगाल से जो पाकिस्तान में शामिल किए गए, अपने घरों को छोड़कर भारत आना पड़ा। इन शरणार्थियों को फिर से बसाने के लिए एक बड़ी समस्या उत्पन्न हो गई। इस कार्य के लिए फिर फरीदाबाद जैसे कई नगरों की स्थापना की गई। स्वतन्त्रता के परचात् देश की आर्थिक तथा सामाजिक दशा सुधार करने, लोगों को रोजगार देने तथा उन आवश्यक आयातों (Imports) रोकने के लिए उद्योगीकरण (Industrialisation) की नीति को अपनाया गया। जिसके परिणामस्वरूप नगरीकरण (Urbanisation) में अत्यधिक वृद्धि हो गई। ऐसी स्थिति में नगरों के बढ़ते हुए वेग के फलस्वरूप नगरीकरण के दोषों को दूर करने के लिए नगर एवं ग्रामीण नियोजन की आवश्यकता को अनुभव किया गया।

1951 में देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के नियोजन को अपनाए जाने के साथ नगर एवं ग्रामीण नियोजन को भी राष्ट्रीय योजना के रूप में अपनाया गया। यद्यपि आरम्भ में पहली दो योजनाओं में इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया तथापि समय-समय पर इस ओर विशेष पग उठाए गए। सन् 1947 में विस्थापितों को बसाने की समस्या को हल करने के लिए एक

मन्त्रालय बनाया गया। गृहकार्य एवं वितरण का एक नया विभाग बनाया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में भारत सरकार ने एक राष्ट्र गृह कार्यक्रम (National Housing Programme) आरम्भ किया और पहली योजना में इस कार्यक्रम पर 38.5 करोड़ तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 120 करोड़ रुपये व्यय किए गए।

सन् 1955 में भारत सरकार ने नगर एवं ग्रामीण नियोजन के लिए एक स्कूल स्थापित किया ताकि ग्रामीण, शहरी तथा क्षेत्रीय नियोजन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर शिक्षा एवं प्रशिक्षण की सुविधाएं प्रदान की जा सकें। 1957 में केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य मन्त्रालय (Health Ministry) ने एक केन्द्रीय तथा शहरी नियोजन संगठन (Central Town Planning Organisation) की स्थापना की। इस का मुख्य क्षेत्र नगरीय नियोजन के मामलों के सम्बन्ध में राज्य सरकारों तथा स्थानीय संस्थाओं को परामर्श देना था। इसके अतिरिक्त,

1. दिल्ली के लिए मास्टर योजना (Master Plan for Delhi)
2. दुर्गापुर जैसे स्टील के कस्बों, दामोदार घाटी जैसे नदी घाटी क्षेत्रों तथा अन्य क्षेत्रीय नियोजन के विकास सम्बन्ध में परामर्श देने तथा सामान्य नगर एवं ग्रामीण नियोजन के सम्बन्ध में योजनाएं बनाने का काम सौंपा गया।

पंचवर्षीय योजनाओं में भी नगरीकरण (Urbanisation) के बढ़ते हुए वेग को देखकर एक ओर भी अधिक ध्यान दिया गया और यह स्वीकार किया गया कि देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के साथ नगरीकरण का होना स्वाभाविक है। इस योजना में ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में समान विकास बढ़े-बढ़े शहरों के लिए मास्टर योजनाएं बनाने, तथा औद्योगिक विकास वाले क्षेत्रों के विकास के लिए योजनाएं बनाने का कार्यक्रम रखा गया।

## **राज्य नियोजन बोर्ड (State Planning Board)**

1960 में Institute of Town Planners India द्वारा तैयार की गई नमूने की योजना पर आधारित Central Regional and Urban Planning Organisation ने Model Town and Country Planning Law बनाया। इस पर नगर एवं ग्रामीण नियोजन के राज्य मन्त्रियों की सभा (Conference of State Ministers for Town and Country Planning) में विचार किया गया। इस सभा ने इस पर विस्तृत रूप में विचार करने के लिए एक समिति बना दी। इस समिति ने इस बात पर बल दिया कि कोई राज्य व्यक्तिगत रूप में इस सामान्य समस्या को हल नहीं कर सकता। इस Model Legislation द्वारा सभी राज्यों को सामान्य नीति का ज्ञान हो जाएगा और वे अपनी-अपनी स्थानीय परिस्थितियों को समक्ष रखते हुए इसकी धाराओं के आधार पर अपनी नीति बनायेंगे और नगर एवं ग्रामीण नियोजन की ओर पग बढ़ायेंगे।

इस Model Law के अनुसार, राज्य स्तर पर राज्य नियोजन बोर्ड (State Planning Board), स्थानीय नियोजन सत्ता (Local Planning Authority) तथा मुख्य नगर नियोजक (Chief Town Planner) की स्थापना करने की व्यवस्था की गई है।

राज्य नियोजक बोर्ड (State Planning Board) के मुख्य कार्य निम्न प्रकार के होंगे-

1. सरकार को योजना सम्बन्धी मामलों में सलाह देना तथा दूसरे कार्य करना जो सरकार द्वारा उसे सौंपे जाएं।
2. स्थानीय नियोजन संस्थाओं को विकासशील योजनाएं बनाने में सलाह देना और उनका मार्ग दर्शन करना।
3. नियोजन कार्य विधि के सम्बन्ध में आंकड़े तथा अन्य साहित्य एकत्रित करना।
4. दूसरे कार्य करना जो इस एक्ट के अधीन करने के लिए दिए जाएं।

**स्थानीय नियोजन सत्ता (Local Planning Authority)** - स्थानीय शासन की संस्था के अतिरिक्त एक अलग स्थानीय नियोजन सत्ता की स्थापना की जाए जिस का एक अध्यक्ष, नगर नियोजन अधिकारी (Town Planning Officer) तथा अन्य तीन सदस्य राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए गए तथा कुछ स्थानीय शासन के प्रतिनिधि होते हैं। नगर नियोजन अधिकारी इस सचिव के रूप में कार्य करता है। इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं-

1. विकासशील योजनाओं को बनाना और इस और आवश्यक पग उठाना।

2. विकास से सम्बन्धित प्रार्थना-पत्रों पर विचार करना।
3. यदि विकास से सम्बन्धित प्रार्थनाओं को स्वीकृत किया गया हो तो विकास सम्बन्धी लागत का अनुमान लगाना।
4. विकास को करते समय यदि किसी का नुकसान हो जाए या किसी की भूमि लेनी हो तो उसका मुआवजा निश्चित करना।
5. अस्वीकृत विकास के विरुद्ध कार्यवाही करना।

इस की राज्य नियोजन बोर्ड तथा स्थानीय नियोजन सत्ता लगभग सभी राज्यों में नगर एवं ग्रामीण नियोजन का कार्य करने के लिए स्थापित किए जा चुके हैं।

## **नगर एवं ग्रामीण नियोजन संगठन** (Town and Country Planning Organisation)

सन् 1962 में केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय क्षेत्रीय एवं नगर नियोजन संगठन तथा नगर नियोजन संगठन को मिलाकर नगर एवं ग्रामीण नियोजन संगठन का निर्माण किया। यह राष्ट्रीय स्तर पर भौतिक नियोजन (Physical Planning) पर विचार करती है। यह केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय, परिवार कल्याण और शहरी विकास (Ministry of Health, Family Welfare Works and Urban Development) के अधीन कार्य करती है। इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं-

1. नगर एवं क्षेत्रीय नियोजन के सम्बन्ध में राष्ट्रीय योजनाएं बनाना और इन्हें पंचवर्षीय योजनाओं के भाग का रूप देना।
2. स्वीकृत योजनाओं तथा कार्यक्रमों को प्रभावशाली रूप से कार्यान्वित करना और इसके सम्बन्ध में तकनीकी सहायता देना और केन्द्रीय मन्त्रालयों, राज्य सरकारों और सार्वजनिक संस्थाओं (Public Undertakings) आदि को परामर्श देना।
3. केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों को नगर क्षेत्रों तथा क्षेत्रीय विकास के सम्बन्ध में योजनाएं बनाने में सहायता देना।
4. इस द्वारा दिल्ली विकास सत्ता (Delhi Development Authority) के लिए तैयार की गई दिल्ली मास्टर योजना (Delhi Master Plan) के क्षेत्र के अन्तर्गत विकासशील योजनाओं को तैयार करना और दिल्ली विकास सत्ता तथा इन योजनाओं से सम्बन्धित अन्य संस्थाओं को सामान्य नीति के बारे में परामर्श देना।
5. बहुत-सी विशेषज्ञ इकाइयों (Specialised Agencies) जैसे-Department of Tourism, The Atomic Energy Commission, Public Undertakings (Hindustan Photo Films Ltd., The Oil and Natural Gas Commission, The Damodar Valley Corporation etc.) को संयुक्त नियोजन (Integrated Planning), औद्योगिक नगरों के नियोजन एवं विकास, नियोजन स्तर (Planning Standard), नियोजन कार्यान्वयन (Plan Implementation) सम्बन्धी कार्यों में सहायता करना।
6. क्षेत्रीय विकास योजनाओं का अध्ययन करना।
7. नगरीय तथा क्षेत्रीय नियोजन के सामाजिक, आर्थिक तथा भौतिक पहलुओं के विषयों पर अनुसंधान करना।
8. देश में क्षेत्रीय एवं नगरीय विकास की दृष्टि से उद्योगिक विकास, औद्योगिक स्थिति तथा वितरण के क्षेत्र में अध्ययन करना।

नगर एवं ग्रामीण नियोजन संगठन के अतिरिक्त केन्द्रीय स्तर पर और भी कई संस्थाएं काम कर रही हैं।

## **योजना मन्त्रालय तथा योजना आयोग** (Planning Ministry and Planning Commission)

योजना आयोग मन्त्रालय भी इस ओर प्रगतिशील है। योजना आयोग इस मन्त्रालय के अन्तर्गत रखा गया है। योजना आयोग ने नगर नियोजन के कार्य के प्रशिक्षण के लिए एक खण्ड जिसे गृह निर्माण, नगर नियोजन तथा जल वितरण उपभाग (Construction, Economics, Housing, Town Planning and Water Supply Division) की स्थापना की है। यह उपभाग एक तकनीकी संस्था है, जो राष्ट्रीय स्तर पर नगर नियोजन के कार्यक्रमों पर कार्य करती है।



## **केन्द्रीय ग ह निर्माण तथा शहरी विकास निगम** (Central Housing Urban Development Corporation)

25 अप्रैल, 1970 को ग ह निर्माण के काम को तेजी से करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय ग ह निर्माण तथा शहरी विकास निगम की स्थापना की। आरम्भ में इस निगम की अधिकतम पूंजी 10 करोड़ रूपए निश्चित की गई थी परन्तु बाद में इसे 200 करोड़ रूपए करके इसका आवर्ती कोष (Revolving Fund) बनाने का निर्णय किया गया। इस निगम से ग ह निर्माण के कार्यों के लिए राज्य सरकारों, राज्य के ग ह निर्माण बोर्डों (State Housing Boards) तथा अन्य संस्थाओं, शहरी भूसम्पत्ति (Urban Estate) आदि की सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त यह निगम ग ह निर्माण के लिए आवश्यक समान बनाने वाले कारखानों को स्थापित करने में सहायता देता है। निगम अपनी ओर से कुछ अधीन नगरों (Settallite Towns) का भी निर्माण कर सकती है। अभी इस निगम ने महाराष्ट्र, मैसूर, गुजरात, तामिलनाडू, पश्चिमी बंगाल आदि राज्यों में ग ह निर्माण की लगभग 80 योजनाओं को स्वीकृत किया है तथा इन योजनाओं को 15 करोड़ रु. की राशि अनुदान तथा सहायता के रूप में दी है।

**क्षेत्रीय नियोजन (Regional Planning)** - आधुनिक काल में यह भी महसूस किया जाने लगा है कि नगर नियोजन को सफल बनाने के लिए क्षेत्रीय नियोजन को अपनाना आवश्यक है। वास्तव में नगर नियोजन क्षेत्रीय नियोजन पर आधारित है। इस दशा में बहुत से पग उठाए गए हैं। दिल्ली में इसके मास्टर प्लान (Master Plan) के अन्तर्गत दिल्ली के निकटवर्ती राज्यों के क्षेत्रों को इसमें शामिल करके कुछ रिंग नगर (Ring Town) बनाने का निर्णय इस ओर सर्वप्रथम पग है। परन्तु राज्यों के असहायों के कारण यह योजना असफल रही। इसके स्थान पर अब राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (National Capital Region) की योजना बनाई गई है। जिसमें दिल्ली की केन्द्र प्रशासित क्षेत्र, उत्तर प्रदेश के दो जिले (मेरठ और बुलन्द शहर), हरियाणा के दो जिले (गुड़गांव तथा रोहतक) एवं करनाल जिला की पानीपत तहसील तथा राजस्थान के जिला अलवर का कुछ क्षेत्र इसमें शामिल किया गया है। इस कार्य के लिए एक संवैधानिक बोर्ड जिसे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र योजना बोर्ड (National Capital Planning Board) कहते हैं, की स्थापना की गई है। इस बोर्ड का अध्यक्ष केन्द्रीय ग ह मन्त्री होता है तथा सम्बन्धित सभी राज्यों (उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान) के मुख्यमंत्री इसके सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त इस बोर्ड के 11 अन्य सदस्य होते हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता है। इस बोर्ड का मुख्य कार्य उपक्षेत्रीय योजनाएं बनाना है। बोर्ड के अपने वित्तीय साधन होते हैं। इस प्रकार महाराष्ट्र, मैसूर, तामिलनाडू तथा पश्चिमी बंगाल के राज्यों में वहां की राज्य सरकारों ने इस ओर कुछ कदम उठाए हैं। इन राज्यों में इस काम के लिए आवश्यक वैधानिक कार्य तथा क्षेत्रीय योजनाओं को तैयार करने के कामों में विशेष प्रगति हुई है। अन्य कई राज्यों में भी इस दशा में पग उठाए जा रहे हैं।

## **ग ह एवं नगर विकास के राज्य मन्त्रियों का नौवां सम्मेलन** (Ninth Conference of State Ministers of Housing and Urban Development)

यह सम्मेलन 17-19 दिसम्बर, सन् 1976 को देहली में केन्द्रीय संसदीय कार्यों के ग ह एवं कार्यमन्त्री श्री के. रघुमईया (K. Raghuramaiah - Union Minister for Parliamentary Affairs, Works and Housing) की अध्यक्षता में हुआ तथा इसमें निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं-

1. ग ह निर्माण की नीतियों तथा कार्यक्रमों का अध्ययन करने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग (National Commission) की स्थापना की जाए तथा राष्ट्रीय योजना में ग ह निर्माण तथा शहरी विकास को प्राथमिकता दी जाए। इस सम्मेलन में यह सुझाव दिया गया कि ऐसे आयोग की स्थापना करना छठी योजना (Sixth Plan) में ग ह निर्माण एवं आवास की समस्या की ओर अधिक ध्यान देने तथा वित्तीय साधनों की व्यवस्था के लिए अति आवश्यक है।
2. राज्यों में आवास से सम्बन्धित विभागों निकायों (Agencies) तथा अन्य संगठनों के काम में समन्वय करने और उन्हें विभिन्न वित्तीय संस्थाओं द्वारा सहायता दिलाने के लिए केन्द्रीय कार्य एवं ग ह निर्माण मन्त्रालय (Union Ministry of Works and Housing) द्वारा एक केन्द्रीय संस्था (Central Body) का निर्माण करना चाहिए। इस केन्द्रीय संस्था में वित्तीय संस्थाओं तथा राज्य सरकारों के प्रतिनिधि होने चाहिए। इस संस्था का मुख्य कार्य पर्याप्त साधनों तथा राज्यों की आवश्यकताओं का अध्ययन करना होगा तथा ऐसा सुझाव देना होगा जिनके आधार पर साधनों को उचित प्रकार से राज्यों में विभक्त किया जा सके।

3. ग्रामीण क्षेत्र में आवास के काम को तेजी से करने के लिए ग्रामीण ग ह-निर्माण एवं विकास निगम (Rural Housing and Development Corporation) की स्थापना करनी चाहिए।
4. ग ह निर्माण के काम के लिए आवश्यक सामग्री को सस्ते दामों पर प्राप्त करने के लिए Nation Building Development Corporation की स्थापना करनी चाहिए।
5. ग ह निर्माण के कार्यों की आवश्यकता को अनुभव करते हुए योजनाओं के साधनों का 10 प्रतिशत इस काम पर व्यय करना चाहिए।

## **राज्य स्तर पर नगर एवं ग्रामीण विकास नियोजन** (Town and Country Planning at State Level)

नगर एवं ग्रामीण विकास से सम्बन्धित कई प्रकार के कार्यक्रम राज्य स्तर पर भी कार्यान्वित किये गए हैं। वास्तव में स्थानीय शासन का विषय राज्य सूची का विषय होने के कारण नगर एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रम में लागू करने का उत्तरदायित्व राज्य सरकार पर होता है जो स्थानीय शासन संस्थाओं तथा अन्य निकायों द्वारा इसे कार्यान्वित करने का यत्न करती है। राज्य स्तर पर नगर एवं ग्रामीण नियोजन के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए राज्य नगर नियोजन बोर्ड (State Town Planning Board), स्थानीय नियोजन सत्ता (Local Planning Authority) तथा मुख्य नगर नियोजक (Chief Town Planning) जो कि राज्य सरकार के नगर नियोजन विभाग के मुख्य अधिकारी के रूप में काम करता है, की व्यवस्था की गई है।

**राज्य नगर नियोजन बोर्ड (State Town Planning Board)** - इस बोर्ड की स्थापना राज्य स्तर पर एक परामर्शदात्री संस्था के रूप में की जाती है। यह राज्य सरकार को नगर नियोजन के सम्बन्ध में योजनाएं बनाने के लिए तकनीकी सहायता तथा निर्देशन देता है और स्थानीय सत्ता द्वारा तैयार की गई योजनाओं के बारे में परामर्श देता है। इस का एक अध्यक्ष तथा 3 (तीन) से लेकर 13 तक सदस्य होते हैं जिन्हें राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है और राज्य सरकार ही उन्हें पद से हटा सकती है। मुख्य नगर नियोजक (Chief Town Planner) इस बोर्ड का पदेन सचिव (Ex-officio Secretary) होता है। राज्य नगर नियोजन बोर्ड के निम्नलिखित कार्य हैं-

1. राज्य सरकार को नगर नियोजन सम्बन्धी योजनाएं बनाने में परामर्श देना तथा दूसरे अन्य कार्य करना जो इसे राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर सौंपे जाएं।
2. विकास सम्बन्धी योजनाएं तैयार करने में स्थानीय संस्थाओं का मार्ग दर्शन, सहायता तथा निरीक्षण करना।
3. योजना निर्माण विधि के सम्बन्ध में आंकड़े इकट्ठे करना और लेख तथा गजट आदि प्रकाशित करना।
4. राज्य नगर नियोजन एक्ट के अधीन अन्य जो कार्य इसे सौंपे गए हों, करना।

**मुख्य नगर नियोजक (Chief Town Planner)** - इसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग की सहायता से की जाती है। इस पद पर प्रायः ग ह निर्माण के क्षेत्र में नियुक्त आर्चीटैक्ट को नियुक्त किया जाता है। उसकी सहायता के लिए एक उप मुख्य नगर नियोजक (Deputy Chief Town Planner) भी नियुक्त किया जाता है। डिवीजन के स्तर पर खंड नगर नियोजक (Divisional Town Planner) नियुक्त किए जाते हैं।

मुख्य नगर नियोजक के कार्य निम्न प्रकार हैं-

1. यह राज्य नगर नियोजन बोर्ड के सचिव के रूप में कार्य करता है।
2. राज्य सरकार को नगर नियोजन तथा नगर सुधार से सम्बन्धित योजनाएं बनाने में सहायता देना और तकनीकी परामर्श देना है।
3. वह स्थानीय संस्थाओं, नगरपालिकाओं, सुधार न्यासों (Improvement Trusts) तथा अन्य संस्थाओं द्वारा बनाई गई योजनाओं का निरीक्षण करता है और उनकी अनुमति देता है।
4. नगर नियोजन के सम्बन्ध में आंकड़े इकट्ठे करता है और राज्य सरकार की इस क्षेत्र में सहायता करता है।  
कुछ नगरों और राज्यों में इन योजनाओं को भिन्न-भिन्न संस्थाओं द्वारा साकार करने का प्रयास किया गया है-

लगभग सभी राज्यों में नगर एवं ग्रामीण विकास नियोजन के लिए राज्य सरकारों द्वारा राज्य नगर सुधार अधिनियम (Town Improvement Acts) पास किये गए हैं। इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए इन अधिनियमों के अन्तर्गत ग ह निर्माण बोर्ड (Housing Board), Urban Estate तथा अन्य निकाय कार्य कर रहे हैं। जिनका मुख्य उद्देश्य नगरों में नियोजन करके एक ऐसा वातावरण स्थापित करना है कि जिस से लोगों को स्वस्थ तथा मनोरंजक जीवन व्यतीत करने का सौभाग्य मिल सके और शहरों का विकास वैज्ञानिक ढंग से किया जा सके। कई बड़े-बड़े शहरों में नगर एवं ग्रामीण नियोजन के लिए विशेष संस्थाओं का निर्माण किया गया है। जैसे कलकत्ता में कलकत्ता मैट्रोपोलिटन नियोजन संगठन, 1961 (Calcutta Metropolitan Planning Organisation, 1961), बम्बई में बम्बई मैट्रोपोलिटन क्षेत्रीय नियोजन बोर्ड, 1967 (Bombay Metropolitan Regional Planning Board, 1967), पूना में पूना मैट्रोपोलिटन क्षेत्रीय नियोजन बोर्ड, 1967 (Poona Metropolitan Planning Board, 1967), दिल्ली में दिल्ली विकास प्राधिकरण (Delhi Development Authority) आदि संस्थाएं इस ओर बड़ा प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं।

केन्द्रीय सरकार ने 20 सूत्रीय आर्थिक तथा सामाजिक कार्यक्रम के अन्तर्गत भी नगर एवं ग्रामीण कार्यक्रम को लागू करने का प्रयास किया है और यह घोषणा की है कि स्थानीय संस्थाएं इस कार्यक्रम के अन्तर्गत नगरों का वैज्ञानिक विकास करें। इसी कार्यक्रम के अनुसार दिल्ली में दिल्ली विकास प्राधिकरण द्वारा लगभग 7 लाख लोगों को बसाने के लिए दिल्ली में 27 नई बस्तियों का निर्माण किया है ताकि निर्धन लोगों को साफ-सुथरा रहने का वातावरण मिल सके और शहरों में विद्यमान गन्दी बस्तियों (Slums) को समाप्त किया जा सके। इसी उद्देश्य से कई राज्यों में राज्य सरकारों द्वारा शहरों और गांवों में पुनर्विकास (Habitation) का काम शुरू किया गया है जैसे पंजाब में पटियाला नगर में यह काम शुरू किया गया है और अम तसर को पुनर्विकास (Habitation) करने का निर्णय किया गया है।

## **भारत में नगर नियोजन के मार्ग में बाधाएं** (Difficulties in the Way of Town Planning in India)

यद्यपि भारत में नगर एवं ग्रामीण नियोजन की ओर विशेष कदम उठाए गए हैं और इस क्षेत्र में काफी सफलता प्राप्त हुई है। परन्तु इसके मार्ग में बहुत से बाधाओं का सामना करना पड़ता है जिसके कारण आशाजनक सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। नगर नियोजन के मार्ग में मुख्य बाधाएं निम्न प्रकार हैं-

1. बड़े शहरों में शहर के विकास के लिए खाली क्षेत्र बहुत कम हैं और जो हैं वहां पर लोगों ने अनुचित ढंग से अवैध अधिकार (Unauthorised Occupation) किया हुआ है जिसे खाली करवाना बड़ा कठिन होता है।
2. नगरों की जनसंख्या इतनी अधिक तेज गति से बढ़ रही है कि उनके अनुपात में ग ह निर्माण नहीं हो पाता। ऐसी दशा में लोग जहां देखते हैं अपने घर बना लेते हैं ऐसा करते समय किसी प्रकार के नियोजन की ओर ध्यान नहीं देते।
3. हमारे भूमि प्राप्त करने (Acquire) की विधि बड़ी कठिन तथा लम्बी है जिसके कारण स्थानीय संस्थाओं को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिस का नगर नियोजन की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
4. नगरीय क्षेत्र में भूमि की कीमत इतनी अधिक बढ़ गई है कि स्थानीय संस्थाओं के इतने साधन नहीं होते हैं कि उसे प्राप्त (Acquire) करके उसका विकास कर सकें।
5. नगर नियोजन के लिए बहुत से धन की आवश्यकता होती है। परन्तु स्थानीय संस्थाएं जिन पर इसे लागू करने का उत्तरदायित्व होता है, की आय के साधन बहुत कम होते हैं। इसलिए इसे कुशलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं कर सकती।
6. राजनीतिक हस्तक्षेप का भी इस पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। कई बार जब कोई भूमि नगर विकास के लिए नगरपालिका या नगर सुधार प्रयास प्राप्त करना चाहे तो राजनीतिक प्रभाव के कारण नहीं कर सकते। भूमि के स्वामी राजनीतिक प्रभाव के कारण ऐसा होने नहीं देते और यदि देते भी हैं तो भूमि की कीमत बहुत अधिक लेते हैं।
7. नगर नियोजन के मार्ग में एक महत्वपूर्ण बाधा यह भी है कि स्थानीय स्तर पर इसे कई संस्थाओं द्वारा लागू किया जाता है। जैसा इस कार्य का उत्तरदायित्व नगरपालिका, नगर सुधार प्रन्यास (Town Improvement Trust), ग ह निर्माण बोर्ड (Housing Board), नगर अधिराज्य (Urban Estate) आदि को सौंपा गया है जिनमें कोई तालमेल नहीं होता। इस तालमेल के अभाव के कारण कई बार दोहरापन (Overlapping) हो जाता है इन संस्थाओं में परस्पर गतिरोध उत्पन्न हो जाता है जिसका इस कार्यक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव होता है।

## अध्याय-32

# हरियाणा नगर विकास

## (Haryana Urban Development Authority)

### हरियाणा नगर विकास प्राधिकरण

#### Haryana Urban Development Authority (HUDA)

हरियाणा नगर विकास प्राधिकरण की स्थापना में हरियाणा राज्य में नगरीय विकास सम्बन्धी कार्यों को करने हेतु हरियाणा सरकार द्वारा 1977 की गयी थी। यह एक संविधिक निकाय है। विकास कार्य हेतु इसे भूमि एवं अन्य सम्पत्ति को क्रय, अंतरण, विनिमय, किराये प्रबन्ध नियोजन, विकास व विक्रय द्वारा आवासीय, औद्योगिक, संस्थागत, व्यापारिक एवं अन्य कार्यों हेतु अधिग्रहण करने एवं अभियांत्रिकी, खनन एवं अन्य क्रियाएँ करने तथा जल आपूर्ति मल निकास एवं पर्यावरण नियंत्रण आदि से सम्बन्धित कार्यों को निष्पादित करने का अधिकार है।

#### प्रशासकीय संगठन

##### (Administrative Organisation)

हरियाणा नगर विकास प्राधिकरण का अध्यक्ष मुख्यमंत्री, इसका उपाध्यक्ष हरियाणा सरकार मुख्य सचिव एवं एक वरिष्ठ आई. ए. एस. अधिकारी इसका मुख्य प्रशासक तथा कुछ सदस्य, आयुक्त नगर एवं देहात नियोजन सहित होते हैं। इसका मुख्य कार्यालय पंचकुला में है। यह भूमि अधिग्रहण, अभियांत्रिकी, नगर नियोजन एवं वास्तुकला, विद्युत, विधिक एवं प्रबोधन, तकनीकी, चौकसी एवं सामान्य प्रशासन, लेखा एवं लेखा परीक्षण सम्बन्धी विभिन्न प्रभागों/विंगों में विभक्त किया गया है। गुडगांवा, फरीदाबाद, पंचकुला में इसके प्रशासक नियुक्ति किये गये हैं जो अपने-अपने क्षेत्राधिकारों में विभिन्न नगरीय सम्पदाओं के सम्पदा अधिकारियों के ऊपर नियंत्रण एवं पर्ववेक्षण रखते हैं।

#### हुडा की विकास गतिविधियाँ

##### (Development Activities of HUDA)

- (i) **नगर सम्पदा (Urban Estates)** - हुडा ने राज्य के सभी जिला मुख्यालयों, उपमंडली मुख्यालयों एवं अन्य क्षेत्रों 21 नगरों में अम्बाला, पंचकुला, जगाधरी, शाहबाद, कुरुक्षेत्र, कैथल करनाल, पानीपात, सोनीपत रोहतक, बहादुरगढ़, भिवानी, जीद, हिसार, सिरसा, गुडगाँव, रिवाड़ी, रोज कमियों, हाथीन, धारुहेरा, एवं फरीदाबाद/नगरी सम्पदाओं की स्थापना की है। इस प्रकार हरियाणा नगर विकास प्राधिकरण ने हरियाणा राज्य के लगभग सभी भागों में विकास गतिविधियों को आरम्भ किया हुआ है।
- (ii) **नगर विकास से घिरे देहातों का विकास (Development of Villages Encircled by Urban Development)** - यह देखा गया है कि देहात नगर विकास से घिरे हुये हैं जो अनियोजित बस्तियां हैं एवं जहाँ नगरीय जीवन की सभी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है। अतएव हुडा ने ऐसे देहातों के चरणबद्ध विकास को अपने हाथों में लिया है जिसके लिये वित्त/विकास लागत परियोजना के बाह्य विकास लागत तथा सैक्टर/जिनमें यह अवस्थित हैं, के आंतरिक विकास लागत का भाग समझे जाते हैं।
- (iii) **मंडी टाउनशिप क्षेत्रों का विकास (Development of Mandi Township Areas)** - विभिन्न मंडी नागरियों का विकास पहिले बस्ती विभाग द्वारा किया जाता था। 1987 में इस विभाग के बन्द हो जाने पर 27 मंडी नगरियों को

दो भागों अर्थात् (i) मंडी भाग एवं (ii) नगरी भाग में विभक्त किया गया। मंडी भाग में सम्मिलित क्षेत्रों को हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड को अंतरित कर दिया गया जो इनके विकास एवं देखभाल के लिये उत्तरदायी है तथा नगरी भाग हुडा को अंतरित किया गया जो अविकसित भूमि एवं रिक्त स्थलों के विकास के लिये उत्तरदायी था। इसके अतिरिक्त, विक्रित स्थलों से सम्बन्धित दायित्व भी इसको अंतरित किया गया। ऐसे विक्रित स्थलों से सम्बन्धित दायित्व भी इसको अंतरित किया गया। ऐसे विक्रित क्षेत्रों का पूर्ण विकास नहीं हुआ था, अर्थात् आधारिक सुविधाएँ यथा जल आपूर्ति, मल निकास, विद्युतीकरण एवं मार्गों पर प्रकाश आदि पर्याप्त नहीं थी, इन क्षेत्रों में ऐसी सुविधाओं की पूर्ति अब हुडा द्वारा की जानी है।

(iv) **सरकारी फालतू भूमि का विकास एवं विक्रय (Development and Sale of Government Surplus Lands)** - 1987-88 में हरियाणा सरकार ने अपने संसाधनों की वृद्धि करने हेतु फालतू सरकारी भूमि को बेचने का निर्णय किया था ताकि इससे प्राप्त धनराशि को राज्य के नागरिकों के कल्याण हेतु विभिन्न स्कीमों/परियोजनाओं के क्रियान्वन में प्रयुक्त किया जा सके। हुडा को ऐसी फालतू भूमि को नगर/स्थान विशेष की आवश्यकताओं के अनुसार आवासीय/व्यापारिक एवं औद्योगिक समूहों को उत्कीर्ण करके बेचने का दायित्व दिया गया। ऐसे स्थलों को नीलामी द्वारा विक्रय किया जाना तथा इन्हें सभी अपेक्षित सुविधाएँ यथा जल आपूर्ति, मल निकास वर्षा जल निकास, विद्युतीकरण, मार्ग प्रकाश एवं बागवानी आदि दी जानी थी।

(v) **अन्य विकास गतिविधियाँ (Other Development Activities)** - हुडा अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नगरी सम्पदाओं में सैक्टरों को पाँच वर्ष पश्चात् नगरपालिका समिति को अंतरित किया जाना होता है। परन्तु देखा गया है कि \*\*\*\*\* स्थानीय निकाय निर्धारित अवधि की समाप्ति पर सैक्टरों को लेने हेतु तैयार नहीं होते। इससे हुडा के ऊपर सड़कों की मरम्मत एवं अनिवार्य सेवाओं यथा जल आपूर्ति, मल निकास, आदि से सम्बन्धित अधिक भार पड़ता है। कुछ नगरीय सम्पदाओं में सड़कें पूर्णतया टूट चुकी हैं जिनको केवल थगली लगाकर ठीक नहीं किया जा सकता। इन्हें विशेष मरम्मत करने आवश्यकता है जिसके लिये अपार धनराशि की आवश्यकता है। हुडा में जहाँ 80% आवासों का निर्माण हो गया है, वहाँ सड़कों की मरम्मत करने का निर्णय लिया है।

नगर सम्पदाओं में सामुदायिक भवनों यथा सामुदायिक केन्द्रों, झंझधर, औषधालयों, प्राथमिक विद्यालयों, पुलिस चौकी आदि के निर्माण तथा बागवानी, कार्यों, हरित क्षेत्रों यथा हरित पट्टियों, उद्यानों, सड़क किनारे व क्षारोपण आदि के विकास की भी आवश्यकता है। इन सभी आवश्यकताओं को हुडा द्वारा शीघ्रातिशीघ्र पूरा किया जाना चाहिये।

(vi) **हुडा की उपलब्धियाँ (Achievements of HUDA)** - वर्ष 1990-91 हुडा ने 28,357,20 लाख व्यय करने थे जो राशि हुडा के इतिहास में सर्वाधिक थी। सभी प्रकार की वित्तीय विवशताओं एवं बाधाओं के बावजूद हुडा ने गत 12 वर्षों में अपनी व्यापारिक गतिविधियों में लगभग 45 गुणा वृद्धि की है। 1977-78 में 645.05 लाख रूपयों के साधारण व्यय से यह व्यय 1990-91 में 28,357,20 लाख हो गया है। 12 हुडा का बजट तैयार करते समय, सर्वाधिक ध्यान नगर सम्पदाओं में नये क्षेत्रों के अधिग्रहण की ओर दिया जाता है ताकि नगरीय जनसंख्या की बढ़ती हुयी माँग को पूरा करने हेतु जनता को विकसित स्थल आवंटित किये जा सकें। कुल व्यय का 60% नये क्षेत्रों के अधिग्रहण हेतु, 20 प्रतिशत विकासकार्यों को पूर्ण करने हेतु एवं अवशेष वर्तमान दायित्वों को पूरा करने के लिये रखा जाता है। न्यूनतम (2 प्रतिशत से अधिक नहीं) प्रशासकीय व्यय के लिये रखा जाता है। विभिन्न विकास गतिविधियों के लिये प्रावधित निधि से ज्ञात होता है कि प्राधिकरण ने अपना सम्पूर्ण ध्यान नगरीय क्षेत्रों के शीघ्र एवं नियोजित विकास की ओर केन्द्रित कर रखा है। इसने हरियाणा के नगरीय सम्पदाओं में नागरिकों के जीवन को सुखमय बनाने हेतु विभिन्न सुविधाओं की अधिकतम व्यवस्था की है। हुडा ने राज्य के लगभग सभी भागों में विकास गतिविधियों को आरम्भ किया है एवं अब तक सामान्य जनता को सरल किशतों पर एक लाख से अधिक आवासीय स्थल आवंटित किये हैं।

हुडा की उपरोक्त उपलब्धियों को दृष्टि में रखते हुये, इसे जनता की सेवा में नगरीय विकास का उत्प्रेरक नामित किया जा सकता है। जिसके माध्यम से जनता को इसकी विभिन्न गतिविधियों से परिचित करवाया जाता है।

अपनी प्रशंसनीय उपलब्धियों के बावजूद, हुडा की अनेक बिंदुओं पर आलोचना की जाती है। आरोप लगाया जाता है कि इसने गत कुछ वर्षों में ही स्थलों का मूल्य चार पाँच गुणा बढ़ा दिया है। द्वितीय, आवंटियों को स्थलों का कब्जा

अनेक वर्षों तक नहीं दिया जाता, बावजूद इसके कि उन्होंने सभी किशतों का भुगतान कर दिया है। इससे निराशा का जन्म होता है जिसे स्थलों को शीघ्रातिशीघ्र उत्कीर्ण करके एवं इनका विकास करके दूर किया जा सकता है। त तीय, सड़कों के निर्माण जल आपूर्ति, मल निकास, विद्युतीकरण सम्बन्धी विकास कार्यों को विभिन्न सैक्टरों जहाँ अनेक वर्ष पूर्व स्थल आवंटित कर दिये गये थे आरम्भ नहीं किया जाता, इन्हें पूर्ण करने की बात तो दूर है। इसका कारण हुड़ा के पास वित्त का अभाव हो सकता है। परन्तु नागरिकों को उपरोक्त सुविधाएँ प्राप्त करने का अधिकार है इससे पूर्व कि वे अपने आवासीय/औद्योगिक स्थलों पर निर्माण कार्य प्रारम्भ कर सकें। अतएव हुड़ा को अपना यह दायित्व पूरा करने में देरी नहीं करनी चाहिये। चतुर्थ, निर्माण कार्य में प्रयुक्त सामग्री मानक स्तर की नहीं होती। हुड़ा के चौकसी विभाग को इस बारे में सतर्क रहने की आवश्यकता है। पाँचवे, अनिवार्य सेवाओं एवं पर्यावरण की उचित देखभाल न किये जाने के बारे में शिकायत है। हुड़ा इस शिकायत से परिचित है एवं इसे दूर करने हेतु भरसक प्रयत्न कर रहा है। छठे, ऐसी भूमि जो मुकदमेबाजी का विषय बन गयी है, काटे गये स्थलों के आवंटियों को वैकल्पिक स्थल प्रदान किये जाने चाहिये क्योंकि न्यायालय के निर्णय में अनेक वर्ष लग सकते हैं एवं तब तक आवंटियों को स्थलों से वंचित रखना न्याययुक्त नहीं है। अंतिम हुड़ा के विभिन्न कार्यालयों, विशेषतया सम्पदा कार्यालयों में भ्रष्टाचार व्याप्त है जहाँ बिना रिश्वत के भवन निर्माण नक्शों को अनुमोदित नहीं किया जाता एवं अधिकार प्रमाणपत्र जारी नहीं किये जाते। हुड़ा अधिकारियों को इस ओर ध्यान देना चाहिये कि जनता को अनावश्यक तंग न किया जाये एवं उन्हें ऐसी सुविधाएँ जिनके वे पात्र हैं स्वयंमेव अधिकार रूप में मिलनी चाहिये।

## निष्कर्ष

### (Conclusion)

यह देखा गया है कि विकास प्राधिकरणों ने अवस्थित निर्मित क्षेत्रों के भावी विकास की योजना बनाने से स्वयं को दूर रखा है एवं नये क्षेत्रों के नियोजन एवं विकास की ओर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित रखा है इससे नगरों के प्राचीन भागों एवं नयी वस्तियों के मध्य संरचनात्मक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दरार उत्पन्न हो गयी है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि विकास प्राधिकरणों ने प्राचीन एवं नवीन वस्तियों के मध्य माध्युय उत्पन्न करने के स्थान पर दोष पूर्ण नियोजन उपागम द्वारा नगरीय संरचना में द्वैधता को जन्म दिया है। स्वयं को नगर पालिकाओं से पथक् रखते हुये परन्तु स्थानीय निकायों की तुलना में अधिक संसाधनों की उपलब्धता के कारण, विकास प्राधिकरणों को नगरपालिकाओं के विरोध का पात्र बनना पड़ा है।

योजना आयोग द्वारा 1883 में स्थापित कार्य दल ने स्थानीय निकायों को सशक्त बनाने हेतु सुझाव दिया था कि नगरिय विकास प्राधिकरण का नगरपालिका प्रणाली में विलय कर दिया जाये। अधिकांशतया, सभी राज्य सरकारों एवं केन्द्रीय सरकार का विचार रहा है कि स्थानीय निकायों को प्रकार्यात्मक एजेन्सियों एवं विकास प्राधिकरणों जो निर्वाचित नहीं होते अपितु सरकार के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी हैं द्वारा पूरक बनाया जाना है न कि उनको समाप्त किया जाना है।

राष्ट्रीय नगरीकरण आयोग ने प्रादेशिक नियोजन प्राधिकरणों की स्थापना का सुझाव दिया है जिसकी शासकीय परिषद् में सम्बन्धित प्रदेश के अन्दर अवस्थित नगर निगमों एवं नगरपालिका के प्रतिनिधि होंगे; इसका मुख्य कार्यकारी राज्य सरकार द्वारा नियुक्त होगा। शासकीय परिषद् में नगर निकायों के प्रतिनिधि सम्मिलित होने के कारण इसके नियोजन सम्बन्धी निर्णयों में सम्बन्धित स्थानीय निकायों की भागेदारी के तत्व का समावेश होगा। प्रादेशिक नियोजन प्राधिकरण के पास योजना निर्माण एवं इसके क्रियान्वन के मूल्यांकन एवं प्रबोधन सम्बन्धी व्यापक अधिकार होंगे परन्तु यह क्रियान्वयन अभिकरण नहीं होगा। यह कार्य स्थानीय निकायों को दिया जाना चाहिये। आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि जल आपूर्ति एवं मल निकास हेतु समान प्रकार की व्यवस्था की जा सकती है अथवा जल के निर्माण, जल के शुद्धिकरण एवं जल वितरण की मुख्य नलकों को बिछाने का कार्य राज्य के जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग के सुपुर्द कर दिया जाये तथा जल के आंतरिक वितरण का कार्य नगर निगम अथवा नगरपालिका का उत्तरदायित्व हो। इसके अतिरिक्त, अन्य कोई पथक् विकास प्राधिकरण अथवा प्रकार्यात्मक संगठन नहीं होने चाहिये। यदि कोई अवस्थित है तो उनका उपयुक्त नगरपालिका अथवा नगर निगमों में विलय कर दिया जाना चाहिये।

## अध्याय-33

# जिला ग्रामीण विकास अभिकरण

## (District Rural Development Agency)

हरियाणा में जिला स्तर पर ग्रामीण तथा शहरी लोगों के विकास के लिए तथा उनको रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की स्थापना की गई है।

प्रत्येक जिले में जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की स्थापना का उद्देश्य जिले में जिला परिषद् के माध्यम से केन्द्रीय तथा राज्य स्तर की विभिन्न विकास योजनाओं को क्रियान्वित करना तथा जनता को इन योजनाओं के बारे में आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराना है।

पहले अभिकरण का प्रशासनिक अध्यक्ष अतिरिक्त जिला कलेक्टर (विकास) हुआ करता था, लेकिन इसका प्रशासनिक अध्यक्ष जिला परिषद् अध्यक्ष, जिला प्रमुख को बनाया है। अतिरिक्त कलेक्टर इसका कार्यकारी सहयोगी होगा।

### जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की प्रबन्ध समिति या संगठन (Organisation of DRDA)

इस अभिकरण में जिले के सभी विधायक एवं संसद सदस्य तथा विभिन्न विकास विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी शामिल होते हैं दो भूतपूर्व एम. पी., एम. एल. ए. वर्णमालानुसार इसका सदस्य होता है तथा कम से कम 1/2 पंचायत समिति सभापति (वर्णमालानुसार) एक वर्ष के लिए जिनमें एक महिला एवं एक अनुसूचित जाति से सम्बन्धित दो सदस्य होते हैं जिला परिषद् की स्थायी समिति का सभापति, जिला मजिस्ट्रेट, मुख्य कार्यपालिका अधिकारी, कार्यकारी निदेशक, जिले के सहकारी बैंक का मुखिया, जिला के प्रमुख बैंक अधिकारी, परिवार कल्याण प्रोग्राम के जिला अधिकारी, जिला कृषि अधिकारी, जिला पशु चिकित्सक, जिला मत्स्य अधिकारी, जिला रोजगार अधिकारी, आई. आर. डी. प्रोजेक्ट अधिकारी, जिला जंगल अधिकारी एस. सी. / एस. टी. वित्त अधिकारी, जिला आपूर्ति एवं सप्लाई अधिकारी, DRDA के सभापति द्वारा मनोनीत एक महिला, लैंड विकास बैंक का अधिकारी, जिला दुग्ध संघ का मनोनीत प्रतिनिधि कमजोर वर्ग के दो सदस्य जिनमें से एक एस. सी. / एस. टी सदस्य हैं। एक ग्रामीण महिला प्रतिनिधि, भी शामिल होते हैं।

कार्य के लिए कलेक्टर के प्रति उत्तरदायी होगा,

सहायक परियोजना अधिकारी दो या तीन परियोजना अधिकारी होंगे जिनका कार्य जिले में विभिन्न प्रोग्रामों से होगा। इसके साथ ही एक महिला APO होगी जोकि ग्रामीण क्षेत्र में महिला एवं बाल कल्याण के प्रोग्राम को देखेगी।

### Planning Team

यह DRDA का एक महत्वपूर्ण भाग है।

इस Team में एकत्र, ग्रामीण प्रशासन, अर्थशास्त्र/सांख्यिकी में विशेषज्ञ होंगे यह प्रशासकीय संगठन अभिकरण प्रोजेक्ट के वास्तविक निर्माण और उनके कार्यान्विति और कार्यान्विति के मूल्यांकन का कार्य नहीं कर सकती इस कार्य के लिए एक छोटी संस्था की आवश्यकता है जो विकासवादी प्रोग्राम के नियोजन एवं कार्यान्वयन में दक्ष हो। भारत सरकार ने DRDA के प्रशासकीय संगठन के लिए निम्न नमूने सुझाए हैं। कलेक्टर/डिप्टी कमिश्नर/डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट, प्रोजेक्ट प्रशासन का सभापति

होगा। परियोजना अधिकारी एक उच्च अधिकारी होगा और DRDA की कार्यवाहियों में समन्वय स्थापित करेगा यह कार्य कलैक्टर को मार्गदर्शन में होगा। यह अधिकारी अपने DRDA की सहायतार्थ एक DRDA के अध्यक्ष को कार्यकारी समिति गठित करने का अधिकार हैं। क्योंकि DRDA एक बड़ी संस्था है और सभी सदस्यों की प्रायः बैठक सम्भव नहीं है। यह सुझाव दिया गया है कार्यकारी समिति के सभी जिला स्तरीय अधिकारी एवं अन्य आवश्यक अधिकारी जो कि प्रोग्राम के नियोजन एवं कार्यान्वित के लिए आवश्यक हों, शामिल किए जा सकते हैं।

### Staffing Pattern:

Governing body और कार्यकारी समिति प्रोग्राम एवं प्रोजेक्ट्स के नियोजन एवं कार्यान्वित के लिए विस्तृत नीति की रूपरेखा तैयार करती हैं। यह इकाई जिले के लिए एक Perspective योजना तैयार करेगी जो कि विस्तृत प्रोग्राम के निर्माण का आधार होगी।

### Monitoring Cell:

IRDP और सम्बन्धित प्रोग्राम के Project और प्रोग्राम के विकास के लिए Monitoring अत्यधिक आवश्यक है।

इस इकाई में एक APO (monitoring) और दो पर्यवेक्षक (Investigators) होने चाहिए तथा साथ ही कुछ लिपिकीय (Clarial) सहायता भी दी जानी चाहिए।

Accounting Wings: IRDP एवं अन्य प्रोग्रामों के लिए DRDA के रास्ते बहुत सा धन गुजरता है कार्यालय के upkeep के लिए लेखे रखे जाते हैं जिस के लिए। लेखा अधिकारी एवं तीन लेखाकार भी होते हैं:

House Keeping Activities :- कार्यालय मामलो के लिए एक ऑफिस प्रबन्धक/सुपरिटेण्डेंट की व्यवस्था होती है। तथा एक मुख्य लिपिक, 4 एल. डी. सी., 2 चालक, 1 या दो चौकीदार, 3 या 4 चपरासी इत्यादि होते हैं। यही Staffing योजना भारत सरकार द्वारा सुझाई गई थी ताकि DRDA के तहत IRDP प्रोग्रामों पर होनेवाले धन का खर्च एक भली प्रकार तैयार भी गई प्रत्यक्ष योजना के अनुसार हो सके तथा जिसके कार्यान्वयन का निरीक्षण भी किया जा सके। राज्य सरकार इस Staffing Plan को अपना ले इसके लिए केन्द्रीय सरकार ने इन पदों पर होनेवाले खर्च को DRDA को आवंटित धन में से स्वीकार किया गया जो कि कुल धन का केवल 7½% तक होना चाहिए।

राज्य सरकारों की मांग पर इसे 10% तक बढ़ा दिया गया।

कार्य Function : DRDA जिले में प्रोग्रामों के नियोजन कार्यान्वयन, अनुश्रवण एवं मूल्यांकन के लिए उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त भी कई कार्य इस संस्था के हैं:

1. जिला एवं ब्लॉक स्तरीय संस्थाओं को प्रोग्रामों के आधारभूत Parameters के विषय में एवं अनिवार्यताओं से सूचित करना एवं और सभी द्वारा कार्यों का किया जाना।
2. विभिन्न योजनाओं में समन्वय रखना तथा विभिन्न ब्लॉक स्तरीय योजनाओं से जिला योजना तैयार करना।
3. प्रोग्राम की प्रभाविकता हेतु मूल्यांकन एवं सर्वेक्षण।
4. अर्न्तविभागीय समन्वय बनाए रखना।
5. प्रोग्रामों के तहत प्राप्त सफलताओं का प्रचार।
6. प्रोग्रामों के विषय में जानकारी निर्माण।
7. राज्य सरकारों को सामाजिक रिपोर्ट भेजना।

Functions of Block Level Agencies:- निम्न कार्यों के लिए ब्लॉक ही बेसिक इकाई हैं।

- (1) Perspective और वार्षिक योजना तैयार करना।
- (2) स्वीकृत योजना के अनुसार प्रोग्राम का कार्यान्वित।



## (3) प्रोग्राम के प्रभाव के विषय में सूचना देना।

Block Level Staffing :- ब्लॉक स्तर पर 1 ब्लॉक विकास अधिकारी (बी. डी. ओ.), 8 प्रसार अधिकारी, 2 ग्रामसेवक, 1 योजना सहायक, 1 स्टोर कीपर कम अकाउंटेंट, 1 वरिष्ठ लिपिक, 1 टाइपिस्ट, 1 चालक और चपरासी होंगे।

1981 में ग्रामीण विकास मंत्रालय ब्लॉक लेवल स्टाफिंग में कई कमियां अनुभव भी गईं तथा इसके सशक्तिकरण के लिए 50% खर्च वहन करने की स्वीकृति दी। और अधिकांश राज्यों ने इस सहायता से लाभ उठाने का फैसला किया।

समन्वय (Coordination) :- ब्लॉक स्तरीय अधिकारियों में समन्वय का अभाव पाया गया। अधिकांश ब्लॉक स्तरीय प्रसार अधिकारी मार्गदर्शन के लिए अपने विभागीय अधिकारियों की ओर देखते हैं तथा IRDP एवं सम्बन्धित प्रोग्रामों के प्रति निष्ठा एवं समन्वय का अभाव पाया गया।

High Turn over of the Project Officer: परियोजना अधिकारी आमतौर पर बदलते रहते हैं। एक परियोजना अधिकारी का इन Programmes की प्रक्रिया एवं कार्यान्विति को समझने में कुछ समय लगता है अगर उनका शीघ्र ही स्थानान्तरण कर दिया जाता है तो प्रोग्राम के विषय में प्राप्त उनका अनुभव बेकार जाएगा। कुछ राज्यों में तो यह स्थानान्तरण की प्रक्रिया तीन वर्ष के अल्प काल में 8 से 10 बार पाई गई। मुश्किल से ही कई उदाहरण हैं या जहाँ से अधिकारी 2 या 3 वर्ष तक रहते हैं अधिकांश इस पद वरन् एक वर्ष सभ्यी काम रह पाते हैं प्रोग्राम के नियोजन एवं कार्यान्वित में सुधार हेतु आवश्यक है कि DRDA के प्रोजेक्ट अधिकारी सहित कुछ स्टाफ सदस्य लम्बे समय तक पद पर बने रहे।

इस हेतु ब्लॉक स्तर पर ब्लॉक विकास अधिकारी से एक मुख्य समन्वयकर्ता की भूमिका एवं योजना के प्रभावी ढंग से निर्माण एवं कार्यान्विति की अपेक्षा की जाती है जिसकी सहायता हेतु परियोजना अधिकारी होते हैं इसके लिए महिला प्रोग्राम के लिए एक प्रसार अधिकारी होना चाहिए। ब्लॉक टीम में 7 से 8 प्रसार अधिकारी तथा 10 ब्लॉक स्तरीय कार्यान्विति होने चाहिए। बड़े ब्लॉक में संयुक्त बी. डी. ओ भी नियुक्त किया जा सकता है महिला लाभार्थियों की संख्या की दृष्टि से 2 महिला ब्लॉक स्तरीय कार्यान्वित भी हो सकते हैं।

**कार्यशैली****(Modalities of the DRDAs)**

DRDAs के कार्य का अध्ययन 1983-84 में 'Programme Evaluation Organisation' द्वारा किया गया था। प्रोग्राम कुछ समय से ही आरम्भ हुआ था, PEO ने DRDAs की कार्यशैली के बारे में कई सुझाव दिए जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:-

1. State Level Coordination: अधिकांश राज्य सरकारों ने राज्य स्तरीय समन्वय समितियाँ स्थापित की थी जिनकी बैठक आमतौर पर होती थी लेकिन इनका संगठन समुचित नहीं था PGO का सुझाव था कि एक बहु-अनुशासनीय टीम (Multi-Disciplinary Team) राज्य स्तर पर गठित की जाए। जिसका अनुकरण गुजरात एवं राजस्थान में किया गया।
2. Training of the Functionaries: सम्पूर्ण प्रक्रिया में प्रशिक्षण का क्षेत्र सबसे कमजोर पाया गया केवल 1/3 परियोजना अधिकारी, 1/5 सहायक परियोजना अधिकारी 1/6 अकाउंटेंट्स ऑफिसर ही कई प्रशिक्षण ले पाते हैं।

**प्रचलित प्रोग्राम में एकीकरण****(Integration with on going programmes:)**

विभागीय प्रोग्रामों के साथ IRDP एवं Alted प्रोग्रामों का एकीकरण नहीं हो पाता। कुछ ब्लॉक में तो सही वार्षिक कार्य नियोजन भी तैयार नहीं किया जाता। नियोजन केवल धन के आवंटन तक सीमित होता है। कुछ मामलों में तो आर्थिक मुद्दे, निवेश जरूरतें एवं आवश्यक संरचनात्मक दोनों तक की पहचान नहीं की जाती। इसका कारण विभिन्न विभागों में समन्वय का अभाव है। लेकिन सबसे बड़ा कारण अपर्याप्त विशेषज्ञता का है।

जिला विकास अभिकरणों द्वारा शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के लिए सबसे मुख्य निम्नलिखित योजनाएँ एवं कार्यक्रम क्रियान्वित किए जा रहे हैं-

1. एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम।
2. ट्राइसेम योजना।
3. जवाहर रोजगार योजना।
4. इन्दिरा आवास योजना।
5. अपना गाँव अपना काम योजना।
6. ग्रामीण महिला एवं बाल विकास योजना (द्वाकरा)।
7. मैसिव योजना।
8. बन्धक श्रमिक योजना।
9. बायो गैस योजना।
10. बत्तीस जिले बत्तीस काम योजना।
11. सुनिश्चित रोजगार योजना।
12. उन्नत एवं आधुनिक औजारों का वितरण।
13. अनुसूचित जाति के ग्रामीण निर्धनतम व्यक्तियों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ।
14. अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ।
15. जिला परिषदों की विकास योजनाएँ।

इस प्रकार DRDA विभिन्न राज्यों में प्रायः निम्न कार्यों की पूर्ति करता है।

1. प्रत्येक ब्लॉक में निर्धन परिवारों की पहचान
2. इन परिवारों के गरीबी रेखा से उपर आने के लिए स्कीम तैयार करना
3. वित्तीय सहायता प्रदान (सब्सिडी एवं ऋण के रूप में) करना।
4. स्कीम के कार्यान्विति के लिए शिक्षण कार्य
5. प्रत्येक ब्लॉक के विकास के लिए एक विस्तृत योजना निर्माण

कार्य:- एस. एल. कौशिक एवं एस. बाला के अनुसार कई क्षेत्रों में इसका कार्य प्रभावी एवं सराहनीय हैं जैसे लक्ष्य प्राप्ति, सब्सिडी, ऋण वितरण, अनुसूचित जाति एवं कबिलों के सम्बन्ध में कार्य।

DRDA की सफलता के मार्ग में कुछ बाधाएँ हैं जैसे:

1. प्रशिक्षित स्टाफ का अभाव
2. कार्मिकों में रूचि, प्रतिबद्धता, निष्ठा का अभाव, और
3. सही नियोजन का अभाव।

DRDA की सफलता के लिए कुछ आवश्यक उपाय:

1. विभिन्न प्रोग्रामों के विषय में ग्रामीण जनता को प्रोत्साहित एवं शिक्षित करने की आवश्यकता।
2. ग्रामीण औद्योगिक प्रतिभा के आधुनिकीकरण की आवश्यकता।
3. ग्रामीण एवं शहरी समाज के मध्य अन्तर को कम करना।
4. ग्रामीण समाज को संगठित करने की आवश्यकता।

5. ग्रामीण परिवार के आकार को सीमित करने की आवश्यकता।
6. DRDA के कार्मिकों में निष्ठा, कुशलता एवं प्रतिबद्धता की आवश्यकता।
7. ग्रामीण लोगों की सक्रिय संलग्नता एवं सहभागिता
8. स्कूल, औषधालय, ग ह, कुएँ, सिंचाई के साधनों की आवश्यकता ताकि रोजगार एवं उत्तम जीवन की प्राप्ति हो सके।
9. विभिन्न विभागों जैसे कृषि, सामुदायिक विकास, पशुपालन, मारकेटिंग, विद्युत, लोक कार्य एवं उद्योग के सही समन्वय पूर्वक कार्य।

### **लाभार्थियों की हिस्सेदारी एवं सहभागिता पर्याप्त एवं प्रशिक्षित स्टाफ**

पी. आर. दुभाषी का कथन पूरी तरह उचित प्रतीत होता है कि "हमें लोगों के पास जाना चाहिए, उनके मध्य रहना चाहिए, उनके साथ नियोजन योजना निर्माण एवं कार्य करना चाहिए, इस बात से आरम्भ करना चाहिए कि लोग क्या जानते हैं उनका प्रयोग के माध्यम से शिक्षण करना चाहिए तथा इसमें दिखावा नहीं वास्तविक नमूने (प्रयोग) की आवश्यकता है।

## अध्याय-34

# खाद्य एवं आपूर्ति प्रशासन

## (Administration of Food and Supply)

हरियाणा सरकार के प्रशासन में खाद्य एवं आपूर्ति विभाग की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस विभाग का कार्यभार प्रायः एक मंत्री मण्डलीय स्तर के मंत्री को सौंपा जाता है जो इसका राजनीतिक अध्यक्ष होता है। अगर चाहे तो मुख्यमंत्री स्वयं भी इसका दायित्व संभाल सकता है।

**प्रशासनिक अधिकारी:** इस विभाग का प्रशासनिक मुखिया एक सचिव (Secretary and Commissioner to govt) होता है। विभाग के प्रशासन की सफलता का उत्तरदायित्व इसी अधिकारी पर होता है। इसके साथ ही एक निदेशक (Director, Head of Dept.) एक उप निदेशक (Deputy Director) तथा क्षेत्रीय स्टाफ जैसे जिला स्तर पर डी. एफ. सी, और डी. एफ. एस. होते हैं एक जिले में आकार के आधार पर चार या पाँच ए. एफ. एस. ओ. होते हैं इसके पश्चात् में डिपो में इंस्पेक्टर और इंस्पेक्टर होते हैं उपरोक्त अधिकारियों के अतिरिक्त वरिष्ठ एवं कनिष्ठ लिपिक, टाइपिस्ट एवं चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी होते हैं इस विभाग का कार्यक्षेत्र समस्त राज्य और कुछ दृष्टियों से राज्य के बाहर तक फैला हुआ है यह विभाग अपने दायित्वों को अनेक विभागों, उप विभागों और स्थानीय अभिकरणों के माध्यम से सम्पादित करता है। खाद्य एवं आपूर्ति विभाग विभिन्न गतिविधियों में कार्यरत है। जैसे लोक वितरण व्यवस्था (Public Distribution on System) रबी एवं खरीफ फसलों (Procurement of Food Grains of Rabi and Kharif Crops,) की खाद्यान्नों की अधिप्राप्ति, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (Matters Relating to the Consumer Protection Act, 1986) 1986 से सम्बन्धित मामले माप एवं तोल (Weights and Measures) इस विभाग की एक अति महत्वपूर्ण गतिविधि खाद्यान्नों की अधिप्राप्ति एवं केन्द्रीय निकाय को आपूर्ति है। इस गतिविधि को यह विभाग कई अन्य संगठनों के सहयोग से कार्यान्वित करता है जैसे हैफेड (Hafed) एग्रो (Agro) एच. डब्ल्यू. सी. (HWC) और एफ. सी. आई. (FCI) खरीफ फसल के मामले में 100% कास्ट मिल चावल सहित 75% एकत्रित चावल (Levy Rice) कारखानों एवं व्यापारियों द्वारा केन्द्रीय विकास को वितरित किया जाता है विभाग की दूसरी महत्वपूर्ण गतिविधि खाद्य एवं आपूर्ति व्यवस्था है इस गतिविधि का और कुछ महत्वपूर्ण लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया गया था जैसे अनिवार्य वस्तुओं की प्राप्ति (To ensure availability of Essential Commodities) अनिवार्य वस्तुओं के मुल्य (To Stabilise their prices.) स्थिर रखना, समाज के कमजोर वर्ग के हितों का संरक्षण (To Protect the Invests of the Welfare Sections of the Society)।

इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभाग समय-समय पर विभिन्न नियंत्रण आदेशों को दृढ़तापूर्वक लागू करता है। 1986 में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के पश्चात् विभाग का उपभोक्ताओं के विभिन्न हितों के संरक्षण का उत्तरदायित्व भी वहन करना पड़ता है। इस उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विभाग को जिला स्तर पर जिला उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण का उत्तरदायित्व भी वहन कर रहा है।

इसी प्रकार तोल और माप अधिनियम, 1976 (Weights and Measures, Act 1976) लाया गया है जिसका उद्देश्य अन्तरराज्य व्यापार एवं वाणिज्य (Inter State Trade and Commerce) और इससे सम्बन्धित कार्य था। ये कार्य मार्च 1992 तक उद्योग विभाग द्वारा किया जाता था।

सरकार ने मार्च 1992 का यह महत्वपूर्ण कार्य भी खाद्य एवं आपूर्ति विभाग को सौंप दिया और तत्पश्चात् इस अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों का कार्यान्वित भी यह प्रभावपूर्ण ढंग से कर रहा है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह राज्य का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विभाग है। इस विभाग की कार्यकुशलता ही हरियाणा की लोक वितरण व्यवस्था की सफलता, खाद्यान्नों की सही अधिप्राप्ति, उपभोक्ता की व्यापारियों के शोषण से सुरक्षा, राज्य में नाप एवं तोल की सही व्यवस्था, अनिवार्य वस्तुओं की प्राप्ति, मूल्यों में स्थिरता, और विशेष कर समाज के कमजोर वर्ग के हितों की सुरक्षा सम्भव है।

## Unit V

### अध्याय-35

## भारत में प्रशासनिक सुधार

### (Administrative Reforms in India)

प्रशासन की कोई भी व्यवस्था तभी निरन्तर प्रभावशाली और गतिशील रह सकती है जब उसमें आवश्यकतानुसार सुधार लाने के लिए निश्चयात्मक, व्यवस्थित एवं संगठित प्रयास होते रहें। सुधार के द्वार बन्द कर देने का दूसरा अर्थ है अपनी उपयोगिता का हास और सजीवता का नाश, ऐसी स्थिति में प्रशासन के प्रति आकर्षण ही समाप्त हो जाता है। सीमित स्रोतों का अधिकाधिक लाभ तभी उठाया जा सकता है जब आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किए जाएँ, प्रशासकीय सुधार-नीतियों को अपनाया जाए। प्रशासनिक प्रबन्ध में निरन्तर सुधार की आवश्यकता विश्व के सभी देशों में स्वीकार की गई है और द्वितीय महायुद्धोत्तर युग में तो इसे अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। "प्रबुद्ध सेवीवर्ग प्रशासन, परिष्कृत रीतियाँ तथा प्रक्रियाएँ, सुव्यवस्थित संगठन, स्वचालित यन्त्रों का बढ़ता हुआ प्रयोग, कर्मचारियों को प्रोत्साहन, पुरस्कार एवं प्रशिक्षण-योजनाएँ तथा निष्पादकीय विकास-कार्यक्रम, कुछ ऐसी युक्तियाँ अथवा साधन हैं जो वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं।" प्रशासन में सुधार के आधुनिक प्रयास व्यवस्थित रूप से 18वीं शताब्दी से ही आरम्भ हो गए थे। इनका प्रारम्भ मुख्यतः उद्योगों के क्षेत्र में हुआ और 19वीं सदी के अन्तिम चरण में जाकर सरकारी प्रशासन के क्षेत्र में भी सुधार-प्रयत्न शुरू हो गए।

प्रशासनिक सुधारों (एडमिनिस्ट्रटिव रिफोर्म्स) का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसमें प्रशासनिक व्यवस्था की कार्यकुशलता एवं गुणवत्ता में वृद्धि करने के लिए कृत्रिम (सुनियोजित) ढंग से अर्थात् जानबूझकर परिवर्तन किए जाते हैं। सामान्यतः प्रशासनिक सुधारों का तात्पर्य सरकारी विभागों के ढाँचे में फेरबदल से सम्बन्धित माना जाता है किन्तु यह कार्य बहुत व्यापक तथा गंभीर प्रकृति का है। प्रशासनिक सुधारों का कार्यक्षेत्र या सम्बन्ध निम्नांकित पक्षों से है:-

1. प्रशासनिक संरचना या ढाँचे में परिवर्तन
2. प्रशासनिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन
3. प्रशासनिक नियमों या कानूनों में परिवर्तन
4. प्रशासनिक व्यवहार में सुधार
5. संगठन के लक्ष्यों या उद्देश्यों में परिवर्तन
6. कार्यकुशलता, विश्वसनीयता तथा उपादेयता में वृद्धि हेतु नवीन प्रयोग।

सारांशतः प्रशासनिक सुधारों का क्षेत्र सम्पूर्ण प्रशासन तंत्र तथा उसकी कार्यप्रणाली से सम्बन्धित होता है जो नवीन परिस्थितियों के अनुकूल किया जाता है। यद्यपि प्रशासनिक सुधार निजी एवं सरकारी दोनों प्रकार के संगठनों में किए जाते हैं किन्तु इस अध्याय में प्रशासनिक सुधारों का आशय सरकारी तंत्र में किए जाने वाले संगठनात्मक, संरचनात्मक, कार्यात्मक, प्रक्रियात्मक, व्यावहारिक तथा वैधानिक सुधारों से है।

## प्रशासनिक सुधारों के उद्देश्य (Objectives of Administrative Reforms)

इन सुधारों के निम्नांकित उद्देश्य होते हैं-

1. प्रशासनिक कार्यों तथा प्रक्रियाओं में समयानुकूल व्यावहारिक परिवर्तन करना;
2. प्रशासनिक तंत्र को जड़ होने से बचाने के प्रयास करना;
3. परिवर्तित सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, तकनीकी एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप प्रशासन तंत्र को ढालना;
4. जनसाधारण की समस्याओं, जनाकांक्षाओं तथा भावनाओं से कार्मिकों को अवगत कराना;
5. प्रशासनिक कुशलता एवं कार्य निष्पादन के उच्च स्तर को प्राप्त करना;
6. अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा स्थानीय संदर्भों में प्रशासन की व्यावहारिकता बनाए रखना;
7. शासन की नीतियों, योजनाओं, व्यूहरचनाओं तथा नवकार्यक्रमों के अनुरूप प्रशासन को संचालित करना;
8. प्रशासन में शिथिलता, अकर्मण्यता एवं भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना;
9. नियंत्रण, पर्यवेक्षण तथा जवाबदयेता को सुनिर्धारित करना;
10. सार्वजनिक वित्त के सदुपयोग को सुनिश्चित करना;
11. जन परिवेदनाओं तथा कर्मचारी शिकायतों में कमी लाने के प्रयास करना।

प्रशासनिक सुधारों के उद्देश्य बहुआयामी होते हैं क्योंकि प्रशासनिक तंत्र में व्याप्त व्याधियाँ न केवल आम व्यक्ति के हितों पर कुठाराघात करती हैं बल्कि स्वयं लोक सेवक भी उनसे पीड़ित रहते हैं।

### प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता

सतत् एवं व्यवस्थित परिवर्तन को संभालने की योग्यता आधुनिक समाजिक व्यवस्था का विशिष्ट लक्षण है। प्रशासनिक सुधार इस परिवर्तन की सार्व-भौमिकता का ही एक भाग है क्योंकि प्रशासन विस्तृत समाज के मूल्यों को प्रतिबिम्बित करने वाली एक उपव्यवस्था, एक उपसंस्कृति ही तो है। अतएव,

- स्वयं को परम्परावाद की बेड़ियों से मुक्त करने हेतु;
  - वातावरण के साथ संबंधों में परिवर्तन लाने हेतु;
  - नया ज्ञान तथा तकनीक अपनाने हेतु; और
  - पुराने दोषों की समाप्ति तथा तुलनात्मक व्यवस्था मूल्यों के मूल्यांकन द्वारा नयी व्यवस्था की लालसा हेतु
- समाज को परिवर्तित होना ही पड़ता है।

### प्रशासनिक सुधार के प्रकार

गरलिल ई. लेटिन के अनुसार प्रशासनिक सुधार चार प्रकार के हो सकते हैं:

1. राजनीतिक क्रांति द्वारा आरोपित सुधार;
2. संगठनात्मक कठोरता को ठीक करने के लिए प्रारम्भ किये गये सुधार;
3. कानूनी पद्धति के माध्यम द्वारा सुधार; तथा
4. मनोवृत्ति परिवर्तन के माध्यम से सुधार।

### राजनीतिक परिवर्तन द्वारा आरोपित सुधार

प्रशासन राजनैतिक शक्तियों से साकार और प्रभावित होता है। राजनैतिक परिदृश्य में परिवर्तन भी प्रशासन को प्रभावित करते

हैं। प्रशासन की संरचना और कार्य शैली शान्तिपूर्ण तथा क्रांतिकारी दोनों प्रकार के राजनैतिक परिवर्तनों से प्रभावित होती है। सामान्यतः प्रशासनिक सुधार राजनीतिक सुधारों के पीछे-पीछे चलते हैं।

### **संगठनात्मक कठोरता को ठीक करने के लिये प्रारम्भ किये गये सुधार**

जब कभी कार्य संचालन में तनाव और बाधाएँ उपस्थित होती हैं, तब प्रशासनिक ढाँचे की कठोरता दूर करने, उसमें चलीलापन लाने के लिये प्रशासनिक परिवर्तन आवश्यक होते हैं। प्रशासन के ढाँचे में परिवर्तन कई प्रकार के हो सकते हैं, जैसे कि कर्मचारियों का स्थान-परिवर्तन, दुबारा छानबीन, पदोन्नति तथा विनियमों और संरचना में परिवर्तन, नवीनता और नई पहल-शक्ति तथा अच्छे जन-सम्पर्क को प्रोत्साहन।

### **कानूनी पद्धति के माध्यम से सुधार**

प्रशासनिक सुधार से संबंधित कोई भी नया कानून प्रशासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला सकता है। सामान्यतः इस प्रकार के विधि-निर्माण के पूर्व कई मंचों जैसे समितियों, आयोग, प्रेस आदि में विचार विमर्श तथा परामर्श किया जाता है।

### **मनोवृत्ति परिवर्तन के माध्यम से सुधार**

मानव समुदाय किसी भी संगठन का महत्वपूर्ण अंग होता है। कोई भी कानूनी संगठनात्मक तथा राजनैतिक परिवर्तन तब तक वांछित सुधार नहीं ला सकता जब तक कि संगठन में कार्यरत व्यक्ति इन वांछित सुधारों का महत्व नहीं समझ लें और इन्हें अंगीकार न कर लें।

### **स्वतंत्रता से पूर्व प्रशासनिक सुधार**

(Administrative Reforms before Independence)

प्राचीनकाल से ही शासन व्यवस्थाएँ निरन्तर परिवर्तन एवं संवर्धन के दौर से गुजरती रही हैं। सत्तारूढ़ शासकों ने अपनी नीतियों तथा जन भावनाओं के अनुरूप न्यूनाधिक मात्रा में प्रशासनिक सुधार किए हैं। प्राचीन भारत की शासन व्यवस्था की व्याख्या करने वाले ग्रन्थों यथा-अर्थशास्त्र, शुक्रनीतिसार, महाभारत तथा कुराल (तिरुवल्ल्वर द्वारा रचित) इत्यादि में राजा के कर्तव्यों, राज्य की स्थिति, वित्तीय संसाधनों तथा प्रशासनिक संगठनों का विशद वर्णन मिलता है। चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, हर्षवर्धन, समुद्रगुप्त, कनिष्क, शेरशाह सूरी, अकबर, शिवाजी एवं कृष्णदेव राय के समय लिखे गए ग्रन्थों में इन शासकों द्वारा किए गए प्रशासनिक सुधारों की भी व्याख्या उपलब्ध है।

मुगलकाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारत आगमन हुआ तथा कम्पनी ने राजनीतिक रूप से अस्थिर एवं छिन्न-भिन्न देश पर शासन करना शुरू किया। ब्रिटिश शासकों ने मुगलकालीन शासन व्यवस्था में सन् 1761 से 1946 तक शनैः-शनैः परिवर्तन किए। इन दो शताब्दियों के पश्चात् भारतीय प्रशासन का जो स्वरूप उभर कर सामने आया वह हमने स्वतंत्रता के समय ब्रिटिश विरासत के रूप में स्वीकार किया। ऐसा नहीं है कि आज का भारतीय प्रशासन केवल ब्रिटिश शासन का ही अवशेष है बल्कि राज्य प्रशासन, जिला प्रशासन, तहसील एवं राजस्व प्रशासन तथा न्याय पंचायतें मुगलकालीन प्रशासन की देन हैं। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में केन्द्रीय सचिवालय, केन्द्र-राज्य सम्बन्ध, कार्यकारी संस्थाओं (निदेशालय), नगरीय स्थानीय संस्थाओं, योग्यता आधारित भर्ती एवं प्रशिक्षण, अखिल भारतीय सेवाओं, राजपत्रित एवं अराजपत्रित कार्मिकों का भेद, विधि का शासन, समिति व्यवस्था, पुलिस एवं न्याय प्रणाली तथा सेना एवं पुलिस का पथक्करण तथा नौकरशाही की आधुनिक अवधारणाओं का प्रसार हुआ। भारतीय प्रशासन में सुधार के लिए ब्रिटिश शासकों ने अनेक आयोग एवं समितियाँ जैसे- कमेटी ऑन इण्डियन सिविल सर्विस (1854), रॉयल कमीशन ऑन डिसेन्ट्रलाइजेशन (1909), कमेटी ऑन सफ्टवेयर रिऑर्गेनाइजेशन (1930), कमेटी ऑन ऑर्गेनाइजेशन एण्ड प्रोसीजर (1936) इत्यादि गठित की थी जिनका वर्णन सम्बन्धित अध्यायों में यथास्थान किया जा चुका है। स्वतंत्रता के संक्रमण काल में सचिवालय एवं लोक सेवा सुधार के लिए टोटनहैम समिति (1945-46) तथा नियोजन के लिए नियोगी समिति ने रिपोर्ट प्रदान की।

### **स्वतंत्रता के पश्चात् प्रशासनिक सुधार**

(Administrative Reforms after Independence)

भारत और ब्रिटेन सहित अधिकांश संसदीय प्रणाली वाले देशों में प्रशासनिक सुधारों का मुख्य दायित्व मंत्रिपरिषद् द्वारा निर्वाहित



किया जाता है जबकि अमेरिका जैसे अध्यक्षीय शासन प्रणाली वाले देशों में अधिकांश सुधारों की वैधानिक शक्तियाँ विधानमंडल में निहित होने के कारण एक कठोर तथा अल्प परिवर्तित प्रशासनिक तंत्र कार्यरत है। लेकिन समयानुकूल प्रशासनिक सुधार प्रत्येक देश तथा शासन व्यवस्था में होते रहते हैं। हाँ, उनकी मात्रा तथा अंतराल में अन्तर हो सकता है।

15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही भारतीय प्रशासनिक तंत्र को पुनर्गठित करने के प्रयास शुरू हो चुके थे क्योंकि देश-विभाजन के कारण कुछ अधिकारी पाकिस्तान चले गए जबकि कुछ अंग्रेज अधिकारियों ने अपने वतन वापिस जाना उचित समझा। इसी प्रकार भौगोलिक आधार पर भी प्रशासनिक संगठनों का बँटवारा हो गया। ऐसी परिस्थिति में गिरिजाशंकर वाजपेयी की अध्यक्षता में बनी 'सचिवालय पुनर्गठन समिति' ने 10 अगस्त, 1947 को रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट की अनुशंसा के अनुरूप केन्द्रीय सचिवालयी विभागों का पुनर्गठन तथा प्रक्रियात्मक सुधार किए गए।

सन् 1948 में प्रमुख उद्योगपति कस्तूरभाई की अध्यक्षता में मितव्ययता समिति गठित की गई जिसने सन् 1938 से सन् 1948 तक के दशक में हुए लोक सेवा विस्तार एवं व्यय का विश्लेषण किया तथा अनावश्यक खर्चों पर नियंत्रण के सुझाव दिए। सन् 1949 में केन्द्रीय मंत्री गोपालास्वामी आयंगर ने 'शासकीय मशीनरी के पुनर्गठन' पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में ओ. एण्ड एम. इकाई की स्थापना के साथ केन्द्रीय मंत्रालयों को चार ब्यूरो यथा-

- (क) प्राकृतिक संसाधन एवं कृषि ब्यूरो
- (ख) उद्योग एवं व्यापार ब्यूरो
- (ग) यातायात एवं संचार ब्यूरो तथा
- (घ) श्रम एवं सामाजिक सेवा ब्यूरो

में पुनर्गठित करने के सुझाव वर्णित थे। ये सिफारिशें नहीं की जा सकी।

सन् 1951 में योजना आयोग को ए. डी. गोरवाला समिति ने दो रिपोर्ट प्रस्तुत की। एक आई.सी.एस. अधिकारी के रूप में गोरवाला ने 'भारत में लोक प्रशासन' तथा 'लोक उपक्रमों के कुशल संचालन' नामक रिपोर्ट में ओ. एण्ड एम. इकाई की शीघ्र स्थापना, लोक सेवाओं में अनुशासन, राजनीतिज्ञों एवं लोक सेवकों में सामंजस्यता, कार्यकारी संस्थाओं को स्वतंत्रता, व्हिटले परिषदों की स्थापना तथा आई.एस.एस. प्रशिक्षण में सुधार के सुझाव दिए।

सन् 1953 में अमेरिका के फोर्ड फाउन्डेशन के परामर्शदाता पॉल एच. एपलबी को भारत सरकार ने आमंत्रित किया। एपलबी ने इसी वर्ष प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट 'भारत में लोक प्रशासन: एक सर्वेक्षण' में स्वीकार किया कि भारत एक दर्जन राष्ट्रों में सम्मिलित है जहाँ सुदृढ़ तथा विकसित कार्यरत है। एपलबी ने समस्त लोक सेवाओं का एकीकरण कर एक सामान्य सेवा बनाने, कार्मिकों को प्रशिक्षण देने, योजना आयोग द्वारा केवल योजना बनाने (क्रियान्वयन नहीं), लोक नियमों पर कठोर नियंत्रण रखने, ओ. एण्ड एम. की स्थापना करने, वित्तीय कार्यों में अन्य मंत्रालयों को वित्त मंत्रालयों से मुक्त करने, मंत्रालयों में समन्वय स्थापित करने, सामुदायिक विकास परियोजनाओं में जिम्मेदारी निश्चित करने तथा भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना करने सम्बन्धित बारह अनुशंसाएँ की थी। एपलबी की रिपोर्ट को महत्त्व प्रदान करते हुए भारत सरकार ने सन् 1954 में मंत्रिमंडल सचिवालय के अधीन ओ. एण्ड एम. (संगठन एवं प्रक्रिया) संभाग स्थापित कर दिया तथा इसी वर्ष भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की नई दिल्ली में स्थापना की गई।

सन् 1956 में पुनः पॉल एच. एपलबी भारत आए तथा 'भारतीय प्रशासन के पुनर्परीक्षण' (राज्य औद्योगिक एवं वाणिज्यिक उपक्रमों के विशेष संदर्भ में) पर अपनी रिपोर्ट प्रदान की। इस बार उन्होंने पूर्व की अनुशंसा को पलटते हुए लोक निगमों को अधिक स्वतंत्रता की सिफारिश की। उनके अनुसार लोक उपक्रमों को अधिक शक्तियाँ देने से उच्छंखला नहीं बल्कि अधिक उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न होती है। इस रिपोर्ट में उन्होंने नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की आलोचना करते हुए उसे दमनकारी संस्था करार दिया तथा योजना तंत्र में स्वतंत्रता की सिफारिश की। इसी वर्ष 'लोक सेवा (भर्ती की योग्यताएँ) समिति' की रिपोर्ट आई। समिति के अध्यक्ष ए. आर. मुदलियार ने लोक सेवाओं में कार्यकुशलता तथा गुणवत्ता वृद्धि के लिए भर्ती व्यवस्था में सुधार के सुझाव दिए।

भारत में सन् 1956 में राज्यों का पुनर्गठन किया गया, जो न्यायमूर्ति सैयद फजल अली की अध्यक्षता में बने 'राज्य पुनर्गठन आयोग' की सिफारिशों का परिणाम था। भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन होने से राज्य सचिवालयों तथा राज्य प्रशासन में व्यापक परिवर्तन आए। सन् 1957 में 'सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं के अध्ययन दल' की रिपोर्ट आयी। बलवंत राय मेहता इस समिति के अध्यक्ष थे। रिपोर्ट में विकास कार्यक्रमों में जनसहभागिता बढ़ाने तथा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को मूर्त रूप में देने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना का सुझाव दिया गया। गाँधी जयंती पर 2 अक्टूबर, 1959 को नागौर में पंडित नेहरू ने पंचायती राज का शुभारम्भ किया। सन् 1962 में वी. टी. कृष्णामाचारी समिति ने 'भारतीय एवं राज्य प्रशासनिक सेवा तथा जिला प्रशासन की समस्याएँ' विषय पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमें आई. ए. एस. की सीधी भर्ती की संख्या बढ़ाने, आई.ए.एस. का राज्य प्रशिक्षण गहन बनाने तथा आई. ए. एस. की सीधी भर्ती की संख्या बढ़ाने, आई.ए.एस. का राज्य प्रशिक्षण गहन बनाने तथा आई. ए. एस. के लिए पुनश्चर्या (रिफ्रेशर) पाठ्यक्रम की आवश्यकता पर बल दिया। सन् 1964 में 'भ्रष्टाचार निरोधक समिति' की रिपोर्ट सामने आयी। के. संस्थानम की अध्यक्षता में बनी इस समिति ने केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त की स्थापना तथा लोक सेवकों के लिए आचार संहिता का सुझाव दिया जो क्रियान्वित भी हुए।

भारत में प्रशासनिक सुधारों के क्रम में सबसे बड़ी प्रयत्न प्रशासनिक सुधार आयोग (A.R.C.) के रूप में रहा है। इस आयोग की स्थापना का सुझाव अशोक चन्दा तथा मोरारजी देसाई सहित अनेक प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा बार-बार दिया जा रहा था। संस्थानम समिति की रिपोर्ट के पश्चात् यह माँग बहुत अधिक बलवती हुई कि सम्पूर्ण भारतीय प्रशासन के विशद अध्ययन एवं सुधार हेतु एक जाँच समिति आवश्यक है। इसी क्रम में दिनांक 5 जनवरी, 1966 को मोरारजी देसाई की अध्यक्षता तथा के. हनुमन्तैया, हरिश्चन्द्र माथुर, जी. एस. पाठक एवं एच. वी. कामथ की सदस्यता में प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया। वी. शंकर इस आयोग के सदस्य-सचिव बनाए गए। वी. शंकर के अतिरिक्त सभी सदस्य सांसद थे। मार्च, 1967 में मोरारजी देसाई द्वारा उपप्रधानमंत्री पदधारण करने के पश्चात् के. हनुमन्तैया को आयोग का नया अध्यक्ष बनाया गया। अगले वर्ष जी. एस. पाठक तथा हरिश्चन्द्र माथुर के स्थान पर देवव्रत मुखर्जी तथा टी. एन. सिंह नए सदस्य बनाए गए। सन् 1969 में वी. वी. चारी तत्पश्चात् एन. एस. पांडे आयोग के सदस्य सचिव नियुक्त किए गए। प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना से पूर्व अनेक राज्यों में प्रशासनिक सुधार समितियाँ रिपोर्ट दे चुकी थी। आयोग ने उनका अध्ययन किया तथा राज्यों एवं केन्द्र के मंत्रालयों, मंत्रियों, प्रशासकों, अर्थशास्त्रियों तथा बुद्धिजीवियों से सम्पर्क किया। आयोग ने 33 अध्ययन दल तथा कार्यदल गठित किए जो विषय विशेषज्ञता एवं कार्यक्षेत्र के अनुरूप विभक्त थे।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने लगभग 580 अनुशंसाएँ भारत सरकार को प्रस्तुत की। आयोग की अनुशंसाओं में 51 सिफारिशें पूर्णतः तथा 8 अंशतः राज्य सरकारों से सम्बन्धित थी। भारत सरकार ने 500 से अधिक सिफारिशों पर निर्णय लिया लेकिन सभी सिफारिशें स्वीकार नहीं की जा सकी।

प्रशासनिक सुधार आयोग की प्रमुख अनुशंसाएँ इस प्रकार हैं -

- (1) भारत सरकार के प्रशासन तंत्र के सम्बन्ध में प्रशासनिक सुधार आयोग का मानना था कि -
  - केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् में 45 तक सदस्य हों जिनमें प्रधानमंत्री सहित 16 कैबिनेट स्तरीय मंत्री हों।
  - मंत्रिपरिषद् का निम्नतम मंत्री पद 'संसदीय सचिव' समाप्त किया जाए।
  - उपप्रधानमंत्री पद औपचारिक रूप से स्वीकार किया जाए।
  - प्रधानमंत्री, स्वयं के पास कोई मंत्रालय या विभाग न रखें बल्कि वे केवल निर्देशन, समन्वय एवं पर्यवेक्षण कार्य करें।
  - सरकार के सभी महत्वपूर्ण निर्णय लिखित में रखे जाएँ।
  - यदि कोई लो सेवक (सचिव) मंत्री के आदेशों के विरुद्ध कार्य करे तो उसके क त्व के लिए मंत्री को उत्तरदायी न माना जाए।
  - राज्य सूची विषयों पर केन्द्रीय मंत्रालय आवश्यक नेतृत्व एवं सहायता प्रदान करें।
  - भारत सरकार में पथक् से कार्मिक विभाग स्थापित किया जाए।

(2) नियोजन तंत्र के सम्बन्ध में सुझाव दिए कि -

- प्रधानमंत्री को योजना आयोग का अध्यक्ष नहीं बनाना चाहिए बल्कि प्रधानमंत्री, आयोग के कार्यों से निकट सम्पर्क रखे तथा आवश्यक समझे तभी आयोग की बैठकों में जाए एवं अध्यक्षता करें।
- वित्त मंत्री की योजना आयोग का सदस्य न हो लेकिन घनिष्ठ सम्बन्ध रखे।
- कोई भी मंत्री योजना आयोग का सदस्य न बनाया जाए।
- योजना आयोग के सभी सदस्य पूर्णकालिक तथा विशेषता प्राप्त हों जिन्हें 5 वर्ष के लिए नियुक्त किया जाए।
- उच्च योग्यता प्राप्त व्यक्ति ही आयोग का सचिव बने तथा अधीनस्थ कार्मिक भी तकनीकी क्षमता प्राप्त हों।
- योजना आयोग को तीन शाखाओं क्रमशः योजना बनाने, मूल्यांकन करने तथा संस्थापन कार्य करने में विभक्त किया जाए।
- राज्यों में भी योजना बनाने एवं उनका मूल्यांकन करने हेतु 'योजना बोर्ड' बनें।
- योजना आयोग में वरिष्ठ पदों पर चयन के लिए विशेष समिति बने जिसमें योजना आयोग के अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष, योजना आयोग के उपाध्यक्ष को सम्मिलित कर फिक्की (फेडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इन्डस्ट्री) इत्यादि का भी सहयोग लें।
- आयोग प्रतिवर्ष कार्य निष्पत्ति एवं प्रगति का प्रतिवेदन प्रस्तुत करे।
- 25 सदस्यों की विशेष संसदीय समिति इस प्रतिवेदन की जाँच करे।
- राष्ट्रीय विकास परिषद् में प्रधानमंत्री, उपप्रधानमंत्री, केन्द्रीय वित्त, खाद्य एवं कृषि, उद्योग, वाणिज्य, श्रम एवं रोजगार, गृह, ऊर्जा तथा सिंचाई मंत्रियों सहित योजना आयोग के सभी सदस्य एवं राज्यों के मुख्यमंत्री सम्मिलित किए जाएँ।

(3) लोक उपक्रमों के सम्बन्ध में सिफारिशें थी कि -

- औद्योगिक तथा उत्पादन कार्यों में लोक निगम तथा विकास सम्बन्धित कार्यों में विभागीय या निगम प्रणाली एवं व्यापारिक प्रकृति के कार्यों में कम्पनी प्रारूप उपयुक्त रहेगा।
- यातायात, पर्यटन, होटल, विद्युत, जहाजरानी, तेल तथा उद्योग इत्यादि के क्षेत्रों में 'क्षेत्रीय निगम' स्थापित किए जाएँ।
- मंत्रालयों का कोई भी अधिकारी लोक उपक्रमों का अध्यक्ष न बने।
- लोक उपक्रमों के अध्यक्ष एवं उच्च स्तरीय प्रबन्धकीय पद प्रतिनियुक्ति से भरे जाएँ।
- प्रबन्ध मंडलों के सरकारी सदस्य, वरिष्ठ हों जिनका स्तर संयुक्त सचिव स्तर से कम न हो।
- बड़े लोक उपक्रमों के प्रबन्ध मंडलों को पूँजी स्वीकृति की अधिक शक्तियाँ दी जाएँ।
- लोक उपक्रमों को सरकार द्वारा दिए जाने वाले निर्देश लिखित में हों जिनका वर्णन वार्षिक प्रतिवेदन में भी हो।
- संसद में लोक उपक्रमों के बहस के दिन निश्चित कर देने चाहिए तथा संसद को बता देना चाहिए कि किन विषयों पर प्रश्न न पूछे जाएँ।
- निजी क्षेत्र के प्रबन्धकों को लोक उपक्रमों की ओर आकर्षित किया जाए।
- श्रमिक संगठनों को निरूत्साहित किया जाए तथा लोकतांत्रिक तरीके अपनाएँ जाएँ।
- लोक उपक्रम ब्यूरो का स्तर ऊँचा उठाया जाए।
- लोक उपक्रमों के कार्मिकों के प्रशिक्षण विशेषतः विदेश प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाए।
- अंकेक्षण के लिए 'अंकेक्षण मंडल' स्थापित हों तथा आयात के प्रबन्ध पर नियंत्रण किया जाए। बजट का मासिक पुनरावलोकन किया जाए तथा विनियोग एवं विनिवेश नीति पर ध्यान दिया जाए।

- (4) वित्त एवं लेखा प्रशासन के सम्बन्ध में सिफारिशें थी कि -
- केन्द्र एवं राज्य स्तर पर विकास कार्यक्रमों से सम्बद्ध विभागों में 'निष्पादन बजट' प्रणाली अपनाई जाए।
  - वित्तीय वर्ष एक अप्रैल के बजाए एक नवम्बर से शुरू हो।
  - प्रत्येक मंत्रालय में वित्तीय सलाहकार का पद हो।
  - विकासात्मक कार्यों वाले विभागों में 'निष्पादन अंकेक्षण' भी होना चाहिए।
- (5) कार्मिक प्रशासन से सम्बन्धित सिफारिशें -
- केन्द्रीय सचिवालय के कार्यों को प्रकृति एवं क्षेत्र अनुसार वर्गीकृत एवं संगठित कर एकीकृत किया जाना चाहिए।
  - प्रशासनिक सुधार की सिफारिशों की क्रियान्विति के लिए कार्मिक विभाग (गृह मंत्रालय के अधीन था) उत्तरदायी होगा।
  - आई. ए. एस. भर्ती की आयु सीमा 28 वर्ष हो तथा दो अवसर प्रदान किए जाएँ।
  - तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के कर्मियों की भर्ती एक ही अभिकरण के द्वारा हो तथा तकनीकी सेवाओं के पदों के लिए एक बोर्ड बने।
  - प्रथम श्रेणी के पद तथा आई. ए. एस. प्रतियोगी परीक्षा द्वारा ही चुने जाएँ।
  - राज्य के लोक सेवा आयोगों के अध्यक्ष एवं सदस्यों का चयन राज्यपाल के परामर्श से हो। राज्य के आयोग में एक सदस्य राज्य से बाहर का हो। संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष, राज्यों के लोक सेवा आयोग से लिया जाए।
  - वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन को 'निष्पादन मूल्यांकन' कहा जाए तथा इसे अधिक सारगर्भित एवं उपयोगी बनाया जाए।
  - कार्मिकों के प्रशिक्षण पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाए।
  - 15 वर्ष की सेवा के पश्चात् सेवानिवृत्ति का विकल्प किया जाए।
  - नौकरी में प्रवेश के समय प्रत्येक कार्मिक से 'हड़ताल पर न जाने' का शपथ पत्र लिया जाए।
  - किसी भी कार्मिक को तीन माह से अधिक निलम्बित न किया जाए। केवल अदालती मामलों में अवधि अधिक हो सकती है।
- (6) कार्मिक प्रशासन से सम्बन्धित सिफारिशें -
- केन्द्र में लोकपाल तथा राज्यों में लोकायुक्त संस्था की स्थापना की जाए। सचिव के नीचे के स्तर के अधिकारियों की यह जाँच करे तथा स्वतन्त्र संस्था हो। लोकपाल का स्तर भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा लोकायुक्त का स्तर राज्य के मुख्य न्यायाधीश के समकक्ष हो। राष्ट्रपति द्वारा लोकपाल की नियुक्ति 5 वर्ष के लिए की जाए तथा प्रधानमंत्री, मुख्य न्यायाधीश एवं सदन में विपक्ष का नेता इससे सहमत हों। विधायिका में लोकपाल एवं लोकायुक्तों की रिपोर्ट पर विचार हो तथा सरकार द्वारा की गई कार्यवाही कातीन माह में विवरण प्रस्तुत किया जाए।

आर्थिक प्रशासन के सम्बन्ध में प्रशासनिक सुधार आयोग ने 'कीमत लागत तथा शुल्क आयोग' की स्थापना का सुझाव दिया था जो औद्योगिक उत्पादन की कीमतों, लागत एवं शुल्क के क्रम में सरकार को परामर्श प्रदान करे इस सिफारिश को स्वीकार करते हुए 14 जनवरी, 1970 को औद्योगिक लागत एवं मूल्य ब्यूरो स्थापित किया जा चुका है।

प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसा के आधार पर ही योजना आयोग में अधिक विशेषज्ञों की नियुक्ति, केन्द्रीय मंत्रालयों में वित्तीय सलाहकार, राज्यों में योजना मंडलों की स्थापना, लोक उपक्रमों के लिए अंकेक्षण मंडल का गठन, लोकायुक्त की स्थापना, निष्पादन बजट की शुरुआत, निष्पादन मूल्यांकन का नवीन रूप तथा पथक से प्रशासनिक सुधार विभाग का गठन किया गया है। प्रशासनिक सुधार आयोग को बीच में ही (1970) समाप्त कर दिया गया था अन्यथा आयोग द्वारा अन्य विषयों पर भी अनुशंसाएँ दी जाती।

सन् 1976 में डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में बनी 'भर्ती नीति तथा चयन पद्धति समिति' ने सिविल सेवा परीक्षा प्रणाली में व्यापक संशोधन सुझाए थे। अखिल भारतीय सेवाओं के लिए एक ही प्रतियोगी परीक्षा तथा दो चरणों में आयोजन की शुरुआत हुई। सन् 1978 में पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकरण से सम्बन्धित अशोक मेहता समिति मंडल पंचायतें बनाने, पंचायती राज को द्विस्तरीय बनाने तथा अन्य सुझाव अस्वीकार किए गए। सन् 1980 में एल. के. झा की अध्यक्षता वाले आर्थिक सुधार आयोग ने नई अर्थव्यवस्था अपनाने तथा आधुनिकीकरण के प्रयास शुरू करने के सुझाव दिए।

युवा प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने प्रशासनिक सुधारों में रुचि लेते हुए सितम्बर, 1985 में केन्द्रीय सचिवालय का नए शिरे से पुनर्गठन किया तथा स्वतन्त्र 'कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय' की स्थापना कर प्रशासनिक सुधार विभाग एवं जन शिकायत निदेशालय इसके अधीन रखे। इससे पूर्व प्रशासनिक सुधार, ओ. एण्ड एम. तथा प्रशिक्षण सम्बन्धित कार्य गृह मंत्रालय सम्पादित करता था। राजीव गाँधी ने सत्ता ग्रहण करते ही 5 जनवरी, 1985 को प्रशासनिक सुधारों हेतु एक पैकेज घोषित किया था जिसमें निम्नांकित बिन्दु समाहित थे -

1. निर्णय लेने की प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण
2. जवाबदेयता को सुनिश्चित करना
3. नियमों और प्रक्रियाओं का सरलीकरण
4. नागरिकों को त्वरित और शालीन सेवाओं की उपलब्धता
5. लोक शिकायतों के निवारण हेतु एक उपयुक्त व्यवस्था की स्थापना।

## **सरकारिया आयोग (Sarkaria Commission)**

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के विवादित स्थलों के गहन अध्ययन तथा उनमें सुधार हेतु सुझाव देने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश आर. एस. सरकारिया की अध्यक्षता में एक आयोग के गठन की घोषणा तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा 24 मार्च, 1983 को की गई। आयोग का औपचारिक गठन 9 जून, 1983 को हुआ तथा जुलाई, 1983 में श्री वी. शिवरामन तथा डॉ. एस. आर. रो की नियुक्तियाँ सदस्यों के रूप में की गईं। केन्द्र-राज्य की शक्तियों, कार्यों तथा उत्तरदायित्वों के अध्ययन तथा उनमें यथोचित सुधार के लिए आयोग ने 109 प्रश्नों की विस्तृत प्रश्नावली तैयार की जिसमें केन्द्र-राज्य विधायी सम्बन्ध, राज्यपाल की शक्तियाँ, योग्यता एवं भूमिका, वित्तीय सम्बन्ध, सामाजिक आर्थिक विकास, सुरक्षा एवं शांति व्यवस्था, प्रशासनिक नियंत्रण तथा राजनीतिक सम्बन्धों इत्यादि विषयों पर प्रश्न संरचित किए गए थे। प्रश्नावली की 6800 प्रतियाँ सांसदों, विधायकों, शिक्षाशास्त्रियों, संस्थाओं, पत्रकारों, विचारकों, राजनेताओं, विधिवेत्ताओं, अर्थशास्त्रियों तथा संविधान एवं शासन से सम्बद्ध रहे अनुभवी व्यक्तियों इत्यादि को सौंपी गई। आयोग ने केन्द्र एवं राज्यों का दौरा किया तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों से व्यक्तिशः विचार-विमर्श कर अपने निष्कर्ष एक रिपोर्ट के रूप में तैयार किए। सरकारिया आयोग ने अपना 1600 पृष्ठीय प्रतिवेदन 2 नवम्बर, 1987 को भारत सरकार को सौंप दिया।

सरकारिया आयोग ने केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के प्रत्येक पहलू पर गहनता से अध्ययन तथा विश्लेषण किया था। आयोग द्वारा प्रस्तुत अनुशंसाओं में से कुछेक अनुशंसाएँ केन्द्र सरकार ने स्वीकार कर ली हैं; जबकि अन्य पर विचार-विमर्श चल रहा है। अन्तरराज्यीय परिषद् की स्थापना और तत्पश्चात् इसकी स्थायी समिति की बैठकों में सरकारिया आयोग की सिफारिशों पर बहस अभी जारी है।

सारांशतः केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के क्रम में सरकारिया आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए थे -

1. अनुच्छेद-246 और 254 यथावत् रहने चाहिए वरना हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था को हानि उठानी पड़ सकती है।
2. अनुच्छेद-248 के अन्तर्गत अवशिष्ट विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र के पास ही रहना चाहिए।
3. संघीय, राज्य तथा समवर्ती सूची में परिवर्तन न किया जाए; क्योंकि ऐसा करना अनुच्छेद-368 के अन्तर्गत संविधान की मौलिक बनावट के विरुद्ध होगा।

4. समवर्ती सूची से सम्बन्धित विधान बनाते समय संघ-राज्य परामर्श को संवैधानिक बाध्यता नहीं बनाया जाए।
5. संघ सरकार को समवर्ती सूची से सम्बन्धित उसी क्षेत्र पर हस्तक्षेप करना चाहिए जो राष्ट्र के व्यापक हित में हो।
6. अनुच्छेद-249 नहीं हटाया जाए; क्योंकि इसका प्रयोग संघ सरकार ने बहुत कम किया है। पहली बार सन् 1950 में काला बाजार नियंत्रण हेतु तथा सन् 1986 में दूसरी बार।
7. अनुच्छेद-256 तथा 357 आवश्यक उपबंध है, अतः यथावत् रहें।
8. किसी राज्य में सशस्त्र बलों की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन योजनाएँ बनानी चाहिए ताकि केन्द्र पर निर्भरता कम हो सके।
10. केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, सीमा सुरक्षा बल तथा संघ के अन्य सशस्त्र बलों के साथ राज्यों के सशस्त्र बलों के अधिकारियों की अदला-बदली होनी चाहिए तथा इन सभी बलों के प्रशिक्षण केन्द्र एक ही जगह क्षेत्रीय आधार पर होने चाहिए।
11. पड़ोसी राज्यों को परस्पर मिलकर शस्त्र पुलिस बलों के उपयोग की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके लिए क्षेत्रीय परिषद् की व्यवस्था हो।
12. अखिल भारतीय सेवाओं की उपादेयता आज भी उतनी है जितनी कि संविधान के निर्माण के समय थी अतः केन्द्र-राज्य इस सम्बन्ध में समन्वय स्थापित करें।
13. इन सेवाओं के अधिकारियों के प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य सेवा शर्तों में सुधार होते रहना चाहिए।
14. प्रत्येक अधिकारी चाहे वह सीधी भर्ती से आया हो या पदोन्नति से, उसे एक न्यूनतम अवधि के लिए संघ में कार्य करने हेतु भेजा जाए।
15. राज्य से संघ में प्रतिनियुक्ति पर भेजे जाने वाले अधिकारियों तथा राज्य में कार्यरत अधिकारियों में 'अंतरंगी' एवं 'बहिरंगी' अधिकारियों की संख्या समान होनी चाहिए।
16. अवधि प्रणाली की पूर्ण अनुपालना कर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अखिल भारतीय सेवाओं के श्रेष्ठ अधिकारियों की आवश्यकता संघों तथा राज्य दोनों को ही है।
17. संघ द्वारा राज्यों की अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों के अनुशासन एवं नियंत्रण के लिए स्थानान्तरण, पदोन्नति, पदस्थापन तथा निलम्बन का प्रयोग रोका जाना चाहिए।
18. इन सेवाओं के अधिकारियों की समस्याओं पर विचार करने तथा अन्य विवादित मुद्दे सुलझाने के लिए 'अखिल भारतीय सेवाओं के सेवीवर्ग प्रशासन' के लिए एक सलाहकार परिषद्, मंत्रिमंडल सचिव की अध्यक्षता तथा संघीय सचिवों एवं राज्यों के मुख्य सचिवों की सदस्यता में बनाई जानी चाहिए।
19. संघीय 'कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग' की सहायता से इस परिषद् की बैठक एवं कार्यप्रणाली सुनिश्चित होनी चाहिए।
20. इस सलाहकार परिषद् से जो मामला न सुलझ वह उच्च स्तर की परिषद् में भेजा जाना चाहिए।
21. योजना आयोग का उपध्यक्ष ख्यातिनाम विशेषज्ञ हो जो राज्य सरकारों को भी विश्वास में ले सके। राज्य स्तर पर योजना बोर्ड गठित होने चाहिए।
22. योजना आयोग में प्रस्तावित 'वित्त आयोग प्रकोष्ठ' को राज्यों की वित्तीय व्यवस्था को भी नियंत्रित करना चाहिए। यदि वित्त आयोग प्रकोष्ठ, योजना आयोग के वित्तीय संसाधन प्रभारी के अधीन कार्य करेगा तो योजना आयोग तथा वित्त आयोग के मध्य समन्वय बढ़ेगा।
23. वित्त आयोग को अपने कार्य के लिए देश के विभिन्न भागों में विशेषज्ञ नियुक्त करने चाहिए।
24. राज्य सरकारों के प्रतिनिधि भी वित्त आयोग में सम्मिलित हों।
25. राष्ट्रीय विकास परिषद् को अनुच्छेद-263 के उपबन्धों के तहत राष्ट्रपति द्वारा आदेश जारी करके 'राष्ट्रीय आर्थिक और विकास परिषद्' नाम दे देना चाहिए।

26. निगम कर के उचित बँटवारे के लिए संविधान में संशोधन किया जाए।
27. उत्पादन के बदले राज्यों की बिक्री कर में अधिक हिस्सा देना उचित नहीं होगा।
28. सिवाय किसी विशेष प्रयोजन के (वह भी समिति अवधि के लिए) संघ को आयकर पर अधिभार नहीं लगाना चाहिए।
29. राज्यों को ऋण देने की नीति तथा पद्धति पर पुनर्विचार होना चाहिए।
30. केन्द्र द्वारा प्रायोजित परियोजनाएँ कम की जानी चाहिए तथा किसी योजना अवधि के मध्य में नई परियोजनाएँ नहीं चलानी चाहिए।
31. कृषि आय पर कराधान एक नाजुक मसला है अतः राजनीतिक मतैक्य स्थापित करके आगे बढ़ा जाए।
32. अनुच्छेद-293(4) के अंतर्गत संघ सरकार को चाहिए कि वह राज्यों का बैंकों और वित्तीय संस्थाओं से एक वर्ष से कम अवधि के उधार लेने के लिए सहज ही सहमति दे।
33. खनिज, पेट्रोल तथा प्राकृतिक गैस पर दिया जाने वाला पारिश्रमिक (Royalty) प्रति दो वर्ष पर संशोधित होना चाहिए।
34. कर कुक्त 'नगर परिषद् बाण्ड' पद्धति देश में लागू की जाए।
35. उद्योगों पर केन्द्रीय नियंत्रण व्यवस्था पर प्रति तीन वर्ष पश्चात् पुनर्विचार हो।
36. उद्योगों की स्वीकृति में अनावश्यक देरी को दूर करने के लिए एक समिति बनाई जाए।
37. उद्योगों को लाइसेंस देने वाले कार्यालय सभी राज्यों की राजधानियों में भी खोले जाएँ।
38. राज्यों में चलने वाली केन्द्रीय योजनाओं के निर्माण के समय राज्यों से परामर्श किया जाए।
39. वन संरक्षण अधिनियम, 1960 के अन्तर्गत संघ सरकार वनों को संरक्षण प्रदान करती है तथा राज्य सरकारें पौधों बाँटना, वनों का विकास विस्तार करना कार्य करती हैं, अतः दोनों के मध्य समन्वय हो।
40. अन्तरराज्यीय जल-विवाद अधिनियम खण्ड-3 के अन्तर्गत संघ सरकार के पास जल-विवाद का प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत होने के एक वर्ष के भीतर न्यायाधिकरण स्थापित हो जाना चाहिए।
41. आवश्यक वस्तु अधिनियम की कार्यप्रणाली पर गहन अध्ययन किया जाए।
42. अनुच्छेद-307 के अन्तर्गत संघ द्वारा राज्यों के बीच अन्तरराज्यीय सीमा विवादों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए।
43. संघ एवं राज्य सरकारों के कार्य जिनका सम्बन्ध स्थानीय जनता से हो, वे स्थानीय भाषा में किए जाएँ तथा त्रि-भाषा सूत्र का क्रियान्वयन हो।

#### **क. राज्यपाल के चयन से सम्बन्धित**

- (1) जिस व्यक्ति को राज्यपाल बनाया जाए वह किसी न किसी क्षेत्र में प्रतिष्ठित होना चाहिए;
- (2) वह राज्य से बाहर का रहने वाला हो;
- (3) राजनीतिक रूप से तटस्थ व्यक्ति हो तथा स्थानीय (राज्य) गुटबाजी में रूचि न लेता हो;
- (4) सामान्यतः राजनीतिक प्रकरणों में कम रूचि लेने वाला रहा हो, विशेषतः हाल ही के दिनों में सक्रिय राजनीतिज्ञ नहीं हो;
- (5) अल्पसंख्यक वर्गों से सम्बद्ध व्यक्तियों को पर्याप्त अवसर दिया जाए;
- (6) यह वांछनीय होगा कि ऐसे किस व्यक्ति को राज्यपाल के रूप में नियुक्त न किया जाए जो केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी का राजनीतिज्ञ हो तथा राज्य में अन्य पार्टी शासन कर रही हों;
- (7) अनुच्छेद-153 में समुचित संशोधन करके राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व मुख्यमंत्री के परामर्श करने का प्रावधान किया जाए;
- (8) प्रधानमंत्री को चाहिए कि वह उपराष्ट्रपति तथा लोकसभा के अध्यक्ष से राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व परामर्श कर ले। यह परामर्श गुप्त तथा औपचारिक हो किन्तु इसे संवैधानिक दायित्व नहीं माना जाए;

- (9) पाँच वर्ष की पदावधि से पूर्व राज्यपाल को नहीं हटाया जाना चाहिए जब तक कि विशेष परिस्थिति न हो;
- (10) राज्यपाल को हटाने से पूर्व उसे सूचित किया जाए तथा स्पष्टीकरण का अवसर दिया जाए। यदि राज्यपाल इस क्रम में आपत्ति प्रस्तुत करे तो उपराष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष तथा सेवानिवृत्त प्रधान न्यायाधीश की एक समिति प्रकरण की जाँच करे तत्पश्चात् राष्ट्रपति कोई आदेश प्रदान करें;
- (11) पाँच वर्ष से पूर्व किसी राज्यपाल को हटाने, दूसरे राज्य में भेजने या स्वयं त्यागपत्र देने के प्रकरणों को संसद के दोनों सदनों में रखा जाए। यदि किसी राज्यपाल ने हटाने के विरुद्ध स्पष्टीकरण दिया हो तो वह भी सदन में प्रस्तुत किया जाए;
- (12) परम्परागत रूप में राज्यपाल पद त्यागने के पश्चात् पुनः राज्यपाल या उपराष्ट्रपति या राष्ट्रपति पद के अलावा कोई अन्य लाभ का पद धारण नहीं करते हैं। यदि कोई राज्यपाल त्यागपत्र देकर पुनः सक्रिय राजनीति में सम्मिलित होता है तो इसे भी नियंत्रित किया जाए;
- (13) बिना यह विचार किए कि किसी राज्यपाल ने कितनी अवधि तक कार्य किया, उसे एवं उसकी जीवित पत्नी को उचित पेंशन लाभ प्रदान किए जाए।

### ख. मुख्यमंत्री का चयन

- (अ) मुख्यमंत्री का चयन करते समय राज्यपाल को निम्नलिखित तथ्य ध्यान में रखने चाहिए -
  - (1) विधानसभा में अधिकतम सीटें रखने वाली पार्टी अथवा पार्टियों के गठबंधन को बुलाया जाए;
  - (2) राज्यपाल यह देखे कि सरकार बन गई है, न कि ऐसी सरकार बनाने का प्रयास करे जो उसकी नीतियों को आगे बढ़ाएँ;
- (ब) यदि एक ही पार्टी पूर्ण बहुमत में है तो उसके नेता को मुख्यमंत्री बना दिया जाएगा; यदि कोई भी दल पूर्ण बहुमत में नहीं है तो सरकार बनाने के क्रम (मुख्यमंत्री का चयन) में निम्नलिखित बातें क्रमशः ध्यान में रखी जाएँ -
  - (1) चुनाव से पूर्व बने गठबंधन को अवसर दे;
  - (2) ऐसी सबसे बड़ी पार्टी जो अन्य पार्टियों के समर्थन, जिसमें निर्दलीय भी सम्मिलित हैं, के साथ सरकार बनाने का दावा करती हो;
  - (3) मिली जुली संयुक्त सरकार में सम्मिलित सभी पार्टियों का एक पश्च निर्वाचकीय सम्मिलन (चुनाव पश्चात् बना संगठन);
  - (4) चुनाव पश्चात् बना गठबंधन जिसमें सरकार बनाने के लिए आपस में गठबंधन किए हुए कुछ दलों सहित अन्य दल, निर्दलियों को सम्मिलित करते हुए सरकार से बाहर रहते हुए सरकार का समर्थन करने की स्थिति।

ऊपर बताई गई प्रक्रिया के अनुसार राज्यपाल यह निश्चित करे कि कौन मुख्यमंत्री विधानसभा में बहुमत पर अधिक प्रभाव डाल सकता है।
- (स) कोई भी मुख्यमंत्री तब तक विधानसभा में बहुमत दल का नेता नहीं माना जा सकता जब तक कि वह कार्यग्रहण करने से 30 दिन के अन्दर विधानसभा में विश्वास मत प्राप्त न कर ले। यह कार्य धार्मिक अनुष्ठान की तरह पूर्ण निष्ठा से किया जाना चाहिए।

### ग. मंत्रिमंडल की बर्खास्तगी तथा सदन के सत्र बुलाना

- (1) राज्यपाल को विधानसभा के बाहर स्वयं के कंधों पर किसी मंत्रिमंडल के बहुमत में होने का जोखिम नहीं लेना चाहिए बल्कि यह विधानसभा में सिद्ध करवाया जाए;
- (2) बहुमत में होने तक किसी मंत्रिमंडल को बर्खास्त नहीं किया जाना चाहिए। यदि कोई मुख्यमंत्री (मंत्रिमंडल) बहुमत खो देने के पश्चात् भी त्यागपत्र न देता हो तो राज्यपाल उस मंत्रिमंडल को बर्खास्त करने को बाध्य होगा;



- (3) जब विधानसभा का सत्र चल रहा हो तो बहुमत का निर्णय सदन में होना चाहिए;
- (4) यदि सदन का सत्र न चल रहा हो तथा मंत्रिमण्डल ने बहुमत खो दिया हो तो इसका निर्णय विधानसभा में ही करवाया जाए;
- (5) सामान्य रूप से यही उचित होगा कि मुख्यमंत्री, को सदन का सत्र बुलाने के लिए 30 दिन की अवधि दी जाए; यदि कोई तात्कालिक काम न आ जाए जैसे - बजट पास करना (ऐसे में अवधि घटाई जा सकती है), विशेष परिस्थितियों में अवधि 60 दिन तक बढ़ाई जा सकती है;
- (6) बहुमत तथा सदन का विश्वास प्राप्त मंत्रिमण्डल द्वारा सदन का सत्र बुलाना, स्थगित करना या भंग करने की सलाह यदि वह असंवैधानिक नहीं है तो राज्यपाल को माननी पड़ेगी;
- (7) राज्यपाल कुछ आपातकालीन परिस्थितियों में सदन का सत्र बुलाने का निर्णय कर सकता है बशर्ते कि यह सुनिश्चित करना आवश्यक हो कि उत्तरदायी सरकार की व्यवस्था संविधान के निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप चलाई जा रही हो;
- (8) अनुच्छेद-174(1) के अनुसरण में राज्यपाल छः माह के अन्तराल पर सदन का सत्र बुला सकता है चाहे मुख्यमंत्री निर्धारित अवधि (6 माह में कम से कम एक सत्र) के बाद सत्र बुलाने की सिफारिश करता हो;
- (9) जब कोई मुख्यमंत्री (जो उस पार्टी का नेता नहीं है जिसे सदन में पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं है) कार्य ग्रहण करने के 30 दिन के अन्दर विधानसभा का सत्र बुलाने को तैयार नहीं है (या 60 दिन) तथा राज्यपाल यह पता लगा लेता है कि मुख्यमंत्री को विश्वास प्राप्त नहीं है तो राज्यपाल अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए सदन का सत्र बुला सकता है ताकि विश्वास का निर्णय हो जाए;
- (10) यदि किसी मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव का नोटिस सदन में निलम्बित पड़ा है तो यह प्रस्ताव विरोधी दल की वैध चुनौती का प्रतीक है। ऐसे में सत्रावसान करने की सलाह यदि कोई मुख्यमंत्री दे तो राज्यपाल को चाहिए कि वह मुख्यमंत्री को अविश्वास प्रस्ताव का सामना करने की कहे;
- (11) बहुमत खो चुके या खोने की संभावना वाला मंत्रिमंडल, राज्यपाल को विधानसभा भंग करने की सलाह दे तो राज्यपाल को सदन में इसका निर्णय करवाना चाहिए;
- (12) यदि कोई मंत्रिमंडल सदन में शक्ति परीक्षण नहीं करवाना चाहता तो राज्यपाल को विधानसभा भंग करने की सोचते हुए सम्बन्धित राजनीतिक दलों एवं मुख्य चुनाव आयुक्त से परामर्श कर नए चुनावों की व्यवस्था करवानी चाहिए;
- (13) यदि विधानसभा भंग की जानी है तथा शीघ्र नए चुनाव करवाने हैं तो प्रवर्तित मंत्रिमंडल से काम चलाऊ सरकार के रूप में बने रहने की कही जाए। यदि यह मंत्रिमंडल गंभीर कुशासन या भ्रष्टाचार का उत्तरदायी न हो तो;
- (14) यह परम्परा विकसित की जानी चाहिए कि कोई भी काम चलाऊ सरकार प्रमुख नीतिगत निर्णय न ले;
- (15) यदि कोई पराजित मंत्रिमंडल काम चलाऊ सरकार के रूप में कार्य नहीं करना चाहता तो राज्यपाल को विधानसभा भंग किए बिना राज्य में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश करनी चाहिए;
- (16) किसी राष्ट्रीय संकट या राज्य भर में उपद्रवों की स्थिति में शीघ्र चुनाव कराना संभव न हो तो लम्बी अवधि के लिए भी काम चलाऊ सरकार बनाई जा सकती है जो अगले चुनाव पहले तक कार्य करती रहे;
- (17) यदि विधानसभा के पाँच वर्ष पूरे नहीं हुए हैं तथा नए चुनाव कराने आवश्यक जान पड़ते हों तो राज्यपाल विधानसभा को भंग किए बिना अनुच्छेद-356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन की सिफारिश करें;
- (18) विधानसभा तथा विधान परिषद् में नामांकन करने के क्रम में राज्यपाल के पास कोई स्वविवेकाधीन शक्ति नहीं है। यदि नामांकन के समय न तो कोई मंत्रिमंडल गठित किया गया हो, न ही उसने त्यागपत्र दिया हो और नही उसने विधानसभा में बहुमत खोया हो तो ऐसी स्थिति में राज्यपाल को नया मंत्रिमंडल गठित होने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए;
- (19) जहाँ राज्य विश्वविद्यालय अनिनियमों के अन्तर्गत राज्यपाल को कुलाधिपति बनाया हुआ है तथा उसे ऐसे कर्तव्य प्रदान किए गए हैं जो अनुच्छेद-163(1) के अन्तर्गत यह आवश्यक नहीं है कि राज्यपाल हमेशा मंत्रिमंडल की सलाह पर ही कार्य करे लेकिन सामान्यतः मंत्रियों के परामर्श करके निर्णय लेना हितकर ही रहेगा।

### घ. विधेयकों की स्वीकृति

- (1) अनुच्छेद-200 के अन्तर्गत राज्यपाल के पास विधेयक स्वीकृति हेतु आते हैं उन विधेयकों पर कार्यवाही करते समय राज्यपाल को मंत्रिमंडल की सलाह को ध्यान में रखना चाहिए। केवल व्यक्तिगत रूप से नापसंदगी रखना श्रेयस्कर नहीं है;
- (2) राष्ट्रपति के पास विचार हेतु विधेयक भेजने से बना चाहिए। केवल कुछ विषयों जैसे अनुच्छेद-31 (क) (1) तथा 31 (ग) के अनुसार अनुच्छेद-14 एवं 19 को लागू होने से उन्मुक्ति के क्रम में, अनुच्छेद-254 (2) के क्रम में समवर्ती विषय पर केन्द्रीय कानून से असंगतता, संघीय विधि के अधीन स्थापित प्राधिकरण द्वारा एकत्रित, उत्पादित, वितरित, या विक्रित पानी या विद्युत पर कर लगाने सम्बन्धी तथा अनुच्छेद-288(2) की वैधता सुनिश्चित करने एवं वाणिज्य तथा व्यापार पर प्रतिबंध के प्रकरण जिन पर राष्ट्रपति के पूर्वानुमति आवश्यक हो इत्यादि से सम्बन्धित विधेयक राष्ट्रपति हेतु आरक्षित करने चाहिए;
- (3) जब मंत्रिमंडल स्वयं यह सिफारिश कर रहा हो कि अमुक विधेयक राष्ट्रपति के लिए आरक्षित किया जाए तो राज्यपाल को तुरंत ऐसा करना चाहिए यदि राज्यपाल समझता है कि वह स्वयं कोई कार्यवाही कर सकता है। (विशेषाधिकार) तो एक माह के भीतर ऐसा करे;
- (4) राज्य में किसी विधेयक के बारे में भेजा जाने वाला पत्र स्वतः पूर्ण होना चाहिए जिसमें सभी वास्तविक व्ययों, मुद्दों और आधारों का संक्षिप्त उल्लेख हो। इसमें संविधान के संगत उपबंध भी वर्णित किए जाने चाहिए;
- (5) अनुच्छेद-254(2) के अधीन भेजे जाने वाले पत्र में स्पष्ट रूप से संघी विधि या किसी अन्य विधि (संगत) जिसमें प्रकरण असंगत या प्रतिकूल बताया गया है, वर्णित की जानी चाहिए;
- (6) राष्ट्रपति द्वारा ऐसे विधेयकों (जो उसके पास राज्य से आएँ) पर चार माह में विचार कर निपटारा करना चाहिए;
- (7) यदि राज्य सरकार से ऐसे विधेयक पर (अनुच्छेद-20) पुनर्विचार करवाना हो तो यह कार्यवाही संघ सरकार द्वारा 2 माह के भीतर की जानी चाहिए;
- (8) संघ द्वारा बार-बार स्पष्टीकरण माँगने की बजाय एक ही पत्र में सम्पूर्ण तथ्य इंगित कर देने चाहिए;
- (9) अनुच्छेद-201 के परन्तुक के अधीन राज्य से स्पष्टीकरण प्राप्त होने या पुनर्विचारित विधेयक प्राप्त होने के बाद 4 माह के भीतर मामला निपटाया जाए;
- (10) यह आवश्यक नहीं है कि उपर्युक्त वर्णित समय-सीमाएँ संविधान में सम्मिलित की जाएँ;
- (11) राष्ट्रपति की मंजूरी सामान्यतः इस आधार पर नहीं रोकी जानी चाहिए कि संघ सरकार उसी विषय पर भविष्य में एक व्यापक कानून बनाने का विचार कर रही है;
- (12) मूल अधिकारों को कम करने तथा राज्य की संवैधानिक व्यवस्था को हानि पहुँचाने वाले विधेयकों को संघ सरकार अनुच्छेद-355 के अनुसरण में राष्ट्रपति को मंजूरी देने से मना कर सकती है;
- (13) यदि संघ सरकार ऐसा समझती है कि किसी एक राज्य के विधेयक के कानून बनने से पूर्व कुछ संशोधन आवश्यक हैं तो राष्ट्रपति अनुच्छेद-201 के परन्तुक (क) के अनुसार उस विधेयक को राज्यपाल के माध्यम से सुझाए गए संशोधनों का उल्लेख करते हुए एक उपयुक्त संदेश के साथ राज्य को पुनर्विचार हेतु लौटा सकता है। जब संवैधानिक उपाय किए जा सकते हों तो तथाकथित 'सशर्त मंजूरी' प्राप्त करने की परम्परा का अनुसरण न किया जाए;
- (14) संघ सरकार द्वारा किसी विधेयक को मंजूरी न देने का कारण राज्य सरकार को बताया जाना चाहिए;
- (15) राज्य सरकारों द्वारा अध्यादेशों को विधानमंडल में प्रस्तुत करके अधिनियम पारित करना चाहिए न कि यंत्रवत बार-बार पुनर्प्रख्यापित करने की गलत परम्परा का पालन हो;
- (16) अध्यादेशों को पुनर्प्रख्यापित करने का निर्णय आपातकालीन परिस्थितियों में मंत्रिमंडल के द्वारा होना चाहिए;
- (17) राष्ट्रपति को किसी अध्यादेश को प्रथम बार पुनर्प्रख्यापित करने से नहीं रोकना चाहिए यदि वह वैधानिक है किन्तु कोई राज्य सरकार यह तर्क प्रस्तुत न करे कि विधेयक के रूप में प्रतुत करने के लिए पर्याप्त समय नहीं था। इस

प्रकार की स्थिति दूसरी बार आने पर राज्य विधानमण्डल द्वारा व्यवस्था (विधेयक बनाना) की जानी चाहिए;

(18) अनुच्छेद-213(1) के परन्तुक के अधीन अध्यादेशों का राष्ट्रपति द्वारा निपटारा 15 दिन के अन्दर कर देना चाहिए।

#### **ड. अनुच्छेद-356 के प्रावधान**

- (1) इस अनुच्छेद का प्रयोग बहुत कम तथा अंतिम विकल्प के रूप में किया जाना चाहिए जब तक कि अन्य तरीकों से संवैधानिक तंत्र को भंग होने से रोका न जा सके या स्थिति में सुधार न किया जा सके;
- (2) राज्य स्तर पर अनुच्छेद-356 का सहारा लेने से पूर्व यथासंभव अन्य प्रयास किए जाएँ;
- (3) तत्काल कार्यवाही करने से पूर्व राज्य सरकार को स्पष्ट चेतावनी दी जानी चाहिए तथा अनुच्छेद-356 के अधीन कार्यवाही से पूर्व राज्य सरकार के स्पष्टीकरण पर विचार किया जाए;
- (4) बाहरी आक्रमण या आंतरिक गड़बड़ के समय किसी राज्य का कार्य ठप्प होने पर अनुच्छेद-355 के अधीन केन्द्र सरकार को वैकल्पिक उपायों का प्रयोग करना चाहिए;
- (5) राजनीतिक शासन भंग होने पर भी सभी विकल्पों पर गंभीरतापूर्वक विचार एवं सार्थक प्रयास करने के पश्चात् ही अनुच्छेद-356 का सहारा लिया जाए;
- (6) राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाए तथा संसद में विचार किए बिना विधानसभा भंग नहीं करनी चाहिए;
- (7) राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा विधानसभा भंग किए बिना ही की जा सकती है;
- (8) राज्यपाल की रिपोर्ट, जिसके आधार पर अनुच्छेद-356 के अधीन उद्घोषणा की गई है, कि पूर्ण रूप से प्रचार माध्यमों द्वारा जनसाधारण तक पहुँचाया जाए;
- (9) सामान्यतः किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन की घोषणा राज्यपाल की रिपोर्ट पर ही की जानी चाहिए।

#### **च. अन्य सुझाव**

- (1) राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को तदर्थ या पाक्षिक रिपोर्ट भेजते समय मुख्यमंत्री को विश्वास में लेना चाहिए जब तक कि इसके विपरीत कोई विशेष कारण न हो;
- (2) अनुच्छेद-163 में किए गए राज्यपाल की स्वविवेकाधिकार शक्तियाँ यथावत् रहनी चाहिए;
- (3) जब किसी मुद्दे पर राज्यपाल को लगे कि मंत्रिमंडल की सलाह का पालन उसके लिए संवैधानिक दृष्टि से अनुचित है तो उसे स्वविवेकाधिकार शक्तियों का प्रयोग करने से पूर्व मंत्रिमंडल को राजी करना चाहिए;
- (4) महाराष्ट्र, गुजरात, नागालैण्ड, मणिपुर, सिक्किम तथा अरुणाचल प्रदेश के राज्यपालों को सौंपे गए विशिष्ट कार्यों की सम्पूर्ति हेतु उन्हें मंत्रिमंडल की सलाह मानने की बाध्यता नहीं है फिर भी राज्य प्रशासन से जुड़े विषयों पर मंत्री से सलाह करना हितकर है;
- (5) यह न तो व्यावहारिक होगा और न ही वांछनीय कि राज्यपाल की स्वविवेकाधीन शक्तियों के क्रम में मार्ग निर्देशनों का निर्माण किया जाए।

#### **वेतन आयोग**

- |    |                                      |   |         |
|----|--------------------------------------|---|---------|
| 1. | प्रथम वेतन आयोग (वरदाचारियार)        | - | 1946-47 |
| 2. | द्वितीय वेतन आयोग (जगन्नाथ दास)      | - | 1957-59 |
| 3. | तृतीय वेतन आयोग (रघुवर दयाल)         | - | 1970-73 |
| 4. | चतुर्थ वेतन आयोग (न्यायमूर्ति सिंघल) | - | 1983-86 |
| 5. | पंचम वेतन आयोग (न्यायमूर्ति पांडियन) | - | 1994-97 |

## विभागीय जाँच आयोग एवं समितियाँ

केन्द्र एवं राज्य सरकारों के तकनीकी विभागों की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में भी अनेक आयोग एवं समितियाँ समय-समय पर गठित होती रही हैं। भारत में शिक्षा, वित्त, गृह, स्वास्थ्य तथा उद्योग के क्षेत्र में सर्वाधिक समितियों ने रिपोर्ट दी हैं। इन रिपोर्टों की अनुशंसा के आधार पर सम्बन्धित विभागों की प्रशासनिक संरचनाएँ परिवर्तित की जाती रही हैं। स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार हेतु राष्ट्रपति स्तर पर 'हैल्थ सर्वे एंड डिवेलपमेंट कमेटी (भोर कमेटी) 1946, हैल्थ सर्वे एंड प्लानिंग कमेटी (मुदालियार कमेटी) 1962, चडढ़ा कमेटी 1963, मुखर्जी कमेटी 1965 एवं 1966, कमेटी ऑन इन्टीग्रेशन ऑफ हैल्थ सर्विसेज (जंगवाला कमेटी) 1967, कमेटी ऑन मल्टीपरपज वर्कर्स अंडर हैल्थ एवं फ़ैमिली प्लानिंग (करतारसिंह कमेटी) 1973, श्रीवास्तव कमेटी 1975 तथा कमेटी ऑन हैल्थ मैनपावर (बजाज कमेटी) 1985 गठित की गई। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (डॉ. राधाकृष्णन) 1954, उच्च शिक्षा समिति (के. एल. श्रीमाली) 1956, शिक्षा आयोग (डी. एस. कोटारी) 1964 तथा यशपाल समिति प्रमुख हैं। सन् 1966 में भारतीय विदेश सेवाओं की एन. आर. पिल्लई समिति भी विभागीय कार्यों से सम्बन्धित थी। इसी तरह 1955 में आचार्य जे. बी. क पलानी समिति ने रेलवे में भ्रष्टाचार के क्रम में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी।

इसके अतिरिक्त श्रम आयोग, पुलिस आयोग तथा विधि आयोग की रिपोर्टों के आधार पर भी प्रशासनिक सुधार किए जाते रहे हैं। संवैधानिक निकाय निर्वाचन आयोग, वित्त आयोग, लोक सेवा आयोग तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक इत्यादि भी आवश्यकता होने पर किसी प्रशासनिक विषय पर सरकार को परामर्श प्रदान कर सकते हैं लेकिन इन सबका अपना एक विशिष्ट कार्य क्षेत्र निश्चित है। राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग भी सामाजिक प्रशासन में सुधार के लिए सुझाव देते रहे हैं। योजना आयोग चूँकि स्वयं एक 'सुपर केबिनेट' के रूप में स्थापित हो चुका है अतः इस आयोग का परामर्श केन्द्रीय सचिवालय तथा राज्य सरकारों द्वारा प्रायः स्वीकार किया जाता रहा है। केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा जिला नियोजन तंत्र में प्रशासनिक संशोधन योजना आयोग द्वारा गठित समितियों या कार्यदलों की अनुशंसा पर आधारित होते हैं। संसद की अनुमान समिति, लोक लेखा समिति तथा लोक उपक्रम समिति भी समय-समय पर प्रशासनिक सुधारों के सुझाव देती रही हैं।

## अन्य प्रयास

भारतीय प्रशासन में अनेक बुद्धिजीवी तथा चिन्तनशील लोक सेवकों द्वारा सरकार को प्रशासनिक सुधारों के क्रम में सुझाव दिए जाते रहे हैं। सन् 1952 में आर. ए. गोपालास्वामी ने मंत्रिमंडल सचिव को 'कार्यकुशलता व द्वि हेतु एक मेमोरेन्डम' प्रस्तुत किया था जिसमें ओ. एण्ड एम. व्यवस्था का सुझाव था। सन् 1954 में अशोक चन्दा ने लोक सेवाओं में संवद्धि हेतु नई अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना तथा सत्ता के प्रत्यायोजन के क्रम में एक टिप्पणी सरकार को प्रस्तुत की थी। इसी प्रकार सन् 1975 में एल. पी. सिंह तथा एल. के. झा. ने 'प्रशासन में कार्यकुशलता व द्वि' पर एक सुझावात्मक दस्तावेज भारत सरकार को दिया गया था।

गैर सरकारी तथा स्वयंसेवी संगठनों ने भी प्रशासनिक सुधारों में महती भूमिका निभाई है। राजनीति दल, दबाव समूह, मीडिया तथा अन्तरराष्ट्रीय समझौते भी प्रशासनिक सुधारों में सहायक रहे हैं। सन् 1974 में जयप्रकार नारायण द्वारा प्रजातंत्र के लिए नागरिक (Citizens for Democracy) आन्दोलन चलाया गया था जिसमें प्रशासन को ईमानदार तथा स्वच्छ एवं प्रजातंत्र को शक्तिशाली बनाने में जनता का सहयोग माँगा गया था। निस्संदेह ऐसे आन्दोलनों से कतिपय लोक सेवक प्रेरणा पाकर निजी स्तर पर प्रयास करने के उत्सुक होते हैं। पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी. एन. शेषन, सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे, कॉमन काज संस्था के एच. डी. शौरी इत्यादि प्रेरक का कार्य करते हैं।

## राज्य सरकारों द्वारा प्रशासनिक सुधार

भारत में केन्द्रीय स्तर पर भारत सरकार की विभिन्न समितियों एवं आयोगों की अनुशंसाओं पर होने वाले सुधार केन्द्रीय सचिवालय एवं इसके संस्थाओं पर लागू होते हैं। राज्य सरकारें भी अपने कार्य क्षेत्र में स्थित प्रशासनिक तंत्र में समयानुकूल परिवर्तन करती रही हैं। केरल प्रशासनिक सुधार आयोग (1958), आन्ध्रप्रदेश प्रशासनिक सुधार समिति (1960), राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति (1963), राजस्थान राज्य प्रशासनिक सुधार समिति (1999-2002), पश्चिमी बंगाल प्रशासनिक

सुधार समिति (1963), त्रिपुरा प्रशासनिक सुधार समिति (1998-99 तरूण दत्त कमेटी) इत्यादि कुछ उदाहरण हैं। राज्यों में भी विभिन्न विभागों की समस्याओं से सम्बन्धित विशेषज्ञ (विभागीय) समितियाँ समय-समय पर प्रतिवेदन देती रही हैं जैसे - उत्तर प्रदेश के राजस्व विभाग द्वारा गठित 'जिला स्तरीय प्रशासन समिति' (1985) एवं राजस्थान नर्सिंग सेवा पुनर्गठन समिति इत्यादि।

सन् 1995 में भारत सरकार द्वारा गठित वोहरा समिति की रिपोर्ट ने राजनेताओं अधिकारियों तथा अपराधियों के गठबंधन तथा भ्रष्टाचार के क्रम में अत्यंत चिंताजनक तथ्य सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किए हैं। इस प्रकार सन् 1998 में पी. जैन आयोग ने अव्यावहारिक तथा निर्थक प्रशासनिक कानूनों को तुरंत समाप्त करने की अनुशंसा की है। निस्संदेह वर्तमान खुली अर्थव्यवस्था के दौर में भारतीय प्रशासन में तत्काल सुधार आवश्यक हैं। 'नागरिक अधिकार पत्र' तथा 'सूचना का अधिकार' की दिशा में हो रहे प्रयास शुभ लक्षण कहे जा सकते हैं।

## अध्याय-36

# सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ

## (Generalist Specialists Controversy)

किसी भी देश में प्रशासन को अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्मिकों की आवश्यकता होती है। कार्मिकों में आवश्यक ज्ञान दक्षता तथा गुण होना चाहिए जिससे वह विविध प्रशासनिक दायित्वों को पूरा कर सकें। प्रशासन में क्षेत्रीय तथा लम्बवत् विभाजन होता है। क्षेत्रीय विभाजन क्षेत्रीय या प्रादेशीय स्तर पर किया जाता है जहां पर कार्मिक अवस्थित है। दूसरी तरफ लम्बवत् विभाजन कार्य या दायित्वों के आधार पर किया जाता है जो कर्मचारियों या उनके समूहों को सौंपा गया है। लम्बवत् विभाजन सामान्यक एवं विशेषज्ञ श्रेणी के अंतर्गत आता है। यह सब श्रेणी के अंतर्गत विधिवत रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। सरकार में प्रशासनिक अधिकारियों के वर्गीकरण या प्रवर्गीकरण का मौलिक आधार केवल कार्य या दायित्व है। इस इकाई में हम सामान्यकों एवं विशेषज्ञों के कार्य, उनके संबंधों की प्रकृति एवं प्रशासन पर इसके प्रभाव की विवेचना करेंगे। इसके साथ ही इनके संबंधों में सुधार के लिये प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा दिये गये सुझावों की भी विवेचना करेंगे।

### सामान्यक एवं विशेषज्ञ-अर्थ

विशेषज्ञ वह सिविल कर्मचारी है जो अपने शिक्षा एवं अनुभव से प्रशासन के किसी विशेष विषय में दक्षता प्राप्त की हो। इसके अंतर्गत स्वास्थ्य चिकित्सक, अभियंता तथा वैज्ञानिक आदि आते हैं। प्रशासन में सामान्यकों का चयन उनके विश्वविद्यालय योग्यता के आधार पर होता है चाहे उन्होंने किसी भी विषय में शिक्षा प्राप्त की हो अर्थात् विशेषज्ञों के विपरीत सामान्यकों का चयन प्रत्यक्षतः एक निश्चित स्तर की शिक्षा प्राप्त करने पर, जिसमें आवश्यक रूप से उनके न्यूनतम स्तर के बौद्धिक एवं मानसिक विकास के स्तर का पता चलता हो, के आधार पर किया जाता है। प्रशासन में सामान्यकों का चयन इसलिए नहीं किया जाता है कि उन्होंने किसी विशेष क्षेत्र में दक्षत प्राप्त की है या किसी विशेष विषय में शिक्षा प्राप्त की है अथवा तत्संबंधी विभाग में प्रशिक्षण या अनुभव प्राप्त किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रशासन स्वतः सामान्यकों के विशेषीकरण की विषय वस्तु हो गया है।

नागरिक सेवा में प्रवेश के लिये सामान्यक को साहित्य या इतिहास या समाज शास्त्र, अथवा भौतिक या जीव विज्ञान या गणित अथवा वाणिज्य या लेखा तथा प्राविधिक विषय जैसे-अभियांत्रिकी या चिकित्सा में स्नातक (बी.ए., बी.एस.सी., बी.कॉम., बी.टेक. या एम.बी.बी.एस. उत्तीर्ण) होना चाहिए। स्नातक स्तर पर पढ़े गये विषय के आधार पर नागरिक सेवा हेतु उसे विशेषीकरण की आवश्यकता से अलग भी किया जा सकता है एवं उसे विशेष कार्य जैसे कृषि, स्वास्थ्य, समाज सेवा आदि किसी विशेष विभाग में पद स्थापना नहीं किया जा सकता। किसी विभाग में अथवा प्रादेशिक स्तर पर सामान्यक लोक सेवक के पदस्थापन हेतु उसके शिक्षा के विषय अथवा प्रशिक्षण या प्रशासकीय अनुभव से कोई संबंध नहीं होता है। प्रवियोगी परीक्षा द्वारा लोक सेवा में चयन हेतु सभी विषय के स्नातकों के लिये खुला है जैसे - कला, समाज विज्ञान, वाणिज्य, अभियान्त्रिकी, तकनीकी शिक्षा आदि। किसी विभाग में या प्रादेशिक स्तर पर जैसे जिला अथवा संभाग (जिलों का समूह), या सचिवालय में पद प्राप्त करने के लिये ये योग्यताएं पर्याप्त हैं।

### सामान्यक सामान्यतया पोस्डकोर्ब

POSDCORB (Planning) योजना, (Organising) संगठन (Supervising) पर्यवेक्षण, (Direction) निर्देशन, (Coordinating)

समन्वय, (Reporting) प्रतिवेदन एवं (Budgeting) बजट निर्माण, का कार्य सम्पादित करता है।

किसी भी विभाग या सरकारी सचिवालय अथवा स्वायत्त संस्था में जैसे-जैसे हम उत्तरदायित्व के स्तर पर ऊपर जाते हैं-लिपिक से लेकर कार्यालय प्रभारी अधीक्षक तक एवं उससे भी ऊपर विभाग या मंत्रालय के सचिव तक, लोक सेवकों के कार्यों की प्रकृति सामान्यक प्रकार की होती चली जाती है। यहां तक कि तकनीकी अथवा कार्यात्मक विभाग में जैसे सिंचाई एवं उसकी क्षमता, कृषि, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग का सचिव, तथा निष्पादन विभाग का अध्यक्ष नीति निर्माण, प्रशासनिक संस्था का नियंत्रण, निर्देशन, निरीक्षण, कर्मचारियों पर नियंत्रण क्षेत्र में संगठन के अंदर एवं बाहर संयोजन एवं लोक संपर्क का सामान्यक कार्य करता है। तकनीकी या कार्यात्मक विभाग में संबंधित विभाग की विषय वस्तु निर्विवाद रूप से पर्याप्त रूप में रहती है।

आधुनिक युग में प्रशासन का कार्य बहुआयामी एवं जटिल हो गया है। राज्या कानून एवं व्यवस्था कायम रखने तथा नियामकीय कार्यों में लगा हुआ है। आधारभूत उद्योगों की स्थापना एवं उनका संचालन जैसे-इस्पात खान एवं हैवी इलेक्ट्रिकल इन दिनों राज्य के कार्य क्षेत्र में है। राज्य विकलांगों का कल्याण तथा निर्बल व दूबों एवं बच्चों के स्वास्थ्य की भी देखभाल करता है। केवल इतना ही नहीं आणविक शक्ति का उत्पादन, वैज्ञानिक परीक्षण एवं उनका संचालन तथा तकनीक में नए अनुसंधानों को समाहित करना आधुनिक राज्य के लिये अनिवार्य है। भारत जैसे देश में, जहां जनसंख्या में किसानों की बहुलता है। ऊपर वर्णित कार्यों के अतिरिक्त राज्य उसे वित्तीय सहायता, तकनीकी एवं पूंजी का सहयोग भी दे रहा है। हमारे देश में साक्षरता का प्रतिशत काफी कम है। अतः ये सभी कार्य सरकार पर अत्याधिक उत्तरदायित्व बढ़ाते हैं। एक तरह से प्रशासन का कार्य बहुआयामी एवं जटिल हो चुका है। इस प्रकार की प्रवृत्ति पश्चिमी देशों में विशेषकर प्रथम विश्वयुद्ध के बाद दृष्टिगोचर हुई है एवं भारत में स्वतंत्रता के पश्चात्। लोक कल्याणकारी राज्यों में विभिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने के लिये प्रशासन में विशेषज्ञों की नियुक्ति व्यापक पैमाने पर विभिन्न स्तरों पर अनेक विभाग एवं मंत्रालयों में हो रही है।

विशेषज्ञ वह व्यक्ति है जिसे किसी विशेष क्षेत्र में विशेष ज्ञान हो। प्रशासन में विशेषज्ञों के कार्यों को क्रमबद्ध करने के लिये उनकी नियुक्ति संवर्ग में होती है। जैसे-लोक सेवाओं के समय यथा अभियांत्रिकी, चिकित्सा, सांख्यिकीय, कृषीय वैज्ञानिक, कम्प्यूटर वैज्ञानिक, यदि। निरीक्षण अथवा निर्देशन स्तर पर सामान्य प्रशासकों की संख्या में उतनी व द्धि नहीं हुई है जितनी संख्या में उत्तरदायित्व के साथ विशेषज्ञों में हुई है। प्रत्येक लिपिक, टंकण, आशुलिपिक, लेखा लिपिक, आदि प्रत्येक सभी विभागों में प्रादेशिक स्तर पर नियुक्त किये जाते हैं। लेकिन वे एक प्रशासक का कार्य निरीक्षण, नियंत्रण, समन्वय एवं जन सम्पर्क का कार्य नहीं करते हैं। अतः ये कर्मचारी या अधिकारी जो सामान्य रूप से दैनिक कार्यों में लगा हुआ है, उसे यहां पर सामान्यक एवं विशेषज्ञ की भूमिका से अलग रखा गया है।

विशेषज्ञों की पदस्थापना प्रधानमंत्री, मुख्य मंत्री अथवा नगर महापौर (सिटीमेयर) जैसे कि मुख्य कार्यपालक अधिकारी के रूप में भी विशेष प्रशासकीय सहायता एवं अनुसंधान के लिये होती है। स्टाफ अभिकरण में भी जैसे-विभाग अथवा लोक उद्यम में विशेषज्ञ- यथा विधिवेत्ता अथवा सांख्यिकीय प्रशासक को सहयोग देता है।

### सामान्यक एवं विशेषज्ञ के मध्य संबंध

कई कारणों से सामान्यकों एवं विशेषज्ञों के बीच का विवाद सामन आया है। प्रथम वे अलग-अलग पदसोपानों के अंतर्गत संगठित हैं जैसे विभिन्न स्तरों के बीच अधीक्षक अधीनता के सम्बंधों का समूह। अतः सामान्यक एवं विशेषज्ञ के बीच का सम्पर्क कट जाता है तथा वे एक दूसरे को ईर्ष्या एवं संकीर्ण भावना से देखते हैं। दूसरे, कुछ अपवादों को छोड़कर नीति निर्माण का दायित्व एवं प्रशासनिक संस्थाओं के प्रबंध का नियंत्रण उच्च स्तरों पर विशेषज्ञों के स्थान पर सामान्यकों को सौपा गया है। तीसरे सामान्यक एक विभाग से दूसरे विभाग में एक ही प्रकार के कार्यों के लिए यथा लोक उद्यम में अथवा स्थानीय प्रशासन में बिना रोक-टोक के आता-जाता रहता है, जबकि दूसरी तरफ विशेषज्ञों का स्थानान्तरण अथवा पदोन्नति उसके सम्बद्ध विभाग में ही होती है। इस प्रकार के विरोधाभास की स्थिति ने प्रत्यक्षतः सामान्यकों में एक सर्वश्रेष्ठ प्रशासक होने का भाव पैदा कर दिया है जबकि दूसरी तरफ विशेषज्ञों में हीनता एवं उपेक्षा का भाव पैदा किया है। सरकारी विभागों में सचिव का पद, यहां तक कि अधिकांश निष्पादन विभाग में विभागाध्यक्ष का पद सामान्यकों के लिए आरक्षित रहता है। वेतन भी विशेषज्ञों की तुलना में सामान्यक अधिक पाता है। सामान्यकों के विशेषाधिकार की यह स्थिति विशेषज्ञों के आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाती है जिसके

परिणामस्वरूप उनमें नैतिकता एवं विश्वास की कमी हो जाती है।

सामान्यक एवं विशेषज्ञ निजी उद्योग-धंधों एवं व्यापार में भी कार्य करते हैं लेकिन लोक प्रशासन की भांति उनके संबंध कटुता एवं ईर्ष्या से भरे नहीं होते हैं क्योंकि निजी प्रशासन में सामान्यकों की तरह ही विशेषज्ञ भी जैसे- अभियान्त्रिकी, लेखाकार आदि प्रबंधक एवं प्रशासन के उच्च स्तर के अधिकारी के रूप में कार्य करते हैं।

हाल ही में भारत में लोक सेवा में प्रवेश के लिये कला (सामाजिक विज्ञान सहित) एवं विज्ञान में विश्वविद्यालयीय शिक्षा के आधार शिक्षा के आधार को व्यापक बनाकर अभियांत्रिकी, चिकित्सा, एवं तकनीकी के स्नातकों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। अतः मैकाले की पुरानी संस्कार शिक्षा विश्वविद्यालय स्नातक "पथी का फूल" जो लोकसेवा में चयन हेतु सर्वोत्तम माना जाता था, यह वर्तमान भारत में अब अपनी प्रासंगिकता को खो चुका है। अब भारतीय प्रशासनिक सेवा में आने वाले (भारतीय नागरिक सेवा का उत्तराधिकारी) पदाधिकारी-जो तीन अखिल भारतीय सेवाओं में से एक है-तीनों अखिल भारतीय सेवा-केन्द्रीय सेवाओं (अर्थात् विदेश सेवा, लेखा एवं अंकेक्षण, आय कर, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क आदि) में से अधिक विशेषाधिकृत है। अति तकनीकी पद जैसे विशेषज्ञ, जो केन्द्रीय सेवा के सदस्यों द्वारा भरा जाता है, को छोड़कर भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य क्षेत्र एवं सचिवालय दोनों स्तरों के विभागों में उच्च पदों पर नियुक्त किये जाते हैं। केन्द्रीय सेवाओं जिसमें विशेषज्ञ सेवाओं को भी शामिल किया गया है के अतिरिक्त वैज्ञानिक, विधिवेत्ता, अभियांत्रिकी, अर्थशास्त्री, एवं अन्य संवर्ग भी विशेषज्ञों की श्रेणी में आते हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों को भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा के समान ही राज्य प्रशासन एवं केन्द्रीय प्रशासन में पदस्थापित किया जाता है, लेकिन वास्तव में भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा के सदस्य सामान्यक नहीं हैं। केवल भारतीय प्रशासनिक सेवा ही भारत में वास्तविक सामान्यक लोक सेवा है। भारतीय प्रशासनिक सेवा का सदस्य राज्य प्रशासन में सहायता कलेक्टर, आयुक्त के पद से अपनी सेवा को प्रारम्भ कर निष्पादन विभाग जैसे-कृषि, समाज कल्याण, बिक्रीकर आदि का विभागध्यक्ष एवं राज्य सचिवालय के किसी विभाग में सचिव तक बन जाता है। राज्य प्रशासन में दस वर्ष या इसके आस-पास व्यतीत करने पर भारतीय प्रशासनिक सेवा के कुछ सदस्यों को केन्द्रीय सचिवालय में स्थानांतरित कर दिया जाता है एवं कुछ क्षेत्रों में उसे किसी विभाग। मंत्रालय में सचिव बना दिया जाता है। इनमें से कुछ को पुनः केन्द्रीय लोक उद्यम में प्रबन्ध निदेशक या अध्यक्ष के पद पर प्रतिनियुक्त कर दिया जाता है।

### सामान्यकों के पक्ष में तर्क

पारंपरिक रूप से भारतीय लोक सेवाओं को उच्च प्रशासनिक वर्ग एवं अन्य कनिष्ठ तकनीकी सेवा के आधार पर विभाजित कर संगठित किया गया है। स्थायी लोक सेवा के संगठन पर प्रसिद्ध "नार्थ कोट ट्रेवेलयान प्रतिवेदन 1953" में इस द्वैधता को देखा जा सकता है। प्रतिवेदन में यह सुझाव दिया गया कि प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर शिक्षित एवं उद्यमी युवकों द्वारा प्रशासन के उच्च पदों को भरा जाना चाहिए। वर्तमान समय में शैक्षणिक आधार पर भर्ती किये जाने वाले इस प्रशासनिक संवर्ग को सामान्यक कहा जाने लगा है। 1854 में मैकाले प्रतिवेदन में विशेषज्ञों पर सामान्यकों की महत्ता प्रतिपादित की गयी थी। स्वतंत्रता के समय तक भारतीय लोक सेवा के संगठन का यही आधार एवं दर्शन रहा है परंतु सरकार के कल्याणकारी कार्यों में व द्धि के साथ ट्रेवेलयान एवं मैकाले दर्शन पर प्रश्नचिन्ह लगा तथा उसे गम्भीर चुनौती मिली।

पारंपरिक रूप से सामान्यक लोक सेवाओं का चयन एवं उनको सचिवालय सहित किसी भी विभाग में उच्च पदों पर पदस्थापित करने के पीछे प्रमुख विचार यह रहा है कि विधिवत् सेवा-कालीन प्रशिक्षण के बिना ही बुद्धिमान युवक जो विश्वविद्यालय स्नातक हो, यह पद प्राप्त करेगा। सामान्यक लोक सेवा के पक्ष में दूसरा विचार यह था कि प्रशासन के आवश्यकतानुसार इसमें आने वाले ये युवा प्रशासक नीति-निर्माण में सरकार को सलाह देने का कार्य करेंगे एवं सरकारी आदेशों को लागू करने के लिये निर्णय लेंगे। तकनीकी विशेषज्ञ इन दायित्वों को पूरा करने के लिये तत्संबंधी विषय में सहायता देंगे।

सामान्यकों के पक्ष में कई तर्क दिये गये हैं। उनमें व्यापक दृष्टि एवं विचारों में लचीलापन होता है। अपने आपको किसी भी विभाग में एवं किसी भी स्तर पर समायोजित कर सकते हैं तथा प्रशासन में किसी भी विषय को समझकर निर्णय कर सकते हैं। जैसा कि ये सामान्य सेवा प्रारम्भ कर कार्यात्मक, सार्वजनिक एवं राजनीतिक अनुभव प्राप्त कर किसी भी विभाग में उच्च पद प्राप्त करने के लिये अपनी क्षमता में व द्धि करते हैं एवं उस पद को शक्तिशाली बनाते हैं।

इसके अतिरिक्त यह तर्क दिया जाता है कि सामान्यक मध्यस्थ का कार्य करता है। विशेषज्ञ एवं राजनीतिज्ञ के बीच, आम जनता



एवं सरकार के बीच, दबाव समूह एवं लोकहित के प्रतिनिधि, संसद, विधायिका यथा राजनीतिक कार्यपालिका के बीच एवं साथ ही विरोधाभासी विचारों एवं पक्षों के बीच पंच का कार्य करता है। ऐसा माना जाता है कि विशेषज्ञों की अपेक्षा सामान्यक "मंत्री के विचारों" को अच्छे तरीके से समझ सकता है। तकनीशियनों या विशेषज्ञों द्वारा अपनाये गए अति एवं उग्र नीतियों को वे संयमित करते हैं। विशेषज्ञ खर्चीले प्रस्ताव का समर्थक होता है जबकि सामान्यक व्यावहारिक प्रस्ताव का समर्थन करता है।

### विशेषज्ञों के पक्ष में तर्क

दूसरी तरफ, विशेषज्ञों के समर्थकों ने सामान्यकों के कमजोर बिंदुओं पर जोर दिया है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य जब ब्रिटेन एवं भारत में सामान्यक लोक सेवा की स्थापना की गयी थी उस समय प्रशासन में अत्याधिक विशेषीक त ज्ञान की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि तब इसका कार्य केवल शांति व्यवस्था बनाए रखना एवं नियामकीय कार्यों को पूरा करना था। सामान्यक के संबंध में यह आलोचना है कि विशेषीक त शिक्षा के अभाव में अथवा संबंधित विभाग में सेवा कालीन प्रशिक्षण के बिना ही उसने आवश्यक व्यावसायिकता या किसी विभाग के कार्य के ज्ञान का गहराई से विकास नहीं किया है। इसके फलस्वरूप गलत नीति-निर्माण होता है एवं नीति की मौलिक समीक्षा को कठिन बना देता है। नीति के कार्यान्वयन के लिए अपनाए गये तरीके भी अप्रभावी हैं। प्रशासन के अंदर एवं बाहर विशेषज्ञों से परामर्श के लिए प्रभावी संचार व्यवस्था स्थापित नहीं की गयी है क्योंकि अधिकतर नीतियां एवं निर्णय सामान्यकों से आकर विशेषज्ञों या उसके अधीन कर्मचारियों द्वारा लागू किये जाते हैं। सामान्यकों को नीति एवं निर्णय को प्रभावी ढंग से लागू करने एवं उसके कारणों की जानकारी नहीं होती है। सामान्यक तकनीकी सलाह को गलत ढंग से समझ लेता है या उसे समझ ही नहीं पाता है। सामान्यक भविष्य की योजना नहीं बना पाता क्योंकि किसी विशेष विषय जैसे - अभियांत्रिकी, कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के विकास के लिए उसका पर्याप्त ज्ञान नहीं होता है क्योंकि वह एक विभाग से दूसरे विभाग में घूमता रहता है एवं यहां तक कि वे विभाग से भी बाहर लोक उद्यम में या विश्वविद्यालय अथवा सहायक संस्था जैसे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास या राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान में स्थानान्तरित होता रहता है। इसके अतिरिक्त सामान्यक लोक सेवा का बुद्धिमान अव्यवसायिक सिद्धांत वर्तमान समय में लागू नहीं हो सकता क्योंकि प्रशासन का कार्य जटिल, अधिक तकनीकी, विज्ञानोन्मुख एवं विषयीक त हो चुका है।

विभिन्न आधारों पर विशेषज्ञ अपने आपको सामान्यकों के बराबर स्तर पर रखने की वकालत करता है। सामान्यकों द्वारा प्रशासन के अक्षमता को वे अपने पक्ष में बताते हैं। निष्पादन विभाग का विभागाध्यक्ष एवं सचिवालय में सचिव के उच्च पद प्राप्त करने के लिए विशेषज्ञों की योग्यता सम्बंधित विषय में उनका ज्ञान एवं अनुभव है - ऐसा विशेषज्ञों द्वारा दावा किया जाता है। विशेषज्ञों द्वारा सक्रिय रूप से यह भी प्रचार किया जाता है कि एक तरफ, विभिन्न विभाग में उच्च पद प्राप्त करने के लिए सामान्यक अधिक शिक्षित है क्योंकि उन लोगों ने व्यवस्था को अपने पक्ष में बना लिया है और दूसरी तरफ यहां तक कि अधिक ज्ञान होते हुए भी विशेषज्ञ उच्च पद से वंचित रहता है। वैज्ञानिक प्रशिक्षण विशेषज्ञों में वस्तु निष्ठा भावना पैदा करता है जबकि सामान्यक प्रशासन में पूर्ण रूप से पक्षपात से मुक्त नहीं होता है। विशेषज्ञों पर यह व्यक्तिगत आरोप लगाया जाता है कि उनका परिव्यय जागरूक नहीं होता एवं अपने आप में इतना केन्द्रित रहता है कि लोक संपर्क के विभाग का संचालन नहीं कर पाता ऐसा सामान्यकों के तर्क का उत्तर है।

सामान्यकों एवं विशेषज्ञों के संवर्ग के मध्य दोहरी पदसोपान व्यवस्था न केवल प्रशासनिक क्षमता को कम करती है बल्कि विशेषज्ञों में असंतोष भी पैदा करती है। इस दोहरी व्यवस्था को हटाने में विशेषज्ञों में निराशा समाप्त होगी। दोनों के मध्य सरल एवं सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित होंगे। विशेषज्ञों द्वारा अधिक निपुण मंत्रणा दी जा सकेगी।

प्रशासनिक व्यवस्था की दक्षता एवं प्रभाविता में विकास के लिए सामान्यकों एवं विशेषज्ञों दोनों के लिए पद योजना आवश्यक है। प्रबंधकीय कार्य और प्रविधि का प्रशिक्षण दोनों को प्राप्त होने चाहिये। सेवा कालीन प्रशिक्षण में समान ढंग के ज्ञान की पढ़ाई दोनों को लाभदायक होगी। प्रशासनिक व्यवस्था के इन दोनों अंगों के मध्य अच्छे संबंध एवं सहयोग को बढ़ावा मिलेगा।

### प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव

भारतीय प्रशासनिक सेवा के कार्मिकों का विशेषज्ञ सेवा के साथ संबंधों का विवाद केन्द्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर उभर कर सामने आया है। भारतीय प्रशासनिक सेवा इस अर्थ में अखिल भारतीय सेवा है कि इसके कार्मिकों की भर्ती एवं नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है लेकिन वे राज्य एवं केन्द्र सरकार दोनों ही जगह कार्य करते हैं। राज्य के प्रशासन क्षेत्र में मानवशक्ति

की व्यवस्था के अंतर्गत जिलाधीश और मजिस्ट्रेट एवं जिला परिषद् में विकास अधिकारी (मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जिला विकास अधिकारी) के रूप में भारतीय प्रशासनिक सेवा की भूमिका अनन्य है। राज्य सरकार में उपसचिव या सचिव के रूप में पर्याप्त सेवा के पश्चात् भारत सरकार में भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों को विभिन्न विभागों में सचिव, संयुक्त सचिव और उपसचिव के रूप में नियुक्त किया जाता है। वे भारत सरकार की सेवाओं में पांच वर्ष की पदावधि तक कार्य करता है और यदि उसकी पदावधि में वृद्धि नहीं की गई तो पुनः उसे सम्बंधित राज्य में वापस भेज दिया जाता है। कार्मिक प्रशासन पर भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन (अप्रैल 1969) से पहले, केन्द्रीय अथवा राज्य प्रशासन में विशेषज्ञों का सचिव स्तर पर पदोन्नति नगण्य रूप में होती थी। पुलिस और अभियांत्रिकी को छोड़कर राज्य सरकार में भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों की नियुक्ति तकनीकी विभाग जैसे कृषि, पशुपालन, बिक्रीकर आदि में विभागाध्यक्ष के रूप में भी की जाती थी। भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं अन्य दूसरी सेवाओं के वेतनक्रम में विद्यमान विभिन्नता भी जैसे केन्द्रीय स्तर पर लेखा एवं अंकेक्षण, रेल, आदि सेवा एवं राज्य स्तर पर कृषि, अभियांत्रिकी एवं अन्य जैसे विशेषज्ञ सेवा में असंतोष को बढ़ाता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल के अनुसार "भारतीय प्रशासनिक सेवा" के निर्माण के लिए मुख्य विचारों में दो राय नहीं हो सकते हैं जो निम्न हैं -

1. केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के लिए उच्च प्रशासनिक अधिकारी की व्यवस्था करना।
2. वास्तविकता से निरंतर जुड़े रहने के लिए एवं आम लोगों से संबंध बनाए रखने के लिए केन्द्रीय प्रशासनिक तंत्र को अवसर प्रदान करना।
3. व्यापक दृष्टिकोण ग्रहण करने के लिए राज्य प्रशासनिक तंत्र को अवसर प्रदान करना।
4. केन्द्र एवं राज्यों के बीच सम्पर्क की व्यवस्था।
5. प्रशासन के मानक में एकरूपता लाना।
6. यह सुनिश्चित करना कि जातीय अथवा दलीय पक्षपात से प्रशासनिक सेवा अलग हो।
7. सेवा में संतोष और सुरक्षा की भावना को सुनिश्चित करना।

आजकल सरकारी कार्य में जटिलता के संबंध में प्रशासनिक सुधार आयोग का मानना है कि विभिन्न विकासात्मक योजनाओं के लिए कई तरह की निपुणता की आवश्यकता है, जबकि बहुत सी निपुणता उपलब्ध नहीं है। सरकार के कर्मचारी योजना पर उक्त सुझावों का व्यापक प्रभाव पड़ेगा।

प्रशासनिक सुधार आयोग का एक महत्वपूर्ण सुझाव यह था कि वे सभी पद जिसमें विषय वस्तु जैसे कार्य के साथ अत्यधिक केन्द्रित और अत्याधिक निकटता की आवश्यकता है, उसे अलग श्रेणी (जैसे सेवा) के अंतर्गत संगठित करना चाहिये। ये पद कार्यात्मक सेवा में संगठित होने चाहिये और इसलिये इन सेवा के पदाधिकारियों के लिए यह पद सुरक्षित होने चाहिये। फिर भी कार्यात्मक सेवा के विभिन्न स्तरों पर कर्मचारियों का स्थानान्तरण स्वतः नहीं होना चाहिये बल्कि प्रत्येक स्तर पर सावधानी पूर्वक चयन किया जाना चाहिए। प्रत्येक स्तर पर एकरूप संवर्ग संरचना एवं, पुनर्चयन की व्यवस्था रहनी चाहिये। प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा एकरूप संवर्ग संरचना का सुझाव चयन प्रक्रिया में सहायता के लिए दिया गया है।

तथापि प्रशासनिक सुधार आयोग ने यह स्वीकार किया है कि बहुत से ऐसे पद हैं जिसमें विषय वस्तु (कार्यात्मक) के विशेषीकरण की आवश्यकता नहीं है बल्कि व्यापक वैचारिक एवं प्रबंधकीय निपुणता की आवश्यकता है। ये सभी सचिवालय में नीति निर्माण स्तर के पद हैं। इन पदों के लिए एक भी कार्यात्मक सेवा योग्य नहीं है। ये सभी पद अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। अतः प्रशासनिक सुधार आयोग ने यह सुझाव दिया कि इन पदों को तुरन्त नहीं भर कर अन्य विधियों से भरना चाहिये। सरकार में 8से 12 वर्ष के अनुभव वाले उच्च सेवा के सभी अधिकारियों की परीक्षा लेनी चाहिए एवं उच्च स्तर पर नीति निर्माण में उसकी उपयुक्तता की जांच होनी चाहिये। यह परीक्षा इस ढंग से व्यवस्थित करनी चाहिए जिससे उम्मीदवारों के मध्य संचार, विचार की स्पष्टता, सम्पूर्ण प्रबंधकीय क्षमता, प्रबंधकीय क्षमता, विश्लेषण शक्ति एवं ज्वलंत सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयों पर व्यापक ज्ञान की क्षमता का मूल्यांकन हो सके। प्रशासनिक सुधार आयोग ने सुझाव दिया कि इस परीक्षा के आधार पर अधिकारियों के चयन के पश्चात् आयोग द्वारा बताये गये आठ विशेषीकरण में से किसी एक में उनके सुझाव एवं पष्ठभूमि के आधार पर

नियुक्त करना चाहिए।

उक्त विशेषीकरण निम्न हैं 1) कार्मिक और मानवशक्ति, 2) आर्थिक प्रशासन (योजना सहित), 3) वित्तीय प्रशासन, 4) कृषीय प्रशासन, 5) औद्योगिक प्रशासन, 6) सामाजिक एवं शैक्षणिक प्रशासन, 7) आंतरिक सुरक्षा एवं संरक्षा, और 8) सामान्य प्रशासन में इस ढंग से चयन के पश्चात् इन पदाधिकारियों की सेवा सम्बंधित विशेषीकरण के अंतर्गत ही रहेगी, लेकिन सम्बंधित क्षेत्र में इन पदाधिकारियों का स्थानान्तरण न्यायपूर्ण होगा।

उच्च नीति निर्माण स्तर के भारतीय लोक सेवा के इस कार्यात्मक व्यवसायीकरण संवर्गों की आलोचना की जा सकती है। आलोचना इस स्तर पर चयन के लिए लोक सेवक के मध्यावधि सेवा काल में परीक्षा लेने के तरीके पर भी की जा सकती है। लेकिन इस संबंध में प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव ने भारतीय प्रशासनिक सेवा (I.A.S.) की महत्ता को सुदृढ़ किया है एवं नीति निर्माण के उच्च स्तरीय पद का दावा करने वाले अधिक शिक्षित और अनुभवी विशेषज्ञों के साथ न्याय किया है।

राज्य स्तर पर भी इसके व्यवसायीकरण एवं चयन के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग ने इसी प्रकार का सुझाव दिया है।

### सुझावों को लागू करने एवं दोनों के मध्य सेतु की स्थापना

हाल ही में केन्द्र एवं राज्यों में विशेषज्ञ प्रशासनिक पद अधिस्थापन के लिए कुछ उपाय किये गये हैं। उदाहरणार्थ आणविक शक्ति विभाग का विभागाध्यक्ष नाभिकीय है एवं विधि मंत्रालय का विधि व्यवसाय या सेवा का सदस्य है। इसी प्रकार वैज्ञानिक अनुसंधान विभाग में वैज्ञानिक विभागाध्यक्ष है। योजना आयोग केवल विशेषज्ञों एवं व्यवसायिकों द्वारा भरा गया है।

विभागाध्यक्ष बनाने के लिए विशेषज्ञों को सरकार में संयुक्त, अपर सचिव का पद स्तर प्रदान करने के लिए एक अन्य विधि भी प्रचलित है, रेलवे बोर्ड इसका उदाहरण है। जो सदस्य इस संचालन विभाग का विभागाध्यक्ष है वह रेल मंत्रालय में पदेन सचिव भी है। राज्य स्तर पर भी खाद्य, लोक निर्माण आदि जैसे विभागों में विशेषज्ञों को सचिव-पदेन या उसी पद स्तर के रूप में नियुक्त किया जाता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के दूसरे सुझाव के आधार पर केन्द्र स्तर पर एक स्वतंत्र कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग की स्थापना की गयी है। इसी प्रकार प्रशासन में प्रबंधकीय प्रविधि एवं समसामयिक विकास के लिए प्रशिक्षण जैसा कि आयोग ने सुझाव दिया, कार्यरत है परंतु सम्पूर्ण पद योजना एवं विकास की विचारधारा रुकी सी प्रतीत होती है।

लोक उद्यमों में, लोक उद्यम पर प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव के पहले अधिकतर शासकीय सचिव जो सामान्यक थे, नियमित रूप से या तो अल्पकालीन अध्यक्ष प्रबंध निदेशक के रूप में अथवा निदेशक या पूर्णकालिक आधार पर नियुक्त किये जाते थे। इस प्रचलन को रोकने के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव को सरकार ने स्वीकार कर लागू कर दिया है। सामान्यक एवं विशेषज्ञों के मध्य विद्यमान खाई को कम करने के लिए दूसरा तरीका यह हो सकता है कि निम्नलिखित पद सोपान में से किसी एक को स्वीकार किया जाये-

- 1) **पथक पद सोपान:** यह व्यवस्था आस्ट्रेलिया, स्वीडन में प्रचलित है जहां विशेषज्ञों को एक समान वेतन एवं अधिक महत्ता प्राप्त है।
- 2) **सामान्तर पद सोपान:** यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें विशेषज्ञ सामान्यक के साथ ही कार्य करेगा। उदाहरण के लिए महानिदेशक (विशेषज्ञ), उपसचिव (सामान्यक) के साथ कार्य करेगा।
- 3) **संयुक्त पद सोपान:** यहां सामान्यक एवं विशेषज्ञ दानों मिलकर स्थायी सचिव, जो सामान्यक है, के अधीन कार्य करेंगे।
- 4) **एकरूप पद सोपान:** इसका अर्थ केन्द्रीय एवं अखिल भारतीय सेवाओं को संयुक्त कर एकरूप सेवा बनाने से है। इसके लिए एक ही प्रकार की परीक्षा एवं एकरूप वेतन और सेवा शर्त की आवश्यकता है, जबकि भारत में इस प्रकार की संवा गठित करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया है। लेकिन पाकिस्तान में 1973 में, एकरूप नागरिक सेवा गठित की गई है जहां लोक सेवा के सभी संवर्गों को एक ही सेवा में मिला दिया गया है।

अपनी सभी कमजोरियों के बावजूद भी सामान्यक भारतीय प्रशासनिक सेवा राष्ट्रीय एवं राज्य लोक सेवा में अपनी महत्ता सिद्ध किये हुए है। कहा जाता है कि विशेषज्ञों के मुकाबले यह अधिक जानकारी रखता है एवं दृढ़ विचारों का होता है। प्रशासन

के वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्र में यह अपर्याप्त व्यवसायवादी एवं अप्रसांगिक ज्ञान रखता है। इन मुद्दों पर विद्वत्तापूर्ण कार्यों, जर्नल, पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों में परिचर्चा दृष्टि सहायक सिद्ध हुई है। दीर्घकालीन आर्थिक व्यय एवं विकास की आवश्यकता के लिए इसके संगठित दृष्टिकोण ने राष्ट्रीय प्रशासन को जीवित रखा है और प्रशासन के विभिन्न अंगों के बीच, एवं केन्द्र और राज्यों एवं राज्यों और राज्यों के बीच सह-सम्बन्ध बनाये रखा है।

इसके साथ ही केन्द्र एवं राज्य दोनों स्तर पर प्रशासन में विशेषज्ञों का योगदान एवं भूमिका का अपना महत्व है। वैज्ञानिक, औद्योगिक, यातायात, संचार, कृषि, शिक्षा एवं अन्य क्षेत्रों में भारत ने आश्चर्यजनक रूप से प्रगति की है। इस बहुआयामी राष्ट्रीय निकाय एवं इसके लिये प्रशासनिक ढांचा और प्रक्रिया में विशेषज्ञों की भूमिका सराहनीय है। प्रगति हो रही है एवं यह ध्यान में रखना होगा कि प्रशासन में सामान्यक एवं विशेषज्ञ दोनों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है तथा उनके योगदान को स्वीकार करना होगा।

## अध्याय-37

# प्रशासन में नैतिकता

## (Ethics in Administration)

लोक सेवा समाज की सबसे ज्यादा प्रदर्शित संस्थाओं में से है और इसने समय के साथ-साथ विभिन्न प्रकारों और पैमाने के अनेक कार्यों को अपने हाथ में ले लिया है। आधुनिक लोक सेवा के प्रकार्य उसको समाज के प्रत्येक कोने तक ले जाते हैं। इस ढंग से सिविल सेवा अपूर्व शक्ति से मंडित हो जाती है। हमेशा ही शक्ति साथ-साथ उसके दुरुपयोग का खतरा बना रहता है। इसीलिए लोक सेवकों काम केवल सक्षम होना बल्कि उनमें अटूट ईमानदारी का होगा भी आवश्यक है। लोक सेवाओं में ईमानदारी की आवश्यकता तब और अधिक महसूस होने लगती है जब यह ख्याल आता है कि लोककर्मों न केवल प्रशासन करते हैं बल्कि नीति-निर्माण भी किया करते हैं। जैसा कि सभी जानते हैं नीति-प्रशासन द्विभाजन बिल्कुल भ्रामक है। सिविल सेवक न केवल नीति-निर्माण में सलाह देते हैं अपितु प्रशासन चलाने के दौरान नियमों और विनियमों का निरूपण करके और दृष्टांत निर्धारण निर्णय लेकर नीतियां बनाते भी हैं। साथ ही, नागरिकों की सिविल सेवकों पर निर्भरता अधिक है। भारत में सिविल सेवक के पास आने वाले याचक की स्थिति में होते हैं।

जब इतने अधिक लोग सिविल सेवकों से आशा बांधे रखते हैं, तब सिविल सेवकों के लिए अपने कार्य और व्यवहार में नैतिक आचरण के उच्चतम मानकों व आदर्शों का अनुपालन करना परम आवश्यक हो जाता है।

### प्रशासनिक आचार नीति के औपचारिक घटक

भारत ने अपने सिविल सेवकों के लिए नैतिक आचरण की एक औपचारिक अंग्रेजी शब्दकोश में *Ethics* शब्द को नैतिक सिद्धान्तों की दृढ़ता, निर्दोष चरित्र, स्पष्टता, ईमानदारी एवं निष्कपटता के पर्यायवाची रूप में परिभाषित किया गया है। इसके हिन्दी रूपान्तर के रूप में 'सच्चरित्रता' का प्रयोग किया जाता है। सच्चरित्रता राज्य का परमावश्यक धर्म है। सच्चरित्रता का विलोम भ्रष्टाचार है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में यह ठीक ही कहा गया था कि "सार्वजनिक मामलों एवं प्रशासन में सच्चरित्रता होना आवश्यक है। अतः प्रत्येक सार्वजनिक कार्य सम्बन्धी शाखा में इस पर बल दिया जाना चाहिए। भ्रष्टाचार का दुष्प्रभाव होता है इसके फलस्वरूप न केवल ऐसी गलतियाँ होती हैं जिनको सुधारना कठिन हो जाता है अपितु यह प्रशासन के ढाँचे की जड़ों एवं प्रशासन में जनता के विश्वास को ही हिला देता है। अतः प्रशासन में भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक निरन्तर चलने वाला युद्ध छेड़ देना चाहिए" प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में प्रशासन में सच्चरित्रता को सर्वोच्च प्राथमिकता देने पर बल दिया गया है। योजना के मुख्य प्रशासकीय कार्यों की सूची में इसे जो स्थान दिया गया है एवं सार्वजनिक अधिकारियों से इस ओर विशेष ध्यान देने का जो आग्रह किया गया है, उससे भी उपर्युक्त मत की पुष्टि होती है।

यद्यपि सेविवर्ग के लिए सच्चरित्रता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, परन्तु आजकल यह त्याज्य-सा हो गया है, तथा ऐसा लगता है कि लोक प्रशासन के क्षेत्र और इस देश से, विशेषकर जीवन के अधिकांश क्षेत्रों में से ही, इसे निकालकर फेंक दिया गया है। सच्चरित्र व्यक्तियों के उदाहरण धीरे-धीरे कहावत बनते जा रहे हैं जैसा कि निरद सी. चौधरी ने कहा है- "छोटे से क्लर्क से लेकर मन्त्री तक शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसे किसी न किसी मात्रा में धन द्वारा नियन्त्रित न किया जा सके।" यह कथन सम्भवतः भारत में जीवन के सभी क्षेत्रों के सम्बन्ध में सत्य है।

नैतिक आदर्शों की उपेक्षा एवं सच्चरित्रता का अभाव भ्रष्टाचार, संरक्षण (patronage) (जो साम्प्रदायिकतावाद, जातिवाद, भाई-भतीजावाद एवं पक्षपात पर आधारित होता है) एवं अनुचित प्रभाव के रूप में अभिव्यक्त होता है। उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व

मुख्य मन्त्री डॉ. सम्पूर्णानन्द ने यह ठीक ही कहा था कि "प्रशासकीय कार्य के सम्पादन में एक के द्वारा दूसरे को धन देना ही सच्चरित्रता के अभाव के अभिव्यक्त करने वाला एकमात्र रूप नहीं है। यह अनेक रूप धारण कर सकता है, जो किसी भी प्रकार कम निन्दनीय नहीं है। उदाहरण के लिए संरक्षणा द्वारा एक व्यापक क्षेत्र का निर्माण किया जा सकता है, जो दायिब्यों एवं त्रुटियों की दृष्टि से घातक बुराई का स्रोत सिद्ध हो सकता है। जिसे हम बुरा समझते हैं उसके प्रति आँखें मूँद लेना, बचने देना, पदश्रंखला में किसी उच्च पदाधिकारी के स्थान पर जो वास्तव में दोषी है, उसके किसी अधीनस्थ को बलि का बकरा मनाना, गलत सूचना देना या किसी महत्वपूर्ण सूचना या तथ्यों को प्रस्तुत न करके उन्हें पूरी तरह या आंशिक रूप में दबाना, और तथ्यों को जानबूझकर गलत निर्णय हेतु प्रस्तुत करना," आदि भ्रष्टाचार के विभिन्न रूप हैं। केवल घूस, भाई-भतीजावाद, सत्ता एवं प्रभाव का दुरुपयोग, कालाबाजारी, मुनाफाखोरी और अन्य ऐसे ही दुष्कृत्य जो प्रशासन, राजनीति, व्यापार या उद्योग से सम्बन्धित होते हैं भ्रष्टाचार नहीं कहलाते। जानबूझकर किसी व्यक्ति के पद, स्थिति या स्रोतों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अपने व्यक्तिगत हितार्थ शोषण ही भ्रष्टाचार है, भले ही यह शोषण भौतिक उपलब्धि के रूप में हो या नैतिक आदर्शों के परे अन्य व्यक्तियों या समाज को हानि पहुँचाते हुए अपनी शक्ति, स्थिति एवं प्रभाव की वृद्धि के रूप में हो।

भ्रष्टाचार की परिभाषा भारतीय दण्ड संहिता (I.P.C) की धारा 161 में की गयी है। इस परिभाषा का महत्व अत्यन्त गहरा है, क्योंकि कानून की दृष्टि में निम्नलिखित परिभाषा ही भ्रष्टाचार की परख है:

"जो व्यक्ति शासकीय कर्मचारी होते हुए या होने की आशा में अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए विविध पारिश्रमिक से अधिक कुछ घूस लेता है या स्वीकार करता है अथवा लेने के लिए तैयार हो जाता है या लेने का प्रयत्न करता है या किसी कार्य को करने या न करने के लिए उपहार स्वरूप या अपने शासकीय कार्य को करने में किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या उपेक्षा या किसी व्यक्ति की कोई सेवा या कुसेवा का प्रयास, केन्द्रीय या अन्य राज्य सरकार या संसद या विधानमण्डल या किसी लोक सेवक के सन्दर्भ में करता है तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास का दण्ड या अर्धदण्ड या दोनों दिये जा सकेंगे।"

भ्रष्टाचार का एक या अन्य रूप जिसे समान्यतः, परन्तु गलती से, भ्रष्टाचार नहीं माना जाता, सार्वजनिक धन का मनमाने ढंग से व्यय करना है। सार्वजनिक धन के अपव्यय का अर्थ यह है कि सार्वजनिक धन को अनावश्यक मद में या निर्धारित उद्देश्य के लिए आवश्यकता से अधिक धन व्यय करके सामान्य जनता पर अनावश्यक व्यय-भार बढ़ा दिया जाता है। सार्वजनिक धन समस्त जनता से प्राप्त होता है और चूँकि अधिकांश भारतीय जनता निर्धन है, अतः इससे निर्धन जनता के कष्टों में बहुत वृद्धि हो जाती है। जो सत्ता में हैं उनके द्वारा उनके रिश्तेदारों या मित्रों को नौकरी दिलवाने को संरक्षण कहते हैं। संरक्षण सार्वजनिक एवं निजी गुणों के मध्य टकराव के अतिरिक्त कुछ नहीं है और इसके परिणामस्वरूप अन्याय होता है। संरक्षण का अर्थ यह है कि हम किसी को वह चीज देते हैं जिसका वह न्यायपूर्वक अधिकारी नहीं होता या जो न्यायपूर्वक उसकी नहीं कही जा सकती, क्योंकि वह (सार्वजनिक धन) बाँटने वाले व्यक्ति के साथ एक या दूसरे प्रकार का कोई सम्बन्ध रखता है। इसके फलस्वरूप दुहरा पाप भी होता है। संरक्षक ही केवल पतित नहीं होता अपितु संरक्षण प्राप्तकर्ता भी पतित हो जाता है, क्योंकि वह यह सोचने लगता है कि जीवन में प्रगति के लिए कठोर परिश्रम या गुण आवश्यक नहीं हैं, 'रिश्ते' एवं 'सम्बन्ध' आवश्यक हैं; चापलूसी या चमचागीरी से काम बनते हैं। इस प्रकार के चिन्तन एवं विचारों के कारण अच्छा व्यक्ति भी अपने न्यायोचित कर्तव्य-मार्ग से च्युत हो जाता है और अपने सम्बन्ध एवं प्रभाव-वृद्धि के लिए अनुचित प्रयत्न करता है, और इस प्रकार समूचा समाज ही पतित हो जाता है।

निर्वाचन काल में सत्ताधारी राजनीतिज्ञों द्वारा शासकीय मशीनरी का प्रयोग राजनीतिज्ञों की चरित्रहीनता रूपी एक अन्य बुराई है। अपने देश में इस प्रकार के सत्ता के दुरुपयोग सम्बन्धी आरोप आयेदिन लगाये जाते हैं। ये गलत भी नहीं हैं। प्रथम तो इस प्रकार के कार्यों से स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष निर्वाचनों की आशा समाप्त हो जाती है। इनसे देश के व्यापक हितों को दीर्घकालीन हानि होती है और प्रजातन्त्र हास्यास्पद हो जाता है। इसके अतिरिक्त, लोक सेवा का अराजनीतिक या तटस्थता का स्वरूप पूर्णरूपेण नष्ट हो जाने के कारण लूट-प्रणाली एवं तदजनित दोषों के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसके फलस्वरूप अधिकारियों का नैतिक पतन हो जाता है क्योंकि उनमें विधायकों या मन्त्रियों को अपने पक्ष में करने के लिए होड़ मच जाती है, एवं उनकी स्वार्थमय इच्छाओं की पूर्ति के लिए वे सदैव तत्पर रहते हैं जिससे वे उनका उपयोग अपने व्यक्तिगत हित-साधन के लिए कर सकें।

## समस्या की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

किसी न किसी रूप में भ्रष्टाचार मानव-समाज में सदैव कायम रहा है। 'अर्थशास्त्र' के रचयिता प्रसिद्ध भारतीय विद्वान कौटिल्य ने उसके अनेक रूपों में विद्यमान रहने या उल्लेख किया है। उनके अनुसार, जिस प्रकार जिह्वा पर रखे हुए शहद का स्वाद न लेना असम्भव है उसी प्रकार किसी शासकीय अधिकारी के लिए राज्य के राजस्व के एक अंश का भक्षण न करना असम्भव है।

प्राचीन एवं मध्यकाल में लोक प्रशासन का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। फलस्वरूप, भ्रष्टाचार की भी कम गुंजाइश थी। आधुनिक राज्य ने उन अनक कार्यों का सम्पादन करना प्रारम्भ कर दिया है जो किसी समय परोपकारी, धर्मार्थ या अन्य सामाजिक संस्था द्वारा सम्पादित होते थे। थोड़े-से कर्मचारियों द्वारा करों को एकत्र किया जाता था एवं न्याय भी किया जाता था। कोई विस्तृत रूप से लिखित विधि या नियम नहीं थे जिनका उनके द्वारा पालन किया जाना आवश्यक होता हो। वे अपने कर्तव्य का सम्पादन प्रायः सुनीति या अन्तःकरण के आधार पर करते थे। कुछ अवसरों पर उनके वरिष्ठ अधिकारी उनका मार्गदर्शन, करते थे। जब तक कर्मचारी शासन के प्रति भक्ति एवं निष्ठा रखना था और दमन या बलपूर्वक शोषण का आश्रय नहीं लेता था तब तक वह कार्यों में अनियन्त्रित सत्ता का उपभोग करता था। इसके अतिरिक्त, राजकीय पद वंशानुगत हुआ करते थे।

मौर्य शासन के करीब 2,000 वर्षों के पश्चात् अंग्रेजों ने व्यापारियों के रूप में भारतीय समुद्रतट पर कदम रखे थे। शीघ्र ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी शक्तिशाली हुई और लड़खड़ाते हुए मुगल-साम्राज्य तथा बंगाल के नवाब को अन्तिम धक्का देकर उसने इन्हें समाप्त कर दिया। कम्पनी के अपेक्षाकृत लघु शासनकाल में भ्रष्टाचार देश में सर्वत्र फैल गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारी, जो उस समय प्रशासक भी थे, सम्पत्ति जोड़ने पर उतारू थे। उन्होंने समस्त आदर्शों एवं मान्यताओं को उठा फेंका था। कम्पनी बंगाल के अकाल के समय तक दिवालिया हो चुकी थी। उसका सम्पूर्ण तन्त्र भ्रष्ट, पतित एवं असक्षम हो गया था। अन्त में कम्पनी को हटाना पड़ा, और ब्रिटिश सरकार ने भारत का प्रशासन अपने हाथों में ले लिया। लगभग 150 वर्षों के शासन में अंग्रेजों ने भारत में एक श्रेष्ठ प्रशासकीय तन्त्र की स्थापना की। लेकिन ब्रिटिश भारतीय प्रशासन में राजस्व, पुलिस एवं आबकारी विभागों को व्यापक स्वविवेकी शक्तियाँ प्राप्त थीं। फलस्वरूप, उनके भ्रष्ट होने की पर्याप्त गुंजाइश थी। न्यायपालिका की छोटी अदालतों का भी यही हाल था। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने तक भ्रष्टाचार अधिकांशतः प्रशासन के निम्न स्तर तक ही सीमित था। उच्च लोक सेवक पतित नहीं हुए थे। इसका कारण यह था कि शासक एवं जनता में निकट के सम्बन्ध नहीं थे। वरिष्ठ अधिकारी अधिकांश में अंग्रेज थे। वे भारतीय जनमानस से दूर ही रहते थे। उनके भ्रष्ट होने के लिए न तो परिस्थितियाँ थीं और न आवश्यकता ही। इसके अतिरिक्त प्रशासन तन्त्र एक क्षेत्र तक ही सीमित था। ब्रिटिश भारत की अर्थव्यवस्था भी गिरी हुई थी। सम्पत्ति का चक्र सीमित था। इन स्थितियों ने भ्रष्टाचार करने तथा भ्रष्ट होने के अवसर एवं क्षमता दोनों की सीमा निर्धारित कर दी थी।

इसके बाद द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ। शासन का ध्यान प्रधानतः युद्ध में विजय प्राप्त करने पर लग गया। युद्ध-सामग्री एवं अनुबन्धों पर शासन ने व्यय बढ़ा दिया। शासन के इन कार्यों के फलस्वरूप, अनुचित साधनों से धन एकत्र करने के अवसरों की असम्भावित परिस्थितियों के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। इसके अतिरिक्त, युद्ध में सदैव मानवीय मूल्यों का हास हो जाता है। बंगाल प्रशासन जाँच समिति (1944-45) ने मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि "युद्ध (द्वितीय विश्वयुद्ध) ने यहाँ अन्य स्थानों की भाँति उन परिस्थितियों को जन्म दिया है जिनसे धनार्जन सरल हो जाता है। विशेषकर यह तब हुआ था जब वस्तुओं का इतना अभाव हो गया कि सरकार ने बाध्य होकर उनके व्यापार करने के लाइसेन्स देना प्रारम्भ कर दिया। लाइसेन्स आवश्यक थे, अतः बेईमान एवं चालाक व्यक्तियों ने बिना हिचकिचाहट के अभावग्रस्त वस्तुओं में व्यापार करने के लाइसेन्स प्राप्त करने के लिए अधिकारियों को रिश्वत देना प्रारम्भ कर दिया। लाइसेन्स प्रदान करने के अधिकार अधिकांश मामलों में अस्थायी कर्मचारी वर्ग के हाथों में थे जिनकी भविष्य में स्थायी होने की कोई आशा नहीं थी और जो सेवा की परम्पराओं से भली-भाँति परिचित भी नहीं थे। उनके लिए धनार्जन के इस लोभ का संवरण करना कठिन था। अतः युद्धजनित परिस्थितियों ने भ्रष्टाचार के लिए अवसर उत्पन्न कर दिये। इन अवसरों से लाभ उठाने के लिए बेईमान व्यक्तियों को दो कारणों से सहायता प्राप्त हुई। वे हैं: (अ) प्रशासकीय कार्य; (आ) कानून का दोष, जिनसे अपराध को ढूँढ़ना कठिन होता था और अपराधियों के लिए अपर्याप्त दण्ड का विधान था।"

स्वतन्त्रता के उपरान्त विभिन्न हुए जिनसे भ्रष्टाचार पनपा। कल्याणकारी राज्य का आदर्श अंगीकार करने के फलस्वरूप राज्य के कार्यों में असाधारण वृद्धि हुई। यही नहीं, अनेक नवीन एवं अपरिचित दायित्वों को भी राज्य को वहन करना पड़ा। आर्थिक क्षेत्र में भी राज्यों के कार्यों में वृद्धि हुई। नियमन, नियन्त्रण, लाइसेन्स, परमिट का युग प्रारम्भ हुआ जिनसे भ्रष्टाचार के लिए नवीन मार्ग खुल गये। विभिन्न स्तरों पर राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने की होड़ ने इस व्याधि को कैंसर की भाँति असाध्य बना दिया। समय-समय पर केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा भ्रष्ट अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई की गयी, लेकिन उनके यह प्रयत्न न तो प्रभावकारी सिद्ध हुए और न स्थायी ही। अपनाये गये निर्बल तरीकों ने यह विश्वास उत्पन्न कर दिया कि सरकार स्वच्छ एवं निष्पक्ष प्रशासन की स्थापना में विश्वास नहीं करती है। एक विचार का भी प्रतिपादन किया गया कि सरकार भ्रष्टाचार के विरुद्ध तो है, परन्तु उन भ्रष्ट व्यक्तियों के विरुद्ध नहीं हैं जो शक्ति, प्रभाव एवं संरक्षण का उपभोग करते हैं।

## लोक प्रशासन में सच्चरित्रता के पतन के कारण

शासकीय भ्रष्टाचार एक जटिल समस्या है। यह सामान्य प्रकार की सभी शासन व्यवस्थाओं में प्रचलित है। इसके लिए अनेक तत्व-सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक एवं न्यायिक-उत्तरदायी हैं। सामान्यतः लोभ इसका एक सामान्य कारण है, लेकिन यही एकमात्र कारण नहीं है। सम्पत्ति, सत्ता, धनधान्य एवं स्थिति भी इसके कारण होते हैं; लेकिन इनके मध्य कोई विभाजन रेखा खींचना कठिन है।

यह सामान्य अवस्था है। यह कहना गलत नहीं है कि एशिया और अफ्रीका के विकासशील देशों में लोक प्रशासन रिश्वत एवं भ्रष्टाचार से कराह रहा है। इसकी तुलना हम उन झाड़ू झाड़ों से कर सकते हैं जो सरलता से उग आते हैं तथा भूमि के श्रेष्ठ तत्वों का शोषण करके उन पौधों को सुखा डालते हैं जो बड़ी दक्षता से एवं व्यय करके लगाये जाते हैं।

भारतीय लोक प्रशासन में व्याप्त रिश्वत एवं भ्रष्टाचार के व्यापक प्रसार में निम्नलिखित कारणों ने योग दिया है :

### 1. भूतकालिक कारण :

(अ) **युद्धकालीन अभाव तथा नियन्त्रण**- द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व तक निम्न श्रेणी के अधिकारियों में, विशेषकर राजस्व एकत्र करने वाले विभागों, जैसे आय-कर, कस्टम एवं केन्द्रीय एक्साइज, रेलवे एवं वनों आदि और व्यय-प्रधान विभागों, जैसे सार्वजनिक निर्माण विभाग, पुलिस एवं न्याय विभाग में भ्रष्टाचार था और वह भी केवल एक सीमा तक ही था। उच्च अधिकारी अपेक्षाकृत इस दोष से मुक्त थे। प्रथम विश्वयुद्ध जनित विश्वव्यापी 'महामन्दी' के फलस्वरूप धन का प्रवाह कम हो गया था। इसके अतिरिक्त राज्य क्रियाओं के सीमित क्षेत्र के कारण भी उस समय भ्रष्टाचार के लिए कम परिस्थितियाँ एवं सीमित क्षेत्र था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान इस स्थिति में परिवर्तन आया। विशाल युद्ध-प्रयत्नों ने, जिनके फलस्वरूप करोड़ों रुपया विभिन्न प्रकार की युद्धकालीन वस्तुओं एवं अनबन्धों पर व्यय हो रहा था, अनुचित तरीकों एवं साधनों से धन एकत्र करने के लिए असम्भावित मार्ग खोल दिये। इसके अतिरिक्त, युद्धकालीन अभाव एवं नियन्त्रणों ने भी रिश्वत, भ्रष्टाचार एवं पक्षपात के लिए मार्ग खोले थे, क्योंकि इस समय सरकार के समक्ष एममात्र लक्ष्य केवल यह था कि युद्ध में सफलता कैसे प्राप्त की जाये। साधन के औचित्य से यदि युद्ध-कार्यों में बाधा उत्पन्न होती थी तो उनका कोई मूल्य नहीं था। इस काल में भारत में भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था।

(आ) **युद्धोत्तर मुद्रा-स्फीति** - युद्धकालीन नियन्त्रणों एवं अभावों ने सच्चरित्रता के लिए आवश्यक उपयुक्त वातावरण को युद्धोत्तरकालीन धन की वृद्धि-और इसके फलस्वरूप उत्पन्न मुद्रा-स्फीति-ने विषाक्त कर दिया था।

2. **स्वतन्त्रता के उपरान्त देश की समस्याएँ एवं वातावरण** - स्वतन्त्र भारत ने जो प्रशासकीय मशीनरी विरासत में प्राप्त की थी, वह पर्याप्त कमजोर हो चुकी थी। इसके मुख्य कारण थे : (1) युद्धकालीन उपेक्षा, और (2) स्वतन्त्रता के पश्चात् अकस्मात् ही ब्रिटिश एवं मुस्लिम अधिकारियों की एक बड़ी संख्या में कमी जिसके परिणामस्वरूप अयोग्य व्यक्तियों की शीघ्र पदोन्नति हुई और एक बड़ी संख्या में विभिन्न श्रेणियों में अनुभव एवं योग्यता को ध्यान में रखे बिना भर्ती की गयी। सेवाओं की सुस्थापित परम्पराओं में इन कर्मचारियों की कोई आस्था नहीं थी।

3. **विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में मूल्यों में संघर्ष** - प्राचीन काल में 'सादा जीवन एवं उच्च विचार' के नैतिक आदर्श ने सामाजिक नियन्त्रण एवं सामाजिक आचारण को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया था। लेकिन विकसित जन-समाज



में, जिसमें शहरीकरण एवं औद्योगीकरण पर निरन्तर बल दिया जाता हो, प्राचीन सामाजिक एवं वैयक्तिक मूल्यों का क्रमशः हास हो रहा है। वे दिन-प्रतिदिन कमजोर होते जा रहे हैं। इधर उनका स्थान नवीन मूल्य नहीं ले रहे हैं। मूल्यों के ऐसे ही संघर्ष-काल में भ्रष्टाचार पनपता है। इसका कारण यह है कि भ्रष्टाचार किसे कहें, इस पर कोई मतैक्य नहीं है। फलस्वरूप, ईमानदारी एवं सच्चरित्रता का नितान्त अभाव हो गया है और भारत के सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र - प्रशासन, व्यापार, राजनीति, व्यापारिक संघ, शिक्षा, आदि में दुराचार घोर रूप में व्याप्त है। वर्तमान भारत में छात्रावास के अधीक्षक द्वारा छात्रावास के चपरासी से घरेलू कार्य कराना, शिक्षक द्वारा विभागीय चपरासी का अपने ड्राइवर के रूप में उपयोग करना, चिकित्सक द्वारा झूठे प्रमाणपत्र देना, सरकारी खर्च पर व्यक्तिगत उद्देश्य से या घूमने-फिरने के लिए सरकारी मोटरकार का उपयोग करना सामान्य घटनाएँ हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि इन सब कार्यों को वे उचित मानने के साथ-साथ उन पर अपना अधिकार मानते हैं। भ्रष्टाचार के कुछ अन्य उदाहरण जो शासकीय एवं अर्द्धशासकीय कार्यालयों में प्रचलित हैं, उनमें से एक निजी उद्देश्य के लिए सरकारी गाड़ी एवं सरकारी स्टेशनरी का उपयोग करना है।

4. **घोर निर्धनता** - घोर निर्धनता एवं अत्यधिक समृद्धि के सह-अस्तित्व ने जनता से सच्चरित्रता को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया है। रेलवे भ्रष्टाचार जाँच समिति (1953-55) के मतानुसार, जिसकी अध्यक्षता जे.बी. कृपलानी ने की थी, "अधिकांश आधुनिक देशों में अधिकतम एवं न्यूनतम आय में अन्तर 10 गुना या इससे होता है, परन्तु भारत में यह अन्तर बहुत अधिक है। यह शैक्षणिक अर्हताओं एवं योग्यता के सभी अनुपातों के परे है। उच्च वेतनों के फलस्वरूप आरामदेह जीवन व्यतीत करना सम्भव होता है। उच्च वेतनभोगी कर्मचारियों के जीवन-स्तर को देखकर दूसरे भी उसी की कामना करते हैं। प्रत्येक अधीनस्थ अपने वरिष्ठ अधिकारी का अनुसरण करता है। यदि उसका वेतन कम होता है तो वह अनुचित साधनों से आमदनी करता है। निश्चय ही अधिक वेतन थोड़े-से विशिष्ट लोगों को ही प्राप्त होता है, लेकिन उसका व्यापक अनैतिक एवं विनाशकारी प्रभाव होता है। हमारा यह विश्वास है कि न्यूनतम एवं अधिकतम वेतनभोगी कर्मचारियों के वेतनों के अन्तर को कम किया जाना चाहिए। यह तर्क दिया जाता है कि यदि व्यापारिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों के कर्मचारियों को अधिक वेतन दिया जायेगा तो शासकीय सेवा में प्रतिभा-सम्पन्न नवयुवक आकर्षित नहीं होंगे। लेकिन अन्य प्रजातान्त्रिक देशों में ऐसा नहीं हुआ, विशेषकर इसलिए कि शासकीय कर्मचारियों को सत्ता, सम्मान, सेवा-काल में स्थायित्व एवं अन्य अनेक सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। "भारत में यह सब सुविधाएँ एवं लाभ अन्य प्रजातान्त्रिक देशों की अपेक्षा अधिक हैं। हमारा यह विश्वास है कि यदि शासन उच्च एवं निम्न वेतनभोगी कर्मचारियों के वेतन को कम करने की दिशा में कदम उठाता है तो निश्चय ही क्रमशः हमारे द्वारा समाजवाद स्थापित करने सम्बन्धी घोषित शासकीय नीति रूपी अपने लक्ष्य की प्रगति में कमी आयेगी।"
5. **भ्रष्टाचार के दोष के विरुद्ध तीव्र जनमत का अभाव** - हमारे समाज में व्यक्ति का महत्त्व एवं मूल्य इस बात से आँका जाता है कि हमारे पास क्या है, न कि हम क्या हैं। इस प्रकार के जीवन-दर्शन का सहज परिणाम भ्रष्टाचार है। भौतिक वस्तुओं का स्वामित्व जीवन का चरम लक्ष्य बन गया है। अतः भौतिकवाद, धन एवं आर्थिक सत्ता से उत्पन्न होने वाले सम्मान, समूह-भक्ति एवं सक्रिय आस्थाएँ आदि निरन्तर वृद्धि पर हैं। इसका कारण उच्च आचरण सम्बन्धी मापण्डों के प्रति सामान्य उपेक्षा या समाज के सभी समुदायों द्वारा उनकी आवश्यकता को अनुभव न करना है। फलस्वरूप, स्मगलिंग जैसे सफेदपोश अपराधों का प्रादुर्भाव हुआ है।
6. **आर्थिक आवश्यकता** - अपर्याप्त वेतनमान एवं निरन्तर बढ़ती हुई कीमतें भी भ्रष्टाचार का एक महत्वपूर्ण कारण है। विगत कुछ वर्षों से बढ़ते हुए मूल्यों के कारण सभी वर्गों की वास्तविक आय में कमी आयी है, विशेषकर नौकरपेशा वर्ग में। शासकीय कर्मचारी इसका सबसे अधिक शिकार हैं और उसका जीवन-स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। यद्यपि इसे सच्चरित्रता के हास का कारण नहीं माना जा सकता, लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि आर्थिक कठिनाई के कारण अनेक लोगों को भ्रष्टाचार करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।
7. **शासन की संरचना या प्रणाली भी भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन देती है।**
  - (अ) **प्रभावोत्पादक** - शासन द्वारा नवीन दायित्वों का वहन करने के कारण उसकी प्रशासनिक पद्धति अत्यधिक जटिल हो गयी है। विभिन्न तलों पर कार्यपालिका को प्रशासकीय सत्ता एवं स्वविवेकी अधिकार प्रदान किये गये हैं, लेकिन इसके सभी सदस्यों में समझदारी एवं चरित्र-बल नहीं होता। जहाँ सत्ता एवं स्वविवेकी शक्ति

होती है वहाँ दोष या बुराई के लिए भी गुंजाइश होती है, और प्रशासन में यह सम्भव होता है कि प्रशासकीय अधिकारी विधि एवं औचित्य की सीमाओं के अन्तर्गत इस प्रकार कार्य करते हैं कि आहत व्यक्ति ऐसी स्थिति में कोई प्रभावपूर्ण राहत या उपचार भी नहीं प्राप्त कर सकता। इन कारणों से कार्यपालिका की निष्पूरता बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप, विभिन्न व्यक्तियों या व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्थानों के लिए विभिन्न प्रभावोत्पादक तत्वों का विकास होता है। इन तत्वों को समन्वय अधिकारी या जन-सम्पर्क अधिकारी आदि की संज्ञा दी जाती है। ये व्यक्ति कमीशन लेकर 'सम्पर्क व्यक्ति' के रूप में कार्य करते हैं और सरकार से काम जल्दी करा देते हैं। ये प्रभावशाली व्यक्ति होते हैं और मन्त्रियों, वरिष्ठ अधिकारियों के रिश्तेदार होते हैं या पदनिवृत्त उच्च सरकारी होते हैं, जो अधिकारियों को, उनके अधीनस्थ या सहयोगी होने के कारण, अपने उद्देश्यों के लिए प्रभावित करने या दबाव डालने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं।

- (आ) **शासकीय कार्यालयों की जटिल एवं बोझिल कार्य-पद्धति** - यह कहा जाता है कि कुछ सरकारी विभागों, विशेषकर कस्टम, केन्द्रीय एक्साइज, आयात एवं निर्यात, रेलवे आदि की कार्य-पद्धति जटिल, बोझिल एवं विस्तृत है। इसके कारण इन विभागों में बेईमानी के तरीके, उदाहरण के लिए, "हर काम करने के लिए रिश्त देना" चालू हो गये हैं। रिश्त देने वाला कोई अनुचित कार्य नहीं करना चाहता अपितु अपने कागजात या फाइल को तेजी से आगे बढ़वाने के लिए रिश्त देता है जिससे निर्णय शीघ्र हो सके। इसे "फूँटी के लिए धन" (Speed Money) कहते हैं। यह भ्रष्टाचार का एक नया तरीका है। यह कुप्रथा विलम्ब एवं कुशलता का एक गम्भीर कारण है।

#### 8. औद्योगिक एवं व्यापारी वर्ग भी भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन देता है।

- (अ) व्यापारिक एवं औद्योगिक दिग्गजों की अपने व्यक्तिगत हित-साधन हेतु दुरभि सन्धि-शासकीय कर्मचारियों द्वारा ही सदैव भ्रष्टाचार को बढ़ावा नहीं दिया जाता। भ्रष्टाचार के लिए दो पक्षों का होना आवश्यक है- भ्रष्ट करने वाला तथा भ्रष्ट होने वाला। भ्रष्ट करने की यह योग्यता तथा इच्छा आज औद्योगिक एवं व्यापारी वर्ग में पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। सटोरिये तथा युद्धकालीन अवसरवादी, व्यापारी, ठेकेदार, नये पैसे वाले, तस्करी का धन्धा करने वाले भी इसी श्रेणी में आ जाते हैं। उनके लिए भ्रष्टाचार विभिन्न तरीकों से धन अर्जित करने का सबसे सरल तरीका है। इससे उनको व्यवसाय चलाने में सरलता होती है तथा अपने प्रतिस्पर्धी सहयोगियों में वे अपनी प्रतिष्ठा भी कायम रखने में सफल होते हैं। वे व्यक्ति रंगीले स्वभाव के होते हैं तथा आमोद-प्रमोद पर लम्बी-चौड़ी धनराशि व्यय कर देते हैं। इनके द्वारा 'सम्पर्क अधिकारियों' एवं 'सम्बन्ध कायम रखने वाले' व्यक्तियों को बड़ी संख्या में नियुक्त किया जाता है। ये शासकीय अनुबन्ध प्राप्त करने में बड़े दक्ष होते हैं और उन्हें इसके लिए जो व्यय करना पड़ता है, उस हानि की पूर्ति ये घटिया वस्तुएँ शासन को देकर करते हैं। इन ठेकों को लेने के लिए वे शासकीय कर्मचारियों को अपने निकृष्ट उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता प्रदान करने के लिए धन देते हैं।

- (आ) **व्यापारिक सभाओं एवं व्यापार-मण्डलों का असहयोग** - सार्वजनिक जीवन की शुद्धता में औद्योगिक एवं व्यापारी वर्ग के धूर्त एवं बेईमान सदस्य सबसे बड़ी बाधा हैं। भ्रष्टाचार-उन्मूलन हेतु इन धूर्त व्यक्तियों से संघर्ष करना भी उतना ही कठिन है जितना भ्रष्टाचार के धूर्त एजेण्टों से। सत्य यह है कि इन दोनों का साथ है। व्यापारिक संस्थाएँ, राज्य व्यापार मण्डल तथा भारतीय व्यापार मण्डल संघ भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए संघर्ष में महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं। लेकिन दुर्भाग्य से वे इसमें सहयोग नहीं देते।

9. **भारत में लोक सेवाओं को प्राप्त संरक्षण** - वर्तमान प्रचलित कानून के अनुसार रिश्त देने व लेने वाले दोनों ही अपराधी हैं। फलस्वरूप, अपराधी के विरुद्ध साक्ष्य या गवाही प्राप्त करना कठिन हो जाता है, क्योंकि अपराध करने वालों एवं साक्ष्य को दबाने वालों में एक अपवित्र गठबन्धन होता है। विभागाध्यक्ष यह जानते हुए भी कि उनका अधीनस्थ भ्रष्टाचारी है, पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में कुछ नहीं कर सकते। स्थिति तो यह है कि विभागाध्यक्ष तो किसी अधीनस्थ के विरुद्ध चरित्र सम्बन्धी कोई टिप्पणी गुप्त अभिलेखों में देने के लिए उस समय तक तैयार नहीं होते जब तक कि उनके पास सम्बन्धित अधीनस्थ द्वारा उनकी टिप्पणी के विरुद्ध अपील करने की दशा में अपने मत को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं होते।

संविधान के अनुच्छेद 311 की जो व्याख्या न्यायालयों द्वारा की गयी है उसके फलस्वरूप भ्रष्ट अधिकारियों के सम्बन्ध में कार्रवाई करना कठिन हो गया है। कभी-कभी उच्चाधिकारियों द्वारा अनुशासनहीनता के विरुद्ध प्राप्त शक्ति का उपयोग न करना उनकी अपनी स्वयं की अयोग्यता, उपेक्षा और भ्रष्ट अधीनस्थों के साथ अनुचित गठजोड़ के कारण भी होता है।

भारत में नौकरशाही को कार्यकाल सम्बन्धीत व्यापक संरक्षण दिया गया है। "नियुक्त करने वाले अधिकारी द्वारा किसी अधीनस्थ कर्मचारी को पदच्युत या पथक नहीं किया जा सकता" और "किसी भी व्यक्ति या कर्मचारी को उस समय तक पदच्युत या पथक नहीं किया जा सकता या उसकी पदोन्नति नहीं रोकी जा सकती जब तक कि उसके विरुद्ध गलती एवं उसके विरुद्ध उठाये गये कदम के सम्बन्ध में उत्तर देने के लिए उचित सवसर नहीं प्रदान किया जाता।" संविधान के 15 वें संशोधन (अक्टूबर 1963) ने लोक सेवकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई को शीघ्रतापूर्ण निपटाने के नियमों का निर्माण करके कठोरता को कुछ कम किया है। फलस्वरूप, सुरक्षा के दो अवसरों - आरोप लगाने और प्रस्तावित दण्ड लागू करने- के स्थान पर अब शासकीय कर्मचारी को दण्ड के विरुद्ध उस साक्ष्य के आधार पर, जो उसके विरुद्ध अपराध की जाँच के दौरान प्रस्तुत किया गया है, अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त है। वह कोई नवीन साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सकता। इसका मन्तव्य अनुशासनात्मक कार्रवाई को शीघ्रतापूर्ण निपटाना मात्र है। परन्तु कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। स्थिति तो यह है कि आज एक ईमानदार व्यक्ति को हानि पहुँचाना तो अति सरल है पर बदमाश, भ्रष्टाचार कर्मचारी को छूने की भी हिम्मत नहीं होती।

## भ्रष्टाचार के रूप

भ्रष्टाचार के अगणित रूप हैं। यह आवश्यक नहीं कि भ्रष्टाचार धन के ही रूप में हो और न ही यह आवश्यक है कि किसी मन्त्री या अधिकारी को व्यक्तिगत लाभ के रूप में हो। किसी मन्त्री या अधिकारी या उसके सम्बन्धी या मित्रों को उनके व्यक्तिगत लाभ के लिए धन दिया जा सकता है। कभी-कभी उसे राजनीतिक दलों के लिए धन एकत्र करना पड़ता है। इस प्रकार जो धन या सुविधा प्राप्त होती है उसके बदले सत्ताधरी दानदाता के किसी कार्य या हित की पूर्ति कर देता है, जैसे उसकी फाइल पर शीघ्र निर्णय देना परमिट, लाइसेन्स या टेका प्रदान करना या किसी के विरुद्ध की गयी या प्रस्तावित कार्रवाई को समाप्त कर देना, आदि। हर प्रकार का भ्रष्टाचार सत्ता का दुरुपयोग है। मन्त्री या अधिकारी अपनी स्थिति का लाभ उठाकर अपने रिश्तेदारों को लोक सेवाओं या उन बड़ी निजी कम्पनियों में नौकरी दिलवा सकता है जिनको सरकार से काम पड़ते रहते हैं। अनेक पदनिवृत्त अधिकारियों को ऊँचे-ऊँचे वेतनों पर निजी क्षेत्रों में नियुक्त किया जाता है। यह केवल उनके प्रशासकीय अनुभव के कारण ही नहीं होता, अपितु उनसे प्रशासन में आसानी से पहुँच हो जाती है और शासन से कार्य कराने में इन पदनिवृत्त अधिकारियों को सम्पर्क अधिकारी के रूप में प्रयोग किया जाता है।

बहुत से व्यावसायिक एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों ने पर्वतीय नगरों, तीर्थस्थानों एवं बड़े नगरों में अतिथि गृह बनवा रखे हैं। अनेक मन्त्री एवं उच्च अधिकारी इनमें अवकाश, तीर्थयात्रा एवं शासकीय अधिकारियों में एक प्रकार की मित्रता हो जाती है, जो देखने में भले ही निर्दोष हो परन्तु सम्बन्धित अधिकारी को उसका बोध न होते हुए भी अनजाने ही उसकी सच्चरित्रता के लिए हानिकारिक सिद्ध होती है। अधिकारी के जो छोटे-छोटे कार्य किये जाते हैं, जिनके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि आतिथेय का उनमें कुछ खर्च ही नहीं होता, उनके यही परिणाम होते हैं। जैसे-जैसे मित्रता बढ़ती जाती है, आतिथेय द्वारा शासकीय अधिकारी को दिये जाने वाले उपहारों की मात्रा एवं मूल्य भी बढ़ते जाते हैं, और वे मित्रता के प्रतीक माने जाते हैं; परन्तु थोड़े समय पश्चात वे अधिकारी के कर्तव्यों पर भार बन जाते हैं। यदि कोई शासकीय कर्मचारी किसी आतिथेय के प्रति कुछ कारणों से अपने को अनुग्रहित करता है तो उसकी सच्चरित्रता को बड़ा धक्का लगता है, और जिन शासकीय कार्यों को करने में कठिनाई होती है उन कार्यों को बड़ा धक्का लगता है, और जिन शासकीय कार्यों को करने में कठिनाई होती है उन कार्यों को आतिथेय के लिए अस्वीकार करना अधिकारी के लिए असम्भव हो जाता है।

शीघ्र काम कराने के लिए धन देना भ्रष्टाचार, विशेषकर परमिट एवं लाइसेन्स प्राप्त करने का एक आम तरीका है। इस प्रकार की रिश्त देने वाला कोई गैर-कानूनी कार्य नहीं करना चाहता अपितु वह अपने मामले से सम्बन्धित कागजात को शीघ्रतापूर्ण

निपटाने का इच्छुक होता है। कुछ कर्मचारी वर्गों में तो जब तक किसी मामले को निपटाने के लिए उनसे सम्पर्क स्थापित नहीं किया जाता या खुशामद नहीं की जाती तब उस कार्य को न करने की उनमें आदत-सी पड़ जाती है।

प्रशासन की तरफ से निर्माण, क्रय एवं विक्रय तथा अन्य दैनिक कार्यों सम्बन्धी ठेकों में एक निश्चित प्रतिशत उस कार्य से सम्बन्धित सरकारी व्यक्तियों द्वारा लिया जाता है एवं सभी सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा उसे एक स्वीकृत अनुपात में बाँट लिया जाता है। सार्वजनिक निर्माण विभागों के निर्माण कार्यों से 7 से 11 प्रतिशत तक इस प्रकार दिया जाता है और इसमें एकजीक्यूटिव इंजीनियर से लेकर मिस्त्री तक का हिस्सा होता है। कभी-कभी तो ऊँचे पद के इंजीनियर का भी इसमें हिस्सा होता है। इसके अतिरिक्त रेलवे में वैगन देने, पार्सलों को भेजने, विशेषकर शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं के पार्सलों पर रिश्वत सम्बन्धी समान रिवाज प्रचलित है। जब किसी वस्तु का क्रय किया जाता है तब घटिया वस्तु को स्वीकार कराने के लिए भी कुछ प्रतिशत दिया जाता है।

अनेक विभागों में किसी स्थान विशेष पर नियुक्त सरकारी कर्मचारियों के लिए विशेष महत्वपूर्ण हाती है। अपनी इच्छा एवं महत्व के स्थान पर नियुक्ति के लिए बहुत-से शासकीय कर्मचारियों द्वारा रिश्वत दी जाती है। पुलिस, सार्वजनिक निर्माण आदि विभागों में तो पदों की नीलामी होती है।

व्यक्तिगत फाइलें एवं गोपनीय रिपोर्ट शासकीय विभागों में भ्रष्टाचार का अन्य साधन हैं। ये अधीनस्थों के सिर पर सदैव लटकने वाली तलवार की भाँति हैं। जब कोई अधिकारी दौरे पर जाता है तब वह अपने अधीनस्थों से यह अपेक्षा करता है कि वे उसकी सुतिधा का ध्यान रखें। इसका यह अर्थ है कि अधीनस्थ अधिकारी ही उस पर खर्चा करे। उन्हें इस प्रकार के व्यय के लिए धन का प्रबन्ध करना पड़ता है। इसका सहज परिणाम भ्रष्टाचार है। यदि कोई ईमानदार अधीनस्थ अपने वरिष्ठ अधिकारी को इस प्रकार की सेवा से अनुग्रहित करने में असफल रहता है तो यह सम्भव है कि उसकी व्यक्तिगत फाइल में उसके विपरीत चरित्र सम्बन्धी टिप्पणी लिख दी जाये। इसी प्रकार के कारणों तथा वरिष्ठ अधिकारी से अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए अनेक अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा उसकी व्यक्तिगत रूप से जी-हुजूरी की जाती है। एक शीर्षस्थ राज्य अधिकारी के सम्बन्ध में एक कहानी कही जाती है कि उसने अपने एक अधीनस्थ को कैम्प में मछली भिजवाने के लिए कहा। उसके अधीनस्थ ने अपनी असमर्थता व्यक्त की। इस पर उसकी व्यक्तिगत फाइल पर यह टिप्पणी दी गयी कि वह अयोग्य है।

भ्रष्टाचार का एक अन्य प्रकार शासकीय कर्मचारियों द्वारा सार्वजनिक धन का अपव्यय करना है। अनेक अवसरों पर जब मन्त्री एवं वरिष्ठ अधिकारी दौरे पर जाते हैं तो कनिष्ठ अधिकारियों द्वारा इन अवसरों पर भ्रमण हेतु आने वाले अधिकारियों के मनोरंजन के लिए अनाप-शनाप धन व्यय किया जाता है। इस प्रकार के मुक्तहस्त व्ययों का उद्देश्य केवल यही है कि सम्बन्धित मन्त्रियों एवं अधिकारियों से अपने अनुचित हित-साधन किये जायें।

केन्द्रीय निरीक्षण आयोग ने भ्रष्टाचार के निम्न 27 प्रकारों का उल्लेख किया है।

- (1) निम्नस्तरीय वस्तुओं या कार्य को स्वीकार करना;
- (2) सार्वजनिक धन और भण्डार का दुरुपयोग करना;
- (3) जिन व्यक्तियों से अधिकारियों के कार्यालय स्तर के सम्बन्ध हैं उनके आर्थिक दायित्वों को वहन करना;
- (4) ऐसे ठेकेदारों या फर्मों से कर्ज लेना जिनसे उनके कार्यालय स्तरीय सम्बन्ध होते हैं;
- (5) ठेकेदारों एवं फर्मों को रियायतें देना;
- (6) झूठे दौरे, भत्ते एवं ग-किराया आदि का दावा करना;
- (7) अपनी आमदनी से अधिक वस्तुओं को रखना;
- (8) बिना पूर्व-सूचना या पूर्व-अनुमति के अचल सम्पत्ति अर्जित करना;
- (9) प्रमाद या अन्य कारण से शासन को हानि पहुँचाना;
- (10) शासकीय पद या सत्ता का दुरुपयोग;
- (11) भर्ती, नियुक्ति, स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के सम्बन्ध में गैर-कानूनी रूप से धन लेना;

- (12) शासकीय कर्मचारियों को व्यक्तिगत कार्यों में प्रयोग करना;
- (13) जन्म-तिथि एवं समुदाय सम्बन्धी जाली प्रमाणपत्र तैयार करना;
- (14) रेल एवं वायुयान में स्थान सुरक्षित करने में अनियमितता;
- (15) मनीऑर्डर, बीमा एवं मूल्य-देय पार्सलों आदि को न देना;
- (16) नये डाक टिकटों को हटाकर पुराने टिकट लगाना;
- (17) आयात एवं निर्यात लाइसेन्स देने में असहयोग एवं अनियमितता;
- (18) शासकीय कर्मचारियों की जानकारी एवं सहयोग से विभिन्न फर्मों द्वारा आयातित एवं निर्धारित कोटे का दुरुपयोग;
- (19) टेलीफोन कनेक्शन देने में अनियमितता;
- (20) अनैतिक आचरण;
- (21) उपहार ग्रहण करना;
- (22) आर्थिक लाभ के लिए आय-कर, सम्पत्ति- कर आदि का कम मूल्यांकन प्रस्तुत करना;
- (23) स्कूटर एवं कार खरीदने के लिए स्वीकृत अग्रिम धनराशियों का दुरुपयोग;
- (24) विस्थापितों के दावों के निपटाने में अनुचित विलम्ब;
- (25) विस्थापितों के दावों का गलत मूल्यांकन;
- (26) आवासीय भूमि के हिस्सों के क्रय एवं विक्रय के सम्बन्ध में धोखा देना; तथा
- (27) शासकीय क्वार्टरों का अधिकृत कब्जा एवं उन्हें अनधिकृत रूप से किराये पर उठाना।

### वर्तमान विधिक संरचना

लोक कर्मचारियों के सम्बन्ध में भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1947 ने भ्रष्टाचार के क्षेत्र की निम्नलिखित परिभाषा दी है :

एक लोक सेवक अपने कर्तव्य के सम्पादन में आपराधिक दुराचरण (criminal misconduct) का दोषी होता है :

- (अ) यदि वह आदतन अपने लिए या अन्य किसी व्यक्ति से अपने लिए या अन्य व्यक्ति के लिए ऐसी धनराशि, जो विधिक पारिश्रमिक के अतिरिक्त होती है, किसी उद्देश्य या पुरस्कार के रूप में, जैसा भारतीय दण्ड विधान की धारा 161 में उल्लिखित है, स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है;
- (आ) यदि वह आदतन अपने लिए या अन्य किसी व्यक्ति से अपने लिए या अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु बिना कारण या किसी ऐसे कारण के लिए, जो वह जानता है कि अनुचित है, किसी जान-पहचान के व्यक्ति या किसी सम्पादित कार्य या व्यापार से सम्बन्धित या उसे या किसी ऐसे लोक सेवक के, जिलका वह अधीन्थ है, कार्यालय सम्बन्धी कार्यों या किसी ऐसे अन्य व्यक्ति से, जिसे वह जानता है या जिससे सम्बन्धित व्यक्ति का हित है या सम्बन्धित है, ग्रहण करता है; तथा
- (इ) यदि वह बेईमानी या जालसाजी से धन का दुरुपयोग करता है या लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करते हुए अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है।

### आचरण सम्बन्धी नियम

विभिन्न श्रेणियों के लिए कर्मचारी सम्बन्धी प थक-प थक परन्तु पर्याप्त साम्य रखने वाली आचरण सम्बन्धी नियमावलियाँ प्रचलित हैं -

- (i) अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम, 1954;
- (ii) केन्द्रीय नागरिक सेवा (आचरण) नियम, 1955;
- (iii) रेल सेवा (आचरण) नियम, 1956।

लोक सेवकों सम्बन्धी विभिन्न परिस्थितियों के बारे में शासन द्वारा समय-समय पर अनेक नियमों का निर्माण किया गया है एवं आदेश जारी किये गये हैं :

- (i) 1860 में राजपत्रित एवं 1869 में अराजपत्रित कर्मचारियों द्वारा कर्ज लेने एवं कर्ज देने सम्बन्धी;
- (ii) 1876 में उपहार ग्रहण करने सम्बन्धी;
- (iii) 1881 में मकानों एवं अन्य बहुमूल्य सम्पत्ति बेचने सम्बन्धी;
- (iv) 1883 में शासन के अधीन किसी एक पद से अन्य व्यक्तियों के आर्थिक लाभ हेतु पद-त्याग करने सम्बन्धी;
- (v) 1885 में अचल सम्पत्ति में धन लगाने एवं सट्टे सम्बन्धी;
- (vi) 1845 में कम्पनियों के प्रबन्ध एवं विकास तथा निजी व्यापार एवं रोजगार सम्बन्धी;
- (vii) 1885 में लोक सेवकों द्वारा चन्दा एकत्र करने सम्बन्धी;
- (viii) 1885 में कर्जदार एवं दिवालिया होने सम्बन्धी; तथा
- (ix) 1920 में पदनिवृत्ति के पश्चात् व्यापारिक संस्थाओं में नियुक्ति सम्बन्धी।

इन नियमों में निश्चय ही अनेक कमियाँ हैं। फलस्वरूप, इनके द्वारा भ्रष्टाचार को रोकना कठिन हो गया है।

### केन्द्रीय सतर्कता आयोग

केन्द्रीय शासन द्वारा कार्यपालिका शक्तियों सम्बन्धी मामलों में केन्द्रीय सतर्कता आयोग (Central Vigilance Commission-CVC) को क्षेत्राधिकार एवं शक्तियाँ प्राप्त हैं। इसका क्षेत्राधिकार केन्द्रीय शासन के समस्त कर्मचारियों, सार्वजनिक उद्यम के कर्मचारियों, सामूहिक निकायों, केन्द्रीय शासन की कार्यपालिका शक्ति सम्बन्धी मामलों एवं संगठनों तक विस्तृत है। दिल्ली महानगर परिषद तथा नयी दिल्ली नगरपालिका समिति भी इसके क्षेत्रान्तर्गत हैं। प्रारम्भ में आयोग ने राजपत्रित अधिकारियों तथा समान पदीय अधिकारियों को ही अपने क्षेत्रान्तर्गत शामिल करने का निश्चय किया था।

#### कार्य

- (i) ऐसी सभी लेनदारी के सम्बन्ध में जाँच करना जिसके सम्बन्ध में किसी शासकीय अधिकारी पर अनुचित उद्देश्य या भ्रष्ट तरीके से कार्य करने के कारण शक किया जाता हो या आरोप लगाया गया हो।
- (ii) किसी लोक सेवक के विरुद्ध इस शिकायत की कि उसने अपनी सत्ता का प्रयोग अनुचित या भ्रष्ट उद्देश्यों के लिए किया है या नहीं किया है अथवा किसी लोक सेवक के विरुद्ध भ्रष्टाचार, दुराचरण, सच्चरित्रता के अभाव या अन्य प्रकार के दुराचरण एवं दुर्व्यवहार सम्बन्धी शिकायत की जाँच करना।
- (iii) आयोग अभिकरणों से प्रतिवेदन प्राप्त करता है जिससे निरीक्षण एवं भ्रष्टाचार सम्बन्धी कार्यों पर नियन्त्रण रखा जा सके।
- (iv) आयोग अपने नियन्त्रण में सीधे उन शिकायतों पर विचार कर सकता है जिनके सम्बन्ध में अग्रिम कार्रवाई की आवश्यकता होती है। यह (अ) केन्द्रीय जाँच ब्यूरो को मामला दर्ज करके नियमित मामले के रूप में जाँच सम्बन्धी आदेश देने; या (आ) केन्द्रीय जाँच ब्यूरो द्वारा जाँच के लिए उसे सूचीबद्ध करने; या (इ) सम्बन्धित अभिकरण को जाँच के आदेश देने सम्बन्धी हो सकता है।
- (v) प्रशासन में सच्चरित्रता के संरक्षण हेतु प्रशासनिक कार्य-पद्धति एवं कार्यप्रणाली का पुनरीक्षण करना।

आयोग गृह मन्त्रालय को अपने कार्यों का प्रतिवेदन देता है और उसके द्वारा प्रस्तावित किसी विशेष सिफारिश पर ध्यान आकर्षित करता है, जो स्वीकृत या अस्वीकृत की गयी हो। गृह मन्त्रालय द्वारा यह प्रतिवेदन संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

वर्तमान आयोग में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों सहित 140 कर्मचारी हैं। इसका अध्यक्ष केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त होता है, जिसे राष्ट्रपति अपनी मुहर एवं हस्ताक्षरों द्वारा नियुक्त करता है। इसका कार्यकाल 6 वर्ष है, या 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक

वह अपने पद पर रहता है। संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के पदच्युत करने की रीति से ही इसे अपने पद से पृथक् किया जा सकता है। पदनिवृत्ति के पश्चात् वह केन्द्रीय या राज्य शासनों के अधीन कोई पद ग्रहण नहीं कर सकता।

इसके अतिरिक्त आयोग में एक सचिव, एक विशिष्ट अधिकारी, एक मुख्य प्राविधिक आयुक्त, विभागीय जाँच हेतु तीन आयुक्त, दो अवर सचिव एवं छह प्राविधिक आयुक्त होते हैं। मुख्य प्राविधिक आयुक्त का संगठन केन्द्रीय सतर्कता आयोग को हस्तान्तरित कर दिया गया है।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना कार्यपालिका के प्रस्ताव द्वारा की गयी है। यह संविधिक निकाय नहीं है। इसके कर्तव्य 'परामर्शदायी' भी लोक सेवा आयोग के अर्थों में हैं। "आयोग का स्वतन्त्र एवं स्वायत्ततीय स्तर उसकी व्यापक शक्तियाँ एवं क्षेत्राधिकार है। वह अपने प्रतिवेदन में प्रस्तावित सिफारिशों को प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा स्वीकार न करने सम्बन्धी तथ्यों का उल्लेख करता है। यह सब आयोग को एक प्रभावी संगठन बना देते हैं, जिससे लोक सेवा में भ्रष्टाचार एवं चारित्रिक अभाव सम्बन्धी सभी जटिलताओं की ओर पर्याप्त एवं उचित ध्यान दिया जा सके।"

### कार्य-पद्धति

आयोग वैयक्तिक रूप में शिकायतें द्वारा अपने भाषणों में व्यक्त सूचनाएँ, लेखा-परोक्षण आपत्तियाँ एवं केन्द्रीय जाँच ब्यूरो से सूचनाएँ एकत्र करता है। सदाचार समिति जैसे सामाजिक संगठनों एवं उत्तरदायी नागरिकों तथा समाचार-पत्रों द्वारा दिये जाने वाले सहयोग का भी वह स्वगत करता है। आयोग अधिकांश में ऐसी शिकायतें भी प्राप्त करता है जो राज्य सरकारों के क्षेत्राधिकार में आती हैं। जिन मामलों को वह ठीक समझता है उनके सम्बन्ध में राज्य सतर्कता आयोगों का ध्यान आवश्यक कार्यवाही हेतु आकर्षित करता है। इसी प्रकार राज्य सतर्कता आयोगों द्वारा केन्द्रीय सतर्कता आयोग के क्षेत्र में आने वाली जो शिकायतें प्राप्त की जाती हैं, वे केन्द्रीय सतर्कता आयोग को आवश्यक कार्रवाई हेतु प्रेषित कर दी जाती हैं।

शिकायतें प्राप्त करने पर केन्द्रीय सतर्कता के समक्ष निम्न विकल्प होते हैं :

- (अ) केन्द्रीय सतर्कता आयोग किसी शिकायत को जाँच हेतु सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालय अथवा विभाग को भेज सकता है। ऐसे मामलों में मन्त्रालयीय या विभागीय सतर्कता अधिकारी आरोपों की प्रारम्भिक जाँच करने के पश्चात् अपना प्रतिवेदन केन्द्रीय सतर्कता आयोग को प्रस्तुत करता है। तत्पश्चात् आयोग मन्त्रालय अथवा विभाग को सम्बन्धित मामलों में अग्रिम कार्रवाई करने के आदेश देता है।
- (आ) केन्द्रीय सतर्कता आयोग केन्द्रीय जाँच ब्यूरो (Central Bureau of Investigation) को जाँच करने के आदेश दे सकता है। केन्द्रीय जाँच ब्यूरो द्वारा अपनी जाँच के प्रतिवेदन अन्य सम्बन्धित तथ्यों एवं अभिलेखों सहित सतर्कता आयोग को प्रस्तुत किये जाते हैं और केन्द्रीय सतर्कता आयोग तत्पश्चात् सम्बन्धित मन्त्रालय या विभाग को अग्रिम कार्रवाई के सम्बन्ध में परामर्श देता है।
- (इ) केन्द्रीय सतर्कता आयोग केन्द्रीय जाँच आयोग के निदेशक को किसी मामले को पंजीकृत करके उसकी जाँच के आदेश दे सकता है। निदेशक आयोग को जाँच-परिणामों से सूचित करता है कि उसके विरुद्ध क्या कार्रवाई की जाये। यदि किसी विधि के अन्तर्गत मुकदमा चलाने के लिए राष्ट्रपति की पूर्वस्वीकृति आवश्यक होती है तो केन्द्रीय जाँच ब्यूरो का निदेशक अपना अग्रिम प्रतिवेदन केन्द्रीय सतर्कता आयोग के माध्यम से गृह मन्त्रालय को अग्रसारित करता है। साथ ही साथ, केन्द्रीय जाँच ब्यूरो अपने प्रतिवेदन की एक प्रति सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालय या विभाग को उसकी टिप्पणियों हेतु-यदि विभाग कोई टिप्पणी देना चाहता है - प्रेषित करता है। मन्त्रालय या विभाग अपनी टिप्पणियाँ केन्द्रीय सतर्कता आयोग को प्रेषित करता है। केन्द्रीय जाँच ब्यूरो के प्रतिवेदन, सम्बन्धित सामग्री, विभागीय टिप्पणी आदि पर विचार करके केन्द्रीय सतर्कता आयोग कार्रवाई करने या न करने के सम्बन्ध में गृह मन्त्रालय को परामर्श देता है। अतः अग्रिम आदेश गृह मन्त्रालय ही जारी करता है।
- (ई) यदि राष्ट्रपति के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकारी कार्रवाई सम्बन्धी आदेश देने का अधिकारी होता है तो निदेशक केन्द्रीय जाँच ब्यूरो को अपना जाँच-प्रतिवेदन उस अधिकारी को आवश्यक कार्रवाई की स्वीकृति हेतु प्रेषित करता है। यदि यह अधिकारी निदेशक द्वारा प्रस्तावित अनुमति प्रदान करने के लिए तैयार नहीं होता तो वह अपने मत एवं कारणों तथा केन्द्रीय जाँच आयोग के निदेशक के कागजात सहित सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालय एवं विभाग के मा

यम से केन्द्रीय सतर्कता आयोग को प्रेषित करता है। अधिकारी द्वारा सम्बन्धित मामले में केन्द्रीय सतर्कता आयोग के परामर्श पर ही अग्रिम कार्रवाई की जाती है।

मन्त्रालयों/विभागों द्वारा शिकायतों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सतर्कता आयोग ने प्रशासकीय मन्त्रालयों/विभागों की कार्य-पद्धति निर्धारित की है। इन शिकायतों को प्रशासकीय मन्त्रालयों/विभागों द्वारा निपटाया जाता है। केन्द्रीय सतर्कता अयोग का दायित्व प्रशासकीय मन्त्रालयों एवं विभागों को प्रशासकीय सच्चरित्रता सम्बन्धी सभी मामलों में परामर्श प्रदान करना है। इसे मन्त्रालयों एवं विभागों से प्रतिवेदन, वक्तव्य एवं सूचनाएँ प्राप्त करने का अधिकार भी है जिससे सामान्य नियन्त्रण एवं निरीक्षण तथा मन्त्रालयों एवं विभागों के भ्रष्टाचार विरोधी कार्यों को रोका जा सके। यह किसी भी शिकायत को सीधे अपने नियन्त्रण में ले सकता है। केन्द्रीय सतर्कता आयोग को उसके दायित्वों का समुचित रूप में सम्पादन करने एवं सूचना प्रदान करने हेतु प्रत्येक मन्त्रालय एवं विभाग आयोग को त्रैमासिक सावधिक सूचना निम्नलिखित बातों पर भेजता है : (क) शिकायतों का निपटारा एवं शेष शिकायतें; (ख) अनाम एवं छद्म नाम से प्राप्त शिकायतों का विवरण; एवं (ग) तीन मास से अधिक समय से निलम्बित शासकीय अधिकारी। जब भी कोई शिकायत होती है और मामले की प्रारम्भिक जाँच की जाती है, तो यह जाँच सम्बन्धी प्रतिवेदन आयोग को अग्रसरित किया जाता है, जो उसका अध्ययन करके उससे सम्बन्धित अग्रिम कार्रवाई करने के बारे में परामर्श देता है।

### मन्त्रालय में सतर्कता संगठन

भ्रष्टाचार निरोध सम्बन्धी संथानम समिति ने प्रत्येक मन्त्रालय एवं विभाग के सतर्कता संगठनों को सशक्त तथा प्रभावशाली बनाने के लिए सुझाव दिये हैं। प्रत्येक संगठन में शुद्धता, सच्चरित्रता एवं सक्षमता सम्बन्धी प्रारम्भिक दायित्व मन्त्रालय के सचिव या विभागाध्यक्ष तथा मुख्य सतर्कता अधिकारी का होता है। यह अधिकारी प्रत्येक मन्त्रालय तथा विभाग में इसी हेतु नियुक्त किया जाता है। अतिरिक्त सतर्कता सम्बन्धी मामलों में वह विभाग के सचिव या विभागाध्यक्ष के विशेष सचिव के रूप में भी कार्य करता है, और इस प्रकार केन्द्रीय सतर्कता आयोग मन्त्रालय तथा विभाग के मध्य एक कड़ी करता है। इसी प्रकार सभी सार्वजनिक उद्यमों से सम्बद्ध एवं अधीनस्थ कार्यालयों में एक सतर्कता अधिकारी की नियुक्ति की जाती है। मुख्य सतर्कता अधिकारी सम्बन्धित एवं अधीनस्थ कार्यालयों तथा सम्बन्धित मन्त्रालयों एवं विभागों के कार्यों का समन्वय करने और सम्बन्धित सतर्कता अधिकारियों के कार्यों के निर्देशन के लिए उत्तरदायी होता है। बड़े मन्त्रालयों एवं विभागों के कुछ मुख्य सतर्कता अधिकारी पूर्णकालिक अधिकारी होते हैं, शेष सभी अल्पकालिक अधिकारी के रूप में कार्य करते हैं। यह सम्बन्धित विभाग में सतर्कतस सम्बन्धी कार्य पर निर्भर होता है।

प्रत्येक मुख्य सतर्कता अधिकारी की नियुक्ति केन्द्रीय सतर्कता कार्यालय के परामर्श से होती है। सम्बद्ध एवं अधीनस्थ कार्यालयों में सतर्कता अधिकारी की नियुक्ति सम्बन्धित मन्त्रालय एवं विभाग के मुख्य समर्कता अधिकारी के परामर्श से की जाती है। मुख्य सतर्कता अधिकारी उप-सचिव के एवं सतर्कता अधिकारी अवर सचिव के दर्जे के होते हैं। सार्वजनिक उद्यमों में निरीक्षण अधिकारी का दर्जा केन्द्रीय सतर्कता आयोग के परामर्श से उद्यम के प्रधान द्वारा निश्चित किया जाता है।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग को मुख्य समर्कता अधिकारियों के कार्यों की समीक्षा करने एवं तत्सम्बन्धी मूल्यांकन सम्बन्धित अधिकारियों की चरित्र-पुस्तिका में लिपिबद्ध करने का अधिकार प्राप्त है।

मुख्य सतर्कता अधिकारियों द्वारा आवश्यकतानुसार सार्वजनिक उद्यम सहित अपने अधीन संगठनों के विद्यमान स्वरूप के पुनरीक्षण एवं उसे सशक्त बनाने के लिए आवश्यक एवं उचित सुझाव देने का अधिकार है। ऐसे सभी प्रस्ताव जिनके द्वारा सतर्कता संगठन को शक्तिशाली बनाने के सुझाव दिये जाते हैं, केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्वीकृति एवं निरीक्षण के लिए प्रेषित किये जाते हैं।

### विशेष पुलिस संगठन

केन्द्रीय सरकार के कार्यकारी आदेश के अन्तर्गत 1941 में विशेष पुलिस संगठन (Special Police Establishment) का गठन किया गया था। प्रारम्भ में यह संगठन केन्द्रीय प्रशासन के युद्ध एवं पूर्ति विभाग में आदान-प्रदान सम्बन्धी रिश्वत एवं भ्रष्टाचार से सम्बन्धित था। बाद में इस संगठन के कार्यों में वृद्धि कर दी गयी और चूँकि रेलों का सम्बन्ध युद्ध-सामग्री के आवागमन



एवं पूर्ति से सम्बन्धित था, अतः रेलवे के भ्रष्टाचार को भी इसमें शामिल कर लिया गया। 1946 में दिल्ली विशेष पुलिस संगठन कानून बनाया गया। उस समय से यह संगठन इस अधिनियम के अधीन कार्य कर रहा है। सह ग ह मन्त्रालय का एक अंग है तथा इसका क्षेत्राधिकार सभी राज्यों एवं केन्द्र-शासित क्षेत्रों तक विस्तृत है। 1963 में केन्द्रीय जाँच ब्यूरो की स्थापना की गयी, और विशेष पुलिस संगठन को उसका एक सम्भाग बना दिया गया।

विशेष पुलिस संगठन एक विशिष्ट अभिकरण है जो खास-खास अपराधों की जाँच एवं छानबीन करता है। सम्बन्धित राज्य की पुलिस के साथ-साथ इसे दिल्ली पुलिस संगठन अधिनियम के अन्तर्गत अपराधों के सम्बन्ध में समवर्ती जाँच एवं निरीक्षण सम्बन्धी क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। कार्य के द्विगुणन दोष से बचने के लिए केन्द्रीय शासन तथा राज्य शासनों में उन मामलों के सम्बन्ध में, जिनकी छानबीन विशेष पुलिस संगठन द्वारा की जायेगी, एक प्रशासकीय व्यवस्था निश्चित की गयी है। लोक सेवकों के सम्बन्ध में यह व्यवस्था इस प्रकार है :

- (अ) केन्द्रीय शासन के कर्मचारियों एवं उनके मामलों से सम्बन्धित विवादों की (भले ही राज्य शासन के कुछ कर्मचारी शामिल हों) छानबीन, विशिष्ट पुलिस संगठन द्वारा की जायेगी।
- (आ) राज्य शासन के मामलों (भले ही उसमें कुछ केन्द्रीय कर्मचारी शामिल हों) एवं विवादों की छानबीन, जिससे राज्य कर्मचारियों का सम्बन्ध होता है, राज्य पुलिस द्वारा की जायेगी।
- (इ) विशेष पुलिस संगठन को सांविधिक निकायों या भारत शासन द्वारा स्थापित एवं वित्तीय सहायता प्राप्त सार्वजनिक उद्यमों के कर्मचारियों के निर्णय करने का अधिकार है।

आजकल ज्वाइंट स्टॉक कम्पनियों के कुप्रबन्ध तथा आयात एवं निर्यात निगम सम्बन्धी महत्वपूर्ण मामलों की भी छानबीन विशेष पुलिस संगठन द्वारा की जाती है। विशेष पुलिस संगठन की इस शाखा को, इन अपराधों से सम्बन्धित है, विस्तृत और शक्तिशाली बनाना चाहिए जिससे विदेशी मुद्रा (Foreign Exchange) सम्बन्धी नियमों एवं तस्करी, कस्टम करों की चोरी, कम या अधिक मूल्य के बीजक बनाना आदि मामलों को निपटाने तथा निर्णीत करने में समय एवं श्रम की बचत हो।

## लोकपाल

सत्ता में आने के तुरन्त बाद जनता पार्टी की सरकार ने देश के सार्वजनिक जीवन से भ्रष्टाचार मिटाने के लिए लोकपाल (Lokpal) नामक अधिकारी की स्थापना का वचन दिया था। स्मरणीय है कि है कि 1966 में प्रशासकीय सुधार आयोग ने प्रथम बार भारत में 'ओम्बुड्समैन' जैसी संस्था की स्थापना का सुझाव दिया था। तत्कालीन शासन इस प्रकार की संस्था की स्थापना के सम्बन्ध में काफी समय तक उदासीन रहा लेकिन 1971 में उसने लोकसभा में 'लोकपाल विधेयक' प्रस्तुत किया, किन्तु लोकसभा के विघटन के साथ ही यह विधेयक स्वतः ही समाप्त हो गया। इस विधेयक में प्रधानमंत्री के विरुद्ध आरोपों की जाँच के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं थी।

जनता सरकार ने जुलाई 1977 में लोकसभा में यह विधेयक प्रस्तुत किया। इस विधेयक की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं: प्रथम, प्रधानमंत्री भी लोकपाल के क्षेत्राधिकार के बाहर नहीं है अर्थात् प्रधानमंत्री के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोप की जाँच करने का अधिकार लोकपाल को प्रदान किया गया है। यह व्यवस्था सर्वथा उचित है। आपातकाल के दौरान जो अनुचित कार्य हुए थे उन्हें देखकर यह नितान्त आवश्यक था कि स्वच्छ प्रशासन की दृष्टि से प्रधानमंत्री के मामले में भी लोकपाल को जाँच का अधिकार दिया जाय। द्वितीय, जाँच करने के लिए लोकपाल की अपनी स्वयं की प्रशासनिक व्यवस्था होगी। इसका यह अर्थ है कि लोकपाल को अपने कार्यों के लिए नियमित शासन-तन्त्र पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं रहेगी। केन्द्रीय सतर्कता आयोग की यह एक गम्भीर कमी है।

लोकपाल को विधेयक में उल्लिखित सार्वजनिक एवं शासकीय व्यक्तियों के दुराचरण के सम्बन्ध में जाँच का अधिकार प्राप्त है। प्रधानमंत्री, अन्य मन्त्रियों, संसद सदस्यों, मुख्य मन्त्रियों और राज्य के मन्त्रियों तथा राज्य विधनमण्डल के सदस्यों के विरुद्ध दुराचरण एवं भ्रष्टाचार के मामलों पर लोकपाल को क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

लोकपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश, राज्यसभा के सभापति और लोकसभा के परामर्श से करने की व्यवस्था है। उसका कार्यकाल 5 वर्ष निश्चित किया गया है। पदावकाश के बाद वह राज्य के अधीन किसी भी पद पर

नियुक्त नहीं किया जा सकता। उसका वेतन 5,000 रुपये प्रति माह निश्चित किया गया है। स्वतन्त्रता व ईमानदारी से अपने दायित्व का सम्पादन करने की दृष्टि से उसका कार्यकाल निश्चित है, और वह अपने पद से किसी गम्भीर दुराचरण एवं अयोग्यता के आधार पर राष्ट्रपति के आदेश से पदमुक्त किया जा सकता है। राष्ट्रपति ऐसा आदेश तभी दे सकता है जबकि संसद के दोनों सदनों द्वारा पथक-पथक रूप में कुल सदस्य-संख्या के बहुमत एवं उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से लोकपाल के विरुद्ध गम्भीर आरोप के आधार पर पदच्युत करने का प्रस्ताव पारित करके राष्ट्रपति से लोकपाल को पदच्युत करने की प्रार्थना की गयी हो।

लोकपाल को उसके कार्य में सहायता प्रदान करने के लिए जाँच करने वाले शासन-तन्त्र पर सीधा प्रशासकीय नियन्त्रण प्रदान किया गया है। उसे व्यक्तियों को अपने समक्ष उपस्थित होने, किसी दस्तावेज को प्रस्तुत करने एवं खोजने, शपथपत्र या हलफिया बयान (affidavit) या साक्ष्य देने तथा साक्ष्यों अर्थात् गवाहों से बहस करने के लिए आयोग की नियुक्ति के सम्बन्ध में वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो दीवानी अदालत को प्राप्त होते हैं।

यदि प्रेषित आरोप जाँच के बाद लोकपाल द्वारा पूर्ण या आंशिक रूप में सत्य पाये जाते हैं तो वह अपना निर्णय सम्बन्धित अधिकारी को प्रेषित करता है। इस अधिकारी का यह कर्तव्य है कि लोकपाल के प्रतिवेदन पर जो कार्रवाई की गयी है, उसकी सचूना वह तीन माह के भीतर लोकपाल को प्रेषित करे।

प्रस्ताव विधेयक में यह भी व्यवस्था है कि लोकपाल राष्ट्रपति को वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा जो उसके द्वारा संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा।

सरकारी कर्मचारी के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति को लोकपाल के समक्ष शिकायत करने का अधिकार है। झूठी व महत्वहीन शिकायतें न की जायें, इस दृष्टि से यह व्यवस्था की गयी है कि आवेदक को आरोप लगाते समय 1,000 रुपये जमा करने पड़ेंगे।

विधेयक में बड़े स्पष्ट रूप से उन सार्वजनिक अधिकारियों का उल्लेख किया गया है जिनके विरुद्ध लोकपाल दुराचार की जाँच कर सकता है। अतः दुराचार और भ्रष्टाचार की जाँच करने के लिए यह एक स्थायी व्यवस्था है। स्मरणीय है कि लोकपाल को कुशासन के फलस्वरूप जनता के साथ होने वाले अन्याय एवं कठिनाइयों की जाँच करना है। यह नितान्त आवश्यक है कि कुशासन से होने वाले जन-कष्ट के निवारण के लिए एक अन्य संस्था की स्थापना की जाये।

### राज्यों में सतर्कता तन्त्र

राज्य-स्तर पर सतर्कता व्यवस्था का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रत्येक राज्य में एक राज्य सतर्कता आयोग है जो 1964 से कार्यरत है। इस सम्बन्ध में उनकी कार्य-पद्धति और उनके संगठन एवं कार्यों सम्बन्धी समानता से यह स्पष्ट है कि उन्होंने केन्द्रीय शासन से मूलतः प्रेरणा एवं नेतृत्व प्राप्त किया है। केन्द्र की भाँति ही प्रत्येक राज्य में विशेष पुलिस संगठन है। वास्तव में, देश में सच्चरित्रता सम्बन्धी संस्था द्वारा खोज की व्यवस्था का प्रेरणा-स्रोत केन्द्र है और केन्द्रीय शासन ही इस विचार का समर्थन एवं नेतृत्व कर रहा है।

राज्य सतर्कता आयोगों का क्षेत्राधिकार राज्यों की कार्यपालिका शक्तियों सम्बन्धी मामलों से सम्बन्धित है। लेकिन इसके द्वारा राजनीतिक भ्रष्टाचार की जाँच नहीं की जा सकती केन्द्रीय सतर्कता आयोग को भी यह शक्ति प्राप्त नहीं है।

जहाँ तक विभिन्न राज्यों के सतर्कता आयोगों की शक्तियों का सम्बन्ध है, उनमें थोड़ा-सा ही अन्तर है। सामान्यता: आयोग को निम्न अधिकार प्राप्त हैं:

1. ऐसे सभी मामलों की छानबीन करना जिनमें किसी लोक सेवक के द्वारा अनुचित उद्देश्यों या भ्रष्ट तरीकों से कार्य करने सम्बन्धी सन्देह या आरोप हैं।
2. निम्नलिखित मामलों में छानबीन की जा सकती है :
  - (i) ऐसी शिकायत पर जहाँ किसी लोक सेवक द्वारा अनुचित या भ्रष्ट उद्देश्यों के लिए अपनी सत्ता का प्रयोग किया गया हो, या आवश्यकतानुसार प्रयोग न किया गया हो;

- (ii) किसी लोक सेवक (जिनमें अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी भी शामिल हैं जो राज्य सरकारों के अधीन सेवारत हैं) के विरुद्ध भ्रष्टाचार, दुराचरण, सच्चरित्रता अभाव सम्बन्धी या अन्य प्रकार के दोषारोपण या अन्य कोई गम्भीर अपराध सम्बन्धी शिकायत;
  - (iii) ऐसी सभी शिकायतों, सूचनाओं, मामलों को जिन्हें वह उचित समझे, आगामी कार्रवाई के लिए सीधे अपने नियन्त्रण में ले सकता है जिनका सम्बन्ध या तो -
    - (क) राज्य विशेष के पुलिस संगठन को मामलों को पंजीकृत करके उसकी जाँच करने से हो; या
    - (ख) किसी शिकायत, मामले की सूचना छानबीन हेतु राज्य विशेष पुलिस संगठन या सम्बन्धित विभाग को देने से सम्बन्धित हो।
3. प्रशासन में सच्चरित्रता बनाये रखने के लिए प्रशासनिक पद्धतियों एवं कार्य-प्रणाली एवं निरीक्षण का पुनरीक्षण।
  4. सांख्यिकी एवं अन्य सूचनाएँ एकत्र करना जिससे सम्पूर्ण प्रशासन पर सामान्य नियन्त्रण एवं निरीक्षण रखा जा सके।

जिन मामलों को विशेष पुलिस संगठन की जाँच के लिए भेजा जाता है, उनसे सम्बन्धित जाँच की रिपोर्ट आयोग को प्रस्तुत की जाती है। इसके द्वारा नियुक्तिकर्ता अधिकारी को अग्रिम कार्रवाई के सम्बन्ध में परामर्श दिया जाता है। जो मामले सीधे विशेष पुलिस संगठन के द्वारा ही पंजीकृत किये जाते हैं। उनके सम्बन्ध में विशेष पुलिस संगठन द्वारा सम्बन्धित सामान्य प्रशासन विभाग को सतर्कता आयोग के माध्यम से प्रतिवेदन दिया जाता है और इसकी एक प्रति सूचनार्थ संगठन को भी भेजी जाती है।

सतर्कता आयोग द्वारा प्रतिवेदन की समीक्षा की जाती है तथा कर्मचारी अभिकरण के उत्तर पर विचार किया जाता है। तत्पश्चात् उसके द्वारा सामान्य प्रशासन विभाग की आवश्यक कार्रवाई अर्थात् विभागीय कार्रवाई पर्याप्त होगी या उस पर अभियोग चलाया जाना चाहिए इस सन्दर्भ में परामर्श दिया जाता है।

आयोग की अध्यक्षता राज्य सतर्कता आयुक्त करता है। वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के स्तर का होता है। उसका कार्यकाल 5 वर्ष है। इसके पश्चात् वह राज्य व केन्द्र के अधीन किसी पद को धारण करने का अधिकारी नहीं रहता। आयुक्त भी होते हैं जिनका कार्य विभागीय भ्रष्टाचार एवं सामान्य प्रकार के अपराधों की छाबीन करना है। आयोग राज्य शासन को अपने कार्य सम्बन्धी वार्षिक प्रतिवेदन देता है जो राज्य विधानमण्डल में विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रतिवेदन द्वारा आयोग विशेष रूप से राज्य शासन का ध्यान उसके द्वारा दी गयी किसी सिफारिश को न मानने या क्रियान्वित न करने की ओर आकृष्ट करता है।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग की भाँति राज्य-स्तर के सतर्कता आयोगों की भी स्थापना कार्यकारी आदेश द्वारा ही की गयी है। उनका दायित्व परामर्शदात्री है। लेकिन प्रत्येक राज्य ने आयोग के निर्माण सम्बन्धी अपने आदेश में इस बात पर बल दिया है कि अपनी शक्तियों, कार्यों तथा कर्तव्यों के सम्पादन में आयोग किसी विभाग के अधीन नहीं होगा। अतः यह राज्य लोक सेवा आयोगों के समान ही स्वतन्त्रता का उपभोग करता है। विधान तो यही है, परन्तु राज्य-स्तर के सतर्कता आयोग का परिधान दूसरा ही है। अधिकांश राज्यों में सतर्कता आयोग निष्प्राण रहा है। सत्य तो यह है, भारत की आज की राजनीति लोकनायक जयप्रकाश की पूजक नहीं; यह तो भ्रष्टाचार पर आधारित है, जीवित है। सतर्कता आयोग नुमाइशी या दिखावे के लिए है।

सच्चरित्रता सम्बन्धी खोज के सन्दर्भ में जिला-स्तर तक शासन द्वारा जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, उनके सम्बन्ध में दो शब्द कहना आवश्यक है। सम्भागीय स्तर पर एक सम्भागीय सतर्कता आयुक्त की नियुक्ति की गयी है जो सम्भाग आयुक्त, पुलिस उपमहानिरीक्षक एवं सम्भागीय निरीक्षक अधिकारी के स्तर का होता है। जिला-स्तर पर प्रत्येक जिले में एक जिला सतर्कता अधिकारी होता है जिसे जिलाधीश या डिप्टी कमिश्नर द्वारा नियुक्त किया जाता है। यह अधिकारी सम्भागीय सतर्कता आयोग के परामर्श से जिलाधीश के राजपत्रित अधीनस्थों में से नियुक्त किया जाता है।

अतः देश में सतर्कता संगठनों का एक जाल-सा बिछा हुआ है। सच्चरित्रता की समस्या पर विचार हेतु प्रति वर्ष मुख्य सतर्कता आयुक्त की अध्यक्षता में सभी राज्यों के सतर्कता आयुक्तों का एक वार्षिक सम्मेलन होता है। यह वार्षिक सम्मेलन अत्यन्त

लाभदायक है, क्योंकि यह पारस्परिक समस्याओं एवं अनुभवों के आदान-प्रदान के लिए अवसर प्रदान करता है। इससे केन्द्रीय एवं राज्य स्तरों पर शासन के भ्रष्टाचार निवारक कार्यों के प्रचार एवं प्रसार का अवसर प्राप्त होता है। इसके फलस्वरूप शासन के उद्देश्यों की ईमानदारी के प्रति जनता में विश्वास का संचार होता है।

खेद है, सतर्कता संगठन खोखले-से हैं। भ्रष्टाचार बढ़ता ही जा रहा है। यह इतना व्यापक हो गया है कि यह कहना अधिक गलत नहीं होगा कि आज भ्रष्टाचारियों का ही जमाना है; यही फल-फूल रहे हैं। बोफोर्स, प्रतिभूति, चीनी जैसे महाघोटालों का अन्तहीन क्रम देश के लिए लज्जा के विषय हैं। लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार तब तक समाप्त नहीं होगा जब तक राजनीतिज्ञ, मन्त्री व नेता राष्ट्रपिता तथा लोकनायक के विचारों की अवहेलना करते रहेंगे।

## अध्याय-38

# लोक शिकायतों का निवारण

## (Redressal of Citizens Grievances)

समसामयिक समाज में राज्य सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। लोकतंत्र एवं विकास की सफलता काफी हद तक सरकारी तंत्र की कुशलता पर निर्भर करती है। आधुनिक सरकार को स्वनिर्णय की असीम शक्ति प्राप्त है। राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों में सरकार की बढ़ती हुई भूमिका नागरिकों की प्रशासन पर निर्भरता बढ़ाती है। प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग अनाचार, परेशानी और भ्रष्टाचार को जन्म देता है। जिसके परिणामस्वरूप जनता में प्रशासन के विरुद्ध शिकायतें पैदा होती हैं। चैम्बर शब्दकोश के अनुसार-“शिकायत” का अर्थ है “शिकायत का आधार”, दमनकारी या अनुचित स्थिति प्रतीत है।” लोकतंत्र में जनता को अपनी शिकायतें अभिव्यक्त करने का अवसर मिलना चाहिए और उन शिकायतों के निवारण की उचित व्यवस्था भी होनी चाहिए। इस इकाई में हम जनता की शिकायतों की प्रकृति और इन शिकायतों की प्रकृति और इन शिकायतों के निवारण की संगठनात्मक व्यवस्था की व्याख्या करेंगे।

### लोक शिकायतों की प्रकृति

पर्यावरण लोक शिकायतों की प्रकृति को निर्धारित करता है। प्रशासन के औपनिवेशिक इतिहास तथा उसकी सत्तावादी प्रकृति ने नागरिकों में प्रशासन के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति को जन्म दिया है। प्रशासन के कार्यकलाप एवं आम लोगों की आकांक्षाओं के बीच की खाई के परिणामस्वरूप, प्रशासन की नकारात्मक छवि पैदा हुई है। जनता की लोकतांत्रिक आकांक्षा तथा प्रशासन की सत्तावादी मनोवृत्ति के फलस्वरूप नागरिक एवं प्रशासन के बीच तनाव उत्पन्न हुआ है। असमानता के कारण सामाजिक स्थिति में विरोधाभास ने वेबेरियन नौकारशाही के सर्वमुक्तिवाद के मानदंड को त्याग दिया है जिसके परिणामस्वरूप प्रशासन नागरिकों के साथ भेदभाव करता है। लोक सेवकों से उम्मीद की जाती है कि वह नागरिकों की सेवा करें लेकिन लोक सेवक एवं नागरिकों के बीच की दूरी नागरिकों और प्रशासन के बीच तनाव पैदा करती है। सुशिक्षित मध्यम वर्ग के ग्रामीण और शहरी लोक सेवकों से आशा की जाती है कि वह निर्धन अशिक्षित ग्रामीण नागरिकों की सेवा करें। यह नागरिकों और लोकसेवकों के बीच सामाजिक और मनोवैज्ञानिक खाई को जन्म देता है। इन सारे तत्वों का प्रभाव यह होता है कि इससे जनता की प्रशासन के विरुद्ध शिकायतें बढ़ती हैं।

प्रशासन के विरुद्ध कुछ आम शिकायतों को निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है।

1. भ्रष्टाचार- कार्य करने अथवा न करने के लिए रिश्वत की माँग तथा उसे स्वीकार करना।
2. पक्षपात- सत्ताधारी या शक्तिशाली लोगों के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए कार्य करना अथवा न करना।
3. भाई-भतृतीजावाद- अपने सगे सम्बंधियों की मदद करना।
4. अशिष्टता- अपमानजनक भाषा का प्रयोग करना या अन्य तरीके से अभद्र व्यवहार करना।
5. कर्तव्य की उपेक्षा- कानून द्वारा अपेक्षित कार्यों को न करना।
6. भेदभाव- निर्धन एवं अप्रभावशाली नागरिकों की सही शिकायतों की उपेक्षा करना।
7. विलम्ब- उचित समय पर कार्यों को पूरा नहीं करना।

8. कुप्रशासन-लक्ष्य प्राप्त करने में अकुशलता।
9. अपर्याप्त निवारण तंत्र- प्रशासन के विरुद्ध जनता की शिकायतें सुनने में विफलता।

उपरोक्त आम शिकायतों के अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार की शिकायतें भी हो सकती हैं जो किसी खास प्रशासनिक विभाग या अभिकरण से सम्बंधित होती हैं। उदाहरणार्थ, पीटने, प्रताड़ित करने, संदेहात्मक व्यक्तियों एवं गवाहों को गैर कानूनी ढंग से बंदी बनाने जैसे तीसरे दर्जे के तरीके अपनाने पर लोग पुलिस के विरुद्ध कई प्रकार की शिकायतें करते हैं। आम लोगों के विरुद्ध पुलिस एवं अपराधी तत्वों में साठ-गांठ और साक्ष्यों को बदलना या जालसाजी करना भी पुलिस प्रशासन के खिलाफ लोक शिकायत का अन्य क्षेत्र है। कृषि प्रशासन के विरुद्ध शिकायतें आमतौर पर निवेश की प्रकृति और मात्रा से तथा किसानों को प्रदान की गई सेवाओं से सम्बंधित होती हैं। यद्यपि किसी खास प्रशासकीय संस्था के विरुद्ध शिकायतें हो सकती हैं, लेकिन भ्रष्टाचार की शिकायत सभी सरकारी संस्थाओं के लिए आम बात है। लोक शिकायतों के निवारण के लिए लोकपाल, लोकायुक्त लोक अदालत जिला स्तरीय फोरम आदि की व्यवस्था है।

**लोकायुक्त/लोकपाल (Ombudsman)** - स्वीडिश शब्द 'ओम्बुड' (Ombud) जिसका अर्थ है किसी का प्रतिनिधित्व करने वाला, से 'ओम्बुड्समैन' बना है। ओम्बुड्समैन का तात्पर्य उस संस्था से है जो कुप्रशासन से नागरिकों की रक्षा करती है। 'ओम्बुड्समैन' नामक यही संस्था भारत में लोकपाल/लोकायुक्त कहलाती है। ओम्बुड्समैन की स्थापना सर्वप्रथम सन् 1809 में स्वीडन में तत्पश्चात् फिनलैण्ड (सन् 1919), डेनमार्क (सन् 1955) तथा नर्वे (सन् 1965) में हुई। इन स्कैंडिनेवियन देशों के अतिरिक्त यह संस्था न्यूजीलैण्ड, ब्रिटेन, कनाडा तथा अमेरिका में भी कार्यरत है। ओम्बुड्समैन एक निष्पक्ष तथा कार्यकुशल संस्था मानी जाती है क्योंकि यह स्वतंत्रतापूर्वक किसी मुद्दे की जाँच कर सरकार को कार्यवाही करने का परामर्श देती है।

भारत में सन् 1963 में सर्वप्रथम राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति (हरिश्चन्द्र माथुर समिति) ने यह सुझाव दिया था कि ओम्बुड्समैन जैसी संस्था भारत में भी होनी चाहिए। संसद सदस्य डॉ. एल. एम. सिंधवी ने यह माँग संसद में भी उठाई तथा प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी यह इंगित किया था कि केंद्रीय स्तर पर लोकपाल तथा राज्य स्तर पर लोकायुक्त संस्थाओं की स्थापना ओम्बुड्समैन प्रणाली के अनुसार की जानी चाहिए। आयोग की सिफारिश के आधार पर सर्वप्रथम 9 मई, 1968 को लोकपाल तथा लोकायुक्त विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया जो लोकसभा में पारित हो चुका था लेकिन राज्यसभा में पारित न हो पाया क्योंकि लोकसभा भंग हो गई थी। प्रधानमंत्री तथा राष्ट्रपति को लोकपाल के कार्यक्षेत्र से बाहर रखा गया था। इसके कार्यक्षेत्र पर विवाद हुआ। फिर सन् 1971 में पुनः यह विधेयक प्रस्तुत हुआ किन्तु लोकसभा भंग होने के कारण अधर में लटक गया। सन् 1977 में जनता पार्टी सरकार द्वारा नया 'लोकपाल विधेयक' संसद के सम्मुख लाया गया जिसमें प्रधानमंत्री को इसके क्षेत्राधिकारों में रखते हुए पूर्ण स्वतंत्रता की बात कही गई थी। राजनीतिक अस्थिरता के उस दौर में विधेयक पारित नहीं पाया। चौथी बार लोकपाल विधेयक राजीव गाँधी के शासनकाल में प्रधानमंत्री को इसके क्षेत्राधिकार से बाहर रखते हुए अगस्त, 1985 को प्रस्तुत हुआ जिसे स्वयं राजीव गाँधी की सरकार ने ही वापिस ले लिया था। पाँचवीं बार लोकपाल विधेयक वी. पी. सिंह की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने संसद के सम्मुख सन् 1990 में प्रस्तुत किया था। इस विधेयक में लोकपाल को सर्वप्रथम एक व्यक्ति की अपेक्षा एक संस्था के रूप में देखते हुए एक अध्यक्ष तथा दो सदस्यों का प्रावधान किया गया था किन्तु यह सरकार भी समय से पूर्व सत्ता से दूर हो गई तथा लोकपाल विधेयक सदैव की भाँति पारित न हो पाया। सन् 1996 में संयुक्त मोर्चा सरकार द्वारा सन् 1998 में वाजपेयी सरकार द्वारा भी लोकपाल विधेयक लोकसभा में पेश किया गया था किन्तु लोकसभा भंग होने के कारण पारित न हो सका। प्रधानमंत्री को लोकपाल के दायरे में लाते हुए एक नया विधेयक 4 अगस्त, 2001 को लोकसभा को लोकपाल के दायरे में लाते हुए एक नया विधेयक 14 अगस्त, 2001 को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। संसद में आठ बार पेश हो चुका लोकपाल विधेयक सदैव ही विवाद तथा बदकिस्मती का शिकार रहा है।

राज्यों में लोकायुक्त की स्थापना लोकपाल की तुलना में उत्साहजनक कही जा सकती है। सर्वप्रथम उड़ीसा राज्य ने सन् 1970 में लोकायुक्त की स्थापना की। तत्पश्चात् महाराष्ट्र (1971), बिहार (1973), तमिलनाडु (1974), जम्मू कश्मीर (1975), मध्य प्रदेश (1981), आन्ध्र प्रदेश (1983), केरल (1983), हिमाचल प्रदेश (1983), कर्नाटक (1984), असम (1985), गजरात (1986), तथा पंजाब (1995) राज्य ने लोकायुक्त की स्थापना की। प्रत्येक राज्य के लोकायुक्त

की संरचना, कार्य प्रणाली तथा अधिकार क्षेत्र को पथक रखा गया। हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा तथा केरल में लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में मुख्यमंत्री भी सम्मिलित है। प्रदेश में लोकायुक्त संस्था की स्थापना के साथ ही राज्य सतर्कता आयोग को समाप्त कर दिया गया। कतिपय राज्यों में लोकायुक्त के साथ उप लोकायुक्त का पद भी सजित है। इन राज्यों में राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, बिहार, केरल, कर्नाटक तथा असम सम्मिलित हैं। किसी राज्य में लोकायुक्त का कार्यकाल 5 तो किसी में 3 वर्ष निर्धारित है। इसी प्रकार नियुक्ति की प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न अपनाई जाती है। लोकायुक्त को लोक सेवकों के विरुद्ध निम्नलिखित मामलों में आरोप एवं शिकायत प्राप्त कर जाँच कराने का अधिकार है:

1. स्वयं या अन्य व्यक्तियों के लाभ या पक्षपात के लिए अपने पद का दुरुपयोग किया हो या दूसरे व्यक्ति की क्षति या अभाव का कारण बना हो;
2. सरकारी कर्मचारी के रूप में व्यक्तिगत स्वार्थ या अनुचित या भ्रष्ट विचार से प्रेरित होकर काम किया हो;
3. भ्रष्टाचार के आरोप में दोषी हो या सरकारी पद पर ईमानदार न रहा हो;
4. ज्ञात आय से असंगत सम्पत्ति हो या परिवार का कोई अन्य सदस्य उसकी तरफ से असंगत सम्पत्ति रखता हो;
5. जिस पद पर वह है उस पद पर लोक सेवक द्वारा ईमानदारी एवं सत्यनिष्ठा आचरण के मापदण्ड के अनुसार कार्य करने में असफल रहा हो।

इसी प्रकार शिकायत शब्द का अर्थ किसी नागरिक द्वारा किए गए उस दावे से है जो उसे कुप्रशासन के कारण प्रस्तुत करना पड़ा। कुप्रशासन का अर्थ निम्नलिखित कार्यवाहियों से है-

1. हॉ इस प्रकार का कार्य या प्रशासनिक प्रक्रिया व्यवहार जो असंगत, अनुचित, दमनात्मक या पक्षपातपूर्ण हो, या
2. जहाँ इस प्रकार की प्रशासकीय प्रक्रिया या व्यवहारों में अनावश्यक देरी हुई हो।

लोकायुक्त संस्था सैद्धान्तिक दृष्टि से सुदृढ़ दिखाई देती है किन्तु व्यावहारिक रूप से किसी भी राज्य में लोकायुक्त संस्था प्रभावी सिद्ध नहीं हो पाई है। लोकायुक्त की भूमिका सरकार को परामर्श देने की है। कई बार लोक सेवकों का अपराध सिद्ध हो जाने पर भी लोकायुक्त की सिफारिश पर राज्य सरकार समुचित कार्यवाही नहीं करती है। इस प्रकार प्रशासन में अनैतिकता तथा अकार्यकुशलता पर अंकुश नहीं लग पाता है। मध्य प्रदेश के लोकायुक्त ने अपने चौदहवें प्रतिवेदन (वर्ष 1996-97) में लिखा है कि. "पिछले दिनों राजनीतिज्ञों और अपराधियों के व्यापक गठजोड़ की चर्चा रही। इसी तर्ज पर राजनेताओं और नौकरशाहों के गठजोड़ के मामले भी इस संगठन (लोकायुक्त) द्वारा दी गई जाँचों के सामने आए हैं। दरअसल लोक सेवकों का भ्रष्टाचार तो 'फल' है जिसका मूल समूचे समाज के नैतिक मूल्यों के पतन में निहित है।" भ्रष्टाचार निवारण में निस्संदेह लोकायुक्त सशक्त भूमिका निर्वाहित कर सकता है किन्तु पहले लोकायुक्त को प्रभावी बनाना आवश्यक है। इस हेतु निम्नांकित सुझाव अनेक अवसरों पर दिए जाते रहे हैं-

1. लोकायुक्त को संवैधानिक दर्जा दिया जाए;
2. लोक प्रतिनिधित्व कानून को इस प्रकार संशोधित किया जाए कि लोकायुक्त की भूमिका व्यावहारिक बन सके;
3. भूतपूर्व लोक सेवकों को भी इसके क्षेत्राधिकार में लाया जाए;
4. लोकायुक्त के वार्षिक प्रतिवेदन को विधानसभा में रखने के लिए समय सीमा निर्धारित की जाए;
5. लोकायुक्त को शपथ पत्र में छूट देने की स्वतंत्रता दी जाए;
6. लोकायुक्त को पुलिस की तरह छानबीन करने, तलाशी लेने, माल जब्त करने का अधिकार हो;
7. मानहानि के सम्बन्ध में लोकायुक्त को उच्च न्यायालय के समान अधिकार दिए जाएँ; (मध्यप्रदेश सरकार द्वारा लोकायुक्त को अवमानना सम्बन्धी अधिकार दिए जाने का विधेयक, 2001) भाजपा के विरोध के कारण राष्ट्रपति द्वारा इन्कार किया जा चुका है;
8. शिकायतें दायर करते समय जमानत राशि पर जोर न दिया जाए;

9. जनसाधारण तक इस संस्था का प्रचार-प्रसार हो; तथा
10. लोकायुक्त की अनुशंसाओं को यथाशीघ्र क्रियान्वित किया जाए।

इस सम्बन्ध में यह भी महत्त्वपूर्ण है कि केन्द्रीय स्तर पर लोकपाल की स्थापना भी शीघ्र हो तथा इस संस्था का कार्यक्षेत्र भी व्यापक हो। अब जबकि बैंकिंग लोकपाल तथा निजी क्षेत्र में टाइम्स ऑफ इण्डिया में लोकपाल सार्थकतापूर्ण कार्यवाही कर रहे हों जो सरकारी क्षेत्र में इसकी उपेक्षा हितकर नहीं है।



## अध्याय-39

# जिला उपभोक्ता फोरम (District Consumer Forum)

---

जो व्यक्ति मूल्य देकर कोई वस्तु खरीदता है अथवा किसी प्रकार की सेवा प्राप्त करता है, वह व्यक्ति कानून की दृष्टि में उपभोक्ता है। कुछ वर्ष पहले तक माल को खरीदने तथा बेचने के सम्बन्ध में यह नियम प्रचलित था - 'खरीदार स्वयं सावधान रहे' अर्थात् कि माल खरीदने वाला व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी पर माल खरीदता था और उसकी गुणवत्ता अथवा मात्रा के लिए दुकानदार अथवा व्यापारी को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता था, परन्तु आधुनिक कल्याणकारी राज्य में अब यह नियम प्रचलित है कि विक्रेता भी अपने बेचे गए माल के लिए उत्तरदायी है और उसे भी उन शर्तों का ध्यान रखना चाहिए, जिन पर वह माल को बेच रहा है। आज व्यापारी के द्वारा उपभोक्तों के शोषण को समाप्त करने के लिए संरक्षण की परम आवश्यकता है। राज्य तथा अन्य संस्थाओं द्वारा उपभोक्ता के हितों का संरक्षण ही उपभोक्ता संरक्षण कहलाता है।

### उपभोक्ता की समस्याएं (Problems of Consumer)

उपभोक्ताओं को मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है -

1. व्यापारिक संस्थाओं तथा दुकानदारों द्वारा अपनी वस्तुओं एवं सेवाओं के बेचने के लिए विज्ञापनों (Advertisements) पर बहुत अधिक खर्च किया जाता है। उपभोक्ता विज्ञापनों के इस झूठे प्रचार से प्रायः गुमराह हो जाते हैं और घटिया तथा नकली वस्तुएं खरीदने के लिए भी तैयार हो जाते हैं।
2. कुछ व्यापारी तथा दुकानदार अपने पुराने तथा खराब माल की बिक्री करने तथा उपभोक्ताओं को फंसाने के लिए वस्तुओं की बिक्री (Sale) का आयोजन करते हैं। ऐसा माल खरीदकर उपभोक्ताओं को प्रायः बाद में पछताना पड़ता है।
3. आजकल अनेक व्यापारियों तथा दुकानदारों द्वारा ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए कई प्रकार के उपहारों एवं पुरस्कारों की 'स्कीमें' (Schemes) निकाली जाती हैं जिनका उद्देश्य ग्राहकों को केवल अपने माल के प्रति आकर्षित करना होता है।
4. व्यापारी-वर्ग अधिक लाभ कमाने के लिए अपनी बिक्री की जाने वाली वस्तुओं में मिलावट करते हैं तथा अपनी वस्तु की मात्रा को बढ़ाने के लिए घटिया तथा सस्ती वस्तुओं को मिला देते हैं।
5. वस्तुओं की कीमतें निर्धारित न होने के कारण ये दिन-प्रतिदिन बढ़ती रहती हैं। इन बढ़ती हुई कीमतों के परिणामस्वरूप वस्तुओं का संग्रह (Hoarding) करके बनावटी अभाव (Artificial Scarcity) उत्पन्न कर दिया जाता है, जिससे चोर बाजारी (Black Marketing) को बढ़ावा मिलता है। इससे उपभोक्ताओं का बहुत शोषण किया जाता है।
6. कई उत्पादकों द्वारा घटिया तथा नकली (Duplicate) वस्तुएं बनाकर तथा उन्हें बेच कर भी उपभोक्ताओं का शोषण किया जाता है।
7. लाखों करोड़ों लोगों को प्रतिदिन सरकारी सेवाओं का उपभोग करना पड़ता है। लेकिन कई बार नौकरशाही की सेवाओं के निरंकुश व्यवहार के कारण उपभोक्ताओं को भारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

8. सरकार अथवा स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा कुछ उपभोक्ता वस्तुओं की विश्वसनीयता एवं गुणवत्ता की पहचान करने के लिए मानक (Standard); जैसे एगमार्क, आई. एस. आई. आदि प्रदान किए गए हैं। लेकिन उपभोक्ता उस समय अपने-आपको असमंजस की स्थिति में पाते हैं जब ये मानक बहुत-सी वस्तुओं को प्राप्त नहीं होते।
9. आज उपभोक्ताओं को उस समय भी समस्या का सामना करना पड़ता है जब वे खरीदी गई वस्तु की विक्रेता द्वारा किसी भी प्रकार की गारण्टी देने से मना कर दिया जाता है।
10. आजकल उपभोक्ताओं को एक और विशेष समस्या का सामना उस समय भी करना पड़ता है जब किसी वस्तु के उत्पादन पर निर्माता का एकाधिकार हो जाता है। परिणाम-स्वरूप उपभोक्ता निर्माताओं के शोषण से बचे नहीं पाते।

उपभोक्ताओं की ऊपर दी गई कठिनाइयों को देखते हुए विश्व के सभी देशों में उपभोक्ताओं के हितों को सुरक्षित करने के लिए कदम उठाए जा रहे हैं।

9 अप्रैल, 1985 को संयुक्त-राष्ट्र संघ की महासभा (General Assembly of U.N.O.) ने उपभोक्ता संरक्षण सम्बन्धी कानून पास करके विश्व की सरकारों के लिए कुछ दिशा निर्देश (Guidelines) निर्धारित किए हैं, जिसके आधार पर उनसे उपभोक्ता संरक्षण कानून पास करने सम्बन्धी सिफारिश की गई। भारत सरकार द्वारा उपभोक्ताओं का संरक्षण सम्बन्धी निम्नलिखित कानून पारित किए गए हैं -

1. 1955 का आवश्यक वस्तुओं सम्बन्धी कानून (The Essential Commodities Act, 1955)
2. सन् 1969 का अजारेदारी एवं सीमितकारी व्यावसायिक व्यवहारों सम्बन्धी कानून (The Monopolies and Restrictive Trade Practices Act, 1969-MRTP)
3. सन् 1976 का माप-तेल सम्बन्धी कानून (The Standard of Weight and Measures Act, 1976)
4. सन् 1976 का खाद्य में मिलावट रोक सम्बन्धी कानून (The Prevention of Food Adulteration Act, 1976)
5. सन् 1980 का काला-धन्धा रोक एवं आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति को कायम रखने सम्बन्धी कानून (The Prevention of Black Marketing, Maintenance and Supplies of Essential Commodities Act, 1980)
6. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 (Consumer Protection Act, 1986)
7. उपभोक्ता संरक्षण संशोधन अधिनियम, 1993 (Consumer Protection Amendment Act, 1993)

इसमें सन्देह नहीं है कि भारत में उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा के लिए अनेक कानून पास किए गए हैं, परन्तु फिर भी भारतीय उपभोक्ता अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हैं। दिन-प्रतिदिन खराब वस्तुएं मिलने या वस्तुओं की अधिक कीमत लिए जाने पर साधारण उपभोक्ता, उपभोक्ता फोरम में जाने के लिए तैयार नहीं होता।

अतः इस बात की बहुत आवश्यकता है कि उपभोक्ताओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाए तथा अधिक उपभोक्ता संगठनों का गठन किया जाए। इसके अतिरिक्त उपभोक्ता संरक्षण सम्बन्धी एजेन्सियों में विवादों का निपटारा शीघ्रता से करना चाहिए ताकि उपभोक्ताओं का उनमें विश्वास उत्पन्न किया जा सके।

भारत एक विकासशील देश है जहाँ उपभोक्ता की वस्तुओं व सेवा सम्बन्धी एक मुख्य समस्या है। उपभोक्ता में अपने अधिकारों के प्रति अज्ञानता है। इसी कारण 1986 में उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम का निर्माण किया गया। इस अधिनियम के अधीन उपभोक्ताओं के झगड़ों का निवारण करने के लिए त्रि-स्तरीय व्यवस्था का व्यवधान किया गया है। यह त्रि-स्तरीय संगठन इस प्रकार है -

1. जिला स्तरीय फोरम (District Level Forum)
2. राज्य स्तरीय फोरम (State Level Forum)
3. राष्ट्रीय स्तरीय फोरम (Nation Level Forum)

## जिला स्तरीय फोरम (District Level Forum)

जिला फोरम के नाम से जाने वाली उपभोक्ता सुरक्षा संस्था प्रत्येक जिले में राज्य सरकार के आदेश द्वारा स्थापित की जाएगी। यदि राज्य सरकार चाहे तो एक जिले में एक से अधिक फोरमों की स्थापना कर सकती है।

**जिला फोरम की रचना (Composition of the District Forum)** - जिला फोरम के सदस्यों की संख्या तीन होती है, जिनमें एक अध्यक्ष व अन्य दो सदस्य होते हैं। जिला फोरम का अध्यक्ष एक ऐसा व्यक्ति होता है जो जिला न्यायाधीश (District Judge) के पद पर कार्य कर रहा हो या फिर जिला न्यायाधीश बनने की योग्यता रखता हो या जिला न्यायाधीश रह चुका हो। जिला फोरम के दो अन्य सदस्य वे व्यक्ति होंगे जिन्होंने शिक्षा, व्यापार, उद्योग, कानून, लेखा आदि में विशेष ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त किया हो। इन दो सदस्यों में एक स्त्री का होना जरूरी है।

**जिला फोरम के सदस्यों की नियुक्ति (Appointment of members of District Forum)** - जिला फोरम के सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा चयन समिति (Selection Committee) की सिफारिशों के आधार पर की जाएगी। इस चयन समिति में राज्य आयोग का अध्यक्ष, राज्य के कानून विभाग का सचिव व राज्य में उपयोगी मामलों से सम्बन्धित विभाग का सचिव होता है। जिला फोरम के सदस्यों की नियुक्ति 5 वर्षों के लिए की जाती है। यदि कोई सदस्य 5 वर्षों की अवधि से पहले 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है तो उसे सेवा निवृत्त (Retire) कर दिया जाता है और उसके स्थान पर नए सदस्य की नियुक्ति कर दी जाती है। इसका कोई भी सदस्य दूसरी बार नियुक्त नहीं किया जा सकता। जिला फोरम के सदस्यों के वेतन व सेवा शर्तों (Service Condition) को राज्य सरकार द्वारा निश्चित किया जाता है।

**जिला फोरम का अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction of District Forum)** - जिला फोरम का अधिकार क्षेत्र केवल एक जिले विशेष तक ही सीमित होता है। इसमें कोई भी शिकायत झगड़ा होने के दो वर्ष के भीतर ही की जा सकती है। शिकायत उसी जिला फोरम में दर्ज कराई जाएगी जहां झगड़ा हुआ है। जिला फोरम को 5 लाख रुपए या इससे अधिक राशि के मुआवजे के प्रश्न को सुनने का अधिकार है। जिला फोरम के सामने की जाने वाली शिकायतें इस प्रकार हैं -

- (i) वस्तुओं में किसी प्रकार की कमी पाए जाने पर।
- (ii) उपभोक्ता को दी जाने वाली सेवाओं में कमी होने पर।
- (iii) व्यापारी या विक्रेता द्वारा व्यापार के गलत तरीके अपनाए जाने पर।
- (iv) ऐसे माल का विक्रय किए जाने पर जो जीवन सुरक्षा के लिए खतरनाक हो।
- (v) यदि उपभोक्ता को व्यापारी के कारण नुकसान पहुंचा हो।
- (vi) व्यापारी या दुकानदार द्वारा निश्चित मूल्य से अधिक पैसे लेने की स्थिति में।

**शिकायत करने का ढंग (Manner in which Complaint shall be made)** - जिला फोरम में तीन तरह के व्यक्ति शिकायत कर सकते हैं -

1. उपभोक्ता (Consumer) द्वारा जिसे वस्तुएं बेची गई हों।
2. मान्यता प्राप्त उपभोक्ता संस्था द्वारा (Recognised Consumer Association)
3. केन्द्रीय और राज्य सरकार द्वारा (Central and State Government)
4. उपभोक्ता के हित को ध्यान में रखकर एक या अधिक उपभोक्ताओं द्वारा (on or more consumers, where there are numerous consumers having the same interest)

जिला फोरम एक असैनिक न्यायालय की तरह कार्य करती है। जिला फोरम झगड़े से सम्बन्धित सभी कागजों (Papers related to conflict) की पेश करने के लिए कह सकती है। प्रत्येक पक्ष को अपना पक्ष रखने का अवसर दिया जाता है। सम्बन्धित पक्ष को कम-से-कम 30 दिन व अधिक-से-अधिक 45 दिन का समय दिया जाता है जिसमें वह अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं।

**जिला फोरम के निर्णय (Decision by the District Forum)** - साधारणतः एक वर्ष के अन्दर शिकायत प्रस्तुत की जा सकती है लेकिन इस अवधि के बाद भी जिला फोरम शिकायत को स्वीकार कर सकती है। जिला फोरम शिकायत के आधार पर कार्रवाई करती है। तत्पश्चात् निम्नलिखित आदेश दे सकती है -

1. वस्तुओं के नुक्स को दूर किया जाए।
2. वस्तु को बदला जाए।
3. वस्तु की कीमत वापिस की जाए।
4. उपभोक्ता को मुआवजा दिया जाए। मुआवजे की रकम जिला फोरम द्वारा निश्चित की जाएगी।
5. सेवा (Service) में कमियों को दूर किया जाए।
6. खतरनाक माल की बिक्री न की जाए।
7. गलत व्यापार के तरीके बन्द जाए।
8. उपभोक्ता को उसके द्वारा किया गया खर्च वापस लौटाया जाए।

उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम 2002 के पश्चात् व्यवस्था इस प्रकार है (Position after the Consumer Protection Amendment Act 2002)

### **जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद् (District Consumer Protection Council)**

प्रत्येक जिले के लिए राज्य सरकार जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद् स्थापित करेगी। राज्य सरकार प्रत्येक जिले के लिए एक जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद् की स्थापना करेगी जिसमें निम्न सदस्य होंगे।

1. जिलाधिकारी इस परिषद् का चेयरमैन होगा;
2. राज्य सरकार द्वारा निर्धारित सरकारी एवं गैर सरकारी सदस्य;
3. वर्ष में कम से कम दो बैठक तथा जब भी आवश्यकता हो बैठक बुलाने की व्यवस्था ही जिलाधिकारी बैठक के लिए समय व स्थान निश्चित करेगा।

### **परिषद् के उद्देश्य (Objects of the District Council)**

जिला परिषद् का उद्देश्य जिले में ग्राहकों के हितों का संरक्षण है।

दो अन्य सदस्य जिनमें से एक महिला होगी जिसमें निम्न योग्यताएं होना आवश्यक है -

1. उसकी आयु 35 वर्ष से कम न हो;
2. मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से ग्रेजुएट;
3. योग्य मान्य एवं नैतिक व्यक्तित्व सहित, तथा कम से कम 10 वर्ष का आर्थिक, कानूनी, वाणिज्य, लेखांकन, उद्योग, लोक मामले या प्रशासन से संबंधित समस्याओं का अनिवार्य ज्ञान एवं अनुभव

एक सदस्य जो कि

1. नैतिक आधार पर दोषी एवं कारावास भोगी (राज्य सरकार के विचार से)
2. दिवालिया
3. असंतुलित मानसिक अवस्था (समर्थ न्यायालय द्वारा)
4. सरकारी सेवा या संस्था, निगम जो कि राज्य द्वारा नियंत्रित हो, से सेवा निष्कासित व्यक्ति
5. राज्य सरकार के विचारानुसार ऐसा वित्तीय या अन्य लाभ प्राप्तकर्ता जो सदस्य होने के नाते पारित हो सके

6. राज्य सरकार द्वारा निर्धारित अयोग्यताएं उपरोक्त व्यक्ति परिषद की सदस्यता के अयोग्य है।

### शिकायत करने का ढंग

(Manner in which Complaint shall be Made)

1. ग्राहक जिसे वस्तु बेची गई है
2. कोई भी मान्यता प्राप्त ग्राहक संघ चाहे ग्राहक इसके सदस्य है या नहीं
3. एक या अधिक ग्राहक (जहाँ समान हित हो) जिला फोरम की अनुमति से
4. केन्द्रीय या राज्य सरकार (व्यक्तिगत रूप से या ग्राहकों के सामूहिक हित में)

प्रत्येक शिकायत निरियत फीस सहित की जाए, जिला फोरम शिकायत को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। शिकायतकर्ता को एक मौका दिए बिना शिकायत अस्वीकार नहीं की जाएगी। शिकायत के 21 दिन के अन्दर फैसला कर दिया जाएगा। जिला फोरम के पास की गई शिकायत किसी अन्य न्यायालय या ट्रिब्यूनल में स्थानांतरित नहीं की जाएगी जिला फोरम के सदस्यों की नियुक्ति एक चयन समिति के सुझाव पर होगी जिसमें निम्न सदस्य होंगे -

- 1 सभापति - राज्य आयोग का सभापति
- 1 सदस्य - राज्य विधि विभाग का सचिव
- 1 सदस्य - राज्य उपभोक्ता मामलों से संबंधित विभाग का सचिव

**कार्यकाल (Term)** - प्रत्येक सदस्य 5 वर्ष या 65 की आयु तक जो भी पहले हो कार्य करेगा।

**पुनर्नियुक्ति (Re-appointment)** - चयन समिति के सुझाव पर यदि अन्य योग्यताएँ हैं तो परिषद् में पुनर्नियुक्ति (5 वर्ष या 65 जो भी पहले हो) तक हो सकती है।

**त्यागपत्र (Resign)** - सदस्य राज्य सरकार को अपना त्यागपत्र दे सकता है तथा उसी श्रेणी के व्यक्ति को पद पर नियुक्त किया जाएगा।

सदस्यों की नियुक्ति राज्य आयोग के सभापति के सुझाव पर होगी जो कि अन्य बातों के साथ जिला फोरम के कार्य को भी ध्यान में रखेगा।

**राशि**-5 लाख के स्थान पर संसोधित अधिनियम में राशि 20 लाख से अधिक नहीं होनी चाहिए।

**शिकायत (Complaint)** - इस सांसेधन से पूर्व ग्राहक के वैध उत्तराधिकारी या प्रतिनिधि की कोई व्यवस्था नहीं थी जबकि इस के पश्चात् यदि ग्राहक की मृत्यु हो जाती है तो उसका वैध उत्तराधिकारी या प्रतिनिधि शिकायत दर्ज कर सकता है और इसके साथ ही सेवा प्रदान करने वाले के विरुद्ध भी शिकायत की जा सकती है जबकि पहले केवल दुकानदार के विरुद्ध ही शिकायत की जा सकती है।

**नकली वस्तुएँ एवं सेवाएँ (Spurious goods and Service)** - संशोधन अनुसार यदि कोई नकली वस्तु या सेवा असली कह कर बेची जाए तो उसके विरुद्ध शिकायत का प्रावधान है जबकि इससे पूर्व कोई ऐसा प्रावधान नहीं था।

यदि सभापति किसी कारण अनुपस्थित है तो राज्य सरकार उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को किसी कार्यरत न्यायाधी को सभापति के रूप में कार्य करने के लिए कह सकती है।

उपभोक्ताओं को जिला परिषद् के निर्णयों के विरुद्ध राज्य आयोग में अपील करने का अधिकार प्राप्त है।

## अध्याय-40

# लोक अदालत (Lok Adalat)

लोक अदालत की धारणा अत्याधिक प्राचीन है प्राचीन समय से ही लोगों के विवाद-समाधान में लोक अदालत की अहं भूमिका रही है। सर्वप्रथम इसका विवरण याज्ञवल्क्य श्रुति में मिलता है। बहस्पति में दो प्रकार की अदालतों का वर्णन है। शाही अदालत एवं लोक अदालत। मुगलों के आगमन तक लोक अदालतों की लोकप्रियता विद्यमान रही। ब्रिटीश काल में लोक अदालतों का महत्व तुलनात्मक रूप से कम हुआ क्योंकि इस काल में प्रशासन के प्रत्येक पक्ष में केन्द्रीकरण को बढ़ावा मिला। परन्तु लोक अदालत की अवधारणा इस दृष्टि से नई है क्योंकि इसे 1976 में 42 संवैधानिक संशोधन द्वारा कानूनी मान्यता प्राप्त हुई। Legal Service Authority Act 1987 ने इसके निर्णयों का कानून द्वारा लागू करने की व्यवस्था की।

लोक अदालत के माध्यम से आम जनता को सरकारी संस्थाओं, अन्य संस्थाओं, संगठनों या अन्य नागरिकों के विरुद्ध शिकायत जाहिर करने की तथा सस्ता एवं सुलभ न्याय प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त है।

### इसकी मूल भावना

शीघ्र, अनौपचारिक एवं सस्ता न्याय जिसके पिछे मित्रवत भावना है।

**लोक अदालत एवं विधि न्यायालय (Lok Adalat and Law court)** - दोनों में केवल एक ही समानता है कि दोनों चाय प्रदान करने का साधन है अन्यथा दोनों भिन्न हैं जैसे विधि अदालत में विवादी अपने गवाहों एवं वकीलों के साथ स्वयं उपस्थित होता है जबकि लोक अदालत स्वयं लोगों के द्वार पर उन्हें न्याय प्रदान करने जाती है।

यह एक ऐसा संगठन है जिसमें समाजिक कार्यकर्ता, कानूनी सहायक, लोक भावना से प्रेरित व्यक्ति अर्थात् प्रत्येक क्षेत्र से संबंधित व्यक्ति होते हैं। यहाँ पक्षों को समझा-बुझा कर समझौता करवाने वाली व्यवस्था होती है।

Committee for Implementing Legal Aid (1980) का पहला प्रयोग पी. एन. भागवती मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में हुआ। इन अदालतों में दीवानी मौजदारी एवं कर संबंधी विवाद निपटाए जाते हैं। ये अदालत विधि अदालत का पर्याय नहीं बल्कि पूरक हैं जो कि ईमानदारी, न्याय एवं नैतिकता के सिद्धान्तों पर आधारित है और न्याय-व्यवस्था में आम व्यक्ति के दिखावे को प्रतिष्ठित करने को करिबद्ध है इनमें साक्ष्य अधिनियम, मौजदारी अधिनियम दीवानी प्रक्रिया अधिनियम के प्रावधानों की कठोरता एवं वाधता नहीं हैं। ये एसी अदालतें हैं जो जन साक्ष्य में, विधि में ढील लेकर, जनभाषा में ही विवाद समाधान करती है यहां पर आम सहमति एवं स्वयं स्वीकृति से विवाद समाधान किए जाते हैं। इनमें लोगों को शिक्षित किया जाता है कि तुरन्त एवं शांतिप्रिय समाधान में ही दोनों पक्षों का कल्याण निहित है।

**कार्यशैली (Modalities of Working)** - इसकी कार्यशैली Committee for Implementing Legal Aid 1987 पर आधारित है। लोक अदालत सामान्यता State Legal Aid and Advice Board या Distt. Legal Aid Committee द्वारा संगठित की जाती हैं।

**तिथि एवं स्थान (Date and Place)** - लोक अदालत का तिथि एवं स्थान (शनिवार या रविवार या अन्य अवकाश का दिन) Legal Aid Board द्वारा लगभग एक माह पहले निश्चित किया जाता है। जिससे विधि न्यायालय में कार्य पर प्रभाव न पड़े, लोक अदालत निर्धारित तिथि के विषय में प्रेस, पोस्टरों, और संभव होता रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा स्लाइडज के माध्यम से पूरा प्रचार किया जाता है लोक अदालत की बैठक से पहले विभिन्न मामलों की पहचान की जाती है तथा दोनों विवादी समूहों को आपस में निर्णय कर विवाद सुलझाने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जाता है।

लोक अदालतों को संबंधित राज्य के Legal Aid Boards Committee द्वारा मार्गदर्शन एवं वित्तीय सहायता एवं सरक्षण दिया जाता है।

लोक अदालत की प्रक्रिया को शहरी या ग्रामीण परिवेश या फिर, मामले की प्रकृति (सम्पत्ति, व्यक्तिगत संबंध या फिर लोक प्रशासन से संबंधित मामला) को प्रभावित करती है और इसकी प्रक्रिया के विषय में कोई निर्धारित प्रक्रिया भी नहीं है यह पूरी तरह लोकतंत्रात्मक आधार पर कार्य करती है। लोक अदालत के निर्णय तभी बाध्यकारी होते हैं जब दोनों समूह स्वेच्छा से इसे स्वीकार करते हैं इनकी प्रकृति पूरी तरह परामर्शदात्री है।

लोक अदालत के मुख्य उद्देश्य -

1. दोषी को सजा मिले, एवं स्वयं को सुधारे तथा दोष की पुनरावृत्ति न हो,
2. दोनों पक्षों में तनाव कम हो ताकि भविष्य में उनके परस्पर संबंध बने रहें।
3. आरंभ में ही गलतफहमी दूर हो ताकि विवाद समाधान सरलतापूर्वक हो सके।

लोक अदालत की प्रक्रिया

1. **शिकायत का प्रस्तुतिकरण एवं पंजीकरण** - यह सम्पूर्ण दिन चलने वाली प्रक्रिया है जिसके लिए कोई निश्चित गाँव या क्षेत्र Legal Aid Team द्वारा निर्धारित किया जाता है। आमतौर पर वरिष्ठ न्यायित अधिकारी को लोक अदालत के शुभारंभ के लिए आमंत्रित किया जाता है। इस समूह में सेवानिवृत्त न्यायाधीश, वरिष्ठ स्थानीय अधिकारी, बार सदस्य, मान्य व्यक्ति, अनुभवी विधि विशेषज्ञ (अध्यापक) सक्रिय महिलाएँ, सामाजिक कार्यकर्ता, क्षेत्र के बुजुर्ग, स्वयंसेवी संगठन आदि होते हैं लोक अदालत के सदस्य को कौंसलर कहा जाता है जिनकी संख्या तीन होती है।

**लोक अदालत में आने वाले विवाद (Cases)** - लोक अदालत में प्रायः निम्न मामलों से संबंधित विवाद आते हैं फौजदारी मामले, सरकारी भूमि पर अतिक्रमण, पारिवारिक विवाद, भूमि अधिग्रहण, मकान किराए के मामले, कार्मिक मुआवजों के मामले, पंचायत अधिनियम से संबंधित मामले, न्यूनतम वेतन या ऐसे अन्य मामले जो अभी न्यायालय में न गए हों।

**समरूपता का अभाव** - लोक अदालतों में विभिन्न राज्यों में संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक विभिन्नता पाई जाती है।

2. विरोधी पक्षों को निमंत्रण पत्र देना ताकि लोक अदालत के अधिवेशन में निश्चित दिन साक्ष्यों एवं मित्रों सहित विवाद निपटाने हेतु उपस्थित हो सके।
3. सुनवाई प्रक्रिया में सर्वप्रथम विवादित मामले का निचोड़ बताया जाता है।
4. तदोपरांत मध्यस्थों या संधिकर्ताओं का मनोनयन किया जाता है।
5. लोगों की प्रार्थना पर मध्यस्थ पंच का पद स्वीकार कर लेते हैं।
6. पंचों द्वारा विचार विमर्श एवं निर्णय एवं निर्णय की घोषणा।
7. निर्णय को स्वीकृति (यदि दोनों पक्ष सहमत हों इसके पश्चात् निर्णय बाध्यकारी होता है)।
8. परस्पर समझौते की तैयारी।
9. मिठाई (गुड़) बांटने का रस्म।

**हरियाणा लोक अदालत (Lok Adalat in Haryana)** - लोक अदालत का औपचारिक प्रयाग स्वतंत्र भारत में सबसे पहले 1982 में गुजरात में हुआ। हरियाणा में इसका प्रयोग बाद में करनाल जिले के कुंजपुरा गाँव में हुआ।

30 अगस्त 2003 को, नारनौल में लोक अदालत का अधिवेशन हुआ। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश अशोक मान ने कहा कि लोक अदालतों को जनांदोलन बनाना होगा, ताकि लोगों को जल्दी और सस्तस न्याय मिल सके। वे हरियाणा विधिक सेवा प्राधिकरण के तत्वावधान में राज्य स्तरीय विशेष लोक अदालत को बबौर मुख्य अतिथि संबोधित कर रहे थे।

हरियाणा में पहली बार राज्य स्तर पर आयोजित लोक अदालत की अध्यक्षता पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश माननीय बी के रॉय ने की। इस अवसर पर पंजाब एवं हरियाणा हाई कोर्ट के अनेक न्यायाधीशगण व हरियाणा सरकार के आला अधिकारी मौजूद थे।

कार्यक्रम में श्री भान ने कहा कि उन्होंने कहा कि भारत में लोगों को इंसाफ के लिए 20-30 साल तक इंजार करना पड़ता है। इस व्यवस्था को ठीक करना होगा। उन्होंने कहा कि लोक अदालतों के जरिए सभी को रास्ता व जल्दी न्याय दिलाने का प्रयास किया जा रहा है। लोक अदालत में हुए फैसलों के विरुद्ध कोई भी अपील नहीं की जा सकती।

इससे लोगों का समय भी बचता है और अपील में लगने वाला अतिरिक्त खर्च भी नहीं होता। चूंकि लोक अदालत में फैसले दोनों पक्षों में समझौता करवाकर किए जाते हैं। इसलिए इन फैसलों से आपस में कोई मनमुटाव भी पैदा नहीं होता। उन्होंने कहा कि लोक अदालतों का एक उद्देश्य आपसी मनमुटाव को समाप्त करना है।

श्री भान ने कहा कि लोगों को सामाजिक व आर्थिक न्याय अभी तक नहीं मिल सका है। उन्होंने कहा कि यह न्यायापालिका नहीं अपितु संसद के हाथ में है। न्यायापालिका तो इस संबंध में संसद को दिशा देने में मदद कर सकती है। इस अवसर पर हरियाणा व पंजाब हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश माननीय बीके रॉय ने कहा कि लोगों को सस्ता व सुलभ न्याय देने के लिए ही इन लोक अदालतों का गठन किया गया है। हरियाणा में अब तक 1748 लोक अदालतों का आयोजन किया जा चुका है। इसके तहत 4 लाख 40 हजार 71 मुकद्दमों का निपटारा किया गया है। लोक अदालतों के माध्यम से 15 हजार 337 लोगों को कानूनी सहायता प्रदान की है।

श्री राय ने कहा कि प्रदेश में 442 कानूनी साक्षरता शिविरों का आयोजन करके लोगों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया गया है।

### सुझाव

#### (Suggestions)

1. कुछ कानूनी सत्ता की प्राप्ति,
2. विधिक एवं न्यायिक विशेषज्ञता,
3. अनुभवी एवं प्रतिभा सम्पन्न सदस्य,
4. विधि-विद्यार्थी एवं प्राध्यापकों की भूमिका को प्रोत्साहन,
5. अनौपचारिक प्रक्रिया,
6. कर्तव्यों एवं विशेषताओं का निर्धारण,
7. अनुगमन के लिए एक निश्चित एवं पारिभाषित प्रक्रिया,
8. स्थानीय स्रोतों से धन संचय (नाम-मात्र शुल्क),
9. प्रबोधक (शिक्षण) इकाई की स्थापना,
10. सफल कार्य के लिए उचित पारितोषिक,
11. सांत्वना (परामर्श) समिति,
12. मध्यस्थता अधिनियम में उचित संशोधन,
13. अधिकारियों का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व,
14. लोक अदालतों का सही प्रचार (स्थान एवं तिथि),
15. निचले स्तर पर जागरण अभियान (कैंप),
16. स्वयं सेवी संगठनों के माध्यम से जन सहभागिता का प्रयास।

उपरोक्त प्रयासों से लोक अदालतों को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। जिससे ये प्रयोग कानून के शासन के माध्यम से नियमित उन्नति हेतु एक जनआंदोलन का रूप ले सके तथा नागरिक स्वशासन में सहभागी होकर न्याय प्राप्त कर सकें क्योंकि आदर्श नागरिक और विकसित समाज के लिए प्रथम अनिवार्यता न्याय का सस्तापन, सहजता, सुगमता एवं सरलतापूर्वक प्राप्त होना ही है।